

**DUE DATE SLIP****GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj )

Students can retain library books only for two weeks at the most

<b>BORROWER S No</b>	<b>DUE DTATE</b>	<b>SIGNATURE</b>

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१८



महाकविश्रीत्रिविक्रमभट्टविरचिता

नलचम्पूः

अथवा

दमयन्ती-कथा

प्राग्वाटवंशीयश्रीचण्डपालकृत-

‘विपमपदप्रकाश’ संस्कृतव्याख्यासहिता

सम्पादक, हिन्दीव्याख्याकारः —

श्री कैलाशपति त्रिपाठी

एम. ए., व्याकरण-साहित्याचार्य, लक्ष्मस्वर्णपदक,

प्राध्यापक : संस्कृत विभाग

भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

( १-२ उच्छ्वास )



चौरवम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जडाव भवन के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी ( भारत )

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

मुद्रक - विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : तृतीय, वि० संवत् २०३३

मूल्य - १-२ उच्छ्वास ६-००, सम्पूर्ण



हमारे प्रकाशनो की एकमात्र वितरक संस्था —

**चौखम्भा ओरियन्टालिया**

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा विप्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ३२

शोकुल भवन, के ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१००१ ( भारत )

टेलीफोन — ५२९३९, ६२६९५, ६३०२२

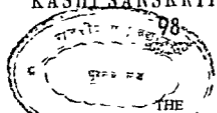
प्रधान शाखा —

**चौखम्भा विश्वभारती**

चौक ( चित्रा सिनेमा के सामने ) वाराणसी

फोन नं० ६५४४४

THE  
KASHI SANSKRIT SERIES



THE  
NALACHAMPŪ

OR

DAMAYANTĪ-KATHĀ

OF

ŚRĪ TRIVIKRAMA BHATṬA

WITH

*The Viṣamapada Prakāśa Sanskrit Commentary*

BY

ŚRĪ CHANḌAPĀLA

( 1260 A. D )

*Edited with his own commentary*

By

Prof. KAILĀSPATI TRIPĀṬHĪ

M. A., Vyākaraṇa-Sāhityāchāry, Gold Medalist, Lecturer in Sanskrit,  
Bhagalpur University, Bhagalpur-7

( 1-2 Chapters )

**CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN**

*Publishers and Book Sellers*

P. O. Chaukhambha, Post Box No 139

Jadav Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandi Lane-  
VARANASI ( INDIA )

*Also Can be had of —*  
**CHAUKHAMBHA VISVABHARATI**  
Chowk ( Opposite Chitra Cinema )  
VARANASI-221001  
Phone . 65444

© *Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi*  
Third Edition 1976  
Price : 1-2 Chapters Rs. 6-00  
Complete Rs ~~6-00~~

*Sole Distributors .—*  
**CHAUKHAMBHA ORIENTALIA**  
A House of Oriental and Antiquarian Books  
P. O Chaukhambha, Post Box No 32  
Gokul Bhawan, K 37/109, Gopal Mandir Lane  
VARANASI-221001 ( India )  
Telephones — 52939, 62695, 63022.



## निवेदन

दान्नादिपुपरीहेनोर्ष्वोऽत्र त्रिविक्रमः ।  
निर्मलं विमलं व्योम्नि यन् परं धनुनामपि ॥

सम्स्कृत वाङ्मय में वन्द्य साहित्य में अलक्ष्य समय और काल-गौरव दोनों दृष्टियों में प्रथम है। मधुरतर श्लेषविभास तथा अनुकृत भावनृष्टि के कारण इस ग्रन्थ ने सुदृढ समान में अगतिम स्वाति अर्जित की है। भाव-सर्वत्रि कलाप्रौढ कान्ठों ने इसका बड़ा स्वाधनीय स्थान है। प्रसिद्ध राजाश्रय में रहने के कारण त्रिविक्रम शास्त्र ही की तरह लोकविद्या में भी निष्ठात हो गये थे। उनके ग्रन्थ में कालकथा के साथ ही लोकविद्या तथा इतिवृत्त-तत्त्वों की भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, किन्तु सहृदयसौख्य तत्त्वों के इस दिपुत्र मास्टर को बहुविध शैलियों के कारण उन्होंने सर्वगुण नहीं रहने दिया है। इसकी श्लेषबहुल नवदार्शनिकी को ध्यान में रखकर ही विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इसे एन० ए० तथा साहित्याचार्य की परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में निर्धारित किया है।

सम्प्रति सम्स्कृत में इस ग्रन्थ पर दो टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं—श्री चण्डपाल का विपनपदप्रकाश और प० नन्दकिशोर वर्मा जी की भावबोधिनी। निर्णय-सागर में प्रकाशित संस्करण में अद्वय विपनपद-प्रकाश छपा है और काशी संस्कृत सोरीय संस्करण में विपनपदप्रकाश के साथ भावबोधिनी भी मुद्रित है। ये दोनों ही टिप्पणियाँ शिष्ट-ग्रन्थियों को नियमित करने में बहुत सहायक हैं किन्तु कठिनाई यह है कि ये ग्रन्थ के समग्र अर्थ पर नहीं लिखी गयी हैं। कतिपय शिष्ट या भावप्रधान पद्यों तथा अनुच्छेदों तक ही सीमित हैं। अतः संस्कृत में भी कोई ऐसा विश्लेषण उपलब्ध नहीं है जो ग्रन्थ के समग्र अर्थ पर प्रकाश डाल सके।

विभिन्न नुचीयनों में जात होता है कि इस ग्रन्थ पर और भी कई व्याख्याएँ कयी की गई थीं। आचार्य चण्डपाल ने अपने विपन-पद-प्रकाश में एक विवृति

नामक टीका का उल्लेख किया है। डा० हीरालाल जी ने अपने सूचीपत्र सरया २१४७ में पाँच टीकाओं में युक्त 'दमयन्तीक्या' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। ये कौन पाँच टीकाएँ थीं, किसने की थी इसका कुछ पता नहीं है, क्योंकि उक्त सूचीपत्र में इस सम्बन्ध में और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

निर्णयसागर सस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका में एक 'बृहट्टीका' का संकेत है जो कभी जयपुर-राजगुरु नरहरि शर्मा जी के पास थी। डा० बर्नेल सूचीपत्र—१५९ ( a ) में नागदेव कृत एक टीका का उल्लेख है किन्तु इस सम्बन्ध में वहाँ और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। आर्पेट सूचीपत्र—२११ में भी इसकी एक टीका का उल्लेख है। उनके कर्ता का नाम वहाँ नहीं लिखा है। निर्णयसागर सस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका में एक और टीका का संकेत मिलता है जिसके कर्ता दामोदर थे। यह टीका भी कभी जयपुर-राजगुरु नरहरी शर्मा जी के पास थी। गुणविन्द्य गणि ने दमयन्ती-चम्पू-वृत्ति नामक टीका लिखी थी। मालूम पड़ता है चण्डपाल के विषमपदप्रकाश ने जिन पदों का विश्लेषण छोड़ दिया था उन्हीं की व्याख्या इसमें की गयी थी।<sup>१</sup>

भावबोधिनी और विषमपदप्रकाश को छोड़कर उपर्युक्त टीकाओं में से एक भी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न सूचीपत्रों में इनका केवल संकेत भर मिलता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अति प्राचीन काल में लोकप्रिय रहा है। बहुत से विद्वानों ने इस पर मयासमय व्याख्याएँ लिखी जो दुर्दैववश काल-प्रस्त हो गयीं, आज उपलब्ध न रही।

सम्पति विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठ्य पुस्तक रूप में निर्धारण से प्राक्तन सांस्कृतिक तत्त्वा के अनुसन्धितसुओं की इस ग्रन्थ की ओर उत्सुकता में इसके एक नये सस्करण का अभाव बहुत दिनों से खटक रहा था।

१ नलचम्पू—विषमपदप्रकाश, पृ० २८९

२ प० नन्दकिशोर शर्मा—नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ९

३ श्री चण्डपालोद्भूत कियत्पदाना यक्षप्यनिन्द्या विवृति चकार ।

तथाऽपि तच्छेष पदार्थ सार्थ-प्रकाशनात्ता विकृतोमि चम्पूम् ॥

टीका का प्रारम्भिक पद्य । का० स० सी० सस्करण, नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ११ में उद्धृत ।

इस संस्करण में मूल ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद तथा सापेक्ष विश्लेषण के साथ चण्डपाल विषमपदप्रकाश भी सम्पादित है। मूत्र ग्रन्थ तथा विषमपद-प्रकाश के पाठों को भी यथासम्भव शुद्ध करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी अनुवाद में मूत्र भावों के साथ मधटना-मोन्दर्ष की सुरक्षा का ध्यान रखा गया है। भावमोन्दर्ष के साथ बन्धसौन्दर्य का भी आम्वाद पाठकों का मिल सके, इन लक्ष्य में हिन्दी अनुवाद तथा विश्लेषण लिखा गया है। ऐसा करने में कहीं-कहीं हिन्दी की जबहुप्रचलित शैली का अवलम्ब लेना पड़ा है।

हिन्दी में दिष्ट गद्यबन्धों को प्रस्तुत करते समय या विशिष्ट करते समय हिन्दी की प्रचलित शैली से कोई भिन्न मार्ग उपनाना स्वभाविक हो जाता है, क्योंकि सस्त्र के विभक्तिश्लेष, प्रत्ययश्लेष आदि प्रकारों को हिन्दी के सीमित शब्दों में विशिष्ट करना मुश्किल हो जाता है। ऐसे स्थलों को व्याकृत करते समय अनुवाद वाले कथाप्रसङ्ग के प्रवाह के साथ कहीं-कहीं कोष्ठकबद्ध विश्लेषण के कतिपय अनुच्छेदों को भी जोड़ना पड़ा है। श्लेष के इन विचित्र तालों को खोलने के लिये ये बन्धाकार कोष्ठक कुञ्जियाँ बहुत आवश्यक प्रतीत हुईं। मुद्रण में इन कोष्ठकों का कहीं-कहीं अनुचित विन्यास हो गया है। इनके यथासम्भव मार्जन के लिये ग्रन्थ के अन्त में एक शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। सहृदय पाठकों से निवेदन है कि अक्षमज्जस के हर स्थलों पर शुद्धि पत्र का उपयोग करेंगे।

१९५९ में जब मैं वाराणसिमें बिरला सभ्द महाविद्यालय वाराणसी के साहित्य विभाग में अध्यापक था, इस ग्रन्थ पर एक विश्लेषण तथा एक समीक्षा लिखने के लिये सोचा था, किन्तु यह कार्य वाराणसी में न होकर भागलपुर में पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ के छपने समय में अपने शोध कार्य में व्यस्त था। प्रफु देखने की व्यवस्था मुद्रणालय की आर में की गयी थी। जहाँ कहीं मुझे असमति प्रतीत हुई उसका संयोजन मैंने शुद्धिपत्र भाग में कर दिया है।

भूमिका भाग में त्रिविध भट्ट के समय, निवास तथा कृति के साथ चम्पू-काव्यलक्षण, कथावस्तु, समाज-विधान तथा भौगोलिक स्थलों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस कार्य में साक्षात् या परम्पराया जिन विद्वानों की कृतियों में मुझे सहयोग मिला है मैं उन सबका आभार मानता हूँ। अनुवाद तथा विश्लेषण भाग में



चण्डपाल तथा प० नन्दकिशोर शर्मा एव भूमिका के भौगोलिक विवरण वाले छण्ड म डा० भगवत चरण उपाध्याय जी से मुने बहुत सहायता मिली है। मैं इन सभी विद्वानों का परम कृतज्ञ हूँ।

वाराणसेय बिरला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी के प्रधानाचार्य गुरुवर्य पण्डित रामानुज जी ओसा, न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य का मैं सर्वाधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझ इस कार्य में प्रवृत्त किया और इसकी पूर्णता के लिये सदा प्रेरित करते रहे। चौखम्बा विद्याभवन के व्यवस्थापक श्री मोहनदास जी गुप्त को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता से इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है।

भागलपुर विश्वविद्यालय  
गणतन्त्र दिवस १९६५ }

—कैलासपति त्रिपाठी

## नलचम्पू : कथावस्तु

### प्रथम उच्छ्वास

चन्द्रनेत्र भगवान् शकर तथा अमृतवर्षी कवियों के वाग्ज्वाल की शुभाशामा में प्रथम का आरम्भ हुआ है। यशस्वी कवियों के वाग्बैभव के साथ ही जगत् के उद्भवम्यल काम तथा तस्त्रियों के नेत्रविभ्रम की सर्वोत्कृष्टता समर्पित की गयी है और विद्वानों के आनन्दमन्दिर, सरस्वती के मधुर प्रवाह को नमस्कार किया गया है। तदनन्तर अमत् उक्तियों तथा अमद् गोष्ठियों की निन्दा और मूर्क्तियों तथा मर्कटियों की प्रशंसा की गयी है। मुख्यतः बाल्मीकि, व्यास, गुणाक्ष्य तथा बाण को बड़े आदर के साथ स्मरण किया गया है।

उन महान् कवियों की कृतियों के समझ अपनी बातों के सम्मान के सम्बन्ध में कवि को बड़ा मन्त्रेह होता है, फिर भी वह काव्यनिर्माण का साहस हमलिये करता है कि विद्वान् लोग सर्वविध उक्तियों का समादर करते हैं। समदरलेण से सम्पन्न उक्तिवैचित्र्य की ओर अपनी प्रवृत्ति का संकेत देना हुआ वह अपने बदा का परिचय देता है।

श्री त्रिविक्रम भट्ट ने अपने आप को महर्षि शाण्डिल्य के वंश में उत्पन्न श्रीधर का पौत्र तथा देवादित्य का पुत्र बताया है। इस परिचयारम्भ आमुख के बाद वर्णवस्तु का वर्णन प्रारम्भ होता है—

समूर्ण मूमण्डल की शोभा में नवानता उपस्थित कर देने वाला, गङ्गा तथा चन्द्रभागा जैसी नदियों से अलङ्कृत, पुण्यपुरुषों से सनाधित, स्वर्गवासियों को भी लुम्बा लेने वाला आर्षावर्त नाम का देश है। वहाँ निपथा नाम की नगरी है। उसकी गगनचुम्बी प्राकारमिति इन्द्रनीलमणि से बनी है। उससे निकलती हुई सहस्रों किरणों की श्रेणियों नवीन तृण के अङ्गुरों की तरह प्रतीत होती हैं। भवनों के प्राङ्गण स्फटिक मणि की शिलाओं से निर्घ्न हैं। वहाँ धूमती हुई खियों के लावारजित पैरों के प्रतिग्व को कमल समस्त कर अमरमण्डल ललचा जा रहा है। नगरी के अन्तरङ्ग एव बहिरङ्ग भाग अपेक्षित समस्त सामग्रियों से मण्डित होने के कारण स्वर्ग की सुपमा से स्पर्धा करते हैं।

इसी नगरी में महाराज नल रहते हैं। उन्होंने अपने बाहुबल से विषम-मण्डल को नष्ट कर दिया है। शत्रुपक्षियों के नेत्रकमल से गिरती हुई अश्रुधारा में उनका प्रताप राजहस तर रहा है। समुद्रान्त पृथ्वी की रक्षा करता हुआ उनका कीर्तिस्तम्भ सम्पूर्ण भूमण्डल को अलङ्कृत कर रहा है।

उनके मन्त्री का नाम श्रुतिशील है। वह समस्त विद्याओं का आधारस्तम्भ है। नल का द्वितीय प्राण है। उसकी मन्त्रणा से होने वाले प्रशासन से प्रजामण्डल अत्यन्त सन्तुष्ट है। उसके मन्त्री पद पर रहने से नल को राज्य-व्यवस्था की चिन्ता बहुत कम करनी पड़ती है। अतः विहार, आखेट, विनोद-गोष्ठी आदि में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

एक समय जब कद्म्व की ढालियों पर भँरि मढ़रा रहे हैं, कामदेव के अट्टहास की तरह बादलों की ध्वनि से आकाश मुखरित हो रहा है, पके हुए आमों के फलों से वन की आभ्यन्तरिक शोभा नितान्त रयामल हो चली है, राहियों को उत्कण्ठित कर देने वाली मयूरों की मधुर ध्वनि चारों ओर गूँज उठी है। वर्षाकाल ने वनधी की मादकता में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है, एक वन-पालक राजा को यह सूचना देता है कि उनके विहार-वन में एक भयंकर जङ्गली सूकर भा गया है। उसके दौंठ घड़े चमकीले हैं। काला तो वह इतना है कि अजन पर्वत या जलराशि से मेदुर मेघ की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। अपनी मरती में किसी की चिन्ता नहीं करता। लीला सरोवर को मध कर अस्त व्यस्त कर दिया है। ऋषिद्वारण्य में अकण्ड-ताण्डव प्रस्तुत कर दिया है।

इस उद्वेग एव विप्लवकारी सूकर के आगमन की सूचना पाते ही राजा उस वनस्थली को देखने के लिये उत्कण्ठित हो उठता है जा ताते के पक्षों की तरह हरित घासों से मण्डित हो गयी है तथा जलराशियों का जल दूध की तरह प्राञ्जल हो गया है।

राजा की आज्ञा से सेनापति बाहुक शिकार की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देता है। नल एक प्रशस्त भक्ष पर आरूढ़ हो जाता है। जाल आदि शिकार की सामग्रियों से मण्डित व्याधों का समूह राजा के पीछे चमराज के दूतों की तरह चल रहा है। वन में घुसते ही व्याधों ने मारी वनस्थली को व्यथित कर दिया है। हाथियों का दल विशादने लगा है। मृगों का दल व्याधसंग के क्रूर कोलाहल से ही निष्पन्न होने लगा है। धातों के आघात से पूर्णित भैसे पृथ्वी पर धदाधद लोटने लगे हैं। अपने वेग से अर्धों को भी नीचा दिग्वा देने वाले कुरङ्ग लम्बी छल्लों में भरते हुए मानो आकाश में ही नैर रहे हैं। इसी बीच नासिका को टेढ़ा कर बाइल की तरह पाङ्गवाता हुआ, पूँछ के गुथे को हिलाता

हुआ, एक पंडित ज्ञानार्थ पर दावानल से अने हुए पर्वत की तरह एक सूकर दिग्यायी पद जाता है।

उसे दसते ही राजा सायमान हा जाता है। विविध पर्वों से मी टा थागा की क्या उम सूकर पर घेन ही करने लगता है जग धार राघव राघव-द्र रावग पर कर रहे थे। दर्शकों को यह पता नहीं चलता है कि युद्धकौशल म निपुण उम अध तथा अगन्त चक्षु हाथों से शास्त्रावृष रानों का परमाते हुए उस राग और धीरम के रमित उम सूकर में से फिमहो उच्छ्रुतम माना जाय।

उम दाना के द्रुन्दयुद्ध न पथी में कम्पन उपाध कर दिया है, पर्वतों में चक्षुता ला दी है। मातान् मूर्धने मी उनक उम शीर्ष पदार्थन का देगने के लिये कुछ समय क लिये अपन घाड़े मानो लड़े कर दिये हैं। धिरकाल तक युद्ध में पराक्रम पदार्थन के बाद उम सूकर सम्राट पर नरेन्द्र नल की विजय होती है।

विजय के बाद आरि की परेगानियों से यह कर राजा विधाम के लिये एक सालवृष के भीधे घेगता है। वनपक्षियों तथा लताओं को कम्पित करती हुई, कुञ्ज एवं कदम्ब के मकरन्द बिन्दुओं से घोशिल हवा के मधुर स्पर्श से उसकी औंखें झपकी ले रही हैं। परिवन वगं अभी गृगणपुओं को वैषम्य दीपा देने में ही लगा हुआ है। गृगों के विनाशमूलक शोक से वनद्वतार्प होपहर के समय पुष्प लोचना सं गरम-गरम मकरन्दों के घहान औंसू धरमारही हैं। तरग मज्जरियों के तुलित हो जाने के कारण अमरमण्डल नैराय लिये दूररे वनों की ओर परिपत हा रहा है।

हमी बीच एक राही उसी सालवृष के पाप आता है। लता की ट्ठाल से उमने अपने पके बालों को बाँध रला है। कन्धे पर एक कण्डा लिये है। गले में मिट्टी की गोलियों से बनी माला पटने है। कैय रङ्ग का एक कौपीन लगाये है। पैरों में फटा विषदा बाँधे है और हाथ में एक काठ का भिषापात्र लिये है। यह शरीर से अगन्त दुर्बल दिग्यायी पदता है।

राज के अलोकमान्य मीन्द्र्य का ही देस कर तसे यह मालूम पद जाता है कि निधय ही यह काई मदाग्य है। यह निधय के अनुमार यह आगे पद कर कहता है—' कामविनमिन्, आपका मद्रल हो। '

राजा भी आश्चर्य से शिर उठाना है और बड़े आदर के साथ पथिर का अभिनन्दन करता हुआ घेगता है—

' कटिये कहीं से आपही सामावना की जाय ? मार्ग का कितना अंग अधगिष्ट रह गया है ? आइये, घेगिये, मोबा विधाम कर लीजिये तो जाइयेगा। अनेक

विदेशों में भ्रमण करने वाले लोग विविध आश्रयों को देखते रहते हैं। बहुत सी अद्भुत बातें उनकी जानकारी में रहती हैं। आप भी ऐसे व्यक्तियों में से ही हैं। कुछ सुनाइये। प्रथम परिचय के कारण आप से स्पर्श स्नेह है, ऐसी आशङ्का नहीं कीजियेगा। प्रथम दर्शन होने पर भी मणि अपनी कान्ति नहीं छिपाते।”

पथिक भी राजा की जिज्ञासा को सम्मानित करता हुआ बोलता है—

“सम्पूर्ण ससार में अपनी दर्शनीयता के लिये प्रसिद्ध, दक्षिण दिशा में भगवान् शङ्कर के पवित्र चरणों से अधिष्ठित, श्रीशैल नाम का पर्वत है। वहीं आकर्षक फूलों एवं फलों से सज्जत गादावरी के तट पर देवों और दानवों की गोष्ठी में समान-रूप से पूजे जाने वाले भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये मैं गया था।

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तय करने के कारण थक कर एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे विश्राम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा उसे कृपया आप सुनें—

एक राजा की अद्भुत सुन्दरी लड़की उसी पेड़ के नीचे आयी। वह अपने मधुमय पद विन्यास से गजेन्द्रवधू के भी गतिविलास को मात कर रही थी। चारों ओर से सहेलियों से घिरी हुई थी। झुलावे जा रहे खँबर की हवा से उसकी अलकवह्वरी स्फण्डित हो रही थी। वह सुधा माधुरी से भी स्पर्धा करने वाली गीत-ध्वनि में कान लगाये थी। मुझे तो उसे देखकर ऐसा लगा कि नारायण के वस-स्थल में विलग होकर लक्ष्मी ही आ गयी हैं। उसका मुख चन्द्रमा की आह्लादकता प्रस्तुत कर रहा था। ओखें कमल से स्पर्धा कर रही थीं। अपनी यौवनलक्ष्मी के अद्भुत विलास से वह कामदेव की विजयवैजयन्ती बनी हुई थी। युवकों के मानस को तो वह अनायास ही उद्वेलित कर रही थी। उसके सौन्दर्य तथा अतिमानव सौभाग्य को एक-एक कर वही वर्णन कर सकता है जिसे शेषनाग की तरह महत्त्व जिह्वायें हों।

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं वैसे ही वह भी दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित एक उत्तर दिशा के पथिक से कुछ पूछती हुई वहाँ कुछ समय तक ठहरी।

उत्तर देश के किसी प्रशंसनीय गुण वाले राजा के माथन्ध में यातें चल रही थीं। मैं भी उस घण्टिनोद के सारस्वतप्रवाह में वञ्चित न रहा। वह कह रहा था—

‘वे ओखें धन्य हैं जो उस कामविजयी राजा के मुरमण्डल को देख कर वृत्त होती हैं। तुम कामदेव की मञ्जरी हो और वह युवक उसका आस्वादन भ्रमर है। तुम्हारे ही लिये वह उपयुक्त है। तुम दोनों के मिलन से प्रज्ञा की कला साकार हो उठेगी।’

मालूम नहीं वह कौन पुण्याना है जिनके विषय में सुनने मात्र से उम रोमाञ्च हो गया। आश्रय के बारे में भी विवेक समाप्त हो गया था। इसीलिये मैं पूछ नहीं सका कि वह किसकी लक्ष्मी थी। कहीं और किम स्थान में आयी थी। आकस्मिक विह्वलता की बहुलता में इन्द्रियों के समस्त बाह्य व्यापार शान्त हो गये थे। स्तब्ध होकर बहुत दूर तक लुप बंधा रहा। अब मैं यही साचता हूँ कि सम्पूर्ण समार की सर्वोत्तम सुन्दरी उम राजपुत्री को देखकर उम दिशा की मेरी यात्रा मफ़ल रही। अब मैं आप जैसे अतिमानव मौन्दर्य की मूर्ति को देख कर मैं कृतकृत्य हो गया। देशाटन का प्रयास सफल हो गया। अस्त्रा, आत्मा दीप्तिये, मैं अपना रास्ता तय करूँ।”

पथिक की बातें सुनकर राजा सोचने लगता है—“निश्रय ही वह देश स्त्री-रत्नों का अद्भुत भण्डार है। यह पथिक भी यथार्थ वक्ता है। ब्रह्मा का निर्माण-कौशल बहुविध आश्रयों को समार में प्रस्तुत किया करता है। उसके लिए क्या सम्भव नहीं है। खेद यही है कि मैंने उम मौन्दर्य की प्रतिमा, रमणीय को नहीं देखा। वडे आश्रय की बात है, केवल सुनने मात्र से ही मेरा उच्च मनोबल गिरता जा रहा है। मैंने अपनी नेत्राञ्जलि में उसकी रूपमुष्मा का पान नहीं किया, उसके नाम पत्रवक्त्र अपने कानों का मूषग नहीं बनाया, फिर भी चुम्बक की तरह उसकी लावण्यकान्ति मुझे त्विचनी जा रही है। मन धैर्यद्वार को तोड़ कर उमी की ओर भागा जा रहा है।

अशाप्य वस्तु में पुरुषों का अतुराग हुआ ही करता है। मुझ तो उमे सुनते ही बिना उबर का अस्वभ्यना आ गया है। बिना बुझापा आगे ही बढ़ता झा गया है। कानों के रहने बहारा हा गया हूँ। नमस्कार है उस मनोजन्मा काम-देव को जो सजनों का भी दुर्जन में परिवर्तित कर दिया करता है।”

इस तरह सोचता हुआ राजा उम पथिक को विविध उपहारों से सम्मानित कर विदा देता है और स्वयं भी व्याध परिवर्तनों के साथ घर के लिये चल देता है। घर पर उसके मन की उदासी बढ़ जाती है। उसके चेहरे को देख कर इस बात का पता चल जाता है कि उसके मानस के तृणकुटीर में कहीं काम की चिनगारी सुलग चुकी है। उसके वर्षाकालीन वे दिन पथिकों से उस राजपुत्री-विषयक समाचार पूछने में ही बीनते हैं।

## द्वितीय उद्घाम

वर्षों का समय समाप्त हो रहा है। शरत् के आगमन के उपलक्ष्य में अनर एवं हमों ने स्वागत-गान शुरू कर दिया है। नल एक निकटवर्ती वन में विहार कर

रहा है। किन्नर-मिथुन अत्यन्त ललित स्वर में कुछ श्लोक गा रहे हैं। उनकी गीतलहरी नल की उत्कण्ठा को और उद्दीप्त कर देती हैं। इस बीच कुछ वन-पालिकायें आती हैं और वन के विविध दृश्यों को दिवाती हुई सभी पदार्थों का वर्णन छिष्ट शब्दों में करती हैं। उनकी उत्कृष्टता पर वह बहुत सन्तुष्ट होता है और अज्ञों के भ्रूषणों को देकर बड़ी खुशी के साथ उन्हें विदा करता है।

अभ्रमनोविनोद के हेतु घूम ही रहा है तब तक उसके सामने ही अपने सफेद पखों से धरती को मण्डित करती हुई हंसों की एक अत्यन्त सुन्दर मण्डली आ गिरती है जो भूख की वृत्ति के लिये कमलनाल को तोड़ने लगती है। कौतुक घश नल उन्हें पकड़ने का यत्न करता है। अन्ततः एक को पकड़ ही लेता है। लाल कमल के मध्य भाग की तरह सुन्दर उसके करपल्लव पर वह हंस पद्म रागमणि की शुक्ति पर रखे गये सफेद कमल की तरह प्रतीत होता है या उदया-चल की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह लगता है। हाथों में आते ही वह चाँदी की झाल की तरह मधुर स्वर में अत्यन्त विस्पष्ट शब्दों में राजा को आशीर्वाद देता है।

हंस की निर्भङ्गता तथा चालमाधुरी उसे आश्चर्य के साथ उत्कण्ठा का एक झोंका और लगा देती हैं। मन ही मन वह सोचने लगता है कि निश्चय ही पक्षी के वेप में यह कोई देवता है। मन से भी किसी प्राणी का अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि कार्य से, हृद्यता से या शाप से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाकर घूमते फिरते हैं। ऐसा सोचकर वह बड़े स्नेह के साथ हंस का स्वागत करता है। “आपके दर्शन से ही वृत्त हूँ।” यह कह कर हंस राजा को और अनुरागसम्पन्न कर देता है। इसी बीच अपने सहचर को पकड़ा गया देख कर हंस धूस्र आसू गिराती हुई राजा के सम्मुख आती है और श्लेषभरी वाणी में बहुत तरह की उलाहनायें सुनाती है। नल भी छिष्ट उक्तियों में ही उसका उत्तर देना है। हंस नल से निवेदन करता है कि वह उसकी पत्नी को अपने कट्टे श्वश्रुओं से नाराज न करे। अभी इन तीनों का वाग्बिनोद चल ही रहा है तब तक आकाशवाणी होती है—“राजन्, इस हंस को छोड़ दो। यही दमयन्ती को तुम्हारी ओर आकृष्ट करने में सहायक होगा और दूत कार्य करेगा।”

‘दमयन्ती’ नाम सुनते ही नल रोमाञ्चित हो जाता है और “यह कौन सी दमयन्ती? कौन सा यह आश्चर्यमय पक्षी? कौन यह आकाशवाणी? विस्तार से जानने लायक ये सब चीजें हैं।” यह सोचना हुआ एक छायादार हतामण्डप में बैठकर हंस से कहता है—“कल्याणमित्र! यह दमयन्ती कौन है? क्या इसकी उत्पत्ति है? कैसी सौन्दर्य-लक्ष्मी है?”

राजा की वरदण्य मरी जिज्ञासा को जानकर 'शुद्धार के स्वर्गकल्प' यदि जानना ही चाहते हैं तो लीजिये, दम्पती के समजीवनम परिचय-पञ्चव को अपने कानों का अलङ्कार बनाइये।" इस ने कहा—

“गङ्गा और गोदावरी के अघन्न पवित्र प्रवाह मे दुरित दावानल को मूलत शान्त कर देने वाला सब देशों में सर्वाधिक महाबशील दक्षिण देश है। उर्मा देश के मङ्गलपूर्व भाग में वैदर्भमण्डल को अलङ्कृत करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है। वहाँ के राजा महाराज भीम हैं। उनकी पटरानी प्रियङ्गुमञ्जरी अपने सौन्दर्य के लिये विश्वविख्यात हैं। पहले इन्हें कोई सन्तान नहीं थी। एक दिन वनविहार करते समय एक वन्दरी के वस्त्रों को देख कर इन दम्पती को अपनी सन्तानहीनता के कारण बड़ा दुःख हुआ। रानी प्रियङ्गुमञ्जरी तथा महा राज भीम अभी विचार ही कर रहे थे तब तक अंधेरा हो गया। अन्त में भीम ने पत्नी का यह युक्ति बनायी कि वह कामवर्षा भगवान् शङ्कर की आराधना करे। पति की आज्ञा से सन्धाकाल में भगवान् शङ्कर की उपासना के लिये वह देवी समाधिस्थ हो गयी।



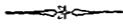




॥ श्री ॥

# नलचम्पूः

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता



## प्रथम उच्छ्वासः

जयति गिरिस्रुताया कामसन्नापराहि  
न्युरसि रसनिपेक्षान्दनध्वज्ज्वालात् ।  
तदनु च विजयन्ते कीर्तिमाजा कर्माना-  
मसहृदमृतविन्दुस्यन्दिनो घाग्बिलासाः ॥ १ ॥

सृष्टिप्रबन्धे अनुराननस्य भावानशान्विलसद्दिशेयात् ।  
विवृण्वती स्वेन वचन्र येन स्याद्भारती बोधविवृद्धये व ॥

शक्तिविक्रमस्यैव जीपाहोकातिलह्वनी ।  
दमपन्तीप्रबन्धेन सदा बलिमनोदिता ॥  
त्रैविक्रमाणि विद्यमानि यद्गानि यानि  
तेषा प्रकाशमनिनन्दनि चण्डपालः ।

य स्यापिमावघटनात्पट्टरश्मिमात्र  
सप्राप्य विभ्रतितरां रसतिमंरत्वम् ॥  
मङ्गलैरतिबन्धा रशुगिर सदहमन्दिरम् ।  
सम्यक्दर्यनिश्चिप्यै निबन्धोऽय विधीयते ॥

प्रथममुपमेयमस्मिन्नुपमानमतो विचार्यते सम्यक् ।  
अविरोधविरोधावपि सम्यावेव क्रमेणैव ॥  
छन्न विरोधेण मया ययोचितसमासकारकप्रभृति ।  
मुगमावात्र यदुक्त तन्मतिमद्भि स्वय श्रेणम् ॥  
सूक्ष्मायां प्रस्फुरिच्यन्ते कुशाप्राप्रपथिया स्वत ।  
तद्भ्याकषोपोक्षता प्राय सङ्घेपाय ततो मया ॥

सकलमङ्गलकारण दुरितनिवारणमभिधयोपयोगि चावरयमेव शाखादौ कविना  
द्विमपि प्रपेय तदेतन्मनसि कृत्वाभीष्टदृष्टताप्रतिपूर्वकमेव समारब्धव्यमिति पूर्वा-  
चार्यप्रणीतसमाचारमयांदादुल्लङ्घन सूक्ष्मजलनिधिरपि लडेरलब्धमभ्यो विधिप्र-  
पदपङ्क्तिपरित्यायोर्बोधिमघट्ट श्रीत्रिविक्रमभट्ट प्रतिपादनीयसर्वरमकयोपक्रमे सदा-

श्रद्धारखादिन्द्रादीनेकान्तशान्तत्वाद्गीतरागप्रभृतीनपहाय सर्वरसारमकं परमेश्वरं  
 शंकरमेव प्रणुवन्नाह—जयनीत्यादि ॥ हेमवत्याः संघन्धिनि काममतापवादिनि कर्षणं  
 देवपीठां दधान उरसि चान्दनो रसनिपेक इव सनापापहरणाद्गौहणद्रुमरसाभिपेक  
 इव योऽसौ भगवाश्चन्द्रमौलि सुधाशुशेखरः स जयति सर्वोत्कृष्टो भवति । 'सर्वो-  
 त्कृष्टश्च सर्वथा नमस्य स्यात्' इति नमस्कारः प्रतीयते । नमस्कारेण च प्रबन्ध-  
 कर्तृव्याख्यातृश्रोतृणामिष्टकलमपत्ति । रसा निविश्यन्तेऽस्मिन्निति रसनिपेको रसा-  
 धार इत्यप्येकदेशेन प्रतिपत्तव्यम् । रसाश्च श्रद्धारादयः । तांश्च कवयः पत्रव्यक्ती-  
 क्तुं प्रभवन्ति । अतएतदनु रसाधारस्य भगवतः पश्चाद्सव्यकिनिमित्तानां  
 कवीनां वाग्मीकिभ्यासनालिदासप्रभृतीनां निरन्तररसाविष्कारिणो वाग्बिलासा  
 विजयन्ते ॥ अत्र च पूर्वार्धेन वक्ष्यमाणप्रबन्धार्थोऽपि सूच्यते । गिरिर्भूमिनृपः ।  
 'गिरिर्भूमिनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले' इत्युक्ते । तस्य सुताया दमयन्त्या दुर्वार-  
 रमरविकारमनस उरसि नलचन्द्रनरसनिपेको भविष्यति । स च चन्द्रवश्यानां  
 मौलिमुकुटायमान इति ॥ १ ॥

पर्वत पुत्री (पावती) के काम-सन्तप्त वक्ष स्थल पर चन्दन रस के सिञ्चन  
 सदृश (शीतल लगने वाले) चन्द्रशेखर (भगवान् शिव) सर्वोत्कृष्ट हैं । इसके  
 बाद यशस्वी कवियों के निरन्तर सुधा-चिन्दु बरसाने वाले वाणी के विलास भी  
 उत्कृष्टताशाली हैं ।

[ "ज्ञानमिच्छेतु शङ्करान्" ज्ञान की कामना तो भगवान् शंकर से करनी  
 चाहिये । इस नियम के अनुसार कवि समस्त मङ्गलो के मूल तथा समस्त रसों  
 के निकेतन भगवान् चन्द्रमौलि को नमस्कार करता है । इसके बाद यशस्वी  
 कवियों के वाग्बिलास के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है । वाग्बिलास पद से उक्ति-  
 वैचित्र्य की ओर सकेत किया गया है । किन्तु केशव वाणी की यक्रा ही कवि  
 को ईप्सित नहीं है । वह वैसे वाग्बैचित्र्य की प्रशंसा करना चाहता है जिससे  
 निरन्तर सुधा-माधुरी की वर्षा होती रहती है ।

"जयति" पद का अर्थ "सर्वोत्कृष्टो भवति" किया जाता है । जिस व्यक्ति  
 से सर्वोत्कृष्टता आ जाती है वह अनायास ही प्रणम्य बन जाता है । इमोलिये  
 प्रणाम के अर्थ में यह पद प्रयुक्त हुआ करता है ।

प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध भाग में वर्णविव्यम्ण कथातत्त्व की ओर भी सकेत  
 किया गया है ।

"गिरिर्भूमिनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले" इस उक्ति के आधार पर गिरि  
 शब्द का "राजा भीम" अर्थ भी जाना है । चन्द्रमौलि शब्द का दूसरा अर्थ  
 नल भी है, क्योंकि नल चन्द्र (चन्द्रवशियों में) मौलि (श्रेष्ठ) था ।

अर्थात् राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के काम-सन्तप्त वक्ष स्थल पर चन्दन-  
 रस के सिञ्चन-सदृश नितान्त शीतल प्रतीत होने वाले चन्द्रमौलि नल  
 सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १ ॥

जयति मधुसहायः सर्वमंसारवह्लो-  
जननजरठकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः ।  
तदनु पुनरपाह्नोत्संगसंचारितानां  
जयति तद्यणयोपिह्लोचनानां विलासः ॥ २ ॥

म किमहायः किमूलः किमुपकरणञ्च कामो यो जयनः शिवतानिभ्यां शिवाभ्या-  
मपि स्वीकृत इत्याह—अवतीति । कोऽभ्यद्मुनवैभवः कंदर्पदेवो जयति । किमूलः ।  
मधुमहायो वमन्तसखः । नहि सन्वायमन्तरेण कश्चिन्नहाकार्यकरणाय प्रवर्तते ।  
तथा सर्वस्या मंसारवह्लया उत्पादनाय कठिनकन्दः । कठिनकन्दाद्यविच्युता  
धीश्चद्वृद्धिः । कंदर्पदेवादनन्तरं पुनःपुनर्नेत्रापाङ्गप्रदेशकोषे कामुहजनलक्षणीकरणाय  
प्रवर्तितानां नववपःसुन्दरीनेत्राणां कटाक्षादिविभ्रमो जयति ॥ २ ॥

सम्पूर्ण ससाररूप लता को उत्पन्न करने में कठिन कन्द, वसन्त ( जंते )  
मिश्रवाते असौक्ष्मिक शक्ति-सम्पन्न कामदेव उत्कृष्टताशाली हैं । तदनन्तर  
सद्यणियों के नेत्रप्रान्तरूप ओड से संचालित होनेवाले आँखों के ( कटाक्ष  
आदि ) विलास सर्वोत्कृष्ट हैं ।

[ जैसे कठिन कन्द होनहार लता को उत्पन्न करता है । वैसे वसन्त की  
सहायता प्राप्त किया हुआ अनौक्षिक महिमावाला कामदेव इस होनहार ससार  
को उत्पन्न करता है । इसीलिये उसे ससाररूप लता को उत्पन्न करनेवाला  
कठिन कन्द कहा गया है । कटाक्ष आँखों का विलास है । वह नेत्रों के प्रान्त  
भागरूप गोद में उत्पन्न होता है । और वहीं विलसित होता है । दन्वे जैसे  
जतनी की गोद में खेलने हैं वैसे आँखों में उत्पन्न होन वाले कटाक्ष अपनी  
जननी आँखों के अपाङ्ग रूप गोद में खेल रहे हैं । अर्थात् कामुह जनों को  
लक्ष्य कर छोड़े गये कामिनियों के कटाक्ष भी उत्कृष्टताशाली हैं ॥ २ ॥ ]

अगाधानःपरिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम् ।  
वन्दे रसान्तरप्रौढं स्नोतः सारस्वतं बह्व् ॥ ३ ॥

अथ यद्वाचि 'तदनु च विजयन्ते वाग्विलामा' इति तद्गुणानेव श्लोकत्रये-  
णाह—अगाधेति ॥ मरस्वती भारती नदीविशेषश्च । तस्या इदं सारस्वतम् । स्रोतः  
प्रवाहं वन्दे नमस्कुर्वे स्तुवे वा । नदीपद्मे प्रवाहस्य तदमत्वाद्य किंचिद् दुर्घटम् ।  
परं भारतीपद्मेऽप्यधर्मस्यान्यत्रारोपलक्षणात्मना गिरां नैरन्तर्येऽपि स्रोतः  
शब्दः । यथा 'उन्मिमील कमलं सरसीना कैरवं च निमिमील मुहूर्तात्' इत्यत्रो-  
न्मीलननिमीलने नेत्रघर्माद्यपि कमलकुमुदपारारोपिते किं कुर्वत् । बह्व्यवर्तमानम् ।  
पद्मे प्रसरत् । तथा अगाधो महापततालध्वन्योऽन्तर्मध्ये प्रकरणम्मनसि परिस्प-  
न्दब्रह्मकारी स्मृतिविशेषो यस्य । पद्मेऽगाधो गर्भारोऽन्तर्मध्ये परि समन्तारस्प-  
न्दबलनमावर्तविशेषो यस्य तथा । विबुधानां देवानां पण्डितानां वा हर्षस्यानम्

भारतीविलासेन हि सुराणामपि प्रमोदाः सपद्यते । पक्षे धीनां पचिणां मध्ये बुधा राजहसास्तेषां हर्षस्थानम् । तथा रसाना शृङ्गारादीनामन्तरेण विशेषेण प्रौढं प्रगढम् । पक्षे रसाया भूमेरन्तरे मध्ये प्रवहति स्म । कर्तारि च । सरस्वती किल म्लेच्छदेशे श्यमभूय तदन्ते पुनरुद्भवतीति लोकश्रुतिः ॥ ३ ॥

सरस्वती नदी पक्ष—अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले, देवताओं के आनन्द के निकेतन रसान्तर ( पृथ्वी के बीच ) में बड़ी प्रगल्भता से बहने वाले सरस्वती नदी के प्रवाह को लभस्कार करता है ।

वाणीपक्ष—हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाले, विद्वानों और देवताओं के हर्षस्थान ( शृङ्गार आदि ) विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध सरस्वती ( वाणी ) के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता है ।

[ सरस्वती नदी देवताओं को अधिक प्रिय है इसका प्रवाह पृथ्वी के भीतर ही है । वह प्रत्यक्ष नहीं है । कहा जाता है कि प्रयाग में सरस्वती और यमुना गंगा से मिलती है । यमुना की धारा तो प्रत्यक्ष है किन्तु सरस्वती परोक्ष रूप में ही मिली हुई है ।

नदीनक्ष के श्लिष्ट शब्द—अगाधान्त परिस्पन्द ( अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले ), विबुधानन्दमन्दिर ( देवताओं के आनन्द-निकेतन ), रसान्तरप्रौढ ( रसा-पृथ्वी-के भीतर प्रौढ ) बहते हुये सारस्वत ( सरस्वती नदी के ) प्रवाह ( धारा ) को प्रणाम करता है ।

वाणीपक्ष—अगाधान्त परिस्पन्द ( हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाला ), विबुधानन्दमन्दिर ( विद्वानों के आनन्द का निकेतन ), रसान्तर-प्रौढ ( शृङ्गार आदि विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध ) सरस्वती के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता है ॥ ३ ॥

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।

भयन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे चाचो गृहे स्त्रियः ॥ ४ ॥

प्रसन्ना इति ॥ कीदरयो वाच । नानानेकधा प्रसन्नाः प्रसाद्गुणोपेताः । शब्द-गुण प्रसाद ओजोमिश्रितशैथिल्यात्मा । अर्धगुणस्तु प्रसादो वैमर्ष्यं क्षतिर्यच्चोप-गोचरत्वम् । तथा च काव्यप्रकाशकारः—'श्रुतिमात्रेण शब्दानां देनार्थप्रत्ययो भवेत् । साधारण समप्राणा स प्रसादो गुणः स्मृतः' ॥ इति । यद्वा प्रसन्ना समासरहिताः उक्तं च—'माधुर्यमभिवाच्यन्तः प्रसाद् च सुमेधसः' । समासवन्ति भूयांसि न पदानि प्रयुज्यते ॥ इति । तथापि कथा कान्तिगुणेन दत्तं मनो बलीकृतं शीले यामाम् । शब्दगुणः कान्तिरौज्यत्वम् । प्राग्वादिभिरनभिप्रयुक्तत्वमिति यावत् । अर्धगुणस्तु कान्तिर्धासस्त्वम् । तथा नाना शब्दगुणार्थगुणार्थालंकारशब्दालंकार-रूप चतुर्विधं श्लेष विशेषेण चक्षते यः । शब्दगुणो मधुरत्व श्लेष । अर्धगुणस्तु श्लेषो घटना । शब्दकृत शब्दालंकारः श्लेष । अर्धकृतस्तु श्लेषोऽर्थालंकारः ।

स्त्रियस्तु प्रसन्नान्मोक्षान्विताः । तथा कामदा वपुषो गुणविशेषेण मनोज्ञाः । तथा  
नानानैकविधे स्पृष्टक-विद्वक-उद्गृष्ट-पांडन लतावेष्टक-वृक्षाधिरुड-विलतगहुल-शीर-  
नीर-उरुपगुड जवनीपरलेप-स्वनाडित्कन-ललाटिक-रूपे द्वादशविध आलिङ्गने विव-  
चना दद्यात् ॥ ४ ॥

वाणीपत्र—प्रसन्न ( प्रसाद गुण से सम्पन्न ), कान्ति गुण के कारण  
मनोहर तथा विभिन्न श्लेषों को प्रकट करने वाली वाणी किसी अचौकिक  
पुष्प से ही मुख में आती है ।

स्त्रीपत्र—प्रसन्न ( पूर्ण प्रमुदित ), कान्ति ( सौन्दर्य ) में मनोहर तथा  
विभिन्न श्लेषों ( आलिङ्गन विधियों ) में प्रवीण स्त्रियाँ किसी अचौकिक  
पुष्प से ही घर में आती हैं ।

[ प्रसन्न, कान्ति और श्लेष शब्द प्रसाद, कान्ति एवं श्लेष गुणों की ओर  
संकेत करते हैं ।

आचार्य वामन के अनुसार प्रसाद ( शब्द ) गुण वहाँ होता है, जहाँ वपु  
की मादता के साथ मिथिलता भी वर्तमान है । मादता और मिथिलता दोनों  
ही विद्वध धर्म हैं । दोनों का एक जगह अवस्थान प्रतिकूल सा लगता है ।  
किन्तु कल्याण रस के नाटकों में जैसे सुख और दुःख का अद्भुत सम्मिश्रण  
होता है वैसे ही प्रसाद गुण में भी जोड़ गुण का मिश्रण रहता है :—

वरुणप्रसर्गाद्येषु सम्मलप सुखदुःखयोः ।

यथाऽनुभवतः सिद्धस्तर्यैवौजःप्रसादयो ॥ का. सू. वृ. ३. १. ६.

प्रसाद ( अर्थ ) गुण वहाँ होता है जिन पद से शीघ्र ही अर्थ-प्रतीति हो  
जाती है ।

कान्ति ( शब्द ) गुण वहाँ होता है जहाँ रचना में उज्ज्वलता ( नवीनता )  
होती है । कान्ति ( अर्थ ) गुण वहाँ होता है जहाँ रस की दीप्ति लक्षित  
होती है ।

श्लेष शब्द गुण और जनद्वार दोनों ओर संकेत कर रहा है । अर्थात्  
शब्द और अर्थ श्लेष गुण एक शब्दरूपालङ्कार तथा अर्थरूपेशालङ्कार ।

इन गुणों तथा अलंकारों से युक्त वाणी किसी ही भाष्यज्ञान के मुख में  
आती है ।

स्त्रीपत्र में कान्ति और प्रसन्न शब्द नानान्यतः 'सौन्दर्य एवं प्रसन्नतापूर्ण'  
अर्थ को ध्यान करते हैं । श्लेष शब्द का आलिङ्गन अर्थ है । आचार्य चण्डिका  
ने बारह प्रकार की आलिङ्गन-विधियों का निर्देश किया है ॥ ४ ॥

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः ।

परस्य हृदये लगनं न घूर्णयति यच्छिउः ॥ ५ ॥

तात्पर्य यह कि विद्वानों के बीच पड़ा हुआ साधारण काव्य भी उनकी आलोचनाप्रवाण प्रतिभा के योग से नवीन-नवीन व्याख्याओं से सम्पन्न होकर उल्लसित हो उठता है ॥ ८ ॥

अत्रिजातस्य या मूर्तिः शशिनः सज्जनस्य च ।

क सा वै रात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥ ९ ॥

आसनां सज्जनदुर्जनयोः सीलेन माग्धम् । यावन्मूर्त्यापि महदभ्रतरमिति निरूप-  
यन्नाह—अत्रोनि ॥ अत्रिमुनिज्ञानस्य शशाङ्कस्य न त्रिभिर्जातस्य सज्जनस्य च या  
मूर्तिः सर्वाभीष्टा सा वै स्कृष्टं रात्रिज्ञानस्य नमपत्रिजातस्य दुर्जनस्य च क । यतो  
दुर्जनस्य वैरा वैर प्रधाना । सज्जनस्य स्ववैरा ॥ ९ ॥

अत्रि ऋषि से उत्पन्न होने वाले ( अत्रिजात ) चन्द्रमा यथा नील से न  
उत्पन्न होने वाले (अ + त्रिजात) सज्जन को ( प्रसन्न एव कल्याणमयी ) मूर्ति  
कहा और रात्रि से उत्पन्न होने वाले ( रात्रिजात ) अन्धकार तथा वैरप्रधान  
( वैरा ) एव नील से जन्म लेने वाले ( त्रिजात ) दुर्जन को ( अपङ्गलपयी )  
मूर्ति कहा ?

[ चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि से है इसीलिए उन्हें अत्रिजात कहा जाता है ।  
सज्जन भी अत्रिजात हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति वैध पिता से ही हुई रहती है ।  
किमी तीसरे व्यक्ति अर्थात् जार मे उनकी उत्पत्ति नहीं होती । तात्पर्य यह कि  
वे वर्णसङ्कर नहीं होते ।

अन्धकार और दुर्जन दोनों ही वै रात्रिजात होने हैं । अन्धकार वै + रात्रि-  
जात ( त्रिभिर्जात रूप से रात्रिद्वारा उत्पन्न ) होना है । दुर्जन की मूर्ति वैरा  
( वैर प्रधान ) और त्रिजात ( नील से उत्पन्न ) होनी है । सज्जन और दुर्जन मे  
उतना ही अन्तर है जितना प्रकाश और अन्धकार मे । सज्जन और दुर्जन मे  
स्वरूपान् महान् भेद हुआ करना है । गुण मे कितना भेद होना है, यह कल्पना-  
तीत बात है ॥ ९ ॥ ]

निश्चितं ससुरः कोऽपि न कुलीनः समेऽमतिः ।

सर्वथासुरसंघदं काव्यं यो नाभिनन्दति ॥ १० ॥

निश्चितमिति ॥ सुष्ठु रसा शृङ्गारादयो यत्र तथा बद्ध रचितं काव्यं ग्रन्थं यो  
नाभिनन्दति स निश्चित भ्रष्टं ससुरां मद्य कोऽपि । न च कुलीनः नाभिजातः ।  
सर्वथा समे सावाचमति । अमुरैः मयद्ध मिलिते काव्ये भृशु ( ? ) यो न नन्दति  
स सुर देव कोऽपि । तथा न को भूषणी स्त्रीत आरिच्छत् स्वर्ग एव तस्यावस्थानात् ।  
तथा सा लक्ष्मी इः काम, तामसा सहिनः समेर्विष्णुस्तत्र मेवताय मनिर्यस्य ।  
विष्णुपत्नी इति भावः ॥ १० ॥

काव्यपक्ष—सुन्दर ( शृङ्गारादि ) रसों से युक्त काव्यव्यंग्य ( काव्य-रचना ) का अभिनन्दन जो आदमी नहीं करता है वह निश्चय ही अनुनीन, मद्यप तथा मज्जन से स्नेह नहीं रखता है ।

भ्रूणरस—जो सर्वदा अनुरो से सम्बद्ध काव्य ( कविपुत्र भृगुमुनि ) से सम्बन्ध नहीं रखता है वह निश्चय ही कोई सुर ( देवता ) है । वह कु ( पृथ्वी ) में लीन नहीं रहता तथा मा ( लक्ष्मी ) और ई ( कामदेव प्रद्युम्न ) के साथ रहने वाले विष्णु में मति ( विश्राम ) रखता है ।

[ काव्यपक्ष—सुररस—सुन्दर रसों में सम्पन्न, बद्ध—निर्मित । सुर—सुरा रखने वाला या सुरा पीन बाना । काव्य—कवि ( शुक्राचार्य ) का पुत्र भृगुमुनि । शुक्राचार्य दानवों के गुरु थे । भृगु उनके योग्य पुत्र (?) थे । अनुरो से संबंधा सम्बद्ध रहने वाले भृगुमुनि का अभिनन्दन दूर लोग नहीं करते हैं । देव लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते । कु ( पृथ्वी ) में लीन नहीं रहते हैं । लक्ष्मी तथा प्रद्युम्न सहित भगवान् विष्णु में ध्यान लगाये रहते हैं ॥ १० ॥

सदृश्यापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ।

नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणो कथा ॥ ११ ॥

समिति वाग्विद्यासाधारानुदारात्वात्मीकिप्रभृतीन्कतिचिरकवीन्वर्णयन्नाह—सदृश्यापि ॥ अपिर्विरोधे । स स दूषणवरमोर्दोषार्थकठिनार्थकत्वे भवेत् । परिहारस्तु दूषणाखरी राक्षसौ यत्र वर्गितौ । इहानुक्तेऽपि वात्मीकिं प्रतीयते । 'प्रौढचित्तोपेग-योगाद्दिदोष्यप्रतिपत्तिः' इति बचनान् । किं चामौ भगवान्मन्यलोके काव्यसृष्टि-प्रथमवेधा निरुहरमरमणीयकरामायणनिर्मागप्रवीणतयैव निर्दिश्यमानः प्रकृष्यते । न चितरसाधारणसज्ञामात्रनिर्देशीन । अत एव कवितोरकृषणमाकृतेन काव्यममांष्टिं प्रतीचिनुमसमेग चिक्रमेग वाक्यगर्भेऽपि तस्मै नमः इति मक्तिप्रकर्षप्रकाशन-सुक्तम् । अर्थयोग्यादासपाठे तु गर्भितदोषशकैव न श्यात् ॥ ११ ॥

दूषणयुक्त होने पर भी निर्दोष, खर ( रक्ष ) होने पर भी कोमल रमणीय रामायण की कथा त्रिमने बनायी उन ( महाकवि वात्मीकि ) की प्रशाम है ।

[ दूषण और खर शब्द आपातत विरोध की प्रतीति कराते हैं । परिहार पक्ष में तो खर और दूषण मन्त्र में खर और दूषण नामक राक्षसों से तात्पर्य है । विभिन्न राक्षसों के उग्रनामम्यन्त एवम् अनौचित्य-प्रत्यय चरित्रों की चित्रित करने हुए भी काव्य की रमणीयता त्रिमने कवि ने सुरक्षित रखी वह निश्चय अभिनन्दनीय है ॥ ११ ॥

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो वन्द्यः स सिमयानिय ।

सृष्टा मौरीदृशी येन भये विस्तारिमारता ॥ १२ ॥

व्यास इति ॥ स कृष्णद्वैपायनो बन्ध । किंभूत । शान्तानां मध्येऽतिशयेन प्रदास्यः । तथा येनेदृशी सर्वत्र विदधात । विस्तरणशीलं भारनं यस्यां सा भवे संसारे गौर्वाणसृष्टा । क इव । हिमवानिव । किंभूतः स । चामाभूतां भूमृतां श्रेष्ठः । तथा येन भवे शिवे रतानुरक्षैवमृता गौरी सृष्टा । किंभूता । विस्तारिणी भा कान्तिर्यस्याः ॥ १२ ॥

व्यासपक्ष—क्षमाशील व्यक्तियो में श्रेष्ठ महर्षि व्यास हिमालय की तरह वन्दनीय है, जिन्होंने मत्सर में विनाश भारत ( महाभारत ) रूप वाणी की रचना की ।

हिमालयपक्ष—पर्वतो में श्रेष्ठ हिमालय वन्दनीय है, जिसने ऐसी विकसनशील कान्ति वाली गौरी का निर्माण किया जो भगवान् शंकर में अनुरक्त है ।

[ व्यासपक्ष—क्षमाभूताम् + श्रेष्ठ—पर्वतो में श्रेष्ठ । गौरीदृशी—गौ + ईदृशी—इस तरह की वाणी । भवे—मत्सर में । विस्तारिभारता—विशाल भारत की रचना जिस वाणी में हुई वह वाणी ।

हिमालयपक्ष—क्षमाभूता श्रेष्ठ—पर्वतो में श्रेष्ठ । विस्तारिभा—विकसन कान्तिवाली । गौरीदृशी—ईदृशी गौरी—इस तरह की गौरी । भवे—शंकर भगवान् में । रता—अनुरक्त है ॥ १२ ॥

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तरुष्णार्जुनविलोचना ।

करोति कस्य नाह्लादं कथा कान्तेव भारती ॥ १३ ॥

वर्णति ॥ कर्णस्य राधेयस्यान्ते विनाशे सति विभ्रमेण विस्मयेन वेगं हृदस्य भ्रमेण वाऽनिटाघवेन भ्रान्ता विचरितु प्रवृत्ता कृष्णपार्यंघनराष्ट्रा यस्याम् । केव । कान्तेव । किंभूता । भ्रवणपर्यन्ते विलासेन भ्रान्ते स्फुरिते कृष्णार्जुने श्यामबलसे विलोचने नेत्रे यस्या ॥ १३ ॥

भारतीकथापक्ष—( कुन्तीपुत्र ) कर्ण का अन्त ( मृत्यु ) हो जाने पर विस्मय के कारण चल कृष्ण और अर्जुन के नेत्रों का वर्णन जिसमें किया गया है वह कान्तासदृश भारती ( महाभारत की ) कथा किसको आनन्दित नहीं करती ?

कान्तापक्ष—( बटाक्ष आदि ) विलास में चल एव कान्तों तक फँसे हुए कृष्ण ( नीली कनीनिकाओं ) और अर्जुन ( सफ़ेद भागयुक्त ) नेत्रों वाली कान्ता किसे नहीं आनन्द देती ?

[ महाभारत की कथा कान्ता की तरह आनन्द उत्पन्न करती है । इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरण कान्ता और कथा दोनों पक्ष में लगते हैं । शाब्दी समानता के ही आधार पर यहाँ उपमा दी गयी है ॥ १३ ॥ ]



शश्वद्रापद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।

धनुषेय गुणादनेन निःशेषो रञ्जितो जनः ॥ १४ ॥

इति ॥ वागं कविं शरश्च । गुणाद्व्यकविवृद्धक्याकारो गुणेन उपया युक्तरच । न मदाकारं स्तम्भरवारिरूपं धरतीरेवशीलः कविः । वाग्वर्षगाय न मदाकारं धरती-देशशीलं धनुः । रञ्जितं प्रमोदं प्रापितं । अरमत्यर्थं विजितो जनः प्रविशदलोकरच ॥ १४ ॥

कुण्डल (मदाकार) को न धारण करने वाले (महाकवि) वाग को भी सदा द्वितीय स्थान देने वाले ( कविवर ) गुणादने न सब लोगों को रञ्जित ( अनुरञ्जित ) किया-जने ।

धनुषरश्च—सदा वाग को अपन साथ रखने वाले, नमिन हृदं आहृति (नमदाकार) धारण करने वाले, गुण (प्रत्यवा) में आहृष ( मजदून ) धनुष सम्पूर्ण प्रविशदलोको को पूर्ण रूप से जीत लेना ( अरम् + जित ) है ।

[ मर मिथिलना ना देना है । विवेक शक्ति कुण्डित हो चली है, लेकिन महाकवि गुणादने इस दुर्गम से दूर है । महाकवि वाग जैसा यशस्वी कवि भी जिनके सम्मुख द्वितीय स्थान प्राप्त करना है, उनसे अपनी कृत्क्या से सब लोगों को अनुरञ्जित किया है । धनुष केवल शब्दगत न्मानता के आधार पर गुणादने का न्मान देना है ।

धनुष सदा वाग द्वितीय ( वाग के साथ रहना ) है, नमदाकारधारी ( नमिन हृदं आहृति को धारण करता ) है और वह गुणादने ( गुण—प्रत्यवा के कारण आहृष—मजदून ) है ।

निःशेषो रञ्जितो जनः—का अन्वय धनुषरश्च न निःशेष-जन अरम्-जित—करना चाहिये । अरम् शब्द का प्रयोग यहाँ परोक्ष अर्थ में हुआ है । कवि गुणादनेपक्ष में निःशेषो और रञ्जित के बीच में खण्डाकार ( ऽ ) नहीं है । अर्थात् वह कवि सब लोगों का अनुरञ्जन करता है ॥ १४ ॥ ]

इत्थं काव्यकथाकथानकरसैरेषां कशीनाममी

विद्वांसः परिपूर्णकर्षहृदयाः कुम्भाः पयोमिरिया ।

वाचो वाच्यविवेकविद्भवधियामीदृग्विधा मादशां

लक्ष्यन्ते क विलावकाशमथवा सर्वसदाः सूरयः ॥ १५ ॥

इत्थं कविवर्णनं संक्षिप्तमाह इत्थंमिति ॥ तर्हि क्याप्रथमप्रयत्नेन किमिष्याह—भववेति ॥ १५ ॥

इस तरह इन (महाकवियों) की काव्य-कथा एवम् आख्यानों के रम से इन ( समनामिक ) विद्वानों के ज्ञान तथा हृदय दूष से भरे घड़े की तरह

भर चुके हैं। ( ऐसी स्थिति में ) वक्तव्य वस्तु के उपस्थापन में विवेकशून्य बुद्धिवाले मेरे जैसे लोगो की इस तरह की तुच्छ वाणी वहाँ स्थान पा सकेगी ? ( फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं है क्योंकि ) विद्वान् सबका समादर करने हैं ॥ १५ ॥

वाच काटिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः ।

नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥ १६ ॥

भङ्गश्लेषमुक्तिविशेषेण सद्गुणवन्नाह—वाच इति ॥ यतो हेतो कवे काव्यकर्तु-  
र्नैको रसो नैका रुचिः प्रसत्तिलक्षणा श्युस्पत्तिलक्षणाप्यस्ति ॥ १६ ॥

विशेषतः सभङ्ग श्लेष में वाणी कठिन हो जाती है ( फिर भी ) उसमें उद्विग्न नहीं होना चाहिये क्योंकि कवि के लिये एक ही रस नहीं है ।

[ श्री त्रिविक्रम भट्ट जैसे कवि को श्लिष्ट काव्य-निर्माण में ही रसानुभूति  
होती है ॥ १६ ॥ ]

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च ।

बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥ १७ ॥

ननु प्रसत्तिमार्गेण कोमलमेव काव्य निबद्धवताम्, किमितरेण श्युस्पत्तिमार्गेण  
भङ्गश्लेषकृतकाटिन्येनोद्वेगहेतुनेत्यत आह—काव्यस्येति ॥ कोमलस्य प्रसन्नस्येतरस्य  
श्युस्पन्नस्य काव्यस्य रचनाचाहत्वेन रसोऽपि शृङ्गारादिरसोऽप्यन्यादृशोऽन्यरूपो  
श्युस्पत्तिचर्यया सोत्कर्षं ह्यवस्थात् । कस्येव । आम्रफलस्येव । यथाप्रफलस्याकार-  
वैसादस्य बन्धस्य वृन्तस्य नीलपीतादिच्छायायाश्च विशेषेण यावद्रसः सस्वादोऽ-  
प्यन्यादृशमवति । बन्धतेऽनेनेति कृत्वा बन्धो वृन्त फलारम्भकरसकणिकारूपो वा ।  
काव्यपक्षे बन्धो रचना ॥ १७ ॥

आम्रफल की तरह प्रसादगुणसम्पन्न कोमल काव्य तथा उसमें भिन्न  
श्लिष्ट काव्य के रस में रचना-चानुरी के वैशिष्ट्य से अन्तर आ ही जाता है ।

[ प्रसाद गुण युक्त सरल वाक्यों में अभिव्यक्त होने वाले रस में और  
श्लिष्ट वाक्यों से व्यक्त होने वाले रस में पदमधटनामूलक ( बन्धच्छाया के )  
विचित्रता के कारण अन्तर पड़ जाता है । आम के फल को तोड़ कर पकने के  
लिये भूमा में रख कर कमरे में बन्द कर देने हैं तो उसका रस अत्यन्त मधुर  
हो जाता है । यदि उसी तरह के आम को खुली जगह में रख दें तो उसका  
स्वरूप तो दर्गव के सामने दूमेगा रहेगा और कालक्रम से हवा एवं धूप के  
साधारण मन्थन से वह पत्र भी जापगा लेकिन उसका रस वैसा नहीं होगा  
जैसा भूमा आदि में बन्द कर पकाये गये आम का । ]

प्रौढ रचना के आवरण में आवृत्त काव्य का रस परिपक्व हो जाता है । अतएव उसकी माधुरी भी बट जाती है । प्रमादयुक्त रचना से स्पृष्टता के कारण विद्वान् सहृदय के लिये आकर्षक रसमम्पत्ति नहीं रहती ॥ १७ ॥

अस्ति समस्तमुनिमनुजवृन्दवृन्दारकचन्दनीयपादार्यचिन्दस्य भगवतो विवेचिभ्वध्यापिव्यापात्पारथस्यादधतीर्णस्य संसारचक्रे क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डिल्यनाम्नो महर्षेर्वशः ।

समस्त मुनियो एव मानव-समूहों के श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा चन्दनीय चरण कमल वाले, भगवान् ब्रह्मा के विन्ध्यपि व्यापार की परबलता से इस संसारचक्र में बाधे हुए, यज्ञ कर्म न निगान महर्षि शाण्डिल्य का वश है ।

[ ब्रह्मा अपने व्यापार का विषय सबको बना देते हैं । भगवान् नारायण को भी राम-कृष्ण-वामन आदि अवतार धारण करना पड़ता है और इस संसारचक्र में बाना होता है । इसी तरह महर्षि शाण्डिल्य भी अलौकिकशक्तिमन्पन्न देवगोटि के प्राणी थे किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें भी अपने व्यापार का विषय बना ही दिया । अतएव इस ममार में उन्हें जाना पड़ा ॥ ]

श्रूयन्ते च यत्र श्रवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव केचिदनुचानाः शुचयः सत्यवाचो विरञ्चिवर्चसोऽर्चनीयाचारा ब्रह्मविदो ब्राह्मणाः । पुण्यजनाश्च न च ये लङ्कापुरुषाः, ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः, प्रसिद्धाश्च न च ये लम्गाकाः, कामवर्षाश्च न च ये लहनाः सन्मार्गम्य, नववयसोऽपि न च ये लम्बालकाः, महाभारतिकाश्च न च ये रङ्गोपजीविनः, सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयान्विताः ।

श्रूयन्त इति ॥ यत्र महर्षेर्वश इदंशा ब्राह्मणाः श्रूयन्त इत्यन्वयः । कीदृशा । श्रवण आकर्णन उचिता योग्याः पुण्यरूपत्वात् । चन्दनपल्लवास्तु श्रवणयोः कर्णपोरवतंसीकरणाय योग्याः । पुण्यजना यातुधाना लङ्कावासिनो नेति विरोधः । पुण्याः पवित्रा जना लोका अलमस्यर्षं न कापुरुषा इति विरोधपरिहारेण ब्राह्मणाः प्रशस्यन्ते । एवमप्रेऽपि । तथा सूत्रेण तन्तुना सहिता अप्यत्यन्तं पटाभावन्त । सूत्रेणोपवीतेन वेदपाठेन वा युक्ता अपि न लम्पटा लालसा । तथा प्रकर्षेण सिद्धा अग्निर्मंकारे निष्ठा प्राप्ता अपि पूषाघास्ते कथमलं न पश्यन्ते स्म । प्रसिद्धा विख्याता न लम्गाका लम्पटाः । तथा कामवर्षिणोऽपि नालं मेधाः । अमिलपित्तदानारोऽपि सन्मार्गस्य लहना न । तथावरावस्था अपि नालं शिष्यवः । तद्गणत्वम्या अपि न दीर्घकेशाः । अग्निहोत्रिचात् । तथा महान्तो नटा अपि न नृत्यभूषणुपजीविनः । महान्तो भारताख्यायका अपि नारयर्षं गोपान्पूषाऽजीवन्ति । 'राजान्मं तेज आदत्ते' इति द्रौपद्यवणात् । तथा भुक्तदेवाङ्गना अपि न रम्भया युता । सेवितात्रि जलप्रधानानि सराणि यैस्तथाविधा अपि न च येऽरमस्यर्षमयान्विताः ॥

उस महर्षि वंश में कानों में चन्दनपल्लव सदृश प्रिय लगने वाले, विद्वान् (अनूषान), पवित्र, सत्यवादी, ब्रह्मज्ञान से युक्त, अभिनन्दनीय आचरण वाले, कुछ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण मुने जाते हैं। वे पुण्यजन हैं, व्यर्थ के कायर नहीं हैं। यज्ञोपवीत महित हैं, लम्पट नहीं हैं। प्रसिद्ध हैं, लम्पाक (घूर्त) नहीं हैं। समस्त कामनाओं को देने वाले हैं, उचित मार्ग का अतिक्रमण करने वाले नहीं हैं। तरुण अवस्था के हैं लेकिन उनके बाल लम्बे-लम्बे नहीं हैं। विशाल भारत के निवासी हैं किन्तु वहाँ महान राजा (गोपबल्लक) से कुछ नहीं सेते। जलपूर्ण सरोवर से स्नान करते हैं, डरते नहीं हैं।

[ इस अनुच्छेद में सभ्य श्लेष देखने में ही चमत्कार है।

पुण्यजन ( राक्षस ) होते हुए भी लकानिवासी नहीं हैं। विरोध।

वे पुण्य जन ( पवित्र पुरुष ) हैं और अल ( व्यर्थ के ) कापुरुष ( कायर पुरुष ) नहीं हैं। परिहार।

आचार्य चण्डपाल ने अल का "पर्याप्त" अर्थ किया है। इस अर्थ में आपत्ति यह दीखती है कि वाक्य का अर्थ होगा—पर्याप्त या अत्यधिक कायर नहीं है। अर्थात् 'कुछ कायरता तो है ही। अतः यह अर्थ प्रशंसा के बदले निन्दा की ओर संकेत करने लगता है, जो कि कवि का विवक्षित नहीं है।

समूत्र ( तन्तुयुक्त ) है किन्तु उनके पास पर्याप्त ( अलम् ) पट ( वस्त्र ) नहीं। सूत्र से ही वस्त्र बनता है। सूत्र होते हुए भी उन्हे वस्त्र का अभाव है। विरोध।

समूत्र ( यज्ञोपवीत तथा कटिमूत्रयुक्त ) है किन्तु लम्पट ( घूर्त ) नहीं है। इस पक्ष में वे और लम्पट के बीच खण्डाकार ( S ) की कल्पना नहीं करनी चाहिये। परिहार।

प्र + मिड ( पूर्ण रूप में पक कर सिद्ध ) हो जाने पर भी बन ( पूर्ण रूप से ) पाक नहीं ही पाया है। विरोध।

प्रसिद्ध ( विख्यात ) है किन्तु लम्पाक ( घूर्त ) नहीं है। परिहार।

कामवर्ष ( मयेच्छ वरसने वाले ) है किन्तु अलघन ( पर्याप्त वादल ) नहीं है। विरोध।

कामवर्ष ( कामनाओं को देने वाले ) है किन्तु (उत्तम मार्गों का) लङ्घन करनेवाले नहीं है। परिहार।

नववयस्—प्रारम्भिक अवस्था वाले हैं किन्तु सम्बालक ( लम्बे-लम्बे बालो वाले ) नहीं हैं। तरुण अवस्था में सुन्दरता के लिए लम्बे-लम्बे बाल

होने चाहिये थे । अथवा नवीन अवस्था है फिर भी लोग जल-बालक ( पूर्ण गिम् ) नहीं हैं । विरोध ।

अग्निहोत्री ब्राह्मण है, अतः हमें वातों को छिनवा दिना करत है । इतीन्द्र उनके बाल लम्ब लम्बे नहीं हैं । परिहार ।

महाभारतिक ( प्रसिद्ध नट ) हैं फिर भी रङ्गोपजीवी ( रङ्गनच से जीविका खाने वाले ) नहीं हैं । विरोध ।

महाभारतिक ( विगात भारत के रहनवाले ) हैं किन्तु अरम् + गोपजीवी ( पूर्णतः राजा से जीविका ग्रहण करने वाले ) नहीं हैं । गो गन्ध का पृथ्वी अर्थ है, उसका पाहन करने वाले राजा की गोप कहत हैं । राजा का अतः तेव शीघ्र सेना है । इतीन्द्रिये तेजस्वी ब्राह्मण राजा की दक्षिणा नहीं लेत । परिहार ।

सेविताप्सरस ( देवरनयियों का उपभोग करने ) हैं किन्तु रम्भयाऽन्वित ( रम्भा नामक मुख्य अप्सरा से उनके सम्पर्क ) नहीं हैं । विरोध ।

सेविताप्सरस ( जल सरोवरों का सेवन करने वाले ) हैं किन्तु अरम् + भवा-न्वित ( व्यर्थ के भय से मुक्त ) नहीं हैं । अर्थात् तपस्या के लक्ष्य से निर्भीकता-पूर्वक जलसमाधि लेने हैं । छटी लगने का भय उन्हें नहीं रहता । परिहार । ]

किं बहुना ।

जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा एव तादृशाम् ।

वेत्ति विश्वंमरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम् ॥ १८ ॥

अधिक कहने से क्या—बैस लोगों के गुणों का विखंवन उन्हीं के सद्गुण लोग कर सकते हैं, सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी ही पर्वतों के सम्भारतामूलक भार को जानती है ॥ १८ ॥

तेषां वंशे विशदयसां शीघरस्यात्मजोऽमृद्-

देवादित्यः स्वमतिविकसद्वेदविद्याविवेकः ।

उत्कल्लोलां दिशि दिशि जनाः कीर्तिपीयूषसिन्धुं

यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कृपिताक्षाः पिबन्ति ॥ १९ ॥

देवानिति । ऋगित्राद्याः सुवाक्किंचिन्निर्मोलितनेत्रा ॥ १९ ॥

उन्हीं निर्मल बाल ब्राह्मणों के वंश में शीघर जी के लडके देवादित्य हुए । अपनी प्रतिभा से ( ही ) वे वेद विद्या के सम्बन्ध में विशेषज्ञता प्राप्त कर चुके थे । उनके उनहने हुए कीर्तिमुषासागर को लोग आज भी प्रत्येक दिशा में आनन्द के मारे आँखा को निर्मोलित कर श्रवणरूपी अन्त्रलि से पी रहे हैं ॥ १९ ॥

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम् ।

तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ॥ २० ॥

अपने उन-उन अलौकिक गुणों के कारण तीनो लोको में जो तिलक सदृश थे, उन्हीं में समस्त जडताओं का पात्र मैं त्रिविक्रम जन्मा हूँ ॥ २० ॥

सोऽहं हंसायितुं मोहाद् बकः पङ्कुर्यथेच्छति ।

मन्दधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम् ॥ २१ ॥

सोऽस्मिति ॥ मोहादज्ञानाद्गतिमानपि बक स्वभावसुभगगतेहंसस्यापेक्षया पङ्कु अथवा दैवाकर्यंचिद्गमचरणत्वाद्बकः पङ्कु ॥ २१ ॥

जैसे कोई लंगडा बगुला हम बनना चाहता है वैसे ही मन्दबुद्धि में कवियों में मुख्य बनना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

भङ्गश्लेषकथाबन्धं दुष्करं कुर्वता मया ।

दुर्गस्तरीतुमारब्धो बाहुभ्यामम्भसां पतिः ॥ २२ ॥

भङ्गति ॥ यथा बाहुभ्यां दुस्तरः समुद्रगतथा भङ्गरश्लेषकथाबन्धोऽपि दुष्कर इत्यौपरयाद्भक्तुमंबन्धः । 'अभबन्वस्तुमंबन्ध इपमा परिकल्पकः' इति ॥ २२ ॥

भङ्गश्लेषयुक्त एक अत्यन्त कठिन ( दुष्कर ) कथाग्रन्थ की रचना करने जा रहा हूँ। यह मेरी इच्छा हाथ से अगाध एव दुस्तर सागर तैरने (के साहस) की तरह है ॥ २२ ॥

उत्कुल्लगल्लैरालापाः क्रियन्ते दुर्मुखैः सुखम् ।

जानाति हि पुनः सम्यक्विरेव कवेः श्रमम् ॥ २३ ॥

उत्कुल्लैति ॥ दुष्टमुखैः क्रियमाणत्वाद्दालापा अपि दुष्टा निन्दाकरा । 'उल्लापाः' इति पाठे काकुभाषितानि । दुर्मुखैः स्वैर क्रियन्ते । गल्लगन्दो प्राग्भ्योऽप्यत्र दुर्मुखा- नामकवीनां प्राग्भाषाणां निन्दाभिधाने प्रयुक्तः समुचित एव ॥ २३ ॥

निन्दा करने वाले (दुर्मुख) लोग बड़े सुख के साथ गला फाड़कर (दूसरों पर कटु) व्यङ्ग्य कसा करते हैं किन्तु कवि के (सराहनीय) श्रम को अच्छी तरह कवि ही समझ सकता है ॥ २३ ॥

संगता सुरस्मार्थेन रम्या मेरुचिराश्रया ।

मन्दनोद्यानमालेय स्वस्थैरालोक्यतां कथा ॥ २४ ॥

संगतेति ॥ रुचिरो रम्य आश्रयो मलोपाख्यानलक्ष्णो परयाः सेय मम स्वर्धैर-व्यग्रैरालोक्यतां विमूरपताम् । स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सञ्चरन्ति । किंभूता । शोभनो रस शृङ्गारादियंत्र तयोक्तेनार्थेन संगतोचिता । औचित्यं हि रसस्य परमरहस्यम् । उक्तं च—'जनौचित्यास्ते नान्यद्रसमङ्गस्य कारणम् । प्रसिद्धौचित्यबन्धो हि रस-स्योपनिषत्परा ॥' तथा रम्या भङ्गरश्लेषोक्तिभिर्मनोहरा । पद्ये स्वः स्वर्गं तिष्ठन्तीति कृत्वा स्वस्थे भर्गवासिभिः ॥ 'सर्वे शरि वा विसर्गलोपः' ॥ किंभूता । सुरार्णो साधो धृन्दं तेन संगता हृतसद्मा । तथा मेरुः सुरगिरिश्चिरमाश्रयो परयाः ॥ २४ ॥

सुन्दर ( शृङ्गार आदि ) रसमय कथों के कारण औचित्यसम्पन्न मनोहर ( नन्दनमयणी वा ) कथा पर आधारित नन्दनवनपत्तिमद्गुण मरी रस रमणीय कथा को सुस्थिर चित्तवाला लोग देखें ।

नन्दनवन पत्र — इन्द्र के विहार वन का नाम नन्दनवन है । नन्दनवन माला सुर + माय ( देव समूह ) म मग्न युक्त है । वह रमणीय एवं मह- चिराश्रया ( मध्यवत पर चिरवाला से स्थित ) है । स्वस्थ ( स्वगस्थित नाग ) द्वारा दधी जाती है ।

कथा पत्र — सुरस + मय ( शृङ्गार आदि सुन्दर रसमय कथों ) के सान ( औचित्य-सम्पन्न ) मरी रमणीय कथा को स्वस्थ ( सुस्थिर चित्तवाला ) नाग विचारपूर्वक देख ॥ २४ ॥

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्ता ।

चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥ २५ ॥

हृदात्ति । उदात्तेन महात्मना नायकेन बलेनोपेता । तथोक्तप्रसादादिगुणयुक्त वृत्त छन्दोबद्ध मुक्तक गद्यात्मक च यस्या सा चम्पूगंधयद्यमयी साहोदर्या कथे दात्तेन महात्मना नायकेन हारमध्यरत्नेनापेता । तथा तन्तुमयौ वृत्तमुक्ता वर्तुलमौक्तिकानि यस्या सा मुक्ताहारलता च केन चित्ते बन्धति च न क्रियते ॥ २५ ॥

चम्पू पत्र — उदात्तनामकापता ( धीरोदात्त नायक से युक्त ) गुणवद् + वृत्त मुक्तका ( प्रसाद ओज माधुर्य आदि गुणों से युक्त ) गद्यपद्यात्मक चम्पू ।

उदात्त नायक से युक्त, ( प्रसाद, ओज, माधुर्य आदि ) गुणा न समन्वित पद्य तथा गद्य से युक्त चम्पू और उज्ज्वल मध्यमणिवाली सूत्र म प्रयित हार- लता को कौन नहीं हृदय से लगाता ।

हारलता पत्र — उदात्तनायकोपेता-उज्ज्वल और मध्यमणि से युक्त गुणवद्वृत्तमुक्ता-तत्तु म विरोधी हुई मोतीवाली हारलता को कौन नहीं हृदय से लगाता ॥ २५ ॥

अस्ति समस्तविद्यमरामोगमास्त्रहृत्प्रामर्श्यायमान समान सेव्यतया नाकलोकस्य, प्राम्यकविस्थारन्ध इव नीरसस्यमनोहर, भीम इव भारतालकारमृत, कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इवाप्रणी. सर्व- विषयाणाम् । अनधीतध्याकरण इवाहप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्ण- विकारः पशुपति जटायन्ध इव विकसितकनककमलकुवलयोच्छलित- रज पुञ्जपिञ्जरितहेसावतंसया प्रचुरचलच्चकोरचक्रयाककारणहव- मण्डलीमण्डिततीरया भगीरथभूपालकीतिपताकया स्वर्गगमनसोपान थीर्यायमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलै. प्लावितश्चन्द्रमागा- लंहृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारचक्रस्य, शरण्य पुण्यकारिणाम्,

आरामो रामायणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आरुपदं संपदाम्,  
आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम्, आचार्यभवनमार्य-  
मर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः ॥

अस्तीति । 'आ समुद्रात्तु चै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात् । तयोरेवान्तर तिर्यो-  
रायावर्तं विदुर्बुधा ॥' इति मनुकलक्षण आर्यावर्तो नाम प्रसिद्धो देशोऽस्ति ।  
किंमूल । नीरेण धान्येन च मनोज्ञ । पक्षेऽस्तिकस्य मनोज्ञ । तथा भारतवर्षस्य  
मण्डनभूत । पक्षे भारतस्येतिहामस्य । तथा विषयो देशः । पक्षे इन्द्रियार्थं । तथा  
न दृष्टः प्रकृतीना निपातः स्वपदास्पतनम्, उपसर्गो धनापहारादिरुपद्रवः, लोपो  
देवदायवद्वहायाघपालनम्, वर्णविकारश्चातुर्वर्ण्यस्यवस्था यस्मिन् । पक्षे प्रकृतयो  
घात्वाद्य, निपाताश्चाद्य' उपसर्गां प्राद्य लोपः प्रमत्तस्याश्ननम्, वर्ण-  
विकारोऽन्तरविकृति' । तथा चन्द्रभागया नद्या चन्द्रमण्डलेन च भूपितैकदेश ॥

आर्यों की प्रतिष्ठा के अनुकूल उपदेशों का भव्य भवन आर्यावर्त नामक  
देश है । वह समस्त भूमण्डल में चमकते हुए तिलक सदृश है । स्वर्ग लोक की  
तरह सेवनीय है । ग्राम्य ( साधारण ) कवियों के कथा-ग्रन्थ जैसे नीरस  
( अरमिक ) लोगो के लिये मनोहर होता है वैसे वह भी नीर ( जल ) और  
सस्य ( अन्न ) में मनोहर है । भीम जैसे भारत ( महाभारत ) काव्य के  
अलङ्कार हैं वैसे वह भारत देश का अलङ्कार है । रमणी का स्तन स्पर्श जैसे  
सभी ( भोग्य ) विषयो में अग्रणी ( मुख्य ) है वैसे यह भी सभी विषयो ( देशो )  
में मुख्य है । जैसे जो लोग ध्याकरण शास्त्र नहीं पढ़ते उन्हें प्रकृति, निपात,  
उपसर्ग, लोप तथा वर्णगत विकारों का ज्ञान नहीं रहता है वैसे ही यहाँ प्रकृति  
( प्रजा ) का निपात ( पतन ), उपसर्ग ( उपद्रव ), वेद-विहित नियमों का लोप  
एव चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में कोई विकार नहीं देखा जाता । भगवान् शङ्कर का  
जटावन्धन जैसे एक अक्ष में चन्द्रभाग ( चन्द्रखण्ड ) में अनवृत्त है तथा ऐसी  
पुण्यसलिला गङ्गा द्वारा नहलाया गया है जिसमें खिने हुए पीत एक नील  
कमलों के झरने हुए परागपुञ्ज से ( रग जाने के कारण ) केशरिया रगवाले  
हम अलङ्कारमदृश प्रतीत हो रहे हैं । पर्याप्त मात्रा में विचरती हुई चकोर,  
हंस, चक्रवाक और कारण्डव-मत्तक पक्षियों की मण्डली से उस ( गंगा ) का  
सटीयभाग अलङ्कृत हो गया है । वह ( गंगा ) राजा भगीरथ की कीर्ति-पताका  
है । उसकी जगडानी तरफें स्वर्ग जानवाली सीढ़ियों की गलियों की तरह  
प्रतीत होनी हैं, वैसे ही हम ( आर्यावर्त का भी ) एक अक्ष चन्द्रभागा नदी से  
अलङ्कृत है और गङ्गा के पवित्र जल से आप्लावित है । सम्पूर्ण भूमण्डल का  
एक तत्त्वभूत अक्ष है । पवित्र कार्य करने वालों का शरण है । मनोहर बदली-  
वनो का उपवन है । धर्म की भूमि है । सम्पत्तियों का स्थान है । मङ्गलों का  
निवेदन है । सज्जनों के व्यवहाररूप रत्नों की निधि है ॥



यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिष्यतिकराः पुरुषा-  
युपजीविन्यः सकलसंसारसुखमाजः प्रजाः । तथाहि । कुष्ठयोगी गान्धि-  
कापणेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, संनिपातस्नालेषु, प्रहसंक्रान्ति-  
ज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, क्षयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वन-  
मूमिषु, गलेग्रहोमत्स्येषु, गण्डकोत्यानं पर्वतवनमूमिषु, शूलसंबन्ध-  
श्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु ॥

यस्मिन्निति ॥ कुष्ठमौषधविशेषो रोगविशेषश्च । स्फुट्यते व्यत्ययेऽर्थोऽनेनेति  
स्फोटो वैयाकरणप्रसिद्धं शब्दनम । स च वाक्यस्फोटः पदस्फोटश्चेति द्विधा निरूप्य ।  
तस्य प्रकरणेन वादः कथनम् । स्फोटस्य पिठकस्य प्रवादश्च । संनिपात उभयहस्त-  
योजनम् । यदुष्म—यस्यां दक्षिणहस्तेन तालं वामेन योजयेत् । उभयोर्हस्तयोः  
पातः संनिपातः स दृश्यते ॥ वातपित्तश्लेष्मगामेकत्र योगो रोगविशेषश्च । ग्रहानां  
सूर्यादीनां मेषादिराशौ सक्रान्तिः । ग्रहो बन्धनं तस्य संक्रान्तिश्च । मूनः प्रधानाख्यं  
तपस्वं मूलप्रकृतिः । ततो महान् महत्तस्तस्माद्वर्द्धकारः । अर्हकाराश्च पञ्च तन्मा-  
त्राणि (पृथिव्यादिपञ्चतन्मात्राणि) । एषमथौ । तत एकदशेन्द्रियाणि पञ्च मूतानि  
चेति षोडश विकाराः । पथं चतुर्विंशतितत्त्वानि । पञ्चविंशस्तु पुरुषः । तथा च—  
'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाणाः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न  
विकृतिः पुरुषः ॥' इति सांख्यः । तत्रश्च तेष्वेव मूलविकाराणां वादः प्रमाणतर्क-  
साधनोपात्मनः सिद्धान्ताविह्वलः पञ्चावयवोपपन्नः पञ्चप्रतिपञ्चपरिमहः । पञ्च  
मूलस्य प्रेतस्य विकारः । अथः सूर्योद्दयकालवृत्तिः श्वं रोगविशेषश्च । गुल्मः स्तम्बो  
रुक्वा । गले ग्रहणं वृद्धिश्च रोगविशेषश्च । गण्डकाः सङ्घिपशवो हस्वस्फोटका  
वा । शूल आयुवविशेषो रोगविशेषश्च ॥

जिम्मे निरन्तर धर्म एव कर्म ( मार्ग ) के उपदेशों से सब तरह की  
( आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक ) विपत्तियाँ शान्त कर दी  
गयी हैं । प्रजा पूर्णायु तक जीविन रह कर सत्तार के समस्त सुखों का उपभोग  
करती है । क्योंकि—

गन्धद्रव्य वेवनेवालो की दूकानों में ही कुष्ठ ( नामक औषधि ) है ।  
(कोई प्राणी कुष्ठ रोग से पीड़ित नहीं है) । व्याकरण शास्त्र के जानकार तथा  
अध्यात्म लोग ही स्फोट ( सिद्धान्त ) का प्रवचन करते हैं । जन-भामान्य में  
स्फोट ( फोडा, फुन्सी या मतभेद ) नहीं है । (मगीत के प्रमङ्ग में) तान देते  
समय ही सन्निपात (दोनों हाथों का सवर्ण) होता है । (वात, पित्त तथा कफ  
की विकृति से किमी को सन्निपात ज्वर नहीं होता) । ग्रहों की सक्रान्ति की चर्चा  
ज्योतिष्शास्त्र में ही पायी जाती है । [ कोई प्राणी बन्धन से आक्रान्त नहीं  
होता है । ] माण्डरान्त में ही मूतों ( पृथ्वी, जल, तेज आदि ) की विकृति  
देखी जाती है । प्राणियों में भूत (प्रेत) आदि का प्रकोप नहीं देखा जाता । )

त्रिषु मेषु ही क्षय (न्यूनाधिक्य) पाया जाता है । [ कोई प्राणी क्षय रोग से प्रस्त नहीं है । ] गुल्म ( सता ) की वृद्धि वनम्यलियो मे पायी जाती है । [ कोई भुल्म ( नामक रोग ) से पीडित नहीं है । ] मडलियो के ही गले का ग्रहण किया जाता है । [ किसी प्राणी को गलग्रह नामक रोग नहीं है । ] पर्वतीय वनमूमि मे ही गण्डकोत्यान ( गेंडो का उल्लान ) होता है । [ किसी प्राणी को गण्डक ( फोडा-फुसी ) नहीं उठने है । ] शूल ( अस्त्र ) का सम्बन्ध चण्डो के मन्दिर मे ही है, प्रजा मे शूल नामक रोग नहीं है ॥

यत्र चतुरगोपशोभिताः सङ्ग्रामा इव प्रामाः, तुङ्गसकलभचनाः  
सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि,  
सदानभोगाः प्रमज्जना इव जनाः, प्रियालपनसाराणि यौवनानीव  
घनानि, विटपिहिताम्बेटिका इव धापिकाः, निर्वृत्तिस्थानानि सुकल-  
घ्राणीवेक्षुक्षेत्रसत्प्राणि, जलाविलक्षणाः पशुपुरुषा इवाप्रमाणास्तडाग-  
भागाः, कुपितकपिकुलाकुलिता लङ्केश्वरकिंकरा इव भद्रकुम्भकर्ण-  
घनस्थापाः कूपाः, पीवरोवसः सर्पित इव गायः, सतीव्रतापदोपाः  
सूर्यद्युतय इव कुलस्त्रियः ॥

यत्रेति ॥ यत्र देश एते पदार्थाः । तथा । येषु परिवर्तमानेषु प्रामवृद्धा उपविशन्ति ते चतुरास्तैस्तथा गोपैरुपशोभिताः । यद्वा चतुरैर्दंशैर्गोवैः पशुपाक्य-  
क्षीविभिस्त्वशोभिताः । गोशब्दस्य पशुमात्रवचनत्वात् । सङ्ग्रामपदे 'ष' इति  
छेदनीयम् । तुङ्गान्युच्चानि सकलानि संपूर्णानि वा भवनानि गृह्णा यत्र । नगाश्च  
तुङ्गं पुनागैरुपलक्षितं कलभैरिभिरिभै सहितं वनं यत्र । पुंनागकरिपोतयुता  
इत्यर्थः । यद्विश्वप्रकाशः — 'तुङ्गं पुनागनागयो । तुंगः स्यादुङ्गतेऽन्यथ' । पुराणि  
शोभनमाचरणमेव मण्डनं यत्र । नूपुराणि सर्वथा चरणभूषणानि । दानभोगान्यां  
सहिता जनाः । शब्दभोगा वायवः । द्यितानां सकामोच्चापेन साराणि यौवनानि ।  
घनानि प्रियालप राजादनं पनसं चेषन्ति प्राप्नुवन्ति । विटपिन्पस्तस्यो हिता  
धाटिका । चेटिका दारवस्तु विटैः पिहितं वेष्टिता । इषुषेत्रे सप्राणि दानशालाः ।  
निर्वृत्त्या एतेरभावैर्न स्वच्छन्दं स्थीयते यत्र । निर्वृतेः सुखस्यास्पृशानि कलप्राणि ।  
सदागभागा जलाविला जलार्थिभिः सदा सेव्यतया जलपिच्छुलाः चणाः,  
अवतारादितीरप्रदेशा यत्र । यद्वा जलैराविला नीरन्ध्राः पूर्णा चणाः स्वातकानि  
यत्र । भवाभाः । पशुपुरुषास्तु जडा विलचणा स्वपेतशाखा । यद्वा अविभिर्मण्डे-  
र्लप्यन्ते । यद्वा ज्वालेन्मण्डेर्लप्यन्ति । यत्राकर्मधारयः प्रायश्चादिप्रमाण-  
रहिताश्च । कूपा भद्रकुम्भकर्णाः स्फुटितघटकण्ठाः । घनाः प्रचुराः स्वाः  
स्वकीया पातालमूलोत्था न तु प्रवाहादिपरिता आपः पानीयानि येषु । यद्वा  
घनस्वा बहुद्वेषा भावो येषु । वारी-कूपाश्च हि जोगोद्धतार्थं त्रिभिर्भवतीति  
व्यानिः । किंकरास्तु भगवः श्रीरामात्तमनकथनेन कुम्भकर्णस्य रथमो घनः प्रचुरः

षण्मासावधिकः स्वानः क्षयनं यैः । गावः पीवरं च तदूषत्र पीवरोषस्नानाश्च-  
पीवरोषयो हेनोः सरित इव । यद्वा पीवरमूष धार्पिनं येषाम् । अत्र 'गोशाब्दो  
धेन्वयोऽपि स्त्रीरलिङ्ग' इति श्यादिः । तत पुस्वाद्गन् न । सरितस्तु पीव-  
रमूळं रोषस्तं यामान् । कुलद्वियः सतीवनेनापगता नष्टा दोषाः कलङ्का यामाम् ।  
सूर्यद्युतयस्तु तीव्रतापदोपेन सहिता ॥

और जहाँ च + तुरगोदगोमित ( अश्वों से असङ्कृत ) सग्राम की तरह  
चतुर + गोद + गोमित ( बुद्धिमान ग्यालो से तुगोमित ) ग्राम है । पुन्नामों  
और हाथियों के बच्चों ने मुक्त ( तुह + मन्त्रलम + वन ) पर्वत की तरह  
( तुह + मन्त्रल + मदन ) ऊँचे-ऊँचे समस्त मदनों वाला नगर प्रदेश है ।

मदा ( हनेगा ) चरण को असङ्कृत करने वाले नूपुरों की तरह मन्  
( सुन्दर ) आचरणरूप असङ्कार मे युक्त नगर प्रदेश हैं ।

सदा + नमोष ( हमेगा जाकारा की ओर जाने जाने ) प्रमथुन ( वायु )  
की तरह लोभ स + दान + भोग ( दान और भोग से मुक्त ) हैं । प्रिया +  
चनन + सार ( कान्हा के साथ बातचीत करना ही मुख्य तत्व है त्रिस अवस्था  
में ऐसे ) यौवन की तरह वन भी प्रियाल + पनस + वर ( प्रियाल और पनस  
फलों की उपलब्धि से मुक्त ) हैं । विट + पिहित ( धूर्तों से धिरी हुई ) चोटियों  
की तरह वाटिकायें भी विटपि + हित ( वृत्तों को धारण की हुई ) हैं ।  
निर्वृति + स्थान ( सुख के केन्द्र रूप ) सुन्दर पत्नी की तरह ईव के क्षेत्र में  
चलने वाली शर्वत की दानगालायें निर्वृति स्थान ( प्रतिबन्धरहित ) हैं ।  
[ रस पीने वाले जब चाहते हैं, रस पी लेते हैं । उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं  
है । रस की दानगालायें सदा चनती रहती हैं । ] जल ( जड़ ) पशुनुष्य  
पुरुष जैसे विलक्षण ( नम्रम-शास्त्रज्ञानगुण्य ) तथा अप्रमाण ( अनुनात आदि  
प्रमाणज्ञानगुण्य ) होते हैं वैसे वहाँ के तानाद नजाविल + क्षण ( जल से  
पिच्छिन स्थान बाने ) तथा अप्रमाण ( विनाल ) हैं ।

शुद्ध वानरों द्वारा व्याकुल किये गये रावण के नौकर जैसे भान कुम्भकर्ण-  
स्वाप ( कुम्भकर्ण की निद्रा भङ्ग कर दिये ) से वैसे यहाँ के कुर भग्नकुम्भकर्ण  
+ स्वाप ( घड़े के मुक्कड़ को फाँड दिये हैं और सुन्दर जल से मुक्त ) हैं ।  
नदिमाँ जैसे पीव + रोप्रसु ( विज्ञान तटवाली ) होजी हैं वैसे यहाँ की गायें  
पीवर + ऊप्रसु ( विज्ञान बनो वाली ) हैं ।

मूर्तों की किरनें जैसे स + तीव्र + तान + दोष ( तीव्र उजालारूप दोष से  
मुक्त ) होती हैं अथवा मनीषता के कारण अपदोष ( दोषरहित ) होजी हैं  
जयवा तीव्र होने के कारण रात्रि की समाप्त कर देती हैं । वैसे वहाँ की  
शुनाङ्गनायें मजी + अत्र धारण करने के कारण अपदोष ( दोषरहित ) हैं ॥

यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वस्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठिता  
कादम्बरीगणवन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहय केदारा ॥

येति । किंभूता केदारा । मनोहारीणि सारसानां द्व द्वानि येषु । तथा तत्पुरु-  
षेण तत्स्वामिना द्विगुना गीयुगयुक्तेनाधिष्ठिता बहुव्रीहोऽपि गाव सन्ति । द्विगुनेति  
चोपलक्षणम् । अथवा चकारोऽप्यथ । द्विगुनापि तत्पुरुषेणाधिष्ठिता । तथा दृश्य-  
माना बहुव्रीहो व्रीहयो येति भूमे सस्यसपदुक्ता । गणवन्धारस्तु मनोहारिण-  
सारा श्रेष्ठा । सद्वन्द्व द्वन्द्वसमामसहिता । तथा तत्पुरुषेण द्विगुना च समासेना-  
धिष्ठिता । तथा दृश्यमानबहुव्रीहिसमासाः । तथा च द्वन्द्वतत्पुरुषद्विगुबहुव्रीहि-  
समासबहुला इत्यर्थः ॥

कादम्बरी का गणव ध्र जस मनोहारि + सार + सद्वन्द्व ( मनोहर तथ्यो  
तथा द्वन्द्व समासो से युक्त ) है तत्पुरुष तथा उसक प्रभद्र द्विगु से सनाधित  
है और बहुव्रीहि सामान स समवित है वैसे यहाँ के खेत मे मनोहारि +  
सारस + द्वन्द्व सुन्दर सारस पक्षी के जोड द्विगुत्पुरुष ( अपन दो गावो वाले  
स्वामी ) की देख रेख मे है और वहाँ बहुव्रीहि ( पर्याप्त धान ) दिखायी पड  
रहा है ॥

किं बहुना ।

नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा ।

दृश्यते न च यत्र स्त्री नवापीनपयोधरा ॥ २६ ॥

अस्ति हेति । यत्र देशे सा कापि नगरी नास्ति । यस्यां न वापी निपानम् । न  
पयोधरा पय प्रधाना भूमि । नच तरुणी पीनस्तनी स्त्री दृश्यते । यदि पुनस्त-  
त्रयमपि अतुर्थपादन विशेषणीकर्तुमाश्रयति पयोभूम्योरेव व्याख्यायते । 'पु-  
स्तुतौ । नच स्तुतिमाप्नुतोऽभीष्टमिति नवापिनी । तथाभूते ह्यनपयसी स्वामिन्मले  
धरतीति तद्योक्तं वापी । भूस्तु वप त्र्यमाद्यमिति वापिनः कर्षकास्तेषामिना  
लाञ्छितेषुःवारस्वामिन । पयोधरा मघा यस्यां तथाभूता । पश्चात्प्रसयन्ध ।  
अवृष्टिनिष्पाद्यसस्येति भाव । अयमर्थस्तेनार्ह । प्रशस्तस्वामिपयस्का वापी,  
अवृष्टिनिष्पादितसस्या भूमि तरुणी पीनस्तनी च का ता, यस्यां दृश्यते खेव  
नगरी यत्र दशोऽस्तीनि अथवा यत्र दशे सा नगरी नास्ति यस्यां नगर्वा वापी स्त्री  
च न दृश्यत । कीदृशी वापी । न न पयोधरा । अति तु पयोधरा । नन्द्यस्य  
प्रवृत्तार्थसूचकत्वात् । स्त्री च किंभूता । नवा तरुणी । तथा पीनपयोधरा ।  
सर्वाश्वापि नगरीषु पयोधरा वाप्यस्तरुण्य पीनस्तस्यश्च स्त्रियो दृश्यन्त इति  
आद्यः ॥ २६ ॥

वहाँ कोई ऐसी नगरी नहीं है जहाँ पयोधरवापी ( जनपूर्ण जलाशय ) न  
हो और जहाँ कोई ऐसी रमणी नहीं देखी जाती जिसका पयोधर ( स्तन )  
पीन विशाल न हो ॥ २६ ॥

अपि च ।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपद्यवाः ।

जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपद्यवाः ॥ २७ ॥

भवन्तीति ॥ शाखा विगतपत्रलवा यत्र भवन्ति । जनस्य विपदां एवा अपि न स्युः ॥ २७ ॥

फाल्गुन के महीने में वृक्षों की शाखाओं विपन्तव ( पल्लवहीन ) हो जाती हैं किन्तु जनता पर कभी विपल्लव ( विपत्ति का अंग ) नहीं आता ॥ २७ ॥

यत्र सौरान्यरञ्जितमनसः सकलसमृद्धिर्घटितमहोत्सवपरम्परा-  
रम्मनिर्भरा, सततमकुलीनं कुलीनाः, प्राप्तविमानमप्राप्तविमानमङ्गा,  
कतिपयधसुधिराजितमनेकयसवः, समुपहृसान्त स्वर्गवासिनं जनं  
जनाः । कथं चासौ स्वर्गाद्य विशिष्यते ।

इति ॥ यत्र जना स्वर्गिणमपि न्यवकुर्वन्ति । कुलीना अभिजाता । विमानता  
तिरस्कारः । समुधनम् । पंचे कु पृथ्वी तस्या लीना । विमानं देवपानम् ।  
वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः । देवन्दहारस्तृतीयार्थे स्यारुदेपः ॥ कथं चायं स्वर्गाद्याधिकः ॥

जहाँ के लोग स्वर्गवासियों का भी उपहास करते हैं । उनका मन ( बर्हों के ) सुन्दर राज्य में अनुरक्त है । सर्वविध सम्पन्नताओं के कारण बड़े-बड़े उत्सवों के मनाने में सोल्लास लगे रहते हैं ।

उपहास पक्ष.—स्वर्गवासी अकुलीन हैं, ये लोग कुलीन हैं । वे ( देव ) प्राप्तविमान ( विशेष प्रकार के अहंकार से युक्त ) हैं और ये अप्राप्त-विमान-मङ्ग ( विशेष अहंकारजन्य वफ़ताओं से दूर है ) । वे ( देव ) कुछ ( जाठ ) ही बन्दुओं से युक्त हैं ये लोग अनेकविध बन्धुओं ( सम्पत्तियों ) से युक्त हैं ।

वासिन्व पक्ष :—स्वर्गवासी सदा अकुलीन ( पृथ्वी में लीन नहीं ) हैं, क्योंकि देवता लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते हैं । ये लोग कुलीन ( विजिष्ट वन में उत्पन्न हुए ) हैं । ( देव ) प्राप्तविमान ( देवस्य प्राप्त किये ) हैं, और यहाँ के लोग विमान ( अहंकार ) के कारण उत्पन्न होने वाली बन्दताओं से दूर हैं । देव द्रुव आदि आठ ही बन्धुओं से मन्दिन हैं ये लोग अनेकविध बन्धुओं ( सम्पत्तियों ) से विराजित हैं । स्वर्ग से यह क्यों न आगे बढ़ जाय—॥

यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः सभ्रीका हरयः पदे पदे  
घनदाः सन्ति लोकपाला । केवलं न सुराधिपो राजा । न च विनायकः  
कश्चित् ॥

इति ॥ गौर्यो गौराङ्गण शुद्धोभयान्वया वा स्त्रियः । महानीश्वरोऽतिसुन्द ।  
सहस्रि वा शोभया सभ्रीका । हरयोऽथा । कनमदा नृपा । स्वर्गे त्वेकस्मिन्नेव

गृहे गौरी उमा । एह एव महेश्वरः शिवः । सहस्रमीको विष्णुरेक एव । न बहवः । धनदः कुबेर एकस्मिन्नेव स्थान एक एव । केवल परम् । अधिविजतीरधिपः । सुराया मघस्याधिपः सुराधिपो न राजा । न च कोऽपि विरुद्धनायकः । सुरामधिपिषतीति वाक्ये लघवदूषणमप्रसङ्गात् । सुराप्रभावत् । स्वर्गे तु सुराणामधिप इन्द्रः । विनायको गणेशः ॥

जहाँ घर-घर में गौरी (गौर वर्ण की) स्त्रियाँ हैं, पूरा लोक ही महेश्वर ( ऐश्वर्य-सम्पन्न ) है, अनेक हरि ( छोटे ) श्रीयुक्त ( ज्ञोभासम्पन्न ) पद-पद पर धन देने वाले लोकपाल ( प्रजापालक ) लोग हैं, सुराधिप ( मघ का स्वामी ) ही केवल राजा नहीं है और कोई विनायक ( दुष्ट नेता ) नहीं है ।

[ स्वर्ग में तो एक ही गौरी ( पार्वती ) है, एक ही महेश्वर ( शिव ) है, श्री ( लक्ष्मी ) सहित एक ही विष्णु है, धनद ( कुबेर नामक ) लोकपाल भी एक ही है, सुराधिप ( देवताओं का स्वामी इन्द्र ) ही केवल राजा है और विनायक ( गणेश ) भी है । स्वर्ग में तो गौरी, महेश्वर, धनद आदि एक ही हैं जब कि उस नगरी में ये चीजें अनेक हैं । इसीलिये यह स्वर्ग से भी विशिष्ट है ॥ ]

यत्र च लतासंबन्धः कलिकोपक्रमश्च पादपेषु दृश्यते न पुष्टयेषु ॥

यत्रेति ॥ लतासंबन्धो घञ्छीयोगः । कलिकाया उपक्रमः । पक्षे 'चलतासंबन्धः' इति समुदितं पदम् । चलता लौष्यम् । कलिः कलहः । कोपः क्रुधः । तयोः क्रमः ॥

और जहाँ (च) लता + सम्बन्ध ( बल्लरियों का सम्पर्क ) और कलिका ( कलियों ) का उपक्रम ( उद्भव ) वृक्षों में देखा जाता है । पुष्टियों में चलता + सम्बन्ध ( चलता का योग ) और कलि + कोप + क्रम ( कलह एव क्रोध की परम्परा ) नहीं दृष्ट है ॥

यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुद्दिनाचलस्य सोपु ध्रुयते न प्रजासु ॥

यत्रेति ॥ चमरका गोविशेषाः । परमसु'दृष्ट हिम तुद्दिनम् । पक्षे मरको मरण बाहुल्यम् । परस्य महिमा माहात्म्यम् । तस्योपघातः ॥

जहाँ चमरक + वार्ता ( चमरी गाय की चर्चा ) और परम + हिमोपघात ( अत्यधिक वर्ष के कारण हानि ) हिमालय में ही श्रुत है । प्रजा में ( च ) मरक + वार्ता ( मृत्युसम्बन्धी वार्ता ) और पर + महिमोपघात ( हमारे की प्रतिष्ठा का हनन ) नहीं सुना जाना ॥

यश्च नीतिमत्पुरुषाधिष्ठितोऽप्यनोतिः, सटोऽप्यघटसंकुलः, कारुप-युतोऽप्यगत रूपशोभः ॥

दत्तेति ॥ न विद्यत ईतिरुपद्रवोऽस्तिनिश्चिन्तनीतिः । वटा न्यप्रोषा । अवटा कृपादिगता । कारव शिश्नः । तथा न गता न ग्रहा रूपशोभा यम्य । अयौर्नगै-  
स्तरुभिन्नोपशोभा यस्येति वा । अपिविरोधे । य च नुस्वार्थव्याख्याया । कुम्भित-  
मीपद्मा रूपं कारूपम् ॥

जो नीतिमत् ( न्यायनम्नन ) पुरुषों से युक्त रह कर भी अनौत ( जन्माय ) युक्त है, विरोध । नीतिसम्नन पुरुषों से युक्त है और अनौति / र्दिति ( उपद्रव ) रक्षित ) युक्त है । परिहार ।

सटा ( जटा ) से युक्त हान पर भी जबट ( बटवृक्ष से युक्त नहीं ) है । विरोध, ( बटवृक्ष की बानियो ने जटा की तरह कुछ जट्टे ( बरोह ) टटन्तो हुई पृथ्वी तक पानी हैं । [ जटा बटवृक्ष रहेगा वही इस तरह की बडे रहेंगी । ऐसी जट्टों से युक्त होकर भी बटवृक्ष ने हीन है यह कहना विरोध का बीज है । ]

सटा ( मूलों ) ने युक्त है और अन्ट ( गट्टो ) ने सम्पन्न है । [ जगह-  
जगह पर वृक्षों के मूल है और न्यान-न्यान पर छाडयां भी शिखायी पत्तों हैं ] परिहार ।

कारुण्य + युक्त ( कुम्भित रूप बानि ) है फिर भी उसकी रूप शोभा नष्ट नहीं हुई है । विरोध ।

कार ( मिल्पकारों ) से उपयुक्त ( युक्त ) है इतोलिये उसकी रूपशोभा ( सोन्दर्य-रङ्गमां ) नष्ट नहीं हुई है । परिहार ॥

यत्र च गुरुर्ध्वविन्मं नक्षत्रराशयः, मात्राकलहं लेखशालिकाः,  
निशोदपद्मौपमुलुका, अपत्यत्यागं कोकिलाः, वन्धुजीवविघातं ग्रीष्म-  
दिवसा, कुर्वन्ति न जनाः ॥

यत्र चेति ॥ इदमेते कुर्वन्ति न जनाः । गुरुर्वृंहस्पतिः । मात्रा वर्गावयवः । मिश्रः  
सूर्यः । वन्धुजीवं वन्धूकम् पदे सुगमम् । मात्रा जनन्या सह ॥

जटां टासो के समूह ही गुरु + व्यतिक्रम ( वृहस्पति ग्रह का परिवर्तन ) करत  
है । मनुष्य गुरु + व्यतिक्रम ( आचार्ये पन्वितं ) नहीं करते । लेखनाधिकार्ये  
मात्रा + बलह ( बानों के मन्त्रों में बलह ) उपस्थित — नी है कोई आदमी  
माना के साथ बलह नहीं करना । निशोदय ( निशोद, स निदय केवल उल्लू  
करते हैं कोई आदमी निशोदय ( नुद्द जन्माय ) से विद्रोह नहीं करता है ।  
अपनी मन्त्रान का परिवर्तन केवल कानमें करती है कार मनुष्य अपनी मन्त्रान  
नहीं टोडता । वन्धुजीव ( नामक पूत ) का विनाश जीवन शत्रु ही करता है ।  
कोई आदमी वन्धु + जीव ( बदन वन्धु का जीवन ) नष्ट नहीं करता है ॥

[ गुरु-व्यतिक्रम—तारे अपने बीच कभी शुक्र कभी शनि आदि ग्रहों की मुख्यता देने रहते हैं। ग्रहों की स्थिति सदा बदलती रहती है। तात्पर्य यह कि गुरु-व्यतिक्रम (बृहस्पति का परिवर्तन) तारों के ही बीच होता है। आदमी जिन गुरु को एक बार चुन लेते हैं उसे बदलते नहीं क्योंकि भारतीय सभ्यता के अनुसार एक बार किसी को गुरु बना लेने के बाद उसे छोड़ कर दूसरे को गुरु नहीं बनाना चाहिये। वहाँ के निवासी इस नियम का यथावत् पालन कर रहे थे।

मात्रा + कलह—मातृ शब्द के तृतीया का एकवचन अर्थात् माता के साथ लोग कलह नहीं करते। लेखशालिका पक्ष में मात्रा शब्द के साथ कलह शब्द समस्त है।

मित्रोदय—उल्लू पक्षी सूर्योदय होने पर अन्धे हो जाते हैं। इसलिये वे चाहते नहीं कि सूर्योदय हो।

अपत्यत्याग—कोयल अपना जण्डा कौवे के घोंसले में देती है। उसके अण्डे का पालन भी कौवे ही करते हैं। कौवे और कोयल के अण्डे में इतनी समानता रहती है कि कौवे कोयल के अण्डे को अपना ही समझ कर पालते हैं। इसलिये कोयल को परभृत् (दूसरों के द्वारा पाला हुआ) कहते हैं।

वन्धुजीव—वन्धुजीव नामक फूल घीष्म ऋतु में नष्ट हो जाता है। ]  
किं बहुना।

देश. पुण्यतमोदेशः कस्यासौ न प्रियो भवेत् ।

युकोऽनुक्रोशसंपन्नैर्यो जमैरिव योजनैः ॥ २८ ॥

देश इति ॥ अनुक्रोशेन कृपया सपन्नैर्युक्तोऽसौ देशः सर्वस्यापि प्रियः । पक्षे-  
ऽनुक्रोशे सपन्नान्यन्नजलतृष्णादिभिः सम्पन्नानि । अथवानुगता परस्परसम्बन्धाः  
क्रोशा अनुक्रोशास्तैः सपन्नानि ॥ २८ ॥

[ अनुक्रोश + सम्पन्न योजन की तरह अनुक्रोश (दया) सम्पन्न मनुष्यों से युक्त वह अत्यन्त पुण्यशाली (सीर्यं) स्थानों वाला देश निसे प्रिय न होगा ॥

[ अनुक्रोश सम्पन्न शब्द योजन शब्द का विशेषण है। आठ मीलों का एक योजन होता है और दो मीलों का एक क्रोश (कोस) होता है अर्थात् चार क्रोश जहाँ रहेंगे वहाँ एक योजन रहेगा। योजन सदा अनुक्रोश (क्रोश-सहित ही रहेगा)। अनुक्रोश-सम्पन्न-योजन-शब्द का यह ही अर्थ लिया जा सकता है—प्रत्येक योजन का क्रोश अन्न, तृष्ण, जल आदि से सम्पन्न है। अर्थात् देश का प्रत्येक भाग सम्पन्न है। देश पक्ष में योजन शब्द को "य + जन" इस तरह धृत्वा करना चाहिये। अर्थात् अनुक्रोश + सम्पन्न (प्रत्येक क्रोश पर अन्न-



जल-सम्पन्न ) घोड़न का वह देग भी अनुश्रोग ( दया सम्पन्न मनुष्यों से युक्त है ] ॥ २८ ॥

तस्य विषयमध्ये निषधो नामास्ति जनपदः प्रथितः ।

तत्र पुरी पुरयोत्तमनिवासयोग्यास्ति निषधेति ॥ २९ ॥

इत्येति ॥ पुरयोत्तमो विष्णुः पुष्येयाश्च ॥ २९ ॥

उत्त ( वार्यावर्त नामक , देव के बीच निषध नाम का जनपद है । वहाँ नरश्रेष्ठ व्यक्ति के निवास योग्य निषध नाम की नगरी है ॥

[ पुरयोत्तम शब्द का विष्णु अर्थ भी है । अर्थात् वह नगरी वैकुण्ठ-सदृश है अतः पुरयोत्तम भगवान् विष्णु ) के निवास लायक भी है । ] ॥ २९ ॥

जननीतिमुदितमनसा सततं सुस्वामिना कृतानन्दा ।

सा नगरी नगतनया गौरीय मनोहरा भाति ॥ ३० ॥

अनेति ॥ जनस्य नीत्या इष्टमनसा सुप्रमुखा इतद्वर्षा तथा न अष्टनया अपि तु सञ्जीविमती । सा पुरी रम्या भाति । यत पृथानष्टनया अतएव जनो नातिमान् । गौरी तु नगस्य हिमाद्रेश्चनया । तथा जननी भातेति हेतोर्इष्टमनसा । अतएव शोभनेन हर्षोचिताकृतिसुन्दरेण स्वामिना स्कन्देन कृतानन्दा । तथा मनसि हरो यस्या ॥ ३० ॥

नगरी पक्ष—जननामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले, सुन्दर स्वामी से आनन्दित एवं ग्याव्य सम्पन्न ( न + गत + नया ) वह नगरी नय + तनया ( पर्वतपुत्री ) गौरी की तरह मनोहर है ।

पार्वती पक्ष :—जननी होने के कारण प्रसन्न चित्त वाली, अपने सुस्वामी (कार्तिकेय) से आनन्दित तथा हर ( शंकर भगवान् ) को मन में रखने वाली गौरी है ।

[ नगरी पक्ष के विषय शब्द.—जन + नीति + मुदित + मनसा ( जन सामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले ) सुस्वामिना ( सुन्दर राजा से आनन्दित और न + गत + नया ( ग्याय से अहीन ) वह नगरी गौरी की तरह है ।

पार्वती पक्ष :—जननी + इति + मुदित + मनसा, सुस्वामिना—( माता हैं, इसलिये प्रसन्नचित्त कार्तिकेय द्वारा ) आनन्दित नय + तनया ( पर्वतपुत्री ) गौरी है ] ॥ ३० ॥

यस्यामभ्रंलिङ्गेऽनीलशालशिखरसहस्रनिभृतांशुजालवालराइ-  
लाङ्कुराग्रप्रासलाहसाः स्त्रलन्तः खे खेद्यन्ति मध्येदिनं सादिनं  
रचिरथतुरङ्गमाः ॥

रस्याभिति ॥ शालः प्राकारः । इन्द्रनीलमणिकिरणानीलतृणनुवर्षाद्विलिख्य  
सप्तसप्तमस्य स्वलन्ति ॥

उस नगरी के गगनचुम्बो, नीलमणि की बनी हुई चहारदीवारी की चोटी पर उठने हुए हजारों किरणजाल उगते हुए नवीन तृणों के अकुर-सदृश प्रतीत होते हैं । उन्हें खाने की उत्कट इच्छा वाले सूर्य-रथ के घोड़े दोपहर के समय नीचे खिसक कर सारथि को कष्ट पहुँचा रहे हैं ॥

[ उस नगरी की चहारदीवारी नीलमणि से बनी हुई है । उससे निकलने वाली नील किरणें नवीन तृण की तरह प्रतीत हो रही हैं । दोपहर के समय सूर्य के घोड़े मानो उन किरणरूप तृणों को खाने के लिये नीचे की ओर आने के लिये जोर मार रहे हैं । ऐसी स्थिति में देवारा, सूर्यसारथि उन अश्वों को नियन्त्रित करने में क्लेश का अनुभव कर रहा है । ] ॥

यस्यां च स्फटिकमणिशिलानिबद्धभवनप्राङ्गणगतासु संवरद्व-  
गृहीणीचरणालककपदपङ्क्तिषु पतन्ति निर्मलसलिलाभ्यन्तरतरत्तरुणा-  
रुणकमलकाङ्क्षया मुग्धमधुपपटलानि ॥

यस्या चेति ॥ स्फटिकस्य सलिल पदपङ्क्तेश्च कमलमुपमानम् ॥

और जहाँ स्फटिक मणि की चट्टानों से बनी हुई आँगन की भूमि पर घूमती हुई रमणियों के अल्ला से रंगे गये चरणों की चिह्न-पत्तियों को निर्मल जल के भीतर तरते हुए पूर्ण विकसित लाल कमल समझ कर मत्त भ्रमरों के मूय मडरा रहे हैं ॥

स्फटिक मणि से निर्मित आँगन की भूमि निर्मल जल की तरह लग रही है । रमणियों के साधारणकृत पदचिह्न पूर्ण विकसित कमल की ध्वान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं । लाल पदचिह्नों को कमल समझ कर भ्रमर भनभना रहे हैं । ] ॥

यस्यां च विविधमणिनिर्मितवासभवनभ्रमरप्रभित्तिषु स्थरुतासु स्वां  
छायामवलोकयन्त्यः कृतापरस्त्रोशङ्काः कथमपि प्रत्यानीयन्ते प्रियैः  
प्रियतमाः ॥

जिस (नगरी) में विविध मणियों से बने हुए अत्यन्त सुन्दर निवास-भवनों की स्वच्छ और सुन्दर दीवारों पर अपनी छाया देखकर अन्य स्त्री की आशङ्का से (मानिनी बनी हुई) प्रियतमायें प्रियों के द्वारा किसी किसी तरह लौटाई जाती हैं ॥

[ नायिकायें अपने प्रिया व साथ भवन प्राङ्गण में घूम रही हैं । दीवार पर अपने और पति का प्रतिबिम्ब देखकर उन्हें आशङ्का हो जाती है कि

उनका पति किसी दूसरी स्त्री के साथ भ्रमण कर रहा है। अब एक वे मान कर बैठती हैं और पति उन्हें बटी कठिनाई में मना पाता है। ] ॥

यस्यां च दिव्यदेवकुलालङ्कृताः स्वर्गा इव भार्गाः, सततमपांसु-  
वसनाः सागरा इव नागराः, समत्तवारणानि वनानीव भवनानि,  
सुरसेनान्विताः स्वर्गभूया इव कूपाः अधिन्धरोद्देशमुद्रासयन्तो  
द्वारा इव विहाराः ॥

यन्मा चेति ॥ दिवि भवैरिव दिव्यै रग्यैर्देवकुलैर्देवगृहैः पद्मे दिव्यै स्वर्गोद्भवैः  
कक्षत्रद्रुमादिमिर्दवानां कुलैरन्वयैर्वालङ्कृता । अपामुरोपुरहितं वधं येषाम् ।  
पद्मे सुष्ठु वसन्त्येविति सुवसनः । 'अपाम्' इति कर्त्तरि षष्ठी । अलाधारा  
इत्यर्थः । सत्तवारणोऽपारप्रयो मत्सेमश्च । सुरसेन सुजलेन । स्वर्गभूयास्तु सुरसेनया  
प्रियदम्भेन्देनान्विता । अधिकमिति क्रियाविशेषणम् । धरोद्देशः, पृथ्वीप्रदेशः ।  
विहाराश्चैत्यानि । पद्मे कक्षरोद्देश इत्यधिक धरोद्देशम् । विमन्त्रयर्थेऽन्यथाभावः ॥

अहाँ के समसीय भवनो से जनङ्कृत मार्ग कल्पवृक्ष और देववज्र से  
मनन्वित स्वर्गसदृश है । निरन्तर अपामु + वसन ( धूलिहीन (निर्मल) वस्त्र  
करते ) नागरिक अपा + सुवसन (जल-निमित्त सुन्दर भवन) वाले सागर सदृश  
हैं । मनवाने हाथियों से मूक्त भवन मन हाथियों से समन्वित वन सदृश हैं ।  
सुरसेन + अन्वित (सुन्दर जल में दूत) रूप (इतारा) सुरसेना (दिनेसेना) से  
अन्वित स्वर्गों की तरह है, अधिकन्धरोद्देश कष्ट को सुगोभित करने वाले  
हार की तरह विहार (बौद्धमठ) अधिन्धरोद्देश (धरोद्देश) भूतल को अधिक  
सुगोभित कर रहे हैं ॥

[ अपामुवसना—सागर पक्ष में अपाम् अप् शब्द का षष्ठी बहुवचन रूप  
है । "जल ही है सुन्दर घर जिसका" इस विग्रह में जल शब्दवाची अप् शब्द  
का प्रयोग प्रथमा में होना चाहिये । अतः यहाँ यही मानना चाहिये कि कर्ता  
में षष्ठी हुई है । वहाँ के लोम धूलिहीन अर्थात् निर्मल वस्त्र धारण करते हैं  
और सागर अपामुवसन अर्थात् जलमय भवनवाला है । अपामुवसनत्व  
साधारण धर्म है ।

सुरसेनान्वित—रूप पक्ष में सुरस शब्द का तृतीयान्त रूप सुरसेन है वह  
अन्वित शब्द के साथ दीर्घ सन्धि द्वारा जुड़ा हुआ है । भूप पक्ष में सुरसेना  
शब्द के साथ अन्वित शब्द का अन्वय है ।

— अधिन्धरोद्देश—हार अधिन्धरोद्देश (स्कन्ध स्थल) की शोभा बढ़ाता  
है । विहार (बौद्धमठ) भी धरोद्देश (भूतल) की अधिक शोभा बढ़ाते हैं ।  
हार पक्ष में कन्धरोद्देशे इति अधिन्धरोद्देशम् अभ्ययी भाव समास है । विहार  
पक्ष में धरोद्देश शब्द एक है और अधिक शब्द क्रियाविशेषण है ॥

यस्यां च बहुलक्षणाः सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तः प्रचुराः प्रासादा  
 बहिश्च वारणेन्द्राः । सुशोभितरङ्गाः समालोक्यन्तेऽन्तः संगीतशाला  
 बहिश्च फ्रीडाकमलदीर्घिकाः । बहुधान्यनिरुद्धाः कथमप्यभिगम्य-  
 न्तेऽन्तः पण्यस्त्रियो बहिश्च क्षेत्रभूमयः । नानाशुकविभूषणाः  
 शोभन्तेऽन्तः सभा बहिश्च सहकाव्धनराजयः । ससौगन्धिकप्रसारा  
 विराजन्तेऽन्तविषणयो बहिश्च सहकारवनराजयः । ससौगन्धिकप्रसारा  
 विराजन्तेऽन्तविषणयो बहिश्च सलिलाशयाः ॥

यस्या चेत ॥ चणो भूमिका । सुधा लेखिशेषः । पक्षे बहूनि लक्षणानि येषाम् ।  
 तथा सुष्ठु धावन्तः । रङ्गो नर्तनस्थानम् । पक्षे सुशोभितरङ्गा येषु । बहुधेति  
 भिन्न पद्म् । अन्यैर्विद्वैर्निरुद्धा । पक्षे बहुभिर्धान्यैर्निरुद्धा । आशुकविः शीघ्रकविः ।  
 पक्षे शुकः पक्षिणः । सुगन्धीनि द्रव्याणि पण्यमेषां ते सौगन्धिका वणिजः  
 कहराणि वा । प्रसारो लक्ष्वाणो विस्तरश्च ॥

जिस नगरी के भीतर बहुत + क्षणा (पर्याप्त भूमिवाले) और सुधावन्त  
 (चुने से पुने हुये) बहुत से भवन हैं और बाहर की ओर बहु + लक्षण (विविध  
 शुभ लक्षणों से युक्त) और सुधावन्ता (अच्छी तरह से सौंते हुए) हाथी हैं ।  
 भीतरी भाग में सुशोभित + रङ्गा (सुन्दर रङ्गमञ्च से युक्त) संगीतनालयों  
 और बाहर की ओर सुशोभि + तरङ्गा (सुन्दर तरङ्गों से युक्त) कमलों से  
 भरे हुए फ्रीडा सरोवर दिखायी देने हैं ।

भीतरी भाग में वाराङ्गनाएँ बहुधा + अन्य + निरुद्ध (अधिकान्ध धूर्तों द्वारा  
 घिरी) रहती हैं अतः उनके पास किसी-किसी तरह जाया जा सकता है और  
 बाहर की ओर कृषिभूमि बहु + धान्य + निरुद्ध (अधिक धान से घिरी हुई) हैं  
 (अतः उसमें भी बड़ी कठिनाई से) जाया जाता है ।

भीतर सभी नाना + आशु + कवि (शीघ्र कविता प्रस्तुत करने वाले  
 कवियों) से विभूषित हैं और बाहर नाना + शुक + विभूषण (विविध तोतों  
 से अलङ्कृत) आम की वनपङ्क्तियाँ हैं ।

भीतर सुगन्धित द्रव्य बेचने वाले बतियों की छोटी-छोटी दुकानों से बाजार  
 सुगोभित हो रहे हैं और बाहर सुन्दर गन्ध व्यक्त करने वाले कमलों से युक्त  
 सरोवर हैं ॥

किं बहुना ।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः ।

कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्रचक्षां मुदम् ॥ ३१ ॥

भूमय इति ॥ बाह्ये आरामैर्मप्ये रामाभिरुपशोभिताः । यस्यां रम्यवपसां पूनां  
 विचित्रचक्षिणां च मुदं कुर्वन्ति । वपुष्मतां कालकृतावरया पक्षी च वय ॥ ३१ ॥

विभिन्न रामाओं (स्त्रियो) ने सुगोभित नगर के अन्तरङ्ग भाग विविध-  
वयस् ( दूवावस्था वाले ) लोगों को हमेंगा आनन्द देते हैं और विभिन्न  
आरामों (वर्गों) ने सुगोभित उसके बहिरङ्ग भी विविध + वयस् ( विविध  
पक्षियों ) को मदा आनन्द देने हैं ॥ ३१ ॥

यस्यां च भक्तभाजो देवतायतनेषु देवताः संनिघाना दृश्यन्ते  
दृष्टेषु वर्णजनाः । अक्षरसावधानाः कविगोष्ठीषु कथयो विलोक्यन्ते  
द्युतस्थानेषु द्युतकाराः । कान्तारागप्रियाः करिणो राजद्वारेषु संचरन्ति  
चेदयाङ्गणेषु भुजङ्गाः ॥

यस्या वेदि ॥ भक्तो भक्तिमान् । भक्त बाह्यम् । संनिघानम् नैक्यम् । सम्यङ्-  
निधिम् । अक्षरं वर्णः । पक्षे अक्ष पाशकः । अक्षरसे स्थितमवधानं येषाम् । कान्तारे  
घने अराः सङ्ख्यादिवृष्टस्तप्रियाः । पक्षे कान्ता वधुः ॥

जिस नगरी में देवताओं के आयतन (मन्दिरों) में भक्तभाक् (भक्त युक्त)  
देवता सन्निहित दिखायी पढ़ने है और दृष्ट ( बाजार ) में भक्तभाक् ( अन्न  
वेचने वाले ) बनियाँ सन्निहित दिखायी पढ़ने हैं । कविगोष्ठी में कवि लोग  
अक्षर-विन्यास ( वर्णविन्यास ) में सावधान दिखायी देने हैं और जुवा  
खेलने की जगह पर जुवाड़ी लोग अक्ष + रस ( पाशा फेंकने ) में अवधान  
( सावधान ) रहने हैं । राजद्वार पर कान्तार ( जगल ) के अग ( वृद्धों ) से  
प्रेम रखने वाले हाथी भ्रमण कर रहे हैं और वेश्याओं के आँगन में कान्ता +  
राग को प्रिय मानने वाले विट धूम रहे हैं ॥

[ भक्तभाज — भक्त शब्द के अन्न और भक्तियुक्त पूजक दो अर्थ हैं ।  
मन्दिरों में भक्तों ( पूजकों ) से युक्त देवता हैं और बाजार में भक्त ( अन्न )  
युक्त वर्णजन है । भक्त-भाक्त्व साधारण धर्म है ।

अक्षर + सावधान — कवि लोग सभा में जब अपनी कविता प्रस्तुत करते  
हैं तब अक्षर-अक्षर पर सावधान रहने हैं कि कही अशुद्धि न हो जाय ।  
जुवाड़ी लोग अक्ष + रस + अवधान हैं । पाशा फेंकने में पर्याप्त सावधानी रखन  
है । अक्षरभावधानत्व साधारण धर्म है ।

कान्तारागप्रिय — करी ( हाथी ) पदा में कान्तार + अग + प्रिय (जगल  
के पेड़ों को प्रिय मानने वाले ) और विट पक्ष में कान्ता + राग + प्रिय  
( रमणी स्नेह ) को रमणीय मानने वाले यह अर्थ करना चाहिये । ] ॥

यस्यां च चतुरुदधिबेलाधिराजितसकलधराचरुचूडामणौ मणि-  
कर्मनिर्मितरम्यद्वन्द्वतया सुरपतिपुत्रीपरामवकारिण्याम् । अव्ययभावो  
व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छिन्नस्त्रिभूमाद्यत्करिकपोल-

मण्डलेषु न त्यागिगृहेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु-  
स्नेहक्षयो रजनोविरामविरमत्पदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजनहृदयेषु  
कूटप्रयोगो गीततानविशेषेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकलहो वैयाकरण-  
च्छान्नेषु न स्वामिभृत्येषु, स्थानकभेदध्विष्येषु न सत्पुरुषेषु ॥

यस्यां चेति ॥ अर्थव्यभावोऽन्यथावत् । एते व्ययो दामादिभोपयोगस्तदभावः ।  
दानविच्छित्तिर्मंश्रीमा त्यागविच्छेदश्च । भोगः सर्वेषु विलासश्च । भङ्ग आभर्त-  
नम् । भुजङ्गव्यवृत्तश्च । एवमेकोनपञ्चाशत् । तेषां विनयेषु कूटशब्दप्रयोगः ।  
एते कूट कपटं प्रयोगो व्यापारः । वृत्ति शास्त्रविवरणम् । आजीवन च । स्थानक-  
भेद मसुखं पराङ्मुख्यं संपूर्णावलीकरणमिति यावत् । व्याघातश्च । स्नेहस्तेटादि-  
प्रेमाश्च । प्रतिपन्नानि परस्परप्रतीतानि च तानि जनहृदयानि च । गीतरय नाता-  
द्वयं । एते कूटाख्यां पञ्चविंशत् । अग्रे च शुद्धायवरूपं पार्थागतम् । ततो भोग-  
द्वयेनैकतं पतनान्यत्र च चरता क्रमेण शृङ्ग शृङ्गागतद्वयार्थाश्रयशुभ्रानि  
वेति स्थितस्थानकानि पञ्च । रागभङ्गादींश्चरितं त्रिभङ्गमिथाव्यानि च चारारि-  
गच्छःस्थानकानि च । एषं च नवानां स्थानकानां भेदध्विष्येषु । एते स्थानकस्य  
रक्षणोपनगरादेर्भेद उपपत्तयो न सत्पुरुषेषु सत्वात् ॥

पारो तमुद्रो के तट रूपे ने मुनोभिन सम्पूर्ण भूमण्डल म सर्वोत्तम, मणियो  
से निर्मित रमणीय महलो के कारण नुरपति (इन्द्र) की नगरी को भी परास्त  
करने वाली उम नगरी मे अव्यवभाव - यदि पाया जाता है तो व्याकरणशास्त्र  
के उपरगों मे, धनियो के धन मे नहीं । दान-विच्छित्ति यदि कही है तो मतलाले  
हाविदा के कपासमण्डल मे, त्यागियो के घर मे नहीं । भोग की शङ्कता  
धर्मो मे है, विलासी लोग मे नहीं । स्नेहक्षय (तेल का अभाव) रात्रि की  
समाप्ति के समय झुलते हुए दोषपात्रो मे है, प्रतिपन्न जन ( भक्त लोगो ) के  
हृदय मे स्नेहक्षय (प्रेम का अभाव) नहीं है । कूट का प्रयोग सपीत के  
तानो मे होना है, व्यवहार मे कूट ( छल ) का प्रयोग नहीं होता । वृत्ति  
( पाणिनि सूत्रो के अर्थ-विवेचन ) के प्रसङ्ग मे वैयाकरण के विद्याधियो मे  
बलह होता है, वृत्ति (वैतन) के प्रसङ्ग मे स्वामी और लोकर के बीच कलह  
नहीं होता । स्थानकभेद ( किसी को सीखा, किसी को उतरा बनाना ) लिखों  
मे देखा जाता है, सत्पुरुष लोग स्थानकभेद ( नगर के दर्शनीय या रक्षणीय  
स्थानो ) का विनाश नहीं करते ॥

[ व्याकरणोपपत्तौ — व्याकरणशास्त्र के प्र परा आदि उपपत्तों मे  
विभक्तिजन्य किसी तरह का विकार नहीं होता । उनके मूल स्वरूप का व्यय  
नहीं होता । कवि इस बात को धोतित करना चाहता है कि न व्यय होने की  
बात या स्थिति वही है तो केवल व्याकरणशास्त्रीय उपपत्तों मे, धनियो के  
धन मे नहीं । धनी लोग उदार हैं । उदारतापूर्वक धन का व्यय करते हैं ।

दानविच्छिन्नि—दानविच्छिन्नि के दो अर्थ हैं—मदबल की शोभा और दान का त्याग । मदबल की शोभा से हार्पियों का कपोल मन्त्रण मन्त्रित है किन्तु त्यागियों के घर में दान विच्छेद नहीं है । वे तीव्र उदा दान करते रहते हैं ।

भोगमद्गः—भोग मद्ग सात्त्विक विनाश और सर्व शरीर अर्थ का मासक है । सर्वभोग अपने शरीर को मद्ग ( टेंटा ) करते हैं विनाशियों का विनाश मद्ग ( नष्ट ) नहीं होता ।

स्नेहभयः—स्नेह शब्द तेल और प्रेम दोनों का वाचक है । रात्रि के विराम के समय स्नेह ( तेल ) के समाप्त हो जाने पर दीनक बुन जाते हैं नगर के नीचे रात्रभर शीत बसाने से । शीत के प्रगल्भ होने के समय में ही स्नेह क्षय होता या किसी स्नेही व्यक्ति के हृदय में स्नेह का अभाव नहीं होता ।

कूटप्रयोगः—उपीत के प्रमद्ग में अल्पत जयं जाने कूट शब्दों का प्रयोग होता है । व्यवहार में कूट ( छुप ) का प्रयोग नहीं होता ॥

किं बहुना

त्रिदिवपुरसमृद्धिस्पर्शया भान्ति यस्यां

सुरसदनशिखाप्रेष्याग्रहप्रग्नियनदाः ।

नमसि पवनवेष्टस्पष्टवैरुल्लसद्भिः

परमनिह बहुन्स्यो वैभवं वैजयन्त्यः ॥ ३२ ॥

त्रिदिवेष्ट ॥ सुराणां मदनानि प्राप्ताद्वा विनानानि च । आगृह्यन्त एमिरित्या-  
ग्रहा अङ्गुलकास्तेषु ये प्रग्नयपरत्नैर्नदाः । वेष्टस्पष्टवैरुल्लसद्भिः । उल्लसद्भी राजन्ति ।  
वैभवं भाङ्गाभ्यम् । सर्वोऽपि विविगीपुर्बदपरिकरः पत्राकां दर्शयतीतिमाकः ॥३२॥

देव नगरी स्वर्ग की सन्निधि की प्रतिद्वन्द्विता से देव गृहों के आगे गति बांधी हुई, आकाश में फलकवाते हुए वन्वाचनों से युक्त अनुप ऐश्वर्य को प्रकट करती हुई पत्राकायें सर्वथा सुगोभित हो रही हैं ।

[ नगरी की पत्राकायें स्वर्गों सम्पत्ति से लक्ष्मीं करती हैं । उसी लक्ष्मीं में बद्धपरिकर हो कर स्वर्ग के नामने लक्षी हैं । प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति अपने प्रति-  
द्वन्द्वी के कामने आकर लक्ष्मीं के विषे किन्तुल सुकमान हो कर उठा रहता है  
और अपने ऐश्वर्य को हर तरह से प्रकट करना चाहता है । ये पत्राकायें भी  
अपने ऐश्वर्य को व्यक्त करती हुई स्वर्ग के नामने उठी हुई हैं । जिस दंडे में  
पत्राकायें रहती हैं, उसके अग्रभाग को खूब अच्छी तरह बांध देते हैं ।  
उसी गति को लेकर कवि पत्राकायों में बद्धपरिकरता देव रहा है । ] ॥३२॥

अपि च ।

घावीं सदा सदाचारसज्जसजनसेविता ।

नगरी न गरीयस्या संपदा सा विवर्जिता ॥ ३३ ॥

चावींति । घावीं मनोज्ञा । सततं साध्याचारप्रह्वमाधुश्रिता सा नगरी पुरी गरीयस्या श्रिया न स्पृक्ता ॥ ३३ ॥

निरन्तर पवित्र आचरण मे सज्ज ( तत्पर ) मज्जनो द्वारा सेवित यह नगरी विशाल सम्पत्ति से परित्यक्त नहीं है ॥

[ यह प्रसिद्ध सा है कि सज्जनो के यहाँ लक्ष्मी नहीं रहती हैं किन्तु इस बात की प्रतिकूलता उस नगरी मे है सज्जन लोग अपने सौजन्य पूर्ण कार्य मे तत्पर हैं फिर विपुल लक्ष्मी से सम्पन्न हैं ] ॥ ३३ ॥

तस्यामासीन्निजभुजयुगलवलचिदलितसकलवैरिवृन्दसुन्दरीनेत्र-  
नीलोत्पलगलद्वन्द्वलबाष्पपूरप्लवमानप्रतापराजहंसः, सकलजलनिधि-  
वेलावननिष्वातकीर्तिस्तम्भभूपितभुवनवलयः, विद्वंभरामोग इव बहु-  
धारणक्षमः, प्रासाद इव नवसुधाहारी, रविरिवानेकधामाश्रयः । दनुज-  
लोक इव सदानघः स्त्रीजनस्थ, वसिष्ठ इव विश्वामित्रप्रासजननः जन-  
मेजय इव परीक्षितनयः, परशुराम इव परशुभासितः, राघव इवालयु-  
षोदण्डभङ्गरञ्जितजनकः ॥

तस्यामिति ॥ शत्रुकान्ताश्रुपुरे तरन्प्रताप एव राजहंसो यस्य । तथा जयस्तम्भै-  
र्भूपितभूमण्डलः । तथा स्तम्भोपमदोर्दण्डे भ्यस्ता शालभञ्जिकेव जयलक्ष्मीर्यस्य ।  
स धीरसेनसूनुर्नल इति प्रसिद्धो नृप आसीत् । बहुधानेकशो रणे चम । पक्षे  
बहुनां चरणे चमः । आभोग पूर्णता । वसुधां देवद्विजसंबद्धां हरत्येवशीलो न ।  
पक्षे नवया सुधया लेपविशेषेण हारी रम्यः । धनेक्या सप्ताङ्गरवाडहुधा माया  
लक्ष्या आश्रयः । पक्षेऽनेकस्य प्रचुरस्य धाम्न आश्रय । सदा निरयं नवो रम्य-  
तया पूर्य एव । पक्षे दानवै सह विश्वेपाममित्राणां प्रासकृत् । पक्षे विश्वामित्रो  
मुनिः । परीक्षितो नयः पाद्गुण्यं येन । पक्षे परीक्षेरभिमन्युसुतरस्य सुतः । पर-  
स्मिन्दुमी भासितः । पक्षे परशु । कुटारः । अलघुको गौरवाहः । तथा दण्डस्य वध-  
परिवलेशार्थहरणलक्षणस्य भङ्गेन मुक्त्या रञ्जितलोकः ॥ पक्षे वृहद्धनुर्भङ्गहर्षितजन-  
काक्यनृपः ॥

उस नगरी मे नल नामक राजा रहता था । उसने अपने बाहु युगल के  
बल से शत्रु दल को नष्ट कर दिया था ।

इस लिये उन ( शत्रुओं ) को मुन्दर रमणियों के नेत्र कमल से गिरती  
हुई पर्याप्त अशुओं की धारा मे उस ( नल ) का प्रताप रूप राजहंस तैर



रहा था । [ प्रतापी मल ने अपने शत्रुओं को नष्ट कर दिया था वत शत्रुओं की शिराओं वँधन्य दुःख से खिन्न होकर रो रही थीं ] सम्पूर्ण मनुष्य तट की रक्षा के लिये अपने कीर्तिस्वप्नों को भुँडा कर दिया है जिससे पूरा का पूरा भूमण्डल सुगोमित हो रहा था । वनुरा ( पृथ्वी ) विस्तार जैसे बह्यारण्य लम ( बहूत सी चीजों का धारण करने में समर्थ ) है जैसे राजा नव भी बहूषा + रणक्षम ( दिवित्र प्रकार से युद्ध सामर्थ्य रखे ) थे । भवन जैसे नव + मुद्राहारी ( नवीन धुने के लिये के कारण मनोहर ) होता है जैसे मल भी ( इस समार म ) नव + मुद्राहारी ( नवीन मुखशान्तिरूप अपृत को साने वाले ) थे अथवा न + वमुधा + हारी ( बाह्या या देव निमित्त दी हुई भूमि का अपहरण करने वाले नहीं ) थे । मूर्ध जैसे अनेक + धामाश्रय ( विभिन्न लोकों में आश्रय देने वाले ) है जैसे वह भी अनक्या + मा + आयय ( कई प्रकार की मन्त्री का वास स्थान ) थे । दनुजलाक जैसे सदानव ( राजनों से युक्त ) है जैसे नव भी स्त्री जनों के लिये मदा + नव ( निव्य-मदा ) दोहने थे । वसिष्ठ जैसे विश्वामित्र + वास + जनन ( विश्वामित्र ऋषि को डराने वाले ) थे जैसे नव भी विश्वामित्र ज्ञान जनन ( समार के कर्मियों को ज्ञान दिवाने वाले ) थे । जनमेजय जैसे परीक्षि + ततय ( राजा परीक्षित का लडका ) है जैसे नव भी परीक्षित + नव ( सब तरह से अपनी नीति को परीक्षित कर लिये ) थे । परगुराम जैसे परगु + फामिन ( परगुनाम अल्प से सुगोमित ) हैं जैसे नव भी पर + शुभ + आशिन ( इनको के शुभ में आस्था रखने वाले ), थे । जयदा उत्कृष्ट पुन की कामना करने वाले थे या पर ( दुश्मनों की भी दुर्बुद्धि को समाप्त कर शुन को कामना करने वाले थे । राघव ( भगवान् राम ) जैसे अन्नु को इड भद्र रञ्जित ( विगत धनुष की तोड कर जनक राजा को प्रसन्न करने वाले ) हैं जैसे नव अन्नुक ( गौरव पान ) है और दण्ड + भद्र + रञ्जित जनक ( मृत्यु आदि कठिन दण्ड को समान कर जनक ( प्रना ) को प्रनुरञ्जित कर देने वाले ) थे ॥

[ भगवान् राम ने जैसे विगत धनुष की तोड कर जनक की शिरा को नष्ट कर उन्हें प्रसन्न कर दिया था जैसे राजा नव भी अन्नुक ( गौरव पान ) थे और अपराधियों के कभी-कभी दण्ड को समान कर प्रतापी प्रसन्न कर दे रहे थे । यहाँ अन्नुक की दण्डादि के साथ सम्यग् ही गयी है । राघव पक्ष में धनुष अर्ध का दाक्षक कोदण्ड शब्द एक है । न्यायाधिकरण से किसी को मृत्यु आदि महान् दण्ड निल जाने पर राजा से प्रार्थना की जा सकती थी और वह अपनी इच्छा के अनुसार उसे क्षमा कर सकता था ॥ ]

सुमेरुविद्युत् जातरूपसम्पत्तिः, तुहिनाचल इव पुण्यभागीरथी-  
सहितः, चिन्तामणिः प्रणयिनाम्, अग्रणीः सांग्रामिकाणाम्, उपा-  
ध्यायोऽध्यायविदाम्, आदर्शो दर्शनानाम् आचार्यः शौर्यशालिनाम्  
उपदेशकः शस्त्रशास्त्रस्य, परिवृद्धो दृढप्रहारिणाम्, अग्रगण्यः पुण्य-  
कारिणाम्, अपाश्चिमो विपश्चिताम्, अपाश्चात्यस्त्यागवताम्, अचर-  
मश्चातुर्याचार्याणाम्, अपर्यन्तभूभारधारस्तम्भभूतभुजकाण्डकीलित-  
शालमञ्जिकायमानविजयधीः, श्रीदीरसेनसूनुः, समस्तजगत्प्रासाद-  
शिरः शैवरीभूतकान्तकीर्तिध्वजो, राजा, राज्यलक्ष्मीकरेणुकाचापल-  
संयमनशृङ्खलः, जलवृन्दकन्दलदावानलो नलो नाम ॥

जाता रूपसम्पत्तिर्यस्य । पद्मे जातरूपं सुवर्णं सम्पत्तिर्यस्य ॥ पुष्पभजनशीलः ।  
रथवान् । हितैः सह । पद्मे पुण्यगङ्गान्वितः । प्रणयिनामर्थिनां चिन्तनप्रदो  
मणिरिव । जगतः प्रासादः कीर्तिश्च ध्वज उपमानम् ॥

सुमेरु ( पर्वत ) जंमे जानरूप सम्पत्ति ( सुवर्णं सम्पत्ति मे युक्त ) है वैसे  
वह ( नल ) भी जातरूप सम्पत्ति ( मौन्द्यं सम्पत्ति मे युक्त ) थे । तुहिनाचल  
( हिमालय ) जैसे पुण्य + भागीरथी सहित ( पवित्र गंगा नदी मे युक्त ) है  
वैसे वह भी पुण्य भागी, रथी, सहित ( पुण्यात्मा, महारथी और हित की  
भावना से युक्त ) थे । प्रणयी ( याचक जन ) के लिये बृह चिन्तामणि ( समस्त  
आनाइक्षित पदार्थों को देने वाले ) थे । थोड़ाओ में अग्रसर थे । अध्ययन  
प्रकार के विशेषज्ञों में भी अध्यापक थे । वेदान्तादि दर्शनों के आदर्श ( निर्मल  
दर्शन ) थे । वीरता ही जिनकी शोभा है ऐसे लोगों के भी आचार्य थे । शस्त्र  
एव शास्त्र दोनों ही विद्याओं के शिक्षक थे । दृष्टापूर्वक प्रहार करने  
वाले लोगों की ओर भी सोत्साह आगे बढ़ने वाले थे । पुण्यात्माओं में  
अग्रणी थे । विद्वानों में सर्वोच्च थे । त्यागियों में अपाश्चात्य ( सबसे आगे )  
थे । चतुरता के उपदेश देने वालों में भी बृह सर्वोत्कृष्ट थे । समग्र भूमण्डल के  
भार को धारण करने वालों उसकी भुजायें आधार स्तम्भ- ( खम्भे ) की  
तरह थीं । उसके ब्राह्मस्तम्भ में विजयलक्ष्मी कठपुतली की तरह  
पिरो दी गयी थी । वह वीरसेन के पुत्र थे । सम्पूर्ण समाज रूप भव्य भवन  
के उच्चतम भाग पर उसकी भास्वर कीर्तिपताका पहारा रही थी । राज-  
सदमी रूपी हृदिनी को बाँधने के लिये वह बन्धन-शृङ्खला थे । दुष्ट जन  
समूह के लिये दावानल ( काननाग्नि ) थे ॥

यस्येन्दुकुन्दमुदकान्तयः सकललोकैरुत्कर्णप्रियातिथयो गुणाः  
सततमेकग्रहाण्डसंपुटसंकीर्णनिवासव्यसनविपादिनः पुनरनेकग्रहाण्ड-

कोटिघटनामभ्यर्थयमाना इव भगवतो विश्वसृजः कमलसंभवस्य कर्ण-  
लग्नाः स्वर्गलोकमधिचसन्ति स्म ॥

रन्देति ॥ परस्य नलस्य प्रासुयादेकस्मिन्नब्रह्माण्डेऽन्तःस्नेहप्रह्लाण्डनिर्माणं  
कारयिष्यन्त इव स्वर्गिनिर्निष्यमेव शलाप्यमानावाःकर्णलग्नः धृतौ विज्ञापनायं  
निकटीभूताः ॥

राजा नल के पुत्र चन्द्र, कुन्द और कुन्द की कान्ति की तरह निर्मल थे ।  
सोनों के कानों के प्रिय अङ्गिणि थे । हनेगा एक ही ब्रह्माण्ड में सपुट ( बन्द )  
होकर मञ्जीरना पूर्वक निदान करने के कारण दुःख का अनुभव करते हुए  
मानो अनेक करोड़ ब्रह्माण्ड निर्माण करने के लिये विश्व के निर्माता एव कमल  
से जन्म लेने वाले भगवान् के कानों में लगकर प्रार्थना करते हुए स्वर्ग लोक में  
रहने थे ।

[माहाराज नल के गुण एक ही ब्रह्माण्ड में नहीं बट पा रहे हैं । उन्हें अच्छी  
तरह रहने के लिये अनेक ब्रह्माण्ड चाहिये । इसीलिये । ब्रह्माण्ड के निर्माता  
ब्रह्मा के पान जाकर उनके कानों में कहते थे, "हमारे रहने के लिये करोड़ों  
ब्रह्माण्ड का निर्माण कीजिये ॥" ]

यस्मिन्श्च राजनि जनितजनानन्दे नन्दयति मेदिनीम्, गीतेषु  
जातिसंकराः, तालेषु नानालयभङ्गाः, नृत्येषु विषयकरणप्रयोगाः,  
वाद्येषु दण्डकरप्रहाराः पुण्यकर्मारम्भेषु प्रबन्धाः, सारिधूतेषु पादा-  
प्रयोगाः, पुष्पितकेतकीषु हस्तच्छेदाः, न्यग्रोधेषु पादकल्पनाः कञ्चुक-  
मण्डनेषु नेत्रविकर्तनानि, आसन् । न प्रजासु ॥

यस्मिन्श्चेति ॥ गीतादिष्वेव जातिमञ्जरादीनि न प्रजादिवति परिसंख्ययाव-  
धारणम् । गीतेषु नन्दयन्तीप्रसृतयो जातयोऽष्टादश । तामु सङ्गरो मिश्रप्रतीतिः ।  
पञ्चे जातयो विप्राणा । सङ्गरोऽनुचिन्तसम्बन्धेन विप्लवः । तालधञ्जपुटादि । लया  
द्रुतमध्यत्रिलम्बनलक्षणा । पञ्चे जालयो गृहम् । करणानि तलपुष्पपटादीन्य-  
द्योषरशतसंख्यानि । पञ्चे विपमास्वार्थे क । रगो युद्धम् । दण्ड कोणः । कर-  
पाणिः । पञ्चे दण्डो वधादि । करो राज्ञे देवोऽज्ञः । प्रहारो घातनम् । प्रबन्धाः  
सातस्यानि प्रकृत्यवन्धाश्च । पाशो बन्धो बन्धनरञ्जुश्च । सारपो हि दायैर्बन्धन्ते ।  
कञ्चार्थस्तु पाशक एव प्रतीतः । हस्तः केतकीगर्भं पाणिश्च । पादस्य मूलस्य  
रचना । न्यग्रोधपादप पादात्रचयति कल्पयति । पञ्चे पादस्याल्लघ्नेः कल्पना  
कर्तनम् । नेत्रं वस्त्रविशेषो नयनं च । विशेषेणाङ्गप्रमाणेन कर्तनं विकर्तनं  
विश्वगहनं च ॥

त्रिमके राज्यकाल में प्रजा आनन्द मग्न थी, पृथ्वी प्रसन्न थी । योतों में  
हो नन्दयन्ती आदि जातीयों का नाकर्त्तव्य था । आदमियों में वर्ण सावर्ण्य नहीं  
था । संगीत के बदसर घर ताल देने समय नाना + नय भङ्ग ( विभिन्न स्वरों

का उतार चढाव होता था किसी आदमी का नाना + आलम + मङ्ग ( विविध गृह स्वस ) नहीं होता था ।

तृप्त्य के अवसर पर ही विषमकरण ( तेल, पुष्प, पट, आदि १०८ करणो ) का प्रयोग होता था, विषमक ( भयङ्कर ) रण ( युद्ध ) नहीं होता था । बाजे बजाते समय ही दण्ड ( सकडी का प्रयोग अथवा हाथ ) का प्रहार किया जाता था, प्रजा में किसी को मृत्यु आदि दण्ड अथवा जर ( मालगुबारी ) आदि से पीड़ित नहीं किया जाता था । पुण्यकर्म सम्बन्धी प्रयासो मे ही बहुत से प्रबन्ध किये जाते थे, अथवा पुण्यकर्म ( यज्ञ आदि कार्यों ) मे ही बड़े-बड़े प्रबन्ध ( प्रायवत आदि महापुराणो ) का पाठ किया जाता था । किसी प्रजा के ऊपर प्रबन्ध ( प्रकृष्टबन्धन ) नहीं लगाया जाता था । सारीधून मे ही पाशो का प्रयोग होता था, किसी प्राणी को फसाने के लिये पाश ( जाल का प्रयोग नहीं होता था । विकसित केवडे का हस्तछेद ( मध्यभाग का तोटन ) होता था, किसी आदमी का हस्तछेद ( भुजकर्तन ) नहीं होता था । न्यग्रोध ( बट ) का वृक्ष ही पादकल्पन ( नवीन जटो या बरोहो की सृष्टि ) करने थे । किसी आदमी का पादकल्पन ( चरण कर्तन ) नहीं किया जाता था । कञ्चुकमण्डन ( चोटी ) आदि सोने के समय ही नेत्र ( नामक बन्धो ) का विकर्तन ( छेदन ) होता था, किसी प्राणो का नेत्रविकर्तन ( नेत्र निकालन ) नहीं किया जाता था ॥

[ नेत्र विकर्तन—नेत्र एक चमकीले वस्त्र का नाम है । चोटी आदि के निर्माण के समय दर्जो लोग वस्त्र को बाटते हैं । कोई प्रजा अपराध नहीं करती जिसके दण्ड के उपलक्ष्य मे किसी की आँख निकाली जाय ॥

यश्च कोऽप्यन्योदृश एव लोकपालः । तथाहि । अपूर्वो विद्युध-  
पतिः, अदण्डकरो धर्मराज, अजघन्यः प्रचेता. अनुत्तरो धनदः ॥

प्रचेति ॥ कोऽपि विस्मयहेतुः । लोकं अशरपालयन्ति ये तेभ्योऽन्यादृशो विस-  
दृश एव लोकं प्रजां पालयतीति कृत्वा लोकपालः । श्योक्तमेव द्रवति—तयोही-  
त्यादिना । यतो विद्युधानां सुराणां पतिः स एव पूर्वं पूर्वदिग्गुक्त्वात् । नलसत्पूर्वं  
उदृशो विद्युधानां विद्युपां पति । दण्डपात्रिर्यमः । अलरतु न दण्डो वधादि, करो  
राज्ञे द्योऽशो यस्मादियदण्डकर । तथा धर्मप्रधानराजा धर्मराज । धर्मविजय-  
रथात् । प्रचेता चरणः सह अघन्यया पश्चिमया वर्तते । नलसत्अघन्योऽङ्कुरितः  
प्रकृष्टचेताश्च । यदुक्तम्—'अघन्य चरमे दिशने जघन्य गहितेऽन्यवत्' । धनदः  
कुधेरः सहोत्तरया दिशा वर्तते । नलरतु न विघ्नत उत्तर उदृशोऽस्मादित्यनुत्तर ।  
तथा धनं ददातीति धनद ॥

यह एक दूतरे ही उँग का अतीकिक लोकपाल था । [ ससार के पानक यमबुधेर आदि लोकपाल से भिन्न ही यह प्रजापालक लोकपाल था ]

क्योकि विबुधरति ( देवताओं के स्वामी इन्द्र ) तो पूर्व दिशा में रहते हैं किन्तु यह तो विबुध पति (पण्डितों का पति) होता हुआ भी अपूर्व (अद्भुत) था । धर्मराज (धर्मराज) हमेशा दण्डकर ( हाथ में दण्ड लिया करते ) हैं । किन्तु यह नल तो अदण्डकर ( दण्ड आदि दण्ड और कर नहीं लगाता ) है फिर भी धर्मराज ( धर्म प्रधान राजा है । प्रचेता ( दण्ड ) तो अघन्य ( पत्रिम दिशा में रहने वाले ) हैं नल तो अजघन्य ( अकुलित ) है और प्रचेता (अनृष्ट चित्त वाला) भी है । धनद (कुंवर) उत्तर दिशा में रहते हैं । नल तो धनद ( धन देने वाला ) किन्तु अनुत्तर ( सर्वानृष्ट ) है ॥

[ नल भिन्न शैली का ही तोङ्गपाल था, क्योकि इन्द्र भी एक लोकपाल हैं जो नपूर्व हैं, किन्तु नल अपूर्व था । धर्मराज दण्डकर हैं नल अदण्डकर था । वरुण अघन्य हैं नल अजघन्य था । कुंवर उत्तर हैं नल अनुत्तर था । इसलिये उनकी भिन्नता सिद्ध हो गयी ॥ ]

येन प्रचण्डदोर्दण्डमण्डलीविश्रान्तविजयश्रिया अघणोत्पलदलाय-  
मानमानिनीमानलुण्ठाकलोचनेन पृथ्वी प्रिया च कामरूपधारिणी सा  
तेन मुक्ता ॥

वैनेति ॥ विजयता मुनेत्रेण येन मू' कान्ता च सातेन मुत्तेन निर्विष्टा मुक्ता ।  
सातेन मुन्वम् । यद्मरमिह—'शर्ममातमुन्वाति च' इति । कामरूपो देशविशेषः ।  
प्रिया तु काम्यत इति काममभिलषणीय रूपम्, काममतिशयेन रूपं वा धरतीत्ये-  
वंशीला ॥

उसने अपने बलशाली बाहुमण्डल में विजयलक्ष्मी को विश्राम का अवसर  
दिया था । कानों के ऊपर लगे हुए कमलदल मद्दुग उसकी आँखें मातिनी-  
नादिनाओं के मान को लूट लेने वाली थीं । उसने कामरूप देश की भूमि और  
कामरूप ( सौन्दर्यातिशय ) धारण करने वाली कान्ता का भोग किया ॥

यस्या सफलजनमनोहारिविशेषकम्, पृथुललाटमण्डलम्,  
अभिलषणीयकान्तयः कुन्तलाः, श्लाघनीयो नामिन्यभागः, बहुल-  
घल्लीकः सरोमालिकालंकारश्च मध्यदेशः, प्रकटितकामकोटिविलासः  
काञ्चीप्रदेशः ॥

यस्या इति ॥ यस्या सुव' विशेषक-लाट-कुन्तल नामिन्य मध्यदेश काञ्ची इत्येवं  
रूपा देशाः । लवली लताविशेष । सरसां मालिका श्रेणी । कामकोटिनाम्नी देवी ।  
प्रियापदे विशेषक निलकम् । ललाटमण्डलम् । कुन्तला' केशा । नामिकार्या भवो  
नामिन्यः । मध्यदेश उदरम् । बहुला बहुधो वक्ष्य उदररेखा यत्र तथा सह रोम-  
पट्टिमण्डनेन । प्रकटितानङ्गोरकर्षविलासः काञ्चीप्रदेश' शोणी ॥

जिस प्रिया का विशेषक ( तिलक ) सब मनुष्यों के चित्त का हरण कर लेता था । ललाट भाग बड़ा ही विशाल था, कुन्तल ( धाली ) की कान्ति नितान्त स्पृहणीय थी । नासिक्य ( नाक का भाग ) अत्यन्त प्रशसनीय था । उसका मध्य भाग बहुल + बलीक ( त्रिवलियो मे युक्त ) तथा रोमपक्ति रूप अनङ्कारो से युक्त है ।

काञ्चीप्रदेश ( करघनी पहनने का स्थान ) करोडो कामो के विलास को प्रकट कर रहा है ।

पृथ्वी पक्ष — उस पृथ्वी की विशेष शोभा बढ़ाने वाला विशाल जाट देश था । स्पृहणीय कान्ति से समन्वित कुन्तल देश था । नासिक्य प्रदेश बड़ा ही प्रशसनीय था । सबली वृक्षो तथा सरोमालिकाओ ( सरवरो ) से युक्त मध्य देश था । कामकोटि नाम की देवी से अलङ्कृत काञ्ची प्रदेश था ।

किं बहुना ।

यस्याः कृष्णागरुचन्दनामोदयहुल्लकुचाभोगभूषणाः नृत्यतीवाङ्गरङ्गे रमणीयतथा निरुपमा नवा यौवनश्रीः ॥

यस्या इति ॥ अङ्गेऽङ्गाद्यदेश एव रङ्गे नर्तनस्थाने निरुपमवापौ सति वनश्री-नृत्यतीव । घाततरलनमेव नर्तनम् । कृष्णा पिप्पली । अगरुचन्दनौ वृषविशेषौ तेषामामोदः । बहुना लकुचानामाभोगो विस्तारः । तौ भूषणं यस्याः । पक्षे चर्वा-वशात्काष्ठागरुचन्दनयोराामोदेन व्याप्तस्तनविस्तारमण्डना । नवेति यौवनश्रीरिति च भिन्नम् ॥

कृष्णागरु (अगर) और चन्दन की गन्ध और विशाल स्तनो की व्यापकता से अलङ्कृत, रमणीयता के कारण अनुपम एव नवीन यौवन लक्ष्मी जिसके अङ्ग रूप रङ्गमञ्च पर नाच भी रही थी ।

पृथ्वी पक्ष — कृष्णागरु (अगर) चन्दन वृक्षो की गन्ध तथा बहु + लकुच (अधिकांश लकुच) वृक्षो की व्यापकता से अलङ्कृत वनलक्ष्मी अनुपम वायु के बहते रहने पर अङ्ग देश रूप रङ्गमञ्च पर नाच भी रही थी ॥

[ पृथ्वी पक्ष मे निरुपमा नवा यौवनश्री शब्द का विच्छेद निरुपमान + वापौ + वनश्री करना चाहिये । अर्थात् अनुपम वायु के बहते रहने पर वनश्री अङ्ग देश के रङ्गमञ्च पर नाच रही थी । ]

किं चान्यत् ।

अन्य एव नवायतारः स कोऽपि पुरुषोत्तमो यो न मीनरूपदूषितः नाङ्गीकृतविश्वविश्वंभारामरोऽपि धूर्माकृतात्मा, न घराह्वयपुपाक्लेदो न पृथ्वीं शमार, न च नरसिद्धः समुत्सन्नद्विरण्यकशिपुः, न धलिराज-

दग्धनविधौ घामनो दैन्यमकरोत्, नापि रामो लङ्केदेवतभियमपाहरत्,  
नापि बुद्धः कल्किकुलावतारी ॥

किं चेत् ॥ कोऽप्यपरिच्येपमहिमा । तथा नवः पूर्वविलङ्घनोऽवतारो जन्म  
यस्य स तथाभूतः । यदि वा 'पु स्तुतौ' इत्यस्य नवाः स्तुतयोऽवतार्यन्ते यस्मि-  
न्नि स्तवारसम् । सर्वोर्वीपतिभ्योऽन्योऽमाघाण एव स नलो राज्ञा । पुरुषेण-  
समः । तथा अमो रोगोऽस्यास्तीत्यमो । नानी अमनी नीरोपः । यदि वा नमयति  
शत्रुनवरयमिति कृत्वा नमी । प्रतापशान्तारिचक्र इत्यर्थः । तथा न रूपे दूषित ।  
तथा स्वोक्तधराधुरोऽपि न कूर्मिर्नङ्कुरः । कुस्तनोमिः पीडा यस्य स कूर्मिः । अङ्गी-  
कृतमारी हि पीडावान्भवति । यदुक्तम्—'कूर्मिः पीडात्रयोऽकण्डामङ्गशाकारध-  
वीचिषु' । तथा वरमादृवं पुष्पता क्लेशेन न घामपि तु सुखेनेत्यर्थः । नरेषु सिंह-  
शीर्षात् । न च मनुष्यं द्विरण्यं धनं कशिषु मीजनाच्छादनादि यस्मात् । तथा  
चटिनां राज्ञां दग्धने विधाने वा अमोदैन्यं न चाकारोत् । रामः सुन्दरः । अल-  
मत्यर्थं कस्य प्रह्लाग ईश्वरस्य शम्भोश्च धियं नापि न च इतश्चात् देवस्वापहारी  
नेत्यर्थः । प्रह्लाशौ देवानामुपलक्ष्यम् । बुद्धो विद्वाच्च पापिकुलोपध्वः, अन्य एव  
पुराणपुराणशावताराद्विसहस्र एव नवावतारो नवसंख्यावतारः । कोऽप्ययं  
पुरुषोत्तमो विष्णुरियुष्टिलेशः । तस्यै मीनकूर्मवराहनरसिंहवामनरामपुद्गकरि-  
नोऽवताराः । हिरण्यकशिपुचलिलङ्केशस्तत्प्रतिपक्षाः । सप्त परशुरामोऽपि । तद् ।  
अलमिति भित्वा कु ईश्वरोऽक्षरः केशरः सहस्राहुर्नो अमदग्निहोमाहुर्नीमात्रदण्डात् ।  
रामः कृष्णः तथा केन वायुनेष्टे समर्थो भवति पवनाशनत्वात् । यद्वा कस्य  
पानीयस्य यमुनाद्वदलङ्घनस्यैश्वरः स्वामी केशरः काटीयमर्षस्य धियमपवहारः ॥

और वह कोई हुआ ही नवीन अवतार था । पुरुषोत्तम ( विष्णु ) होजा  
हुआ भी मीन रूप ( मत्स्यावतार ) धारण कर अपने को दूषित नहीं किया ।  
यदनि विश्व ( जन्मन्त ) विश्वम्भरा ( पृथ्वी ) के बोज को स्वीकार कर जिना  
है फिर भी दूर्म का रूप धारण नहीं किया । वराह ( झूकर ) का शरीर  
धारण कर केश के साथ पृथ्वी को धारण नहीं किया । नरसिंह या विष्णु  
हिरण्यकशिपु का विनाश नहीं किया । बलिराज दग्धन ( बली राजानों को  
दाँधने के लिये वामन रूप धारण कर दीनता नहीं दिखाया । राम होकर भी  
लङ्केसर श्री ( रावण को राजसभ्यो ) को नष्ट नहीं किया । ( बृद्ध होता  
हुआ भी कन्कि कुल से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

[ पुरुषोत्तम— जो पुरुषोत्तम (विष्णु) होगा वह मत्स्य रूप अवश्य धारण  
जिना होगा । नल पुरुषोत्तम या नेकिन मीनरूपधारी नहीं था । वह पुरुषोत्तम  
( नरसिंह ) था और अनमी ( रोग हीन ) और न रूप दूषित ( दूषित रूप  
वाना न ) था । अम का अर्थ रोग है । रोग त्रिषे रहेगा उसे अमी कहेंगे ।  
जो अनमी ( रोगी नहीं होगा वह अनमी कहलायेगा । यः और नमी के बीच

एक खण्डाकार का प्रश्लेष माना जायगा। गुण सन्धि होने के बाद 'एडः पदान्तादति' (पा. सू.) से पूर्वरूप हो गया है। अर्थात् नल रोगहीन और दूषित सौन्दर्य वाला नहीं है। इस पक्ष में पुरुषोत्तमो य + अनमो + न + रूप + 'दूषिता' पदच्छेद है। यदि अकार प्रश्लेष की कल्पना न की जाय तो नमो पद रह जायगा। उसका अर्थ होगा अपने प्रताप से शत्रुओं को नवा देता है।

नवावतार—मे णु स्तुती घातु से निष्पन्न नव शब्द का स्तुत्य अर्थ होगा। अर्थात् राजा नल स्तुत्य है।

कूर्मीकृतात्मा—पृथ्वी का भार धारण करने के लिये भगवान् विष्णु कच्छप का अवतार धारण किये थे। किन्तु नल सम्पूर्ण पृथ्वी का सरक्षण रूप भार धारण कर रहा था लेकिन कु + ऊर्मि (कुत्सित पीडा) से वात्मा को सबलित नहीं किया था। अर्थात् विष्णु कूर्मी कृतात्मा है किन्तु नल कूर्मीकृतात्मा नहीं थे।

वराहवपुषा—भगवान् नारायण वराह का अवतार धारण कर बड़े क्लेश के साथ पृथ्वी का भार धारण किये थे। किन्तु नल वर ( विशाल ) आहव ( युद्ध ) पोषित करने वाले क्लेश से पृथ्वी का भार धारण नहीं किये थे। अर्थात् पृथ्वी के सरक्षण के अवसर पर कोई विशाल शत्रु नहीं जिसे दवाने के लिये महान् युद्ध करना पड़े और उसके लिये कष्ट उठाना पड़े। शत्रु हीनता की वजह से वह अनायास राज्य संचालन करता था।

हिरण्यकशिपु —नरसिंहरूप धारण कर भगवान् नारायण हिरण्यकशिपु का विनाश किये थे किन्तु नल नरसिंह ( पुरषो मे सिंह सदृश ) था किन्तु हिरण्य ( धन ) और कशिपु ( भोजन दम्भ ) का विनाश नहीं किया था।

वामन —भगवान् नारायण वामन रूप धारण कर बली राजा को बाँधने के लिये भिक्षा माँगने के लिये उसके पास गये थे किन्तु नल बलिराज ( बलिष्ठ राजाओं ) को बाँधने के लिये मनो दैत्य ( मानसिक दोनता ) नहीं दिखाता था। बड़े उत्साह के साथ बली राजाओं पर आश्रमण कर देता था। नल पक्ष में मनोदैत्यम् विच्छेद कर वा पद का अन्वय न शब्द के साथ करना चाहिये। अर्थात् बलिराज बन्ध विधी नवा मनोदैत्यमकरोत्।

लङ्केश्वर श्रियम् —भगवान् राम ने रावण की राज्यलक्ष्मी नष्ट की थी। नल राम ( अत्यन्त सुन्दर ) है। अलम् ( व्यर्थ ही ) व ( ब्रह्मा ) और ईश्वर ( शिवजी ) की श्री ( सम्पत्ति का हरण नहीं करता था। यहाँ भी रामो और लङ्केश्वर के बीच अकार की कल्पना नल पक्ष में की जाती है। नल पक्ष में राम शब्द सुन्दर अर्थ का वाचक है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मा और शिव आदि के निमित्त दी गयी सम्पत्ति का अपहरणरूप कुट्टय नल के राज्य में नहीं होता था।



राम ( परशुराम ) होता हुआ भी केशव ( दुष्ट राजा सहस्रार्जुन ) की राजलक्ष्मी का अपहरण नहीं किया । अथवा—राम ( वृष्ण ) या तो भी क ( यमुना जल ) के ईश्वर ( कालीय नाग ) की श्री का अपहरण नहीं किये । वे विरोध पक्ष अर्थ हैं । इनका परिहार ब्रह्मा और शिव वाले अर्थ में पूर्ण हो जाता है ।

बुद्ध — भगवान् के दश अवतारों में से कल्की भी एक अवतार है । बुद्ध के बाद दशम अवतार कल्की का ही हान वाला है । इनलिये आवश्यक है कि बुद्ध की आत्मा का सम्बन्ध अपने दूसरे जन्म वाले कल्की से हो । बुद्ध होता हुआ भी कल्कि कृत् स उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, विरोध । बुद्ध ( विद्वान् ) है । कल्कि कृत् ( पापी दश ) में उसका जन्म नहीं हुआ है, परिहार ।

इस अनुच्छेद में दशों अवतारों का वर्णन किया गया और राजा नल को नर्मी अवतारों से विलक्षण बताया गया इसीलिये कवि ने कहा था, “अन्य एक नवावतार” । ]

किं बहना ।

घन्याम्ते दिवसाः स येषु समभूद् भूपालचूणामणि-  
ल्लोकालोकगिरीन्द्रमुद्रितमर्द्दाधिथान्तर्कातिर्नलः ।  
ल्लोकास्तेऽपि विरन्तनाः सुहृतिनस्तद्वक्त्रपद्मेद्वे  
यैर्विस्फारितनेत्रपद्मपुटकैर्लाघण्यमास्यादितम् ॥ ३४ ॥

वे दिन घन्य थे जब लोक और आलोक नामक पर्वतों से घिरी हुई पृथ्वी पर जपनी कीर्ति को विन्मृत करन वाले राजरत्न नल हुए थे । वे पुष्पात्मा प्राचीन लोग भी घन्य थे जो अपनी आँखों के पत्र रूप पुट के ( दोनों ) में महाराज नल के मौन्दर्य को लेकर आम्बादित किये ॥ - ८ ।,

अपि च ।

ये कुम्भद्युतयः समस्तभुवनैः ऋणावृतंसीकृता  
यैः सर्वत्र शलाकयेव लिखितैर्दिग्भित्तयश्चित्रिताः ।  
यैर्वक्तुं हृदि कल्पितैरपि वयं हर्षण रोमाञ्जिता  
स्तेषां पार्ययपुङ्गवः स महनामेको गुणानां निधिः ॥ ३५ ॥

कुम्भ कान्ति सद्गुण जिन गुणों को समस्त लोगों ने अपने कानों के बलबुद्धार बना लिये, जिन ( गुणों ) से दिग्ग रूप भित्तियाँ उस तरह बिल उठों जैसे शलाका ( चित्र की तुला ) ( कूची ) से जिनी भित्ति पर चित्र खींचा जाय, मन में जिन ( गुणों ) की कल्पना में भी प्रमत्तता के मारे रोमाञ्च हो जाता था, ऐसे समस्त गुणों का एकमात्र स्थान नल राजाओं में सर्वथेष्ठ था ॥ ३५ ॥

यस्य च युधिष्ठिरस्येव न क्वचिदपार्थो वचनक्रमः मरुमण्डल-  
मिवापापं मानसम्, महानसमिव सूपकारसारं कर्म, कार्मुकमिव  
सत्कोटिगुणं दानम्, दानवकुलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं राज्यम्, राजीय-  
मिव भ्रमरहितं सर्वदा हृदयम् ॥

यस्य चेति ॥ अर्थादपेतोऽपार्थः । अन्यत्र पृथाया अपायात्वात् । अपापं निष्पा-  
पम् । पक्षेऽपेता आपो यस्मात् । सुष्टु उपकारेण सारम् । पक्षे सूपकारैः सूदै  
सारम् । सायात्रप्रतिपादनादानं सस्त्रोभनम् । कोटि संख्या । पक्षे कोटिरटनि ।  
गुणो ज्या । वृषो धर्मः । पर्वं पूर्णमास्यादि उत्सवः पुत्रजन्मविवाहादिस्ते दृष्टा  
अनुष्ठिता यत्र । पक्षे वृषपर्वं दानवः । भ्रमः संशयः । पक्षे भ्रमरेभ्यो हितम् ॥

युधिष्ठिर की तरह जिसका वचन क्रम अपार्थ ( अर्थरहित ) नहीं था ।  
मरुमण्डल ( मरुभूमि ) जैसे अपाय ( अप + आप = जल रहित ) हैं वैसे ही  
नल अपाय ( पाप रहित ) हृदय का था ।

रसोई घर में जैसे सूपकार ( पाचक ) का कर्म ही सार ( मुख्य ) तत्त्व  
होना है वैसे नल में भी सूपकार ( सुन्दर उपकार ) रूप कर्म ही मुख्य अर्थ  
है । धनुष जैसे सत्कोटि गुण ( सुन्दर यष्टि और प्रत्यश्वा से युक्त होता है वैसे  
नल का दान सत्कोटि गुण ( करोड़ों गुणों से युक्त है या और राजाओं की  
अपेक्षा करोड़ गुणित है । दानव कुल ( राक्षस वंश ) जैसे दृष्ट वृष पर्वोत्सव  
( वृषपर्व नामक राक्षस के उत्सव को देख चुका ) है वैसे नल का राज्य भी  
दृष्ट वृष पर्वोत्सव ( वृष ( धर्म ) पर्व ( पूर्णमा ) उत्सव ( पुत्र जन्म, विवाह  
आदि ) को देखा है । कमल जैसे सदा भ्रमर + हित ( भ्रमरो से घिरा ) रहना  
है वैसे उसका हृदय भी भ्रमर + रहित ( सन्देह रहित ) था ॥

यश्च परमहेलाभिरतोऽप्यपारदारिकः । शान्तनुतनयोऽपि न  
कुरूपयुक्तः ॥

यश्चेति ॥ हेला शृङ्गारचेष्टा । यद्वा पर उत्कृष्टो मह उत्सवो यस्या तस्या-  
मिलायां वृधिष्यां रतः । राजन्वती द्वि मही सप्तसखा । विरोधे महेला स्त्री शान्त-  
श्चासौ नुतमयश्च । शान्तो जितेन्द्रियः । तथा जुनः स्मृतो नयो भीतिर्यस्य । तथा  
न कुसितरूपयुक्तः । पक्षे शान्तनुपुत्रो गान्धेयः कुरूणां अश्रियाणामुपयोगी ॥

पर + महिला ( दूसरे की स्त्री ) में अनुरक्त है फिर भी उसकी अपार  
दारिकार्य ( अनेक कन्यायें ) हैं । विरोध ।

पर + मह + इला ( उत्कृष्ट उत्सवों से युक्त पृथ्वी ) में अनुरक्त है मत  
अपारदारिकाओं ( कन्याओं ) वाला है । परिहार ।

शान्तनु + तनय ( भौष्म ) है फिर भी कुछ + उपयुक्त ( कुरुओं के उपयोग  
में ) नहीं है, विरोध ।

ज्ञान + नुत + नय ( जिनेन्द्रिय और प्रगमित नीति वाला ) है और कृ + स्न + युक्त ( खराब स्न वाला ) नहीं है । परिहार ।

[ परमहिता—जो दूसरे की म्त्री में अनुरक्त रहेगा उनकी अपनी अनक सखियाँ वहाँ से जायेंगी । विरोध बीज । वह उन्सव सम्पन्न उत्कृष्ट पृथ्वी का सम्राट् है । अपने राज्य में सर्वदा अनुरक्त है । प्रजा की समस्त बातिकाओं को अपनी लडकी समझता है । इसीलिए उनकी अपनी अनार दारिकाएँ ( कन्दारें ) हैं । परिहार बीज ।

ज्ञाननुतनय ( भीष्म ) ऋश्यों के उपयोग में नहीं थे । ज्ञाननुतनय होते हुए भी कृद्यों के उपयोग में न होना बड़ी विरोध का बीज है ।

परिहार पक्ष—ज्ञान स्वभाव वाला और प्रगमित नीति वाला है तब उसने कुरपता का अभाव है । ]

किं बहुना ।

सदाहंसाकुलं विभ्रन्मानसं प्रचलत्प्रलम् ।  
भूमृन्नाथोऽपि नो याति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥ ३६ ॥

सदेव ॥ भूमृतो गिरपो नृगश्च । उद्यायवं द्वयोरपि । स्यप्येवं हिमाचलो यस्य साम्यं नायाति । यतः । सदाहं सखेदम् । साकुलं व्यग्रम् । प्रचलत्प्रमानानम् अहं व्यामूढम् । मानसं चेतः । विभ्रति । विद्वान्ते तु मानसं मरः । सदेति भिन्नम् । प्रचलत्प्रलं यत्र । शेष प्रतीवम् । आकुलमन्दो भावप्रधानो यथा "तिष्ठन्ति च निराकुला" ॥ ३६ ॥

निरन्तरे चञ्चल चल क्षले तथा हँसों से भरे हुए मानसरोवर को धारण करने वाले भूमृन्नाथ ( पर्वतों का स्वामी ) हिमालय भी उसकी समानता नहीं करता ।

[ क्योंकि हिमालय सदाह ( वेद पूर्वक ) साकुल ( व्यग्रता के साथ प्रचलन् ( काँपते हुए ) ।

अलम् मानस (जड़ हृदय को या जड़ मानसरोवर को) धारण करता है ।

राजा नन सदाह, सत्कुल, कम्प युक्त, तथा जड़ हृदय को धारण नहीं करता भूमृन्नाथ नल भी है और हिमालय भी । किन्तु सदाह और साकुल मानस को जैसे हिमालय धारण करता है वैसे नल सदाह और साकुल मानस को धारण नहीं करता । नन के पास दाह और व्याकुलता की कोई स्मिति नहीं है । उ और ल में अभेद माना जाता है इसीलिए अन्वय से जड़ अर्थ लिया जाता है । ] ॥ ३६ ॥

अपि च ।

नक्षत्रभूः क्षत्रकुलप्रसूतेर्युक्तो नभोगैः खलु भोगभाजः ।

सुजातरूपोऽपि न याति यस्य समानतां काञ्चनाकाञ्चनाद्रिः ॥३७॥

नक्षत्रेति ॥ यस्य नलस्य काञ्चनाद्रिर्मरु काञ्चन काञ्चिदपि समानतां नायाति । सुष्ठु जातरूप सुवर्णं यत्र । नलपदे रूप सौन्दर्यम् । अतो द्वयोरपि सुजातरूपत्वात्साम्ये निषेध । यतो नाय च्छत्राद्भवति स्म । तथा भोगैर्न युक्तः । नलस्य च्छत्र-प्रसूतिर्भोगभाजः । सिद्धान्ते तु नक्षत्राणां भूः स्थानम् । तथा नभसि गच्छन्ति ये तैर्नभोगैर्देवैर्युक्तः ॥ ३७ ॥

भु + जातरूप ( स्वर्णमय ) काञ्चनाद्रि ( सुमेरु ) भी नल से कोई समानता नहीं रखता, क्योंकि काञ्चनाद्रि न + क्षत + भू ( क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नहीं ) है जब कि नल क्षत्रकुल प्रसूति ( क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ ) है । काञ्चनाद्रि न + भोग + युक्त ( भोग युक्त नहीं ) है जबकि नल भोगभाज ( सुख ऐश्वर्य आदि पदार्थों से सम्पन्न है । इसीलिये काञ्चनाद्रि से नल की कोई समानता नहीं है ।

गिद्धान्तपक्ष — काञ्चनाद्रि नक्षत्र भू ( नक्षत्रों का उत्पत्ति स्थान ) है । नभोग ( आकाश मार्ग से जाने वाले देवताओं से ) युक्त है ॥ ३७ ॥

तस्य च महामहोपतेरस्ति स्म प्रशस्तिस्तम्भः सकलश्रुतिशास्त्र-शासनाक्षरमालिकानाम्, न्यग्रोधपादपः पुण्यकर्मप्ररोहणाम्, आकरः साधुव्यवहाररत्नानाम् ।

उत्त महा महीपाल ( राजा नल ) का मन्त्री श्रुतशीख नाम का ब्राह्मण था । वह समस्त श्रुतियो, शास्त्रों एवं शासन ( नीति ) विद्याओं का प्रशस्ति स्तम्भ ( आधारस्तम्भ ) था । समस्त पुण्यकर्म रूप कर्मों के प्ररोह ( अक्षुरण ) के लिये बटवृक्ष था । सुन्दर व्यवहार रूप रत्नों का आकर ( समुद्र ) था ।

प्रशस्तिस्तम्भ — जैसे किसी की प्रशंसा किसी शुभ पत्थर पर लिखकर स्थायी कर दी जाती है वैसे ही उत्त ब्राह्मण के हृदय पर समस्त विद्यायें अव्यन्त स्पष्ट ढंग से सक्रान्त हो गई थी ।

न्यग्रोधपादप — बटवृक्ष से जैसे कई प्ररोह ( बरोह ) निकलते हैं और उदकते-लटकते पृथ्वी से सम्पर्क कर एक नया मूल ही स्थापित कर देते हैं वैसे श्रुतशील से अनेक नवीन पुण्य ध्यापार प्रतिदिन हुआ करते थे । ]

इन्दुः पार्थिवनीतिज्योत्स्नायाः, कन्दः सकलकलाङ्कुरकलापस्य, सागरः समस्तपुरुषगुणमणीनाम्, आलामस्तम्भश्चपलराज्यलक्ष्मी-करेणुकायाः, सकलभुवनव्यापारपारावारनौकर्णधारः, सुधाम्मोनिधि-

डिण्डीरपिण्डपाण्डुरयशः कुशेशयज्ञण्डमण्डितसकलसंसारसराः,  
सरागीकृतसमस्नपार्थिवानुजीर्वा, जीवितसमः, प्राणसमः, हृदयसमः,  
शरीरमाश्रमित्री द्वितीय इवात्मा, कुलरुमागतः, संक्रान्तिदर्पणः  
सुखदुःखयोः, स्वभावाचानुरक्तः, शुचिः, सत्यपूतयाक्, कृतघ्नः, ब्राह्मणः  
सालङ्कायनस्य सन्तुः श्रुतशीलोनाम महामन्त्री ॥

तस्य चेति ॥ तस्य नरपतेः श्रुतशीलो नमामाख्योऽस्ति रम आसीद् । यशसा  
कुशेशयानि, संसारस्य सर उपमानम् ॥

राजनीति की विरणों ( दिव्य सिद्धान्तों ) के लिए इन्दु ( चन्द्र ) था ।  
ममस्त कला एव अङ्कुर ममूर्त्तका मूल था । मनुष्य में रहने वाले समस्त गुण-  
रत्नों का सागर था । चञ्चल राजलक्ष्मी रूप करेणु (हृषीनी) के चिपे बालान  
( वज्रन स्तम्भ ) था । समस्त मत्तार के व्यापार सागर में चलने वाली  
( प्रजाजन के जीवन र्थी) नौका का कर्णधार था । अमृत समुद्र के तरङ्गों से  
उत्पन्न होने वाले फेन पुञ्ज की तरह अत्यन्त स्वच्छ यश रूप कमल समूह से  
नम्पूर्ण मत्तार शरीर की अलङ्कृत कर दिया था । सम्पूर्ण सामन्त राजाओं की  
अपने में अनुरक्त कर लिया था । राजा नल के लिए वह ( मन्त्री ) जीवन के  
सम्राज था । हृदय के तुल्य था । केवल शरीर ही भिन्न था । वस्तुतः राजा  
की दूसरी आत्मा ही था । कुल ऋम (कई पुस्त) में मन्त्री पद पर उत्तम अंग  
कान करता आ रहा था । सुख और दुःख दोनों स्थितियों में दर्पण की तरह  
प्राज्ञ था । राजा के स्वभाव से स्नेह रखने वाला, पवित्र, सत्य में पवित्रित  
बाणो बालन वाला वह सालङ्कायन पुन था ॥ -

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्याधियःशीलगुणैः समानः ।

यमूय भूपस्य स तस्य विप्रो विश्वम्भराभाःसहः सहायः ॥३८॥

वह ब्राह्मण उस राजा का मित्र, मन्त्री, प्रिय एवं सुहृत् था । विद्या,  
व्यवस्था आदि में समान था और पृथ्वी का भार धारण करने में सहायक  
था ॥ ३८ ॥

अपि च ।

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मविज्ञापहारी स्त्रीयुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः ।

सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा सादृशदृश्यते श्रूयते वा ॥३९॥

ब्रह्मण्य इति ॥ ब्राह्मणे द्वितो ब्रह्मण्यः । तथा ब्रह्म वेत्ति । तथा आपहारी । तथा  
विप्रैर्द्विजैर्युक्तः । तथा शत्रुमनो द्वेषो यस्य । विरोधांशः सुगम एव । ब्रह्मविज्ञ  
ब्रह्मस्वम् । विप्रयुक्तो विपुक्तः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मण्य - (ब्राह्मणों का हित चिन्तक) होता हुआ भी ब्रह्मविज्ञापहारी  
( ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करने वाला ) था । विरोध ।

ब्रह्मण्य ( विप्रो का हित चिन्तक ) या और ब्रह्माविन् + तापहारी ( ब्रह्म-  
विद्या का जानकार और प्रजाजन के ताप का हरण करने वाला ) या । परिहार ।

स्त्री युक्त रहता हुआ भी प्राय विप्रयुक्त ( वियोगी ) बना रहता था ।  
विरोध ।

स्त्री युक्त या विप्र + युक्त ( ब्राह्मणो से युक्त ) भी था । परिहार ।

सद्वेष ( द्वेष सहित ) या फिर भी द्वेष निर्मुक्त चित्त वृत्ति वाला था ।  
विरोध ।

सद्वेष ( सुन्दर वेप युक्त ) या और उसकी चित्त + वृत्ति द्वेष रहित थी ।  
परिहार ।

[ यह ब्रह्मण्य होता हुआ भी ब्रह्म वितापहारी, स्त्री युक्त होकर भी  
विप्रयुक्त ( वियोगी ), सद्वेष होता हुआ भी द्वेष विमुक्त था, ऐसा कौन देखने  
या सुनने में आना है ॥ ३६ ॥ ]

अथ स पार्श्वस्तस्मिन्नमात्ये परिजनपरिवृद्धे प्रौढप्रेमणि निगूढ-  
मन्त्रे मन्त्रिणि तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे सौराज्यरागजनने जननीयमाने  
जनस्य, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ निधाय राज्यप्राज्यचिन्ताभारमभिनव-  
यौवनारम्भरमणीये रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये प्रियङ्गुभासि जित-  
मदनमदस्यपदसितसुरासुरसौभाग्ययशसि विस्मापितसमस्तजन-  
मनसि लसद्भावण्यपुञ्जपराजितसकलसमुद्राम्भसि कान्तिकटाक्षित-  
चन्द्रमसि वयसि धर्तमानो मानितमानिनीजनयौवनसर्वस्यः स्वयम-  
नवरतं सकलसंसारसुखसन्दोहमन्वभूत् ॥

अथेति ॥ अथाचन्तरमेवं वर्णनीयेऽमात्ये राज्यभारं निवेशयैव वर्णनीये वयसि  
धर्तमानो राजा सुखातिशयं सिपेवे ॥

वह ( मन्त्री ) परिजन समूह से दृढ़ था । प्रगाढ प्रेमी था । मन्त्रो ( राज-  
कीय गुप्त मन्त्रणाश्रों ) को गुप्त रखता था । स्त्री सम्बन्धी विषय रस को तृण  
ममजना था । सुन्दर राज्य निर्माण में ही राग रखता था । प्रजाजन को जननी  
की तरह प्रतीत होता था । समस्त उपधाओ ( कपट आदि दुष्टताओ ) से  
रहित था । अत उत्त पर राज्य विषयक विशिष्ट चिन्ता का भार सौंपकर वह  
राजा नवीन यौवन प्राप्त करने के कारण रमणीय, मनोहर रमणियो के नेत्रो  
और हृदयो को प्रिय, प्रियङ्गु पुष्प की तरह सुकान्त, कामदेव की कान्ति को  
भी जीतने वाले, देवो और दानवो के सौन्दर्य यश को तिरस्कृत कर देने वाले,

अपने उनहते हुए लावण्य ( सौन्दर्य ) पुञ्ज से सम्पूर्ण समुद्रों के जल को भी परास्त कर देने वाले, अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी तजित कर देने वाले वष (अवस्था) में आकर भानिनी नायिकाओं के भौवन की ही सर्वस्व मानता हुआ स्वयं निरन्तर नभार के समस्त सुख समूह का अनुभव करने लगा ॥

[ नमस्तावन्मुञ्ज — समुद्र पक्ष में लावण्य का अर्थ क्षारत्व है और यौवनावस्था के पक्ष में सौन्दर्य है । मकल समुद्रजल क्षारत्व रूप लावण्य से सम्पन्न है और यौवनावस्था सौन्दर्योत्पन्नरूपी लावण्य से सम्पन्न है । लेकिन उमड़ना हुआ यौवनकालीन लावण्य समुद्र जल लावण्य को परास्त कर दिया था । ] ॥

तथाहि ।

कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गरुड इवाहितकारी हरिवाहन-  
विलासमकोरत् ॥

कदाचिदिति ॥ समजातविषमयुद्धभीरहितानामपकारी । हरिश्चस्तस्य बाहनं बाह्यालीप्रवहणम् । स एव विलासः । पद्मे विषान्मरणभयम् । अहिः सर्पः । हरे-  
विष्णोर्बाहनविलासो यानलीला ॥

गरुड जैसे अनुत्पन्न :-—विषमरण ( विष के कारण मरण की उत्पत्ति न होने देने वाले ) हैं जैसे ही नल भी अनुत्पन्न + विषम + रण ( कभी भी कठिन लड़ाई की स्थिति उत्पन्न होने देने वाले नहीं ) थे । गरुड जैसे अहि + ताप + कारी ( सर्पों को ताप उत्पन्न करने वाले ) हैं जैसे नल भी अहित + अपकारी ( अहित करने वालों को कष्ट देनेवाले ) थे । गरुड जैसे हरिवाहन + विलास ( विष्णु के वाहन सीला ) को प्राप्त किये हैं जैसे नल भी हरिवाहनविलास ( अश्व वाहन विलास ) प्राप्त किये थे ॥

कदाचिच्चन्द्रमौलिरिव मदनवाणासनातिमुक्तशरसंछादितायां  
पर्यंतभुवि विजहार ॥

कदाचिदिति ॥ मदनो वाणोऽएनोऽतिमुक्तक शरश्च मुञ्ज एभिर्बुधैः सम्पन्नद्वि-  
तायां पर्वतशोण्याम् । पद्मे मदनः कामस्तस्य वाणासनं धनुस्तथद्विष्णौ शरैर्बाणै-  
र्विधुरायां पर्वतभुवि । पर्वतान्नवति स्मेति पार्वत्याम् ॥

चन्द्रमौलि ( अकर ) जैसे मदन ( कामदेव ) के वाणासन ( धनुष ) से छूटे हुए बाणों से ढकी हुई पर्वत भूमि पर भ्रमण किये जैसे नल भी ऐसी पर्वतीय भूमि पर भ्रमण किये जो मदन, वाण, असन, अविमुक्तक तथा शर ( मुञ्ज ) आदि पदों से आच्छादित थी ॥

[ भगवान् शकर को पार्वती से सम्बद्ध करने के लिये हिमालय के एकदेश में कामदेव वाण छोड़ा था । पार्वती से परिणय होने के बाद वही कामवाण वर्षा की भूमि शिवजी की विहार भूमि बनी । ]

कदाचिदच्युत इव शिशिरकमलाकरावगाहनोत्पन्नपुलककोरकित-  
तनुरन्तभोगभाक्सुखमन्वतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ कमलानामाकरो घनम् । पक्षे कमलायाः श्रियः करः पाणिः ।  
अमन्ताभोगोऽनेकविलासः दोषाद्विषयुष्य ॥

विष्णु जैसे शिशिर ऋतु में कमला + कर ( लक्ष्मी के हाथों ) का आलिङ्गन करने से रोमाञ्चित होकर असह्य भोग ( फणाओं ) को धारण करने वाले शेषनाग के शरीर पर कुछ पूर्वक विधाम करते हैं, वैसे ही नल भी कभी शिशिर काल में कमलाकर ( कमल सरोवर में अवगाहन ( स्नान ) करने के कारण शरीर में रोमाञ्च आदि का अनुभव करता हुआ असह्य सुखों का अनुभव करता था ॥

कदाचन नलिनयोनिरिव राजसभावस्थितः प्रजाव्यापारम-  
खिन्तयत् ॥

कदाचनेति ॥ राजः सभा । पक्षे रजसा गुणेन निर्वृत्ते भावे स्थितः ॥ व्यापारो  
स्वबहारो निर्माणं च ॥

जैसे नलिनयोनि ( कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ) राजस + भाव ( रजोगुण सम्बन्धी भाव ) से पूर्ण होकर प्रजा सृष्टि के व्यापार की चिन्ता करता है वैसे नल भी राज + सभा ( राजगोष्ठी ) में अवस्थित होकर प्रजा कार्य के विषय में विचार करता था ॥

कदाचिन्मयूर इव कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन हर्षम-  
भजत् ॥

कदाचिदिति ॥ कान्ताङ्गना काव्या च । पयोधरः स्तनो मेघश्च । विलास उप-  
भोगः ह्युत्तरणं च ॥

जैसे मयूर ( मोर ) कान्त ( सुन्दर ) उन्नमत्पयोधर ( उमड़ते हुए बादलों के समय में मण्डलिविलास ( गोलाकार होकर नृत्य ) करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है वैसे वह भी कभी कान्ता ( रमणी ) के उन्नमत्पयोधर ( उन्नत स्तनों ) के साथ मण्डलिविलास ( आलिङ्गन ) कर सुख का अनुभव करता था ॥

[ मयूर उमड़ते हुए बादलों के मण्डलि विलास ( खबर लगाने ) के समय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं । मण्डलिविलास में भी करता है । वर्षा के



दिनों में इधर उधर चक्कर लगाता है। मरुत भी मण्डलाकार होकर नृत्य विलास करता है। मरुत का अपना विलास भी उसक तिय आनन्दकर है और मय का विलास भी उसक तिय आनन्दकर है ] ॥

कदाचिन्नक्षत्रादिरिवाश्विन्या सेनया समन्वितो मृगानुसारी बहुशप्यनमार्गं बभ्राम ॥

कदाचिदिति ॥ अथा सन्यस्या तथा सेनया युक्तं तथा मृगानुसारी बहुवाट नृपपथेऽभ्राम्यत् । पथे अश्विनीमृगौ नक्षत्रे । इनेन रविगो सह सेनपेथ्यश्विनीविशेषणम् । बहुश इति मिश्रम् । पत्रमार्गाद्यौ । अत्र प्रकारांप्राग्बिष्वर्जनीय उपभ्रामनीयो वा । शप्यपथे तु प्रकार एव । तदेव रूपभेदेऽपि श्रुतिमाग्याश्च दोष इति कविसमय । नया च अष्टदशमकृते श्रीवण्डिकाचरित महाकाव्ये—‘पुष्पादपामिह सदाधिगमे समृद्धया पुष्पादपा फलमराञ्च विनम्रभावम् । पुष्पादपापि हृद्यतो मुनिवामुजन्मा-पुष्पादपानि मनु माधु मधुप्रतीषा, अस्वार्थं—अपा जलानाम् । अधिगमे प्राप्ती सायाम् । पुष्पात्कमुमत् । फलमराफलतिशयात् च या समृद्धिस्तया । पादराश्वरवा विनम्रभावमापु । समृद्धौ हि नम्रता स्यात् । जलाधिगमं पुष्प फलता हेतुः । तानि च समृद्धे । मा च नम्राभाया इति । तथा पुष्पागामद्वयग यत्र । तथाऽपारि पापरहितम् । शामन जन्म तथा मुनयो द्रवति । तद्भूदेतेऽपि मनु-प्रतीषा मुजन्म धारयन्त सन्ता मनु मकरन्दमपु पिवन्ति स्म । पादैरद्भिनि पादेषु मूत्रेषु वा पतन्वर्मीधगमित्यनेन माधुप्राप्त्युक्तिः । अप्रायुक्त्वाद्या प्रकार एव । युक्त्वाद्यस्तु विमर्जनीयापभ्रामनीयान्यतर एव न तु प्रकारः । परश्रुतिमाग्याश्च दोषः । एवमेव विमर्जनीयविह्वामुलीयपकारेष्वपि तथा ‘ये सहजनिष्कलङ्काचरा अपि’ भान्ति निष्कलङ्कामात् । मुधियं काष्ठादशकंधराधिक सपदि तेऽनुवत । अस्वार्थं—सहस्रोऽकृत्रिमो निष्कलङ्को निर्दोष आचारो यथा त मुधियं काष्ठादशक दिक्चक्र धरै पर्वतैरधिकमशनुवत व्याप्नुवन्ति । स्त्रीगामभाषो निधिः । कृष्ट वृष । तस्य गमा अश ममाहारद्वन्द्वः । एतन् नितन्निद्रयत्वाकिः । अपिधिरघः । यथा किल सहस्रस्वर्गाया लङ्काया चारो गतिः । ते कथं त्रिहृत्वाचलगमनायावेन भान्ति । दशकन्धरो रावण काष्ठा दिसा । अत्र स्वर्गार्थनिष्कलङ्क पकार एव निष्कलङ्कान्क विह्वामुलीयविमर्गो इति बोध्यम् ॥

जैस नमत्रा का उम्रह सन (स + इन = जन (मृ संहित या सूरें म्यन) अश्विनी नमत्र स अश्वित होकर मृगारिा नमत्र का अनुगमन करता हुआ दृश्या पवन मार्ग (आकाश) में भ्रमण करता है वैसे वह भी कभी काश्चिनी मना (अन्व दहन मना) स युक्त होकर (आछेट क प्रतङ्ग) में मृगा का पीछा करता हुआ बहुशप्यन (अधिक धासा स युक्त वन) में परिभ्रमण करता था ॥

रदाचिदाञ्जनेय इवाश्वरिनोदमन्यतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ अथै पशुकै विनोद जीवाम् । पथे अदस्य रावणे । विनोद पथम् ॥

जैसे आजनेय ( अञ्जनि पुत्र हनुमान् ) अक्ष ( रावण पुत्र अक्षय कुमार ) का विनोद ( चष ) किये वैसे नर भी कभी अक्ष ( चूत त्रीडा ) में विनोद करता था ॥

कदाचिद्वानरेश्वर इव सुप्रीवो वैदेहीति द्रयाणस्यालघुकाकुस्थ-  
स्थार्थिनः प्रार्थना क्रियतां सफलेति वानरपुङ्गवानादिदेश ॥

कदाचिदिति ॥ शोभना प्रीवा यस्य । वै स्फुटार्थं । मद्य वैदेहीति द्रुवाणस्य । तथा  
आ समन्ताद्गच्छन्ती काकौ मिश्रकण्ठवर्णौ तिष्ठतीत्यलघुकाकुस्थस्तस्य घान्त्वा  
वशास्वरभेदवतोऽर्थिनो याचकस्य प्रार्थना सफला क्रियतामित्यमुना प्रकारेण नर-  
पुङ्गवाक्षरश्रेष्ठानादिहवान् । वा समुच्छये । पक्षे वैदेही सीतेति प्रलपतोऽलघोर्गुरो  
रामस्य काकुस्थस्य सप्रयोजनस्य प्रार्थना सफला क्रियतामिति वानरपुङ्गवान्कपीशः  
सुप्रीवो नियुक्तवान् ॥

जैसे वानरेश्वर ( बन्दरो के स्वामी ) सुप्रीव “वैदेही ( मीठा सीता ) कह  
वर प्रलाप ( क्रन्दन ) करते हुए अलघु काकुस्थ ( विशाल महत्त्व वाले )  
भगवान् राम रूप अर्थी ( याचक ) की प्रार्थना सफल करो” यह आज्ञा वानर  
श्रेष्ठो को दे रहे थे उसी तरह सुप्रीव ( सुन्दर गर्दन वाला ) नरेश्वर ( नल ) भी  
“वै + देहि ( निश्चित रूप से दो ) यह बालघु ( अत्यन्त नम्रता पूर्ण ) काकु  
( ध्वनि ) से झोकने वाले अर्थी ( याचको ) की प्रार्थना को सफल करो” यह  
आज्ञा अपने नरपुङ्गवो ( वरिष्ठ कर्मचारियों ) को देता था ॥

[ वानर राज सुप्रीवपक्ष में वानरेश्वर और वानर पुङ्गव ज्यों के स्यो हैं  
किन्तु नल पक्ष में वा हटा दिया गया है । अतः नरेश्वर और नरपुङ्गव अद-  
क्षिष्ट रह जाते हैं । ] ॥

कदाचिन्मकरकेतन इव सुमनसो मार्गणान् विधाय स्वगुणं  
कर्णपूरीचकार ॥

कदाचिदिति ॥ मार्गणां याचकान् । इष्टार्थसंप्रदानेन सौमनस्ययुक्तान्विधाय स्व-  
स्य गुणं त्यागादप्यं जातोऽपि कर्णो पूर्णं भवेनेति कर्णपूरः । त्वो कर्णपूरीचकार ।  
पक्षे सुमनसः पुष्पाणि । मार्गणां वाणा । गुणो ज्या । कर्णपूरः कर्णांतकपर्णम् ॥

जैसे मकरकेतन ( कामदेव ) सुमनस ( फूलो ) को मार्गण ( वाण ) बनाकर  
अपने गुण ( धनुष की प्रयत्ना ) को जानों तक दीच कर छोड़ना है वैसे नल  
भी मार्गण ( याचको ) को सुमनस ( सन्तुष्ट चित्त वाला ) बनाकर अपने ( त्याग  
रूप ) गुण से ( जगन् के ) कान को भर दिया ॥

[ कामदेव पक्ष में “सुमनसो मार्गणान् विधाय” यह अन्वय करना है और  
नल पक्ष में ‘मार्गणान् सुमनसो विधाय’ यह अन्वय करना है । अर्थात् कामदेव

पक्ष में "दूनो की" बाण बनाकर अर्थ है और नच रक्ष में "बाचकों की सन्तुष्ट बना कर" मह अर्थ है ] ॥

कदाचिदम्भोनिधिरिवोच्चैःस्तननाभिरम्याः, कृतानिमेपतयन-  
विभ्रमाः, सकन्दर्पाः, सिपेवे वेलाविलासिनीः ॥

कराचिदिति ॥ उच्चैः स्तनाभ्या नाम्ना च रम्या । तथा निर्निमेपनेत्रलीला-  
सकामाः । वेलायां वारके विलमन्ति भोगापोपतिष्ठन्त हृष्येवंशीला वारस्त्रीः । सिपेवे  
अम्भोनिधिरस्तु वेजा अम्भोवृद्धी । कीदृशीस्ताः । उच्चैःस्तननेन शब्देनाभिरम्याः ।  
तथा कृतमनिमेपाना मस्यानां नयनं प्रापणं यैस्तयोक्ता विविधा अमा भावतां  
यासु । तथा क जलं तस्य दर्पेण मोक्षेण सह । ह्येर्मोचनार्थात्वात् । तथा विलसन्म-  
भोगम् ॥

समुद्र जैसे उच्चैः स्तन (अधिक गर्जन) के कारण अभिरम्य (रमणीय)  
अनिमेप (मछलियों) के नयनों एवं विगिष्ट टङ्ग के ध्रमों (लहरों) वाली, के  
(जल) के दर्प (स्वाग) रूपकार्य में समन्वित वेला (किनारा) रूप विलासिनी  
(नायिका) का नेत्रन करता है उसी तरह कभी नच भी उच्चैः स्तन (उल्लस  
स्तन) एवं सुन्दर नाभि के कारण रम्य निर्निमेप आँखों के विभ्रम (विलास)  
की उत्पन्न करने वाली, सकन्दरं (मकाम) वेला (उचित समय) पर विनासिनी  
(नायिकाओं) का उपभोग करता था ।

[अर्थात् समुद्र जैसे अधिक गर्जन के कारण रमणीय मछलियों के नयनों एवं  
विगिष्ट टङ्ग की लहरों वाली, जलस्वाग रूप कार्य से समन्वित तटी रूप  
विलासिनी का नेत्रन करता है वैसे नच भी उत्तम स्तन एवं नाभि के कारण  
रम्य निर्निमेप आँखों के विलास को व्यक्त करने वाली सकाम वेला  
विनासिनी ( वाराङ्गनाओं ) का उपभोग करता था । ] ॥

कदाचिदशरथ इवायोध्यायां पुरि स्थितः सुमित्तोपेतो रममाण-  
रामभरतप्रेक्षणेन क्षणमाह्लादमन्यभूत् ॥

पथमस्य सकलजीवलोकसुखसन्तानमनुभवतो यान्ति दिनानि ॥

कदाचिदिति ॥ न चोद्भु शक्याऽयोध्या सजा च । तस्या पुरि । सुमित्तोपेत-  
सुमित्तया कलत्रेण । विलासन्धो रामा विलासिन्यो यत्र तेन भरतसङ्गीतेन  
विन्दीऽग्रामभरतयोरवलीकनेन चह्लाद् नली दशरथस्य भेजे ॥

जैसे राजा दशरथ सुमित्रा नामक पत्नी के साथ अयोध्या नगरी में स्थित  
हाकर खेन्ते हुए राम और भरत को देखकर कुछ क्षण तक आनन्द का  
अनुभव करते थे उसी तरह नच भी अपनी अयोध्या ( अविजय ) नगरी में  
सुमित्तोपेत (सुन्दर मित्रोंसे समन्वित) होकर विलास पूर्ण रामाओं (नायिकाओं)

के भरत (शास्त्रीय सगीत) को सुनकर एक क्षण आह्लाद का अनुभव करता था ॥ इस तरह सम्पूर्ण सप्ताह की सुख परम्परा के अनुभवों के साथ इसके दिन बीत रहे थे ॥

[मानो वर्षा रूप नायिका महाराज नल को देखने के लिये आ रही थी । इस पूर्णानुच्छेद का अर्थ वर्षा और नायिका दोनों पक्षों में करना होगा । ]

अथ कदाचिदुभयमपयोधरान्तरपतद्द्वारावलीविराजिताः, कमलदलकान्तनयनाः, सुरचापचक्रवक्रभुवः, विद्युन्मणिमेखलालङ्कारधारिण्यः, शिञ्जानामुक्तकलहंसकाः, प्रौढरुरेणुसञ्चारधारिण्यः, कम्पकन्धराः, तिरस्कृतशशाङ्ककान्तिकलापोच्चमुष्णमण्डलाः सकलजगज्जेगीयमानगुणमिममनुपमरूपलायण्यराशिराजितं राजानमवलोकयितुमिव तरन्ति स्म वर्षाः ॥

अथेति ॥ अनन्तर कस्मिन्नपि समये नृपमेवेक्षितुं वर्षा अवतरन् । वर्षा शब्दगतस्त्रीत्वेन वर्षाणां साधारणीवमप्यवसितम् । ततश्च पयोधरा मेघाः स्तनाश्च । पतद्द्वारावली पतन्ती धाराश्रेणी चलन्ती हारावली च । यद्वा पयोधरयो स्तनयोरन्तर्मध्येऽपतन्तीऽतिसंहतत्वात्प्रविशन्तो हारा वासाम् । तथा वलीभिरुदरे लेखाभिविराजिताः । कमलदलानां कान्तमिष्टं नयनमतिवाहन यासाम् । वर्षाणां छतिघाहने कमलानामुल्लासः । पक्षे कमलदलवत्कान्तनेत्राः । इन्द्रधनुश्चक्रमेव चक्रे भ्रुवौ यासाम् । पक्षे सुरचापचक्रवक्रभुवः । विद्युदेव मणिमेखला ता तथा लमयर्थं कस्य जलस्यार वेग धारयन्ति । यद्वा करस्य राज्ञे देयाशस्य धारिण्य । वर्षा हि सस्यादिसाधकरधारकरस्यापि साधनम् । पक्षे विद्योत्तमानमणिकाञ्चीभूषणधारिण्य । शिञ्जाना गर्जनपस्तथा मुक्ता मानसं प्रति प्रस्थापितहंसका याभिः । यद्वा मुक्तहंसानि कानि जलानि यासु । तस्मिन्मये हंसानां मानसे शमनान् । पक्षे शिञ्जाने शब्दायमाने आमुक्ते शब्दे इसके चरणाभरणे यासाम् । प्रकर्षेणोढ कंजल तेन रजसंचाररोधिका । पक्षे प्रणवमगजगमनमनोशा । कंजल धरन्तीति कधरा मेघास्ते कम्पा रम्या यासु । पक्षे कधरा घ्रीषा ॥ छादितशशाङ्ककान्तयः । तथा काय पानीयाय टापा । कलापा । कुटुम्बिनीजनगीयमानरासका । तैरुच्चमुखा मेघालोकनायोऽमुखा मण्डला देशा यासु । पश्चात्कर्मधारय पक्षे निजितेन्दुदीप्यतिशयमुच्चसुकृष्टमुन्नतकपोल वा सुखविभव यासाम् ॥

वर्षापक्ष — उमड़ते हुए बादलों के मध्य से गिरती हुई धारा के समूह से थलद्भृत्त वनन दलों के लिये पान्त + नयन ( प्रिय आगमन वाले ), इन्द्र के धनुर्मण्डल रूप टेढ़ी भौंहों वाली, विद्युद्रूप मणिनिर्मित मेखलाऽलङ्कार (कटिभूषण) को धारण की हुई, शिञ्जान (गर्जन) से कलहती (मुन्दर हसती) को मानमरोवर की ओर आमुक्त (छोड़ देने) वाली, प्रौढ (धारा प्रवाह) के (जल) के धारण रेणु (धूमि) के संचार (उड़ान) को नष्ट कर देने वाली कम्प कन्धर (मुन्दर जल को धारण करने वाले मेघों) वाली शशाङ्क ( चन्द्रमा ) की कान्ति

को तिरस्कृत (आच्छादित) कर देने वाली, तथा क (जल) के साथ (आवाज गर्जन) से लोगों के मुख मण्डल को ऊपर उठा देने वाली वर्षा पूरे सत्कार के द्वारा वर्ष्म पुनः वाले अद्वितीय टङ्ग के सौन्दर्य राशि से सुगोभित उस राजा को देखने ही के लिए मानो उतर रही थी।

नायिका पक्ष — उन्नत पयोधर (स्तनों) के बीच लोटती हुई हारपट्टिक से सुगोभित, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, विद्वन् सद्गुण मणिमय नटि भूषण धारण करन वाली, जिज्ञान (मधुर शब्द करन हुए) हसक (नूपुर) को चरणी में आमुक्त (बन्धन) करन वाली, प्रौढ करेणु (बहुष्ट हृषिनी) के सञ्चार (गमन) को भी (अपने गमन से) न्यवहृत कर देने वाली सुन्दर कन्धो वाली, शशाङ्क (चन्द्रमा) की कान्ति को अपनी आह्लादकता से तिरस्कृत कर देने वाली, उन्नत मुखमण्डल को धारण की हुई नायिका।

वर्षापङ्क — पतञ्जारावली—पतञ् + धारावली—धारा पङ्क्ति त्रिने गिर रही हैं। कमलकान्तनयना — यहाँ नयन शब्द आगमन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वर्षात् कमलों को कान्त (प्रिय) है नयन (आगमन) त्रिनेका। वर्षा का आगमन कमलों को बहुत प्रिय है। सुरधाप — इन्द्र धनुष रूप टेंटी मौंही वाली। वर्षात् वर्षा रूप नायिका की मौंहे इन्द्र धनुष ही है। विद्वत् — विजली ही उसकी मणिमय करधनी है। जिज्ञान—बादल जब गरजने लगते हैं तो हंसों को समझ में आ जाता है कि अब उन्हें अपना स्थान छोड़ कर मानसरोवर चला जाना चाहिये। वर्षा के दिनों में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। प्रौढ + क + रेणु + सञ्चार + हारिणी. प्रौढ जल से धूलि सञ्चार को नष्ट कर देने वाली, जब वर्षा पर्याप्त हो जाती है तो धूलि उठना बन्द ही जाता है। कधर — क का अर्थ जल है। अतः कधरायन्त्र अन्यायि का अर्थ में प्रयुक्त होता है। तिरस्कृत — बादल चन्द्रमा की किरणों को रोक लेते हैं। चन्द्रमा उदित रहने हैं फिर बादलों के रहने पर अशेषा रहता है। उच्च मुख मण्डला का कलापान्त पूर्व पद से वर्ष्मधारण समाप्त हुआ है। बादल आकाश में एक अनियमित पदार्थ है। अनियमित पदार्थ हठात् आदमी को कौनूहल में डाल देता है। बादलों को देखने क कौनूहल से लोग गिर ऊपर उठा लेते हैं।

नायिका पक्ष — वर्षा के प्रायः सभी विशेषण नायिका पक्ष में लगते हैं। पतञ् + हारावली—स्तनों के बीच हार पट्टिक लोट रही है। कमलदनकान्तनयना — कमल दल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली। टेंटी मौंही इन्द्रधनुष की तरह है। विद्वन् सद्गुण मणिमय काञ्ची धारण की हैं। जिज्ञान—ध्वनि करते हुए सुन्दर हस को (नूपुरों) को बाँधी हैं। उन्नत मुख मण्डल वाली हैं।]

यत्र च ।

आकर्ष्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतनूनध्वनि  
नृत्यत्केकिङ्कुटुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम् ।  
उन्मीलघननीलदलकन्दव्याजेन रोमाञ्चिता  
हर्षणेव समुच्छ्रिता वसुमती दधे शिलीघ्रध्वजान् ॥ ४० ॥

आकर्ष्येति ॥ युवा चासौ राजा चेति युवराजस्तस्य भावो यौवराज्यम् । कामस्य  
सहणराज्यपटहोपमं नृत्यत्केकिमां च मृदङ्गावधि दधान घनगर्जितं ध्रुवा मुदेव  
द्विकसरकन्दलच्छलेन पुलकिता भूरभूत् । शिलीघ्रध्वजानधारयत् ॥ ४० ॥

और उसी वर्षा समय मे—

काम के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर नाचते हुए मयूर परिवार की  
गम्भीर ध्वनि रूप मृदङ्गध्वनि से समन्वित जीमूत ( बादल ) के नत्रीन ध्वनि  
रूप पटह (नगाड़े) की सुन कर अङ्कुरित होते हुए नवीन एव नीले कन्दनो  
(अङ्कुरो) के बहाने रोमाञ्च व्यक्त करती हुई वसुमती ( पृथ्वी ) मानो हर्ष  
से शिलीन्ध्रध्वजो (गोधरछत्ते) को धारण कर रही थी ।

[ वर्षा काल मे काम युवराज बन रहा है । मयूरो की ध्वनि मृदङ्ग का  
काम दे रही है । बादल का गर्जन नगाड़े का कार्य पूर्ण कर रहा है । नवीन  
अङ्कुरो के बहाने वसुधरा रोमाञ्च व्यक्त कर रही है और प्रसन्नता के मारे  
शिलीन्ध्रध्वजो को धारण कर रही हैं ॥ ४० ॥ ]

अपि च ।

पर्णैः कर्णपुटायितैर्नवरसप्राग्भारविस्फारितैः  
शृण्वन्ती मधुरं द्युमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम् ।  
शाप्नाग्रप्रथमानसौरभभरभ्रान्तालिपालिध्वजा-  
स्तोपेणेव चहन्ति पुष्पपुलकं धाराकदम्बद्रुमाः ॥ ४१ ॥

पर्णैरिति ॥ वसन्ते पुष्प्यन्ति ते धूलीकदम्बा वर्षासु च धाराकदम्बा ॥ शापामे-  
मिलन्तः औरभनराद्भ्रान्ता व्रपयुपयंठन्तश्च तेऽल्यश्च त पृष पालिध्वजाः प्रसिद्ध-  
विद्वानि येषां ते धाराकदम्बद्रुमा पुष्पमेव पुलकं मन्दं चहन्ति ॥ हर्षहेतुर्गर्जन-  
धरणमेव । रसो जलं रागश्च । अन्योऽपि चमण्डलाग्निमलन्त्या घोषितं शब्दं  
ध्रुवैवद्विधो भवति 'ग्रन्थध्वन' इति यौजादिकादिकरियते गिधि प्रधितुं श्रील-  
नेषामिति चानसि प्रथमाना । पराविरहस्ये 'गाथां ग्रन्थयति प्रपयविरलं श्लोकाश्च  
लोकोत्ताराग्यं प्राययति स्फुटार्थललितं यो नाटकं ग्रन्थयति । ग्रन्थाति श्रुतिशास्त्रयो-  
र्विवरणं ग्रन्थाननेकोऽथ वा स्वच्छं यस्य मनः स्वभावसरलं न ग्रन्थते कृत्रिमत्वं' इति ।  
अस्मादात्मनेपद्मपि । तथा च । 'चहन्ति जलमिय दिनट्टि यन्थानिचमिधमुद्मधते  
स्रजो विचित्रा' । मुसलमिदमियं च पातकाळे मुद्गरजुयाति कलेन हुद्दलेन'  
इति ॥ ४१ ॥

और—नवीन रम के उत्तम भार से प्रस्तुति पत्र रूप बानो से लाकार मन्त्र से मिलती हुई नेत्र पङ्क्ति के मधुर वर्णन को सुनने हुए, बालियों के अग्रभाग में सलग्न सौरभ (पराग) पूर्ण ( फूलों ) ने आनन्द विभोर होकर भनभनाते हुए प्रमरो की पङ्क्ति रूप ध्वजा वाले पङ्क्ति बद्ध कदम्ब के पंड मानो प्रसन्नता के कारण पुष्प रूप रोमाञ्च को धारण कर रहे हैं ।

[ बरों के दिनों में कदम्ब के पत्ते सरस हो गये हैं । बाकाय के मधुर वर्णन को वे अपने पत्र रूप बानो से सुनते हैं । शाखाओं के अग्रभाग में पराग पूर्ण फूलों पर भीरे महारा रहे हैं । उन प्रमरो की पङ्क्ति ध्वजे की तरह प्रतीत होती है । कदम्ब के फूलों के प्रति ऋषि की धारणा है कि वे फूल रूप रोमाञ्च हैं जो मानो प्रसन्नता के कारण प्रकट हुए हैं ॥ ४१ ॥ ]

अथ क्रमेण ।

नीरं नीरजनिर्मुक्तं नीरजस्कं मुचसलम् ।

जातं जातिलतापुष्पगन्धान्धनधुपं वनम् ॥ ४२ ॥

नीरनिधि ॥ नीरं जलमग्मोजमुक्तं मूलं निःपसु वन च जातीपुष्पसौरभाञ्च-  
मृदुजातम् ॥ ४१ ॥

नीर (जल) नीरज निर्मुक्त (कनलो में विमुक्त) हैं । झूमण्डल नीरदस्क ( धूलि रहित ) हो गया है । जाति लता के फूलों की गन्ध से भीरे अन्ध (मन्त्र) हो गये हैं । इन तरह की झोमा में वन सम्पन्न हो गया है ॥ ४२ ॥

अपिच ।

धुनकदम्बकदम्बनिष्पतन्नवपरागपरागममन्यराः ।

हृततुपारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मध्नो वधुः ॥ ४३ ॥

पुत्रेति ॥ कम्पितकदम्बद्रुममहाश्रिसरन् योऽप्यौ नव परागस्तामंगमेन मन्यरा मन्द् ॥ तथा उदमीकरकणाः तथा रतिरागोऽस्ति येषां तेषामतिदयिता मरुतो वातामरो पर्वताद्वाग्नि र्म ॥ परागमेति परापूर्वः पर वक्त्रुष्ट वायमो वा ॥ ४३ ॥

पुत ( हिलने हुए ) कदम्ब वृक्ष के कदम्ब ( पङ्क्ति ) से निकलते हुए नवीन पराग के परागम ( उत्तम आगमन ) के कारण मन्यर ( मन्त्र ) तुपार ( शीत ) के तुप् ( वणों ) को निने हुए रतिरागियो ( कामुको ) के अत्यन्त प्रिय मरुतामक पर्वत से ( मरु + तः ) मरु ( पवन ) बह रहा वा ॥ ४३ ॥

ततश्च । तिरस्कृततरणित्विधि, विगलद्वारिविप्रुधि, शान्तचातक-  
वृधि, निर्वाणवारणवपुधि, मानिनी मात्रप्रदप्रन्यिमुधि, जनितजवासक-  
शुधि, विधपवधूविद्विधि, वर्धितमण्डूकवृधि, मुद्रितचन्द्रमसि, विद्राण-  
पङ्कजसरसि, स्वाधीनप्रियप्रेयसि, प्रोयितकलहंसवयसि, तष्टनक्षत्र-

मण्डलमहसि, मेचकितमभलि, निष्पतघ्नीपरजसि, स्फुटकुटजरजःपुञ्ज-  
 पिञ्जरिताष्टदिग्भासि, भासुरसुरचापचक्रभृति, मयूरमदकृति महिष-  
 शोषहृति, विस्तरत्सरिति, विद्योतमानविद्युति, घट्टमन्दमेघङ्कुरमरुति,  
 हृष्यत्कृपाणयोपिति, पुष्प्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुकृति, प्रोज्जुतभूरुहि,  
 दरिद्रनिद्राद्रुहि, सगर्वगोदुहि, कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि, मुदितमद-  
 नाट्टहासायमानघननादमुचि, पच्यमानजम्बूफलश्यामलितनवनान्तर-  
 रुचि, रचितपान्यसार्थशुचि, श्रयमाणमदमधुरमयूरचाचि, विनिद्र-  
 कोशातकौशालिनि, यूथिकाजालिनि, नवमालिकामालिनि, कन्दलभाजि,  
 पच्यमानजम्बूतद्वनराजिभ्राजि, मिक्षाक्षणक्षपितपरिवाजि शान्त-  
 सारङ्गरुजि, नीडनिर्माणाकुलवलिभुजि, साम्द्रेन्द्रगोपयुजि, शच्योत-  
 त्तमालघारागृहसदृशि, श्यामायमानदशदिशि, दिवापि श्रयमाणरजनि-  
 शङ्काकुलचक्रवाकचक्रकुशि, शकटसञ्चाररुचि, पल्लवितवीरुचि, विधा-  
 न्तजिष्णुक्षमापालयुधि, क्षीणोक्षधुधि, क्षीरसमुद्रनिद्राणवाणवाहुच्छिदि,  
 सिन्धुरोधोभिदि, दवदहननुदि, विरहिमनस्तुदि, जनितजनमुदि,  
 तापिच्छच्छायानुच्छेदिनि, छत्रकुटीमध्यव्यमानवाजिनि, विकसित-  
 षकुलवनविराजिनि, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि, विजयमानमनोजन्मनि  
 जाते जगज्जोविनि, जीमूतसमये कदाचिदम्भसि दिवसे मृगयावन-  
 पालकः प्रविश्य राजानं विज्ञापयामास ॥

तत्रचेति ॥ तिरस्कृता रविस्थिते येन । इन्द्रगोपा वर्षासु जाता शुद्धजन्तव-  
 शच्योयत्परत्तमालाना सबन्धि यद्वारागृहं तस्य सदृशि ॥ सीरोदधौ निद्राय-  
 मागो धागासुरबाहुभिर्द्विष्णुर्यत्र ॥ सीमन्त इव सीमन्तः । तत करोतिष्ण्यन्तात्  
 के तारकादिश्वादितचि वा रूपम् ॥ तस्मिन्निष्ठभूते मेघसमये आखेटकारण्यपालको  
 नृप म्यज्ञापयत् ॥

( प्रस्तुत अनुच्छेद मे वर्षा काल का वर्णन है )—

तरणि ( सूर्य ) की कान्ति को तिरस्कृत ( आच्छादित ) करने वाले,  
 वारि ( जल ) के विप्रुप् ( बणो ) को गिराने वाले, चातक की व्यास को  
 शान्त करने वाले, निर्वाण ( आकाश ) मे वारण ( हाथी ) का रूप प्रदर्शित  
 करने वाले, मानिनी स्त्रियो के मान ग्रहण रूप गाठ को चुरा लेने वाले या  
 खोल देने वाले, उपजे हुए जवास के पौधो को मुखा देने वाले, पतिहीन वधुओ  
 का शत्रु, मण्डूक ( मेढक ) के आनन्द को बढा देने वाले, चन्द्रमा को मुद्रित  
 ( आच्छादित ) कर देने वाले, कमल बनो को विप्राण ( विकसित ) कर देने  
 वाले, स्वाधीनपतिवा स्त्रियो को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होने वाले, कलहस  
 पक्षी को ( मानसरोवर के लिये ) प्रस्थित कर देने वाले, नक्षत्रमण्डल



( तारक समूह ) के मह ( तेज ) को नष्ट कर देने वाले, आकाश को अश्व-काराच्छन्न कर देने वाले, वदम्ब के पराग का आविष्कृत करने वाले, खिले हुए कुटज पुष्प के पराग राशि की पिङ्गरता (पीलापन) से आठों दिशाओं को खिला देने वाले, भासुर (चमकीने) इन्द्र धनुष् को धारण करन वाले, मयूरो को मतवाला बना देने वाले, महिष ( भैंसों ) की दुर्बलता ( शोष ) का हरण करने वाले, सरित् ( नदियों ) का विस्तार करन वाल, चमकती हुई विजलियों वाले, मन्द-मन्द बहती हुई हवा से सम्पृक्त, जिताना की मित्रियों को प्रमत्त करन वाले, खिले हुए केवडे के गन्धपान से घमरों को मत्त बना देने वाले, भ्रूहृ ( वृषों ) को उत्पन्न करने वाले, दरिद्र निद्रा से द्रोह करने वाले ( गाड़ी निद्रा लाने वाले) अथवा दरिद्रों के घर के अभाव में उन्हें निद्रा से द्राह कराने वाले, सगर्व ( उच्छल ) गायों को भी दुष्टवा देने वाले, वदम्ब की ढालियों पर घमरों को लटकने देने वाले, प्रसन्न कामदेव के उन्नत हास की तरह बादलों की ध्वनि को ध्वस्त करने वाल, पक्ते हुए जामुन के फलों की कान्ति से वन की आभ्यन्तरिक कान्ति को श्यामल बना देने वाले, पान्यसार्य (पथिक समूह) को शोक में डाल देने वाले, मदस्वी मयूरो की ध्वनि सुनान वाले, कोशातकी नामक फलों के विकसित होने के कारण सुन्दर लगने वाले, सूयिका (जूती) लता के जाल को (पल्लवित) करन वाले, नव मालिका की मालाओं वाले, अट्कुरो को धारण कराने वाले, पक्ते हुए जामुन फल के पंखों की पक्ति से सुशोभित होने वाले, सन्यासियों के भिक्षा + क्षा (भोजन विषयक आनन्द) को ममात्त कर देने वाले, मृगों के रोगों को शान्त करने वाले, बलिभुज (कौबों) को नीह निर्माण के लिये व्याकुल कर देने वाले, सान्द्र + इन्द्र (वर्षा युक्त इन्द्र) और ग्वालों को एकत्रित करने वाले, चूनी हुई तमाल धारा वाले धर सद्ग, दशो दिशाओं को श्यामल बना देने वाले, दिन में भी रात की धागद्धा से व्याकुल चक्रवाकों को रूला देने वाले, शकट (गाड़ी) की गति को कीचड के कारण रोक देने वाले, वृषों को पल्लवित करने वाल, जिष्णु ( विजय की इच्छा रखन वाले ) इमापाल ( पृथ्वी पालक ) राजाओं की यात्रा को विधान (रोक) देने वाले, उल (साँडों) की क्षुधा (भूख) को क्षीण कर देने वाले, वाणासुर के बाहुओं के छिल्ल-कर्ना (विष्णु) को क्षीरसागर में सोने देने वाले, सिन्धु ( नदियों ) के रोध ( किनारा ) को तोड देने वाले, वनाग्नि को प्रेरित करने वाले, विरहियों के मन को दुःखित करने वाले, बादमियों के मन में प्रसन्नता ला देने वाले, तापिच्छ वृक्ष की छाया का अनुकरण करने वाले, अच्छी तरह से छापी हुई कटी में बँधे हुए धोडे वाले, खिले हुए वटुल वन से सुशोभित सीर (हल) से ग्राम की सीमा को चिह्नित

दो दाँतों के कारण भयङ्कर काल सदृश मुख वाला एक कोल (सूकर) कहीं से (जगल में) आ गया है।

[ सूकर के दोनों दाँत अत्यन्त शुभ्र हैं और बाकी शरीर अत्यन्त कृष्ण है। इन्हीं दो वर्ण्य तत्वों के विभिन्न उपमान सकलित किये गये हैं। इस सूकर को देखकर यह भ्रान्ति हो जाती है कि वह दो बड़े स्फटिकों को धारण करता हुआ अजन पर्वत या बलाकाओं से युक्त काल मेघ है या शुष्क विहीन हाथी है। मेघ, अञ्जन पर्वत, और हाथी सूकर शरीर के उपमान हैं और स्फटिक, बलाका और हाथी के दाँत सूकर के दाँतों के उपमान हैं ॥ ४४ ॥ ]

ततश्चासौ

भिन्नकन्दकसेकन्दलभृतः स्निग्धप्रदेशान् भुवो

भञ्जन्नखनशैलशृङ्गसदृशः फुल्ललतामण्डपान् ।

मन्दं मन्दरलीलयाब्धिसदृशं मथनंश्च लीलासरः

कोडः क्रीडति भाययन्निव भवत्क्रीडावने रक्षकान् ॥ ४५ ॥

मिन्दप्रिति ॥ मन्दरलीलया करणभूतया भाययन् ॥ अत्र करणाद्वेनाश-  
माःमनेपद् पुगागमश्च न भवति ॥ ४५ ॥

इमवे अनिरिक्त,

अञ्जन पर्वत सदृश वह (सूकर) कन्द एव कसेरू घास के अकुरो को उपजाने वाले आद्रं स्थानों को खोद रहा है। खिले हुए लता मण्डपों को तीड रहा है। मन्दराब्ध की तरह समुद्र सदृश लीला सरोवर को धीरे से मथ रहा है और आप के क्रीडावन में रक्षकों को डराता हुआ खेल रहा है ॥४५॥

राजा तु तदाकर्ण्य विन्तितवान्—

'अच्छाच्छैः शुक्रपिच्छगुच्छहरितैश्छन्ना चनान्तास्तृणैः

सेभ्याः सम्प्रति सान्द्रचन्द्रकिंकुलैश्चाण्ड्यैर्मण्डिताः ।

येषु क्षीरविपाण्डुपल्वलयः फल्लोलयन्तो मनाम्

याता चान्नि विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुठन्तः शनैः ॥ ४६ ॥

अच्छाच्छैरिति ॥ चन्द्रकिणो मयूरा । पक्षवल्मसात् सरः ॥ ४६ ॥

यह मुन वर राजा ने मोचा —

अच्छ अच्छ (सुन्दर सुन्दर) तोतों के पक्षों के गुच्छों की तरह हरे तृणों से ढकी हुई तथा इस समय प्रसन्न चन्द्रकिंकुल (मयूरों) के उद्धत नृत्य से मलदहत (बह) वनस्पती सेवनीम है, जहाँ दूध की तरह स्वच्छ पक्षियों

(छोटे जवानों) के साथ सेतगी हुई और धिमे हुए नेवड़े के वन से टकरागो हुई हवा धीरे-धीरे बह रही है ॥ ४६ ॥

माचन्ति च तेषु सम्प्रति प्रोधिनाः । तद्युज्यते विद्वर्तुम् इत्ययधार  
यन्नाह्वय बाहुकनामानं सेनापतिमादिदेश ॥

माचन्तीति ॥ प्रोधिनाः शूकराः ॥

'यहाँ इस समय शूकर उभरा हो जागे हैं. इसलिये वहाँ विहार करना उपयुक्त है।' ऐसा भोजना हुआ राजा बाहुक नामक सेनापति को बुलाकर आशा दिया ॥

'मद्द्रुतमनुष्ठीयताम्, समादिदयन्तां कृतपेरिविपक्षया, पक्षया,  
पर्याप्यन्तां मनस्तुरगास्तुरगाः, सञ्जीक्रियन्तां निग्रहेगनिर्जित-  
मातरिभ्यानः भ्यानः, समारोप्यन्तामपनीतादिनायूँषि धनूँषि, शूद्रन्तां  
निर्मथितप्रोधिपूषपाशाः पाशाः' इति ॥

मद्रेति ॥ पर्याप्यन्तां शरीरपथानाम् । 'ताकरोति तशूषष्टे' इति निधि पर्याप्यन्ता-  
शान् । पश्चात्सम्प्रतिपत्तौ श्याकरणं सूक्ष्मतीति त्रिलोकीं तिलक्ष्यतीतिब्रह्म-  
'अम् । मन इव तुराः कीप्रा गच्छन्तीति । निर्मथिताः प्रोधिपूषपाशाः शरादयूष-  
पाशानाम् । इच्छा यैः ॥

"भद्र, जन्ती कीजिये। शत्रुओं पर विजय सा देने वाली पति (सेना) को  
आदेश दीजिये कि मैं को तरह तुरग वेग से जाने वाले) तुरग ( घोड़े ) को  
साँवे । अपने वेग से मातरिभ्या ( हवा ) को भी जोत देने वाले या (कुत्ते)  
को तैमार कीजिये । अहित बाहने वाली के प्राणो को शुरा सेो वाले धनुषो  
को चढ़ादिये । प्रावि भूमप ( शूकर तग्रेट ) को आना को मय जानो वाले  
पाश ( जाली ) को घहण कीजिये ।"

अथ मौल्लिमिलन्मुकुलितकरकमलयुगलेन सेनापतिना 'यदाहा-  
पयति श्वे.' इत्याभिधाय खरया तथा कृते सति ॥

अपने दोनों तर कमलों को मुकुलित ( जोड़ ) कर फिर से लगाता हुआ  
सेनापति "जैसी भाप को आशा" यह कह कर गीप हो राजा के वचन के  
अनुसार कार्य कर लिया ॥

स्थयमपि

निर्मासं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघुं कर्णयोः

स्कन्धे बन्धरमप्रमाणमुरसि स्निग्धं च रोमोद्गमे ।

पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जये

राजा याजिनमादरोद् सकलैर्षुक्तं प्रशस्तैर्मुणैः ॥ ४७ ॥

राजा स्वयं भी

ऐसे घोड़े पर आरूढ़ हुए जिसका मुखमण्डल मोटा नहीं था। बीच का भाग परिमित ( मुडौल ) था। छोटे-छोटे कान थे, गर्दन बन्दुर ( सुन्दर ) थी। छाती अप्रमाण ( विशाल ) थी। रोम समूह कोमल थे। अगला पुट्टा पूर्ण रूप से पीत ( मोटा ) था। दौड़ने में बड़ा प्रशस्त था। समस्त प्रशसनीय गुणों से युक्त था ॥ ४७ ॥

आरूढ्य च क्रमेण कार्दमिककपेटाचनद्धमूर्धजैर्दण्डखण्डपाणिभिः  
क्रूरकमोचिताकारैर्वागुरावाहिभिरनग्नैः कृतान्तदूतैरिव पाशहस्तैः  
पापद्विकैरनुगम्यमानः, दूरादुन्नमितकन्धरैस्तथोर्ध्वकर्णसम्पुटैरकाण्डो-  
द्गीनप्राणैरिव वनप्राणिभिराकर्ष्यमानहर्षितहृदयहेवारवः, पवनकम्पित-  
तरुशाखाप्रपल्लवव्याजेन दूरादेवोत्क्षिप्तहस्ताभिरुड्डीयमानशकुनि-  
कुलकोलाहलच्छलेन भयान्निवार्यमाण इव वनदेघताभिः, अभिमुखा-  
गतैरुन्मिषत्तरुषुषुप्रकरमकरन्दविन्दुवर्षवाहिभिर्वनविनाशशङ्कितैरध्य-  
मिवोपपादयद्भिरुपस्थितान इव वनमारुतैः उन्निद्रसान्द्रकुसुम-  
केसरारुक्तालजटिलाभिर्भयादुदुग्तरोमाञ्चप्रपश्वाभिरिवोद्भ्रान्तभृङ्ग-  
रवगद्गदरुदितैर्न निषिध्यमान इव वनशीरुद्भिः, उद्भिन्नभाम्बदमन्द-  
कन्दलावलोकेनानान्यमानः श्वानुगतोऽप्यश्वानुगतः सगजमप्यगजं  
तद्वनमाससाद् ॥

आरूढ्ये चेति ॥ कर्दमेन नीलीलोद्दमलादिना इत्थं कार्दमिकम् । श्वभिरश्वैश्चानु-  
गतो राजा । गजोपेतम् । अगः पर्वतसमीपोद्देशोऽप्यगस्तत्र जानमगज तद्वन-  
माप ॥

जब घोड़े पर चढ़ लिया तो क्रमशः, लाल कपड़ों से बालों को बाँधे हुए, हाथ में छोटे उण्डे लिये हुए, क्रूर कार्य के अनुकूल धेप बनाये हुए, मृग फँसाने वाले जाल लिये हुए, असह्य यमराज के दूतों की तरह हाथ में पाश लिये हुए, पाप सम्पत्ति से सम्पन्न व्याघ्र लोग उसके पीछे-पीछे जा रहे थे। दूर से ही वन के प्राणी गर्दन को उठा कर, कानों को ऊपर की ओर सुपुका कर, प्रसन्न घोड़ों की हिन-  
हिनाहट सुन रहे थे। ऐसा लगता था कि असमय में ही उनके प्राण उड़े जा रहे थे। पेड़ों की साखा के अप्रभाग से टकरायी हुई हवा के कारण हिलत हुए पल्लवों के बहाने दूर में अपने हाथों को उठाकर उड़ने हुए पक्षियों के कोलाहल के बहाने वनदेवताएँ मानो भय से उन्हें रोक रहीं थीं। सामने पड़ने वाले गिलने हुए तरुपुष्पों के पराग कणों की वर्षा को डोने वाला, वन विनाश की आशंका से डरा हुआ वनस्थली का पवन मानो उनकी विधिवन् पुजा कर उन्हें घेर रहा था। खिले हुए घने फूलों के परागकोश के अद्भुत से ऐसा लगता

या हि दर के मारे वनलताओं के रोगटे छड़े हो गये थे, अतः घबड़ाये हुए ध्रमरों की मनभनाहट के माध्यम से विह्वलतापूर्ण क्रन्दन के द्वारा उन्हें रोक रही थीं। अञ्कुरित होने हुए नवीन एक चमरीले अञ्कुरों को देख कर जानन्दिन हो रहा था। दश श्वानुगत ( वृत्तों से अनुगत ) या फिर भी अश्वानुगत ( वृत्तों से अनुगत नहीं ) या विरोध ।

वह श्वानुगत ( वृत्तों से अनुगत ) या और अश्वानुगत (घोड़ों से अनुगत) या । परिहार ।

सगज ( हाथियों ने युक्त या फिर भी अगज ( हाथियों से युक्त नहीं ) या । विरोध ।

सगज ( हाथियों ने युक्त ) या और अग ( पर्वतों और पेशों ) से उत्पन्न होने वाले उपवन को प्राप्त किया ।

[ वन की सत्ता, वनदेवता और वन पवन राजसना या राजा को अनुनय विनय के माध्यम से रोक रहे हैं । जैसे कोई झगडा रोक्न वाला आदमी दूर से ही हाथ उठाकर "ना ना" कह कर दूर से ही किसी हिंसक को मना करता है, वैसे वनदेवता पल्लवों के बहाने हाथों को उठाई हुई थी और पक्षियों के कोलाहल के बहाने हल्का करती हुई रोक रही थी ।

हवा धूलों की गन्ध आदि सामग्री का सक्लन कर पूजन के माध्यम से अनुनय कर रही थी । डरी हुई वनलता को तो रोमांच हो गया था । ध्रमरों की मनभनाहट के माध्यम से तो वह रो रोकर उन्हें रोक रही थी ] ॥

ततश्च केचिदुद्यत्परश्वधा गणपतयः, केऽपि दृष्टसिंहिकासुत-  
विक्रमाः शशधराः, केऽपि पाशपाणयो जम्बुकदिक्पालाः, केऽपि  
हरिमार्गानुसारिणो बलमद्राः, केऽपि चक्रपाणया मधुसूदनाः, केऽपि  
शिवागमावर्तिनो रौद्राः, केऽप्याहिताग्नेयो विप्रलोकः, केऽपि स्रष्ट-  
ताञ्जनाधरप्रवालः प्रमञ्जनाः, केऽप्युत्त्वातदन्तिदन्तमुष्टयो निस्त्रिंशः,  
तस्य पृथ्वीपतेःकुलितश्वापदाः पदातयो वनं दधुः ॥

तत्रवेति ॥ उद्यन्तः पलायमानाः परे उद्वृष्टा श्वानस्तान्दधति । तथा गणस्य  
सेनायाः पतयः हेरिश्वाश्च उद्गृह्यमाणपरशव । सिंहिकासुतः केपरिकिशोरो  
राजुश्च । शश धरतीति शशधरः पक्षिभ्रमश्च । पाशः पाणौ यस्य स पाशपाणि-  
धरश्च । जम्बुकः शृगालो वरुणश्च । यद्विषमकाशः—'जम्बुक' फेरवे नीचे प्रतिष्ठी-  
द्विषतावपि । हरि सिंहं मार्गं मृगसमूहं चानुसरन्ति घटेन मद्राः शकः । पक्षे  
हरेविष्णोर्मांगोऽम्बा बलमद्रो बलदेव । चक्रं पाणौ यस्य स चक्रपाणिर्बिष्णुश्च । मधु  
सौद्रं दैत्यश्च । सूदनं चरण मारणं च । शिवा शृगाली तस्या गमो गति पक्षे शिव-  
स्यागमाः शास्त्राणि । शैवाश्च । गृहंतद्विर्भुञ्जो बीजशकुस्तान्प्रलोकयन्तः पापद्विका  
हि कपोतादिपातनाय तरुणामधस्तात्तापनीसंज्ञामग्रीष्टिकां, कुर्वन्ति । पक्षे

साग्निहोत्रा विमलोकाः । खण्डिता अञ्जनस्य पश्चिमपश्चिमोऽधरप्रवालाः पुच्छानि  
 यैः । पक्षाऽञ्जनस्य शास्त्रिवोऽथ पक्षवाः । घातास्तु खण्डितोऽञ्जनाख्याया प्रियाया  
 ओष्ठपक्षवो यैः । उत्प्लता दन्तिदन्ता यैस्त्वयोक्ता मुष्टयः समहा येषाम् । पञ्च ठलि-  
 सदन्तिदन्तप्रधानो मुष्टिः तस्यैषु । निखिना क्रूरकर्माणः खङ्गाश्च । ईदृशास्तस्य  
 पक्षयो वनं वेष्टयामासु ॥

जैसे गणपति ( गणेशजी ) उद्यतपरश्वध ( अपने कुठार को सदा तैयार रखते ) हैं वैसे उनमें भी कुछ लोग उद्यत् + पर + श्व + ध ( दौड़ने के लिये बिल्कुल तैयार उत्कृष्ट कोटि के कुत्तो को लिये हुए ) थे ।

शशधर ( चन्द्रमा ) जैसे दृष्टसिंहिकासुतविक्रम ( राहु के विशिष्ट आक्रमण को देखे हैं वैसे उनमें से कुछ लोग दृष्टसिंहिकासुतविक्रम ( सिंहनी के बच्चे से विक्रम को देख चुके ) थे । और शश ( सरगोश ) को धारण किये हुए थे । पाशपाणि ( वरुण ) जैसे जम्बुक दिक्पाल ( पश्चिम दिशा के अधिपति ) हैं वैसे उनमें से भी कुछ लोग पाशपाणि ( हाथ में जाल लिये हुए ) थे और ( जम्बुक-दिक्पाल ( शृगाल के रास्ते में उनकी प्रतीक्षा कर रहे ) थे । बलभद्र ( बलदेवजी ) जैसे हरिमार्गानुसारी ( कृष्ण के अनुसार चलने वाले ) हैं वैसे उनमें भी कुछ बलभद्र ( बल के कारण भद्र ( शक्तिशाली ) थे और हरिमार्गानुसारी ( सिंह के रास्ते का अनुसरण करने वाले ) थे । चक्रपाणि ( चक्रधारी विष्णु ) जैसे मधुसूदन ( मधु राक्षस को मारने वाले ) हैं वैसे उनमें से कुछ लोग चक्रपाणि ( हाथ में चक्र लिये ) थे और मधुसूदन ( मधु के छत्ते से मधु चुवा रहे ) थे । रौद्र ( शिवधर्म के अनुयायी ) जैसे शिवागमवर्ती ( शैव दर्शन को मानने वाले ) हैं वैसे कुछ लोग शिवागमवर्ती ( शृगालों के रास्ते पर ठहर कर ) रौद्र ( भयङ्कर रूप धारण किए ) हुए थे । जैसे विप्रसोक ( ब्राह्मण लोग ) आहिताग्नि ( अग्नि-होत्र करने वाले ) होते हैं वैसे कुछ लोग आहिताग्नि ( आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान कर रहे ) थे और वि ( पक्षियों ) को प्रलोक ( तल कर रहे ) थे ।

प्रभञ्जन ( वायु ) जैसे खण्डिताञ्जनाधरप्रवाल ( अञ्जना नाम की प्रिया के अधरोष्ठ का पान करने वाले ) हैं वैसे कुछ लोग खण्डिताञ्जनाधरप्रवाल ( अञ्जन पक्षी के अधर प्रवाल ( पूच्छ भाग ) को तोड़ लिये ) थे अतः प्रभञ्जन ( विध्वंसक ) प्रतीत हो रहे थे । निस्त्रिश ( तलवार ) जैसे उत्प्लातदन्तिदन्तमुष्टि ( उखाड़े हुए हाथी दाँत से बनी हुई मुट्ठियों से युक्त ) हैं वैसे कुछ लोग निस्त्रिश ( हिंसक ) हैं और उत्प्लातदन्तिदन्तमुष्टि ( हाथियों के दाँतों को उखाड़ कर मुट्ठी में लिये हुए ) हैं । पृथ्वीपति ( राजा नल ) के पदाति ( पैदल चलने वाले व्याध ) जंगल के प्राणियों को व्याप्त कर वन को घेर लिये ॥

[ अहितान्नय — व्याध लोग पेड़ी से पक्षियों को गिराने के लिये पेड़ों के नीचे आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान करत हैं ] ॥

ततश्च तैः क्रियन्ते विकल्पा वननिकुञ्जाः कुञ्जराश्च, धियन्तेऽनेक-  
धारयतिपातिनः खड्गाः खड्गिनश्च, कृष्यन्ते कूजन्तः कोदण्डदण्डा  
गण्डकाश्च, विशिष्यन्ते परितः शराः शरभाश्च, भग्यन्ते तर-  
यस्तरस्त्रवश्च ॥

तदन्वेति ॥ विगतः क्लमा येभ्यस्ते व्यपेतकरिपोताः । कुञ्जास्तु विकल्पा  
कान्तयो मयाद्रिति शेषः । खड्गा द्विघारत्वाद्नेक्या धारया पतन्वमीषणम् ।  
गण्डकास्तु रपेनातिपतन्ति । य उद्भिन्नश्चक्रा प्रौढास्ते खड्गिनः । अतएव रयामि-  
पातिनः । त एव बाटका गण्डका । अत एव कूजन्तः । तरययश्चित्रकायाः ॥

तदनन्तर उन व्यायो द्वारा वन की झाड़ियाँ विकल्प (हाथियों के बच्चों  
में घुल्य) कर दी जा रही हैं और हाथी भी विकल्प (निस्तत्र) कर दिये जा  
रहे हैं । अनेक धारयातिपाती (दोनों तरफ से काटने वाले) खड्ग (कृपाण)  
हाथ में पकड़े गये हैं और अनेक धारयातिपाती ( अनेक मार्गों से आने जाने  
वाले ) खड्गी ( गंडे ) पकड़े जा रहे हैं । कूजन (डेंकार) करने हुए घनुदण्ड  
छींचे जा रहे हैं और कूजन ( चीकार ) करने हुए गण्डक ( गैडों के बच्चे  
घसोटें जा रहे हैं । शरों तरफ शर ( बाण ) फेंके जा रहे हैं और शरभ  
( भय के मारे ) पागल बनाये जा रहे हैं । तर और तरस ( सपें ) काटे जा रहे हैं ॥

[ शरभ—मिह को भी मार गिराने वाला आठ पैरों का यह एक  
जानवर है ] ॥

क्षणेन च पतन्ति पीघरा वराहाः, सीदन्ति दन्तिनः, चिरसं रसन्ति  
सातङ्गा रङ्गवः, प्रकाशैलं शैलं मयादारोदन्ति रोहिताः, शरसंघात-  
घूर्णिता यान्ति महीं महिषाः, दुर्गसंधयं थयन्ते तरलितनेत्राश्चित्रकाः,  
त्वरिततरं तरन्तोचोत्पतन्तो नमसि निजज्वनिर्जिततुरङ्गाः कुरङ्गाः ॥

होन चेति ॥ सातङ्गा समया । रङ्गवो मृगाः । प्रकाशाः स्पष्टा एता उता  
यत्र शैले । रोहितः श्वपदः । चित्रकोऽपि तद्विषेयः ॥

एक ही क्षण बाद बहुत मोटे-भोट शूकर विकल्प होकर गिर रहे हैं ।  
सातङ्ग ( डरे हुए ) रङ्ग ( मृग ) चिरस ( वरुण ) चन्दन कर रहे हैं ।  
प्रकाश ( स्पुष्ट ) एसा ( लगाओ ) वाले शैलों पर रोहित ( मृग ) घट रहे  
हैं । बाण के आघात से घूर्णित ( मूर्छित ) भैंसे पृथ्वी पर लोट जाते हैं ।  
चञ्चल नेत्र वाले शय गुफाओं में घुस रहे हैं । अत्यन्त वेग से छलांग मारने के  
कारण मृग मानों आकाश में उड़ रहे हैं ॥

तत्र च व्यतिकरे

जाताकस्मिक्विस्मयैः किमिदमित्याकर्ण्यमानः सुरैः  
सन्त्रासोऽग्निर्कण्ठतालचलनाद् दिग्दन्तिने. कम्पयन् ।  
जन्तूनां जनितञ्चरः स मृगयाकोलाहलः कोऽप्यभू-  
द्येनेदं स्फुटतीव निर्भरभृतं ब्रह्माण्डभाण्डोदरम् ॥ ४८ ॥

इसी बीच एक अद्भुत शिकार का कोलाहल उठा जिसे "यह क्या है" इस तरह अकस्मान् आश्चर्य में पड़े हुए देवता लोग सुन रहे थे, जो डर के मारे कानों को फड़फड़ाते हुए दिग्गजों को कम्पित कर रहा था। प्राणियों में व्याकुलता उन्मत्त कर दिया था और जिनमें ममन्त ब्रह्माण्ड रूप भाण्ड (पात्र) का उदर ( न भँटने के कारण ) मानो फटा जा रहा था ॥ ४८ ॥

राजाप्येकशरप्रहारपातितमत्तमातङ्गः सर्वतो विहारिद्वरिद्वरिण-  
शशकशम्बरवराहह्वननहेलया विचरन्नितस्ततस्तरुणतरुमालमञ्जरी-  
जालनीलोद्घुषितस्कन्धकेसरमूर्ध्वस्तब्धकर्णसंपुटमध्वचक्राय क्रुध्यन्त-  
माघूर्णितघोषमनघरतहतघनघोरघर्घररचमुक्षिप्तपुच्छगुच्छमभिमुख-  
मेकस्मिन्नतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्बभाजि पङ्क्तिपव्वलप्रदेशे तं शूर-  
शूकरमपरमिव द्रवदहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत् ॥

राजा भी एक ही बाण के प्रहार से मतवाले मातङ्ग ( हाथी ) को गिरा कर चारों तरफ विहार ( भ्रमण ) करने वाले हरि ( सिंह ), हरिण, शशक ( खरगोश ), शम्बर ( मृग ) और शूकर मारने के विचार से घूमता हुआ अत्यन्त तरुण तमाम बुझ की मञ्जरी समूह की तरह नील उस वीर शूकर को देखा जो स्कन्ध देश के बालों को ऊपर की ओर उठाये हुये था, चकित होकर दोनों कानों को ऊपर की ओर किया था, अश्वसमूह पर भ्रोश व्यक्त करता हुआ नासिका को टेढ़ी कर निरन्तर वादल की तरह गरज रहा था, अपनी पूँछ के गुच्छे को हमेशा फैलता ( हिलाता ) हुआ सामने ही एक घने मुस्तावाले पङ्क्त मुक्त छोटे जलाशय में बनाग्नि से जले हुए एक दूसरे पर्वत की तरह प्रनीत हो रहा था ॥

दृष्ट्वा च रचितशरसन्धानलाघवो राघव इव राक्षसेश्वरस्य  
तम्योपरि परिणञ्जविधिध्रुपत्त्रैः पतत्रिभिरभ्यवर्षत् ॥

उसे देखकर बाण सन्धान में पट्ट ( उस नल ने ) विविध पत्तों से मुक्त बाणों की वर्षा उक्त शूकर पर उसी तरह करना शुरू किया जैसे राम रावण पर किये थे ॥



तत्र च व्यतिकरे

किमश्वः पादेषु प्लवनचतुरः किं नु नृपतिः

शयन्मुञ्चन्तु चैश्चलतरकराकृष्टधनुषा ।

किमालोलः कोलः परिहृतशरः शौर्यघसिक्ते

न जानीमस्तेषां क इह परमो वर्ण्यत इति ॥ ४२ ॥

उस समय यह पता नहीं चलना था कि जिसको बड़ा कहा जाय, पाड़ों जगह में उठाने में कुशल उस घोड़े का या अत्यन्त बचन हाथों से खींचकर बाणों को छानने हुए राजा का या बाणों में बचन हुए बौर उस के रक्षक उस अत्यन्त बचन मूकर को ॥ ४६ ॥

अपि च—

अजमि जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं

किमपि चलितशैलं द्वन्द्वयुद्धं तयोस्तत् ।

स्खलिततुरगवेगो विस्मयेनैव यस्मिन्

दिनपतिरपि शौर्याश्चर्यसाक्षी यमूढ ॥ ५० ॥

अनेति ॥ स्वभावतोऽपि मन्वन्दिने स्खलिताश्ववेगो रश्मिस्तत्र कवेरुहः ॥ ५० ॥

उन दोनों के द्वन्द्वयुद्ध में पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न कर दिया, पर्वतों में चञ्चलता उत्पन्न कर दी, भगवान् मूर्ख भी आश्चर्य के कारण अपने घोड़े के देखने को रोक कर उनकी आश्चर्यजनक बीरता के साक्षी बन ॥

[ दोपहर के समय भगवान् मूर्ख स्वयं कुछ मन्दपति जैसे प्रवीत होते हैं । उनकी इस गति पर यदि न कल्पना की है कि मूकर बौर उस की बीरता की देखने के लिये भगवान् मूर्ख ने अपने घोड़े को रोक दिया और उनके बद्धुत शौर्य के साक्षी बन जायें किना ॥ ५० ॥

अथ कथमपि नाथं प्रीयियूयस्य जित्वा

ज्वरित इव विशालं सालसः सालमूले ।

सुखममजत राजा राजमानः ध्रमाम्भः—

कणकलितकपोलालीललीलालकेन ॥ ५१ ॥

अनेति ॥ ज्वरित इव सालस इत्यनेन ध्रमातिशयोक्तिः । अन्योऽपि ज्वरितो मूलाशीनि मेवमानः स्वेदविन्दुलक्षणागन्वरागमो राधते ॥ ५१ ॥

उदनन्तर किसी किसी तरह मूकर समूह के उस विशाल नायक को जीत कर धकने के कारण मानो ज्वराश्रान्त होकर शाल वृक्ष के नीचे पानी के जल-कणों से अतट्टित कपोल तथा चञ्चल एवं सुन्दर बालों से सुशोभित वह राजा सुखपूर्वक बैठा ॥

[ ज्वरित शब्द के उपादान से राजा के अत्यधिक यकान को व्यक्त किया गया है । ज्वराक्रान्त राजा सालवृक्ष की छाया में बैठा । ज्वर को हटाने के लिये वैद्य लोग मूल आदि का काढ़ा पीने के लिये बताते हैं । ज्वरित व्यक्ति को जब पसीना आ जाता है तो समझा जाता है कि उसका ज्वर हट गया । ज्वर के प्रसङ्ग में पसीने आदि की चर्चा अत्यन्त भावपूर्ण है ॥ ५१ ॥ ]

तत्र च स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम्, आन्दोलयन्तः  
कुसुमिततरुन्, तरलयन्त. शिथिशिखण्डमण्डलानि, ताण्डवयन्त-  
स्तनुलतापल्लवनिवहान्, वहन्तो बहन्निर्झरजलशिशिरशीकरनिकरान्,  
करालयन्तः कुटजकुड्मलानि, मकरन्दविन्दुमुचो मन्दमानन्दयामासु-  
कम्पितनीपयनाः पयनाः ॥

तत्र चेति ॥ श्रममुकुलितनेत्रकमलं नृपं कम्पितनीपकानना पयनाः हर्षपाचकु ।  
कुटजकलिकाना करालनं विकासनम् ॥

वहाँ पुष्पित वृक्षों को कंपाता हुआ, मयूरो को (आनन्द के मारे) चञ्चल बनाता हुआ, पतली लताओं एवं पल्लवों की पत्तियों को नचाता हुआ, प्रवाहपूर्वक बहते हुए झरनों के शीतल कणों को डोना हुआ, कुटज पुष्प की कलियों को विकसित करता हुआ, पराग-विन्दुओं को बरसाता हुआ, वदम्बवन को कंपाता हुआ पवन यकावट से आँखों को मुकुलित लिये हुए राजा को शनैः-शनैः आनन्दित कर रहा था ॥

अनन्तरमनघरतकरालकाककौलेयककुलकवलनाकुलितकोलकरि-  
कुरङ्गकण्ठीरवकिशोरहपत्पृष्ठाविते परितः परिजने, जनितविधिव-  
मृगवधवैधव्याधीन्प्याधाशिवारयितुमिवान्तरान्नरा प्रसारितकरे मध्य-  
स्थतां गतवति गभस्तिमालिनि, सहसंवर्यितमृगविनाशशोकभरादिव  
वनवीरुधां पतरसु पुष्पलोचनेभ्यो वाप्येधिव मध्याह्नोष्णविलीन-  
मकरन्दविन्दुषु, भ्रममाणेषु धनदेवतानां धनविमदाँपालम्भेध्विव तरु-  
खण्डोद्गीनविविधविद्वङ्गविरुतेषु, विघट्टितार्भककुरङ्गकुटुम्बिनीकरण-  
कूजितव्याजेनान्पायमिव पूत्कुर्यतांषु धनराजिषु, इतस्ततः सञ्चरच्च-  
दुलतरत्तुरङ्गगुरशिखरशिखोत्खातधरणिमण्डलाद्घनविनाशवार्तां गगन-  
चरेभ्यः कथयितुमिवोत्पतितेऽम्बरतलमकृतपरिघ्राणे च मूर्च्छित इव  
पुनः पुनः पतति भुयि भयनपारायतपतत्रिपत्रधूसरे धूलिपटले, सकम्प-  
कपिकलापोल्ललनलुलिततरुतरुणमत्तरीपुञ्जनिकुञ्जादुद्वेजिते मञ्जु-  
गुञ्जति धनान्तरमपरमुञ्चलिते चञ्चलचञ्चरीकचक्रवाले, चङ्क्रमण-  
क्रमेण च सम्पन्ने सैन्यस्य धमाघसरे तस्यैव सरससरलशालद्रुमस्या-  
धस्ताश्रिपण्णे धममाजि राजनि ॥

वनन्तरमिति ॥ कौलेयकः वा । कौलः सूकरः । पूंकरणमातंग्याहरणम् ॥

उनके बाद निरन्तर नीचे नीचे कौलेयक ( कुत्ता ) को खा जाने के लिये व्याकुल भयङ्कर कौल ( सूकर ), हाथी, मृग एवं कष्ठीरव ( सिंहो ) के सबल वस्त्रों के पीछे चारों तरफ से परिजन दौड़ रहे थे । अनेक मृगवधुओं के वैधव्य रूप आधि ( विपत्ति ) उत्पन्न करने वाले व्याधो को मानो निवारण करने के लिये मध्यस्थ के रूप में गभस्तिमाली ( भगवान् भूयं ) अपने करो ( किरणों ) को फैलाये हुए थे । एक ही साथ पले हुए मृगों के विनाशशोक से मर जाने के कारण बनलतामें अपने पुष्प नेशों से मध्याह्नकालीन उष्णता के कारण गरम परागबिन्दुरूप धासुओं को गिरा रहीं थीं । पेड़ों से उड़े हुए विविध पक्षियों का उन्दन ऐसा लगता था मानों वनक्षेत्रताएँ वनविनाश के कारण उलाहनाएँ सुना रहीं थीं ।

बिहड़े हुए बच्चों के लिये ( रोती हुई ) कुरगवधुओं के करण-बीत्वार के बहान वनपक्षियों अन्त्या को विकारती थीं । इधर-उधर धूमते हुए अल्पन्न चञ्चल धोड़ों के धुरों के अग्रभाग से कट कर गृह-बदुतरों के पक्ष सद्ग धूसर धूलि भूतल से उड़ कर मानो वन-विनाशविषयक समाचार कहने के लिये आकाश में गयीं और जब वहाँ उन्हें रक्षा का आश्वासन नहीं मिला तो पृथ्वी पर मूर्छित हो कर आ गिरी । डरके मारे कांपता हुआ बन्दरों का झुगड़ वृक्षों की पूर्ण विकसित मञ्जरियों को रगड़ दिया था । अत उद्विग्न होकर मधुरतापूर्वक गुञ्जार करता हुआ भ्रमर-समूह दूसरे वन में चला जा रहा था । चक्कर लगाते-लगाते सेना के विधाम का समय भी हो जाता था । राजा वसी सरस तथा भीषे शालवृक्ष के नीचे शक कर बैठे हुए था ॥

अकस्मात्कुतोऽपि

वह्नीश्लफपिनद्धूसरशिराः स्कन्धे दधहण्डकं  
श्रीवालम्बिनमृग्मणिः परिकुयत्कौपीनवासाः कृशः ।  
एकं कोऽपि पटच्चरं चरणयोर्दध्वाऽश्वगः श्रान्तवा-  
नायातः क्रमुकत्यचा विरचितां भिक्षापुटीमुद्वहन् ॥ ५२ ॥

वन्द्योपि ॥ कृदितघर्ती सटिते कोपीनवामपी यस्य । 'परिकुयत्' इति पाठे कुयो वर्णकवलयः । श्रान्तपतितभ्रारयदक्षणैर्निमित्तावात् । पटच्चरो जीर्णवस्त्रगण्डम् । क्रमुकत्वचा पूण्ड्रुमवर्कैः ॥ ५२ ॥

तत्र तत्र अकस्मात् कहीं से—पक्षी हुआ दुबला पतला एक राही आया । वह लता के बन्कल से अपने पके बालों वाले शिर को बाँधे हुए था । कंधे पर दण्डा लिया था । गले में मिट्टी की एक गोली लटकाया था । चितकदरे

रग की लगोटी पहना था । पैरो में पुराना फटा हुआ चिथड़ा बाँधा था । क्रमुक ( कसैली ) के वृक्ष की छाल से बना हुआ एक भिदा पात्र लिया था ॥

[ बहली बहक इसलिये कहा गया कि शिर में बाँधने के लिये लता का बहकल कुछ अधिक मुलायम होगा । शिर उत्तमाङ्ग है । इसके लिये प्रत्येक श्रेणी के लोग अपने-अपने स्तर के अनुमार और अङ्गों की अपेक्षा उत्तम वस्तुओं का संग्रह करते हैं । ]

परिक्रुषण—उसके कौपीन से विभिन्न रंग झलक रहे हैं । कौपीन निर्माण के लिये उस दरिद्र पथिक ने गलियों के कई तरह के फटे चिबडों का संग्रह किया है । उन कई रंग के चिबडों से निर्मित कौपीन स्वभावतः चितकवरा हो जायगा ॥ ५२ ॥ ]

आगरथ च राजानमवलोक्य सविस्मयमेष चिन्तर्याचकार—

‘अञ्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीपथा-

नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते श्रियम् ।

पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखात्रयं

तेजोऽप्यस्य यथा तथा सजलधे. कोऽप्येष भर्ता भुवः ॥५३॥

अञ्जेति ॥ सजलधेरिति भुवो विशेषणम् । उष्णीषमुत्तमाङ्गे लक्षणविशेषः । तयोर्णां भ्रमभ्ये शुभरोमावर्तं यद्विष्य —‘उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लक्षणांतरे’ । तथा । ‘ऊर्णां मेवादिच्छोभिन् स्यादन्तराचर्त्तके भुवो’ ॥ ५३ ॥

आकर और राजा को देखकर आश्चर्य में पड़कर यह सोचने लगा—

“इसकी आँखों में कमल सदृश सुन्दरता है । सिर पर बड़ी सी पगड़ी है । दोनों भौंहों के बीच ऊर्णा की रेखा है । पूर्ण चन्द्र की शोभा इसका मुख धारण कर रहा है । हाथ में कमल का चिह्न है । गले में शंख की तरह तीन रेखाएँ हैं । शरीर से कुछ ऐसा तेज भी विच्छुरित हो रहा है जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कोई समुद्रान्त पृथ्वी का भरण पोषण करने वाला राजा है ॥

[ दोनों भौंहों के बीच में उगे हुए बालों को ऊर्णा कहते हैं । इस श्लोक में राजा के रूप जैसे चित्रित किया गया है और जिन चिह्नों का संकेत किया गया है वे अपरिचयावस्था में भी राजा के चरित्रवर्तित्व को सूचित करते हैं ॥ ५३ ॥ ]

तदेर्षधिधाः अलु महनीया महानुभावा भवन्ति’ इत्येषमवधार्य समुपसृत्य ‘स्वस्ति स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय तुभ्यम्’ इत्यवादीत् ॥

इन तरह के लोग बड़े पूज्य और प्रभावशाली होते हैं।" ऐसा चौबकर कुछ आगे बढ़कर बोला—'अपनी कान्ति से कामदेव को भी जीत लेने वाले जापका कल्याण है।'

राजापि सविस्मयमना मनागुधमितमस्तकः स्वागतप्रवृत्तेनाभिनन्द्य 'तीर्थयात्रिक, कुतः प्रष्टव्योऽसि। क्व च कियथायापि शान्तव्यम्। उपविश। विभ्रम्य कथय काञ्चिदपूर्वा किञ्चिदन्तीम्। अनेकदेशदृश्वानः किलाश्चर्यदर्शिनो भवन्तीति। न चाकस्मिकं दर्शनमपूर्वः परिचयः स्वस्या प्रीतिरित्येकमप्याशङ्कनीयम्। अपूर्वदर्शनेऽपि न जात्या मणयः स्वच्छन्तामपह्वते। तदेहि। मुहूर्तमेकत्र गोष्ठीसुखमनुमवायः' इत्येन-मवादीत् ॥

राजानेति ॥ किञ्चिदन्तीं वार्ताम् । कथया मगपो विशिष्टवातीयरजानि ॥

राजा भी आश्चर्यपूर्वक मन्त्रक घोड़ा ऊपर उठा कर स्वागत प्रश्न के साथ अभिनन्दन कर कहा—“तीर्थयात्री, कहां से आ रहे हो? कहां और किसकी दूर जाना है? बैठो, थोड़ा आराम कर कुछ सुन्दर दृश्यों को नुमाओ। अनेक देश देखने वाले लोग आश्चर्यजनक बहुर-सी चीजों को देख रहे हैं। अमानक भेट होने के कारण या नदीत परिचय के कारण आप ने स्वल्प प्रेम ही, इस तरह की एक भी बात की आगह नहीं कीजिये। जर्व ( प्रथम बार भी ) रत्नों को देखने पर वे अपनी सुन्दर कान्ति छिनाते नहीं। वनः बाधो थोड़ी देर तक बैठकर गोष्ठी-सुख का अनुभव करे।”

असावपि 'अपूर्वकीर्तिक्रयाकर्णनरसिक, धूपता यद्येवनम्' इत्यभि-  
धाय सुखोपविष्टस्यास्य समीपे स्वयमुपविश्य कथयितुमारभत ॥

'ओ अद्भुत कीर्तिक्रमण शाल्यानों को सुनने में रसिक' सुतो—'अदि ऐमा है तो, यह कह कर सुखपूर्वक बैठे हुए राजा के समीप बैठकर कहना शुरू किया ॥

'अन्ति स्वर्गसमः समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याप्रणी-

देशो दक्षिणदिक्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः ।

यस्मिन्स्थागमदोत्सवव्यसनिभिर्घन्यैरशून्या जनैः

रदेशाः स्पृहणीयमाधमरिताः कंनोत्सुकं कुर्वते ॥ ५४ ॥

अन्तीति ॥ स्त्री च पुनांश्च स्त्रीपुमौ । 'अचन्द्रा—' इत्यादिना निपात्यते ॥ ५४ ॥

नभूर्न सत्तार में अपनी दर्शनीयता के लिये ध्याति प्राप्त स्थानों में मुत्प, दक्षिण दिशा करनी नादिका का मुखतिलक, स्त्री एवं पुरुषरत्नों का सागर, स्थान रथ रत्नों के ब्रह्माणी पुष्पवान् लोगों के भरे हुए और आकाङ्क्षित भावों से सम्पन्न स्वर्ग सद्ग के स्थान किये नहीं उत्कृष्टि वता देते ।

सम्पूर्ण सत्कार मे अपनी दर्शनीयता के लिये उपाति प्राप्त स्थानो मे अग्रणी, दक्षिण दिशा रूप नायिका का मुख-तिलक, स्त्री एव पुष्प-रत्नो का सागर, स्वर्ग की समानता करने वाला ( विदर्भ देश ) है जहाँ के ( दिव्य-दिव्य ) स्थान आकाशित भावो से सम्पन्न हैं, और ऐसे-ऐसे पुण्यवान् लोग हैं जो त्याग को ही भवान् उत्सव मानते हैं तथा दान के ही अभ्यासी हैं अत वे स्थान किसको उत्कण्ठित नहीं कर देते ॥ ५४ ॥

कथं चासौ न प्रशस्यते—

यत्र त्रिपुरपुरन्निभ्रोर्ध्रतिलकहारिणा हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचि-  
चक्रचकोरद्युम्भितचरणनखचन्द्ररुचिनिचयेन भगवता सेव्यते सेव्य-  
तयाऽपहसितकैलासधीः श्रीशैलः शूलपाणिना ॥

यत्रेति ॥ त्रिशूलपाणिना त्रिपुरान्तकेन । तत्रस्थेन हि त्रिपुरासुरो हतः ॥

कयो न यह प्रशस्त माना जाय—

जहाँ अपनी रमणीयता के कारण कैलास पर्वत की भी शोभा को समाप्त कर देने वाला श्रीशैल नामक पर्वत त्रिपुरासुर की रमणियों के सिन्दूर तिलक को समाप्त कर देने वाले शूलधारी भगवान् शकर द्वारा अलङ्कृत हैं, जिनके चरण-नख-चन्द्र की कान्ति पुञ्ज को विष्णु तथा ब्रह्मा के मुकुट-रत्नो के कान्ति पुञ्ज रूप चकोर चूमते रहते हैं ॥

[ भगवान् शकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था अत उसकी विधवा पत्नियो ने रौध्रतिलक ( लाल तिलक ) लगाना छोड दिया । विष्णु और ब्रह्मा दोनो ही भक्तिपूर्वक शकर जी की प्रणाम करते हैं । प्रणाम के अवसर पर उनके मुकुट मणियो की कान्ति चन्द्र सदृश भगवान् शकर के चरणनखो की उसी तरह चूमती हैं जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणो को चूमते हैं । श्रीशैल कैलास पर्वत से भी अधिक रमणीय है, इसीलिये तो भगवान् शकर वहाँ निवास करते हैं ] ॥

यत्र च विक्रचद्विधयनविहारसुरभिसमीरणान्दोलितकदलीदल-  
व्यजनयोज्यमाननिधुवनविनोदजेद्विद्रायणनिद्रालुद्रविहमिथुनसनाथ-  
परिसराः सरसघननिचुलतलचलच्चक्रोरचक्रयाककुलकपिञ्जलमयूर-  
हारिण्यो नाकलोककमनीयतां फलयन्ति कमलकेदारसाराः सरससह-  
कावकावहराः कवेरीतीरभूमयः ॥

जहाँ घिरे हुए विभिन्न वनों में घूमती हुई हवा से हिलते हुए बेले के पत्र-  
रूप पखो द्वारा हवा किये जा रहे निधुवन ( मैथुन ) विनोद की यकावट की  
निद्राचरण (समाप्त) करने के लिये नींद में पड़े हुए द्विद्वि-दम्पतियो द्वारा अलङ्कृत

सरस एव धने वेत्त के वृक्षों के नीचे घूमते हुए चक्रोर, चण्डवाक, कपिञ्जल (चातक) तथा मयूरों के कारण मनोहर, स्वर्ग लोक की तरह कमनीय (सुन्दर), क्लम (घान) के श्वेतों से महत्त्वपूर्ण, सरस आम तथा कारस्कर नामक वृक्षों से सम्पन्न कावेरी तट है ।

किं बहुना—

अस्तु स्वस्ति समस्तरत्ननिधये धीदक्षिणस्यै दिशे  
स्वर्गस्पपिर्धिसमृद्धये हृदयहृद्गोदावरीरोधसे ।

यत्र अस्तकुरङ्गकार्मरुदशः संभोगलीलाभुवः

सौर्यस्यापतनं भवन्ति रसिकाः कन्दर्पशस्त्रं स्त्रियः ॥५५॥

अधिक क्या कहें ?—

समस्त रत्नों के सागर उस दक्षिण दिशा तथा स्वर्ग की सम्पत्ति से स्पर्धा रखने वाले मनोहर गोदावरी तट का मङ्गल है जहाँ डरे हुए मृग गिणुओं के नेत्र सद्ग नत्र वाली संभोग लीला की उत्पत्ति भूमि रसिक स्त्रियाँ विविध ऐश्वर्यों के आगार तथा काम दाप हुआ करती हैं ॥ ५५ ॥

तत्र प्रणतसुरासुरशिरःशोणमरोचिचयवद्वलकुङ्कुमानुलेपपल्लवित-  
पादारविन्दद्वयस्य क्लौञ्चमिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः  
स्कन्ददेशस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि ॥

मैं वहाँ शहर से सुगन्धित गन्धमादन पर्वत के निवासी भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये गया था जिनके चरण-कमलों पर धने कुङ्कुम लेप का कार्य प्रणाम करते समय देवताओं और दानवों के मस्तकों की लाल किरणों का घुञ्च ही पूरा कर देता है, और जिन्होंने ओम् (जैसे) पर्वत का भेदन किया है ।

तस्माच्च निवर्तमानेन क्वचिदेऽस्मिन्नध्वरोविनी न्यग्रोधपादपतले  
दीर्घाध्वश्रान्तेन विश्रान्यता मया ध्रुयतां यदाश्चर्यमालोकितम् ॥

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तब करन से एक जान के कारण मार्ग में पूर्ण रूप से फँसे हुए एक दरमद के पद के नीचे आराम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा है उसे सुनिये ॥

अतिललितपद्मविन्याससारसाधुसिन्धुरवधूस्कन्धमभिरुडा, श्रौढ-  
सखीसहायप्राया, प्रान्तपतञ्जामरमरुत्तितालकवल्ली, कर्णकुव-  
लयालंकारधारिणी, रुचिररुचिमञ्चरणनुपूरा, पुरः सरसराग-  
गान्धर्विककण्ठरुन्दरविनिःसरत्सरसगीतप्रेहोलनप्रयोगेषु वृत्तावधाना,  
नेत्रे भनाग्भीलयन्ती, ध्रियमाणमापूरातपत्रमण्डला, मण्डलितमङ्गल-

चापचक्रवक्रभ्रुः भूपालपुत्रिका कापि कापि कुतोऽप्युच्चलिता तदेव  
न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपमशिधियत् ॥

उसी वट वृक्ष छाया-मण्डप के नीचे कोई अत्यन्त सुन्दरी रानपुत्री वही  
से बिसी स्थान के लिये चल कर आयी हुई थी । वह अपने अत्यन्त सुन्दर पद-  
विन्यास की सुन्दरता से साधु ( पूर्णता प्राप्त ) सिन्धुरवधू ( हथिनी ) की भी  
गति को मात कर रही थी । प्रौढ ( सयानी ) सखियाँ उसकी सहायक थी ।  
प्रान्त ( बगल ) में डोलते हुए सुन्दर चँवर की हवा से उसकी अलकवल्लरी  
( केशलता ) नाच रही थी । कानों में कमल का भूषण पहनी थी । रुचिर  
( सुन्दर ) तथा रुचिमन् ( कान्तिमान् ) उसके चरणों के नूपुर थे । सरस  
राग ( मधुरस्वर ) से गाने वाले गन्धर्वों की कण्ठ-कन्दरा से निकलने वाली  
मञ्जीतलहरी के प्रयोग में दत्तचित्त थी । आँखों को कुछ मुकुलित की हुई  
थी । हाथ में एक मयूर पङ्ख का छत्र था । मोहों टेटी थी तो, गोल किया  
( चढ़ाया ) हुआ कामदेव का धनुष् ही थी ॥

तां चालोन्म्य चिन्तितवानस्मि विस्मितमनाः—

किं लक्ष्मीः स्वयमागता मुररिपोर्देवस्य वक्षःस्थलात्  
कोपात्पत्युरुतावतारमकरोद् देवी भवानी भुवि ।  
श्यामाम्भोजसदृक्षपद्मलचलधेत्रामिमां पश्यतो  
धातस्तात करोपि किं न घब्ने चक्षुःसदृशं मम ॥ ५६ ॥

उसे देखकर आश्चर्यपूर्वक मैं सोचने लगा—

भगवान् मुरारि के वक्ष स्थल से स्वयं लक्ष्मी ही आ गयी क्या ? पति से  
ब्रूढ़ होकर साक्षान् पार्वती ही पृथ्वी पर आ गयी क्या ? हे ब्रह्मन् ! श्याम-  
कमल सदृश पलकों से युक्त चञ्चल नेत्रों वाली इस सुन्दरी को देखते समय  
मेरी आँखें हजार क्यों नहीं बना देते । जिससे मैं इन्में अच्छी तरह देख सकूँ ॥ ५६ ॥

अपि च—

इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे  
कालिन्ध्याः कुन्तलाली तुलयति विभवं भव्यभद्रैस्तरङ्गैः ।  
यस्याः किं दृष्टाध्यतेऽभ्यस्तुभगगुणनिधेः काप्यपूर्वेषु यस्याः  
पुष्पेनोर्वैजयन्ती जयति युवजनोन्मादिनी यौवनधीः ॥ ५७ ॥

और मुख चन्द्रमा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है । आँखें कमल से स्पर्धा  
करती हैं । बाल कालिन्धी ( यमुना ) से सन्तुलित होते हैं । सौभाग्य गुणों के  
सागर उस नायिका की नवीन वीवन-लक्ष्मी का क्या वर्णन करें जो युवकों के



हृदय को उन्नत कर देने वाली पुष्पवाग ( कामदेव ) की वैजपन्ती ( पताका ) है ॥ ५७ ॥

अपि च—

आकारः स मनोहरः स महिमा तद्वैभवं तद्वयः  
सा क्षान्तिः स च विश्वविस्मयकरः सौभाग्यभाग्योदयः ।  
एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ तस्याः स एव क्षमो  
यस्यास्मिन्पुराणप्रमोखि भवेज्जिज्ञासद्वन्नद्वयम् ॥ ५८ ॥

आकार इति ॥ उरगप्रमोखासुषेय्या जिज्ञासद्वन्नद्वयं वर्तते तथा यस्यास्तावयो  
जिज्ञासोदयः स एव वर्णवितुं क्षमो भवेत् । यदा 'जिज्ञासद्वन्नद्वयं' इति पाठः ।  
तदा सद्व्यस्योऽनन्तवह्नुत्वचक्षः ॥ ५८ ॥

और वह मनोहर आकृति, वह दिव्य महिमा, वह ऐश्वर्य, वह अवस्था वह  
क्षान्ति और वह विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाला भाग्य भाग्योदय, इनमें  
से एक-एक के वर्णन में वही समर्प होगा जिसे उरगप्रभु (संपराज शेषनाग)  
की तरह दो हजार जिह्वों प्राप्त रहेंगी ॥ ५८ ॥

सापि यथा त्वमिदानीं मामिह पृच्छसि तयार्घपथमिलिनं कंचि-  
दुर्दीचीनीनामध्वगं दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितमादरेण पृच्छन्तो मुहूर्त-  
मिव तत्रैव विश्रमितुमात्मत ॥

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं, वही तरह आगे रास्ते में मिले हुए दक्षिण  
दिशा के लिये प्रस्थित किसी उत्तर दिशा के पथिक से आदर के साथ कुछ  
पूछती हुई वहाँ पर एक क्षण के लिये दिव्याम कर रही थी ॥

श्रुतश्चार्यं मयापि तेन तस्याः पुरः कस्पचिदुर्दीच्यनरपतेः श्लाघ्य-  
मानकथावशेषाल्पाः ॥

मैं भी उनके द्वारा किसी उत्तर देश के प्रसन्न गुन वाले राजा की कथा  
का अवशेष सुना ।

तस्यिन्स्मिनमुखे यूनि यूपदीर्घमुजद्वये ।

ते धन्या न्यपतन्वेषां कंदर्पसहस्रे दृश ॥ ५९ ॥

वे बाँधे धन्य हैं जो उस कामदेव सद्गुण मुक्कुरात्रे हुए मुख वाले तथा  
दूत ( यज्ञस्तम्भ ) सद्गुण लम्बी भुजाधो वाले युवक को देखी हों ॥ ५९ ॥

किं बहुना—

सा त्वं मनमयमञ्जरी स च युधा भृङ्गस्त्वैवैवोचितः  
श्लाघ्यं तद्भवतोः किमन्यदपरं किं त्येतदाशास्मद्वे ।

भाग्यैर्योग्यसमागमेन युवयोर्मानुष्यमाणिक्ययोः

श्रेयानस्तु विवेर्विचित्ररचनासंकरपशिल्पधमः ॥ ६० ॥

सा स्वमिति ॥ अत्राप्रत्यक्षमपि बुद्धिकल्पित प्रत्यक्षमिव मन्यमानो भवतो-  
रित्याह । भवती च भवांश्च भवन्ती । 'पुमान्निष्ठा' इत्येकशेषः ॥ मानुष्ये भूषण-  
भूतत्वात्तयोर्माणिक्यत्वम् ॥ ६० ॥

अधिक क्या ?

तुम कामदेव की मञ्जरी हो, वह युवक (मञ्जरी के पराग की आस्वादित करने वाला ध्रमर है) तुम्हारे ही लिये उपयुक्त है । तुम दोनों के विषय में और दूसरी आशा क्या करें केवल यही आशा (कामना) करता हूँ कि देवान् तुम दो मानव रत्नों के औचित्यपूर्ण मिलन से ब्रह्मा की अपूर्व निर्माण-विषयक प्रतिज्ञा तथा उसके अनुकूल कला प्रदर्शन के लिये किया हुआ श्रम सफल हो जाय ॥ ६० ॥

तत्र जानै स कः सुकृती तेन तस्याः श्रवणादेवोह्यसद्यहुल-  
पुलकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः पुरो विस्तरेणैवं वर्णितः ॥

मालूम नहीं वह कौन पुण्यात्मा है जिसके विषय में सुनने मात्र से उस (राजपुत्री) को इतना अधिक रोमाञ्च हो गया कि (रोमों के खड़े होने के कारण) उसका वस्त्र उठ गया । (उसकी उत्कण्ठा के कारण ही) उसने इस तरह विस्तारपूर्वक वर्णन किया ।

न च मयापि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा प्रस्थितेति प्रश्नाप्रश्नः कृतः । केवलमदृष्टपूर्वरूपोत्पन्नाकस्मिककौतुका-  
तिरेकास्तमितसमस्तान्यव्यापारेणैकाग्रतया ग्रपनिरुद्धेनैवागन्धेनेव मूके-  
नेव मूर्च्छितेनेव विपचिघूर्णितेनेव स्तोभस्तम्भितेनेव गतायामपि तस्यां  
तेनाध्वनीनेन सह तथैव न्यग्रोधतकतले सुचिरमासितमासीत् ॥

नेति ॥ स्तोभश्चेष्टाविधान ॥

आश्चर्य के मारे मेरी भी चेतना नष्ट हो गयी । अतः मैंने भी पूछने का आग्रह नहीं किया कि वह कौन थी ? किसकी ( लडकी ) थी ? वहाँ और वहाँ से आयी थी ? इसके पहले मैंने कोई ऐसा रूप नहीं देखा था । अतः आकस्मिक उत्कण्ठा की अधिकता से समस्त बाह्य व्यापारों के शान्त हो जाने के कारण एकाग्रचित्त होकर किसी ग्रह द्वारा षड्भेदों की तरह, अन्धे की तरह, मूक की तरह, भूलित की तरह, विषयान्मत्त की तरह, व्यर्थ श्रम होने पर विकसम्प विमूढ की तरह होकर उस पथिक के साथ वहीं उसी षट्पक्ष के नीचे बहुत देर तक बैठा रह गया ।

तदायुष्मश्रेय कथितः स्ववृत्तान्तः ॥

तस्यां दिशि तथा सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेष-  
जनतयनकुमुदेन्दुना स्वया दृष्टेन, दृष्टं यद्द्रष्टव्यम् । अबूध मे इलाध्यं  
जन्म । जाते कृतार्थे चक्षुषी । सम्पन्नः सफलः परिध्रमणप्रयासः ॥

जादुग्मन् ! मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया ।

उस दिशा में सम्पूर्ण समार की निरूपण उस ( राजपुत्री ) को तथा इस  
दिशा में समस्त मनुष्यों के नेत्र कुमुद के लिये चन्द्रस्वरूप आपकी देख लेने पर,  
मैंने सब दृष्ट देख लिया जो देखना था । मेरा जन्म सफल हो गया । आँखें  
वृत्तार्थ हो गयीं, देशाटन का प्रयत्न बाध सफल हो गया ।

‘तदिदानीं किमन्यत् ॥ अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्’  
इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥ राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान् ॥

‘अब इस समय और क्या कहूँ । वाता दीर्घिये अपने विषय (देश) जान के  
लिये ।’ इतना कह कर चुप हो गया ॥ राजा भी यह सब सुनकर सोचने लगा ।

स्त्रीमाणिक्यमहाकरः स विषयः पान्योऽप्ययं तद्यथाग्  
व्यापातोऽपि विधेर्विचित्ररचनस्तर्किक न सम्भाव्यते ।  
किं त्वाश्चर्यमदृष्टरूपविभवोप्याकर्ण्यमाता सती  
कान्तेत्युधनचेतसोऽपि कुक्षते नाम्नैव निम्नं मतः ॥ ६१ ॥

कीर्ति ॥ मिश्रममिटापद्मीनत्वाद्वाचस्वदम् ॥ ६१ ॥

वह देश श्री-रत्नों का बड़ा विज्ञान खजाना है । यह पथिक भी नवायें  
बल्का है, क्योंकि ब्रह्मा का व्यापार ( काम ) वृत्त-सी थाश्चर्यपूर्ण कृतियों की  
प्रस्तुत करता है । अतः क्या सम्भव नहीं है । आश्चर्य यही है कि उस सुन्दरी  
की रूप-सम्पत्ति मैंने नहीं देखी, केवल मूर्ती जा रही है, किन्तु उसके नाम ने  
ही मेरा इच्छ मनोबल गिरता-सा जा रहा है ॥ ६१ ॥

तथाहि—

नो नैत्राञ्जलिना निपीतमसकृत्तस्याः स्वरूपानृतं  
नो नामान्वयपह्लवोऽपि च मया कर्णावतंसीकृतः ।

विभ्रं चुम्बति चुम्बकाश्मक्रमयो यद्दृष्टलाद् दूरत-  
स्तद्वर्जितवैर्यमेतदपि मे तस्यां मनो धावति ॥ ६२ ॥

नो नैत्रेति ॥ यहूयथा चुम्बकसंज्ञमरमरम् । पाषाणं कर्म ॥ अयो लोहं कर्तुं ॥  
चुम्बति । तथा मेऽपि मनस्तस्यां धावति ॥ ६२ ॥

क्योकि—

मैं अपनी नेत्राञ्जलि से उसके रूपामृत का बार-बार पान नहीं किया । उसके नाम पल्लव को अपने कानो का भूषण नहीं बनाया । फिर भी चुम्बक जैसे चुम्बक वाले पदार्थ से चिपक जाता है, ठीक उसी तरह मेरा भी धर्म तोड़ कर हठात् उसी की ओर दौड़ रहा है ॥ ६२ ॥

सोऽयं दुर्लभेष्वनुरागः पुंसाम्, अजरमस्वास्थ्यम्, अदौर्गत्यं  
दौ.स्थ्यम्, अविपास्यादनमाघूर्णनम्, असाध्वसं कम्पनम्, अनात्म-  
विक्रयं पारवश्यम्, अजरं जाड्यम्, अनिन्धनं उवलनम्, अलग्न-  
ग्रहमुन्माधनम्, अवात्याघातमुदुभ्रमणम्, अमौनं मौक्यम्, अहीन-  
श्रुतिषाधिर्यम्, अनष्टरष्टिकमन्धत्त्वम्, अस्खलितमनोरथं मनः-  
स्तम्भनम्, अमन्त्र आवेशः ॥

सोऽयमिति ॥ आवेशो मन्तरादेर्मनसि प्रवेश ॥

अप्राप्य वस्तु में ही पुरुषो का अनुराग हुआ करता है । मुझे यह बिना ज्वर की अस्वस्थता है । बिना दुर्गति की अस्थिरता है । विष भोजन के बिना ही मूर्च्छा है । बिना डर का कम्पन है । आत्मसमर्पण किये बिना ही परवशता है । बिना बुढ़ापा आये ही जडता है । लकड़ी के बिना ही ज्वाला है । प्रतिकूल ग्रह के बिना ही पागलपन है । बिना मौन रहें ही गूंगापन है । पक्षाघात या वायु विकार के बिना ही छटपटाहट है । कानो के रहते ही बहरापन आ गया है । आँखों के बिना नष्ट हुए ही अन्धता आ गयी है । मनोरथ के नष्ट होने पर भी मानसिक स्तब्धता आ गयी है । बिना मन्त्र का ही आवेश हो गया है ॥

[ मन्त्र से लोग देव या भूत का आवाहन अपने शरीर पर करते हैं । ऐसा करने पर लोगो की मनोदशा बदल जाती है । विवेश-शक्ति नष्ट हो जाती है ॥

सर्वथा नमः सुस्थितजनदुर्जनाय मनोजन्मने, यस्यायमेवंविधो  
व्यापारः, इत्यवधारयन्नवतार्यं सर्वाङ्गेभ्यो भूषणानि तस्मै सदयमदात् ।

सर्वथा नमस्कार है, सज्जन को भी दुर्जन बना डालने वाले उस मनजन्मा कामदेव को जिनका ऐसा व्यवसाय है, इस तरह सोचता हुआ अपने सभी अङ्गों से भूषणों को उतार कर उसे दे दिया ॥

तैस्तैरालापैः स्थित्या च कञ्चित्समयमिममथ यथाप्रस्थितं पान्थं  
कथमपि प्रेषयामास ॥

उन-उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिना कर किसी-किसी तरह जम पवित्र को उमने ईप्सित म्यान की ओर भेजा ॥

स्वयमपि तत्कालान्तरान्दमिलितैर्नक्षत्रैरिव सार्द्रं मृगशिरोहस्तैः स-  
श्रवणचित्रवृत्तिकोपस्वरवाह्विमि. पापद्विकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा  
निजावासमयासांत् ॥

स्वयमपीति ॥ राजा निग्रहस्यमयात् । तत्काल तत्पणात् । अन्तरालेऽप्यवस्ये ।  
राजा चन्द्रोऽपि । तदा तस्मिन्मण्डलेऽपि तदा काले कलाममूहे अष्टमतीक्ष्णणी  
यदन्तरालं तत्र । मिलिते परिजनैरनुगम्यमान । कीदृशौ । सार्द्राणि स-  
श्रवणचित्रवृत्तिकोपस्वरवाह्विमि हरिणशिरामि येषु तथाविधा हस्ता येषां तै मश्रवणा सङ्गाम् । चित्रस्य  
चित्रकापस्य वृत्तिकां स्वयम् । उपस्वरं मृगयोपयोगि वह्मिन्तै । सार्द्रंशब्दो  
भाववचन । पक्षे सह सार्द्रया नक्षत्रेण, सार्द्रं मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्रं येषु श्रवण-  
चित्रे नक्षत्रे । अनयो समाहारद्वन्द्वः । तेन सह । ताश्च ता वृत्तिकाश्च तासामुपस्वरं  
समवायं वह्मिन्तै ॥

राजा स्वयं भी उषी समस्त रास्ते के मध्य में मिले हुए नक्षत्र-सङ्ग अपने  
व्याघ्र परिजनों के साथ राज-भवन चला आया । वे ( परिजन ) हाथ में  
( खून से ) सार्द्रं मृग का शिर और कानयुक्त चित्रकबरा चमड़ा आदि शिकार  
के अनुरूल सामग्री लिये हुए थे ॥

[ यहाँ का वितोष्य राजा है । राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है ।  
चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है । चन्द्रानुगामी जैसे  
नक्षत्र होने हैं वैसे ही व्याघ्र राजा के अनुगामी थे । नक्षत्र-मण्डल जैसे सार्द्रं-  
मृगशिरोहस्त ( सार्द्रा, मृगशिरा तथा हस्तयुक्त ) है एवं मश्रवण-चित्र  
वृत्तिकोपस्वर ( श्रवण, चित्रा एवं वृत्तिका के समुदाय से युक्त ) है वैसे  
व्याघ्र-परिजन भी सार्द्रं-मृगशिरोहस्त ( खून टपकाते रहने के कारण मृग का  
सार्द्रं शिर लिये हुए है ) और मश्रवणचित्रवृत्तिकोपस्वरवाही ( कानों से  
युक्त विचित्र रंग बाने चमड़े आदि उपस्वर ( सामग्री ) को ढो रहे हैं ।  
शाब्दी समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

ततः प्रमृति च—

हृद्योद्यानमदत्तरङ्गितसरित्तीरे तरूणामध-  
स्तस्येऽनल्पसरोजिर्नानवदलप्रायेऽपि चित्रात्मनः ।

धीरस्यापि मनाट्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-

ल्लभोऽस्येति विमान्यते पर्यशैरङ्गैरनङ्गानलः ॥ ६३ ॥

इषेति ॥ हृद्यस्य मन्वनं हृद्यम् ॥ ६३ ॥

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से जहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी दलों से निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीर ( राजा नल ) के परवश अङ्गों से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी माणस पर्णकुटी के किसी कोने के एक भाग में बराबर छोड़ी कामाग्नि लग ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिष्टान्पृच्छत, पान्थसार्थान्  
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण ।

हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्गमौले-

मन्दनमदगिरासा घासराः प्रावृदेण्याः ॥ ६४ ॥

इति धीप्रियिज्ञमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचण सरोजाङ्गायां  
प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।



तमसो यत्र विनाशः पवित्रोऽङ्गाम पद धनिर्नाम ।

उदय प्रतिपद्यासौ भुवनमुदे अयमि चण्डरचि ॥

इति विषमपदप्रकाशमेत दमयन् यास्तनुते स्म चण्डपालः ।

शिशुमनिलतिरुाविकासचैत्र अतुरमतिभुटभिसिचाहचिग्रम् ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वास समाप्तः ॥



इस तरह—

भगवान् शहर के चरणकमल द्वय के चिह्न से चिह्नित सजाटवाले उस युवक के वर्षाराम्पीन दिन जो काम मठ के निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती वृत्तान्त जाननवाले पविरो से पूछते ही पूछते व्यतीत होते थे ॥ ६४ ॥

[ इतना भाव मग्न हो गया था कि पवित्रा से भी समय बीते ही विषय में कुछ जानना चाहता था ] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्तः ।



उन उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिता कर किसी किसी तरह उस पथिक को उसके ईप्सित स्थान की ओर भेजा ॥

न्ययमपि तत्कालान्तरालमिलितेर्नक्षत्रैरिय सार्द्रंमृगशिरोहस्तैः स-  
श्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाहिभिः पापदिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा  
निजायासमयार्मान् ॥

न्ययमपीति । राजा निजहृदयमराल् । तत्कालं तत्क्षणम् । अन्तरालेऽध्वमप्ये ।  
राजा चन्द्रोऽपि । तदा तस्मिन्काले यमिद्व काले क्लृप्तमूढे अष्टशतीलक्षणो यद-  
न्तरालं तत्र । मिलिते परिजनैरनुगम्यमान । कीदृशौ । सार्द्राणि साध-वाच्यो-  
त्तन्ति इतिशिरासि येषु तथाविधा हस्ता येषां ते मश्रयणां मश्रयणम् । चित्र-  
स्य चित्रकायस्य कृत्तिका स्वयम् । उपस्कर मृगयाययासि वहन्ति तैः । सार्द्रंशब्दो  
भाववचनः । पक्षे मद्र आर्द्रया नक्षत्रेण, सार्द्रं मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्र येषु श्रवण-  
चित्रे नक्षत्रे । अनयोः समाहारद्वन्द्वः । तेन मद्र । तथा ना- कृत्तिकाश्च तासामुपस्करं  
समवायं वहन्ति ॥

राजा स्वयं भी उसी समय रास्ते के मध्य में पड़े हुए नक्षत्र-सदृश  
अपने व्याध परिजनों के साथ राज भवन चला आया । वे ( परिजन ) हाथ में  
( छून से ) आर्द्रं मृग का शिर और जानयुक्त चित्रकबरा चमड़ा आदि शिकार के  
अनुकूल सामग्री लिये हुए थे ॥

[ यहाँ का विशेष्य राजा है । राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है ।  
चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है । चन्द्रानुगामी जैसे  
नक्षत्र होते हैं वैसे ही व्याध राजा के अनुगामी थे । नक्षत्र-पण्डित जैसे सार्द्रं-  
मृगशिरो-हस्त ( आर्द्रा, मृगशिरा तथा हस्त-युक्त ) है एवं सश्रवण-चित्र  
कृत्तिकोपस्कर ( श्रवण, चित्रा एवं कृत्तिका के समुदाय से युक्त ) है वैसे  
व्याध परिजन भी आर्द्रं-मृगशिरोहस्त ( छून टपकते रहने के कारण मृग का  
आर्द्रं शिर लिये हुए हैं ) और सश्रवणचित्रकृत्तिकोपस्करवाही ( कानों से युक्त  
विचित्र रंग वाले चमड़े जाँटि उपस्कर ( सामग्री ) को ढो रहे ) है । शास्त्री  
समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

नतः प्रभृति च—

हृद्योद्यानमरुत्तरङ्गितसरिर्नारे तरुणामध-

म्लल्पेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः ।

घोरभ्यापि मनाद्भ्रमनस्तृणकुटीरीणान्तराले बला-

हृग्मोऽस्येति विभाव्यते पर्यशौरङ्गैरनज्जानलः ॥ ६३ ॥

इति ॥ हृदयस्य यन्धन हृद्यम् ॥ ६३ ॥

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से लहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी दलों में निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीर ( राजा नल ) के परवश अज्ञो से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी मानस-परणकुटी के किसी कोने के एक भाग में बलात्कार छोड़ी कामाग्नि लप ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिज्ञान्पृच्छत. पान्थसार्थान्  
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण ।

हरचरणसरोजहृद्ममुद्राङ्कमौले-

र्मदनमदनिवासा वासराः प्रावृषेण्याः ॥ ६४ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण सरोजाङ्गायां  
प्रथम उच्छ्वास समाप्तः



तमसो यत्र विनाश पथिकोच्छ्वास पशार्थनिर्भाम ।

उद्य प्रतिपथासौ भुवन्मुदे जयति चण्डरुषि ॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुने स्म चण्डपाल ।

शिशुमनिलतिकाविकासधैर अतुरमनिस्फुटभित्तिचारुषिग्रम् ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वास समाप्त ॥



इस तरह—

भगवान् शंकर के चरणकमल-द्वय के चिह्न से चिह्नित ललाटवाले उस युवक के वर्षाकालीन दिन जो काम-भद्र के निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती वृत्तान्त जाननेवाले पथिकों से पूछते ही पूछते व्यतीत होते थे ॥ ६४ ॥

[ इतना भाव-मग्न हो गया था कि पथिकों से भी दमयन्ती के ही विषय में पूछ जानना चाहता था ] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।





## द्वितीय उच्छ्वासः

अथ मदादिद्वयगलद्वयद्वलपरिमन्त्रमित्दलिकुलाकुलितकुटजकदम्ब-  
कुमुनकर्णपूरशून्यमानतासु, प्रिथाम्यन्मदनुधरमपूररसनापलीकल-  
कपितासु, प्रिलत्तरत्तडिहृत्ताललितलापण्यासु, विगतहंसद्विजराजिषु,  
पतत्पयोऽरासु, आगमुक्तासु, वृद्धास्त्रिय गतप्रायासु वर्षासु, रतिम-  
कुर्वाणो मदनलल्लहंमहासहारिण्यामुत्सुकन्तवण्यामिधागताया,  
शरदे, द्विरद्वन्द्वगन्धमभ्यन्धानुधापिते कुसुमिनसतच्छदच्छायासु  
विम्बूर्जति रोपाद्घुपितकेसरकरालकण्ठे कण्ठीरवकदम्बने, गृह-  
दीर्घिनामृपालिनामण्डलभण्डनविरामरमणायमुन्नदन्सु शरत्समये  
प्रवेशमदलमृदङ्गश्रिय इममण्डलेषु, म्भरशरनिम्भरनिर्मथितपान्य-  
मार्यप्रहाररुधिरनिश्वन्धिन्दुसंदोह इव घनस्थलीपृन्मिपति वन्धुर-  
वन्धुककुमुनप्रभरे, प्रसरन्तीषु शरत्कर्मोप्रवेशानन्दवन्दनमालासु नि-  
शङ्कशुककुलापलाषु धूयनापासु स्मरराजराज्यविजयघोषणासु पक-  
कलमगन्धशालिपालिनावालिनाहर्षगातिषु, शरच्छ्रीकटाक्षेपूर्वमालसु  
नालनोरजेषु, क्वाति वर्षावधूप्रस्थानपटहे पट्टचरणचक्राले, प्रभात  
इव घनतिमिरप्रियमरमार्गये जाते जलनिप्रियायनशायिशार्ङ्गिनिद्राद्रुहि  
प्रिनिद्रसान्द्रसरससरोजपजिराजितम्बरसि शरत्समये, स महीपतिः  
समासन्नपत्रिहारिर्किरमिधुनेन गीयमानमिदमनदलीलं इन्नेकत्रयम-  
शृणोन् ॥

अर्थेन ॥ अतस्तरमितिनि मन्त्रेन स रागा निष्कृष्टानने विचरन्किनामिधुनेन गी-  
यमान रागविशेषगच्छार्थमार्गमिदमिति वक्ष्यमाणमनदलीलमप्राग्घ रलीकत्रिनय  
माकर्णितवान् । किंविशिष्ट । कलहसा एव हामस्मन रम्याया तद्व्याममिनवप्र  
वृत्तायाम् । अथ च शरदेव तद्वर्गी वृत्तिः । तस्यामागताया रागास्त्रय प्रस्तायाम् ।  
उमुक्तकक इत्युक्त्यन्तरम् । तदा मदन वीचनया नरुगिमोद्रेकेण वा कलकलो  
यस्या । तथा शुभ्रवाद्दसोपमौ हामद्वारौ स्तोऽस्यामिति कर्मधारयाम्भचर्योप ।  
न कर्मधारयदिनि तु प्रायिकम् । किं विदधान् कुवण् । काम् । रतिं चित्ता  
संक्षिप्तम् । कामु । वर्षासु । किमुतासु । गतप्रायासु स्वल्परेपासु । तथा  
कुसुमान्येव कर्णपूरा वत्तमास्त्रैः शून्यानि कातनावि वनानि यासु । तथा मदन  
सुथरागा मयूरागा या रमनाली जिह्वाश्रेणिस्तस्या कलकगितम् । तद्विधाम्यद्वि-  
रमिधाम् । वर्षादये हि केकायन्ते न प्रान्ते । मदायावात् । तथा स्तोत्रविद्युद्यो-  
तासु । व्यपेतहमपक्षिपद्भिषु सरधदनासु । चीणशुक्राख्यप्रहासु । काम्बिव । वृद्धा

स्विव । तदा । रति मन्भोग' । गत प्रकृष्टमयमिष्टफल दं व यासाम् । तथा कुमुदैः पुष्पदामभिः कर्णपुरैश्च शून्यं क शिर भानन च यासाम् । तथा रसनायाः काण्ड्याः कणितस्य मुखरमयूररवो ललितस्य मधुराङ्गविन्यासस्य लावण्यस्य च लोचन-लेखकमनीयगुणस्य विरलतद्विदुषवांनम् । तथा व्यपेनहसद्युभ्रदन्तराजिषु पतारकु चासु । तथा शीण गर्भसंभवाभावाद्दिनष्ट शुक्र पुवार्यं वासु । न पुननिवृत्तवार्या स्थिति व्याख्येयम् । पुंसां वीर्यं स्त्रीणां रज इति प्रसिद्धे । भनएव न विद्यत बलं वीर्यं यासांमिष्यबलाः । रसनाशब्द काञ्चीपक्षे न पर तालभ्य । दन्त्योऽप्यस्त । तथा च विश्वप्रकाशः—'रसना काञ्चिजिह्वयो' इति । द्विरदमदगन्धस्य सम्बन्धो द्विरदमदगन्धोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा तयानुधाविते । सम्बन्धपाठे तु सम्बन्ध सन्धि-मैत्री म्मादशयमिति यावत् । शरदि सप्तस्वदा' पुष्प्यन्ति । ते च-मदगन्धयस्ततो ग-जभ्रान्त्या सरोप 'विसृजति सिंहवृन्दे । शृणालिकाकाण्डस्य खण्डनाय योऽमौ विरा-भोऽर्थात्तादस्यव । तेन रम्य यथा भवति स्थित्वा स्थित्वा शृणाल चर्वन्ति तत्कषाय-संशुद्धकण्डाश्च नाद्र कुर्वन्तीत्यर्थः । हसमण्डलानि शरत्प्रवेशमङ्गलमृदङ्गा । चन्धूक-कुमुमस्यातिलौहियाद्विरद्विजनरधिरस्यम् । पृष्ठावलम्बोरणम् । कलमस्य श्वेतशाले गन्धशालेश्च रक्षिका गीतय कंदर्पराजजयघोषणा । विक्सशालास्पलानि शरत्-पमीकटाशा । शृङ्गणश्च यान्त्या चर्वावध्वा प्रयाणणव । घनो मेघो घनं च साग्दम् । शरनस्थानम् । निद्राद्रोहो विनिद्रसान्द्रयरोजराजितसरस्य च शरत्प्र भातयो समानम् ।

[ इसके बाद समीपवर्ती वन में घूमता हुआ राजा किन्नर-मिश्रुन द्वारा स्पृतापूर्वक गाये जा रहे तीन श्लोको को सुना । उस समय तक वर्षाकाल बीत चला था और शरत् का आविर्भाव प्रारम्भ हो गया था । प्रस्तुत अनुच्छेद में वर्षा को एक वृद्धा बधू के रूप में और शरत् को एक तरुणी के रूप में चित्रित किया गया है । ]

तदनन्तर एक समय राजा का मन वृद्धा-सदृश अतीतप्राय वर्षा-बधू में नहं लग रहा था; क्योंकि जगल बरसते हुए गाढे पराग पर झूमते हुए भ्रमर-यूयो से व्याप्त कुटज एवं कदम्ब के पुष्परूप उसके कर्णभूषण से शून्य हो गये थे । मद से मुखर ( बाचाल ) मयूररूप जिह्वा-समूह की मधुर ध्वनि समाप्त हो चली थी । विद्युल्लता में ( समृद्ध ) होनेवाला मनोहर ( सौन्दर्य ) घटता जा रहा था । हस रूप दत्त-पत्ति समाप्त हो गयी थी । पयोधर ( मेघस्तन ) गिरते जा रहे थे । शुक्र ( शुक्रग्रह ) क्षीण ( अस्त ) हो गये थे । ( बुढ़ापे के कारण ) शुक्र ( रज ) क्षीण ( समाप्त ) हो गया था ।

( ऐसे ही अवसर पर ) मद से सुन्दर कलहसरूप-हाथ के कारण मनोहर ( स्वयम् ) जायी हुई शरत् तरुणी में उसका मन उत्कण्ठित हो गया । हाथी के मदजल-गन्ध की धारणा में क्लिष्ट हुए छिलोने की छाया में दीड़ते हुए उन्टे हुए केसरों ( गर्दन के बालों ) के कारण भयङ्कर कण्ठ वाले सिंह गरज

रहे थे। शरद्-वधू के आगमन के अवसर पर गृहशीघिका ( नहरे बहिस्त या Long-canal ) के बन्दरूदण्ड को खाकर हृन्मण्डल माङ्गलिक मृदङ्ग की तरह मधुर ध्वनि कर रहे थे। वनमूमि में सुन्दर बन्धूक-पुष्पो की पङ्क्ति कामवाण-सन्धु में मये गये पथिरुदगं के सप्तस्थलो ( धावो ) में निकलते हुए श्विर विन्दुमगूह की तरह प्रतीत हो रही थी। शरत्-लक्ष्मी के प्रवेग से उन्मत्त होनेवाले आनन्द के कारण निशंक तोनों की पक्ति बन्दनमाला ( तारण ) की तरह फैल रही थी। पके हुए सुगन्धित कलम ( धान ) की देख-रेख करने वाली बालिकाओं की गीति सुप्राट् कामदेव की राग्य-विषय की घोषणा की तरह सुनायी पड़ रही थी। शरत्-लक्ष्मी के कटासस्वरूप नील कमल खिल रहे थे। भ्रमरवर्ग वर्षा-वधू के प्रम्यानकाशीन नगाड़े की तरह गम्भीर ध्वनि कर रहा था। जैसे प्राण काल घन तिमिरविराम ( गाड़े अन्धकार के नष्ट हो जाने ) में रमणोप हो जाता है उसी तरह शरद्-समय भी घन-तिमिर-विराम ( बादलजन्य अन्धकार के नष्ट हो जाने ) से मत्तोहर हो गया था। समुद्र-म्यल पर सोनेवाले भगवान् विष्णु की निद्रा टूट चुकी थी। खिले हुए घने तथा सरस कमलों की पंक्ति से सरोवर सुशोभित हो रहे थे। ( ऐसे समय में ) उस ( नल ) ने समीप के वन में बिहार करनेवाले किन्नर-विष्णुन द्वारा गाये जाते हुए सन्धु अर्पण वाले तीन श्लोक सुने ॥

[ वर्षापूर्वग्न्य—कदम्ब और कुटज के फूलों पर जब काले भ्रमर बैठे हो तो उसकी शोभा निश्चिन्त ही अधिक समृद्ध हो जायगी। ऐसे भ्रमरयुक्त कदम्ब और कुटज पुष्प की कवि ने वर्षा-वधू का वर्षामूषण बनाया है। वर्षा काल के बीतने पर कदम्ब के फूल भी समाप्त हो जाते हैं। वृद्धा लोग जैसे वान्छारग्न्य हो जाती हैं वैसे वर्षा भी अलङ्कार ( कर्णमूषण ) शुभ्य हो गयी।

मुञ्जमयूर—वर्षाकाल में मयूर आनन्दमत्त होकर बाचाल बन जाते हैं। बाचाल मयूर ही वर्षा-वधू की जिह्वा हैं। वृद्धा के मुख से जैसे मधुर ध्वनि नहीं निकलती वैसे वर्षा वधू की मयूर जिह्वा अब मधुर ध्वनि नहीं कर पाती।

विरलनरतडिल्लना—वृद्धा जैसे यौवन के लजित लावण्य से वञ्चित हो जाती है उसी तरह वर्षा का भी सोन्दर्य कम हो गया है क्योंकि उसके स्वस्व का समृद्ध करनेवागी विद्युल्लता अब कभी ही कभी उगती है।

हृषद्वित्र—वर्षाकाल में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। शुभ्रनारूप समानता को दृष्टि में रखकर हंसों को ही वर्षा-वधू का दात बनाया गया है। वृद्धा के जैसे दाँव गिर जाते हैं उसी तरह वर्षा-वधू के हंसरूप दन्त समाप्त हो गये हैं।

पतत्पयोधरा—बुढ़ापे में स्तन लटक जाते हैं। वर्षाकाल के अन्त में पयोधर ( मेघ ) समाप्त होने लगते हैं।

शीणशुक्रा—वर्षाकाल में शुक्र ग्रह अस्त रहते हैं। वृद्धा स्त्री का शुक्र ( रज ) समाप्त हो जाता है।

मदकलहस—शरत्-काल में हस आ जाते हैं। हसों को ही यहाँ शरत्-रुणी का हास कहा गया है। रस से स्वयम् उपस्थित तरुणी के प्रति राजा की उत्सुकता स्वाभाविक है। द्विरदमदगन्ध—छित्तौन के फूल में गजमद की तरह गन्ध होती है। भयङ्कर सिंहों को फूल की गन्ध में गजमद-गन्ध की भ्रान्ति हो जाती है। इसी लिये तो उधर जोरो से दौड़ते हैं। निद्राद्रुहि—शरत् समय में भगवान् विष्णु सोकर जगते हैं ॥ ]

धन्याः शरदि सेवन्ते प्रोल्लसच्चित्रशालिकान् ।

प्रासादान् स्त्रीसखाः पौराः केदारान्श्च कृषीवलाः ॥ १ ॥

धन्या इति ॥ प्रोल्लसन्त्यश्वित्रशालिका आलेख्यभूमिका येषु । पचे चित्रा बहु-विधा शालय । स्त्रीसखा इत्युभयत्र योज्यम् ॥ १ ॥

वे नागरिक धन्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका ( भव्य चित्रों के उपयुक्त मित्तियों ) वाली अट्टालिकाओं का उपभोग अपनी स्नेहमयी रमणियों के साथ करते हैं और वे कृषीवल ( किसान ) भी धन्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका ( सुन्दर विविध धानों वाले ) खेतों का उपभोग करते हैं ॥ १ ॥

[ यहाँ प्रोल्लसच्चित्रशालिकान् का प्रासादान् और केदारान् दोनों के साथ अन्वय है ॥ १ ॥ ]

नमिताः फलभारेण न मिताः शालिमञ्जरी ।

केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनि स्पृहाः ॥ २ ॥

कुन स्त्रीसखा इत्याह—नमिता इति ॥ हि यस्मात्कारणात् । दारेषु के नि स्पृहा-इत्यु । किं कुर्वन्त । फलभारेण नमिता चक्रिता न मिता स्तोका केदारेषु श्रेष्ठेषु शालिमञ्जरी पश्यन्त । तद्दर्शनं उडीपनविभाव ॥ २ ॥

खेतों में फल भार से नवी हुई अपरिमित धान की बालों को देख कर कीन आदमी स्त्रियों के प्रति अनुत्कण्ठित रह सकते हैं ॥ २ ॥

[ फलभार से नमित ( नवी हुई ) न + मित ( अपरिमित ) शालि—मञ्जरी ( धान के बालों ) को केदार ( खेतों ) में देख कर कीन स्त्रियों में ( के + दारेषु ) अनुत्कण्ठित रह सकते हैं। स्त्रीवाचक दार शब्द पुल्लिङ्ग और नित्य बहुवचन है। केदार शब्द खेत का वाचक है। दूसरे केदारेषु में कि शब्द का प्रथमा बहुवचन 'के' है और दार शब्द का सप्तमी बहुवचन 'दारेषु' है ॥ २ ॥ ]

प्रावृषं शरदं चापि बहुवाकाशहरिणाम् ।

विलोमस्य नोत्सुकः कः स्यान्नरो नीरजसङ्गताम् ॥ २ ॥

मधुरनिधि ॥ रमणीयत्वात् । बहुधा पुन पुनर्विलोक्य प्रावृषमाकाशस्य स्योम्न-  
स्तिहायिनीं नीरजस्य निपाशु गतामतिःशान्ता शरद् च काशपुंरम्याम् । तथा  
नीरजै पशैः सगतामन्विताम् ॥ ३ ॥

बहुवाकाशहरिणी ( अधिककाश आकाश का ) मेघा ष ( छिगा देने वाली )  
तथा नीरजस - गता ( धूलिहीन ) वर्षा को नीर बहुधा + काश + हरिणी  
( अविकाश-काश पुन म सुगामित होनेवाली ) और नीरज + सगता  
( कन्ये स सन्विता ) शरद् को देखकर कौन आदमी उत्कण्ठित नहीं  
हा जाता ।

[ शरद् और वर्षा दोनों हा शृङ्गार के उद्दीपक हैं । वर्षा के दिनों में  
आकाश अधिककाश बादल से छिगा रहता है और पानी पड जाने के कारण  
रास्त्रों की धूलि समाप्त हा जाती है । इस पञ्च म 'हरिणी' का उपमा छिगाने  
अर्थ में किया जायगा और शरत्-पञ्च म 'हरिणी' का उपयोग मनोहरिणी  
अर्थ में किया जायगा । शरत् काश की शोभा काश-पुष्पों से बढ़ती है और  
इन दिनों में कमल पर्याप्त रूप म खिलते हैं । वर्षा पञ्च म नीरजस + गता  
और शरत् पञ्च में नीरज + सगता अन्वय करना चाहिये ॥ ३ ॥

[ किलर मियुन के इन श्लोकों को सुनकर उत्कण्ठा-विह्वल राजा रमणीय  
उद्यान की ओर चला ॥ ]

अनेन मृदुमूर्च्छनानरङ्गरङ्गिताक्षरेण ध्वजपथप्रथमप्रियातिथिना  
श्लोकत्रयेण त्रिपत्रिमविषयधैरस्यत्रततिकडिनकुडारेण, द्वारपरि-  
ग्रहपरारुमुखोऽपि शृङ्गारश्लिष्टशुक्तुङ्गमारोप्यमाणस्तदेवोद्यानमम-  
न्दमन्दारमन्दारमोदमत्तमधुकरमधुखंडमाररमणायमुपसर्तुमारमत ।

अनेन श्लोकत्रयेण प्रियाम्रहविमुखोऽप्युच्छे शृङ्गारगिरिशिखर नीयमानस्त  
देव वनं गन्तुमारमे ॥

\* मधुर स्वरलहरी म आन प्राण अनरावाले, कर्णमार्ग के सर्वोत्तम त्रिप  
अतिथि, अत्यधिक ( साधारण ) विषयों क प्रति धैरस्य ( वैराग्य ) द्रवरूप  
विषयता का समाप्त कर दन वाले तेज कूडाररूप इन तीन श्लोकों में राजा  
विदाह क प्रति ठंडाशील रहता हुआ भी शृङ्गार शैल क शिखर पर चड  
रहा था । अतः मन्दार-पुष्पों की पर्याप्त गन्ध से उन्मत्त अनरा की मधुर  
ध्वनि से मनोहर उद्यान की ओर चलना गुरु किया ॥

[ राजा के उद्यान में पहुँचने पर वनपालिका ने वन के बहुत से कौतुक पूरा स्थान दिखाया । इस अनुच्छेद के प्रारम्भ से लेकर 'वनमाखेतन' तक के शब्द वायु के विशेषण हैं । वनराक्षका की उक्ति सभङ्गश्लेष के माध्यम से शत्रु वध-मुख और वन, दोनों पक्ष में लगेगी ॥ ]

प्रथमसम्मुखप्रेङ्खितेन चलच्चन्दनामोदनन्दिनान्दोलनवेगावित्रस्त  
कुसुमिततरुशिखरसुप्तसुरतथ्रमखिन्नकिंनरीनिविडतरपरिरम्यमाणकि  
नरनमस्सृतेन कीडाकमलदीर्घिकातरङ्गोत्सङ्गरङ्गत्तरुणतामरसरसविस  
रोद्गारहारिणा यौवनमदनिरुद्धनैपथ्रीधम्मिल्लुवल्लरीचलनधिलासलास  
केन घनमाखेतनोत्पुलकिततनु स्तोत्रमन्तरमनिक्रम्य 'देव, भवद्वैरि  
वधुवदने वने च नारङ्गरूपशोभे भान्ति गण्डशैलस्थलालङ्कारधा  
रिण्यो लोभ्रलता, नागरुचिताश्चन्दनपत्रभङ्गा, नालिकेरचितमित्तर, ,  
नया दृष्टिपथभवतरति घनाञ्जनयष्टिका, नाभिरम्या नीलतमालका,  
नाधरीकृतस्ताम्बूलोराग, पल्लवितमेतद् दृश्यतेऽशोकजालम् । इतश्च  
काञ्चनगिरिरिव सुरचिन्त क्रीडापर्वत । इतश्च गूर्जरकूर्चमिवाद्यण्डित  
प्रवाल बालशालवनम् । इतश्च भवद्वरिनगरमिवानेकविधकुलसकुल  
कूपकुलम् । इतश्च धूर्जटिजटाजूट इव पुनागवेष्टितो चार्पापरिसर ।  
इतश्च कुरुसेनव कृताश्वत्थामहिता च क्रीडासरित्पुलिनपालि ।'  
इति सभङ्गश्लेषोक्तिकुशलया वनपालिकया निवेद्यमानानानि वनचिनोद  
न्यानान्यचलोकयाञ्चकार ॥

तत्र ईदृग्विधेन वायुना रोमाञ्चिततनु देवस्याद्यामप्य तवारिर्द्धामुखे वने  
चेदमिति सभङ्गश्लेषोक्तिरुच्यते वनराक्षिका कथ्यमानानि घनकौतुकस्थानानि नलो  
च्यलोक्यते । आन्दोलनवेगोप्यादावान्दोलन शरीरेव पवनजन्यम् । स्वदृष्टिमुखे  
अरम्यार्थं गतसौन्दर्यं कपोलकलकालङ्कारिण्यो लोभ्रस्य विलेपनाश्वरस्य लता  
मण्डनवल्लर्यो न भान्ति । अगठद्रवेण चितारचत्तनदध्यस्य पत्रभङ्गा पत्रवल्लस्य ।  
अलिकललाट निलक पुण्ड्रम् । वा ममुच्छये । घन सा द्रमञ्जन तस्य यष्टि  
शालाका । नाभिरम्या मस्कृता । प्रकपण शीला कटिलकेन अशरोऽस्थानी यधरी  
ओष्ठवान् । नागजराग ओष्ठमवद कृत इति भाव । सर्वत्र नम्यव ध । अन्तर  
सीति तु मनिहितमय योज्य न प्रत्यक्षम् । पल्लवितशब्दा लक्षणया प्रसूद्धा ।  
'शोका मप्रलापमनोर्द्धाम्याऽञ्जान शोकजन्यम् । अत्रमार्थम् । वने च नारङ्गरुचि  
कृतशोभे महजम्बुतम्बूलपाषाणशलाभूयसा लोभ्रस्य तरुणिपस्य लता नम्य  
भा त । नागेशो रुचिताश्च इतरा पत्राणा भङ्गा विशेषा । तिष्ठो वृषा  
नालिकेरैस्तदभिष्यात् । नया गयीता । अञ्जनस्य शारिणो यष्टि प्रकाण्ड ।  
तमालका इति इत्येव । अन्त्य नाभिरम्या नाभिर्द्धा इति भाव । नाधरीकृतो  
न हीभीकृत । ताम्बूली वल्ली । राग मल्लि । किसलपितमशोकानां जालं स्रष्ट ।

इतश्च मुष्टं रचिनः सुरस्रितो न्यासश्च । प्रवालः पङ्कजाः । पद्मे भस्मणिहता अतः  
एव प्रवृद्धा वालाः केशा यत्र । अनेकविधैर्बकुलैः सकुलम् । पद्मे अनेका विधवा  
सूनभर्तृका टेषु कुलेषु तैः कुलैर्गोत्रैः सकुलम् । पुनागमग । अन्यत्र पुमाश्चागो  
वासुकि । कृता उपादिना अश्वथा पिप्पली यस्याम् । तथा महिता चार्वी । पद्मे  
कृतमशाशान्ने द्रोणसुताय हितं यथा ॥

अन्यन्न सामने ही बहनी हुई, फैलती हुई चन्दन-गन्ध से प्रसन्न, पुष्पित  
वृक्षों की ऊँची डालियों पर मुरन-श्रम ( मैथुन की पकावट ) में एक कर  
लेटी हुई और ( हवाक ) कम्पन-वण में डरी हुई किन्नरियों द्वारा गाथाजिह्वन  
प्राप्त किये हुए किन्नरी से नमस्कृत, शीघ्रा कमल-दीपिका ( कमलों में भरी  
दावली ) की लहरों के सम्पर्क में कम्पित तामरस ( कमलों ) के रसमय  
गन्ध व्यक्त करने के कारण मनोहर, यौवन-मद की ही मानो रोक रखने के  
लिये बाँधी गयी निषध-मुन्दरियों की देती क वालों को कम्पनरूप विलासपूर्ण  
नृत्य करानेवाले वन-ववन में राजा की रोमाञ्च हो आया ।”

[ मैथुन-श्रम में एक कर किन्नर-दम्पती पेड़ों की डालियों पर सोये थे ।  
जब जोर से हवा का झोंका आया था तो डरी हुई किन्नरियाँ अपने परिजनो से  
लपट जानी थीं । पवन के इस उपकार में उपहृत होकर किन्नर लोग  
उन्हें नमस्कार करते थे ।

यौवनमद—कोई चीज भाग न निकले इसलिये उसे बाँध देते हैं ।  
निषध-मुन्दरियाँ मानो इसलिये अपनी बेल्गियाँ बाँधी हुई हैं । पवन उन  
बेल्गियों के बालों को नवा रहा है । ]

थोड़े व्यवधान का अतिक्रमण कर ( समीप आकर ) समझदरलेय के  
माध्यम से झोलने में कुशल वनपालिका ने कहा—देव ! आपकी शशु-बभुओं के  
पुर्नन ( अरम्भ ) शोभाहीन मुख पर ज्योति भाग को अचकृत करने वाली लोत्र  
( लाल रंग ) में बने हुए लता—चिह्न और अग्र विहित चन्दन में बनी हुई  
पत्र-रचनाए तथा अलिक ( ललाट ) पर अच्छी तरह बनाये गये तिलक-चिह्न  
अच्छे नहीं प्रतीत होते । घने अञ्जन-सुक्त यष्टिका ( शलाका ) दृष्टिमान में  
महोत्तरनी । नीचम ( अदन्त काले ) अण्ड ( बाल ) अभिरम्य ( सुन्दर )  
नहीं गने । पान का लालिमा में थोड़े की लाल नहीं किया जाता । शोक से  
कारण हम्पन्न दुरवस्था पर्याप्त रूप में बड़ी हुई दिखायी पड़ती है ।

वनपल—नारंग ( नारंग ) के वृक्षों में सुशोभित इस वन में गण्ड-वीर  
( गिरे हुए पत्थरों ) को अलकृत करने वाली लोत्र लताए भागो से सुशोभित  
चन्दन-पत्रों की विद्येपताएं और नारियल पेड़ों में व्याप्त तिलक वृक्ष अच्छे

लगते हैं। नवीन एव घनी अञ्जन वृक्ष की शाखायें दीखती हैं। नीले तमाल वृक्ष नाभिरम्य ( अत्यन्त रमणीय ) हैं पान की लताओ की जड़ें कम नहीं की गयी हैं। अशोक के किसलय-पत्ते सब जगह दीखते हैं। इधर काञ्चनगिरि जैसे सुर + चिन ( देवताओ से व्याप्त ) है उसी तरह आपका क्रीडाशैल भी सु + रचित ( अच्छी तरह सजा हुआ ) है। गुजराती लोगो की दाढी जैसे अक्षण्डित प्रवाल ( बिना कटे हुए बालो वाली ) होती है वैसे आपका नवीन शाल वृक्षो का वन भी अक्षण्डित प्रवाल ( न कटे हुए किसलयो वाला ) है। आपका शत्रु-नगर जैसे अनेक विधवकुल सकुल ( अनेक विधवाओ से युक्त ) है वैसे ही आपके बगीचे के कूप अनेकविध + बकुल + सकुल ( विविध तरह के बकुल वृक्षो मे व्याप्त है )। धूर्जटि ( भगवान शकर ) की जटा जैसे पुनाग ( विशिष्ट सर्प ) से वेष्टित है वैसे ही इधर का वापी-परिसर ( सरोवर तट ) पुनाग वृक्ष से व्याप्त है। कुरुओं की सेना जैसे अश्वत्यासहित ( द्रोणपुत्र अश्वत्यामा पर छोड़ी गयी ) थी वैसे ही क्रीडा-नदी की तट-पक्तियाँ अश्वरथ + आमहित ( पिप्पल वृक्षों के कारण पूजित ) हैं ॥

{ नारगरूपशोभे—इस पद के न का अन्वय शत्रुपत्नी वदन पक्ष मे भान्ति क्रिया के साथ हुआ है। जरम् शब्द पर्याप्त अर्थ का वाचक है। अर्थात् वर + गनरूपशोभे वदने ( पूर्णरूप से शोभाहीन मुख पर ) लोध्रलता प्रभृतय न भान्ति ( लोध्रनिमित्त पत्र रचनायें अच्छी नहीं लगती )। नारंग + तट + उपशोभे ( नारंग के वृक्षो मे मण्डित ) वन मे लता आदि सुशोभित हो रही हैं। मुख पर गण्डस्थल शैलस्थलालङ्कारधारिणी ( कपोल भाग को अलंकृत करनेवाली ) लोध्रलता ( लाल रंग से निमित्त लतायें ) सुशोभित नहीं हो रही हैं। वन मे गण्डस्थलशैलस्थलालकारधारिणी ( स्वभावन गिरे हुए शिखाखण्डो को अलंकृत करनेवाली ) लोध्रततायें अच्छी लग रही हैं। नागरुचिते—मुख पर अगहमिश्रित चन्दन लेप से बनी हुई पत्र-रचना अच्छी नहीं लगती। वन मे नागो ( सर्पो ) से मण्डित चन्दन पत्रो की वज्रताये सुशोभित हो रही हैं नालिके अलिक ( ललाट ) पर तिलक नहीं किया गया है। वन मे नात्रिकेर ( नारियल के पेड़ों ) मे तिलकवृक्ष घिरे हुए हैं। नीलतमालवा-अत्यन्त नीचे रेश अभिरम्य नहीं है और नीले तमालवृक्ष रमणीय है। घनाञ्जनपट्टिका—गाढे अञ्जन से लिप्त शलाका औसो मे नहीं लगाई जाती। वन मे नवीन-नवीन अञ्जन पेड़ो की घनी शाखायें दीखती हैं। नाधरी—अधरो मे ताम्बूल का रंग नहीं लगा है वन मे पान की लताओ की जड़ें छोटी नही की गई हैं। इग अनुच्छेद के नारंगरुह से लेकर नाधरीवृत्त तक जाने "न" का मुख पक्ष मे निरपेक्ष अर्थ



है और वनपक्ष में न के उतरवर्ती शब्दों से मिल कर नारंग, नाग, नारिकेल आदि विशेष अर्थ हैं ।

चलच्चकोरचक्रवाकचक्रचण्डुचञ्चलचञ्चरीकचरणचूर्णितचम्प-  
काङ्कुरमरिचमञ्जरीदलदन्तुरेण वनमार्गेण स्तोकमन्तरमतिक्रान्तमनया  
पुनर्गन्धं वमार्ये ॥

वचनार्थे ॥ सञ्चारयोगेन मार्गेण क्रियद्रपि स्ववधानमतिक्रान्त. पुनरपि तथैवं  
वमार्ये ॥

घूमते हुए चकोर और चक्रवाक-सतूह के चोंचों तथा चञ्चल झमरों के  
चरणों से चूर्णित चम्पे के अङ्कुरों तथा मरिच वृक्षों की मञ्जरियों से ऊँचे  
नीचे वन-मार्ग से थोड़ा और आगे बढ़ कर उस ( वनपालिका ) ने रामा से  
कहा:—

‘देव’ पुनन्दरानन्दिनोद्यानस्पर्धिनोऽस्य वनस्य किं किं  
वर्ण्यते ॥

देवेति । देव, नन्दस्पर्धिनोऽस्य किं वर्ण्यते ॥

देव इन्द्र को आनन्द देनेवाले नन्दन-वन में प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले  
इस वन की किन-किन विशेषताओं का वर्णन करें ॥

यत्र त्रिजटाश्रयमनेकजटा, स्फुरदेकपुष्पकमनेकपुष्पाः, समुद्दे-  
जितराममानन्दितरामा, समुपहसन्ति लङ्केश्वरं तरवः ॥

यवेति ॥ रावण तरवो हसन्ति । त्रिजटा रावणस्वमा । जटा मूळानि पुष्पकं  
विमानं कुमुदं च । रामो दानरथि । रामा स्त्रियः । अनेकजटा इन्द्रेकशब्देन  
संकशोपलक्ष्यते । तनोऽनेकशब्दोऽयंशयानवचन ॥

महा के वृद्ध लङ्केश्वर ( रावण ) का भी उपहास करने हैं । क्योंकि रावण  
त्रिजटाश्रय ( त्रिजटा राक्षसी का शरण ) है । महा के पेड़ अनेक जटाश्रय  
( विविध जटाओं में युक्त ) हैं । रावण का एकपुष्पक ( विमान ) बाला है ।  
( यहाँ के वृक्ष अनेक पुष्पक ( बहुत पुष्पों वाले ) हैं । रावण समुद्देजित राम  
( राम को उद्दिग्ध करने वाला ) है ये वृक्ष आनन्दित राम ( रामाओं ( स्त्रियों )  
को आनन्दित करने हुए ) हैं ॥

यन्निर्मलं मलमपूरुहारिणि मत्सुजङ्गमपथे दिन्विश्रमैश्चपदे  
छन्दशास्त्र इव वेनालार्थं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताश्च च दृश्यते  
विविधा जातिः ॥

यान्निर्मलं ॥ ये स्फुटमिथं ताली तालद्रुमः । इय जातिर्मालिनी दृश्यते । द्वे अपि  
कीररथौ । माला अस्यामग्नि । तथा शिखरयुक्ता कुसुमिताप्रभागा च । किञ्चि-

शिष्टे पने मत्तैर्मयूरं रम्ये । तथा भद्र मनोज्ञं भुजङ्गप्रयातं शैतलीयं च प्रयातं यत्र । क्रीडन्न पक्षी । पक्षे मत्तमयूर भुजङ्गप्रयातं क्रीडन्नपदा शैतालीयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताया च छन्दोनामानि । जातिश्च उक्तादिरुक्थ्यन्ता ॥

जैसे छन्द शास्त्र में मत्तमयूर, भुजङ्गप्रयात, शैतालीय, मालिनी, शिखरिणी, पुष्पिताया आदि छन्द देखे जाते हैं वैसे ही मत्त मयूरो से सुशोभित, अच्छे भुजङ्गो ( सर्पों और बिटो ) के प्रयात ( गमन ) में युक्त, सुन्दर क्रीडन्न पक्षियो के आश्रय इस उद्यान में शै + ताली ( स्पष्ट ही ताल वृक्षों का वर्ग ) है यह मालिनी ( पक्षिवद्ध ) विविध जाति लतायें शिखरिणी ( अद्भुत युक्त ) तथा पुष्पिताया ( खिली हुई ) है ॥

यस्मिञ्च परुभीमार्जुनविनिर्जितानाक्रान्तानेकभीमार्जुनाः, कोपितैकनकुलानाद्वादितानेकनकुला, सहदेवेनैकेन स्पर्धमानाननेकैः सहदेवैः सद्गताः । न बहु मन्यते कुरुवीरान्वीरुधः ॥

यस्मिंश्चेति ॥ घने वीरुधो लता कुरुवीरान्न गौरवयन्ति । आक्रान्ता अनेके सहवो भीमा अलघ्वेतसा अर्जुनाश्च यामि । यद्विश्वप्रकाशः—'भीमोऽलघ्वेतमे शभी घोरे वापि वृकोदरे' । नकुला जीवा । सहदेवास्तरव । कुरुवीरपक्षे भीमार्जुननकुलसहदेवाः पाण्डवाः ॥

उद्यान की लतायें कौरव पक्ष के वीरों का सम्मान नहीं दे रही हैं, क्योंकि कुरुवीर एक ही भीम और अर्जुन द्वारा जीत लिये गये थे, ये ( लतायें ) अनेक भीम ( अलघ्वेत ) तथा अर्जुन ( अर्जुन वृक्षों ) से आक्रान्त हैं । ( कुरुवीरों ने ) एक नकुल ( अनुर्यु पाण्डव ) को श्रद्ध कर दिया था । ये लतायें अनेक नकुलो ( नेवलो ) को आनन्दित की हुई हैं । कुरुवीर एक सहदेव से प्रतिद्वन्द्विता करते थे अब कि ये लतायें अनेक सहदेवों ( वृक्षों ) में मिली हुई हैं ॥

किं चान्यद्वलोकयतु देवः—

पटलमलिकुलानामुध्रमन्मेघनीलं

ध्रमदुपरि तरूणां पुष्पितानां विलोम्ब्य ।

मृदुमदकलकेकानिर्भरो नृत्यन्मत्त-

स्तरलयति कलापं मन्दमन्दं मयूरः ॥ ४ ॥

तिले हुए पेटों के ऊपर उमड़ते हुए मेघमदक नीले ध्रमर-मयूहों की देखकर कोमल तथा मधुर ध्वनि करता हुआ तथा नाचता हुआ मयूर पक्षी की धीरे धीरे खचल कर रहा है ॥ ४ ॥

अपि च—

ध्राम्यद्विद्वरेफाणि विनासभासि मंयोज्य पुष्पाणि शिल्दीमुग्रंषु ।

इह स्थितं सर्वजगज्जयाय धनुध्रमं पुष्पशरं करोति ॥ ५ ॥

क्रान्तेनि । शिर्षामुष्वा शरा । इहंशुधानस्योदोपनविभावातिशयोक्त्या काम-  
स्यन्धिनिरह्यते । एतावता सुरभित्तुमुमर्षपदुक्ता ॥ ५ ॥

जिन पर भौरे घूम रहे हैं तथा जो विवसित हो रहे हैं ऐसे फूलों को  
बाण कार्य में लगाकर यहीं पर ठहरा हुआ कामदेव पूरे संसार की विजय के  
लिये अपना धनुष् कार्य सम्पादन कर रहा है ॥ ५ ॥

इतश्च—

हरिति हरिणयूथं यूथिनाजालमूले  
कुमुजमधुविन्दुस्यन्दसन्दोहभाजि ।  
मधुरमधुररालीगीनदत्तायधानं  
लिखितमिव न दूर्वापल्लयानुल्लुनानि ॥ ६ ॥

हरितोनि । हरिनि शादूले यूथिकाममूदस्याधः प्रदेशे मधुविन्दुसंदोहसंबन्धात्  
स्पृहणीयेऽनि गीनिरम्बिकनया मृगाणां दूर्वाद्द्वुराप्रदणमुक्त्वा ॥ ६ ॥

फूलों में गिरे हुए पराग-विन्दुओं में युक्त हरे जुही के वीथों की जड़ में  
मधुर गुञ्जार करती हुई मधुकर-पङ्क्ति के गीतों में दत्तचित्त हरिण-समूह  
दूब नहीं चबा रहा है ॥

[ हरिणों को मधुर ध्वनि बहुत प्रिय है । जंगल में वे दूब के अद्भुतों  
को खाने के ही लिये गये हैं, लेकिन जुही के मूल में पराग-विन्दु में आकृष्ट  
धमरो के मधुर गुञ्जार में फस जाने के कारण उन्हें अपना खाना-पीना  
भूल गया है ॥ ६ ॥ ]

इतोऽपि—

सोऽयं क्रीडाचलो मध्य-लोभव्यसनवर्जित ।  
यस्मिन्नासन्नसारज्ञा सारं गायति किन्नरी ॥ ७ ॥

सोऽयमिति ॥ हे मध्य, हे लोभेन व्यसनेश्च विवर्जित, सोऽयं क्रीडामिति ।  
यस्मिन्नारावामञ्जमृगा किन्नरी सारमुत्कृष्टं गायति । गानप्रकर्षाकृष्टवाग्मारज्ञाणा-  
सामञ्जना ॥ ७ ॥

और इधर—

ओं सुन्दर ! लोभ तथा व्यसन में विहीन राजन् ! यह वही क्रीडा-चौल है  
जहाँ मृगों के शीव किन्नरी सुन्दर गीत गाती हैं ।

[ उसकी गीत-माधुरी में आकृष्ट होकर मृग उसके समीप आ जाते हैं ॥७॥ ]

राजते राजतेनार्यं साधुना साधुनायकः ।  
यस्मिन्निशम्य गायन्तं किन्नरं किं न रंस्यते ॥ ८ ॥

राजत इति ॥ अथ सानुनायको गिरी रजतनिर्मितेन सानुना तटेन राजते ।  
यश्मिन्गायन्त किन्नर निशम्य श्रुत्वा न किं रस्यते । रंस्यत एव ॥ ८ ॥

राजत ( चाँदी की ) चोटियों से सुशोभित यह सानुनायक पर्वत है जहाँ  
गाते हुए किन्नरों को सुनकर कौन नहीं रमणोन्मुख हो जाता ॥

[ राजते राजते तथा सानुना सानुना का—यमक है । प्रथम राजते और  
सानुना सार्थक है किन्तु द्वितीय राजते तथा सानुना निरर्थक हैं । राजतेन तथा  
सानुनायक सार्थक है ॥ ८ ॥ ]

इतश्चास्य—

जनयति जलबुद्धिं बाललीलामृगाणा-

मयमिह पटुकान्तिं स्फाटिको भित्तिभागः ।

इह हरितमणीनामुत्लसन्तो भयूखाः

सरसनवतृणालोलोभमुत्पादयन्ति ॥ ९ ॥

इधर इस ( भवन ) का—

स्फटिक भण्डियों से चमकता हुआ यह भित्तिभाग बाल स्वभाववाले मृगों  
को जल की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है । इधर हरित-मणियों की स्पष्ट सरस एवं  
नवीन तृणों की तरह लोभ उत्पन्न कर रही हैं ॥ ९ ॥

इयं च—

गौरवं गौरवंशस्य पर्वतः पर्वतस्थले ।

भ्रमरी भ्रमरीणस्य कुरुतेऽकुरुतेन ते ॥ १० ॥

गौरिति ॥ गौरो वंशोऽन्वयो यस्य तस्य ते । पर्वतस्थले गिरिस्थले । पर्वतो  
गच्छन् । अतएव भ्रमेण देहवर्षण्येन धर्मिन्जेन विद्यस्य सतोऽकुरुतस्तेन  
भ्रमरी शृङ्गी गौरव प्रतिपत्तिविशेषं कुरुते ॥ १० ॥

गौरवश मे उत्पन्न आप इस पर्वतीय भूमि में पर्व ( भ्रमण ) करते हुए  
भ्रमरीण ( एक गये ) हैं । यह भ्रमरी अपने अकु + क्त ( अकुरुतस्तेन ध्वनि ) से  
आपका स्वागत कर रही है ॥ १० ॥

[ प्रथम 'पर्वत'—गच्छन् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । 'कुरुतेऽकुरुतेन' इसमें  
अकु + क्तेन विच्छेद है । अर्थात् भ्रमरी अपनी अकुरुतस्तेन ध्वनि से राजा का  
गौरव ( स्वागत ) कर रही है ॥ १० ॥ ]

अपि च—

इह कवलितरुन्दं कन्दरे कन्दलिन्यां

भुवि विरचितकेलिं क्रीडति क्रीडयूथम् ।

इह सरसिजगर्भभ्रान्तभृङ्गं कुरङ्गाः

सरसि सरलयन्तः कन्धरां कं घयन्ति ॥ ११ ॥

इदंति ॥ कं जलम् । घयन्ति पिषन्ति ॥ ११ ॥

यहाँ की कन्दयुक्त गुफा की भूमि में कन्द खाकर बराह सनूह लीला-पूर्वक खेच रहा है तथा अपनी गर्दन को मरल ( सीधी ) करते हुए मृग कमल-कोय में भनभनाते हुए ध्रमरोंवाले सरोवर के जल को पी रहे हैं ॥

[ मृग ऐसे सरोवर में जल पी रहे हैं जो कमलों में भरा है और उन कमलों के कोय में ध्रमर भनभना रहे हैं ॥ ११ ॥ ]

इह पुनरनिशं निशम्य भिन्न-

द्रुममुकुटानि कुट्टानि पट्पदानाम् ।

श्रुतिसुखस्पर्णं रणन्ति वीणां

तदनुगुणां गुणयन्ति किंनरेन्द्राः ॥ १२ ॥

इदंति ॥ रणन्तीति श्रवणं पटपदकुट्टविशेषप्रथम । तस्य सृष्टरगिनरयातुगुणामनुगामिनीम् ॥ १२ ॥

यहाँ बिली हुई मधुररीवाले पेड़ों पर निरन्तर वर्णप्रिय गुन्जार करते हुए ध्रमरों को सुनकर उन्हीं के अनुकरण में किन्नरेन्द्र लोग अपनी वीणा बजा रहे हैं ॥ १२ ॥

इतश्च कीडाचलस्थलकमलदीर्घिकान्तरितस्वतलमनुसरतु देवः ॥

इधर कीडागैल के कमल-सरोवर के तटीय वृत्तों की छाया में सीमानु आवे ॥

यत्र च—

बह्वनि नवविकासोल्लासिकिजल्लुभ्यन्-

मधुकरकृतगीता नर्तयन्नप्सरसीः ।

वनकरिमदगन्धस्पर्शिसप्तच्छदाली

कुसुमजकणशीरः शारदीयः समीरः ॥ १३ ॥

इदंति ॥ कुसुमजकणा मकरन्दलवासै शार' शबल' शरदि मवानि मुद्रादीनि त्रिषन्ते येषां तं शादिन कृपावन्तेपामिन स्वामी । नन'वस्वमपत्तिहेतु-स्वात् ॥ १३ ॥

बन गज की मद-गन्ध से प्रतिस्पर्धा करनेवाणी सप्तच्छद पुष्प के पराग-कणों से मिश्रित शरत्कालीन हवा जिसने कमल-सनूह को नचा दिया है तथा त्रिसमे विकास के कारण भरे हुए पराग में द्रुम्य ध्रमरों द्वारा की हुई गीत ध्वनि मिश्रित है, बह रही है ॥ १३ ॥

राजा तु तेन तस्याः सकलललितवनप्रदेशप्रकटनप्रियालापप्रपञ्चेन परितोषितः 'साधु भोः सारसिके सुभाषितमञ्जरि, साधु । गृहाण पारितोषिकम्' इत्यभिधाय सर्वाङ्गीणभरणप्रदानेन प्रसन्नाननां तामकरोत् ॥

मम्पूर्णं ललित वन भूमि के वर्णन से तथा उसके प्रिय वचनो से सन्पुत्र राजा, "अच्छा ठीक है, सरोवरवासिनि । सूक्तिकुशले । लो अपना पुरस्कार ।" ऐसा कह कर अपने अङ्गो के सब भूषणो को देकर उसे प्रसन्न कर दिया ॥

ततश्च संबरच्चटुलभृङ्गविहंगवेगवेह्लद्वकुलचम्पकचूतचन्दनमन्दरामन्दस्यन्दमानमकरन्दविन्दुसंदोहाडम्बरिताकाण्डप्रावृषि, प्रलम्बताम्बूलवह्नीयलयितनितम्बनिम्बकिम्बजम्बीरजम्बूस्तम्बकदम्बके कुसुमितकरवोरवीरुधि कौरकितकरजाञ्जननिकुञ्जशिञ्जानशुककपिञ्जले, जलद्रसमयनीरदनीलतमतमालतलताण्डविनशिखण्डिनि, मण्डलितमदकलकलहंसोत्तंसकमलवापीमण्डिते, मञ्जरितसिन्दुवारसुन्दरामोदनन्दिनि मन्दतरमारुतान्दोलनविलोलककमोलकुड्मलफलनालिकेरलवक्रपूगपुंनागनारङ्गरङ्गितविहङ्गे भृङ्गमुखनखरपञ्जरजर्जरितसर्जखर्जरमञ्जरीरज-पुञ्जपांसुलभुचि, भुचो भूषणायमाने, 'सर्वतुंनिवास'नामनि वने विहर्तुमारभत ॥

ततश्चेति ॥ सृङ्गमुखनखरेत्यादौ भृङ्गो घूम्याट पक्षी ॥

इसके बाद 'सर्वतुंनिवास' नामक वन में घूमना शुरू किया । वहाँ पचल भ्रमरो एव पक्षियो के वेग से हिलते हुए बकुल, चम्पा, आम, चन्दन तथा मन्दार वृक्षों से पूर्ण रूप से सूते हुए पराग-विन्दुओं के कारण बिना वर्षाकाल के आये वर्षा जैसा वातावरण हो गया था । नीम, किम्ब, नीबू, जामुन में छटकती हुई ताम्बूल-लताये लिपटी हुई थीं । कलियो से युक्त करञ्ज तथा अञ्जन वृक्षो की झाडियो में शुक तथा कपिञ्जल पक्षी मधुर ध्वनि कर रहे थे । वर्षाकालीन मेघो की तरह नीले तमाल-कुड्जो के नीचे मयूर नाच रहे थे । प्रोढ कलहयो की गोलाकार मण्डली में कमल-बावळियाँ अलङ्कृत थी । सिन्दुवार-मञ्जरियो की सुन्दर गन्ध चारो ओर फैल रही थीं । अत्यन्त धीरे धीरे बहनेवाली हवा के हल्के झोके में चञ्चल कणकोल की बली एव फल तथा नारियल, लवङ्ग, बसैली, पुत्राग एव नारङ्ग फलो में पक्षी अनुरक्त थे । भ्रमरों के गुचो, नक्षो, तथा पञ्जो से पूर्णित सर्ज तथा पञ्जर की मञ्जरियो से निकले हुए पराग से भूमि धूलि धूसरित हो गयी थी । वह वन भूमण्डल पर अलङ्कार-सदृश था ।

तत्र च व्यतिकरे प्रलयप्रचण्डपवनोद्भासिततनुतुहिनावलगण्ड-  
शैललीलामाकलयन्तः, मन्दमरुत्तरङ्गिततनुतरशरदध्विभ्रमायमाणाः,  
सुरस्वारणेन्द्रविश्रोमितगगनमन्दाग्निनीपनत्पांडुवडिण्डोरपिण्डपटलानि  
चिडम्बयन्तः, शकलोदितेन्दुमण्डलसहस्रसंज्ञादितामिव गगनमापाद-  
यन्तो, मन्दरगिरिपरिश्रेपह्युमितश्रीरघारिचिदूरसमुच्छलितदुग्धकल्लो-  
ललीलां दर्शयन्त, शोषादिफणचक्रवालवयन्त्रा, प्रमुदिनहगट्टहासलवा  
इव मूर्तिमन्तः पनन्तः, अमन्दमन्द्रकालाहलभरितभुवनान्जपालाः,  
सपदि धरातलनुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजप्रकरप्रकारेण मण्डयन्तां निपेनुः  
कुतोऽपि पुण्डरीकपाण्डुमक्षयत्रराजयो सपदि राजहंसाः ॥

एव वेने । शकलोदिते ॥ शकला खगडशशी हयमदशा भवन्ति । मन्दरगिरिरेव  
परिदेशे मन्था ॥

उसी समय वही अचानक वहाँ से इधर कमल सदृश पंखों वाले राजहंस  
आ गिरे । उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि प्रलय की प्रचण्ड आशो म ऊरर की  
ओर दड़ाकर पटके गये हिमालय के शिखर-वृक्ष हों । वे धारे धारे चरने  
वाली हवा के झोंके से कम्पित छोटे छोटे शरत्-काशीन गुध्रमादना के  
विश्रास का अनुकरण कर रहे थे । ऐरावत द्वारा मण्डित आकाश गंगा से  
गिरते हुए सफेद फेन-गुच्छ की विडम्बना कर रहे थे । उदित चन्द्रमा के  
हजारों खण्डों से ढके हुए की तरह आकाश की शोभा उपनमन कर रहे थे ।  
मन्दराचल के शीरसागर में गिरने से दूर तक छिटके हुए दूध के छोटो की  
लीला प्रदर्शित कर रहे थे । शेषनाग की फण-समूह की तरह गुध्र पे ।  
प्रसन्न भगवान् शंकर के अट्टहास के मूर्तिमान अर्शों की तरह गिर रहे थे ।  
अपनी विशेष गम्भीर ध्वनि से भवनाम्तराज्यों को भर रहे थे । बिले हुए गुध्र  
कमलों से मारों धरातल शीत ही बलहत हो रहा था ॥

[ हंस गुध्र हैं । आकाश से जब उनकी पङ्क्ति उतर रही है तो किस  
तरह की शोभा हो रही है इसी बात की विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से  
कवि व्यक्त कर रहा है । जोरों से आधी आने के कारण प्रलय के समय  
हिमालय की गुध्र चोटियों के टुकड़े ही मानो उड़ रहे हैं । उड़ते हुए हंस  
उड़नी हुई हिम-शिखरों की तरह हैं । आकाश-गंगा के फेन की तरह लग  
रहे हैं । मन्दराचल के गिरने से शीरसागर से जो दूध के छोटो आकाश में  
छिटके उनकी तरह लग रहे हैं । भगवान् शंकर के अट्टहास की तरह लग  
रहे हैं । हास का वर्णन सफेद किया जाता है । हंसों की गुध्र इकाइया भगवान्  
शंकर के गुध्र अट्टहास की मूर्तिमती इकाइयाँ हैं । नीचे की ओर जब वे

आ रहे थे तो ऐसा लगता था कि अचानक पृथ्वी शुभ्र कमलो से मण्डित हो रही थी ॥ ]

तथाधिधे च व्यतिकरे विस्मयविस्मृतनिमेषपया निर्वातनिश्चलनी-  
लोत्पलपलाशशोभायमानलोचनः कौतुकाकृततरलितमनाः सपरिजनो  
नरपतिरवलोकयन्निश्चल एवावतस्थे ॥

तथेति ॥ शोभायमानलोचनेत्यत्र शोभाशब्दात्तद्वृत्ति वर्तमानादुपमानात्कवृ-  
त्वाचकादाचारेऽर्थे वयम् । एव विभ्रमायमानेत्यादयोऽपि व्याख्याता ॥

ऐसी स्थिति में आश्चर्य के मारे पलकों का गिराना भूल सा जाकर  
हवा के झोकों के अभाव में चम्पन शून्य नीले कमल की तरह सुन्दर नेत्र वाले  
तथा उत्कण्ठा से पिघले हुए चित्त वाले राजा ( नल ) नौकरों के साथ निश्चल  
दृष्टि से उन ( हसो ) को देखते हुए ठहर गये ॥

ते च धार्तराष्ट्रा अपि कृतपाण्डुपक्षपाताः, द्विजातयोऽपि सुरा-  
जिताः, केचिदुच्चञ्चपुटविघटितनिकटवालस्थलकमलकुट्टमलाः सर-  
सबिसक्सिलयानि कवल्यन्तः, केऽप्युन्नतसरलगलनालयो नलिन-  
चनविमुखाः खमालोकयन्तः, केचिदुत्क्षिप्तपक्षविशेषपवनकम्पित-  
कन्दलाः सलीलमुत्पतन्तः, केचिन्मदमधुरनिजनिनादनिर्जितशिक्षान-  
नू पुरा, पुर. पुरोऽस्य धावन्तो विचरितुमारभन्त ॥

ते चेति ॥ कृष्णैश्चरणाननैर्हसा धार्तराष्ट्राः । कृत पाण्डुपक्षाणां शुभ्रपक्षतीनां  
पातो न्यासो यैः । तथा द्विजातय पक्षिण सुन्दु राजिताश्च । विरोधे धार्तराष्ट्रा  
वुरव पाण्डुर्नृपः । पक्षपातस्तद्गुह्यारम्भः । द्विजातयो धिमाः । सुरया जिताः ।  
गलनालि कण्ठकाण्डम् ॥

वे धार्तराष्ट्र ( धृतराष्ट्र पुत्र ) ये फिर भी पाण्डुओं के प्रति पक्षपात  
( स्नेह ) रखते थे । विरोध ॥

धार्तराष्ट्र ( हस ) ये और पाण्डु + पक्ष + पात ( शुभ्र पक्षों को हिलाते )  
ये । परिहार ॥

द्विजाति ( ब्राह्मण ) ये फिर भी सुराजित ( मदिरा की परतन्त्रना में  
रहते ) ये । विरोध ॥

द्विजाति ( पक्षी ) ये और सु + राजित ( सुन्दर ) ये । "परिहार" कोई  
अपने ऊँचे छावों से समीपवर्ती स्थल कमलों की कलियों को फोड़ कर सरस  
कमल-तन्तुओं को खा रहे थे । कोई अपनी गर्दन को ऊँचा और सीधाकर  
आकाश की ओर देख रहे थे । कोई अपने पंखों के झोके से कमल-नालों को  
हिला रहे थे । कोई अपने सुन्दर एक मधुर ध्वनि से नूपुर के भी अनुरणन को



जीव से रहे थे । ( इन श्रीडाओं में व्यग्र राजहंस ) राजा के ठहराव के सामने विचरण करना शुरू कर दिये ॥

राजापि परिधावितविहङ्गग्रहणाग्रहसमप्रव्यग्रपरिग्रहः परिहा-  
सोग्नीलदमलदन्तकान्तिस्तपकितायरपल्लवो विहसन्नेव तेषामन्यत-  
ममनुच्चचटुलचरणचारीचर्यया चारु संचरन्तमीपटुत्क्षितपक्षविलास-  
विहसितविलासिनौलास्यलीलमुत्तमिताप्रप्रीवं जग्राह हेलया हंसम् ॥

राजेति ॥ मलयग्ररणन्यामशारी ॥

राजा ने भी इधर उधर भागते हुए पक्षियों को पकड़ लेने का आग्रह किया । ( दौड़ कर पकड़ने में ) उसका सारा शरीर व्यस्त था । मुस्कुराहट के कारण निर्मल दन्त-कान्तिमें से अधरोष्ठ को कुहमकित करता हुआ हंसजा ही हंसजा उनमें से एक हंस को जो बड़ी सुन्दरता से विचरण कर रहा था, अपने पंखों के उड़ान-पतन से रमणियों के लास्य को भी तिरस्कृत कर रहा था, धीरे धीरे पर-विन्यास के साथ गर्दन को ऊपर की ओर उठा रहा था, पकड़ लिया ॥

उत्क्षितः स च तेन रक्तकमलगर्भविभ्रमायमाणपाणिपल्लवे, पाण्डु-  
पद्म इव पद्मरागशुक्तिले, क्षणमुदयशैलशोणमापिन्यदिस्वरशिखाया-  
मिन्दुरिव, विराजितो राजहंसो मृदुवाद्यमानरौप्यघनवर्धरीजर्जरस्वरेण  
कृतस्वस्तिशब्दो विस्पष्टवर्णविशेषं राजानमुपश्लोकपाञ्चकार ॥

उत्क्षिप्त इति ॥ पाणिपल्लवस्य पद्मरागशुक्तिः शोणमागिन्वयशिला चोपमानम् ।  
हंसस्य तु पाण्डुपद्म इन्दुश्च ॥

लाल कमल के मध्यभाग की गोभावाले ( राजा के ) कर-पल्लव पर पद्मराग मणि की शुक्ति पर रक्ते गये सफेद कमल की तरह तथा उदयाचल की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह सुशोभित उस राजहंस ने मधुरता-पूर्वक बजायी जाती हुई रजत-निमित्त घर्षरी ( झाँझ ) की घर्षर स्वर से स्वस्ति शब्द कहता हुआ बड़े स्पष्ट शब्दों में राजा की स्तुति की ॥

[ राजा का हाथ लाल था । हंस सफेद था । उस हाथ पर वह हंस बैसा लगता था वैसा कि सफेद कमल पद्मराग मणि की शुक्ति पर लगता है और उदयाचल की लाल मणियों की चोटियों पर चन्द्रमा लगता है ॥ ]

पाण्डुपद्मजसंलीनमधुपालीसमं गलम् ।

यो विमर्ति विधेयात्ते ना कपाली स मङ्गलम् ॥ १४ ॥

पाण्डुइति ॥ श्वेतमरोडलीनालिघ्रेणिनिर्भं कण्ठं यो धारयति स ना पुरः  
कपाली कपालमाठी । अर्थाच्छिवस्तत्र मंगलं क्रियात् ॥ १४ ॥

सफेद कमल में लगी हुई भ्रमर-पङ्क्ति की तरह गले को धारण करने वाले कपाली ( कपाल धारण करने वाले भगवान् शंकर ) तुम्हारा मंगल करें ॥ १४ ॥

अपि च—

सरलप्रियं गुणाढ्यं लम्बितमालं विचित्रतिलकं च ।

वनमिव वपुस्तदैतत्कथमवनं नृप जनस्याभूत् ॥ १५ ॥

सरलेति ॥ सरला भकुटिला प्रिया वरप । तथा गुणाढ्य शौर्याद्याढ्यम् । तथा लम्बितमालम् । यथा विविधपुण्ड्र तव वपुर्जनस्यावनं रक्षकमभूत् । वनमिव तदा सरलप्रियगुणेति समाह्वयद्वन्द्वम् । तथा लम्बितमाला यत्र तथा विशिष्टाश्चि प्रकाशितलकवृक्षाश्च यत्र । नृपेत्यामन्त्रणे । कथमिति विरोधे । अवनशब्दस्य वनप्रतिषेधार्थत्वात् ॥ १५ ॥

और—

( राजन् ! वन सदृश आप का शरीर अवन कैसे हो गया । वन की सारी विशेषताएँ आप में भी हैं फिर भी आप वन नहीं हैं । इस विरोध को दृष्टि में रख कर श्लोक में कथं पद का विन्यास किया गया है । शब्दगत समानता के आधार पर राजा को वन होना चाहिये । अर्थगत समानता के आधार पर तो वह अवन है ही । वह वन नहीं है अपि अवन है । इसका भी उपपादन श्लोक के अक्षरों से ही हो जायगा ॥

सीधे प्रियङ्गु वृक्ष से सम्पन्न, लम्बे तमालो से युक्त, विचित्र तिलक वृक्षो से युक्त वन-सदृश आप नृप जन का सीधे सादे मित्रो वाला, गुणो से-सम्पन्न लटकती हुई मालाओ से मण्डित तथा विचित्र तिलक से युक्त शरीर अवन कैसे हो गया है ।

[ अवन शब्द का अर्थ रक्षक है । इस अर्थ के करने में कोई विरोध नहीं रहता । ]

राजपक्ष—सरल प्रिय ( सीधे सादे मित्रों वाला ) गुणाढ्य ( गुण सम्पन्न ) लम्बित + माल ( मालाओ को लटकाया हुआ ) विचित्र तिलक ( सुन्दर तिलक किया हुआ ) आपका वपु ( शरीर ) प्रजा जन का अवन ( रक्षक ) है ।

वनपक्ष—वन सरल प्रियङ्गुगुण + आढ्य ( सीधे सीधे प्रियङ्गु वृक्षो से भरा ) है । लम्बित तमाल ( वहाँ लम्बे लम्बे तमाल वृक्ष ) हैं । विचित्र तिलक ( सुन्दर तिलक वृक्षो से सम्पन्न ) है ॥ १५ ॥ ]

अपि च—

घरसद्वकारकरञ्जनीरतरोऽशोकमदनपुंनाग ।

विविधद्रममय राजन्कथमसि न विभीतकः कापि ॥ १६ ॥

वरेति ॥ वराः सहकारकाः सचिवाद्यो यस्य । तथा रजयतीति रजकः । तथा वीरानां शूद्रकादीनामिव तरो बलं जरो वा यस्येति सवुद्धौ न दीर्घः । न शोको यस्य एतेन धीरत्वोक्तिः । मदन इव मदनः कामः । पुनाग इति नागतम् प्रशामयाम् । इत्यामन्त्रणैः प्रकृतोऽर्थः । विविधद्रुममयेतिपदाद् द्रुमार्योऽप्युक्तः । तथा । सहकार-भाघ्र, करञ्जको नन्दमाल, वीरतरुनदीसञ्ज । यद्मर—'नदीमञ्जो वीर-तरुनिन्द्रु-ककुभोऽर्जुन' । श्लोकः कर्केष्टिः, मदन शल्यः, एतच्छ विवाहे बध्व रपागौ यस्यते । पुनागः सुरपतिः । कपमिति विरोधे । विभीतकस्याद्यार्थत्वात् प्रकृते तु विभीतको विरोधेण मीत इति कुर्याद्यामनुकम्पाया वा क्व ॥ १६ ॥

हे राजन् आप अच्छे सहकार ( आम ), करञ्जक वीरतरु अशोक, मदन और पुनाग आदि विविध वृक्षमय होते हुए भी ( केवल ) विभीतकमय कैसे हैं ? विरोध ॥

हे वर-सहकारक ! ( अच्छे सहायकों वाले ) रजक ! ( प्रशासन को अनुरक्त रखने वाले ) वीर + तरु ( शूद्रक आदि वीरों की तरह वेगवान् ) अशोक ! ( शोकहीन ) मदन ( काम ) पुनाग ( मानवोत्तम ) विविध वि ( विविध ) वि ( पक्षियों ) के घ ( पोषक ) द्रुममय ( आश्रयमय ) कहीं भी तुम्हें विभीतकमय ( घृत श्रीश मं हन्मय ) नहीं पाया जाता ॥ परिहार ॥

[ द्रुम का आश्रय कथं इस आधार पर किया गया है वृक्ष जैसे विवेध शरणागो पक्षियों का आश्रय होता है राजा भी विविध शरणागियों का आश्रय है ॥ ]

( शब्द के आधार पर तो ) राजन्, आप वान, करवीर, दमनक, शतपत्र, बन्धुजीव, मुदाति आदि विविध विटपरूप होते हुए भी विटप वशों नहीं हैं । विरोध ॥ १६ ॥

अपि च—

वाणरुरवीरदमनरुशतपत्ररुबन्धुजीवकसुजाते ।

नृप विविधविटपरूपस्तथापि विटपः कथं नास्ति ॥ १७ ॥

वाणेति ॥ वाग करवीरो दमनकः शतपत्र बन्धुजीवक जानिश्चेति विटपाः । एतन्मयस्त्वममि शब्दतः । अर्घतस्तु वागः करे यस्य । वीरान्दमनमि । शतसंख्य पत्रे वाहने यस्य शेषादिति क्व । बन्धून् जीववशुपकरोपि । शोभना जातिः सत्याश्रयस्य । उभयथाप्येतानि नृपेति च सम्बोधनानि । अस्तीति स्वभ्यस्त्वमित्यर्थः । एव न विटान्पार्तिविति विटपः । अपात्रभर्ता नेत्यर्थः । तथापि कथमिति विरोधोद्भेदने विटपशब्दस्य । वीरुदर्थत्वात् ॥ १७ ॥

बाण-कर ( हाथों में बाण धारण किये हुए ) वीर-दमनक ( वीरों की दमन करने वाले ) शत ( सौ ) पत्रक ( वाहनों वाले ) बन्धु-जीवक ( बन्धुओं को उम्मीदित करने वाले ) हे राजन्, आप विटप ( दुष्टों के पालन करने वाले ) नहीं हैं । परिहार ॥ १७ ॥

राजा तु नदाकर्ण्य सविस्मयम् 'अहो अस्य धैर्यं मनुष्यसंनिधौ, आश्चर्यं रूपे, माधुर्यं वाचि, प्राचुर्यं प्रक्षायाम्, औदार्यमर्थे, गाम्भीर्यं वर्णव्यक्तौ । प्रायेणाद्धारमैथुननिद्राभयधमणमात्रविवेकासु कथं प्रागल्भ्यमेतत्पक्षिजातिषु । तदेव विहंगव्यञ्जनः कोऽपि कामचारी भविष्यति । सर्वथा मनसापि नाचक्षेयाः केऽपि प्राणिनः । यतः कर्मतः कामतः शपतः संछन्नरूपाण्यपि भ्रमन्ति विविधाश्चर्यभाञ्जि 'भूतानि' इति चिन्तयन्नुचितस्तमीपदुल्लसितसिन्दुवारमञ्जरीभिरिव कुन्दकान्तदीप्तिभिरर्चयन्स्वागतमपृच्छत् ॥

राजेति ॥ कामचारी विद्याधरादि ॥

राजा तो यह सुनकर आश्चर्य के साथ, "आह, मनुष्य के समीप भी इसका अद्भुत धैर्य, आश्चर्यजनक रूप, मधुर वाणी, प्रगाढ़ बुद्धि, उदारतापूर्ण अर्थ-प्रकाशन तथा गम्भीरता पूर्ण वर्णोच्चारण है । प्रायः भोजन, मैथुन, निद्रा, भय और भ्रमण तक ही विवेक को सीमित रखने वाली पक्षी जाति में इस तरह की प्रौढ़ता कैसी । निश्चित ही यह पक्षियों में श्रेष्ठ यह कोई स्वेच्छाचारी ( देव ) होगा । मन से भी किसी प्राणी का थोड़ा भी अपमान नहीं करना चाहिये क्योंकि कार्य से इच्छा से या शाप से बहुत से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाये घूमते फिरते हैं ।" इस तरह सोचता हुआ अवसरोचित कार्य का विशेषज्ञ, थोड़ी छिली हुई सिन्दुवार मञ्जरी सहस्र कुन्द पुष्प की मनोहर छटा से उसकी पूजा करता हुआ स्वागत प्रश्न पूछा ॥

असावपि प्रणयप्रणतशिराः शुचिरोचिषां चयेन पाण्डुपुष्पप्रकर-  
प्रकारेण प्रतिपूजयन्निव 'देव, भवदवलोकनेनाह्लादितमनसो ममाद्य  
स्वागतम्' इति श्रुवाणो राजानं रञ्जयाञ्चकार ॥

वह भी प्रेम से शिर झुका कर शुभ पुष्प-समूह के गुच्छ सहस्र अपने पवित्र कान्ति-मुञ्ज से मानो उनकी पूजा करता हुआ बोला, "महाराज, आपके दर्शन से ही मैं तृप्त हूँ ! मेरा स्वागत इतने से ही हो गया ।" राजा ( उनकी बातों से ) आनन्दमग्न हो गये ।

अत्रान्तरे आसतरत्नतरत्तरत्तारकमकाण्डाडम्भरित्वाप्पप्लवप्लव-  
मानमिव घहन्ती चक्षुः, उत्क्षिप्तपक्षपत्रपल्लवव्याजेन संगृहीते सद्-  
चरे शास्त्रोद्धारमिव दर्शयन्ती, हंसी दूरादवनिपालमवाप्य रौप्यमय-  
घण्टादद्वारकोमलया गिरा इलोकद्वयमपठत् ॥

अत्रेति ॥ शास्त्रोद्धारमयापूरकारचिह्नं शास्ताग्रहणम् ॥

इसी बीच दूर से ही राजा को देख कर रजत-निर्मित घड़े के टंकार की तरह मधुर स्वर से उस हंस की पत्नी को श्लोक पढ़ी। डरके मारे उसकी आँखें चंचल होकर आमुष्मों में तैर रही थीं। फड़फड़ाते हुए पंखों वाले अपने सहचर को पल्लव के बहाने पकड़ लिये जाने पर राजा को अन्याय के निमित्त मानो दुत्कार रही थी।

हंसपक्ष—ए। ( कामदेव की प्रतिपूर्ति ) मुक्ताहार परिच्छद ( मुक्तामणि से निर्मित हार की तरह पंखों वाला ) हंस ओक ( जल ) के अन्त ( समीप ) में अग ( वृक्ष ) पर रहता है, निश्चित ही छोड़ देने योग्य है। आप उसे क्यों पकड़ लिये हैं।

आत्मपक्ष—मोक्ष की योग्यता रखने वाला हंस ( पुण्य ) त्व ( प्रकृति ) के द्वारा बाधा जाता है। ( नहीं बाधा जाता ) क्योंकि वह आहार ( भोग ) रूप बन्धन को छोड़ कर भगवान् विष्णु-विषयक चित्त-वृत्ति बनाकर योग की साधना में लगा रहता है।

हंसपक्ष—अ वा जयं कामुदेव है। अ के अन्त्य को इ कहा जाता है। अर्थात् इ शब्द के सम्बोधन में ए रूप बनेगा जिसका अर्थ होगा विष्णु-पुत्र कामदेव। ए शब्द से राजा को सम्बोधित किया गया है। अतः सिद्ध है कि राजा कामदेव सहस्र रूप सम्पन्न है।

कान्ते—क ( जल ) के अन्त ( समीप ) में जो ( मः ) अग ( वृक्ष ) है उसकी सेवा करता है। अर्थात् उस पर रहता है।

मुक्ताहार परिच्छद—उसके पक्ष मुक्ता के हार सहस्र हैं। योग शब्द का "अ + अग + " पदच्छेद करना चाहिये।

आत्मपक्ष—इस पक्ष में हंस शब्द आत्मा का वाचक है। त्वया शब्द "प्रकृति के द्वारा" अर्थ का वाचक है। त्वया शब्द सर्वनाम है। अन्य अर्थ का वाचक है। इसी का स्त्रीलिङ्ग रूप त्वा का तृतीया एकवचन त्वया है।

मुक्ताहारपरिच्छद—इन्द्रियों के आहार ( भोग्य ) परिच्छद ( समूह ) का जिसने छोड़ दिया है।

एकान्ते सेवते योगं मुक्ताहारपरिच्छदः।

हंसः समोक्षयोग्योऽपि देव किं बध्यते त्वया ॥ १८ ॥

एकेति ॥ अस्यापरत्यमि । इतिव इ कर्पुप्रतिम । ततः सवुद्धौ ए इति देव इति श्लोपरच्छन्दमित्यु संश्लेष्य सुमोक्षयिषु पतिं हंसी नृत्माह । मुक्ताहारो मौक्तिकहार-स्तद्व्यपरिच्छदो पञ्चत्री यस्य शुभ्र वात । स नयोक्त । कस्य जलस्यान्ते वर्तमानमाहुर्मयः मेवते । मोक्षस्य मोक्षनस्य योग्योऽपि स हंसो वाचस्त्वया भवता किं किमर्थं बध्यते ह्येकोऽर्थः । अथवा एकान्त इति समस्त विज्ञानार्थम् । अथ च

हंस आत्मा पुरुष स मोक्षयोग्योऽपि किं बध्यते । न बध्यत एवेत्यर्थं । क्या । खया । एव शब्द सर्वादिगणेऽन्यार्थं अतः पुरपापेक्षयान्यया प्रकृत्येत्यर्थः । कस्मात्त बध्यत इत्याह—काम्ते कमनीये परमानन्दस्वरूपे ए कृष्णे त्यक्ताहारपरिवार मन् योगमध्यात्मं च सेवते ॥ अत्र पक्षे अ इत्यस्माद्धिष्णुवाचकारसप्तम्येकवचने ए इति रूपम् । यदि वा समोक्षयोग्योऽपीतिसम समदर्शनः । अक्षयोग्योऽपि इन्द्रियसबद्धोऽपि ॥ १८ ॥

एकांते—कांते ए ( कमनीय विष्णु मे ) चित्तवृत्ति लगाकर योग-साधना कर रहा है । विष्णु वाचक अ शब्द का सप्तमी एकवचन “ए” है । तात्पर्य यह कि जो पुरुष इन्द्रियो के भोग्य-समूह को छोड़कर परमानन्द स्वरूप भगव-द्विषक ध्यान मे रहकर योग-साधना के द्वारा मोक्ष की योग्यता प्राप्त कर चुका है, उसको प्रकृति बयो बाधेगी ?

मोक्ष की योग्यता रखने वाला योगी की समस्त विशेषताये हंस मे भी हैं । इसे आप अवश्य छोड दें ॥ १८ ॥

नीरञ्जनपदे तिष्ठन्विश्वसंसारसङ्गतः ।

हंस किं बध्यते कापि यस्य नालम्बनं प्रियम् ॥ १९ ॥

नीरेति ॥ जनानां पदे स्थाने पुरमात्मावावतिष्ठन् य सरस इद सारसम् । तथा श्वसन्तीति श्वसा प्राणिनः, वय पक्षिण श्वसा यत्र तथाभूत नीरं जलम्, गतः स हस किं कापि बध्यते, न बध्यत एव । यस्य नालस्येद नाल तृणमंबन्धि, वनं कानन प्रियम् । अथवा नीरञ्जनपदे नीरागपदे तिष्ठन् हस आत्मा किं कापि बध्यते, न बध्यत एव । यस्य विश्वेभ्य संसारसङ्गेभ्य आलम्बनमासक्तिर्न प्रियम् । विश्व ससारसङ्गत इति तमिलन्तम् ॥ १९ ॥

हस पक्ष—जनपद ( नगर या गाँव आदि ) मे न रहने वाला तथा विश्वस ( पक्षियों के निवास स्थान ) सारस नीर ( सरोवर-सम्बन्धी जल ) से संयुक्त हस जिसे नाल ( कमल ) का वन प्रिय है, वहाँ भी बाँधा जाता है क्या ?

आरम्भपक्ष—सम्पूर्ण संसार की सगति से हट कर जो वैराग्यपद पर प्रतिष्ठित है तथा जिसके लिये संसार मे कोई आलम्बन ( आसक्ति का विषय ) नहीं है, ऐसा हस ( आत्मा ) वही बाँधा जाता है ? ॥

[ हस पक्ष—इस पक्ष में पदच्छेद यो करना चाहिये—जनपदे ( ग्राम आदि मे ) अतिष्ठन् ( न रहता हुआ ) विश्वसं सारसं नीर गतं ( पक्षियों के आवास सरोवरो के जलस्थल मे उहरा हुआ ) हस ( हस ) यस्य नालम् वनम् प्रियम् ( जिसे कमल वन प्रिय है ) बध्यते किम् ( बाँधा जाता है क्या ? )

अर्थात् वह नितान्त अपराध दून्व्य है । जनपद में ही अपराधों का अवसर रहता है । हस जनपद मे न रहकर सरोवर के जल के पास रहता है । संसार

के मुख की ओर कोई सामग्री उभे अपेक्षित नहीं है। वह केवल कमल बन की चाह रखता है। जल और पुष्प से ही जो जीवन बिताता है, ऐसे लक्ष्मी हंस को बांध कर आपने अनुचित किया है।

इस पक्ष में विश्वमं और सारसं पद नीरम् के विशेषण हैं। वि का अर्थ है पक्षी और स्वन् का अर्थ है प्राणी। अर्थात् पक्षी प्राणी जहाँ हो वह (जल) विश्वस हुआ। सारसम्—सरोवर-सम्बन्धी पदार्थ (जल) सारस हुआ। अर्थात् यह हंस सरोवर के उस जल के पास रहता है जहाँ पक्षी जाति के लोग रहते हैं। यह किसी ऐसे जल स्थल में नहीं जाता जहाँ आप पक्षियों का आगमन एवं विहार निषेध किये हो।

सात्म पक्ष—विश्व ससार सात (सम्पूर्ण ससार की सञ्ज्ञति से) (हृत्कर) नीरञ्जनपदे (वैराग्य मार्ग में) तिष्ठन् (स्वित) हंस (आत्मा) यस्य बवापि आत्मबन्धनम् न प्रियम् (जिसे संसार में कहीं भी कुछ बाधपूर्ण नहीं है) बध्यते निम् (बाधा जाता है क्या?)

यहाँ विश्व शब्द सम्पूर्ण का वाचक है। संग शब्द के आगे तसिन् प्रत्यय हुआ है। पञ्चमी के अर्थ में जाया हुआ तसिन् संसार संग में उठाकर वैराग्य मार्ग की ओर ला देता है। तसिन् प्रत्यय के कारण ही संसार संग में प्रस्थान और वैराग्य की ओर स्थिति का अर्थ व्यक्त करता है ॥ १९ ॥

अन्यच्छ—

राजन्, अल्पपक्षिणो मुनय इव ये मीनाहारं वाञ्छन्ति, बहुधावन-व्यसनिनो विमाधाराः । तदल्पमाग्रहेण ॥

राजन् । मीनो मस्य । बह्विति । मिश्रम् । विप पद्मिनीकन्द आधारो जीवनं येषाम् ॥ मुनिपक्षे अमी इति नेति च पदद्वयम् । बहुधा, अनेकधा वन-व्यसनिनो वनस्या । तथा व्यपेन माधार साध-रगतिधिपूर्वोत्पत्तिर्वाच्यः । लोकोत्तरवृत्तत्वात् । 'विमादना' इति पाठे तु विमनदनं येषाम् । पक्षे विगतं मादन योग्यम् । अपीडाकरा इत्यर्थः ॥

राजन्, ये जल-पक्षी हंस मुनियों की तरह हैं। मुनि आहार (भोजन) की कामना नहीं रखते। बहुधा वनव्यसनी (अधिकांश वन में ही रहना पसन्द करते) हैं। विमाधार (उत्सव आदि नहीं मनाते) हैं। ये पक्षी भी मीनाहार (मत्स्य भोजन) चाहते हैं। बहु + धावन + व्यसनी (अधिकांश उत्तम भरने के चीकीन) होते हैं या बहुधा + वन + व्यसनी (अधिकांश वन (जल) के चीकीन) होते हैं। विमाधार (कमल तन्तु ही इनके आधार हुआ करते) हैं। अतः आप्रह न करें ॥

[ मुनि सदृश व्यवहार को अपनाने वाले मेरे पति को आप बाँधने का हठ न करे । ]

मुनि-पक्ष में अमी न आहार बाँधति ऐसा पदच्छेद करना चाहिये । ये और मीनाहार के बीच अकार प्रश्लिष्ट है । एड पदान्तादति से पूर्वरूप हो जाने के कारण अ दिखायी नहीं पड़ता । अर्थात् ये मुनि आहार की कामना नहीं रखते ॥

राजा तु तेन तस्याः श्लेषश्लाघिना श्लोकोक्तिरसेनाह्लाद्यमानो नर्मात्लापलीलया तां वभाषे ॥

राजेति ॥ श्लेषश्लाघिना श्लेषप्रकाशनशीलेन । एतेन एकान्त इत्यादिवचसां श्लिष्टार्थैश्चमभिहितम् ॥

राजा तो उसकी श्लेष-बहुल पद्य एवं गद्य की सरलता से प्रसन्न होकर मधुरता-पूर्वक उससे बोला ॥

‘अनेकधा यः किल पक्षपातं सदा सदम्भोजगतः करोति ।

स हंसिकेदारविहारशीलो न बध्यते किं बहुनाशकुन्तः’ ॥ २० ॥

अनेवेति ॥ हे हंसिके, यः सदा जगतोऽपि सर्वस्यापि सदम्भो दाग्भिक । तथाऽनेकधोक्तोऽपि प्रणतिप्रत्युपकारादिना पक्षपातं ममत्वं करोति । तथा दारक्री-डारनोऽमह्यचारी । तथा बहुधाशयव्येवधि कुन्तं प्राप्नोत्यस्येति हिंसापापरतः । स कथं न बध्यते । सत्कारकारायामिति शेषः । इति हंसीवचनप्रतिबचनौचित्येन समपत्तेः श्यायथा ॥ अथवा यो दाग्भिकः सदा जगतोऽपि पक्षस्य मित्रवर्गस्य पातं नाश करोति । तथा जगतोऽपि दारेषु क्रीडापरः । तथा बहुधातिक्रान्ताद्यः । स महापराधी बध्यत एव । निर्मणैव हंसीवचसोऽन्यथात्वम् । तत्रैतस्तु प्रामाण्यम् । तद्यथा । हे हंसि । किं बहुना किं बहुकथाः । सदम्भोज सत्पन्नः, सन् यः पक्षपातं करोति केदारविहारं च शील्यति सः शकुन्तः पक्षी न बध्यते । किं तर्हि मुच्यत एव । तस्मात्पुष्पमुष्पत्वेति वास्तवोऽर्थः । एवमुत्तरत्रापि ॥ २० ॥

हंसी, जो सदा सबके प्रति पक्षपात करता है । अहंकारी बना रहता है । रमणी विहार में ही मग्न रहा करता है । अपने मुह से या अस्त्र से बहुतों का विनाश करता रहता है । वह क्यो नहीं बाधा जाता ।

अथवा—जो अहंकारी अपने पक्ष के सम्पूर्ण मित्रों का पात ( विनाश ) करता है तथा जगत् ( बहुत ) स्त्रियों के साथ विलास के लिये सदा उद्यत रहता है वह महापराधी बाधा क्यो नहीं जाता ।

यद्यर्थं पक्ष—हंसपरनी, अधिक क्या कहना है, जो बार बार सुन्दर कमलों के पास जाकर अपने पक्षों को फड़फड़ाता है और छेतों में विहार करता है ऐसा ( निरपराधी हंस सचमुच ही ) बाँधा नहीं जा सकता ।



[ इस श्लोक में समान विशेषणों के माध्यम से बन्धन और मोक्ष दोनों पदार्थों पर विचार किया गया है ।

उलाहना पक्ष या बन्धन पक्ष—हसिके ! ( हंस पत्नी ) यः किल सदा सदम्भः अनेकधा ( उक्तोऽपि ) जगतः पक्षपात करोति स बहुनाय + कुन्तः दारविहारशील किं न बध्यते ।

बर्षात् उपयुक्त गुण वाले लोग बांधे ही जाते हैं ।

मोक्ष पक्ष यथायं पक्ष—हे हंसि, यः किल सदा सदम्भोज + गतः अनेकधा पक्षपात करोति स केदारविहारशील न बध्यते । किं बहुना यकुन्तः ।

इसका भाव यह भी है कि जो फूलों से प्रेम रखता है, प्रकृति का निरावृत्त वातावरण ही जिसे पसन्द आता है, शान्तिपूर्ण वातावरण से ही स्नेह रखता है ऐसा आदमी भी नहीं बांधा जाता । पक्षी की तो बात ही दूर है ।

पक्षपात शब्द विविध अर्थों में यही प्रयुक्त हुआ है । पक्ष ( मित्र का ) पात ( विनाश ) पक्षपात ( पक्ष पडकडाना ) पक्षपात ( प्रकृति के वातावरण में अधिक प्रवृत्ति रखना ॥ २० ॥ ]

किं चान्यदपि श्रूयतां बन्धस्य कारणम् ॥

अपरपरिमोगप्रतिपादनेष्व्योक्तद्वेषद्वेषकृतेन च हस प्रति हंसी कलहयन्नाह-  
क्विति ॥ चकारः पराभिप्रायाचेपपूर्वके विशेषे । एव नामासौ दुरामा नि शङ्को  
निर्मर्षादक्ष ॥

और भी बन्धन के कारण सुनिये

अस्ति मत्परिमर्दे मृणालिकानामचननायिका, सापरागस्यगितमुख-  
कमलापि बलादनेन विनाशिता, विनिपन्योपरि जर्जरिता नखैः खण्डि-  
तमधरदलम्, ललितमलिकालकमण्डनम्, अपनीतः सुकुमारभायः ॥

कस्तीति ॥ येन भासतां लोकदारा । मम राज्ञोऽपि परिमर्दे स्थितायां नायि-  
कायां प्रवृत्तम् मृणालिकानां परिनीनामवने रक्षणे, नायिका स्वामिनी, सा  
ततोऽपरागाद्रागाभावात्, संतृप्तवक्त्रकमलापि बलाकारादनेन खण्डिताविनाशिता ।  
विनाशोऽत्र शीलरूपेणम् । तदाह—विनिपयेति । अधर भोष्ट, अलिकं ललाटं  
तस्य, तथा अलङ्कारां देवानां च मण्डनम् । लुप्तम् । उदङ्गम् । सुकुमारभायः ।  
अर्षाकन्यावम् । घातवे तु । मृणालिका परिनी । नामेति संबोधने । वनस्य  
नायिकेव । परागो मकरन्दस्तेन द्रवमुत्थानि कमलानि यस्याम् । बलादपि अनेन  
विना पवित्रा सा अक्षिता भक्षिता । अशोभोऽत्रार्थाकर्मणि कः । अधरदलमध-  
पत्रम् । अलक्ष्य एव कालं कृष्णं कस्य शिरस उपरिभागस्य मण्डनम् । अपनीतो  
सुदुभावः । नखैर्भक्षितत्वात् ॥

निन्दापक्ष—मेरे द्वारा नियुक्त मृणालिका की रक्षा ( अवन ) में लगी हुई, प्रेमाभाव के कारण अपने मुख कमल को बन्द की हुई नायिका का विनाश ( धील हरण ) इसने किया है । इसके ऊपर अधिकृत होकर नखों से इसे जीर्ण ( विदीर्ण ) कर दिया है । अधरोष्ठ को खण्डित कर दिया है । अलिक ( ललाट ) के भूषण रूप अलकों ( बालों ) को बिखेर दिया है और उसके सुकुमारभाव ( कीमार्ग ) का हरण किया है ।

यथार्थ पक्ष—मेरी अधिकृत भूमि में स्थित इस वन की नायिका स्वरूप मृणालिका ( कमलिनी ) को जिसका मुख पराग से भर गया है, बलात्कार इस पक्षी ने खा लिया है । उन पर भ्रमण कर उन्हें जीर्ण कर दिया है । अलियो ( भ्रमरो ) के कालक ( कृष्णता ) रूप भूषण को दलित कर दिया है । उनकी कीमलता को नष्ट कर दिया है ॥

( मृणालिकानाम् अवन + नायिका—कमलिनियो की रक्षा के लिये नियुक्त नायिका । सा पराग स्थित—मुखकमलाऽपि—मुख कमल नितान्त प्रेमाभाव पूर्ण है तो भी । बलात्कारेण विनाशिता—बलात्कार इसने उसे आचार-पतित किया ।

वास्तव पक्ष—मृणालिका + नाम + वननायिका—हमारे उद्यान की नायिका सदृश कमलिनी । सा पराग स्थित मुखकमला—आद्योपान्त पराग से भरे मुख कमल वाली । विना + अक्षिता वि शब्द पक्षीका वाचक है । उसी के तृतीया का रूप विना है । अर्थात् इस पक्षी द्वारा मेरी सुन्दर कमलिनी खा ली गयी है । खण्डितम् अधरदलम्—कमल के नीचे के दलों को खण्डित कर दिया है । दलितम् अलिक—कालक-मण्डनम्—भ्रमरो की कृष्णता रूप मण्डन को रगड़ दिया है ।

इन अपराधों के कारण उसे बाधना उचित ही है ॥

किं वापीवरेणानेन न कृतम् ॥

किमिति ॥ अधरानेन पीवरेण स्थूलेन किं न कृतम् । सर्वं कृतमेव तद्विद्युप-सहारे ॥ वास्तवे तु वाप्यां वरेण प्रधानेनानेन ॥

इस पीवर ( स्तूल ) बुद्धि ने क्या क्या नहीं किया । द्वितीय पक्ष—इस वापीवर ( सरोवर के प्रधान हंस ) ने क्या नहीं किया ॥

तदेव यावन्मध्यं बहुधापाञ्जरन्नात्रगाहते तावन्मे कुतः संतोषः । न च नदीक्षितेद्विजन्मनि निगृह्यतेऽपि गरीयः पातयन्मस्ति ॥

तदिति ॥ तस्मादेषोऽपराधी, पाञ्जरस्वेद् पाञ्जर मर्ष्यं यावन्नात्रगाहते । मे मम । तावत्कुत संतोष । अथायं द्विजन्मन्वावनिप्राह इत्यत आह—न चेति ॥

द्वाभ्यां सकाशाज्जन्म यस्य स द्विजन्मा न द्विजन्मा तपोक्ते अर्थात् त्रिजाते निगृही-  
तेऽपि गरीयोऽयथं पातकं न च नैवास्ति । तस्मिन्कांक्षते । नदीक्षिते दीक्षा शैवादि-  
मतपरिमहः संज्ञातोऽस्येति । एतेन दीक्षितो लिङ्गी त्रिजातोऽप्यव्यय एव । अथवा  
अपि समुच्चयापौ भिन्नमो द्विजन्मनीयनेन मयोग्यः । तद्यथा दीक्षिते वृत्तिनि  
द्विजन्मनि ब्राह्मणे निगृहीते न च न पातकम् । पातकमेवेत्यर्थः वास्तवे तु  
तस्मादप्येव त्वपत्तिः । अपा जलानां मयं जरन्यावद्वार्यकावर्ष नावगाहते तावन्मे  
कृतः मन्त्रोप । नद्यां क्षित उपनि द्विजन्मनि विहने नितरां गृहोते स्नेहास्वीकृते  
गरीयोऽयथं न च पातकमस्ति । श्रेय एवास्तौत्यर्थः । गरीय इति क्रियाविशेषणम् ।  
अपिर्विधोऽज्ञाने गृहीतकामस्य दण्डितार्थत्वात् ॥

अथः यह ( अपराधी ) जब तक पित्रदे के बीच बहुत समय के लिये  
नहीं जाता तब तक मुझे सन्तोष कहा । ( शैव वैष्णव आदि परम्परा में )  
अदीक्षित द्विजन्मा को पकड़ लेने में कोई लक्ष्य पाप नहीं लगता ।

द्वितीय पक्ष—यह पानी के बीच अपनी वृद्धावस्था पर्यन्त विहार नहीं  
करता रहेगा तब तक मुझे सन्तोष कहा । नदी तट पर बसा हुआ पक्षी यदि  
( स्नेह ) से पकड़ लिया गया तो कोई बड़ा पातक नहीं लगता ।

प्रथम पक्ष—पाञ्चरम् न अवगाहते—पित्रदे के मध्य भाग में जब तक  
( बहुत समय तक ) नहीं रहता । न दीक्षिते द्विजन्मनि—जो द्विजन्मा ब्राह्मण  
आदि दीक्षा ग्रहण नहीं किया है । ब्राह्मण आदि भी यदि दीक्षा नहीं ग्रहण  
किये हों तो उन्हें पकड़ने में दोष नहीं लगता । पक्षी आदि की तो कोई बात  
ही नहीं । अथवा दीक्षित ब्राह्मण को पकड़ने पर पातक नहीं लगता ऐसी बात  
नहीं । अर्थात् पाप लगता ही है ।

द्वितीय पक्ष—अपाम् ( जल के बीच ) जरम् यावत् ( वृद्धावस्था पर्यन्त  
जब तक ) न अवगाहते ( विहार नहीं करता ) तावन्मे कृतः मन्त्रोप ( मुझे  
तब तक सन्तोष कहा । ) नदी + क्षिते ( नदी में बसे हुए ) द्विजन्मनि ( पक्षी को )  
निगृहीते ( पकड़ लेने पर ) महान् पाप नहीं लगता ।

जल के किनारे हंस बैठा था, मैंने उठा लिया है । मेरी इच्छा है कि बुरापे  
तक यह जल में विहार करे । मैं सदा इसका मङ्गल चाहता हूँ ॥

अयि मुग्धे कलहंसिके, त्वं पुनः मानसङ्गतापि विमाननां सदृसे,  
विपरीतः स्वल्पेः । यतः सङ्गंशकान्तारागवियुम्भो मधुपश्रेणिधर्यर्णयां  
सुरार्जाधिनां कान्तां कामंयते । तद्वलमनेन । 'गच्छ वत्से, यथाप्रियम्'  
इत्यभिहितवति वसुधरेभ्वरे ॥

श्लोके ॥ मानेन मग्ना । विमानवा अवगमना । पक्षे मानसं सरः । विषु पक्षि-  
षु मानना पूजा । विपरीतो विरुद्धवृत्तः । पक्षे विमि पक्षिणि परिबृत्तः । कादम्बक-

कदम्बकेशरत्नात् । सद्बन्धकान्तानुरागपराङ्मुखे । मद्यपश्रेणितेभ्याम् । सुरया जीवति या ताम् । इच्छति । पक्षे शोभना वशा मस्करा येषु तेषु कान्तारेषु नगोभ्यो विमुखो भृङ्गपङ्क्तिध्रितां सुष्ठु शोभनाराजीविनीं नलिनीम् । प्रपस्यानतिश्रमेण यथाप्रियम् । प्रियो भर्ता इष्टप्रदेशश्च । इत्युक्तवति नृपे ॥

प्रथम पक्ष—जो सुन्दरी हसी, तुम मान ( प्रेममूलक रोष ) से सगत (युक्त) हो फिर भी विमानना ( अवहेलना ) सह रही हो । यह विपरीत बात है । क्योंकि सुन्दर वश मे उत्पन्न प्रिया के प्रेम से विमुक्त ( यह तुम्हारा पति ) मद्यपीने वालो के उपभोग लायक, मदिरा से ही जीने वाली प्रिया का चाह रहा है । अतः यह महान् अनर्थ है । “वत्से, जाओ अपने प्रिय स्थान पर ।” इतना कह कर सम्राट् चले गये ।

द्वितीय पक्ष—“ओ हसी, मानसरोवर जाकर विशिष्ट सम्मान प्राप्त करती हो । तुम्हारा पति पक्षियो द्वारा घिरा हुआ है । सुन्दर बास के जगल मे पेडो से विमुख होकर भ्रमरो से युक्त मनोहर कमलिनी की कामना करता है ॥

[ प्रथम पक्ष—मानसगताऽपि विमानना—मान ( हठ से युक्त ) है फिर भी मान से हीन है । विरोध ॥ मान ( प्रेम मूलक रोष ) से युक्त हो फिर भी विमानना ( अवहेलना ) सह रही हो । “परिहार” ॥

विपरीतमेतत्—यह अनुचित है । भानिनी को अनुनय-विनय के साथ मनाना चाहिये उसकी अवहेलना करना तो असगत बात है ।

सद्बन्ध कान्ताराग विमुख —सुन्दर वश मे उत्पन्न अपनी प्रिया के प्रेम मे विमुक्त । मधुपश्रेणीश्रयणीयाम्—मद्य पीने वाले लोगों के उपभोग के उपयुक्त । सुराजीविनीम्—मदिरा से ही जीवन चलाने वाली कान्ता कामयते—सुन्दरी की कामना करता है ।

द्वितीय पक्ष—मानसगताऽपि विमानना—मानसरोवर जाकर वि (पक्षियो) का मानना ( सम्मान ) प्राप्त करती हो । वह उस हंस की पत्नी है जो अपने समाज का नायक है । अतः उसकी पत्नी का सम्मान होना स्वाभाविक है ।

वि + परीतम् एतत्—वि ( पक्षियो ) से यह घिरा हुआ है । पक्षियो का नायक है । अतः दूसरे पक्षी अपनी स्वामी की सुरक्षा के लिये उसे घेरे हुए है ।

सद्बन्ध कान्ताराग विमुख —सद्बन्ध ( सुन्दर बास ) के कान्तार ( जगल ) में जो अग ( पेड ) हैं उनसे विमुख ( निरीह ) रहता है । अर्थात् हंस बाँध के वन मे अनुराग नहीं रखता ।

मधुप—मधुप ( भ्रमर ) श्रेणी ( पङ्क्ति ) द्वारा श्रयणीय ( सेव्य ) कान्ता ( मनोहर ) सु + राजीविनी ( सुन्दर कमलिनी ) की कामना करता है । इस पक्ष मे हंस का स्वाभाविक एवम् उचित वर्णन हुआ है ।

सापि सपरिहासं हंसी 'हंहो विहङ्गमुजङ्ग, मृगालिरा तामर  
सान्तरसातुरागरञ्जितमना कामयसे किं वापीनदेहे नीरसेयके त्वयि  
न संभाष्यते' इत्याकलितकलहं कलहंसमवादीत् ॥

सातीति । हस्यति हसमवादीत् । हहो इति प्ररनपूर्वामन्त्रणे । विहगवि  
लामिन् । तां राजनिवदिताम् । मृगालिकाणां पालननायिकाम् । अरमा नि-  
स्नेहाम् । नरसा बलेन । अनुरागेन स्वामरण्या रत्नचित्त इत्युक्तिः । नु किमर्थं ।  
न चायं विलामिधर्मः । वस्तुतस्तु मृगालिका पद्मिनीम् । तामरमान्तं अन्तः  
रसा निर्यासस्तत्रानुरागो यस्यति सवेधनम् । अन्तःशब्दं स्वरूपार्थः । अथवा  
तामरसस्यान्तरे भक्ष्ये सातुरागेति सवोधनम् । अथवा पीने स्थूलादेः नीरमे  
निस्नेहे । निर्वीर्यं वा । बकप्राये त्वयि किं न संभाष्यते । अन्यत्र । त्वयि  
किंभूने वाप्यश्च नशाश्च तेष्वीहा यस्य । तथा नीर उल सेवते यः । किं न  
संभाष्यत इति । समावना प्रशंसाविषया । एकमेव हि वाक्यं प्रहरणादौचित्यारत्न  
प्रशसा निन्दा च प्रतिपादयति । यथा 'स्वमस्माकं किं किं न करिष्यमि' इति  
प्रसञ्चेनेकप्रशसा गमयति रष्ट्रेण च विन्दाम् ॥

प्रथमपक्ष—वह ( हसी ) भी परिहास ( हँसी ) करती है, ओ विहग  
मुजङ्ग ( विलासी हम ) उस प्रेमगुन्य कमलवन की रत्निका को बड़े प्रेम से  
चाहत हो । निर्वीर्य बगुले जैसे माटू गरीर वाले तुम पर क्या क्या सम्भावनाएँ  
नहीं की जा सकतीं । इस तरह किल किलते हुए हस स बोली ।

द्वितीयपक्ष—वह ( हसी ) भी परिहास पूर्वक ओ पत्तियों के साथ विनास  
करने वाले राजहृष कमल रस के अनुरागी बड़े प्रेम से कमलिनी की कामना  
कर रहे हैं । वाक्छियों ओर नदी की अभिलाषा करने वाले तथा जल का सेवन  
करने वाले तुम न क्या क्या सम्भव नहीं है । इस तरह बड़े प्रेम के साथ हस  
से बोली ।

प्रथमपक्ष—ताम् अरसाम् मृगालिकाम् ( उस प्रेमगुन्य मृगालिका नामक  
वनरत्निका को । तरसा अनुराग रञ्जितमना —बलात्कार अनुराग से पूर्णचित्त  
वृत्ति बाँधे हाकर ) उसकी कामना करते हो । पीनदेहे ( मोटे गरीर वाले )  
नीरसे ( निर्वीर्य ) बके ( बगुलेमहद्य ) तम न क्या सम्भव नहीं है । तुम सब  
कुछ कर सकते हो । सब जगह अनुरक्त हो सकते हो । निर्वीर्य होने के कारण  
तुम महान् कामी हो गये हो ।

द्वितीय पक्ष—तामरसान्तराग । ( कमल के मध्य भाग में अनुराग रखने  
वाले ) रञ्जितमना ( प्रसन्नचित्त वृत्ति वाले ) तुम मृगालिका ( कमलिनी ) की  
कामना करते हो ।

बापीनदेहे—बापी ( बावली ) और नद मे ईहा ( इच्छा ) रखने वाले आप मे क्या नहीं सम्भव है ।

मुनिकी तरह जल के समीप रहने वाले आप जैसे व्यक्ति मे विविध उत्कृष्टताओ की सम्भावना की जा सकती है । ]

सोऽपि 'वैदग्धधुरंधर, धूर्तालापपण्डित, प्रज्ञाप्राग्भास्गुरो, चातुर्याचार्य, मा मे प्रियां प्रनोपय । सद्दशा एव यूयं वयं च राजहंसाः । सरसां श्रियमनुभवामः । नदीनां पात्रेष्ववस्थितिं कुर्मः । न चरणचर्यायां न श्लाघ्यामहे । तत्सपक्षेषु विपक्षो माम् ॥

सोऽपीति ॥ राजहंसा राजमुषया यूय गरमां जनानुरागकरिं लक्ष्मीमनुभवय । तथा पात्रेषु धर्मपात्रादिषु दीना स्थितिं व्यवस्थां न कुरुष ॥ तथा रणविधौ न न श्लाघ्यथ्वे । च मनुचक्ष्वे । वयं पक्षे सरसां तडागानाम् ॥ नदीनां सरितां कूलमध्येषु । चरणं चर्या गतिविशेषः ॥ तत्समादुक्तप्रकारेण समानपक्षेषु पक्षतिमहितेषु च । विरुद्धपक्षो माम् ॥

वह ( हंस ) भी 'ओ उत्तम सहृदय ! धूर्तों की तरह ( अस्पष्ट ) बातों में प्रवीण ! बुद्धि के विविष्ट भार से गभीर ! चतुरता के आचार्य ! मेरी प्रिया को क्रुद्ध न करो । आप जैसे राजहंस ( उत्तम राजे ) और हम राजहंस ( पक्षी ) बराबर ही हैं ।

आप लोग प्रजा की अनुरक्त कर देने वाली सरस राजलक्ष्मी का उपभोग करते हैं । पात्र (सत्पात्र सुयोग्य) मे दीन ( वृषण ) दशा का प्रदर्शन नहीं करते । ( सुयोग्य आदमी को सुयोग्य सम्मान देकर सम्मानित करते हैं । ) रणचर्या ( लडाई के बारे ) मे आप लोग प्रशंसित नहीं हो ऐसी बात नहीं । ( होते ही हैं । ) अतः अपने पक्ष के लोगों पर प्रतिकूल न हों ।

हम ( हंस ) लोग भी सरोवरो ( सरसा ) की शोभा ( कमलिनी ) का उपभोग करते हैं । नदियों के पात्र ( तट को खाइयो ) मे ठहुरते हैं । चरणचर्या ( बिलासिता पूर्वक भ्रमण करने ) मे प्रशंसित न होते हो ऐसी बात नहीं । इसलिये आप सपक्ष ( सुन्दर पक्षो को धारण करने वाले हंसो ) पर विपक्ष ( रण ) न हों ॥

एषा मे हृदयं जीव उच्छ्वास प्राण एव च ।

संसारसुखसर्वम्व्यं प्राणिनां हि प्रिया जनः ॥ २१ ॥

येति ॥ एवमे हृदय मन । अभिन्नभावान् । जीवो जीवितम् । तस्मिन्नावे जीवनात् । उच्छ्वास श्वासाश्वासादिषु । स्वभ्रातृपगमदेतुवान् । प्राण प्रधानभूतो वायु । श्वासाश्वासात् । प्राणो बलमपि । जीवितार्थो बलाद्यो न तु वायव्यार्थः । स्वप्रशस्तपाद् — 'प्राणोऽन्त शरीरे रसमलघामूर्तां मेरणादिदेतु' इति ॥ २१ ॥

यह मेरा हृदय है, जीव है, श्वाभ तथा प्राण ( बल ) है, क्योंकि प्राणियों के लिए संसार के उत्तम सुख की प्रतिपूर्ति उनके प्रियजन ही होते हैं ॥ २१ ॥

रूपसम्पन्नमप्राप्त्यं प्रेमप्रायं प्रियंवदम् ।

कुलीनमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ २२ ॥

रूपेति ॥ प्रेम्णा नुख्यप्रेमप्रायम् । सस्नेहमित्यर्थः ॥ २२ ॥

रूप संपत्ति से पूर्ण, नागरिक स्वभाव की, प्रेम भरी, सुन्दर कुल में उत्पन्न मनोशुक्ल पत्नी कहा मिलती है ॥ २२ ॥

तदलमलोककलहद्वारम्भेण -मवानप्येवं प्रेमप्रपञ्चनाटकनायको नातिचिरादेव यथा भवति तथा कमप्युपकारं करिष्यामि' इति राजानमयादीन् ॥

व्यर्थ अधिक जल्पन बधा करना है, आप भी इस प्रेम प्रपंच वाले नाटक के नायक शीघ्र जिस उपाय से बने उस तरह वा उपकारात्मक यत्न में कलेंगे । इस तरह राजा से हंस ने कहा ॥

अत्रान्तरेऽन्नरिक्षमण्डलादतिस्पष्टवर्णव्यक्तिमनोहारिणी वाग धूयत ॥

इसी बीच आकाश में अत्यन्त स्पष्ट वर्णव्यञ्जना के कारण मनोहर वाणी सुनाई पड़ी ॥

राजन्प्राजीवपत्राश क्षिप्रं हंसो विमुच्यताम् ।

मविष्यत्येष ते दूतो दमयन्त्याः प्रलोभने ॥ २३ ॥

हे कमलनयन 'राजन् ! शीघ्र ही हंस को छोड़ दीजिए । दमयन्ती को आपकी ओर आकृष्ट करने में यही आपका दूत होगा' ॥ २३ ॥

राजा तु तस्याः सोष्मबलात्तैलपूरेणोवाङ्गमुत्पुलकयता, कर्णान्तर-मवर्तणैर्न, दमयन्तीनि नाम्ना कोमलतैत्तिरपिच्छस्पर्शानुस्रमिवानुम-बन्मनाङ्निर्मालिताश्विन्तयांचकार ॥

राजा त्विति ॥ बला गन्धद्वयविशेषस्तस्य तैलम् ॥

राजा तो जैसे गरम उबला तैल बज्जो पर छिड़क दिया जाय और रोमांच हो उठे उसी तरह रोमाञ्चित होकर कान के भीतर 'दमयन्ती' इस नाम से तितिल के कोमल पक्ष-स्पर्श सहज सुखानुभव करता हुआ थोड़े बार्शों को निर्मीलित करता हुआ सोचा ॥

'आह्लादयन्ति सौख्याम्भःशावकुम्भीयकुम्भिकाः ।

काञ्चीकलापसर्शाकाः श्रोणीविम्बाः श्रुता अपि ॥ २४ ॥

आह्लादेति ॥ सौख्यजलमौवर्णकलशा । आसेचिता दृष्टाः स्पृष्टा वा । धुना  
अप्याह्लादयन्ति । यतः सौख्यस्य सर्वात्मना आचारभूताः ॥ २३ ॥

'करधनी से सुशोभित ऐश्वर्यजल से भरे हुए शातकुम्भीय ( सोने के घड़े की तरह ) नितम्बो को धारण करने वाली (रमणियों) को देखना या सुनना होना ही आह्लाद की चीजें होती हैं ॥ २४ ॥

तत्केयं दमयन्ती, कश्चायमाश्वर्यभूतो विहंगः, का चेयं नभोभारती,  
सर्वमेतद्विस्तरेण वेदितव्यम्' इत्यवधारयन्नेकस्यामुत्फुल्लपल्लवितल-  
तामण्डपच्छायायामुद्भिद्रकुसुममकरन्दशीकरासारशिशिरे शिलातले  
निपद्य तं हंसमघादीत् ॥

यह कौन-सी दमयन्ती, कौन-सा यह आश्चर्यजनक पक्षी, कौन-सी यह  
आकाशवाणी, यह सब कुछ विस्तार से जानना चाहिए । यह निश्चित कर एक  
खिन्नी हुई लता-मण्डप की छाया में पूर्ण विकसित फूलों के पराग-बिन्दुओं की  
बर्षा से शीतल एक शिला पर बैठकर उस हंस से बोला ॥

'भद्र, साप्तपदीनं सख्यम्, उत्पन्नकृतिपयप्रियाल्लापा प्रीतिः,  
प्रयोजननिरपेक्षं दाक्षिण्यम्, अकारणप्रगुणं वात्सल्यम्, आनमिन्न-  
सुन्दरो मैत्रीभावः सतां लक्षणम् ॥

अद्रेति ॥ सप्त पदानि गम्यन्त उच्यन्ते वा यत्र मध्ये त्रसाप्तपदीनम् ।  
मैत्र्या प्रीनेर्भावोऽभिप्रायः ॥

कल्याणमय मित्र । सात ही पदों के आलाप से मैत्री, कुछ ही प्रिय बातों  
से प्रेम की उत्पत्ति, अकारण दाक्षिण्य ( उदारता ) अकारण सुन्दर मित्रता ये  
सब सज्जनों के लक्षण हैं ॥

अस्ति च तत्सर्वं भवन्मूर्ताघतो निःशङ्कमभिधीयसे कथय केयं  
दमयन्ती, कस्य सुता, कीदृशपम्, कुत्र सा वसति, कश्च भवानस्मा-  
कमुपकर्तुमिच्छति, का चेयं दिव्ययाणी-इत्येवमुक्तः स कथयितु-  
मारेभे ॥

आपके शरीर में ये सब गुण हैं, इसीलिए निर्भेकतापूर्वक बह रहा हूँ,  
'कहिंसे कौन यह दमयन्ती, किसकी लड़की, किस तरह का रूप, कहाँ वह रहती  
है, कौन मेरा उपकार करना चाहता है और कौन यह दिव्य वाणी है ?  
( राजा के ) ऐसा पूछने पर उसने कहना शुरू किया ।

'शृङ्गाररमभृङ्गार तस्याः सौन्दर्यवीचधः ।

कर्णमारोप्यतां देव घातांविस्मयपल्लवः ॥ २५ ॥



शरणात् ॥ रसेन विरचयन्माना वीरद्वर्षते । शृङ्गारोऽपि कर्णकण्ठे निहितेन पङ्कजेन  
शोभत इत्युत्तममागमौचिष्यात् । मौन्दर्पेण वीरदिव सौकुमार्यात् । वार्ताया  
विस्मयो वार्ताविस्मयः स एव पङ्कज ॥ २५ ॥

ह शृङ्गार रस के स्वर्णकण्ठ । ( राजन् ) उस ( दमयन्ती ) की शो-दय-  
रदा क वाच्यमम वार्ता-पङ्कज वा ( कृपया ) अपने कानों पर रखें ॥ २५ ॥

अस्ति विन्मार्गमिदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुरविहारा  
रामरमणीय मीनासहायसंचरितरनुपतिपादपद्मपदिप्रारण्य पुण्य-  
तत्तरङ्गगङ्गागोदारस्यारिखारिनदुरितदावानलप्रसर. मन्दर इव बलि-  
रानननिपरिवर्तन, कैलास इव महेश्वरलोककृतवसति, मेरुविष  
सुवर्गप्रकृतिकर्मनीयो, यदुपंश इव दृष्टगूरुपावतार, सोमान्वय इव  
पुरप्रगतो, वेदपाठ इवानेके सवनैरुपेत, परंते-परंते स्याणुमि, पुरे  
पुरे पुरागपुरपै, जले जले कमलोल्लस्ये, पदे-पदे देवकुलै, वने-वने  
वदन्, स्याने-स्याने नन्दनोद्याने, अर्गल स्वर्गस्य, तापीप्रायोऽ  
प्यनुपतापी जनस्य, विन्प्राट्टिमुद्रिताया दिशि देशानामुत्तरोऽपि  
दक्षिणो देश ॥

कल्पने । देशानामुत्तरा सुवर्गो दक्षिणदेशोऽस्ति । अपिदिशोषे । उत्तरदेशस्य  
दक्षिणदेशायां वा । बलिना घनवता, राज्ञा भीमलङ्घनेन अनित परि समन्तादूर्तन  
परिपालन यस्य । पदे बलिराजो दैव्य । परिवर्तन भ्रमणम् । महानीशरोऽतिसमृद्ध  
शिवश्च । सुष्ठु वर्गं द्विजानप । प्रकृतयोऽप्याप्या । पदे सुवर्गप्रकृतया स्वर्गदेव-  
भावेन कल्प । गुरो विक्रमी वसुदेवपिता च । बुधो विद्वाप्रकृतियश्च । स इति  
निष्ठम् । वने कानने । पदे सवनैर्यज्ञैर्दुष्टः ॥ स्यात् कुल रिघरपदायंश्च । पुराग-  
पुरयो वृद्धो विष्णुश्च । कमलोल्लस्ये कमलोपतिमिदमिदमिदम् । कुल गृह कुन्द च ।  
वरुणो कथा जल वा । पदे प्रवता सूर्यो वा । नन्दन इति क्रियावचन इन्द्रवन  
महा च । तैस्त्रैर्वृक्षत्रिभिर्द्विर्वेर्गोऽपि । स्वर्गे ऐश्वर्य एव स्यात्पुत्रमृति ।  
अस्मिन्नु बहव इत्यर्थः । तारी नदी प्रायेण तत्र । विरोधे तु तापपत्यवरपमिति  
नाया ॥

कैसे हुए नन्दनकाल का भूषण पर्वत, नगर, ग्राम, विहार ( मठ ) एवं वटारों  
स रमणीय, सीता क साथ घूमते हुए रघुनति ( रामचन्द्र ) के चरण कमलों  
से पुनीत जङ्गलों वाला गङ्गा धीर गीतावरी क अत्यन्त पवित्र जन् तरङ्गों  
म दुरित ( पाप ) बनाति क प्रसार को रोक दिया जाने वाला विष्णुवचन से  
जन् किया हुआ सभी देशों में उत्तर ( सर्वश्रेष्ठ ) दक्षिण दक्ष है वहाँ के  
बलि-राज ( बलवन् मूर्ति ने ) उसी तरह परिवर्तन ला दिया है जैसे बलि-राज  
'देव' ने मन्दर म परिवर्तन ( कल्पन ) ला दिया था । जैसे कैलास पर्वत में  
महेश्वर लोक ( शिवजी के गंग ) निवास करते हैं उसी तरह वहाँ भी महेश्वर-

लोक ( महान् ईश्वर ( राजा ) के प्रजाजन ) निवास करते हैं। मेरु पर्वत सुवर्ण प्रकृति ( स्वर्ण शरीर ) होने के कारण जैसे कमनीय ( सुन्दर ) लगता है उसी तरह वह ( देश ) भी सुवर्ण प्रकृति ( सुन्दर आकृति वाला ) होने के कारण कमनीय लगता है। यदुकुल जैसे घूर ( बसुदेव पिता ) के अवतार को देखा है वैसे उम देश ने भी घूर ( पराक्रमी ) पुरुषों के अवतार को देखा है। सोम ( चन्द्र ) वश बुध ( ग्रह ) जैसे मुख्य ग्रह से युक्त है वैसे ही यह देश भी बुध प्रधान ( पण्डित बहुल ) है। वेदपाठ जैसे बहुत सवन ( यज्ञ चर्चाओं ) से युक्त है उसी तरह से ( वह देश ) वन ( जगल ) से युक्त है। वह देश स्वर्ग से भी व्यर्गल ( अधिक ) है क्योंकि वहाँ प्रत्येक पर्वत में स्थाणु ( ठूठे पेड़ या स्तम्भ ) हैं। प्रत्येक गाँव में पुराण ( बृद्ध लोग ) हैं। हर एक सरोवर में कमलोद्भव ( कमलों की उत्पत्ति ) है। पग-पग पर देवकुल ( सुन्दर गृह ) हैं। हर एक वन में वरुण ( वरुण वृक्ष ) हैं। स्थान-स्थान पर नन्दनोद्यान ( सुन्दर उपवन ) हैं। ( स्वर्ग में भी एक ही स्थाणु ( शिवजी ) एक ही पुराण पुरुष ( विष्णु ) एक ही कमलोद्भव ( कमला ( लक्ष्मी ) उत्पत्ति ) एक ही जगह देवकुल ( देवताओं का गृह ) एक ही वरुण ( वरुण देवता ) तथा एक ही नन्दन-वन ( इन्द्र का उपवन ) है। वह देश तापी प्राय ( तापबहुल ) होता हुआ भी उपतापी ( ताप बहुल नहीं है। विरोध ) वह देश तापी नदी से घिरा हुआ है तथा लोगों को उपताप ( दुःख ) नहीं पहुँचाता ॥

यत्र शास्त्रे शास्त्रे च वेदे वैद्ये च भारते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यधान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, म्निग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोकः ॥

यत्रेति ॥ कश्ये शिक्ये वेति । कश्यो यज्ञकर्मणामुपदेशक । प्रधान इति प्रकृष्टं धानं धारणं यस्य । शास्त्रशास्त्रादीनि प्रकर्मणं धारयतीत्यर्थं । एवं सर्वत्र वाच्यलिङ्गता । मुख्यार्थस्य हि प्रधानशब्दस्याविशिष्टनपुंसलिङ्गत्वम् ॥

जहाँ शास्त्र, शास्त्र, वेद, आयुर्वेद, भरतवर्ष महाभारत, ( आदि दिव्य ग्रन्थों ) कल्प ( यज्ञादि के उपदेशकों ) में मुख्य धनी, धन्य, धान्ययुक्त, वाणी में प्रवीण, मुख से सुन्दर, मन से अनुरागी सदा शोक-शून्य लोग रहते हैं ॥

यत्र कृद्धभूर्जटिललाटलोचनानलज्वालाकयलनाकुलः, आसादपा-  
ङ्गाधलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसां विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयोः  
शृङ्गारसर्धन्वर्, अधरपल्लवेषु मधु, धूमङ्गेषु धनुः, कटाक्षेषु पुष्प-  
वाणाक्षिधाय निलीनोऽङ्गेषु जघनम्यलस्थापितरतिमकरकेतन ॥

यत्रेति ॥ देवे विलासिनीनां कुचादिष्वचयवेषु स्वोपकरणानि शृङ्गारादीनि स्थापयित्वा आसाक्षिनीनो मन्मथ । यतः । क्विञ्चिदानीं तामाम् । भिञ्चिन्ते

परमेश्वराणां धनिनां मनो याभिः ॥ अथ च परमेश्वरो धूर्वति' सोऽपि तानितिव्रित्त  
इत्युच्छिष्टेः । एतेन दारणागतप्रागवैभवम् ॥

जहां रोधावेग में जाये हुए भगवान् शङ्कर के ललाटस्थ लालन की अग्नि  
ज्वाला में कवलित किये जाने के कारण डर के मारे अपाङ्ग भाग से देख लेने  
नाम में बड़े बड़े राजाओं की वित्तवृत्ति को भी जोत लेने वाली रमणियों के  
जैसे कुचकलश पर शृङ्गार के सारभूत तत्त्व को, अधरो में मधु को, भौहों की  
वक्रता में धनुष को, कटाक्षों में फूलों के बाणों को रखकर स्वयम् अङ्गों में  
बिचीन हाकर जपनस्थल में रति को रखकर कामदेव रहता है ॥

यासां तादृष्यमेव सर्वाङ्गेषु शोभार्थमाभरणम्, उत्तुङ्गस्तनमण्डल-  
लावण्यमेव मुखकमलावलोरुनाय दर्पणः, तारतरनयनकान्तिरेव  
मुखमण्डलमण्डनाय चन्दनललाटिका, भ्रूमङ्गा एव विभ्रमाय मृगम-  
दपत्रमङ्गा, कटाक्षा एव युवजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमका-  
न्तिदन्तच्छद्म एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणि, मुखकमल-  
परिमलागतमधुकरमधुरशंकार एव विनोदाय वीणाध्वनिः ॥

यासानिति ॥ माहेन्द्रमिन्द्रबाह्यम् । तन्त्रबलेनाविद्यमानवस्तुप्रकाशनमिति  
यावत् । तदर्थो मणिर्माहेन्द्रमणि ॥

जिनका यौवन ही सभी अङ्गों को सुशोभित करने के लिए मूयन है । उत्त-  
स्तन मंडल का सौन्दर्य ही मुखकमल को देखने के लिए दर्पण है । चंचल आँवों  
की कान्ति ही मुख-मंडल को अलंकृत करने के लिए चंदन बिन्दु है । भौहों की  
वक्रता ही विनाय को शोभित करने के लिए कस्तूरी से अङ्कित पत्र रचना है ।  
कटाक्ष ही युवकों को जोतने के लिए परमास्त्र है । बन्धूक ( अडहूक ) के फूल  
जैसा कान्ति वाले ओष्ठ ही लोगों की आँवों को मोहित करने के लिए माहेन्द्र  
मणि है । मुखकमल से निकले हुए परिमल ( सुन्दर गंध ) के लिए भीरो की  
मधुर शंकार ही विनोद के लिए वीणा की ध्वनि है ॥

किं बहुना—

ता एव निर्द्वैतित्स्थानमहं मन्ये मृगेश्वरः ।

मुक्तानामास्पदं येन तासामेव स्तनान्तरम् ॥ २६ ॥

ता एवेति ॥ निर्द्वैतिसृष्टिः शमं च । मुक्ता मुक्तात्मानो मौक्तिकानि च ॥ २६ ॥

मैं मानता हूँ कि वे मृगेश्वरों ( नायिकायें ) मुक्ति का स्थान हैं, उन्हीं के  
स्तनों के बीच मुक्त लोगों को जगह मिलती है ।

द्वितीयपक्ष—मेरी सम्मति में वे मृगेश्वरों निर्द्वैत ( लज्जाशीलता ) के  
स्थान हैं । उन्हीं के स्तनों के बीच मुक्तामणियों को स्थान मिलता है ॥ २६ ॥

मन्ये च । ताभिरेष विविधनिधुवननिधानकुम्भीभिः कुम्भोद्भ-  
योऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुञ्चति दक्षिणां  
विशमेव ॥

सुरत-क्रीडा के पान उन्हीं नायिकाओं द्वारा कुम्भज ऋषि ( अगस्त्य ) भी  
मादूम पड़ता है प्रलोभित हो गये होंगे । इसी लिए आज भी दक्षिण दिशा को  
छोड़ ही नहीं रहे हैं ॥

अथवा—

देशो भवेत्कस्य न चल्लभोऽसौ स्त्रीसंकुलः सुस्थितकामकोटिः ।

वर्गैककामं त्रिदियं विहाय यस्मिन्कुमारोऽपि रतिं चकार ॥ २७ ॥

देश इति ॥ कामकोटिर्दुर्गं कर्षकोट्यध्व । कुमार. कार्तिकेयो डिम्भश्च । रतिरा-  
स्वार्थः । सुरतार्थेन च विरोधोद्भावना ॥ २७ ॥

या—

कामकोटि देवी से सनापित स्त्री बहुल वह देश किसको प्रिय नहीं है  
जहाँ कामदेव स्वर्ग को छोड़कर कुमार ( कार्तिकेय ) भी प्रेमपूर्वक रहे हैं ।

वह कामदेव की कोटि ( मूर्ती ) तथा स्त्री बहुल देश किसको प्रिय नहीं  
है जहाँ कामवासनाओं को मुला देने वाली क्रीडा की विविधताओं को छोड़कर  
बच्चे भी रति ( प्रेम ) करने लगते हैं ॥ २७ ॥

तस्यान्तर्भूतवैदर्भमण्डलस्यालंकारभूतमनाकुलममरपतिपुरप्रति-  
स्पर्धिपरितः परिष्ठाप्रान्तरुढप्रौढहृद्योद्यानमालावलयितमदभ्रशुभ्राध्रं-  
लिहप्रासादशिखरशिखामोगममरविरथतुंगवेगम्, परुषाग्निद्वोत्रमन्त्र-  
पवित्राहुतिद्वतसमस्तदिव्यान्तरिक्षमौमोत्पातसंघातैः, कृतमन्युभिरपि  
मन्युशूल्यैः, उक्तसूक्तैरपि निरुक्तपरैः, सन्मार्गैस्थैरपि गृहस्थैः, सकल-  
धैरपि ब्रह्मचारिभिः, अभ्यस्ततिथिभिरप्यतिथिकुशलैः, सामप्रयोगप्र-  
धानैरपि दण्डावलम्बिभिः, शतपयानुसारिभिरप्येकमार्गैः, ब्राह्मणैर-  
ध्यासिनम् । एकत्र कुठभिरिव द्रोणपुर.सरैः, प्रासादैरिव तुलाचारिभिः  
नयायिकैरिवानुमेयानुमाननिपुणैः, वैशेषिकैरिव द्रव्यानुगुणरुर्मविशेष-  
पण्डितैः, वैयाकरणैरिव रूपसिद्धिप्रधानैः, रुद्रैरिवानेकप्रन्थियवद्धकप-  
र्दकैः, विपणिवणिग्जनैरधिष्ठितम् । एकत्र विटकौलदम्भदीक्षाभिरिव  
कुषरूपलोमितलौकाभिः, कुकचिन्नायपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणवृ-  
त्ताभिः, निशाचरीभिरिव रजनिरागिणीभिः, सर्वतोमुपजघनचपला-  
भिरप्यनार्याभिः, कर्णाटचेटीभिर्भरितम् । एकत्र घालकमिय कुलाला-  
कीर्णम् । एकत्र वृद्धमिथ कुजराजितम् । एकत्र चित्रविद्ययेव प्रवर्धमा-

नसकलशिशुशोभितया विन्यस्तस्वस्तिरया सर्वतोभद्रभूपणया मवन-  
मालयालंघितम् । एकत्र नाटकैरिव पताकाङ्कसंधिसंगतैः, दुष्टकिरातै-  
रिव दृष्टकूटकर्मभिः, शस्त्रैरिव सुधारैः, विचित्रैरपि सचित्रैः, सतुलैर-  
प्यतुलैर्देवकुलैः संकुलम् । विशालमपि शालासंपन्नम्, चतुश्चरणसं-  
युक्तमपि चरणरहितम्, विट्संभृतमपि शुचिमार्गम्, सर्वत्र चतवरा-  
धिकमपि स्थिरप्रकृति, मञ्जन्महाराष्ट्रकूटम्यनामुखमण्डलविधीयमानो  
रुद्रकनलशोभायास्तुङ्गतरङ्गरङ्गत्तरुणाजुनराजीरराजमानराजहंसवि-  
राजिनचारेर्वरदायास्तोरे रमणीयकरसकुण्डं कुण्डिनं नाम नगरम् ॥

तस्वेति ॥ तस्य दक्षिणदेशस्यान्तर्भूत वैश्वं मण्डल तदलंकारमूतम् । पञ्च  
विशेषगोपेतम् । निरुद्रवम् । तुङ्गतरङ्गेषु रङ्गन्ति तरुणानि नवान्पुनानि धवलानि  
यानि राशीवानि नहृद्राजमाना य राजहमास्तैर्विराजित वारि यस्यास्तस्या वरदा-  
यास्तोरे कुण्डिन पुर वर्तते इति शेषः । एकत्र ब्राह्मणैरभ्यासितम् । क्लीङ्गिम् ।  
भाहुनिहनोपद्रवयवैः । तथा कृतकनुमि । तथा कोपग्रन्थे । निरुद्र प्रन्थविशेषो  
वाचनाभावश्च । सगमर्ग सदाचार श्रेष्ठाश्वा चः सकल सर्वं प्रायन्त इति  
सकलत्राः । ब्रह्म वेद चरन्ति जानन्त्यवश्यम् । 'ब्रह्मचारिभिरपि सकलत्र'  
इति पाठे ब्रह्मचारिभिर्निषिद्धकामैः । अनिर्घोनागान्भू, कुशाश्च लान्ति स्वी-  
कुर्वन्नि । मम वेद सान्द्र च । दण्ड नापादा दमन च । शतपथो  
यजुर्वेदमाग शतमन्त्र पन्थाश्च । एकमागैश्चानुमि । सर्वत्रापिर्विरोधार्ये ।  
स तु प्रतीयमानशयक्यया । पुनरप्येकत्र । वाग्भिरधिष्ठितम् । द्रोणो मान  
कौरवगुरुश्च । सूत्रादिमान गृहादाना तिर्यग्धारणस्तगमश्च सुला । अनुमेय  
कणादि तस्यानुमानमुद्देशज्ञानम् । पञ्चे अनुमीयते तदनुमेयम् । अनुमीय-  
तेऽनेन तदनुमानम् । यथाऽय वद्धिमान्धूमवत्त्रादिवत्र धूमोऽनुमानम् । वह्निर-  
नुमेय द्रव्यस्य रूप्यकादनुगुण सकलता तःकर्मविशेषविज्ञा । पञ्च द्रव्यानुगुणा-  
गुणकर्मविशेषा पदार्था । रूप टङ्करूपकादिनागक शब्दश्च । कपर्दो वराटो  
जटाबन्धश्च । एकत्र । कर्णादासीभिर्भरितम् । कुचयो रूपेण लोमितलोका ।  
शाश्वदग्मर्दाचासु कुस्तितेन चरुगा मामादिनोपलामितलोका । मग्नमुनिवृत्त-  
शीलानि । पञ्च मग्नयतिगणानि वृत्तानि यामु । यतिविरति । गणा मगागाद  
योऽष्टौ । वृत्त पद्यम् ॥ रजनो हरिद्रा निशा च । रागो वर्णान्तरारोपणमासक्तिश्च ।  
कर्णाट हि हरिद्रेवाङ्गराग । मुख जवने च षडला । आर्या साध्वी मात्रावृत्तभेदश्च  
तता नत्रयोग । अपिविराध । मुखजघनषडलाशब्दस्वार्थाषयाद्भववाचिवात् ।  
एकत्र । कुडालैः कुम्भकारैः कुस्तितलालया चाहीगम् । कुत्रैस्तरुमी राजितम् ।  
पञ्च कुमितत्राया जितम् । एकत्र । गृहश्रेण्या भूषितम् । प्रवर्धमाने सकलै  
कलावद्धि शिशुभिर्द्विमै शोभितया । तथा विन्यस्ता स्वस्तिका मौक्तिकादि  
चोदरविताम्रतुष्का यस्याम् । सर्वत इति मिष्टम् । भद्राणि वास्तुशास्त्रयानानि  
भूपण यस्याम् । यदि वा स्वस्तिकवर्धमानौ गृहावयवविशेषौ । पञ्चे शिशु सकल-  
स्वस्तिको वर्धमान सर्वतोभद्र इत्याख्यानि पञ्च पत्राणि । एकत्र देवकुलैः सकुलम् ।

पताका स्वज्जवास सैवाहो येषाम् । तथा सधिषु सगतानि । अविभाष्यसन्धी  
 निश्चयं । नाटकेषु तु मुख्यनायकोपरि उपनायकचरित पताका । अङ्ग प्रबन्ध-  
 विभाग । मुख प्रतिमुख-गर्भ अवमग्न निवर्हणाख्या पञ्च सधय । कूट शिरस्र कपट  
 च । सुधां लेपविज्ञेवमियति प्राप्नुवन्ति । पक्षे शोभना धारा येषाम् । विचित्ररत्नक  
 प्रकारै । न विगतचित्तै । न तुष्टा साम्य येषाम् । तथा तुलया धारणभ्रमभेन  
 सह । उभयत्रापि विरोधे । विनाल विस्तीर्णम् । व्यपेतशालम् । शाश्वता राजाद्याल्य ।  
 चत्वारश्चरणा क्रमेद्वादय । अपि चेति विरोधे । तथा रणेन युद्धेन रहितम् । विड  
 भिर्वैर्यै संकृतम् । न विष्टामि । चस्वर अतुष्यम् । प्रकृतिरमात्यादि । विरोधस्तु  
 चस्वरे चकारस्य ममुच्चयाधेस्य पूर्वपदेन शोभे ॥

उस दक्षिण देश के भीतर वैदर्भ भडल को अलकृत करने वाला कुण्डिन  
 नामक नगर है । वह उपद्रव रहित नगट इन्द्रपुरी से भी प्रतिस्पर्धा रखता है ।  
 खाइयो से घिरे हुए उत्कृष्ट एव मनोहर उपवनो से आलिंगित बहुत से गगन  
 धुम्बी भवनों के शिखरो के विस्तार ने सूर्य-रथ के घोडो के वेग को भंग कर  
 दिया है । जहाँ के ब्राह्मणो ने एक जगह अग्निहोत्र मन्त्र की पवित्र आहुति से  
 स्वर्ग, अक्षरिण तथा पृथ्वी ( भीम ) सबधी उत्पात समूह को नष्ट कर लिया  
 है । मय्यु ( क्रोध ) करके भी मय्यु ( क्रोध सूय ) हैं । विरोध । मय्यु ( यनो )  
 को किए हैं मय्यु ( क्रोध ) से सूय है । परिहार सूक्तो को बोलते हैं फिर भी  
 निरुक्त ( न बोलने ) में तत्पर हैं । विरोध । सूक्तो ( पुरुषसूक्त श्रीसूक्त आदि  
 स्तोत्रो ) का पारायण करते हैं तथा निरुक्त शास्त्र के अध्ययन म तत्पर हैं ।  
 परिहार । समामं ( सुन्दर मार्ग ) पर ठहरे हैं फिर भी घर मे बैठ हैं ।  
 विरोध । स मार्गस्थ ( सदाचार का पालन करते हुए ) गृहस्थ है । सकलत्र  
 ( स्त्री के साथ ) है फिर भी ब्रह्मचारी हैं । विरोध । सकलत्र ( सभी लोगो के  
 प्राण ( रक्षा ) करने वाले ) ब्रह्मचारी ( ब्रह्मविद्या के उपासक ) हैं । तिथि  
 ( पठचाङ्ग ) विद्या का पर्याप्त अभ्यास किये हैं फिर भी अतिथि कुशल ( तिथि  
 विद्या मे निपुण नहीं ) हैं । विरोध । अतिथि सेवा मे कुशल है । परिहार । साम  
 ( पाठ ) प्रयोग मे निपुण है फिर भी दमन भीति का अकल्प्यन लेने वाले हैं ।  
 विरोध । सामवेद का गान करते हैं तथा पत्रागदण्ड धारण करते हैं । शतपथ  
 ( सैंकडो मार्गो ) का अनुसरण करते हैं फिर भी एक ही रास्ते से चलने वाले  
 हैं । विरोध । शतपथ ब्राह्मण शप के अनुसार आचरण करते हैं तथा एक  
 मार्ग ( नीति ) से चलने वाले ब्राह्मणो से सनायित हैं । कीरव जैसे द्रोण  
 ( द्रोणाचार्य ) पुस्तक य वैसे ( वे ब्राह्मण ) भी द्रोण ( मनस्विता ) से युक्त हैं ।  
 प्रासाद ( महल ) जैसे तुलाधारी ( तिरछे स्तम्भ को धारण करता है ) वैसे  
 वहाँ के बनिये लोग तुला ( तराजू ) धारण करते हैं । नैयायिक जैसे अनुमेय  
 और अनुमान ज्ञान म पटु है । वैसे वे ( बनिये ) भी अनुमेय ( वस्तुओं के

उद्देश्य, फल, भाव आदि का ज्ञान करने में निपुण हैं। वैशेषिक दर्शन के जानकर लोग जैसे द्रव्य, गुण, कर्म विशेष आदि तत्त्वों के विशेषज्ञ होते हैं जैसे द्रव्य (सूत्र) के अनुकूल (कर्मविशेष व्यापार) के जानकार होते हैं। व्याकरण जैसे रूपसिद्धि (शब्दसाधन) की मुख्यता देते हैं जैसे वे भी रूपसिद्धि (मुद्रा स्वर्ण आदि) के साधन में लगे रहते हैं। रत्न जैसे अनेक गाँठों को देकर अपनी कपडक (जटा) बाँधते हैं जैसे वे भी अनेक गठरियो में कपडक (कीठी) बाँधे हुए हैं। अनेक बलिये लोग से वह स्थान सनायित है। धूर्त वाममार्गी शाक्तों की दम्भ (अहंकार) भरी दीक्षा में कुचक (मास आदि में पूर्णपात्र) द्वारा जैसे लोग लोभिन (आकृष्ट) कर लिए जाते हैं जैसे अपने कुञ्ज-रूप (एतन सौन्दर्य) में जन सामान्य को लुब्ध कर देने वाली, असमर्थ कवि की काव्यशैली जैसे यतिगण तथा छन्दोभङ्ग आदि दोष में युक्त होती है जैसे यतिगण वृत्त (मुनि समूह) के शील को भंग कर देने वाली रजनि रागिणी (रात में ही रागिणी) होती है जैसे वे भी रजनी (हन्दी) में रागिणी (अङ्गराग लगाने वाली) मुख्य तथा अधन से चंचल अनार्य कर्णाटदासियो से कहीं सनायित है। बालक जैसे कु (खराब) लाल (लार) में युक्त होते हैं जैसे वह (नगर) भी कुञ्जाल (कुम्हारों) में व्याप्त है। बुद्धापा जैसे कु (खराब) जरा (जीर्णता-दुर्बलता) में आक्रान्त रहती है जैसे वह (नगर) भी कुञ्ज (बुद्धों) से अलङ्कृत है। जैसे चित्र विद्या जैसे बहुत से उदात्तमान शिशुओं से सुशोभित, स्वम्निक चिह्न विधान की विधि में युक्त सर्वतोभद्र वेदिका निर्माण विधि से अलङ्कृत रहती है जैसे उस (नगर) की भवनपंक्ति भविष्यु शिशुओं से सुशोभित है, मोती आदि के चूर्ण से चारों ओर स्वस्तिक चिह्न बने हैं। भद्र (वान्नु शास्त्र में प्रसिद्ध) भूषण से भूषित हैं। नाटक जैसे पताका, अङ्क और सन्धियों से युक्त होते हैं जैसे वह (नगर) भी पताका (झंडा) रूप अङ्क (चिह्न) तथा सन्धियों से युक्त दुष्ट किरात (व्याध, शबर) जैसे कूटकर्म (कपट व्यापार) को देखे रहते हैं उसी तरह वे (मन्दिर) भी अपने कूट (शिखर) से कर्मों को देखे हुए हैं। शस्त्र जैसे सुधार सुन्दर धार वाले होते हैं जैसे वे (मन्दिर) भी सुधार (चूने में लिप्त) हैं अथवा सबका सुधार करने वाले हैं (अर्थात्शस्त्र) विचित्र (विगत चित्र) हैं फिर भी सचित्र (चित्रयुक्त) हैं। विरोध। विचित्र (अनेक) प्रकार के चित्रों से युक्त हैं। परिहार। तुदा युक्त हैं फिर भी तुलायुक्त नहीं है। विरोध। तुला (स्तंभ) युक्त हैं तथा अनुल (अनुलनीय) हैं। परिहार। इस तरह के देव कुलों (मन्दिरों) से वह नगर सकीर्ण हो गया है। विशाल (हाथी आदि की रहने की जगह) नहीं है फिर भी शाल (हाथी आदि की रहने की जगह) में सम्पन्न है। विरोध। विशाल (बहुत बड़ा)

तथा शाला (अश्वशाला हस्तिशाला आदि) से सम्पन्न है। परि चार चरण वाले पदार्थ से युक्त है फिर चरण रहित है। वि०। चतुश्चरण (श्रुग्वेद आदि वेदो) से युक्त है और (च) रण (लडाई) के बातावरण से रहित है। परि०। विट् (विधा) से भरा है फिर भी शुचि (पवित्र) मार्ग वाला है। वि०। विट् (वैश्यो) से भरा है और पवित्र मार्ग वाला है। परि०। सब जगह (च) त्वराधिकता (जल्दीबाजी) है फिर भी स्थिरप्रकृति (स्थिर स्वभाव वाला) है। वि०। सब जगह चत्वराधिकता (चौराहो की अधिकता) है और स्थिर प्रकृति (मन्त्री आदिराज्य प्रकृति स्वयंसम्पन्न) है। परि०। स्नान करती हुई महाराष्ट्र की सुन्दरियो के मुख मण्डल के प्रतिबिम्ब से जिसमे, खिले हुए कमल की शोभा उत्पन्न की जा रही है, ऊँची लहरियो ओर पूर्ण विकसित अर्जुन (सफेद) कमलो तथा सुन्दर हंसो से जिसका जल सुन्दर लग रहा है, ऐसी वरदा नदी के तट पर रमणीय रसो का पात्र कुण्डिन नाम का नगर है ॥

यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लवाऽऽप्लवनजनितपातक-  
भङ्गां गङ्गामुपहसन्ती स्वर्गमार्गाश्रयनिश्रेणो पुण्यपयाः पयोष्णी  
बहति ॥

यस्येति ॥ यस्य (पुरस्य)। नातिदूरे (निकटे)। गङ्गा स्नानासुप्यहेतु।  
पयाष्णी तु दर्शनादपीरयस्या विशेष ॥

जिसके थोड़ी पर दर्शन से ही पाप समूह को दूर कर देने वाली, स्नान मे पापो को क्षुणित कर देने वाली गङ्गा का उपहास करती हुई स्वर्गमार्ग की सीढ़ी पयोष्णी नाम की नदी बहती है ॥

यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरोचिचञ्चरीक-  
चक्रसुम्बितचरणाम्भोजस्य भोजकटकूपजन्मनो जरापातितयवातेः  
प्रचण्डदण्डदाण्डिन्यदण्डनाडम्यरितगण्डपापाणचिदलितवैदर्भमण्ड-  
लस्य भगवतो भार्गवस्याश्रमः ॥

यस्य चेति ॥ भार्गव शुक्र। भोजकटकूपेति अधिष्ठाननाम। तत्र जन्मा  
स्येति। तथा च युति—'शुक्रो भोजकटेऽभवत्'। कूपादिप्रसिद्धया हि अधिष्ठान  
नामानि हरयन्ते। तथा च महदेशे शिवकूप किराटकूपो जाङ्गलकूप इत्याद्यधिष्ठान  
नामानि। वृषपर्वदैत्यसुतां शर्मिष्ठां शुक्रसुतां देवयानीं च ययातिनृपतिरुपयेमे।  
ततोऽसौ शर्मिष्ठाप्रीत्या देवयानीमवज्ञानन् 'तवाङ्गे जरा पततु' इति शुक्रेण शप्त।  
तथा दण्डकथो नाम भोजकटदेशाधिपः शुक्रसुतामरजसशां चप्रिय किल हटाद्-  
द्विजकन्यां परिणीतवान्। इति परिभूतमन्येन शुक्रेण मन्थुना पातालशैलगण्ड-  
शुष्टिना स वैर्भूमण्डलो हत ॥



इसके पश्चिम द्वार भवान् भाग्यं का वाग्रम है, त्रिनके चरण कमल पर ( देवताओं और दानकों के गिर पर लगी हुई नीलमनिर्घान्ति भ्रमरी का पुञ्ज मून रहा है, नोत्रकट दश म उत्पन्न हान बाल ययाति राजा के ऊपर बुढ़ापा का चिन्होंने हृद्यन् गिरा दिया है, बगुन प्रचण्ड धासन करन वाले दाग्धिव्य राजा को दण्ड देने के लिय पाताल पदंतों की चाटियों की बर्षा कर वैदर्भ दश का चिन्होंने नष्ट कर दिया है ) ॥

[ राजा ययाति वृषपर्व नामक दैत्य की लडकी धर्मिष्ठा और भाग्यं ( गुरुचार्य ) की लडकी दवयानी से विवाह किया था । ययाति का प्रेम धर्मिष्ठा के साथ अधिक था । इस प्रसंग म कभी-कभी अपमान भी हा जाता था । गुरुचार्य अपनी लडकी का अपमान देखकर ययाति को शाप दे दिय "बाओ तुम्हारे ऊपर बुढ़ापा का आक्रमण हो जाय । ]

मात्रकट दश के राजा दाग्धिव्य अरवा नाम की गुरुचार्य की लडकी से बगान् विवाह कर लिया । गुरुचार्य इस अपमान को न सह सके । जत उन्होंने पदंत शशुओं की बर्षा कर उत्पन्न दश का नष्ट कर दिया ॥

यत्र च विपत्त्राः सन्ति सायसो न तु तरय, त्रिजुम्ममाक्मलानि सरासि न जनमनामि, कुञ्जपालंकारा श्रीडादीर्घिना न सोमन्तिन्यः, विपदाकाम्भानि सरित्कूलानि न कुलानि ॥

पत्रि । विरदशयन्त इति विपत्त्रा सन्त न दृष्टा विपत्ता । एव विकल्पकमलानि । न तु कर्मिणो त्रिजुम्ममाक्म प्रयत्नमल पाप यत्वित्रि । यद्विष्णु— 'मल कित्ते पुराणि च पापे च कृष्णे मल ।' कवलयं मरोद्ध कुमितवलय च । बीना पदैराकाम्भानि कूलानि । कूलानि तु न विपदा विपत्ता ॥

जहाँ शशु लोग विपत्त्र ( विपत्ति म जग करन वाले ) हैं, पड दिवन्त ( पत्रहीन ) नहीं हैं । मरादरों में कमल विकम्बित ( विकम्बित ) हो रहे हैं, किमी मानव के मन में क ( कृत्तित ) मल का विकास होने नहीं पाता । श्रीडासरो = शब्दर कुञ्ज ( कमल ) हैं, सोनाम्बवती स्त्रियों का अण्डर कु ( कृत्तित ) दण्ड ( मल ) नहीं है । वि + पत् ( पत्तियों के चरणों ) से आश्रित नदियों के तट हैं, किमी का कुञ्ज विपत् ( आपत्ति ) से आश्रित नहीं है ॥

त्रि बुद्धना—

देशानां दक्षिणी देशस्तत्र वेदर्भमण्डलम् ।

तथापि वरदातीरमण्डल कुण्डिनं पुरम् ॥ २८ ॥

देशों में ( महान् ) दक्षिण दश, उसमें भी ( रमणीयतम ) वेदर्भ ( वरदा ) उसमें भी वरदा तीर को अण्डित करन वाला कुण्डिन नाम का नगर है ॥ २८ ॥

तत्रास्ति समस्तरिपुपक्षक्षोदक्षक्षिणक्षोणीपालमौलिमणिस्य-  
निकपनिर्मलितचरणनखदर्पणश्चतुरुदधिपुलिनचक्रवालवालुकासंख्य  
संख्यधिरयातकीर्तनीयकीर्तिसुधाधवलितव सुंधरावल्यो निजभुजपञ्ज-  
रान्तरनिरुद्धशारिकायमाणरणरङ्गाङ्गणार्जितोर्जितजयश्री, यौवनमदम-  
त्तकान्तकुन्तलविलासिनीनयननीलोत्पलदलमालाच्यमानलावण्यपुण्य-  
प्रतिम, रविरिव नासत्यजनक, पुरंदर इव नाकविख्यात, गरुमानि-  
च नागमाधिक्षेपी, पद्मखण्ड इव नालसहित, व्याकरणप्रबन्ध इव  
नामसंपन्न, धाम धाम्नाम्, आधारो धीरताया, पुरं पुरुषकारस्य,  
आश्रय श्रेयसा, श्रिया श्रुतीनां च, राजा रणाङ्गणेष्वागणितभी  
भीमो नाम ॥

तत्रेति ॥ तत्र कुण्डिने रिपुपक्षोद्प्रवीणानामप्यनुकूलानां राज्ञां मौलिमणिनिक-  
पनिर्माजितनखादर्श । तथा चतुरुदधिद्वीपपुञ्जवालुकावदसत्यमख्येष्वनेकरणेपु  
विख्यातकीर्त्यैव सुधया श्रुधितभूमण्डल । तथा जयश्री सारिकोपमा यस्य ।  
एवविधो भीमो नाम राजास्ति ॥ कुन्तलस्य देशविशेषस्य विलासिन्य लावण्यमेव  
पुण्यप्रतिमा । रविरिवेति । सर्वत्र नेति भिन्नम् । असत्यवक्ता न । अकविपु कुकविपु  
न प्रतीत । भागमान्शास्त्राणि न तिरस्करोति । अलसेभ्यो हित । आलेनानर्थेन  
सहितो वा न । आमेन रोगेण न युक्त । पद्मे नासत्ययोर्देववैद्ययोर्जनक पिता ।  
नाक स्वर्ग नागानां सर्पाणां मां लक्ष्मीमधिपतिं लुम्पति । नाल काण्डम् । नाम  
प्रातिपदिकम् ॥

वहाँ भीम नाम का राजा है उसके पदनख समस्त शत्रु पक्ष को नष्ट कर  
देने में प्रवीण एवम् उदार दक्षिण नरपतियों के मणिनिकप स्वरूप शिर से  
दर्पण की तरह निर्मल बना दिये गये हैं, चारों समुद्र के तट मडल पर छोटे  
छोटे बालुओं के कण की तरह असंख्य, प्रसिद्ध एव वर्णनीय कीर्ति सुधा से उसने  
पृथ्वी मण्डल को स्वच्छ कर दिया है । रणाङ्गण के रङ्गमञ्च पर उद्दीप्त  
विजयलक्ष्मी को जीतकर अपने बाहुदण्ड रूप विजडे में शारिका की तरह पकड़  
कर रक्ता है । यौवन से मदमाती कुन्तल देश की मनोहर रमणियों के नयन  
रूप नीलकमलों की माला से उसकी सौन्दर्यमयी पवित्र मूर्ति पूजित ही रही  
है । रवि जैसे नासत्य जनक ( अरिबनीकुमार के जनक ) हैं वैसे राजा भी  
नासत्यजनक ( असत्य का जनक नहीं ) है । पुर दर ( इन्द्र ) जैसे नाक ( स्वर्ग )  
में विख्यात हैं वैसे वह भी न + अकवि ( साधारण कवियों में नहीं ) रूपात  
( प्रसिद्ध ) है । पद्म जैसे नाग + की ( सर्पों की लक्ष्मी ) को समाप्त कर देता  
है वैसे राजा भी आगम ( वेदो ) का अधिशेष ( निन्दा ) नहीं करता है । पद्म  
खण्ड जैसे नालसहित ( कमलदण्ड से युक्त ) है वैसे वह भी न अलसहित

(आलसी आदमियों का हितकर नहीं) है। व्याकरणशास्त्र जैसे नाम सम्पन्न (प्रातिपदिकों से युक्त) है वैसे वह भी न + आम + सम्पन्न (रोग से सम्पन्न नहीं) है। तेजों में एक विशिष्ट तेज है। धैर्य का आधार है। बीरता पूर्ण कार्यों में अग्री है। मङ्गलो, सम्पत्तियों और श्रुतियों का आधार है। युद्ध के मैदान में असंख्यों में भय उत्पन्न कर देता है ॥

यस्यानवरतमुत्कृष्टालयः क्रीडावनपादपा पौरलोकश्च, अपरुषो द्रायादा धान्विभवश्च, विमत्सरा सभासदो देशश्च, विकसद्रुचयोऽङ्गावयवा. क्रीडापर्वतश्च अपराजयो मण्डनमणयः सेनासमूहश्च, अगत-रुजो वने विनाशमन्वभवन्नितान्तं रिषवः पुष्पप्रकरश्च ॥

उत्प्रेति ॥ अत्र बहुवचैकस्वरूपे ॥ उत्प्रावक्ष्येन । अर्थात्सौरभजनितेन वृष्टा खानीता अल्यो मै । तयोन्मानस्य राज संवन्धिनः क्रीडार्थं वनवृष्टा । जनस्तु उत्कृष्ट आलयो गृहं यस्य । अपगना स्तु येम्य । पञ्चे परपदादस्य मन्वात्पुन्ये अरुचः स्मिन् इत्यर्थः । विगतो मत्परो योग्य एकत्वे तु विमन्ति पण्डियुक्तानि सरामि पस्मिन् । विकसन्ती दधिः कान्तिर्येषु । अन्वन्न दुर्वृद्धस्तस्य चय । अपगता राज्ञि संधिर्येभ्यः । पञ्चे न पराजीयत इत्यच् । अगतरुजोऽगतपीडा शत्रवः । इमं प्राप्नोऽन्तो भरणं यत्र यथाभूतं विशिष्ट नाश नशन मयाद्दर्शनं वनेऽनुमू-वन्तः । इणः के 'इत' इति रूपम् । पुष्पप्रकरस्तु पर्वतवृष्टा वने नितान्त मृशं प्रन्वममनुषमूव । अन्वनुमवन्नितान्तमिति ह्यस्तन्या बहुवचैकत्वयो ॥

उसके उपवन के वृक्ष (अपने सौरभ में) अलियों (भ्रमरों) की खींच लिये हैं और उसके प्रवा लोभ उत्कृष्ट आलय (भवनों) से सम्पन्न हैं। द्रायाद भी वहाँ अपरुष (प्रेमपूर्वक) रहने हैं और वाणी भी अपरुष मधुर है। सभा के सदस्य लो विमत्सर (मानस्य रहित) हैं और उसका देश भी विमत्सर (मण्डलियों में युक्त सरावरो से सम्पन्न) है। अङ्गावयव विकसद्रुचय (छिटकती हुई कान्ति समूह में युक्त) हैं और श्रीशौक भी विकसद् + द्रु + चय (खिलती हुई वृक्ष पत्तियों से सम्पन्न) है। अरुद्धारों के मणि अपराजय (जोड़ से हीन) हैं। अरुद्धारों में खण्डित मणियों का योग नहीं है। सेनासमूह भी अपराजय (पराजय प्राप्त करने वाला नहीं) है। अगत रुज (पीडा सम्पन्न) वृष्टु वन में विनाश का अनुभव किये हैं और अगत रुज (कान्ति युक्त) फूलों का वर्ग भी वन में पर्याप्त विनाश का अनुभव किया है ॥

तस्य च कन्दर्पकमनीयकान्तेर्मत्ताः करिणः सदामानो न मानिनी-लोकः, कृतचिदपानमनाः क्रीडोद्यानतरवो नाचरोधजनः, कटकालं कृत-दोषः सीमन्तिन्यो न परिपन्थिकः ॥

तस्य चेति । सह दाम्ना अर्गलेन । पक्षे सदा मानो सर्वो यस्य । विटपानां  
विस्ताराणामानमन कृत तद्यै । अन्यत्र कृत विटानां पाने सुम्बने मनो येन ।  
कटकैर्बलयैरलकृतौ दोषौ बाहू यासाम् । परिपन्थी तु न रुक्न्धाचारैऽलमत्यर्थं  
कृनोपद्रव ॥

कामदेव की तरह मुन्दर कान्ति वाले उस राजा के हाथी सदाभान ( अर्गला  
बन्धन मे युक्त ) है विन्तु मानिनी लोक ( नारीजन ) सदा + मान ( हमेशा  
मान सम्पन्न ) नहीं रहता । विहारवन के वृक्ष कृतविटपानमन ( अपनी  
शाखाओ से नपे हुए ) हैं । अन्त पुरकी स्त्रियाँ विट + पान + मन ( धूतों के  
धुम्बन में मन लगायी हुई ) नहीं हैं । सौभाग्यवती स्त्रियो के हाथ बलयो से  
अलकृत हैं । कोई परिपन्थी ( विरोधी ) आदमी कटक ( सेना ) मे पर्याप्त  
उपद्रव न कर सका है ॥ नारियों मे शृङ्गार उत्पन्न करता है बरियो मे नहीं ॥

यस्य च चरणाभ्योजयुगलं विमलीक्रियते नमज्जनेन न मज्जनेन ॥

यः शृङ्गारं जनयति नारीणां नारीणाम् ॥

यः करोत्याद्रितस्य नयं धनं न बन्धनम् ॥

यो गुणेषु रज्यते न रमणीनां नरमणीनाम् ॥

यस्य चेति ॥ नमता जनेन न शालनेन । एतेन जनानुरागतपत्तिः । एवमप्रे-  
ष्युत्तरपदेषु नमसंबन्ध ॥

यस्य च नमस्याप्रहारेषु श्रूयते नलोपाख्यानं न लोपाख्यानम् ॥

यस्य चेति ॥ नलम्योपाख्यान भारतप्रतीकम् । नमस्याना पृथ्वानां देवद्विजा-  
दीनां ग्रामेषु लोपकथा नैव ॥

अपने आप्रितो को नवधन ( नवीन धन ) देता है, बन्धन नहीं देता ॥

नरमणियो ( उत्तम पुरुषो ) के गुणो मे अनुरक्त रहता है रमणियो मे नहीं ॥

पूज्य लोगो के यहाँ नल का ही आख्यान ( वृत्तान्त ) सुना जाता है । किसी  
अच्छी कहानी के लोप का वृत्तान्त नहीं सुना जाता ॥

यस्य च राज्ये साक्षरस्य पुस्तकस्य बन्धः, सगुणस्य कार्मुकस्या-  
कर्षणम् , सुवंशप्रभवस्य च्छप्रस्य दण्डः, सुजातेरुद्यानविशेषस्योत्स-  
ननम् , कुलीनस्य फन्दस्योन्मूलनारम्भः, सन्मार्गलग्नस्य पुनर्वसुभा-  
जश्चन्द्रस्यैव ग्रहणालोकनमभूत् ॥

यस्य चेति ॥ साक्षरः लिखिताक्षर अधस्ताक्षरश्च । गुणो ज्या शौर्यादिश्च  
आकर्षणं 'कर्णान्तिप्रापणम् आक्षेपश्च । वंशो वेणुरन्वयश्च । दण्डो यद्विदंभनं  
च । जातिर्मालिनी विप्रादिश्च । उरन्वनन पृथपुष्टय आहवालमारुवायोर्दृष्टं  
एतन्नं मोर्दनमिति प्रतीकम् । पक्ष उर्येदनम् । कुलीन इति द्विती हीनोऽभिजा-  
तश्च । सद्ब्रह्मज्ञान शृंगस्येदं मार्गम् । लघ्नं मर्क संयोगो यस्य । पुनर्वसु नक्षत्रम् ।

ग्रहणं शङ्खयोगः । पश्ये मन्मार्गः सदाचारः । पुनरिति भिन्नम् । वसुमापनी ।  
ग्रहणं धारणम् । सञ्चिप्यताञ्चिनो मार्गः । अर्थात्तम इति वा । स्यात्सामगतिर्यथा ।  
साधरस्य वर्गोपिनस्य पुस्तकस्यैव बन्धनं न जनस्तेति ॥

जिसके राग्य में सागर ( अञ्जरयुक्त ) पुस्तको को बाँधा जाता है, और  
किसी की बन्धन में नहीं बाँधा जाता । मुग ( मोर्षी ) युक्त धनुष् कौटि को ही  
( कानो तक ) खींचा जाता है, किसी गुनी व्यक्ति को नहीं खींचा ( घसीटा )  
जाना । मुन्दर बास से निकले हुए ( बाँस ) का छत्र दण्ड बनाया जाता है,  
किसी मुन्दर कुल में उत्पन्न व्यक्ति को दण्ड नहीं किया जाता । मुजाति ( नापती  
आदि ) पुत्रों के ( पीधों ) को पुत्र करने के लिये उसके मूत्र के पास की मिट्टी  
का खनन किया जाता है, किसी सुन्दर जाति में उत्पन्न व्यक्ति का खनन नहीं  
किया जाता । हु ( पृथ्वी ) में नील कन्द को उखाड़ने के लिये पत्त किया जाता  
है, किसी कुशीन व्यक्ति को बड़ से उखाड़ने का यत्न नहीं किया जाता ।  
मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्र से संयुक्त चन्द्र पर ही ग्रहण देखा गया है, किसी  
सञ्जन धनी को अर्धचन्द्र नहीं लगाया जाता ॥

किं बहुना—

देवो दक्षिणादिदुस्रस्य तिलरुः कर्णाटकान्ताकुच-

क्रांडाशौलमृगः प्रतापकदलीकन्दः स किं चर्ष्यते ।

यस्यारात्रिकरीन्द्रकुम्भरुधिरक्लिग्नासिद्धं द्राक्षुरा-

शौर्यधीर्मुजदण्डमण्डपतले सिद्धीव विभ्रान्यति ॥ २९ ॥

और अधिक क्या कहें—

( रात्रा भीम ) दक्षिण दिशा का मुख निष्क है । कर्णाटकदेश की (रमणियो  
के कुच रूप श्रीशारैकी का मृग है ) प्रताप कदली का मूत्र है । अधिक क्या कहें,  
उसकी शौर्यधनी रूप सिद्धी उसके मुत्र मण्ड के नीचे उषु रूप गजेन्द्र के  
कुम्भस्थल के रक्त में तज्वार रूप दाँतों को धारं कर विभ्राम कर रही हैं ॥

[ सिद्धी जैसे किसी गजेन्द्र की मारकर खून से अपने दाँतों को लपपय कर  
पेड़ के नीचे विभ्राम करती है उसी तरह भीम की शौर्यधनी उसकी मुत्रा  
में शत्रुओं को मार कर तज्वार रूप दाँतों को रक्त रञ्जित कर विभ्राम कर  
रही है ॥ २९ ॥ ]

तस्य च महामहीपत्रैरात्मरूपापदसितसमस्तसुरमुन्दरीसौन्दर्य-  
सारसंपत्तिफलकुलकन्दलोकंदर्पदर्पगजेन्द्रायष्टमस्तन्मयधिरखिलज-  
ननयनकुरङ्गवागुरा रामणीयरूपनारुयमानोद्भिन्ननवयौवनधीः, शृ-  
ङ्गारस्यागारम्, अथनिर्बनिताविभ्रमाङ्कुराणाम्, आभोगः सौमा-

ग्यभागस्य, रङ्गशाला रागवृत्तनृत्तस्य, सर्वान्त पुरपुरंधिकाप्रधानभूता  
ऽस्ति प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नाम ॥

तस्येति ॥ भीमस्य प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नामास्ति ॥

उस महाराज ( भीम ) की प्रिया का नाम प्रियङ्गुमञ्जरी है जिन्होंने अपने  
सौन्दर्य से समस्त देव रमणियों के सौन्दर्य रूपी उत्तम सपत्ति को तिरस्कृत कर  
दिया है । ( देवागनाओं के रूपापहास रूप ) बलरु सग्रह के मूल से निकले हुए  
अङ्कुर का कदली स्तम्भ है ।

कामदेव रूपी मतवाले हाथी को रोक रखने के लिए स्तम्भ दण्ड है ।  
समस्त मानव-नयन रूपी मृगों के लिए बन्धन-जाल है । उनही खिली हुई  
योग्य लक्ष्मी सुन्दर पताका की तरह ( सर्वोप्य ) है । वह शृङ्गार का भवन  
है । रमणी सुलभ विभ्रमाङ्कुरी की भूमि है । सोभाग्य के अक्ष का विशाल  
रूप है । प्रेमात्मक नृत्य की रङ्गभूमि है । अन्त पुर की सभी कुलागनाओं में  
प्रधान है ॥

यस्या पद्मानुकारिणी कान्तिर्लोचने च, रम्भाप्रतिस्पर्धिनी रूपसंप  
त्तिरुद्यमण्डले च, सुमनोहारिणी केशकवरी भ्रूमगचक्रे च, भ्रमरको  
ञ्जासिनी ललाटपट्टिका कर्णोत्पले च, प्रवालुकाकारिणी दन्तच्छद  
च्छाया करचरणयुगले च ॥

यस्या इति ॥ अत्र प्रथमैकारवद्विश्वयो स्त्रीस्त्रीवयोश्च श्लेष । सर्वत्र नान्तरत्वात् ।  
पद्मा श्री पद्ममन्त्रम् । रम्भा अप्मरोन्तर कदली च । सुमनस पुष्पाणि । पद्मे  
सुशब्देन समास । भ्रमरक ललाटस्थमलक शृङ्गश्च प्रवालो विद्रुम पञ्चवधश्च ॥

जिसकी कांति तथा लोचन दोनों कमल की तरह हैं । रूप सपत्ति रम्भा  
( स्वर्गीय अप्सरा ) से स्पर्धा करती है तथा ऊँच ( जधा ) मण्डल रम्भा  
( केली ) में स्पर्धा रखते हैं । केशों की वेणी सुमनोहारिणी ( फूलों से प्रथित )  
है, भौहों की भंगिमा भी सुमनोहारिणी ( मनोहर ) है । ललाटभ्रमरक ( बालों )  
से सुशोभित हैं । कानों में लगे हुए कमलभ्रमरो से सुशोभित हैं । प्रवाल  
( मूर्तियों ) की तरह दन्तकांति है । हाथ-पैर भी प्रवाल ( किसलय पत्र ) की  
तरह हैं ॥

यस्या. सुधर्णमयं वचन नूपुरं च पदे पदे मनो हरति ॥

यस्या सुमधुरया वाचा सदृशी शोभते कण्ठे कुसुममालिका ।  
अलिकालयाऽप्यलकनहरोमालया सह विराजते तिलम्भञ्जरी ॥

यस्या इति ॥ सुष्ठु वर्णोऽकारादि सुवर्णं च । तेन निर्वृत्त पदं प्रकृतिविभक्ति  
ममुदाय पादन्धासश्च ॥

यस्या इति ॥ अत्र तृतीयाप्रथमयो श्लेष । सुष्ठु मधुनो मकरन्दस्य रथ

प्रसरो यत्र । अलिकं ललाटमालय स्थानमस्याः सा तिलकमेव मञ्जरीति रूप-  
कम् । तृतीयापदे अलिकाकालो वर्गो यस्याः । यदा त्वलिकाकालेति क्रियते तदा  
दीप् प्रमज्ज्येत ॥

त्रिनका सुवर्णमय ( सुन्दर वाणी से संयुक्त ) वचन तथा सुवर्णमय ( सुवर्ण  
मे बना हुआ ) नूपुर ( चरणभूषण ) प्रत्येक पद पर मन का हरण करता है ॥

जिसकी सुमधुर वाणी की तरह सु-मधुर-रया ( सुन्दर पराग राशि वाली )  
पुष्पमालिका कण्ठ में सुशोभित होनी है । अलिक ( ललाट ) ही है बालय ( चर )  
त्रिनका वह तिलक रूप मञ्जरी अलिकाकाली ( बालरूपी लता ) के साथ अच्छी  
लगती है । अपश्वा—अलियो ( भ्रमरो ) का आश्रय तिलक ( वृक्ष ) की मञ्जरी  
अलक ( केशों ) की बहरी ( बेगी ) के साथ सुशोभित हो रही है ॥ २९ ॥

किं बहुना—

तस्याः कान्तिनिरुद्धमुग्धहरिणीलीलाचलञ्चक्षुप-

स्तारुण्यस्य भरादनालमलसद्भावण्यलक्ष्मीरसः ।

लुभ्यद्भोक्विलोचनाञ्जलिपुटैः पेपीयमानोऽपि म-

घ्नद्भेष्येव न माति सुन्दरतरो रद्वंस्तरङ्गैरिव ॥ ३० ॥

तस्या इति ॥ का ममनादृशम आलस । पश्चाच्छ्रयोग । तस्या लावण्यलक्ष्मी-  
रसं सुन्दरातरश्यातर तरङ्गै रङ्गविलम्बशिव । रसो हि भरादजिह्वो लसति  
तरङ्गैश्च रङ्गनि ॥ ३० ॥

अपने सौन्दर्य में पूर्ण मुग्ध हरिणी के विद्यासकालीन वचन नेत्रों की तरह  
नेत्रवाली उस नायिका के सौन्दर्य को पूर्णता तथा आलस्यहीनता से सौन्दर्य  
लक्ष्मी का रस उल्लसित हो रहा है । सस्पृह लीन अपनी नयनाञ्जलि से उस  
रस को बार-बार पीते हैं फिर भी वह अतिशय सुन्दर ( सौन्दर्य ) रस उसके  
शरीर में सदा तरंगित होना हुआ जगो में अँटना-सा नहीं है ॥ ३० ॥

पंचमनयोः सकलसंसारमुखरसान्वाद्मुदितमनसोऽप्यन्ति दिवसाः ॥ .

इस तरह संपूर्ण संसार मुक्त के रसास्वादन से प्रसन्न चित्त वाले इन  
दोनों के दिन ( सङ्कष्ट ) बीत रहे हैं ॥

कदाचिच्चटुलतरतरुणपट्टश्चरपचक्रुश्चुम्बनाक्रमणभरमज्यमानमञ्ज-  
रीजालगलदमन्दमकरन्दविन्दुर्दमितेषु विविधाङ्गविहङ्गविहारविद-  
लितदलदन्तुरान्तरालेषु स्मरदन्धुसुगन्धिगन्धवाहवाजिवाहालीषु  
घरदायाः पुण्यपुलिनपालिपादपतलेषु रममाणयोः परिणतेन्द्रवारुणा-  
रणकपोलकान्तिरुद्घुपिनदेहपिण्डकण्डयनाकूनतरलितकरकिसलयया  
बालकमेकमुदरदेशलज्जमपरमपि पृष्ठप्रतिष्ठितमुद्गहन्ती कापि कपि-  
कुटुम्बिनी दृष्टियमवानरत् ॥

- करेति ॥ मधुविन्दुकर्दमवासु । पर्णदन्तुरमभ्येषु । सुगन्धितम्बवाह एव बाजी  
तस्य बाह्यालिप्रायेषु । धरदातरुतलेषु क्रीडतोरमुयोः कपिपत्नी इन्द्रवारुणीफल-  
पिङ्गगण्डकान्तिर्धानरी नयनपथं गता दृष्टेर्यथं ॥

किसी समय अत्यन्त चञ्चल युवक भ्रमरो ने मञ्जरियो के घुम्बन के लिए  
आक्रमण किया । पराग-कोष को भग्न कर दिया । उससे ( मञ्जरी ) से  
ओरो से पराग बिन्दु की धारा निकली और ( वरदा नदी के तट प्रदेश के  
पेड़ो को ) पकिल बना दिया । विभिन्न बड़ो से विहङ्गो ने विहार किया ।  
इस लिए उनका कोई एक देश दन्तुर ( ऊँचा-नीचा ) हो गया । कामदेव के  
साथी सुगन्धित वायु रूप घोड़ो के लिए बाह्याली ( विधाम गृह रूप ) धरदा  
नदी के पवित्र तट पक्ति के पेड़ो के नीचे विहार करते हुए दम्पती की दृष्टि में  
एक पके हुए इन्द्रवारुणी फल की तरह लाल कपोल कान्ति वाली चमकीली  
बेह को झुजलाने की उत्कण्ठा से नवीन पत्र जैसे चञ्चल हाथो वाली एक  
बच्चे को पेट में सटाई हुई तथा दूसरे को पीठ पर रख कर बोती हुई कोई  
वानर-पत्नी दिखायी पडी ॥

तां चावलोक्य चेतस्यास्पदमकरोत्तयोरनपत्ययोर्विपमविपाद्येद-  
नाध्यतिकरः ॥

तामिति ॥ तां च वीक्ष्य विपादव्यधासंपर्शं हृदि पदमकरोत् ॥

उसे देखकर उन सन्तानहीन दंपतियो के चित्त में असह्य वेदना के  
संस्पर्श ने धर कर लिया ॥

करपत्रधाराकारुर्तनदुःसहदुःखदूनमनसोर्ध्वमनस्यमभूद् भूमिर्न राज्ये  
जने जीविते च । किमनेनाधिपत्येनापत्यशून्येन ॥

आरा से काटने से जैसा दुःख होता है वैसे दुःख का अनुभव करते हुए  
दम्पती का विशाल राज्य, परिजन तथा अपने प्राणों से भी मन हटने लगा ।  
सन्तान से हीन इस आधिपत्य से क्या लाभ ॥

सर्वथा सकलसुरांसुरकिरीटकोटीकोणशोणमणिमरीचिचञ्चरीक-  
चुम्बितचरणाम्बुजमम्बिकाप्रियं प्रतिपद्यामहे महेश्वरमित्यन्योन्यमा-  
ल्लोचयांचक्रतुः ॥

समस्त देवताओ तथा दानवो के मुकुट के ऊपर के एक भाग में बने  
हुए लाल मणि की कान्ति रूपी भ्रमर द्वारा जिनका चरण-कमल चुम्बित है  
तथा ओ महेश्वर ( सबसे बड़े स्वामी ) हैं ऐमे अम्बिका ( पार्वती ) प्रिय भगवान्  
शकर की सब तरह से आराधना करेंगे ऐसा कहते हुए एक दूसरे को देखे ॥

अथ विपुलवियद्विलङ्घनश्रमप्रशमनार्थमरुणेन वारुणी प्रतिपानार्थ-  
मिवावतार्यमाणेषु रविरधतुरंगमेषु, अपरासक्तं दिवसमर्तंरि शोकभरा-



दिव तमपटलेनापूर्यमाणामाद्यासयितुमिव पूर्वा दिशमभिधावमानासु  
पादपच्छायासु, द्वारोत्तद्वरितद्वरिद्वारिणस्तरणेररण्यान्तराद्य मन्दमप-  
वर्त्तमानेषु गोमण्डलेषु, अस्ताचलवनदेवतादत्तरक्तचन्दनार्णसलिल-  
प्लवलाभ्यमान इव लोहितायति पश्चिमारागुणे, धारविलासिनीभिः  
कपोलमण्डलीमण्डनाय क्रियमाणेषु पत्रमङ्गेषु, मयेनेव पादपैः  
प्रारब्धे पत्रसंकोचकर्मणि, विद्यटिप्यमाणचक्रवाककामिनीरुरुणकृजित-  
व्याजेन दिवसभनुरस्ताचलगमनं निवारयन्तीभिस्त्रिविरद्विधुराभिः  
कमलिनीमिर्विद्योयमानेषु प्रार्थनाप्रणामाञ्जलिपुटेष्विव कमलमुकुलेषु,  
क्रमेण पश्चिमाभ्योदितरङ्गान्तरतस्तरणतरताभ्रतामरसानुकारिकसय-  
यमाणरदिममञ्जरीजालजटिलमवलोक्य तरणिमण्डलमतिसंभ्रमभ्रम-  
दुधमरनिङ्गुरभ्य इव प्रधावमाने दूरं तिमिरपटले, कृष्णागुरुपङ्क-  
परभ्रमङ्गमूप्यमाणेष्विव दिग्गनानुषु, कोकिलकलापैराफभ्यमाणे-  
ष्विव यनाम्तरेषु, पिकचकुयलयपहलमेचकृधनिचयदयामलीकिय-  
माणेष्विव सलिलाशयेषु, तापिच्छुच्छुच्छुच्छुच्छापमानास्त्रिय  
यनवृत्तिषु, नृत्यत्कलापिकुलकलापैः कालाक्रियमाणेष्विव शैलशिर-  
शिलातलेषु, कञ्जालैर्यचिप्रचर्च्यमानास्त्रिय भवनाभक्तिषु, विर-  
दिनीनिःश्वासभूमद्यामलीक्रियमाणेष्विव पान्यावसथेषु, कस्तूरिका-  
सलिलसिच्यमानास्त्रिय कामुकविल्लासजासवेदमघाटीषु, मवान्धसिन्धु-  
रनिरुध्यमानेष्विव नृपमवनाङ्गनेषु, कलितकालकञ्चुकायामिव गगत-  
लक्ष्म्याम्, मदनशरनिकरविद्रुनदरिद्रिविटविपादानलस्फुलिङ्गेष्विव रङ्ग-  
स्तु ज्योतिरिङ्गणेषु, काञ्चनाषु तिमिरकरिकुम्भभेदमल्लीष्विव निशि-  
तासु प्रदीप्यमानासु प्रदीपकलिकासु, प्लवमानापाण्डुपुण्डरीककल्मा-  
पितकालिन्दीपरिस्पन्दसुन्दरेऽमृतमयनक्षणक्षुष्यक्षीरसागररसविन्दु-  
स्तथकृतनारायणवक्षस्यल इव काञ्चिदपि धियं कलयति ताराविरा-  
जिते वियति, विटङ्गान्तमनुसरन्तीषु वेश्यासु वेदमपारावतपतत्रि-  
पङ्क्तिषु च, भ्रमरसङ्गतासु कुलटासु कुमुदिनाषु च, नदीपालिविरदि-  
तेषु चत्वरेषु चक्रवाकमियुनेषु च, जाते अद्रवयकायकालकान्तिका-  
शिनि निशायतारे, तरुणनमाल काननमिवा ज्ञनगिरिगुहागर्भमियेन्द्रनील-  
मणिमहामन्दिरोद्दरमिव विशति सकलजीवलोके स लोकेभ्यः 'प्रिये  
प्रियङ्गुमञ्जरि, प्रसादय प्रणतप्रियकारिणममज्ञानङ्गदर्पहरं हरम् । अहं  
च तदाराधनाधधानामनुविधास्यामि' इत्यभिधाय यथावासमयासीत् ॥

अथेति ॥ अथानन्तरं श्रमरान्तर्यथं यालगी पश्चिमां प्रति लक्ष्मीकृष्ण नील-  
मानेषु रविरयाधेषु । प्रतिपानपदे वाङ्गी सुता । भ्रमरा दिग्भङ्गनाम्तरं च ।

तमो मोहो ध्वान्तं च । तथा गोमण्डलेषु किरणौघेषु च । यथासंख्यं रवेर्वान्त-  
 राश्च मन्दं चलमानेषु । द्वावाद्वि कीदृशप्रपात् । हारीता शुकाभाः पदिणस्तद्वदरिता  
 नीला ये हरयोऽश्वास्तैर्गण्ड्वति । तस्मात् । वनाच्च हारीतैः शुकाभपदिभिर्हरितैः  
 शाद्वलेर्हरिभिर्वानरैश्च हारिणो मनोज्ञात् । रत्नचन्दनार्घ्यः प्रस्तावाद्देवेव । पत्र-  
 भङ्गो विलेपनचित्र पश्रवस्त्रोसज्जपणीनां मञ्जन च । तथा काञ्चिद्वि श्रियं शोभां  
 नारायणवचसि तु श्रियमन्विपुत्रीं प्राप्नुवति नचत्रालकृते नभसि । कालिन्दी-  
 परिस्थन्दो नारायणवक्षश्च वियत उपमानम् । पाण्डुपुण्डरीकाणि शीररसविन्दुवक्ष  
 ताराणाम् । परिस्थन्द प्रस्रवणम् । प्रवाह इति यावत् । विटो भुजग । कान्त  
 पतिः । पक्षे पद्मिणामावासपटेरुग्रतोऽशो विटङ्कस्तस्यान्त । भ्रमो भ्रमण तत्र  
 रसस्तत्पर्यम् । अन्यत्र भमरा मृगा । नेति भिन्नम् । पक्षे नदीना पालि सेतुः ।  
 इतीति, सति स राजा यथावासमयासीत् । किं कुरवा हे प्रिये, प्रसाद्य हरमहमपि  
 सद्दाराधनमनुपृच्छन्नः करिष्यामीत्यभिधाय ॥

विशाल आकाश के लांपने में जो परिश्रम हुआ था उसको शांत करने  
 के लिए ( भगवान् ) सूर्य ने बाण्यो ( पश्चिम दिशा रूपी ) नायिका का  
 चुम्बन करने के लिए अपने रथ के घोडों को उतार रहे हैं । सूर्य रूपी पति के  
 दूसरी नायिका में आसक्त होने से मानो शोक मग्न अधिकारसमूह से भरी हुई  
 पूर्व दिशा को आश्वासन देने के लिए पेडों की छाया उसी ओर दौड़ी  
 जा रही है । हरितो ( शुको ) की तरह हरित ( हरे रंग के ) हरि ( घोडों ) द्वारा  
 हारि ( ले जाये जा रहे, सूर्य के गोमण्डल ( किरणों के ) धीरे-धीरे दूसरे जङ्गलों  
 से मुड़ जाने पर हरित शुको के कारण हरे तथा हरि ( वानरो ) के कारण  
 हारि मनोहर ढग से ढंके हुए जगलों से गोमण्डल ( गायों ) के लोट जाने पर,  
 अस्तावल की वनदेवता द्वारा दिये गये रक्त घटन के अर्घ्य जल में नौका द्वारा  
 लाल एव विशाल पश्चिम दिशा ( रूपी नायिका ) के मुख के सैरते रहने पर,  
 कपोल मङ्गल को अलङ्कृत करने के लिए चाराङ्गनाओं द्वारा पत्र रचना करते  
 रहने पर मानो भय से बुधों के पत्रों को सकुचित करने लगने पर, विमुक्त हो  
 रही चक्रवाक ( पक्षी ) की रमणी के कक्षणा पूर्ण क्रन्दन के बहाने दिनपति  
 ( सूर्य ) के अस्तावल गमन को मानो रोकती हुई विरह के कारण खिन्न कम-  
 लिनिषो द्वारा अपनी सकुचित मुकुलरूपी प्रणामाञ्जलि के माध्यम से प्रार्थना  
 किये जा रहने पर क्रम से पश्चिम समुद्र की लहरियों में तरुण तट ( अन्यन्त  
 विकसित ) ( सूर्य रूपी ) तामरस ( कमल ) की किरण समूह रूपी मकरन्द  
 मञ्जरी के जाल को देखकर सूर्यमण्डल के पास बहुत जल्दी ही अधिकारसमूह  
 रूपी ध्रुपर समूह के दौड़ते रहने पर कृष्णागुण के पद्म से निमित्त पत्र रचना से  
 दिशा रूपी नायिका मुख के अलङ्कृत हो जाने पर, विभिन्न वनों में मानो  
 कोकिल समूह के आक्रमण करते रहने पर बिसे हुए नील कमल की गायी

नीची कान्ति राशि से सरोवरों के नीचे किये जाते रहने पर, सप्तपर्ण के गुच्छे पत्ते बन की ऋषय मानो हँकी जा रही हैं। नाचते हुए मयूरों के पंखों से पर्वतों के उच्चतर शिखारंगों के माना जाते किये जाते रहने पर, भवनों की दीवारों पर कञ्जल से अंकित करने योग्य चित्र अंकित किये जाते रहने पर, पथिकों का मार्ग विरहिणियों के निःस्वाश धून से काटे किये जाते रहने पर, कामुकों के विनासगृह के कक्ष का कम्बूरी के जल से सँवि जाते रहने पर, मयवाले सिन्धुर (हाथियों) द्वारा मानो राजभवन के विभिन्न भागों के धिरे जाते रहने पर, आकाश लक्ष्मी के कान्ति कञ्जुकी (कुर्तों) पहन लेने पर, कान क्षण से सर्वथा विड दरिद्र कामुकों के विपाद (बलेघ) रूपी अग्नि से निकले हुए स्फुटिल्लों के चञ्चते रहने पर अंधकार रूपी हाथी के कुम्भ स्थल को छेदने के लिये सोने की बनी तीक्ष्ण भङ्गी (जकुच) रूपी दीपकों के जल जाने पर तैरते (उतराते) हुए अयागु (काले) कनकों से कल्पानित (काठी की हुई) कान्तिदी (मनुना) की तरह सुन्दर, अमृत मयन के समय सुगंध (स्वाकुच) क्षार सागर के रसकों से नारायण के वक्षस्थल पर जैसे अनूर्ध्व घोना हुई थी वैसी घोना को तारों से युक्त आकाश के धारण कर लेने पर अपने प्रिय बीरो का अनुसरण वेश्याओं के करते रहने पर, भर के पाठे हुए कपोत पक्षियों के विटङ्क (कपोत घोसले) में चले जाने पर, कुट्टय (स्वेच्छाचारिणी) क्रिन्नों के अमरस (धूमने में रस) प्राप्त करते रहने पर तथा कुमुदिनों के अमर सगन (अमर युक्त) हो जाने पर, दीप पंक्ति से चौराहे के विरहित (शून्य) न रहने पर तथा अक्रवाक के जोड़े से नदी पालि (नदी सेतु) विरहित (शून्य) हो जाने पर, वृद्ध गवय (नील गाय) की शरीर कान्ति की तरह शिवायी पडने वाली रात के जा जाने पर संपूर्ण संसार के मानो प्रौढ़ तमालपत्र के जगन में (या) अञ्जन पर्वत की कन्दरा में (मा) इन्द्रनील मणि से बने विशाल भवन में धुसते रहने पर राजा "प्रिय प्रियङ्गुमन्त्ररि ! प्रपत्तो (भक्तो) के प्रिय करने वाले, कामदेव के अर्घ्य अहंकार का हरण करने वाले, भगवान् शंकर को प्रसन्न करो। मैं भी उनके पुत्रन में ध्यान केन्द्रित कइगा।" यह कह कर अपने निवास स्थल पर चले गये ॥

ततश्च—असृष्टितप्रभावोऽथ प्रदोषेणान्धकारिणा ।

तस्याश्चित्ते स्थितः शम्भुरुदयादौ च चन्द्रमाः ॥ ३२ ॥

असृष्टितेति ॥ शम्भुशक्तियो श्लेषः । प्रहृष्टदोषेण अन्धकारात्प्रतिपक्षेण । अस्याहतवैभवः । शशो च प्रदोषेण रजनीमुनेन । अन्धत्वविधायिना अन्धकार-युक्तेन वा । न सृष्टित-प्रभावो आर्षो वृद्धिरस्य । अत्र अत्र वृद्धपर्यं ॥ ३१ ॥

इसके बाद अत्यन्त दुष्ट अन्धकारु भी उसके प्रभाव (महिमा) को सृष्टित न कर सका ऐसे भगवान् शंकर उसके चित्त में स्थिर हो गये ।

द्वितीय अर्थ—अन्धत्व को लाने वाला प्रदोष ( रात्रि का प्रारम्भिक भाग ) जिसके प्रभा ( प्रकाश ) के आव ( वृद्धि ) को खण्डित न कर सका ऐसे भगवान् चन्द्र उदयाचल पर स्थित हो गये ॥ ३१ ॥

विभ्रते द्वारिणी छायां चन्द्राय च शिवाय च ।

नभागवचये तस्मै नमस्कारं चकार सा ॥ ३२ ॥

विभ्रत इति ॥ चन्द्रपक्षे हरिणस्येव द्वारिणी छाया । कलङ्क इत्यर्थः । नभोगा वियद्गवापिनी रविर्मयः । शिखरुतु द्वारिणी छाया कान्तिम् । तथा भोगे विलासे रश्मिभिलापो यस्य पश्चात्त्रयोम ॥ ३२ ॥

नभोगवचि ( आकाश मे अपनी काति फैलाने वाले ) द्वारिणी ( हरिण का प्रतिबिम्ब ) छाया धारण करने वाले चन्द्रमा को तथा द्वारिणी छाया ( मनोहर कान्ति ) को धारण करने वाले और भोग मे रश्मि न रखने वाले भगवान् शंकर को उसने नमस्कार किया ॥ ३२ ॥

नित्यमुद्ग्रहते तुभ्यमन्तः सारङ्गरक्षितम् ।

भूतिपाण्डुर गोवाह सोम स्वामिन्नमो नमः ॥ ३३ ॥

नित्यमिति ॥ महोमया यत्तत् इति सोमः तस्य संबोधनम् । तद्विशेषणं स्वामि-  
भिति । तथा भूत्या भस्मना पाण्डुर दुध्नः । तथा गौर्गुणो वाहन यस्य । पूर्वभूत उमापते । अन्तर्मध्ये । सारमुत्कृष्टम् । गरं कालकूटम् । जिनं महिम्ना स्तम्भित-  
शक्ति । नित्यमुद्ग्रहते विभ्राणाय नुम्य नमो नमः । अत्र प्रकर्षं द्विवचनम् । सोम-  
श्चन्द्रोऽपि । तदा भवन भूतिजन्म । जन्मना पाण्डुरः स्वभावधेतुः । तथा गा  
किरणान् बहुतीर्यण् । पाण्डुराश्च ता गावश्चेति समासे कृते समाप्तान्तो दुर्घारः ।  
अन्तरिति कर्मपदम् । सारङ्गो मृगस्तेन रक्षित लान्छितमिति तद्विशेषणम् ॥ ३३ ॥

उमा के साथ रहने वाले सोम स्वामिन् ! भस्म से युद्ध रण वाले ! बैल को वाहन बनाने वाले, अन्त सार ( आरमबल ) गर ( विष ) तथा जित ( विशिष्ट शक्ति ) को धारण करने वाले आप को मेरा पुन पुन प्रणाम ।

हे सोम ( चन्द्र ) भूति ( जन्म ) से ही पाण्डुर ( सफेद ) गोवाह ( किरण को धारण करने वाले ) सारङ्गरक्षित ( मृग से भूषित ) भगवान् चन्द्र आप को नमस्कार है ॥ ३३ ॥

एवं च नातिचिरात् ।

श्रुभ्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रसलिलोल्लोलैरिव प्लावयं-

ल्लोकं लोचनलोभतः स्मरसुहृद्जातः स चन्द्रोदयः ।

यस्मिन्संभूतचैरदारुणरणप्रारम्भिणो भ्राम्यन्तः

क्रुद्धोत्कृकृदम्बस्य पुरतः काकोऽपि हंसायतं ॥ ३४ ॥

श्रुभ्यदिति ॥ स धवलितानेपमुबनतलशब्दोदय उपप्रेष्यते । श्रुभ्यत्क्षीरसमुद्र-  
सान्द्रसलिलोल्लोलैर्लोकं प्लावयन्निव जातः । क्षीरसमुद्रक्षोभस्य तासहचरितत्वात् ॥

इस तरह थोड़ी ही देर में—

क्षीर सागर को खलबलाते हुए गाडे जल की तरह संभूनें संसार को तैराते हुए आँवों के शुभावनने, कामदेव के मित्र चन्द्र का उदय हो गया। जिसमें पर्याप्त शुभता के (शोध के लिए) कठिन लड़ाई प्रारंभ करने की कामना से धूपते हुए शृङ्खल उलूखवर्ग के सामने कौआ भी हंस जैसा दोषता है ॥

( उलूख कौआँ से लड़ाई करने के लिए रात को सोचते हैं लेकिन चन्द्रमा की बलपथिक क्षेत्र किरणों ने कौआँ को भी मरुद कर दिया है। अतः वे भी हंस जैसे प्रतीत होते हैं। ) ॥ ३४ ॥

अपि च—दृष्योत्तच्चन्द्रनचारुचन्द्ररचिभिर्यिस्तारिणीभिर्मरा

ज्जातर्यं जगतां तथा कथमपि श्वेतायमानश्रुतिः ।

उन्निद्रो दिनशङ्कया कृतकन कारो घराकः प्रिया

मन्विष्यन्पुरतः स्थितामपि यथा चक्रभ्रमं भ्राम्यति ॥५॥

श्वेतैरिति ॥ सान्ध्यममनेन कुडालप्रेषितघम्वद्भ्रमो यत्रेति भ्रमगकिया-  
वितोचनम् । अथवा चक्रः कोकस्तस्वैव भ्रमो यत्र । सोऽपि रात्रौ समीपवर्तिनी-  
मपि प्रियामन्विष्यन् भ्रमति ॥ ३५ ॥

चूटे हुए चंदन की तरह फैलने वाली घट्ट की सुन्दर कान्ति से मरा हुआ संभूनें संसार क्षेत्र की तरह लग रहा है। दिन की प्राप्ति से विचारा कौआ जाग उठा है, श्रन्दन कर रहा है, क्योंकि सामने ही बैठी हुई अपनी प्रिया को खोजता हुआ गोशकार चारों तरफ घूमता है ॥

( चन्द्रमा की कान्ति से उसकी प्रिया भी सचेत हो गयी है। इसी लिए उसे वह पहचान ही नहीं पाता ) ॥ ३५ ॥

अपि च—मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानयो बह्वृषाः

कर्णे कैरवशङ्कया कुबलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।

कर्णधूपफलमुच्चिनोति शायरी मुक्ताफलाकांक्षया

सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥

मुग्धेति ॥ चन्द्रवा बालगोपाला शययोऽप्याप्यउच्चियो विपर्यस्ता भवन्तु ।  
सनतपरिचितोत्तरचनाः कान्ता उत्तमच्चियोऽपि विपर्यस्ता इति, अपिर्विस्तम्ये ॥

सीधे स्वभाव के गोपराज ( बहव ) दूध समझ कर गायों के बनों के नीचे घडा रख देते हैं। रमणिमां भी कुबलय ( मोचकमल ) को कैरव ( सफेद कमल ) समझ कर बानों में लगाने लगती हैं। शायरी ( चिपत्तिनी ) कर्णधु ( बैर ) फल को मुक्ताफल समझ कर चुन रही है। चन्द्रमा की गादी किरणों किस्के चित्त की भ्रान्त नहीं कर देती ॥ ३६ ॥

यत्र च—मुक्तादामनोरथेन चनिता गृहन्ति घानायने

गोष्ठे गोपयधूर्द्धोति मथितुं कुम्भीगतान्वाञ्छति ।

उच्यन्वन्ति च मालतीषु कुसुमश्रद्धालघो मालिकाः

शुभ्रान्विभ्रमकारिणः शशिकरान्पश्यन्न को मुह्यति ॥३७॥

महिलार्ये वातायन (बिडकी) में ( जाती हुई चन्द्रिका को ) मोती की माला समझ कर पकड़ने लगती हैं । गोपवतिर्णा गोशाले में वे (हुडी) में गई हुई (चन्द्रिका) को मचना चाहती है । मालती के पेड़ों पर पड़ी हुई चन्द्रिका को फूल समझकर मालाकार बधुएँ चुनने लगती हैं । भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाली चद्रपा की इन शुभ किरणों को देखकर कौन नहीं मुग्ध हो जाता ॥ ३७ ॥

अपि च—किं कर्पूररक्षणा. स्रज्वन्ति वियतः किं वा मनोनन्दिनो

मन्दाश्वन्दनविन्दव किमु सुधानिध्यन्धारा इमाः ।

इत्थं भ्रान्तिमयी जनस्य जनयन्त्यङ्गे लगन्तः परा-

मिन्दो कुन्दवितानसिकुड्मलदलान्स्सुन्दरा रश्मयः ॥३८॥

किमिति ॥ कुन्दस्य विकामिना इड्मलदलाना स्रज् । तद्वत्सुन्दरा इति शौक्य-  
सौकुमार्यानिशयार्थं । जरट्मन्दस्य द्वि दल प्राणि पर्याग्यरूपानि च भवन्तीति ॥

क्या आकाश से कपूर के कण बू रते हैं अथवा मन को मुग्ध कर देने वाले चन्दन के बिन्दु या ये कोई अमृत के झरने हैं । इस तरह अङ्गों में लगती हुई चन्द्र की ये विकसित हो रहे कुन्ददल की मात्रा सहज किरणों लोको में भ्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं ॥ ३८ ॥

इति जनितमुद्रिन्दो मिन्दुवारध्वगामं

किरन्ति किरणजालं मण्डले दिङ्मुखेषु ।

हरचरणमरोजद्वन्द्वमाराधयन्ती

शुचिकुशशयनीये साय निद्रां जगाम ॥ ३९ ॥

इति श्रीत्रिचिक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां

हरचरणमरोजाङ्गायां द्वितीय उच्छ्वासः ॥

इतीति ॥ इत्थमुक्ता प्रकारेण । जनितहर्षेण । निर्गुण्डीकुसुममालाप्रतिभं कर-  
निकरं दिङ्मुखेषु किरन्ति वितन्वन्ति मनीन्द्रोर्मण्डले हर भ्यायन्ती सा धर्मशास्त्रा-  
धामरवपत् । समाधिलय गतेति भाव ॥ ३९ ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविररणे द्वितीय उच्छ्वास समाप्तः ॥

सिन्दुवार की मात्रा सहज कान्ति वाली आह्लादोत्सादिका चन्द्रकिरणों जब दिशाओं में धारों तरफ फैल रही थीं भगवान् शंकर के चरण कमल युगल की आराधना करती हुई पवित्र कुश की जम्पा पर वह ( राजपरनी ) निद्रित हो गयीं ( समाधिस्थ हो गयीं ) ॥ ३९ ॥

द्वितीय उच्छ्वास समाप्तः ।

## • तृतीय उच्छ्वासः

अथ क्रमेण रजतकुम्भमन्मोभरणार्थमिन्दुमण्डलमादाय पश्चिमा-  
 म्मोनिधिपुल्लिनमनुसरत्यां तरुणकपोतरुंधरा रोमराजिराजिन्यां रज-  
 न्याम्, धञ्जिलरुमलस्रण्डकमलोनीनां विनिद्रायमाणरुमलकुड्मल-  
 विन्धोचनेषु कञ्जलरेखास्त्रियोलसन्तीषु भ्रमरराजिषु, राजीवराजि-  
 पुञ्जनिकुञ्जे शिञ्जानमञ्जीरमञ्जुलनुन्नदत्सु शरद्वलाहकवलयपक्षविक्षेप-  
 पञ्चनरलिततरुणनामरसेषु दीर्घिकावतंसेषु हंसेषु, क्रेडारयानि च  
 चक्रवाकमिथुनमेलरुमङ्गलमृदङ्ग इव रौप्यघर्घरस्वसरसं सारसकुले,  
 अचण्यायजलशिशिरशोकरिणि मन्दान्दोलितविनिन्द्रुममञ्जरीरजःरुण-  
 कयायिते तमःसर्पसंदष्टोञ्जीविनजगन्निद्यासायमाने प्रस्त्रलति प्रमात-  
 सुस्तभ्रमखिन्नमुन्दरीकुचमण्डले मरुति, मनोहारिहारतह्रितद्वये  
 हरिततिमिरपटलपटौ गगनलक्ष्म्याः करपरामृष्टपयोधरे रागवति  
 सत्रिनरि, मृगमदमिलितवहलकुड्कुममण्डनमञ्जरीभिरिव पिञ्जरिते  
 पुरंदरदिड्मुखे सुधप्रसुता सा स्वप्नमद्रासीत् ॥

श्लोके ॥ अतन्नां किरणमंसृष्टमेरं । रागवयारणे रवी सुता सती स्वप्नं  
 ददर्श । अन्योऽपि रागवानासक्तः किल पटीमुन्मायं कराम्यां स्तनीं सृष्टानि ।  
 शरद्वलाहकवल्पाः शरदभ्रववलाः । क्रेडारो वायविशेषः ॥

क्रम से मुक्क कपोतकी गर्दन की रोम पंक्ति की तरह सुन्दर (आइजि वाली)  
 रात जल भरने के लिए धंद्रमण्डल रूप बाँधी का घडा लेकर परिचय समुद्र के  
 तट पर उतर रही थी। समस्त कमल वनों में कमलिनियों के कुड्मज्जमन  
 खिल रहे थे। वनमें कञ्जल रेखा सदृश भ्रमर पंक्ति उल्लसित हो उठी थी।  
 कनक धेनी से संपन्न वन में मूपुर की तरह मञ्जुल ध्वनि करते हुए दीर्घिका  
 ( सरोवर Long canal ) के अक्षकार हंस शरत्कालीन वादन की तरह अपने  
 स्वेत पक्षों की फटकडाहट से उत्पन्न वायु द्वारा पूर्ण विवक्षित कमलों को  
 तरंगित ( चञ्चल ) बना रहे थे। सारसों का जलया ( रात के बिटुडे हुए )  
 चक्रवाक दपती को मिथाने के लिए मगल मृदग रूप में चादो की झाल सदृश  
 सरस ( क्रेडार ) ध्वनि कर रहा था। शीघ्र क शीतल कर्णों से सयुक्त मद-मंद  
 कर्णित वृक्ष मंत्रियों के परागे दिन्दुओं से क्यायित अन्धकार रूप काले सर्प  
 के काट लेने से ( मूच्छित ) सम्पूर्ण जगत् के जागरण के अवसर पर श्वास की  
 तरह प्रतीत होता हुआ पवन प्रातःकाल सुस्तभ्रम से पकी हुई सुन्दरियों के

स्तन मडल पर प्रस्खलित ( धीरे-धीरे बह रहा ) था । मनोहर हारीत शुक्र सहस्र हरे षोडशे वाले भगवान् सूर्य गगन लक्ष्मी के अधवार-समूह रूप वस्त्र को हटाकर ( किरण रूप हाथो ) से पयोधर ( मेघस्तन ) का स्पर्श कर रागवान् हो रहे थे । कस्तूरी मिश्रित गाढे कुङ्कुम रूप अलङ्कार से निकली हुई मजरी से पुरन्दर दिशा ( पूर्व दिशा ) का मुख पिङ्गर ( पीत रक्त ) बनाया जा रहा था । ऐसे उप काल मे सोई हुई प्रियङ्गुमञ्जरी स्वप्न देखी ॥

किल सकलसुरासुरशिरः शेखरीकृतचरणकमल , कमलाधिवासेन ब्रह्मणा नारायणेन च रचितरुचिरस्तुतिः कृशानुरूपेण ललाट-लोचनेन चन्द्रमसा च भासमानः-विकचं कर्णं कुवलयं करे कपालं च कलयन् , अहिंसाटोपं मनसा शिरसा च विभ्राणः प्रोज्ज्वलन्नयना-र्विञ्चिताभस्म च समुद्बद्धन् , अधिकङ्कालेन स्कन्धेन कंधराधेन च विराजमानः, सालसदृशं भुजवनं भवानीं च दधानः, सर्वदानववारं त्रिगुलं मन्दाकिनीं च धारयन् , देवो दर्पितदनुजेन्द्रमिद्राहरो हरश्चन्द्र-मण्डलादचतीर्य 'पुत्रि प्रियंगुमञ्जरि, मञ्जरीमिमां गृह्णाण । मा भैषीः । प्रत्युपसि मत्रियोगाद्मनकनामा महामुनिरेप्यति स तेऽनुग्रहं करिष्यति' इत्यभिधाय स्वध्वजाशिखरान्तराद्मन्दमकरन्दस्यन्द-सुन्दरामोदमाद्यन्मधुकररवरमणीयां पारिजातमञ्जरीमदात् ॥

स्वप्नमाह—किलेति । घातौक्यै । हर शक्तिमण्डलादुत्तीर्य पुत्रीत्यभिधाय ईदृशीं पारिजातमञ्जरीमदात् । कीदृशो हर । ब्रह्मणा विष्णुना च कृतस्तुति । द्वयेनापि कीदृशेन । कमजेऽधिवासोऽस्य पद्यासनात्वात् । विष्णुस्तु कमलाया श्रिया अधिवासस्तेन । तथा बद्धिस्वरूपेण नेत्रेण चन्द्रमसा च कृशेन चामेण अनुगत-रूपेणाविनाभावसंपद्ममूर्तिना लसन् । तथा विकच सविकासम् । कपालं तु विगता कषा केशा अस्मादिति विकचम् । तथा अहिंसाया भाटोपमावेशम् । अहि च साटोपं सस्पन्दम् । प्रोज्ज्वलदोप्यमानम् । भस्म तु प्रकर्षेणोज्ज्वलम् । अधिगतं कङ्कालं शरीरास्थि अर्थात्पट्टवाङ्गं येन । कंधराधेन तु कालेन सह कालकृटर्यात् । अधिकमिति क्रियाविशेषणम् । सालद्रुमस्तुष्य प्राशुश्यात् । पचे मालसे खीलामन्थरे दृशौ यस्या । सर्वान्दानवान्वारयति । गङ्गा तु सर्वदा नार्यं नवा अविरुद्धाया वा पायो यस्या । अथवा सर्वं ददातीति सर्वदा । भानूयन् न ह्यानवाः नयोक्ता वारोऽस्या । पुत्रेण कामुकरत्वेन नर्मवचनादारामञ्जरीनां स्तुत्यत्वोक्ति ॥

यहाँ रात्रि की नायिका रूप मे चित्रित किया गया है । वह एक चद्र रूप चाँदी का घडा लेकर समुद्र में पानी भरने जा रही है । कमलिनियों की कलियाँ उसके नेत्र का काम दे रही हैं । उनमे लगे हुए भँरि अजन का काम दे रहे हैं । सारस-समूह का कँकार भग मृदग जैसा लग रहा है । चत्रवाक दंपती के भाषी



मिथुन के उपरक्षय में मानों के भगल मृदंग बजा रहे थे। प्रातःकालीन मंद पवन न झोंके ऐसे लगने थे मानों अन्धकार रूप वाले सर्प के काटने से मूर्च्छित सारे संसार के प्राणियों के निःश्वास हो ॥

जिनका चरणमल समस्त देवताओं तथा दानवों के शिर का भूषण है, कमल में निवास करने वाले ब्रह्मा तथा कमल के निवासस्थान विष्णु अपना कमला ( के हृदय ) में निवास करने वाले विष्णु द्वारा जिनकी त्रिय स्तुतियाँ की गई हैं। जो कृषानुरूप ( अग्निरूप ) लज्जाट में ( तृतीय ) लोचन से कृष ( पतने ) तथा अनुरूप ( अपने शरीर के साथ सर्वदा सम्बद्ध ) ( द्वितीया ) के चन्द्र से चमकते हैं। ( ऐसे भगवान् शंकर ) कानों में विक्रव ( विकसित ) कुवलय ( नीलकमल ) तथा हाथों में विक्रव ( कव (वाल) हीन ) कपाल किए हुए, मन में अहिंसा का जाटोप ( आवेद्यून भावना ) तथा शिर में साटोप ( दृढकारता हुआ ) अहि ( सर्प ) धारण किए हुए, चमकती हुई ( तृतीय ) नेत्र की दीप्ति तथा चित्त के भस्म को धारण किए हुए, स्कन्ध में काल तथा कधरार्ध ( शीवा ) तक काल ( त्रिय ) से अधिक सुशोभित, साल ( बुद्ध ) सहस्र बुजाओं तथा सालस ( लोलापूर्ण ) आँखों वाली भवानी ( पार्वती ) को धारण किए हुए, सर्व-दानव-वार ( समस्त दानवों को निवारित करने वाले ) त्रिशूल को तथा सर्व-दानव-वार ( ह्मेशा नवीन जल देने वाली ) मदाकिनी ( गंगा ) को धारण किए हुए, बहकारपूर्ण राजसों की निद्रा ( मदस्विता ) का हरण करने वाले भगवान् शंकर चन्द्रमण्डल से उतर कर वस्त्रे प्रियङ्गुमञ्जरी। इस मञ्जरी को ग्रहण करो। मत डरो। प्रातःकाल मेरी आज्ञा से दमनक नामक महामुनि आयेगे। वह तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे—ऐसा कहकर अपने वान के ऊपरी भाग से पर्याप्त पराग के झड़ने से सुन्दर गन्ध के कारण मस्त मधुकरों के झंकार से मनोहर पारिजात मञ्जरी को दिये ॥

सापि 'प्रसादोऽयम्' इत्यभिधाय स्वप्न एव प्रणामपर्यस्तमस्तका स्तुतिमकरोत् ।

वह भी 'यह प्रसाद है' ऐसा कहकर शिर नवाकर प्रणामपूर्वक स्तुति की ॥

तुभ्यं नमो नमल्लोकशोकसंतापहारिणे ।

व्यर्थाकृतान्धकारातिदम्भारम्भाय शम्भवे ॥ १ ॥

तुन्वमिति ॥ अन्धकारानीति दम्भारय ॥ १ ॥

प्रणाम करने वाले लोगो के सताप का हरण करने वाले, अन्धकार के बहकार भरे प्रयत्नों को व्यर्थ करने वाले भगवान् शंभु आपको नमस्कार है ॥

विभो विभूतिसंपन्न पन्नगेन्द्रविभूषण

नमो नमोवसंरल्प तुभ्यमभ्यन्तरात्मने ॥ २ ॥

विभो इति ॥ विभु सर्वव्यापी । विशेषेण भूत्या भग्मना ममृद्ध सपन्न । यद्वा विभूत्या चतुर्दशमुदनाधिपत्यलक्षणया । तथा वासुद्धिभूषण । मोघो निष्फल सकृदपो ध्यान यस्य । पश्चाद्योग । एतानि शिवमघोघनानि ॥ २ ॥

सर्पराज को भूषण बनाने वाले, अपने सकल्प ( प्रतिज्ञा ) को कभी व्यर्थ न जाने देने वाले, अन्तरात्मस्वरूप, ऐश्वर्य संपन्न, हे भगवान् आपका प्रणाम है ॥२॥

अत्रान्तरे तरणिकोमलकान्तिभिन्न-

भास्वत्सरोजदलदीर्घविलोचनाया ।

तस्याः प्रबोधमकरोद्भजनीधिराम-

यामारसानमृदुमङ्गलतूर्यनाद् ॥ ३ ॥

इसी बीच सूर्य की कोमल कान्ति से विकसित कोमल दल क सहस्र बड़े नन्ना वाली रानी को रात्रि के अन्तिम प्रहरकी समाप्तिसे मगन-बाधों की ध्वनि ने जगा दिया ॥ ३ ॥

क्रमेण च प्राच्या सिच्यमानायामिव बहलकुमुभाम्म.कुम्भै ककु मि, प्रभवति तारकोच्छेदनाय मुकुमारै रश्मिजाले, पूर्वाचलस्थलीमविरो- हति जगत्प्रबोधप्रारम्भमङ्गलकलशैऽशुमालिमण्डले, ताण्डवाडम्परिणि पुण्डरीकवण्डे, द्विण्डमानासु दीर्घिकामण्डनमुण्डमालासु कारण्डय मण्डलीषु, त्रिधाम्यत्सु ध्वणपुटेषु हृदयानन्दिनि धन्दिनृन्दारक- वृन्दधन्दनारम्भरवे, रणयत्सु धीणाप्रेणु षोणा-वैणिकध्वणप्रिरेषु, षण्डकुहरप्रे ह्योलनात्कारु शले तारातरं गायति प्रामरागं गायनजने जाते जरज्जपाप्रसूनभिन्नम्फुटस्फाटिककान्तिसमप्रभे प्रमातन्मये, सा ममुत्थाय भूत्या शुचिर्विचयनप्रनलिनगर्ममर्धाञ्जलिमयकीर्यं भगवत मप्रिनु. स्तुतिमकरोत् ॥

अनेति ॥ यथा माहेन्द्र इन्द्र, तथा मुकुमार । कुमार । स हि तारकासुरोच्छेद- नाय प्रामथत् । मुकुमार मृदु रश्मिजाल तु तारकाणां नक्षत्राणामुच्छिद्यत्तये । वैणिक ध्वणिकैर्घीणाप्रेषुवाङ्मै । अलकाराश्च सुद्वितवितृनानुनामिहादय । तारोऽयुध- ध्वनि । प्रामराग पद्मम् । यद्वा पद्ममभ्यमगान्धारास्त्रीस्त्रीन्प्रामान्नाग च भरतोक्त पदविध गायकं गायति मति ॥

क्रम मे केसर के गाडे जठ से नरे हुए घटों मे मानो पूर्व दिशा सीधी जा रही थी । तारकागुर को समाप्त करने क लिए कुमार काविकेय प्रवृत्त हुए थे वैसे ( आकाश म विकीर्ण तारों को समाप्त करने के लिए मुकुमार

( ज्योत् ) किरणें प्रवृत्त हो रहीं थीं । संवार के जागरणार्थी मंगल कार्य को प्रारंभ करने के अवसर पर कलय की तरह प्रतीत होने हुए अंगुनाली ( मूर्ध ) पूर्वाक्षर स्थली ( पूर्व-पर्वत ) पर बस रहे थे । कमल वन उद्भूत नृत्य की स्थिति प्रदर्शित कर रहा था । उत्तम कोटि के बन्दीवनों की स्तुतिध्वनि में कान विश्राम कर रहे थे । बीणा तथा वंशी बजाने वाले बैंगिक ( बीणा-वादक ) तथा वैगिक ( वंशीवादक ) मधुर ध्वनि कर रहे थे । कण्ठ कुहर ( गले ) को कंपित कर ( मुद्रित, विवृत, अनुनासिक आदि ) अक्षरों को निकालने न कुशल गानक लोग बड़ी ऊँची ऊँची ध्वनि से ग्रामराग ( पचम स्वर ) में गा रहे थे । जब पुराने जना ( बहदुल ) पुष्प से प्रतिबिम्बित स्फटिक-मणि के सत्य कानि वाला प्रभावकाल हुआ तो वह टडकर पवित्र होकर चिल्ले हुए नवीन कमल पुन से भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर स्तुति की ।

[ भग्नकार्य के प्रारंभ में कलय स्थापनपूर्वक पूजन की परंपरा है । भगवान् मूर्ध भी वाग्वागरूप मंगलकार्य कर रहे हैं इसलिए स्वयं कलय की मूर्ति बन गये हैं । ]

घास्तरध्रामिहावह्नीपल्लुवाकारधारिणः ।

जयन्ति प्रथमारम्भसंभवा भास्वर्दंशवः ॥ ४ ॥

दिन-लक्ष्मी-रूपी महाश्रुता के पल्लव की आकृति वाली प्रथम प्रहर की मूर्ध किरणें उत्कृष्ट लग रही हैं ॥

[ दिन की शोभा एक लता है । मूर्ध की किरणें उस लता के नवीन पल्लव की तरह प्रतीत हो रहीं हैं । ] ॥ ४ ॥

जयन्त्यम्भोजिनीखण्डखण्डितालस्यसंचयम् ।

कौलकुमं पूर्वदिग्गण्डमण्डनं मण्डलं रवेः ॥ ५ ॥

कमलिनी वन की आनन्द-राशि को समाप्त कर देने वाला प्राची ( पूर्व दिशा ) के ज्योत् का कौकुम ( कुकुम से बना हुआ ) अक्षररूप मूर्धमंडल सर्वोत्कृष्ट प्रतीत हो रहा है ॥ ५ ॥

राजापि प्रथमप्रबुद्धप्रगीतगीतध्वनिनिस्त्वनिद्रः. सान्द्रवित्तमप्रमा-  
मासि संध्यावन्तरे, विधाय नान्ध्यं विधिम्, अधिकृतेन धर्मकर्मणि  
नरहालपुरःस्तरेण पुरोधसा सह तामेवान्वेन्दुमन्तपुरमात्रगाम ॥

राजापि ॥ प्रथमप्रबुद्धा ये प्रकृष्टगीतान्मन्त्रैतध्वनिना स्वस्वनिद्र ॥

राजा भी पहली बार की गायी हुई गीत की ध्वनि से अगदर गाड़े विद्रुम कान्ति सहस्र कानि वाले उपसंध्या ( प्रातः ) काल में संध्यानुष्ठान कर धर्म-कार्य के अधिकारी पुरोहित को उसी समय आगे कर उसी ( रात्री ) को देखने ( खोजने ) के लिए अन्तःपुर आए ॥

दृष्ट्वा च विस्मयमानः स्फुरदरविन्दसुन्दराननाम् 'अनुगृहीतेय-  
मिन्दुमौलिना' इत्यवधारयन्, अतिहर्षोत्कर्षमन्थरगिरा तां यभाषे ॥

खिले हुए कमल की तरह सुन्दर मुखी ( रानी ) को देखकर आश्चर्य प्रकट करते हुए इन्दुमौलि ( भगवान् शंकर ) ने कृपा की है ऐसा निश्चित करता हुआ अधिक प्रसन्नता के कारण गभीर आवाज से उससे बोला ॥

मुग्धस्निग्धनिरुद्धशब्दद्वसितस्फारीभवल्लोचनं

तिर्यक्कान्तिकपोलपालिपुलकस्पष्टीकृतान्तर्धृति ।

एतत्ते करभोरु पङ्कजसदृग्दृष्ट्वा मुखं मे वला-

दुच्चैः क्रिचिदचिन्त्यच्चिन्तचमत्कारं मनो हृष्यति ॥ ६ ॥

मुग्धस्निग्धेति ॥ मणिबन्धकनिष्ठिकयोर्मध्य करभस्तद्गदूरु षस्याः । तत ऊङ्-  
तस्या संबोधनम् । ईदृश ते मुख दृष्ट्वा महमाचिन्त्याधिगतचमत्कार मे मनो  
हृष्यति ॥ ६ ॥

मनोहर स्नेहपूर्ण तथा नि शब्द हास्य से बाँखे खिल उठी है । वक्रकान्ति-  
पूर्ण कपोल के रोमाञ्च से आन्तरिक धैर्य प्रकट हो रहा है । हे करभोरु !  
( हाथ के तलवे की तरह कोमल जघे वाली ) कमल सदृश आपके इस मुख को  
देखकर हठात् मेरा मन किसी ऐसे उच्च ( अद्भुत ) चमत्कार से चमत्कृत हो उठा  
है जिसके बारे में न तो मैंने कभी सोचा था, न कभी चर्चा ही की थी ॥ ६ ॥

तत्कथय शतासि ममाज्ञया हर्षवृत्तान्तम्' इत्यभिहिता सा स्मित-  
सुधानुविद्धमुग्धमुखवीणाकणकोमलालापेन सर्वमादितः स्वप्नदर्शन-  
माचक्षे ॥

शपथ है । मेरी आज्ञा से समुच्चा हर्ष वृत्तान्त कह डालो । ( राजा ) के  
ऐसा कहने पर, मुस्कुराहट से अमृत प्लावित, सुन्दर मुख वीणा की कोमल वाणी  
में आद्योपान्त स्वप्न की सारी कहानी कह सुनायी ॥

क्षितिपतिस्तु तदाकर्ण्य 'प्रिये, मयापि स भगवान् । आत्मानुहारिणां  
धिनायकेन स्वामिना च शक्तिमता पुत्रेणानुगम्यमानो, दग्धकाम. पुरित-  
कामश्च, एरुकपर्दक ईश्वरश्च, ससोमश्चासोमः, सविभवश्चाविभूतिश्च,  
पिनाकी चापिनाकी, दृष्टः स्वप्नान्तरे तरुणार्कमण्डलमध्यघर्ता प्रणत-  
प्रियंकरः शंकर. । तदेव ब्राह्मण. करोतु संवादिनोत्तमयो. स्वप्नयोरथं-  
परामर्शम्' इत्यभिधाय तां, तमवन्वितं पुर. पुरोहितमभाषयत् ॥

क्षितिपतिस्त्विति ॥ अग्रे स्थित पुरोहितमित्यमुना प्रकारेण राज्ञीकथनलक्षणेना-  
द्योवत् । यत् प्रिये, स भगवान् शंकरो मयापि स्वप्नान्तरे दृष्टः । कीदृश । सामर्थ्य-  
यता हेरग्वेग, शक्तिशस्त्रभृता यन्मुनेन चात्मप्रतिमेनानुगम्यमानः । शिवोऽपि

विगतनायकं सकललोकस्वामी शक्तिमाश्च शिवशक्त्योरविनाभावमवन्धादि-  
त्याममाहरथम् । काम स्मर इच्छा च । कपर्दी जटाबन्ध विरोधपञ्चे वराट ईश्वरो  
धनधान् । ससोम मेन्दु । सह उभया वर्तत इति सोम । ततो नञ्योग । विगतां  
मयो वम्यस्ते विमवा मुच्छात्मानः । तैः सह । भगव सायुज्य हि मुक्तिरिति वृद्धा ।  
तथा विसिष्टा मूनिर्यस्य । मस्म च । पिनाक धनुस्स्यादिति । अपीनि भिन्नम् ।  
नाकी स्वर्गा । यद्वा 'चप सानवने' । चपयन्ति मानवयन्त्यनुनयन्त्यवश्य चापिन-  
प्रमादका नाकिनो यस्य ॥

राजा भी यह सुनकर 'प्रिये !' मैंने भी, अपने अनुरूप पुत्र शक्तिरत्नधारी  
स्वामी ( कार्तिकेय ) तथा विनायक ( गणेशजी ) के साथ कामदेव को जन्म  
देने वाले तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाले एक कपर्दक ( एक कोड़ी वाले )  
तथा ईश्वर ( बड़े-बड़े ऐश्वर्य ( धन ) वाले ( विरोध ) एक कपर्दक ( जटा  
वाले ) ईश्वर ( सबके स्वामी ) परिहार ) ससोम ( सोम-चन्द्रसहित ) थे ।  
फिर भी असोम ( सोमरहित ) विरोध । ठमा क सहित ये वस्तुतः स्वय ही  
सोम-चन्द्र नहीं थे । परिहार ।

मविभव ( ऐश्वर्य सम्पन्न ) थे फिर भी अविभूति ( ऐश्वर्यहीन ) थे—  
विरोध । सविभव ( ससार जिनसे छुट गया है ऐसे मुक्त लोग जिनके साथ ) थे  
तथा अविभूति ( भूति ( ऐश्वर्य ) से विगत नहीं ) थे । परिहार । पिनाकी थे  
फिर भी अपिनाकी ( पिनाकी नहीं ) थे और ( अपि ) नाकी ( स्वर्गवासी ) थे ।  
स्वप्न में पूर्णतः प्राप्त मूर्तिमंडल के बीच भक्तों के आकांक्षित सिद्ध करने वाले  
भगवान् शंकर को देखा हूँ ।

तो ये ब्राह्मण इन मिलते-जुलते दोनों स्वप्नों का अर्थ ( फल ) विचारें ।  
ऐसा उनसे कहकर, सामने बैठे हुए पुरोहित से बोले ॥

सोऽपि 'दिव, दिष्टया वर्धसे । अनल्पपुण्यप्राप्यमेतत्तरुणेन्दुमौले-  
रालोकनम्, अघट्यमवाप्स्यति देर्घा सकलराजचक्रचूडामणि-  
कल्पमशेषभुवनभ्रान्तशुभ्रयश पिण्डडिण्डिममपत्यम्' इत्यनेकधा  
तयोराशंसयांबकार ॥

वह भी 'राजन्' । भाग्यसे आप बड़ रहे हैं । अत्यधिक पुण्य से तथा  
शंकर भगवान् का दर्शन होता है । निश्चित ही देवी ( रानी ) को समस्त राज-  
समूह का मणि समस्त ससार में अपने मश का उद्घोष करने वाला कोई अपत्य  
( सतान ) होगा । इस तरह उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा किया ॥

पंचविधे च व्यतिकरे कोऽपि काम्तकार्तस्वरस्वरूपमुत्फुल्लपाण्डु  
पुष्पमालया मेरुशिखरमिव प्रदक्षिणाश्रीणल्लग्नया नक्षत्रराज्या जन्त-  
शोभं जटाभारमुद्बद्धन्, अतिबहुलमलयजरसरचितविचित्रपुण्ड्रक-

मण्डनाममरशैलशिलामिव रङ्गत्रिद्योतस ललाटपट्टिका फलयन्,  
 प्लवमान इवोज्ज्वलपङ्कजकिंजल्ककपिलकायकान्तिकल्लोलेषु, करुणा-  
 रसपूर्णवक्ष स्थलदीर्घिकायामन्तस्तरन्तीं बालकलहसपक्षिपङ्क्तिमिव  
 स्फारस्फाटिकाक्षमालिका विभ्राण कुशकौपीनत्रासा करकलित  
 कुशरूढकमडलुमडलै, तरुभिरिव विविधशास्त्रविधृतजटावल्कलश्च,  
 पर्वतेरिव समेखलै सरुद्राक्षाक्षमालैश्च, नक्षत्रैरिव समृग  
 कृत्तिरूढलैपै सज्येष्टापादैश्च, ससमदरपि नमदाकारमाकल  
 यद्भिः अक्रोडैरपि चक्रोडापरै, रोमशैरपि विप्रबालकै मुनिभि  
 परिवृत, सेवितपुराणपुरुषोऽप्यजनार्दनप्रिय, प्रसन्नशकरोऽप्यनाश्रित  
 भव, प्रबुद्धोऽप्यबन्दीरुतजन, श्रमणोऽप्यजिनपरिग्रह ग्रहगण  
 इव नवधात्मको लोकानाम्, धनुर्धर इव नालीरुसध, दस इव नदा  
 भ्मस्थानकप्रिय पद्मग इव नाकुलीन, सरस्वतीसनिधासस्थ मुख  
 मन्दिरस्य वन्दनमालयेव प्रथमोद्भदभासिन्या दृष्टिकारोमराजिरेखया  
 श्यामलिनोत्तरोष्ठपृष्ठ, कलिकालकलङ्कशङ्काशरणगतैस्त्रिभिः पुण्य  
 युगैरिव सुसूत्रीभूय देहलभै, त्रिपुष्करस्नानावसरविलभ्रसरसविस  
 काण्डकुण्डलैरिव भक्त्याराधितत्रिपुरपरचितरक्षासूक्ष्मरेखानुकारिभि  
 सितयज्ञोपवीतत-तुभिर्भूपितदेह, शमी विद्रुमाभाधरश्च प्रजापो विप्र  
 जापश्च, सुतपा कुतपश्शलाघी च, विकलत्र, सकलत्रश्च, यमान्तानु  
 सारी सकुशलश्च, विरुचनवनलिनशङ्कया मिल-मुक्तमुग्धमधुपमण्डले-  
 नेव रुद्राक्षमलयेन विराजितवामपाणितल्लव, न स्मृत स्मरापस्मा  
 रेण, नाङ्गीकृत कृतघ्नया नालोकित कितववृत्तेन नाकलित कलिना  
 न निरुद्धो विरुद्धक्रियाभि अतितेजस्तया द्वितीय इव परब्रह्मण,  
 तृतीय इव सूर्याचन्द्रमसो, चतुर्थ इव गार्हपत्याहवनीयदक्षिणाग्नी  
 नाम्, पञ्चम इव दिक्पतीनाम् पष्ठ इव महाभूताधिदेवतानाम्,  
 सप्तम इव मूर्तर्तनाम्, अष्टम इव सप्तर्षीणाम्, नवम इव चसूनाम्,  
 दशम इव ब्रह्माणाम्, अनवरतहृदयकमलकर्णिकान्त स्फुरज्जयोतीरूप  
 परमब्रह्मकान्तिकलापनेव बहिर्निर्गच्छताच्छभम्माम्बुलेपन वनकगिरि  
 रिव ।वरलचन्द्रातपेनापाण्डुरितदेह, दीर्घसरसविसकाण्डपाण्डुना  
 प्रचण्डपवनेनोर्ध्वमुल्लासितेन जटाजूटबन्धनपटप्रान्तपरुषेन शिर  
 पतद्गनगरुद्रगङ्गाम्बुधाराहारिणो हरस्य स्यामिभक्त्या वृत्तानुकरण  
 व्रतचर्यामिव फलयन्, कोमले महसि तरुणे वयसि वृद्धे तपसि  
 पृथुनि यशसि गुरुणि श्रेयसि वर्तमान, सद सदाचाराणाम्,

आश्रयः धूर्तानाम्, मही महिम्नः, प्रपा कृपारसस्य, धेनं क्षमा-  
ङ्कुराणाम्, पानं मंत्रीसुधाया प्रासादः प्रसादस्य, सिन्धु साधु-  
ताया तरुगार्जनण्डलमध्यान्मुनिरवातरत् ॥

पञ्चमः कौटिल्ये मुनि सूर्यमण्डलादवातरत् । कनकचिह्नजटाभारस्य मेह-  
शिवर पुत्रमालायश्च नक्षत्ररात्रिरुपमानम् । लग्न मवद्ध ज्योतिषप्रणीत च ।  
ललाप्य गिला निलक्षणा च गङ्गपमानम् । परिवृतो मुनिभिः । कौटिल्ये  
विचक्षणैः । शब्दा कव्यद्वेषादलंता च जग कशरचना मूल च । वरकल ।  
वृक्षत्वक् । तदेव तरुणा महत् मुनीना चाहार्यम् । मेसला मौञ्जी नगान्तदशश्च ।  
रुद्राचनमालावते । पञ्च रुद्राश्च अश्च तद्विषया । मृगवृत्तिकाया मृगवच-  
श्लेषै महिम्नै ज्योतिषाटन प्रसम्यजनदग्धेन महित । पञ्च मृगा मृगशिर  
वृत्तिका अरण्या जगृष्ठा भाषाश्च नक्षत्राणि । सममर्देत्तृष्णाज्ञयात्मानन्दे । तथा  
मदस्य गवस्याकार नाकलयद्भिः । आपविरोधः । स तु तुलयाध्याख्यया । क्रडा  
विषयामक्तिः । तथा चक्रि ० । वरीडा स्तानस्तत्परैः । विरोध तु च पृथक् ।  
मूनरमनुवर्तैः । विप्रागा बालकैर्दिग्भैः । विरोधे विदग्धा प्रगतकेशैः । पुराणपुरुषा  
वृद्धा । जननामर्दन पीडा । प्रवृत्तानामश्रिताना शक्र सुखकर । मव समा ।  
प्रबुद्धो विद्वान् । बन्दीकृतो हठन गृहीत । अमग्नपस्वा । अजिन मृगादिवक् ।  
विराधे तु पुराणपुरुषा जनार्दनश्च विष्णु । शक्रो भवश्च शिवः । प्रबुद्ध सुगत ।  
बन्दा बन्दा बौद्धवतरया । धम्मग चरण । जिनोर्द्ध्व । परिग्रह सर्वत्र नति  
मिदम् । वयो हिता । अलीकमथा निध्याप्रनिष्ठ । दम्भवदिना दाम्भा मायिका ।  
अकलीनो नाभिजान । प्रहगास्तु नवमकरस्वरूप । घन्वी च नालीके शर सधान  
यस्य । हस्तु नादशमन एव स्थानक तथिय । नाकर्तृनीकस्तत्र लीन ।  
मन्त्रद्वाराग्नित्रिभुवहरिति । त्रय पुरुषा यत्रनि समुदायिन एव समुदाय इति  
दर्शन बहुवचनम् । व्यतिरिक्तपमुदायपचस्तु नेहाश्रित इति मवितहरिहरधम्मनी  
रचयं रचितरसातुल्यैर्मन्त्रोपवीततन्नुभिन्नुपिनदेद । शमोऽस्यास्तीति शमी  
शान्त । तथा विद्रुम प्रवाल तुत्तुवयोश्च । प्रना पाति क्रतुहृद्भयो हि प्रभात्राणम्  
विप्राभारयति जपप्रारयति । महृदर्शान्वयत्वात् । सुष्ठु तपः धनमस्य । तथा  
कौ भुवि तपसा लाकाचरेण धर्मेण श्लाघनशील । 'तपरवान्द्रायणादौ स्याद्धर्मे  
लाकाचरश्चि च' इति विश्व । यदा कुतपो दर्भस्तदा कुतपश्चाधीयत्र विमर्ग-  
मावर्षि ( शस्त्र द्विवेन ) श्रुत्या विरोधप्रतीति । विगनकलत्र । मकल प्रायत ।  
अहिमामयास्तेयत्रहृचर्परिग्रहा यमास्तेयामन्त पारम् । कुणाद्भान्जान्ति  
गृह्णन्ति य न कुशला द्वास्तै मह । च सर्वत्र विरोध । नद्यथा शमीतामा तरु  
तथा द्रुमांमा धरति । विर्नेप्रथ । वि प्रजापवान् । कुतप कुम्भित तपः । सह  
कलत्रम् । समरयाम्नाकस्य समीपमनुकरघवरम् । सह कुशलन क्षेत्रेण ॥

एन ही अवसर पर कोई मुनि पूर्ण मूर्त मङ्गल स अवतीर्ण हुए । वह मेह  
शिवर की तरह चमकते हुए स्वर्ण रंग की प्रदक्षिणा के कारण लीन लगन वाली  
नक्षत्र पक्ति की तरह खिन्ने हुए गुप्त मालाओं में महित जगभार का धारण

कर रहे थे। अमर शैल ( हिमालय ) की शिला पर जैसे त्रिस्रोतस ( गंगा ) बहती है वैसे वह अपनी शुभ्र ललाट-पट्टिका पर गाढे चदन रस से त्रिपुण्ड्र तिलक किए हुए थे। पूर्ण विकसित कमल के पराग सदृश अपने गौर देह की दीप्ति लहरी में मानो तैर रहे थे। कश्यप रस के भरे हुए वक्ष स्थल रूपी दीर्घिका ( सरोवर ) के भीतर सुन्दर बालहंसों की श्रेणी की तरह बड़ी-बड़ी स्फटिक मणियों को धारण किए हुए थे। कुश तथा कौपीन बस्त्र पहने हुए थे। हाथ में कुशयुक्त कमण्डलु लिए हुए थे। पेड़ जैसे विभिन्न शाखा जटा ( जड़ मूल ) तथा बल्कल ( वृक्ष छाल ) से युक्त होने हैं वैसे ( कण्ठबहुवृच् आदि वैदिक ) शाखाओं, जटा ( केश समूह ), तथा बल्कल बस्त्र को धारण किये थे। पर्वत जैसे समेखल ( तटीय भाग युक्त, होने हैं तथा खद्रास वृक्ष की पत्तियों से युक्त होते हैं वैसे ( मुनि भी ) समेखल ( मोञ्जीकरधनी युक्त ) तथा खद्रास मणियों की माला लिए हुए थे। नक्षत्र समूह जैसे मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा, ज्येष्ठा, तथा पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ से युक्त रहते हैं वैसे ( मुनि भी ) मृगकृत्तिका ( मृगचर्म ) को आश्लेष ( पहने हुए ) थे और ज्येष्ठ ( उत्तम ) आषाढ ( इत रण्ड ) धारण किए हुए थे। वह ऐसे मुनि बालको से घिरे थे जो ससमद ( मदयुक्त ) होकर भी न मदाकार ( मद युक्त न ) थे। विरोध। ससमद ( तृष्णाहीन होने के कारण आनन्दयुक्त ) थे। और न मदाकार ( मदपूर्ण आकृति को धारण नहीं कर रहे थे नञ् ) थे। परिहार। अक्रीड ( श्रीडाविहीन ) फिर भी ( च ) श्रीडा पर ( श्रीडा में तत्पर ) थे। विरोध। अक्रीड ( विषय वासना में अनुरक्त नहीं ) थे और अक्री ( विष्णु ) की ईडा ( स्तुति ) में लगे रहने थे। रोमश ( बड़े बड़े बाल वाले ) थे फिर भी विप्र बाल ( उत्तम केशों से हीन ) थे। विरोध। रोमश ( उत्तम रोम वाले ) थे और विप्र + बाल ( ब्राह्मण जाति के लड़के ) थे। ( वह मुनि ) मेवित पुराण पुष्य ( विष्णु की सेवा किये ) थे फिर भी जनार्दन उन्हें प्रिय नहीं थे। विरोध। पुराण पुष्य ( विष्णु या बृह मनियों ) की सेवा किये थे। अत उन्हें जनार्दन ( जनता का उत्पीडन ) प्रिय नहीं था। परिहार। शकर को प्रसन्न किये थे किन्तु उन्होंने भव ( शकर ) का आश्रय नहीं लिया था। विरोध। शकर को प्रसन्न किये थे किन्तु भव ( ससार ) के आश्रय ( परतत्रता ) में नहीं रहे थे। प्रबुद्ध ( महात्मा बुद्ध ) थे किन्तु किसी जादमी को चन्द ( बौद्धधर्म का उपदेश ) नहीं दिए थे। वि० प्रबुद्ध ( बड़े आत्मशानी ) थे और किसी बधन में नहीं डाले गये थे। परिहार। धमण ( जैन सग्यासी ) थे किन्तु जिन' के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। वि० धमण ( आत्मज्ञान के लिए समाधि योग आदि श्रम करने ) थे और अ-जिन मृगधर्म धारण करते थे ॥ परिहार ॥



[ संमद शब्द अलौकिक आनन्द का वाचक है। इस तरह के आनन्द की अनुभूति तृष्णाहीन विप्रबालको में सम्भव थी। अक्रीड विग्रों के बालक वात्स्यो-चित्त क्रीडा में अनुरक्त नहीं थे। चञ्ची की स्तुति में ही दत्तचित्त थे। विरोध पक्ष में चञ्चीश का 'च' अपि अर्थ में आया है। अर्थात् क्रीडा हीन है फिर भी क्रीडा में तत्पर है। ]

पुराण पुत्रय—शब्द ही विष्णु अर्थ प्रसिद्ध ही है। किन्तु 'वृद्धजन' अर्थ भी यहाँ प्रासंगिक ही होगा क्योंकि वर्ष्मान मुनि अभी अल्पवय नवीन हैं। जभी उन्हें मूठों की सेवा पड रही है। अतः वृद्धजन सेवा उनके लिए उचित ही है। ]

लोक में ग्रह ( नवग्रह ) जैसे ( नवधा ) नव भागों में विभक्त हैं वैसे ( मुनि भी ) न-वधात्मक ( किसी के बध की आकाङ्क्षा वाले नहीं ) थे। धनुर्धर जैसे नालीक ( धनुष् ) पर संघ ( शर सधान ) करता है वैसे ( मुनि भी ) न + अलौक संघ ( मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले नहीं ) थे। हंस जैसे नदाम्भ-स्नानक प्रिय ( नद के जलवाले स्नान को प्रिय मानता ) है वैसे ( मुनि भी ) नदाम्भ-स्नानक प्रिय ( दाम्भिकों ( धमण्डियों ) की जगह उन्हें प्रिय नहीं ) थीं। पद्मग ( सर्प ) जैसे नाकु ( वल्मीक म ) लीन ( छिपे ) रहते हैं वैसे ( मुनि भी ) नाकुलीन बहृत कुलीन थे। उनका मुख सरस्वती का निवास मंदिर था। अभी पहली बार उत्तरोष्ठ पर मूठों की काली रोम पंक्तिया निकली थीं। वह मुख-रूपी सरस्वती के भवन का तोरण प्रतीत हो रही थीं। कलियुग के डर से तीनों युग सूत्र ( तनु ) रूप में परिणत होकर देह में सट गये थे। तीनों पुनरुत्थियों में स्नान करते समय शरीर में सटे हुए कमल तनु के कुड्डल की तरह प्रतीत होने हुए भक्तिपूर्वक आराधित ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा दिये हुए सूत्ररक्षा सूत्र की तरह प्रतीत होने हुए, सकेद यज्ञोपवीत के तन्तुओं से जिनका शरीर अलंघित हो गया था।

शमी ( शमी नामक वृक्ष ) थे और विद्रुमाभाधर ( वृक्ष की काति धारण करने वाले ) नहीं थे। वि० शमी ( शक्तिप्रिय ) थे और विद्रुमाभाधर ( प्रवाल काति की तरह अधरो वाले ) थे। परिहार। प्रजाप थे फिर भी विप्रजाप ( प्रजाप नहीं ) थे। वि०। प्रजाप ( प्रजा की रक्षा करने वाले ) थे और विप्रजाप ( ब्राह्मणों से जप कराने वाले ) थे। ब्राह्मणों को जप करने की प्रेरणा देते थे। परिहार। सुतपा ( सुन्दर तपस्या वाले ) थे फिर भी कुतप श्लाघी ( सराब तपस्या के प्रशंसक ) थे। वि०। सुतपा ( सुन्दर तपस्या किये हुए ) थे और कु ( पृथ्वी ) पर अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे। परि०।

विकलत्र ( स्त्री रहित ) थे फिर भी सकलत्र ( स्त्री सहित ) थे । वि० । विकलत्र ( स्त्री रहित ) थे फिर भी सकलत्र ( सबों का प्राण करने वाले ) थे । परि० । यमान्तानुसारी ( यमराज के पास रहने वाले ) थे फिर भी सकुशल थे । वि० । यमान्तानुसारी ( अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और यमनियमों का पालन करते ) थे तथा सकुशल ( कुशलाने वाले मुनियों से युक्त ) थे ॥ परिहार ॥

[ क्षमी शब्द का उपयोग मुनिपक्ष में वृक्ष सदृश्य के आधार पर भी किया जा सकता है । क्षमी वृक्ष जैसे अन्तराग्नि से युक्त होता है वैसे यह मुनि भी अपनी आन्तरिक तेजस्विता से उद्भासित है । ]

खिले हुए नवीन कमल की भ्रान्ति से आये हुए आनन्दमग्न भोले भौरो के समूह सदृश रुद्राक्ष की छोटी माला से उनका बायाँ हाथ मण्डित तथा स्मरापस्मार ( कामरूप रोग ) द्वारा वे कभी याद नहीं किये प्रये थे । कृत-मत्ता को कभी छूये नहीं थे । धूर्तवृत्तान्त को कभी देखे तक नहीं थे । कलि द्वारा आक्रान्त नहीं थे । शास्त्र विरुद्ध आवरण द्वारा निरुद्ध ( पतित ) नहीं हुए थे । अत्यन्त तेजस्विता के कारण द्वितीय ब्रह्मा की तरह थे । सूर्य और चंद्र के अतिरिक्त तीसरे तेजस्वी थे । मार्हृपत्य दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीन अग्निमों के अतिरिक्त चतुर्थ अग्नि थे । चार दिवपतियों के अतिरिक्त पाचवें दिवपति थे । पाच महाभूतों के स्वामियों के अतिरिक्त ये छठे महाभूतपति थे । छ प्रत्यक्ष ऋतुओं के अतिरिक्त ये सातवें ऋतु थे । सप्तपियों के अतिरिक्त आठवें ऋषि थे । आठ वसुओं के अतिरिक्त नवम वसु थे । नवग्रहों के अतिरिक्त दशम ग्रह थे ।

[ मिलन्मुक्तमधु—मुनि का पाणि पल्लव इतना सुन्दर था कि भ्रमरों को उसमें कमल की भ्रान्ति हो सकती थी । उनके बाये हाथ से लगी हुई रुद्राक्ष की माला भ्रमर समूह की तरह प्रतीत होती है । मानो भ्रमरों का झुण्ड ही उनके हाथ को कोमल समझकर आ गया है । ]

निरन्तर हृदय कमल कोष के भीतर से छिटकती हुई ज्योतिरूप परमात्मा की कान्ति राशि ही मानो बाहर शुभ्रभस्म रूप में निकल रही थी जिसके लेप से शुभ्र घोरर वाले मुनि बड़ी कही पठने वाली चन्द्रकिरणों में मुक्त कनकगिरि की तरह लग रहे थे । जटाजूट का बंधन लवे एव सरस कमल तनु की तरह श्वेत अधिक हवा बहने के कारण ऊपर की ओर उठा हुआ जटाजूट बंधन वाले वस्त्र का पल्लव सदृश एक अश आकाश से गिरती हुई गंगा की धारा की तरह मनोहर लग रहा था । स्वामिभक्ति के कारण ( शिर पर गंगा को धारण करने वाले ) भगवान् दाकर का मानो अनुकरण कर रहे थे । तेजस्विता

मे कोमल, अवम्या म तथा, तपस्या मे वृद्ध, यश मे महान् तथा प्रससनीय  
श्रेष्ठता से स्थित सदाचारों का भवन, श्रुतियो का आश्रय, प्रभाव का स्थान,  
दया-शरोवर का झरना, समारूप अक्षुर ( क उत्पन्न होने की ) भूमि, मित्रता  
रूपी अनृत का पात्र, प्रसन्नता की अट्टालिका, सम्पन्नता का सागर ये ।

राजा तु दूरत एव तमायान्नमवलोक्य विस्मयविस्फारितविलो-  
चनो हर्षपर्यधिनि सरद्बहलपुलकोत्तम्भितोत्तरीयवासा. ससंभ्रममा  
सनादुत्थाय क्रियन्त्यपि पदान्यभिमुखं सनेत्य क्षितितलमित् न्नौलि-  
मण्डलः प्रणाममकरोत् ॥

दूर से ही उन्हें आते हुए देखकर आश्चर्य के कारण राजा की आँखें खिन्न  
उठीं । हर्ष की वर्षा के कारण पर्यान्त रामाञ्च हो गया । रोमा के खड़े होने से  
( उत्तरीय बन्ध ) चादर ऊपर उठ ( तन ) गयी । शीघ्र ही आसन म उठकर कुछ  
कदम सामने बढ़कर पृथीतल तक शिर झुका कर प्रणाम किये ।

मुनिरपि सदारणान्तयापि सांम्यया दशा विद्रुमप्रमाभिन्नया  
सुधासिन्धुतरङ्गमालयेव प्लावयन्नाशिपमवादीत् ॥

मुनिरिति ॥ राजप्रणामानन्तरम् । सर्वदश रत्नप्रान्तया दशा प्रवालच्युरितवीरोद-  
वीर्येव प्लावयन्मुनिाप्याशिपमुवाच । रत्नान्नेत्रैश्च शुमलदाम् । विवांघे म  
इति मुनिविशेषगम । दारुण रौद्रम् ॥

भूमे की काति से अनुविद्ध, अमृत सागर की लहर की तरह अपनी ( सदा-  
वस्था ) रक्त नेत्र भाग वाली दृष्टि से नहलाने हुए आशीर्वाद बोले ।

[ स ( यह मुनि ) दाया और सौम्य दृष्टि से नहलाने हुए आशीर्वाद की  
बाणी कहे । जो दृष्टि दाया होगी यह सौम्य कैसे होगी यही विरोध है । ऊपर  
दिया हुआ अर्थ परिहार पक्ष का है । ]

'सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थनाधोरणा  
मिह्नी पल्लवशङ्क्या विचिनुते सान्द्रद्रुमद्रोणिषु ।  
कान्ता कुङ्कुमकाङ्क्षया करतले मृद्गन्ति लग्नं च यत्-  
तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरं चिरं पानु यः' ॥ ७ ॥

सिन्दूरिति ॥ भ्रमकरं आन्तिव्रतकम् । तच्च सिन्दूरस्पृहयेयादिनाभिहितम् ॥७॥

भगवान् मूर्ध की प्रथम किरणों आपकी रक्षा करें जिन्हें हाथियों के  
कुम्भस्थल पर देखकर आधोरण ( हाथीवान् ) लगे सिन्दूर की झान्ति से छूने  
हैं, किराड-वस्त्रियां वृक्षों के आलवाल द्रोणी ( बनारियों ) में पल्लव की  
भाति से धुन रही हैं तथा रमणियों अपने हाथों पड़ी हुई कुङ्कुम समस्त कर  
पोंछ रही हैं ॥ ७ ॥

दत्ताशीश्च प्रणामपर्यस्तकर्णपूरपल्लवपरामृष्टपादपांसुरवनिपालेन  
स्वयमादरेणोपनीतमुच्चकञ्चनासनमध्यतिष्ठत् ॥

प्रणाम के अवसर पर ( राजा के ) लटकते हुए कर्णपल्लव से जिनके पैरों की धूलि पोछी गयी है, तथा जिन्होंने आशीर्वाद दे लिया है ऐसे मुनि राजा द्वारा आदरपूर्वक स्वयं लाये हुए ऊँचे स्वर्णमय आसन पर बैठे ।

अथ नरपतिदत्ते प्राप्तसौन्दर्यनिर्य-

न्मणिमहसि स तस्मिन्नासने स्निविष्टः ।

रुचिररुचि सुमेरोः संगत शृङ्गभागे

कमल इव कान्ति काञ्चिदुच्चैर्बभार ॥ ८ ॥

अपेति ॥ प्राप्तसौन्दर्यं रम्यं निर्यन्ति मरम्मणीनां महस्तेजो यस्मात् तत्रासने  
आसीनः । मुनिः काञ्चिदपूर्वां शोभां बभार ॥ रुचिरकान्तौ सुमेरो शृङ्गभागे  
स्थितो बभूवे ॥ ८ ॥

मणि की दीप्ति जिससे छिटक रही थी ऐसे राजदत्त सुन्दर आसन पर बैठे हुए मुनि सुन्दर कान्ति वाले सुमेरु पर्वत की चोटी पर स्थित ब्रह्मा की तरह अलौकिक शोभा धारण कर रहे थे ॥ ८ ॥

दस्वार्धमर्हणीयाय तस्मै सोऽपि महीपतिः ।

स्वहस्तधौतयोर्भक्त्या घवन्दे पादयोर्जलम् ॥ ९ ॥

वह राजा भी उस पूज्य मुनि को अर्घ्य देकर भक्तिपूर्वक अपने ही हाथों से धोये हुए पैरों के जल को प्रणाम किये ॥ ९ ॥

कृत्यातिथ्यक्रियां सम्यग्विनयं च प्रचाशयम् ।

तस्याग्ने भूतलं भेजे नोपविष्टः स विष्टरे ॥ १० ॥

अतिथि को जिस विधि से सत्कार करना चाहिए वह सब कर, विनम्रता व्यक्त करता हुआ राजा उस मुनि के आगे पृथ्वी पर ही बैठा, आसन पर नहीं ॥ १० ॥

ललाटपट्टविन्यस्तपाणिसंपुटकुङ्मलः ।

नीचैरुवाच घाचं च चञ्चदशनदीधितिः ॥ ११ ॥

( विशाल ) ललाटरूपी शिलापट्ट पर संपुट पाणिरूप कुङ्मल ( कलि ) रखकर चमकती हुई दन्तकान्ति वाले राजा धीरे स्वर से बोले ॥ ११ ॥

‘अद्य मे सुयद्दो’ कालाच्छ्लाघनीयमभूद्विदम् ।

त्वत्पादपद्मसंपर्शसंपद्मानुग्रहं शृद्धम् ॥ १२ ॥

आज आपके चरमक्षण के स्पर्श से संपन्न मेरा घर विरकाल के लिए प्रशसनीय बन गया ॥ १२ ॥

यतः शमस्तनुनिमनुजवृन्दारकवृन्दवन्दनीयपादारविन्द्राः, परमानन्दपरिस्पन्दमाजः पांसुनिय पार्थिवान्, तृणमिव स्त्रैणम्, निघनमिव घनम् रोगानिव भोगान्. राजयद्गणमिव लक्ष्मीम्, आकलयन्तः सकलसंसारमुखविमुक्ताः कस्य भवाद्दशा भवन्भवतरन्ति ॥

समस्त उत्तम मुनिवर्ग तथा मानववर्ग द्वारा जिनका चरमकाल प्रणम्य है, जो, उत्तम आनन्द के पात्र हैं, जिन्होंने राजाओं को धूलि, स्त्री वृन्द को तृण, संपत्ति को मृत्यु, भोग को रोग तथा लक्ष्मी को राजयज्ञना समझा है, समस्त संसार के मुख से विमुक्त आप जैसे लोग किसके घर जाते हैं ?

नदहमद्यानवयस्य भवन्नभूयं भूक्तो यशोराशेर्भाजनम्, आरूढः पदं श्नाद्याहम्, आगतो गुणेषु गौरवम्, उपलब्धवान्धन्यताम्, संपन्नः पुण्यवतामग्रणी, जातो जनस्य वन्दनीयः ॥

भगवन्! आज मैं पर्यन्त अनिन्द्य कीर्ति-राशि का पात्र बन गया, प्रशसनीय पद पर आरूढ हो गया। गुणवानों में गौरव-पात्र बन गया। धन्य हो गया। पुण्यवानों में अग्रणी बन गया तथा मानववर्ग का वन्दनीय बन गया।

तदित्यमनेकप्रकारोपकारिणां किं ब्रवीमि, क्रिकरोऽस्मीति पौन-  
दन्त्यं सर्वस्वामिनाम्। केनार्थित्वमित्यनुचितादरो निस्पृहाणाम्।  
इदं मे सर्वस्वमात्मोक्रियतामिति स्वल्पोपचारः स्वार्थिनाष्टगुणैश्वर्याणां  
भवताम्। तथापि प्रणयेन मन्त्या च मुखरितः किञ्चिद्विज्ञापयामि ॥

इस तरह अनेक तरह से उपकार करने वाले आपके बारे में क्या कहूँ ? यदि कहता हूँ कि आपका नौकर हूँ तो वह पुनर्बन्धि ही होगी क्योंकि आप सबकु स्वामी हैं। [ सबन में भी आ गया बिना कहे ही आप स्वामी हैं मैं नौकर हूँ। यदि उमी बात को फिर कहता हूँ तो पुनर्बन्धि ही होगी। ] आपके यहाँ कौन याचक नहीं है, ( ऐसा कहूँ तो ) आप जैसे त्यागी का अपमान ही है। [ क्योंकि आपके पास जो कुछ भी है वह याचकों के लिए ही है। अतः याचक आपकी संपत्ति को अपनी ही सम्पत्ति समझ कर माँगने आते हैं। ऐसी स्थिति में मैं उस काम को लेकर यदि आपकी प्रशंसा करूँ तो कोई आदर की बात नहीं बल्कि तु कुछ अनादर का ही भाव झलकता है। ] 'यह मेरी संपूर्ण संपत्ति स्वीकार कीजिए' यह कहता हूँ तो यह भी छोटा ही सत्कार है क्योंकि जिन्होंने आठों

सिद्धियो के ऐश्वर्य की अपने अधीन कर लिया है ( उसके लिए यह थोड़ी-सी संपत्ति का देना कौन सत्कार की बात है ? ) फिर भी विनय एव भक्ति से बाबाल में बनकर मैं कुछ कह रहा हूँ ॥

इदं राज्यमियं लक्ष्मीरिमे दारा इमे गृहाः ।

पते धयं विधेयाः च कथ्यतां यदिहेप्सितम् ॥ १३ ॥

यह राज्य, यह लक्ष्मी, ये स्त्रियाँ, ये घर और मैं सभी आपके किङ्कर हैं, जो इच्छा हो कहे ॥ १३ ॥

मुनिरप्यवनीशस्य विनयमभिनन्द्य स्निग्धमुग्धस्मितसुधाधवलित-  
धरपल्लवमग्नवीत्-‘उचितमेतद्भवाद्दशां वक्तुं कर्तुं वा’ ॥

मुनि भी राजा के विनय की प्रशंसा कर स्नेहपूर्ण सुन्दर मुस्कुराहट से अधरोष्ठ को शुभ्र बनाते हुए बोले—‘उचिन ही है आप जैसे लोगों का कहना या करना’ ।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।

सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १४ ॥

उपेति ॥ इन्दुः केन शिशिरीकृत । स्वभावादेव शिशिर इत्यर्थं ॥ १४ ॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, अकृत्रिम ( स्वाभाविक ) स्नेह व्यक्त करना सज्जनो का स्वभाव ही होता है । चन्द्रमा को शीतल किसने किया है ? ॥ १४ ॥

[ सज्जनो मे मधुरता किसी के द्वारा नहीं बनायी जाती, स्वयं उत्पन्न होती है । जैसे चन्द्रमा को किसी ने शीतल नहीं किया है । वह स्वयम् शीतल है । ]

अपिच—

यथा चित्त तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया ।

चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥ १५ ॥

यथेति ॥ वाचीश्वेश्वरेऽपि जात्या बहुत्वप्रतीति ॥ १५ ॥

जैसा चित्त वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसा कार्य । चित्त, वाणी तथा कार्य सब मे सज्जन एक रूप रखते हैं ॥ १५ ॥

अपिच—

विशेषः सद्द संपत्त्या विनयो विधया सह ।

प्रभुत्यं प्रथयोपेतं चिद्धमेतन्महात्मनाम् ॥ १६ ॥

विशेष इति ॥ प्रथय पणय ॥ १६ ॥

रूपति होने पर ही विवेकपूर्ण रहना, विद्या होने पर भी नञ रहना, दरपागत्र वा स्वामी बनना, यही सब महान्नाया के चिह्न हैं ॥ १६ ॥

तदेतत्समस्तमस्ति त्वयि दीर्घायुषि, ध्रुयनामिदानो प्रम्नुतम् ।  
अनवरनसुरासुरचक्रचूडामणिहृतचरणरजसश्चन्द्रचूडामणेर्देवस्यादे  
शनागता धयम् । अत्राप्यस्मि सकलजलधिजलकहोलमालालंकारभाजो  
भुवो भर्तुर्लचितमतिमान्य धन्यममामान्यं कन्यारत्नम्' इति ॥

ठीह विरञ्जीवित् । आप म य सब चीजें हैं, सुनिय जा इस समय प्रादुर्गिक है । निरन्तर दवा और दानवों को चूडामणि म जितक चरणा की धृष्टि ली रहती है, चन्द्रना जितके गिर म लटक रहत है, एउ नानवान् चक्र की आना स हम भाव हैं । आप बागर जल की तरंगमाला से अलङ्कृत सपूर्ण पृथ्वी क राजा के ( सम्मान ) क अनुकूल, असाधारण, सर्वप्रणसनीय एक कन्यारत्न प्राप्त करेंगे ।

एवमुक्त्वाति तस्मिन्तपस्विनि पुत्रार्थिनी नन्यालाभ मन्यमाना  
विप्रियं प्रियंगुमञ्जरो जन्मञ्ज्वरप्रजजरणिलभाक्षरया गिरा कुर्वाणेषु  
त्रोत्रपारस्पन्दं निन्दास्तुतिधर्मेण नर्मलीन्द्रानलहमकरोत् ॥

एतन्निदि ॥ क्रोधस्य परिस्पद् देशं कुर्वाण्व ॥

तपस्वी क इस तरह कहते पर पुत्र चाहत वाली प्रियगुमञ्जरी ने आ य कन्या लाभ जानकर पुराने तुर की तरह श्रीवृत्त ( कुठ उदास ) अनरा की वाली म क्रोध अनियन्त्रित करती हुई निन्दा और स्तुतिपुत्र नञ्जना-पूर्ण कह प्रारम्भ किया ॥

'नयशोभाजन, कृतकृटीककुशाम्प्रप्राहिन्नवेदनोद्गारं कृतवानसि  
कापि । सर्वदानादेयेषु प्रतिकूलवर्तिषु जलेषु रति कुर्वाण पाटीन-  
हिंसको धीवर इषोपलक्ष्यसे । कुरङ्गेषु प्राति यधनासि । कद्म्य  
पुरयैर्देहुरद्लोकैः पलाशभाये कुजन्मभि मह संवससि ॥

नयेः ॥ यशामाजनेत्यामन्यस्य नञ्योग । तथा कृतानि कृत्रिमाणि, ननु वेदवशीरुपेयाणि । कुम्भिनटीकानि कुशात्राणि गृह्णामाग्यवशील यस्मिन्मदो वदपारहित । इदमपि द्वयभामन्यम् । क्वपि न उद्धारमुच्चारण कृतवान्मि । वक्रमपि न वामाचर्ये । स्तुतिरञ्जे नपञ्च शोभा च त जनयामि । यद्गृहमग-  
तोऽपि तस्यति शय । तथा कृता कौ पृथिव्या टीका गमन यत् । स्वर्गिण्यरत्न दनुविष्टयति शय । इषो दर्म एवास्त्र गृह्णात्यवस्थम् । एतन्नास्त्रमशत्रूणांमपि विधातोक्ति । वेदना दु ख तदर्थमुद्धारमुच्चारण क्वपि नाकरो । एतन प्रियव दवान्ति । निन्दाया अनादयन्वभदेयपु जडेपु रति विदधदिसको धवर इवाव बुध्यय । धीवरोऽपि किल नादयनयसु कृल कच्छ प्रति वर्तमानेषु रति कुरुते ।

पाठीनाहारखात् । पक्षे सर्वकालमेव नदीभयेषु कूलं कूलं प्रति वर्तमानेषु वारिषु रागमासक्तिं कुर्वाण पाठवान् न हिंसाशीलो धिया बुद्ध्या वर एषावगम्यसे । एतेन तीर्थस्थास्नुदंयालुर्ज्ञानी च । कुस्मितो रङ्गो वासना येषां तेषु विषयेषु प्रीतिमान् । पक्षे कुरङ्गा मृगास्तेषु प्रीति । कदम्बैः कुमायुकैः । कुस्मिता अम्बया कदम्बया ताश्च दुक्षे हितैः कुर्षन्ति आचक्षते वा इति गिजन्तादचि सिद्धम् । बहुव्रीहौ तु को कक्ष भवति कुस्मितो रङ्गो येषां तैः । कुस्मितमलीङ्गम् कदलीकम् । को कत । बहुकदलीक येषाम् । तथा पक्षे (पश्चिममरुतमिति ये तेषां प्रायैः सहस्यैः । तथा कुस्मित जन्म येषां तथाविधैः सह वास विधासे । पक्षे कदम्ब-कुरवक-कदली पलाशा ये तुज्जमान कौ पृथिव्या जन्म येषामिति कृत्वा भूरुहास्ते सह संवससि । मुनयो हि मृग-नगप्रिया । वनवाग्निखात् ॥

निन्दापक्ष—हे न यशोभाजन ! ( अयशस्विन् ) कृतकुटीक कुशास्त्र ग्राहिन् । ( कुपिम, अभद्र टीकाओं से युक्त खराब शास्त्रों के ग्रहण करने वाले ) न वेद ( तुम कुछ नहीं जानते हो ) । कहीं भी ( विद्वानों के बीच ) उद्गार ( भाषण ) नहीं किये हो । बोलना नहीं जानते हो ।

सर्वदा ( सदा ) अनादेय ( अश्रद्धेय ) तथा प्रतिकूल चलने वाले जड़ों के साथ प्रेम करने वाले तथा पाठीन ( पोठिया मछलियों ) की हस्या करने वाले धीवर ( मल्लाह ) की तरह प्रतीत होते हो । कुरङ्ग, खराब रंग ( वासना ) वाले लोगों में प्रेम करते हो । कदम्ब ( टेढ़ा चलने वाले ) हो । [ कुस्मितमम्बति इति कदम्ब 'अम्ब गती' ] कुरवक ( अभद्र बोलने वाले ) बहुकदलीक ( अधिक झूठे ) तथा पलाशप्राय ( अधिकांश मास खाने वाले ) कुजन्म ( निन्द्य कुल वाले लोगो ) के साथ तुम रहते हो ।

प्रशंसा पक्ष—नम ( नीति ) और शोभा के जनक हो । कु ( पृथिवी ) म टीक ( आगमन ) किए हो । कुश रूपी अस्त्र को ग्रहण किए हो । कहीं भी वेदनापूर्ण शब्द नहीं किये हो [ किसी से इस रूप में नहीं बोलने हो कि सुनने वाले को कष्ट हो ] सदा नादेय ( नदी सम्बन्धी ) तटवर्ती जल में प्रेम रखते हो । पाठी ( वेद के स्वाध्यायी ) हो । हिंसक नहीं हो । धी ( बुद्धि ) के कारण बड़े हो । कुरङ्गों ( मृगो ) से प्रेम रखते हो । कदम्ब, कदली, कुरवक जो कु ( पृथिवी ) में जन्म लिये हैं उनके साथ रहते हो ।

किमन्यद् व्रमो वयम् ।

और दूसरा आप के बारे में क्या कहें ।

यस्य ते सदाचारविरुद्धः पुष्पवत्कान्ताराग एव प्रिय ॥

यस्येति ॥ पुष्पवतीषु हि कान्तासु राग आसक्ति । आचारविरुद्ध कुलधर्मानुषित पक्षे सदाचारैष्यामन्त्रणम् । विभि पश्चिमी रुद्ध पुष्पवान्कान्तारस्याग-रुतरेव प्रिय ॥



निन्दा पक्ष—निस आपको रजस्वला रमणी में प्रेम करना इष्ट है, जो कि सज्जनों क आचरण से सर्वथा प्रतिकूल है ।

प्रशंसा पक्ष—हे सदाचार ! ( सुन्दर जाचरण वाले महर्षे । ) वि ( पक्षियो ) स ह्य ( धिरा हुआ ) कान्दार ( जगत् ) क अग ( वृत्त ) आपको प्रिय हैं । ( आप अरुण्यवासी सर्वदा स्तुत्य महात्मा हैं । )

तद्वलमनेन तापसहितेन कन्यावरप्रदानेन' इति ॥

वदिनि ॥ तस्मात् तापस्य तपस्विन्, हि स्फुट ते नव स्वध्विना कन्यावर-प्रदानेन नाल न पर्याप्ति नैष्ट पुर्यत इति यावत् । यतोऽह पुत्रार्थिनीति । अथवा ताप मनापस्तन्महितन । पचे तापमत्यामन्व्रणम् । तेनानेन कन्यावरप्रदानेनाल नान्य प्रार्थनीयमिन्वर्थ ॥

निन्दा पक्ष—ताप ( सताप ) सहित यह कन्यावर-प्रदान व्यर्थ ही है ।

प्रशंसा पक्ष—ह तापस ! यह कन्यावर-प्रदान को हित करना ( छोड़ना ) पर्याप्त ( अल ) नहीं है ।

[ 'कन्यावर प्रदान पर्याप्त है' ऐसा अर्थ करने पर 'अल' का प्रयोग पर्याप्त अर्थ में मानना होगा । तब "नम-स्वस्तिस्वाहास्वधाऽऽदयद्भ्योऽाच" क योग न चतुर्यां विभक्ति होन लगेगी । इसलिए इस पक्ति को स्तुति पक्ष में लगाने के लिए "कन्या वरप्रदान को छोड़ना व्यर्थ नहीं है"—यह अर्थ करना चाहिए जिसमें 'अल' अपर्याप्त अर्थ में लग सके । ]

एवमभिहित सोऽपि तां वभाये ॥

ऐसा कहने पर मुनि भी प्रियङ्गुमधरी से कहें ।

'दोषाकरमुष्णि, कि मामुपालभसे । प्रायः प्राणिनामीश. शशुरेऽ शुभाशुभं कर्मात्लोक्य तुलाधर इव तुलितं फलमुपकल्पयति ॥

वापेति ॥ दोषागामाकरो मुख यस्यास्तत्स बोधनम् । पचे दोषाकरश्चन्द्र ॥

निन्दा पक्ष—हे दोषाकरमुष्णि । ( दोष भरे मुँह वाली ) मुझे क्यों दोष देती हो ?

प्रशंसा पक्ष—हे दोषाकरमुष्णि । ( चन्द्रमुखी ) मुझे क्यों उलाहना देती हो ? प्राय सभी प्राणियों के स्वामी शंकर भगवान् ही लोगों के शुभ अशुभ कर्मों का विचार कर तीक्ष्ण बाजों की तरह ठीक ठीक फल देने हैं ।

तथाहि ।

यद्यावद्याहशं येन कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति ॥ १७ ॥

जो जब तक तथा जैसा शुभ अशुभ काय जिन लोगो ने किया है वहीं उसने समय तक, तथा वैसा ही उसका फल ईश्वर देते हैं ॥ १७ ॥

अथवा ।

मत्तमातङ्गगामिनि, यस्यास्तवाप्रमाणालोचनधी सा त्वं बलि सश्रयावलग्न कस्य नाधिक्षप जनयास ॥

मत्तति ॥ मत्त श्रीबो मातङ्ग शशरम्नद्वद्वच्छसि चेट्टमेऽवश्यम् । स ह्यनुचित-  
चेष्ट खमपि तथा श्रीवा । श्लेष्दाभिममस्वनुचितत्वात्त व्यापय । पक्षे  
मातङ्गो हस्ती । यस्या भवराया आलोचनश्रीधिवेकसपदप्रमाणा प्रत्यक्षादिप्रमाणापेता  
सा त्व बलिनां बलघतो राज्ञ सश्रयऽवलग्नप्रवृत्त्या कस्य पूज्यस्यापूज्यस्य वा  
अधिचेप तिरस्कार न करोपि । सर्वस्यापि करोष्येव । पक्षे लोचनश्रिय प्रसृत्यादि-  
प्रमाणातिरिक्तधम् । बलिस्त्वरत्वा । अवलग्न मध्यम् । पूर्वविधा सा त्व शुभ  
लक्षणा कस्य आधिचेप मन पीढाया अपनोद् न करोपि ॥

मत्तमातङ्गगामिनि ( मत्तबाले किरात की तरह चलने वाली ) तुम्हारी  
आलोचन—श्री ( विचार शक्ति ) प्रमाणहीन है । ( तुम प्रत्यक्ष आदि प्रमाणा  
को नहीं मानती । )

तुम बलि सश्रय ( बलवान् राजा का आश्रय ) प्राप्त कर किसका अधिक्षेप  
( अपमान ) नहीं करती ?

प्र प मत्तगजगामिनी । अप्रमाण ( बड़ी ) बाखो की शोभा और बलि  
( त्रिवलि ) श्युक्त अवलग्न ( कमर ) से सपन तुम किसकी आधि ( व्यथा )  
का क्षेप ( नाश ) नहीं करती ?

तदलमनेनालापालसत्प्रपञ्चेन । गतो भूयिष्ठो दिवस । समासञ्चो  
ऽस्मारुमाह्निकसमय । सीदत्येषा ब्रह्मपरिपद् । गगनमण्डलमध्यमा  
रोहति भगवानशेषकल्याणचिन्तामणिस्तरणि । अरविन्दारुणवदने  
न नक्तं समयमनुपालयन्त्यमी मूनय । अनुमन्यस्य । यामो वषम् ॥

नदिति ॥ तस्माद् । अल पूर्वनामनेन । आलापे स्वभापे आलस्याभश्यस्य सनो  
मध्यस्य च प्रपञ्चेन विस्तारेण । प्रकृत प्रश्रियत इति भाव । उक्तयो हि सप्रतिपक्षा  
भवन्तीत्यालप्रतिपेरे मतोऽपि प्रतिपद्य । तथाहि—'सत् सच्चरितोदयस्यरनिन  
प्रादुर्भवसन्त्रणा सर्वत्रैव जनापवाइषकिता जीवन्ति दु र्ग सदा । अश्रुप-नमति  
कृतेन न सता नैवामना व्याकुलो युष्मामुत्तविवकशू बहदयो ध-यो जन प्राकृत ' ।  
अथवा आलापस्य शान्तेनावस्तुरूपेण सन् न परमार्थेन सन् योऽसौ प्रपञ्चस्तेनाल  
निरर्थकवात् । यदुक्तम्—'यदुत्तार्थक्रियाकारि नदेव परमार्थसत्' । द्वास्व न यशो  
भाजनपानीनहिंसकस्यादिकस्य मुनीनां प्रतिपादनाद्वाद् वरुन यस्यास्तस्या  
सबोधनम् । न अरवि नक्त समयम् । अपितु सरवि सध्यासमय मुनयोऽप्यनुपाल

यन्ति । नक्तमित्यनेन सध्या लक्ष्यते । वयमत्र मुनयस्नतोऽस्माकं सध्यावसर इयमिन्द्राय । मुनीं अरविन्दवदरुगं वदनं यस्यास्तस्याः संबोधनम् । नते मुनयः सध्याकालमनु पश्चात्पाठयन्ति । अथयविधेयवात्तत्कालमेवेत्यर्थः । तस्मादनु-जानीहि यामो वयम् ॥

इस आलाप ( चर्चा ) के आल ( अन्व ) तथा सन् ( भव्य ) प्रपञ्च स क्या लाभ ?

दिन का बड़ा भाग बीत गया । हमारे सध्यानुष्ठान का समय समीप है । यह ब्राह्मण की गोठी ( बैठे बैठे ) दुःखी हो रही है । समस्त कल्याण को देने वाले भगवान् मूर्ध्ना आकाश के मध्यभाग में आ रहे हैं ।

हे दासावदने ! [ पाठीन, हिंसक, धीवर, पुण्यवत् कान्तारण इत्यादि पदों से मुझे तूने संबोधित किया है इसलिए तुम दासावदना हो । ]

अरविन्द ( मूर्धहीन ) सध्या काल की सध्या का अनुष्ठान में मुनिलोग नहीं करते । [ केवल सध्याकालीन सध्या ही नहीं करते, मध्याह्नकालीन सध्या भी करत हैं । ] आशा हो । हमलोग जान हैं ।

इत्यभिहित्वा सा प्रियंगुमञ्जरी 'महर्षे, मर्षणीयोऽयमेकस्त्वत्कुल-वधूवमो नर्मापराधः । स्वोक्तिपन्नामेतानि विविधान्युल्लसन्मयूखमञ्जरी-रचितेन्द्रचापचक्राप्याभरणानि । गृह्यतामिदमिन्दुद्युतिधवलमनल-शौचं चानांशुकपट्टपरिधानयुगलमियं च कुसुममालिका' इत्यभिधाया-स्यान्यदप्यतिथिसत्कारोचतमुपढोक्त्य प्रसादनाय प्रणाममकरोत् ॥

श्रीति ॥ दूरगुप्ता सा राज्ञा महर्षे इत्यादिभिधायानिध्यसञ्चियायोग्यमुपादाय हर्षयितुं प्रणानि चक्रे ॥

ऐसा कही जाने पर प्रियगुमञ्जरी, "महर्षे ! कुलागता व मार्ग को छोड़ कर जो यह एक मंत्रे नम्रतापूर्ण अपराध किया उसे क्षमा करेंगे । इन अस्त्रकारों को स्वीकार करें जिनमें छिटकती हुई किरण मञ्जरियों से इन्द्रधनुष जैसी रेखाएँ बन गई हैं । अग्नि की तरह पवित्र तथा वदनकान्ति की तरह धवल एक जोड़ा यह शिखरबद्ध तथा पुष्पमाला प्रहृत करें ।"

इस तरह कह कर और भी अनिधि—सत्कार = उपयुक्त चीजों को लाकर महर्षि को प्रसन्न करने के लिए प्रणाम की ।

मुनिन्तु 'गौरवमुखि, वृत्तमुक्तोऽयं हारः, दोषालयमल्लदम्, जयन्यापदाश्रयं काञ्चीदाम, सदापदाधिष्ठानं नूपुरम्, अलंकारो मण्डि-धानानेय राजते नास्माकम् । इयं च परिमलयाहिनी माला निवद्ध-मधुकरालापाचीनं वासश्च तथैवोचितम्' इत्यनेकधा दिलिष्टालापलीलया-

तिवाह्य काश्चित्कालकला कररुलितकमण्डलुर्मण्डलेश्वरमापृच्छतान्  
च प्रियगुमञ्जरीं जरठतमालनीलमम्बरतलमुदपतत् ॥

मुनिरिति ॥ वृत्तमुक्तो वर्तुलमौक्तिक शीलरहितश्च । दोषाशब्दो भुजपर्याय इति  
दोषा बाहु आलयो यस्य । दोषा अवधानि च । यद्विध — 'दोषा राज्ञी भुजेऽपि  
च' । जघने भव जघ य गर्हित च । तादृक पदमाश्रयो यस्य । 'सदा शश्वत् पदे  
पादावधिष्ठानमाश्रया यस्य । पक्षे सत्तामण्यापदामासमन्तादधिष्ठान नगरम् ।  
आपदामाधेश्च स्थानमिति वाक्ये तु सुषामादित्वात्श्वम् । इति प्रकृतेऽलकारस्य  
वर्जनं गौणवृथा दूषणम् । तस्मादेव दोषयुक्तोऽलकारो युष्मादृशीनामेव भाति,  
नास्माक यतीनाम् । यतो हि चारित्रमण्डना नर्मणस्तु अलमत्यर्थं कारो राजप्राह्य  
भागस्त्वादेशीना राजपत्नीना सगच्छते, नास्माक वनवृत्तीनाम् । लोकस्यापकुर्म  
एव वय, न कुतोऽपि किञ्चि प्रतिगृह्णीम इति भाव । इय च सुगन्धि सभृङ्गलापा  
स्रक चीनमशुक च तवैव युत, नास्माकम्, यस्मात् परितो मल वहति । तथा  
निबद्धमधुना समवेतसुरया कराला एवभूतासौ स्रक् । अपाचीन निहृष्ट च वास ।  
इति समय कचिच्छ्लेषोक्तिभिर्निर्गम्य गगनमुदगात् ॥

प्र प — गौरवमुखि । ( प्रभावमुखि । ) यह हार वृत्त मुक्त ( गोल  
मणिपों ) का बना है । इस अगद ( भुजभूषण ) के दोष ( भुजाये ) ही आलय  
है । इस करधनी का आश्रय जघनपद ( मध्य ) भाग है । ये नूपुर सदा पद  
मे ही रहते हैं इसलिए ये अलंकार आपही जैसे लोगो में अच्छे लगने है हम  
लोगो में नहीं । अमर गुञ्जार से मुखरित यह परागपूर्ण माला तथा चीनाशुक  
वस्त्र आपही के लिए उचित है ।

नि प — गौरवमुखि । यह हार ( व्यवहार ) मुक्त वृत्त ( शील रहित ) हैं  
ब्रह्मचारी मुनि के लिए चमकीले वस्त्र अलंकार तथा सुगन्धित माला आदि  
देना मर्यादा के प्रतिबन्ध है । मनु ने ब्रह्मचारियों के लिए इन सभी पदार्थों का  
निषेध किया है । यह अगद ( बाहुभूषण ) दोषो का हार है । यह करधनी  
निदा का स्थान है । यह नूपुर सज्जनों के लिए आपत्ति और आधियों ( रोगों )  
का स्थान है । परि ( चारों तरफ से ) मलवाहिनी ( रजपूर्ण ) तथा मुधु ( सुरा  
की तरह मादक गंध वाली ) कराल ( भयकर ) माला, तथा यह अपाचीन  
( अधम वस्त्र ) मैं लेकर क्या करूंगा । इस तरह श्लेष उक्तियों से बात करने  
हुए कुछ समय बिताकर हाथ में कमण्डलु उठाकर राजा तथा प्रियगुमञ्जरी से  
कहकर पुराने तमाल पत्रों की तरह नीले आकाश में उड़ गये ॥

वियति विशद्विद्युल्लोललीलायमाने  
स्फुरद्दुदपरिवेपाकारकान्तौ मुनीन्द्रे ।

यद्य गतवति तस्मिन्मिस्मयोत्तानिताश्च

क्षितिपतिरवतन्धे स्थाणुसंस्थां दधान ॥ १८ ॥

विरचीनि ॥ विम्मयास्त्रिधलाकृतिर्नृप रघाणुनोपमितः ॥ १८ ॥

आकाश में तीव्र दीप्तिपूर्ण विरची की तरह गतिवाले, चमकते हुए विशाल गोगाकार अपने तेज का परिवेष बनाने हुए मुनि के चले जाने पर आश्चर्य के मारे अपनी आँखों को ऊपर उठाये हुए राजा स्वप्न की तरह वहीं खड़े रह गये ।

[ तेज अपने पिण्ड के चारों तरफ परिवेष बनाता है । मुनि का भी वैसा ही परिवेष था ] ॥ १८ ॥

स्थित्वा च तत्कथावस्थया काञ्चित्कालकलाः कलापिकुलोत्कण्ठा-  
कारिणि रणति नवजलधररवरमणीये मध्याह्नगम्भारमेरासखे शङ्ख्युग-  
लके, विशति विसकाण्डरुवलनमपहाय तीव्रतरतपनतापताम्यसनुनि  
नवनलिनीलदच्छायामण्डलमुपवनदीर्घिकावतंसे हंसकुले कुमुदकुवल्-  
याम्भोजपत्रपुञ्जपञ्जरान्तरमनुसरति परिद्वितोष्णमधुनि, मुकुलितपद्म  
पुटे पट्चरणचक्रवाले चटुलाग्रिमनुशिखरोल्लिखितधरणिमण्डलेषु  
स्वण्डितस्वर्वदूर्वातालनीलधुरधुरायमाणघोणाकोणेषु विमुच्यमानेषु पि-  
पासातुरतुरंगेषु, धर्मविघ्नणितेषु ससूत्कारकरविमुकर्साकरासारवर्षणा-  
टिताङ्गणेषु मञ्ज्जाय सञ्ज्जतेषु सेवागतराजकुञ्जरेषु, क्रीडागिरिसरि-  
तमवतार्यमाणेषु लीलामृगमियुनेषु, पयोभिः पूर्यमाणानु पञ्जरपाक्ष-  
पयःपातपात्राेषु उद्यानारवद्वृत्तीं टीकमानासु कोयष्टिमयूरमण्डलीषु,  
क्रीडामरः सरत्सु संगीतधमस्विन्नध्विन्नकिनरेषु, कूपकूलकुलाय-  
कोणकूणितेष्वतपाठकुलकुलविङ्केषु, भवनवनवापीपुलिनपालि-  
पांसुपट्टलमुत्तमपहाय शीतलशोबलावलि श्रयति तरलितनके, क्रेँका-  
रयति क्रीञ्चकोरचक्रवाकचक्रे, क्रीडाप्ररोपितप्राङ्गणप्रान्ततदशिक्षर-  
मध्ये मध्याह्नयलिपिण्डाय पिण्डिते क्रेँकारयति काकवयसां कर्णकटु  
कुटुम्बके, यकवलयधलक्षान्क्षिपति दिक्षु दीप्रान्दीप्तिदण्डांश्चण्ड-  
रोचिधि, विसर्ज्य परिजनं राजा मञ्जनमवनायोदचलत् ॥

स्थित्वा चेत् ॥ राजापि निद्वलनेशस्तथा तमवलोक्य कंचिच्च समर्यं तत्कथामि-  
रेवानिवाद्य मन्नाह्वतानसमने प्रतस्ये ॥

उन्हीं की चर्चा में कुछ क्षण बिठाकर मयूरवर्ग में उत्कृष्टा उतरान करने वाले, नवीन मेघ की तरह रमणीय गर्जन करने वाले दोपहर को विशाल नगाड़े के साथ दो शङ्खों के बजने पर कमलनाल का खाना छोड़कर सूर्य की प्रखर किरणों से शरीर के जन्ने लगने पर उपवन सरोवर के भूपर राजहंस कमलिनी पत्रों की छाया में घुसने लगे । ( पुर्यों के ) उन्न रस को छोड़ कर अपने पंखों

को सकुचित कर भ्रमर समूह कुमुद, कुवलय तथा अम्भोज (श्वेतकमल) के पत्र समूह के भीतर जाने लगे। वे प्यास से व्याकुल घोड़े छोड़े जा रहे थे। चञ्चल खुरों के अग्रभाग से पृथ्वीमण्डल को खींच रहे थे। छोटे छोटे हरे दूब क टुकड़े नाक में अटक गये थे। अतः घुर घुर आवाज कर रहे थे। सेवा के लिए आये हुए राजकुञ्जर जो धूप से पीड़ित होकर सी सी करते हुए अपने गुण्डों से निकले हुए जलरूपों की वर्षा से आगन को भिगो रहे थे, स्नान के लिए सजाये जा रहे थे। श्रीडा सैल की नदी में लीला मृगों के जोड़े उतारे जा रहे थे। पिण्डों के पक्षियों के पानी पीने वाले पात्र भरे जा रहे थे। उपवन के अरधट्ट (रेहट) तटपर सारसों और मयूरों का समूह (प्यास बुझाने) आ रहा था। गीत श्रम के कारण स्वेद (पसीना) युक्त तथा दुखी किन्नर गण श्रीडा सरोवर की ओर बढ़ रहा था। कूप तट में बने हुए खोखलो के कोने में प्रविष्ट धूप चिह्न से कलविद्ध (चटक पक्षी) व्याकुल हो रहे थे। गृहरूपी अरण्य जलाशय की तट पत्तियों की गरम धूलि को छोड़कर चञ्चल नक्र (घड़ियाल) शीतल सैवाल पत्ति तल में आ रहे थे। श्रीडव, चक्रवाक तथा चकोर कूज रहे थे। श्रीडा के लिए आगन में रोये गये पेड़ की चोटी पर मध्याह्न बलि के पिण्ड प्राप्त करने के लिए इकट्ठे हुए काक पक्षियों का कर्ण कट्टु कुट्टुम्ब क्रेङ्कार कर रहे थे। भगवान् वगुले के पक्ष की तरह श्वेत अत्यन्त द्युतियुक्त किरणदण्ड की विविध दिशाओं में (भगवान् सूर्य) फक रहे थे। ऐसे समय में अपने परिजनो (समीपवर्ती अनुचरो) को छोड़कर राजा स्नानागार की ओर चल दिये।

गत्वा च पृथ्वीवलयमिव पय पूर्णसमुद्रद्रोणीकम् केदारोदरमिव सकलशालिस्थानम्, श्रोत्रियद्विजजनभवनमिव सकलधोतपट्टम्, अनिरमणीयं मज्जनभवनमवतारिनाभरण स्नानपीठे निषसाद् ॥

गत्वा चेति ॥ मज्जनगृह गत्वा स्नानपीठे निषण्ण गृह विशिष्यते। पयसा पूर्णा समुद्रा मुद्राङ्किता द्रोणी जलपात्री कुण्डिका यत्र। स्नानीयजलादिषु मुद्रा दायत इति राजधर्मं। तथा कलशा कुम्भास्तेषामालि पङ्क्तिस्तथा सह युक्तानि स्थानानि प्रदशा यत्र। तथा कलधोतस्य हम्मन पट्ट आसन तन सह। अन्वयत्र पय पूर्ण समुद्रो द्रोणी च यत्र। द्राणी दशविशेष। यद्विरव — 'द्रोणी स्यात्त्रीवृद्धन्तरे'। केदारोदर तु समप्रशालिस्थानम्। तथा सकला सर्वे धोता धोता चालिता पटा प्रासन्नानि यत्र ॥

जल से पूर्ण तथा मुद्रा (द्रव्य) सहित द्रोणी (जलकुण्ड) से युक्त वह (भवन) पृथ्वीवलय (समुद्र) की तरह लग रहा था।

केदार (छेत) का मध्य भाग जैसे सकल शालि स्थान (सम्पूर्ण धान का स्थान होता) है वैसे (वह भवन भी) सकल शालि स्थान (कलशों की पत्ति

सहित स्थान वाला ) है । वैदिक ब्राह्मण का घर जैसे सकल धोतपट्ट ( सभी धुले हुए वस्त्रों से युक्त ) होता है वैसे वह भी सकलधोतपट्ट ( कलधोत ( सोने ) का पट्ट ( आसन ) से युक्त है । ऐसे भवन ( स्नानागार ) में जाकर अपने अङ्गुल को धोकर कर स्नान-पीठ पर बैठे ।

[ पृथ्वीवल्लय का दो तरह से समाप्त करेगे । पृथ्व्याः वलय. समुद्रः । पृथ्वी बीच में है और समुद्र उसके चारों ओर है । इसलिए यह वह उसका बन्ध हुआ । दूसरा—पृथ्वीवल्लयस्य मुद्रया सहितस्य समुद्रस्य द्रोणीकस्य भवनस्य । महा समासभेद में वस्तुसाम्य और शब्दसाम्य दोनों है । ]

वासन्नस्थितश्चास्याधसरपाठक पपाठ—

इनके पास में खड़ा हुआ अवसरपर न्युति पाठ करने वाला पाठक ने पदा—

शररजनीकरकान्ते चित्रामरणे निशानमःसदशे ।

नय नृप मज्जनभवने सवितानामाति परमधीः ॥ १६ ॥

वरेति ॥ नृप इति सम्बोधने । अनुना तद्विनोपगानि । वर श्रेष्ठ । रजनीकरस्य चन्द्रस्तेत्र कान्तिरस्येति, चन्द्रधुने । रगे युद्धे चित्रो व्याघ्रस्तद्वराम्ना अस्तेति नयोक्ते । तथा निशानेग्नेत्रस्त्रिभिरंमस्त्रीति कृत्वा सुभटस्य अथवा निशानं निर्मंष्ट वमस्ति शोभते । तथा सदश इः कामो यस्तेति कृत्वा कर्दपप्रतिम । मखनमदने सविताना सोहोवा ठ कृत्वाधीर्घोते । अथ च मज्जनभवने सविता रविर्नामानि । पर देवत्वम् । अर्धोनिप्रम पृथे युक्तिलेसः । यतो निशायां यन्नमस्तसदशे । प्रता-तनात्तुघने हेतुरयम् । तथा चित्राग्यामरगानि यत्र । नमपदे चित्रा नक्षत्रम् । तथा वरा श्रेष्ठा रजनी हरिद्रा तां कुर्वन्ति मत्कुर्वन्तीनि कृत्वा रजनीकरा गन्धकारकास्ते । कान्ते । नमस्तु वरो दीप्तिमान् सूर्याभावाद्यः रजनीकरः शशी तेन कान्तम् ॥ १९ ॥

प्र पञ्च—पूर्वचन्द्र जैसी कान्ति वाले, व्याघ्ररतिम, तीक्ष्ण तेजवाले, कामदेव के प्रतिरूप, इस स्नानागार में आपकी तेजोल्क्ष्मी, पूर्ण विस्तार से द्योतित हो रही है ॥ १९ ॥

द्वि पञ्च—उत्कृष्ट कोटि की रजनी ( हल्दी लेपन द्रव्य ) बनाने वाले लोतो में मनोहर, विचित्र अङ्गुलरो से युक्त, रात्रिकालीन आकाश की तरह ( कुठ नोला, कुठ विभिन्न अङ्गुलरो के कारण तारो जैसा ) वि ( मधुर बोपने पक्षियों ) के विस्तार में भरे हुए भवन में उत्तम कोटि की लक्ष्मी सुशोभित हो रही है ॥ १९ ॥

तृ. पञ्च—चित्रा और भरणी नक्षत्र और वर रजनीकर ( चन्द्र ) कान्त में युक्त रात्रिकालीन आकाश में जैसे तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य नहीं चमकते वैसे आपके इस मज्जन भवन में किसी प्रकार की तीक्ष्णता नहीं है ॥ १९ ॥

[ प्रथम पक्ष—वररजनीकरकाने ! ( पूर्ण चन्द्र जैसी कान्ति वाले ) समस्त कांति शब्द के सम्बोधन का रूप 'कान्ते' है । रणे चित्राभ ( लड़ाई में व्याघ्र सदृश ) चित्र शब्द व्याघ्रवाचक है । अर्थात् चित्र ( व्याघ्र ) सदृश आभा है जिसकी । यह भी सम्बोधन का रूप है । निशानभ । ( तीक्ष्ण तेजवाले ) सदृशे ( सदृश है ) इ ( काम ) जिनके वह । अर्थात् काम का प्रतिरूप सदृशे भी सम्बोधन का ही रूप है । सदृश और इ म गुण सन्धि हुई है । सविताना ( विस्तारपूर्ण ) ।

द्वितीय पक्ष—वररजनीकरकाने—( सुन्दर हल्दी का गन्धद्रव्य बनाने वाले लोगो से मनोहर ), चित्राभरणे ( विभिन्न अलङ्कारो से मण्डित ) निशानभ सदृशे मञ्जनभवने ( रात्रिकालीन आकाशसदृश स्नानागार में ) सविताना परमश्री ( विस्तारपूर्वक लक्ष्मी ) भाति ( चमकती है ) । ( रजनी शब्द हल्दी का भी वाचक है । )

तृतीय पक्ष—वररजनीकरकाने ( पूण चन्द्रमा द्वारा मनोहर ) चित्राभरणे ( चित्रा नक्षण रूप आभरण वाले ) रात्रिकालीन आकाश मे परमश्री सविता ( पूष तेज सूर्य ) न व्याभाति ( चमकने नहीं है । ) निशानभ शब्द को सूर्य का विशेषण बनाया जा सकता है । निशान ( तीक्ष्ण ) है भा ( किरण ) जिनकी अर्थात् तीक्ष्ण किरणो वाले ॥ १९ ॥

अनन्तरमुत्तुङ्गकनककुम्भशोभास्पधिकुघमण्डलार्धबद्धोत्तरायाशुकपरिकरा सस्मरस्मितविकारकारिण्य दशितसीत्काराङ्गमलनविन्यासा, काश्चित्समुद्रवेल इव समकरोत्क्षितामलका काश्चित्तरुणतरुमञ्जरीराजय इव भृङ्गारभरभुग्गदेहा, काश्चिदन्यायकारिण्य इव सभाजनाद्भूलनकरा, काश्चिन्मलयाचलभूमय इयोरकृष्टगन्धधारितैला काश्चिद्देयलाकयसतय इव चामगधारिण्य काश्चित्पुरद्वरपुरधिका इव सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेनाकेशप्रसादनमाचरन्त्य काश्चिद्विन्ध्याटव्य इव दर्शितविविधपादपालिका, काश्चिद्राघवसेना इव कृतप्रहस्तमलना, काश्चिद्व्याकरणवृत्तय इव बाहुलता सवाहयन्य मञ्जननियुक्ता कामिन्यो राजान स्नपयामासु ॥

अनन्तरमिति परिकरमावप्येति त्रघन पठावष्टि कृत्वा कामि यो राजानमरनपयन् । समेनाविदनेण करेणोत्थितायामलकानि याभि । आमलकचूर्णं हि खानीयम् । भृङ्गार कनकालुका । भाजनं पात्रम् । नशोद्भूतं चूर्णविशेष तेन सह करपाणिर्वासाय । सभाजनेद्भूलनपाठे तुदलनमुद्गर्तनम् । उकृष्टानि उदृष्टानि गन्धधारिणि तैलानि याभि । चामरं प्रकीर्णकम् । विशिष्टो भ्रमणलनं तेन सह या कङ्कतिका केशमार्जनी तस्या उपान्तेनासमन्ताकेशानां विरलीकरणमाचरमय । पालि



पर्यायावसरः । यद्ब्रह्मणः— 'पालिः कर्णलतायां स्यात्प्रदेशे पक्षिचिह्नयोः । इष्टरमधु-  
 क्षियामश्रौ पर्यायावसरे ऋमे' । ततश्च दर्शिता विविधा पादपालिः पादमर्दनावसरो  
 यामिः । क्वं प्रकृषेण हस्तमलनं यामिः । बहुलनामिनि बाहुलंतेवेति । पञ्चे मकरै-  
 सह उच्छिप्तममलं कं जलं यामि' । ऋहागामार आगमनं तस्माद्यो मरः । तथा  
 अवाच्यवचनैः सभाजनस्योद्भूतन माटिन्य कुर्वन्ति । उद्भूतनापठे तु सभाजना-  
 दुद्भूतनमपसरणम् । उच्छिष्टगन्धधारिता एता ओषधिविधेयो यामिः । च पृथक् ।  
 अमरा देवा । सविभ्रमं सविलासं कं सुखं यत्र । कतिकोपान्ते किराकोपविगमे  
 नाकेशस्य दिवस्यते प्रसादनं कुर्वन्ति । कतानि पुरात्रिकाविशेषग वा । दर्शिता  
 विविधा पादपानामालयो यामिः । प्रहस्तो रावगप्रतिहारस्तस्य मलनमभिमव ।  
 बाहुलना बाहुलकम् ॥

इसके बाद कामिनियाँ जा स्वर्णकला की शोभा से भी स्पर्धा रखने वाले  
 लंबे स्तनमण्डल के आधे अंश को उत्तरीय ( चाडर ) से बांधते हुए कटि तक  
 को बसी हुई हैं । मुस्कुराहट से कामबिहार उत्पन्न कर देने वाली हैं । अङ्गो  
 को मलने समय सीस्कार उत्पन्न करा देती हैं । जैसे समुद्रतट समकरोत्सिप्ता-  
 मलक ( पाहू द्वारा ऊपर उठाले हुए निर्मल ( क ) जल से युक्त होता ) है  
 वैसे वे ( कामिनियाँ ) भी समकरोत्सिप्तामलक ( हाथ को बराबर कर आमलकी  
 चूर्ण शरीर पर छिड़क रही ) हैं । जैसे पूर्ण विकसित मञ्जरी पक्षि  
 झुझार— सुग्न + देह ( झुझो के आर ( आगमन ) के भार से नवी होती  
 है, वैसे ही वे झुझार + सुग्न देह ( भरे हुए स्वर्ण जल्पपात्र के भार से टेढ़ी  
 देहवाली ) हो गयी है । अन्यान्यकारिणी ( अनुचित कार्य करने वाली )  
 स्त्री जैसे सभाजनोद्भूतनकरी ( सभ्य आदमी को भी अपसर्गों या दुर्मवहारों से  
 मलिन कर देती है ) है वैसे कोई सभाजनोद्भूतनकरी ( भाजन ( पात्र तथा  
 उद्भूतन ( चूर्ण ) युक्त हाथ वाली ) है । मलय पर्वत की भूमि जैसे उच्छिष्ट  
 गन्धधारितैला ( उत्तम कोटि की गन्धवाली एला ( ओषधि विशेष ) को धारण  
 करती ) है, वैसे उनन भी कोई उच्छिष्ट गन्धधारितैला ( उत्तम कोटि के गन्ध तैल  
 को ली है ) देवगुरु की नगरियाँ जैसे चामरधारिणी ( अमरों ( देवताओं )  
 को धारण करती ) हैं वैसे वे चामरधारिणी ( चबें ली हुई ) हैं । इन्द्राङ्गनाएँ  
 जैसे सविभ्रमकटिकोपान्तेनाकेशप्रसाधन ( सविभ्रमक ( विशासुर्वक  
 सुख उत्पन्न करती हुई ) कतिकोपान्त ( कुछ शोध के समाप्त हो जाने पर  
 नाकेश ( इन्द्र ) को मानती रहती ) हैं वैसे वे भी विलासुर्वक कधी से केश का  
 प्रसाधन कर रही हैं । विन्ध्याटवी जैसे दक्षित विविध + पादपालिक ( बहुत  
 वृक्ष पक्षियों को प्रदक्षित करता ) है वैसे वे भी बहुत दृग की पाद-पालन-विधियाँ  
 दिखाती हैं । राघव-सेना ने जैसे प्रहस्त ( प्रहस्त नाम के रावणदूत ) का  
 मर्दन किया वैसे वे भी प्रहस्त ( जोरदार हाथों ) से मर्दन कर रही हैं ।

व्याकरण नियम जैसे बहुलता से प्रवृत्त होते हैं वैसे वे भी बाहुलता का संवाहन (मर्दन) कर रही है। इस तरह स्नान कराने के लिए नियुक्त कामिनीयों ने राजा को स्नान कराया।

किं बहुना—

तास्तास्तं स्नपयामासुरङ्गना कुम्भवारिणा ।

एत्य या स्यु प्रसन्नेन द्युलोकात्कुम्भवारिण ॥ २० ॥

ना इति ॥ भवस्य समारस्यारि शिवस्तेन । प्रसन्नेन हेतुना । द्युलोकात्स्वर्ग-  
लोकात् । कुं पृथ्वीम् । एथागत्य । या स्युर्भवेद्यु । तास्ताः स्त्रिय । स कुम्भवारिणा  
कलशोदकेन स्नपितवर्य ॥ २० ॥

उस राजा को कलश जल से अलामान्य सौन्दर्य की अहृगनाएँ स्नान करायीं जो भवारि (ससार-बधन के शत्रु भगवान् शंकर) की प्रसन्नता के कारण द्युलोक (स्वर्गलोक) से आयी हुई थीं ॥ २० ॥

अथ विमलदुकूलप्रान्तनिर्नीरिताङ्गः

परिहितसितधासाः स्थल्पमाङ्गल्यभूय ।

शुचिरुचितविधिज्ञः स स्वयं स्वस्थचित्तः

कुशकुसुमकरः सन्कर्म धर्म्यं चकार ॥ २१ ॥

अथेति ॥ निर्नीरित निर्जलीकृतमुद्गमितमित्यर्थं ॥ २१ ॥

इसके बाद एक निर्मल वस्त्र से शरीर के जल को पोछकर, सफेद वस्त्र तथा कुछ माङ्गलिक अलङ्कारों को पहन कर उचित विधानों का जानकार एवं पवित्र, राजा ने स्वस्थचित्त होकर स्वयं हाथ में पूल और कुश लेकर धार्मिक कृत्य किया ॥ २१ ॥

अनन्तरभावर्तितानेकस्वर्णवह्लुभो वह्लुभो जनस्य भोजनस्य समये स मयेन निर्मितया तथा स्वधर्माणं धर्मसुतसभया सभयागतजनजनि-  
तारम्भोऽरं भोजनस्थानवेदीं जनस्थानवेदीं गतवान् ॥

अनन्तरमिति ॥ भावर्तितता येऽनेके स्वर्णस्य वह्ल्लास्तौक्ष्यमानविशेषाम्तद्भ्रजा-  
यस्य । तथा वह्लुभो देयिनो लोकस्य भोजनस्य काले स राजा मयेन दैववर्धकिना  
कृतया तथा प्रतीतया शुचिष्ठिरस्य समया सधर्माणं महर्षीं भोजनस्थानवेदीम् ।  
सभयानां मागतानां शरणं प्रपन्नानां जनानां जनितरक्षोपक्रम । अरमरयर्थं जनानां  
स्थानवेदीं लोकस्योचितास्वन्न प्राप्तवान् ॥

आवर्तित ( कई बार व्यवहार में आये हुए ) कमकीलो स्वर्णमापो की तरह कान्ति वाले, लोगों के प्रिय, भयभीत लोगों के शरण में जाने पर उमकी रसा के लिए सदा प्रयत्नशील, जनस्थानवेदी ( योग्यतानुसार लोगों को स्थान देने वाली विधि का जानकार या जनस्थान ( अपने राज्य ) का जानकार)

वह राजा मम नामक दैत्य द्वारा निमित्त युधिष्ठिर सभा की तरह ( अलौकिक एवं भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाली ) भोजन-स्थान की बेदी पर गया ॥

तस्यां च यद्बुधिस्तीर्णस्वर्णभोजनपात्रपत्रशङ्खशुक्तिसनायायामु-  
पविष्टस्यास्य क्रमेण परिकरमाद्यथ्य गाढमाढौकन्त स्वस्य स्वस्या-  
नुहारिणोऽन्नविशेषानादाय सूपकाराः सूपकाराङ्गनाथ ॥

न्नां चेत ॥ सूपकारा औदिका मुष्टपकारकाश्च ॥

बहुत से बिसरे हुए स्वर्णपात्रों के पत्रों एवं शङ्ख शुक्तियों से सनापित उस ( भोजन बेदी ) पर राजा के बैठने पर कमर को बांधे हुए अपने-अपने सुस्वादु अन्नो को लेकर सूपकार ( पाचक ) तथा उनकी पत्नियों पत्तिबद्ध होकर ला रहीं थीं ॥

तथाहि—

मक्तास्तस्य भक्तन्, मुद्रा मुद्रान्, मोदका मोदकान्, अशोक-  
वर्तिन्योऽशोकवर्ती, समांसा मांसम्, नानाशाकाः शाकानि, व्यञ्जना  
व्यञ्जनम्, अपरास्तु काश्चिदक्षीरा अपि क्षीरम्, अघारिका अपि  
घारिकाः परिवेषयामासुः ॥

मक्ता इति ॥ मक्ता- प्रसादका । मुद्रा गच्छन्तीति मुद्रा । मोदयन्तीति मोद-  
काः । न शोकं वर्ततेऽभीक्ष्णमशोकवर्ती नीर्नायको येषां यामां च । समांसो धा-  
माम् नाना अनेकप्रकारा आशा येषां यामां च । 'शेषाद्विभाषा' इति कप । विशि-  
ष्टाञ्जना । अचीणि ईरयन्ति विन्नमात्कम्पयन्ति । अघस्य पापस्य ऋषिः शत्रु-  
रूपा । मक्तमित्यादि कर्मपदानि मक्तयार्थानि । परिवेषयामत्र भोजनस्य भाक्षने  
वेषयम् ॥

भक्त ( प्रसन्न कर देने वाले पाचक ) भात, मुद्रा ( प्रसन्न मुख मुद्रा वाले )  
मुद्रा ( मुँग की बनी मिठाई ), मोदक ( आनन्दमग्न कर देने वाले पाचक  
लोग ), मोदक ( लड्डू ) अशोकवर्तिनी ( शोकहीन नायक वाली ) नायिकायै  
शोकवर्ती ( भोग्य विशेष ), नानाशाक ( विभिन्न आशात्रो वाली स्त्रियाँ ) शाक,  
विशिष्ट हंग का व्यजन लगायी हुई स्त्रियाँ व्यजन, अक्षीर ( बाँसों के विलास  
युक्त स्त्रियाँ ) दूध, अघारिका ( पापों के शत्रु रूप दिव्य धर्मो वाली ) पाचिकायै  
घारिका ( भोग्य विशेष ) परोसी ।

सोऽप्यर्घाशो भूभुजां भुञ्जानो भोज्यम्, लिङ्गल्लेह्यम्, आम्या-  
दयन्न्वाद्, चूपयच्चूप्याणि, पिपन्पेयानि, आहारमकरोत् ॥

इन्हीं महीपालों का स्वामी वह ( राजा ) भी भोग्य पदार्थों को  
खाता हुआ, चाटने योग्य पदार्थों को चाटता हुआ, सुस्वादु पदार्थों को

आस्वादित करता हुआ चूमने के पदार्थों को चूमता हुआ, पेय पदार्थों को पीता हुआ भोजन किया ॥

अनन्तरमाचम्य चन्दनेनोद्धर्तितपाणिपल्लवः शीघ्रमाघ्राय धूप-  
धूमम्, आस्ये निक्षिप्य कस्तूरिकाकुङ्कुमकर्पूरकर्चुराणि क्रमुकफल-  
शकलानि. आदाय च वित्रस्तमृगतर्णकर्णकम्पाणि शुक्तिशुभ्रलानि  
ताम्बूलीदलानि, तस्मात्प्रदेशादपरमवकीर्णकुसुमहारि विस्तीर्णास्तीर्ण-  
स्वर्णमयधैदूर्यपर्यन्तपर्यङ्काङ्काप्तैः सद विनोदास्थायिकास्थानमगात् ॥

अनन्तरमिति ॥ अस्तस्य हि मृगशावस्य कर्णो स्तब्धो भवत । ताम्बूलीदला  
न्यपि तादृशीति भाव ॥

इसके बाद आचमन कर चन्दन से करपल्लव को मलकर शीघ्र ही धूप-  
धूम को सूब कर, कस्तूरी, कुङ्कुम और कपूर से कर्चुरित ( चितकाबर ) किये  
हुए कर्णों को मूल में डालकर, डरे हुए मृग शिशु के कान की तरह मनोहर  
तथा शुक्ति की तरह सफेद ताम्बूलदल ( पान ) लेकर उस स्थान से दूसरी  
जगह बिखरे हुए फूलों के कारण मनोहर बिछे हुए विस्तर वाले स्वर्णमय,  
धैदूर्य मणि से खचित, पलग वाले स्थान पर, जहाँ विनोद गोष्ठी होती  
थी, गया ॥

तत्र च सकामकामिनीकमलकोमलकरपुटपीड्यमानपादपल्लवो  
नर्तयन्नाट्यपरिपाटीपट्टघटान्, भावयन्नमृतधृतः कविवाचः, वाचय-  
श्चिरंतनकविकथाः, शृण्वन्वीणाप्रवीणकिन्नरमिथुनगीतानि, आलोक-  
यँल्लोचनोत्सवकरान्विलासिनीलास्यविलासान्, वाद्यन्मृदुवाद्य-  
विशेषान्, अवधारयन्वांशिकवाद्यवेणुनिष्काणान्, कलगिरः पाठयन्पञ्जर-  
शुकान्, कन्ताकुचकुम्भमण्डलावष्टम्भलीलयापराहस्यमतिवादि-  
तवान् ॥

वहाँ भी कामपूर्ण कामिनियों के कमल की तरह कोमल करयुग्म से  
उनके पल्लव छटपट पैर दबाये जा रहे थे । नाट्यपद्धति में प्रवीण नटों को  
नचा रहे थे, अमृत टपकने वाली कविदाणी पर विचार कर रहे थे, पुराने  
कवियों की कथाएँ पढ़ रहे थे । वीणावादन में कुशल किन्नर युगल ने गति  
सुन रहे थे, आँखों को आनन्द देने वाली विलासिनियों ( वाराङ्गनाओं ) के  
नृत्य विलास देख रहे थे । मधुर बाजों को बजा रहे थे । बंसी के वेणुदण्ड से  
निकले हुए मधुर अनुरणन पर विचार कर रहे थे । मधुर बोलने वाले  
पिंजरे के शुकों को पहा रहे थे । इस तरह रमणियों के स्तनमण्डल की संदलेप  
शीला से दिन का अपराह्न भाग बिताये ॥

क्रमेण च चपकायमागविक्रचकमलमध्यमधुपानमत्त इव पुन-  
 बांरुष्याशयामिभूतमासि मदादिव लोहियातमाने निपतति मुक्तांशु-  
 कंशुनालिनि, वनान्तरतहशिरःश्रितशास्त्राशिखरेषु गलद्रुहलकिञ्चल-  
 पुत्रपिञ्जरासु मञ्जरीश्विव चिन्त्यमानासु दिनकरदीधितिषु, विस्तार्पा-  
 शिन्ध्याकाशजघनायामुल्लसल्लोहिताधरपल्लवायामन्ताचलवनराजि-  
 रेखायानुपरि पतिनमवलोक्य रागेणमहर्षनिमोर्ष्यापोषमरादिव जाते  
 जपापुष्पगिचयदधि पश्चिमाशामुखे, मुखरयति नमो निजर्नाडनिल-  
 यनाकृतकृजितजरदण्डजत्रजे, व्रजति मरः संख्याधिविधिविधित्तया  
 द्विजजन्मजननितिनिकाये, कालागुरुसाञ्जनराग इव श्यामलयति गगन-  
 लक्ष्मीमभिसारिकावन्धाधन्धकारे, राक्षः संख्यावसरमावेद्यन्किनर-  
 मिथुनमिदमगायत् ॥

क्रेतेऽपि ॥ अन्योऽपि मनुष्येन माधर्नि । पुन पुनमंषुबाण्डया निष्प्रमः स्यात् ।  
 तथा श्रीधनया पाण्डुः सच्चिर्वहो भूमौ पति । विस्तार्पाशिलावकाश एव वचनं  
 श्रुत्वा यस्या । तथा वृहस्पतः अधरा अधस्थिताः प्रबाला यस्या । ईरयामस्ता-  
 चलाख्यराज्ञौ वररिष्टाशान्त रागिण रक्त धूमनि वीष्य रोषदिष पश्चिमदिगानने  
 रक्ते जाने । अन्यन्या अरि मुक्तामोहगुणायामपरकान्तायामनुरागिणनुरारि पतिनं  
 पतिमवलोक्येभ्यांविशाद्वर्तं स्यात् ॥

कम से चपक ( प्याले ) रूप खिले हुए कमलों के बीच के मधु पी लेने के  
 कारण मत की तरह, मर के कारण लाल होन हुए सूर्य के अपने अनु (किराती)  
 को छोड़ देने पर, विभिन्न जङ्गल के वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग पर गिरती  
 हुई गाढी पराग राशि से पित्ररित ( रक्तपीत मिश्रित रंग की ) मन्वरी की  
 तरह सूर्यकिरातों के लटक जाने पर फैली हुई शिखास्पी जघन वाली, उल्लसित  
 लक्ष्मी हपी पन्धो वाली वनस्पती की श्रेणी पर अपने प्रेमी सूर्य को गिरा  
 हुआ देवकर मानो ईर्ष्या और क्रोध के कारण पश्चिम दिशा के जपापुष्प  
 राशि सङ्घ अपने मुख कर लेने पर, अपने घोंसले में छिपने की उन्कठा से  
 वृद्ध पक्षियों के आकाश को मुनरित करना शुरू कर देने पर द्विजन्ता ( विप्र-  
 क्षत्रिय, वैश्य ) मुनिवर्ग के सन्ध्या करने की इच्छा से सरोवर की ओर चल  
 देने पर, अभिसारिकाओं के बन्धु, बन्धवार क वाकाश-रक्ष्मी को कालागुरु  
 सङ्घ अञ्जन रंग से काला करने लाने पर राक्ष का यह सध्यावदन का  
 अवसर है मानो यह बतलाता हुआ किन्नर-सुगन्ध ने गाया ॥

'भोगान्भो गाङ्ग्यांशोविमलितशिरसः प्राप्य शंभोः प्रसादा-  
 न्भोहाग्मोहानमिशाः क्वचिदपि मद्यत प्राणिनो दर्पभाजः ।  
 यस्नाद्यः स्मार्त्तविप्रप्रणतिनुनपदः सर्वसंपन्नभोगो  
 भान्वाग्नाः स्वाङ्गभूता अपि स परिहरन्स्तमेव प्रयाति' ॥ २२ ॥

भोगानिति ॥ भोगानित्यनन्तरो भो शब्द आमन्त्रणे । गात्रोर्मिनिर्मलीकृताङ्गस्य  
 शंभोः शिष्यस्य प्रसादाद्भोगान् प्राप्य भो दर्पभाज प्राणिन , मोहात्सकाशाद् ऊहान-  
 भिज्ञा अबिमर्शका क्वचिदपि विषये ना भवतेति । मायोतेऽपि सानु वन्धकत्वाद्धिधौ  
 पञ्चमी । वस्माद्धेतोः स्मार्तविप्रैः प्रणामसमये स्तुनपादपद्म । तथा सर्वसंपत् सकल-  
 श्रीः नभोगो विद्यद्गामी च यो भास्वान् रवि । सोऽपि स्वाङ्गभूता भा दीप्ती । परि  
 हरन् एव भवता प्रत्यक्षोऽस्त प्रयाति । सर्वे सुलभा दुर्लभाश्च संपन्ना भोगा अस्य-  
 त्युत्थाभिहितम् । तस्मादेवंविधस्य महाप्रमनोऽपि स्वैरस्तं बिलोक्य शंभोराधाधना-  
 दिकार्ये न प्रमदिनस्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥

गंगा की लहरो से निर्मल शिखरवाले भगवान् शंकर की कृपा से विभिन्न  
 भोगों को प्राप्त कर सदा मा ( लक्ष्मी ) विषयक ऊँह ( वितर्क ) में लगे रहने के  
 कारण ऊहानभिज्ञ ( वास्तविक पदार्थविषयक विवेक से हीन ) मत बनो,  
 क्योंकि स्मार्त ब्राह्मणों द्वारा प्रणाम के माध्यम से जिनका पैर बंदित है तथा  
 जिन्हें सभी लोग प्राप्त हैं ऐसे भगवान् सूर्य भी अपने अगभूत विरणों को  
 समेटते हुए अस्त हो रहे हैं ॥ २२ ॥

पतदारुण्यं नरपतिः सांध्यं विद्धिमन्वतिष्ठत् ।

पह सुनकर राजाने संध्यानुष्ठान किया ॥

क्रमेण प्रचुरचलन्नापकुलकालकान्तिकाशिभिर्वदलतम-कल्लोलै-  
 रालोडिते लोके लोकेभ्यरो विद्धितविकालधेन्द्राध्यापारः पारसीकोप-  
 नांतपारावारपारीणपारावतपतत्रिपञ्जरसनाथे विकीर्णवासधूलिनि  
 धूपधूममुचि विचित्रचित्रशालिनि प्रान्तप्रदापितदीपदीतिदण्डपण्डित-  
 तमसि मज्जितशय्ये शय्यागृहे गृहंतम्पृहणीयाकरागो रागसागर-  
 कल्लोललोचनयानया प्रियया प्रियंगुमञ्जरीं अलीककलहकोपकुटिल-  
 ध्रमद्भ्रूणतर्जनर्जनिनस्मितः स्मरविकारकारिकरिक्कलमकुम्भविध्र-  
 मायमाणोत्तुङ्गपीवरकुचकुम्भपीठमारोपितो रजनोमर्नपीत् ॥

क्रम में पर्याप्त रूप में चरते हुए, धाप ( कीट विशेष ) की कालिमा  
 सहस्र कान्तिवाले गाढे अन्धकार के बहोत में पूरे सप्तर के मवित हो जाने  
 पर लोगों के स्वामी ( राजा ), वेलानुसार ममस्त कायों को समाप्त कर  
 पारसी लोगों द्वारा सहस्र पार में लाये हुए क्वीन पतियों के पञ्जरो म युक्त,  
 मुर्तधित द्रव्य की धूलिसे समन्वित, विविध चित्रों में गुप्तोभित, बगल में  
 जठते हुए दीपक के प्रकाश दण्ड के कारण अन्धकारहीन, शय्या में मण्डित  
 शयनपूह में धूप-धूम को छोड़ता हुआ मनोरम लेपन शरीर में लगाकर प्रेम-  
 सागर की तरंग रूप लोचनों वाली त्रिधा ( प्रियगुमजरी ) के साथ, प्रिय्या

कण्ह क प्रसङ्ग म कोप के कारण टपे घूमते हुए भीहो क कोने स डाटन क कारण टपन्न मुस्कुराह बाधा काम विकार को उत्पन्न करन वाले, हाथी क बच्चो क कुम्भस्थल सदृश विनासपूर्ण अंच तथा स्थूल कुम्भ सदृश स्तनों पर आरोपित होकर रात बिताया ॥

पथमस्य सकलसंसारसुखपरम्परामनुभवतो यान्ति दिवस्ता ॥

इस तरह स्वप्न की समस्त सुख परम्परा का अनुभव करन हुए इस ( राजा ) का समय बीत रहा था ।

कदाचिच्चाद्यचामाकराचलचलद्देहाधिदेवतेन बहुधानन्दने सुरचिरथायानारम्भे सुरतोत्सवमनुभवन्ती पत्यु प्राणप्रिया प्रियंगुमन्वरी गर्भं धमार ॥

कदाचिदिशत । बहुधा नन्दयति हर्षयति यस्तस्मिन् । यौवनारम्भे । सुष्ठु रुचिरिच्छा रव स्वरो यस्या । शामनामिच्छा क्लमपिगी च । सुरत माह्नमेवोत्सवमनुभवन्ती प्रियगुमन्वरी गर्भं दध । चामीकराचलो मेहस्तस्य चलदेहा अधिष्ठान् दवतव । सोऽपि बहुधानकथा नन्दनाख्य वनारम्भे सुष्ठु अतिशयन रचिरवायौ सुरताया दववस्थोत्सवमनुभवति । आरम्भगमारम्भ आदिरित्यद्य । नन्दन हि वनानामादिरप्रथ प्रधानमित्यर्थ । यदि वा वनान्यारम्भन्तेऽनननि कृत्वा वनारम्भ । शतानन्दन हि प्रथम नन्दन सुष्ट्वा तद्वृत्तावयवैर्वात्रसाधादिभित्तिरवनानि जगति सृष्टानि ॥

किसी समय सुन्दर स्वप्न पर्वत की गतिशील अधिदेवता की तरह अधिकांश आनन्द ही दन वाली, रुचिकर स्वर वाली यौवन के आरम्भ म सुरतोत्सव ( पति मिलन ) का अनुभव करती हुई अपने पति के लिए अपन प्राणों स भी अधिक प्रिय प्रियगुमन्वरी ने गर्भ धारण किया ॥

तेन च त्रिकचञ्चूतमञ्जरीय कोमलफलान्वेन वन्धुररमणीया वृत्ति, चन्द्रफलेन कलाप्रवेशेनोपचीयमानप्रभा, प्रभातरेलेकोन्मालदं शुमालिमण्डलेनानन्धमाना, रत्नाकरतल्लमालेवान्तस्फुरन्माणिन्य कान्तिकलापनेद्भासमाना, गर्भसदमितेन त्वापण्यपरमाणुपुञ्जेन व्यराजत राजमहिषी ॥

नवान ॥ कुपुमात्तर्गुड फलारम्भकरसकगिकारूपो बन्ध कोमलफलबन्ध ॥

खिली हुई आभ्रमन्वरी जैसे अपन कोमल फल ( प्रारम्भिक ) गठ के कारण मनाहर प्रतीत हाती है, जैसे चन्द्ररत्न की कान्ति प्रतिदिन बढ़ती है, ज्ञान हुए सूर्यमण्डल से जैसे प्रभात वेला अच्छी लगती है, रत्नाकर ( समुद्र ) की तरंगमाला जैसे अपन भीतर छिपे हुए रत्ना की किरणों से चमकती है, जैसे गर्भ स अभिव्यक्ति होने वाली सौन्दर्य यति क कारण राजपत्नी भी सुशोभित हुई ॥

गच्छत्सु च केपुचिद्विषसेषु सुवृत्ततुद्विनाचलगण्डशैलयुगल-  
मिव बालमयूरिकाक्रान्तम्, अनङ्गसौधशिखरद्वयमिव शेखरीकृतेन्द्र-  
नीलकलशम्, उज्ज्वलरौप्यनिधानकुम्भयुग्ममिव भुजगसंगतमुखम्,  
उल्लासिहंसमिथुनमिव चञ्चूत्स्नातपङ्किलकमलकन्दम्, ऐरावत-  
मस्तकपिण्डपाण्डुरमुच्चचूचुकश्यामलिम्नाऽलंकृतभापूर्यमाणमन्तः-  
क्षीरेण क्षणं क्षणमस्त्रिद्यत पयोधरद्वन्द्वमुद्वहन्ती ॥

कुछ दिनों के बाद सुन्दर गोल हिमालय के दो गण्डशैल छोटी मयूरी से  
जैसे आभ्रान्त हो, कामदेव महल के दो ऊँचे गुम्बज पर जैसे इन्द्रनीलमणि के  
कण्ठ लगे हो, सफ़ेद रजत निर्मित ( मुद्रा ) रखने के दो कलश त्रिनका मुख  
किसी सर्प से अबरुद हो, जैसे प्रसन्न हंस का जोड़ा जिसने अपनी चोंच में  
पकसुक्त कमलमूल को उखाड़ लिया हो, ऐसे ऐरावत हाथी के मस्तक की तरह  
सुभ्र, उन्नत चूचुक की श्यामलता से अलंकृत तथा आंतरिक दुग्धभार से पूर्ण  
स्तनों को ढोती हुई प्रतिक्षण खिन्न हो रही थी ॥

यवन्ध च चन्द्रकलाङ्कुरकवलने स्पृहाम् ॥

चन्द्रकला की किरणों के उपभोग की इच्छा की ॥

अभिलाषमकरोच्च चञ्चलचञ्चरीककुलकलरवरमणीयविकच-  
चूतघनविहारेषु ॥

चञ्चल भ्रमर समूह की झंकार से मनोहर, विकसित ( मजरी वाले ) आभ्र-  
वन में विहार करने की अभिलाषा व्यक्त की ॥

स्पर्शममन्यत बहु चहलमभ्यर्णावकीर्णविकसितकमलवननिष्यन्दि-  
मकरन्दविन्दोर्मन्दतरतरङ्गसङ्गशोतलमलयमारुतस्थ ॥

पास में ही घने रूप में फैले हुए, एव खिले हुए कमलवन से चू रहे मकरन्द  
की बून्दों की अत्यन्त मद लहरी से सम्पर्क होने के कारण ठड़ी मलयाचल की  
हवा को बहुत अच्छी मानने लगी ॥

चिन्तयांचकार च चतुर्दधिलाषण्यरसमास्वादयितुम् ॥

चारों समुद्रों के सौन्दर्य रस का आस्वादन करने का विचार किया ।

अभ्यवाञ्छदतुच्छमच्छमशेषममन्दमन्दरमन्थानमन्थोत्पन्नममृत-  
मावृप्ति पातुम् ॥

मन्दराचल रूप मणियों के अमन्द मन्यत से उत्पन्न बहुमूल्य एष स्वच्छ  
सम्पूर्ण अमृत रस को भरपेट पीना चाही ।



इत्यनेकधोत्पन्नगर्भप्रभावादनुरूपद्वोहदसंपत्तिसंपन्नाधिकरुमर्नाय-  
कान्तिरुल्लसद्दहलमृगमदजललिखितविचित्रपत्रमङ्गमध्यविपुलकपोल-  
मण्डलेन मुखेन शशाङ्कमन्तस्फुरत्कलङ्कमुपहसन्ती द्विगुणमवनिपते  
न्नस्य प्रिया प्रियगुमञ्जरी यभूव ॥

गर्भ के कारण अनेकों बार अनुकूल इच्छारूप सम्पत्ति के पूर्ण होने के कारण  
उनकी कान्ति चित्र गयी । शोभा सपन गाटे कस्तूरी लेप से अकित सुन्दर पत्र-  
रचना के कारण भन्य, सुन्दर एवं विशाल कपोल महक वाले मुख से कञ्क-  
पूर्ण चन्द्रमा को उपहासित करती हुई प्रियगुमञ्जरी उस महीपाल की दुजुना  
प्रिय हो गयी ॥

तथाहि—

सा समीपस्थिनज्येष्ठा पयःपूर्णपयोधरा ।

अप्रप्रावृद्धिवाहादमरुरोत्तस्य भूपतेः ॥ २३ ॥

सा मनादिति ॥ समीपे स्थिता ज्येष्ठा वृद्धस्त्रियो ज्ञातप्रभवस्वरूपा यस्या । तथा  
पयसा क्षीरेण पूर्णो पयोधरौ स्तनी यस्या । सा प्रियगुमञ्जरी तस्य राज्ञो मुदम-  
करेत् । अप्रप्रावृद्धोऽप्रप्रावृद् आपाटवर्षा । तपञ्चे समीपे स्थितो ज्येष्ठ शुक्रो  
मायो यस्या । तथा पयसा जलेन पूर्णः पयोधरो मेघो यस्या । सुबो द्वि प्रावृद्  
परमोदकारिणीनि सुव पत्युराहादं कराति ॥ २३ ॥

प्र-पक्ष—जिसके पास में वरिष्ठ स्त्रियाँ बैठी रहती थीं, तथा जिसका पयोधर  
( स्तन ) दूध से भर आया था, ऐसी प्रियगुमञ्जरी ने उस महीपाल को आनन्दित  
कर दी जैसे वर्षाकाल की प्रथम (आपाड़) वर्षा लोगों को आनन्द देती है ॥२३॥

द्वितीय पक्ष—ज्येष्ठ का महोना जिसके पास है तथा जलपूर्ण जिनके  
पयोधर ( मेघ ) हैं, ऐसी आपाड की वर्षा पृथ्वी को आनन्द देती है । तथा  
उसके पति, भूपति को भी आनन्द देती है ॥ २३ ॥

एवमविरनयिविधयान्छोःसवाधिच्छेदकर्तरि भर्तरि, संशयैवाज्ञा-  
कारिण्यपारे परिवारे बहुभङ्गिभाग्योपभोगक्रमेणातिक्रामति कुत्र-  
चित्काले, कालकलाकुशलश्लाघनीये पूर्णप्राये प्रसवसमये, विलीन  
जात्यज्ञानकुम्भमामि भास्वत्युद्यमारोहति, हततिमिरासु दिशु क्षण-  
नेकं सा प्रसववेदनाभ्यतिकरमन्वमूत् ॥

इस तरह निरंतर पति उनकी विभिन्न आज्ञाओं को पूर्ण करता जा  
रहा था । विशाल परिवार वर्ण सकेत मात्र में आज्ञा पालन में लगा हुआ था ।  
विविध ढंग के भाग्य-दत्त पदार्थों का उपभोग करती हुई रानी का क्रम से  
समय बीत रहा था । एक पवित्र एवं प्रशसनीय अवसर पर जब कि प्रसव का

समय पूर्ण हो चला था, पिथले हुए सुन्दर सोने की तरह कान्तिवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर चढ़ रहे थे, समस्त दिशाओं का अन्धकार नष्ट हो गया था, एक क्षण तक प्रसव पीडा का अनुभव कीं ॥

ततश्च—

प्रभासंयोगिविद्यातं योग्यं नालस्यक्रमेण ।

पृथ्वीय पुण्यतीर्थंसा कन्यारत्नमजीजनत् ॥ २४ ॥

प्रमेति । कान्तिसयोगि । विद्यात प्रसिद्धम् । नलस्य नृपतेरिदं नालम् । कर्म क्षण्यपुण्यवामक तस्य । योग्यमुचितम् । कन्यारत्नम् । सा अजीजनदुष्पादया माम् । पृथ्वी पुण्यतीर्थमिव । तदपि प्रभासाद्यम् । योगिभिर्योगमार्गैरतैर्विख्यातम् । आलस्य असारस्य कर्मणो न योग्यम् । अथ च आलस्यकर्मणो न योग्यम् । किं तर्हि उद्यमक्रियायोग्यम् । ततस्तदर्थं केनापि न प्रमदितव्यमिति भावः ॥२४॥

कान्तिपूर्ण, नल द्वारा किये गए ( पुण्य ) कर्मों के अनुकूल, विख्यात कन्यारत्न का जन्म उन्होंने दिया, जैसे पृथ्वी ने पुण्य तीर्थ को उत्पन्न किया ॥२४॥

सौराष्ट्र में प्रभास नामक तीर्थ है जहाँ स्नान करने से राजयक्ष्मा रोग अच्छा हो जाता है, पृथ्वी पक्ष में इस श्लोक का अर्थ है —

योगि-विख्यात ( योगियो म प्रसिद्ध ) आलस्य का अवसर न देने वाला प्रभास नामक पुण्यतीर्थ जैसे पृथ्वी ने उत्पन्न किया वैसे ही रानी ने उस ( दमयन्ती ) कन्या ( रत्न ) को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

नत्र च दिवसे 'विकसितकुमुदकुन्दकान्तकीर्तनीयकीतिसुधया घवल्लानि करिष्यत्येपा प्रघर्षमानाम्मन्मुखानि' इति प्रियादिव प्रसन्ना-समपद्यन्त दश दिशः । 'मा स्म पुनरस्मदगुणानेपापद्वार्यात्' इत्यप-हृतैरेङ्गागुणा सभया नमस्यन्त इव तस्यै कुसुमाञ्जलिमुञ्चं ध्वन्द्रादयो देवाः । स्वकान्तिसर्वस्वापहारभयादिव दिवि ननृतुरप्सर-रसः । 'किमस्या सम समुत्पन्नमभ्यदपि कन्यारत्नम्' इत्यन्विष्यन्त इव परितः परिवभ्रमु सुरभय क्षमा समीरणा ॥

नत्र चेति ॥ कन्यारत्नान्वेषिणो हि । सुरभय सौरभ्यवन्तः । समा सथ्रीकाश्च भवन्ति ॥

उस दिन, 'मह बड़ी होकर खिली हुई कुमुदिनी की तरह कान्त ( सुन्दर ) एवं प्रदासनीय कीर्ति रूपी सुधा से हम लोगो के मुँह को उज्ज्वल बनायेगी ।' मानो इस प्रिय आशा से दशों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । पुन हम लोगो क गुणों को न चुरा ले ।' मानों इस भय से पुष्पाञ्जलि देते हुए चन्द्र आदि देव नमस्कार रह रहे थे । मानो अपनी कान्ति के मुख्याण क अपहरण क भय से

स्वर्ग न अन्तर्यामिं नाचने स्यात्, 'कदा इसके सद्य कोई और भी कन्यारत्न उत्पन्न हुआ है।' मानो इसी बात को खोजती हुई सुगंधित हवाएँ चारों तरफ घूम रही थीं।

किं बहुना—

रामन्दानन्दनिध्यन्दमपास्तान्यत्रियाक्रमम् ।

जगज्जन्मोत्सवे तस्याः पीतामृतनिवामयत् ॥ २१ ॥

आनन्द के अमन्द ( जोरदार ) प्रवाह में अन्य सनन्त नार्दकर्मों को छोड़ कर सद्य ( दमन्यी ) के जन्मोत्सव में सत्कार अमृत पान किये हुए की तरह ( आनन्दमय ) हो गया ॥ २१ ॥

अथ ब्रह्मोः कालादनु रूपप्रौढप्रहरणप्राप्तिपीनहृदयेनास्फोटितमिष सरलजगद्विजयन्यवसायसाहसिकेन कुसुमसायकेन, चिरादुचिनाश्रय-लामनुदितमनसा स्फूर्जितमिष शृङ्गाररसेन, शुशिकाशकुसुमहास्येन योग्यसहकारिकारपोपलम्भपूर्णमनोरथेन धलितमिष यत्नन्तमासेन, निजकर्मणः सफलतां मन्यमानेनोच्छ्वसितमिष मलयानिलेन, चिर-कालोपलभ्यश्लाघ्याधारतया हसितमिष रूपसंपदा, विकसितमिष लाघप्यलक्ष्म्या, प्रवृत्तमिष समन्तस्त्रीलक्षणाधिदेवतया, कन्दकलित-मिष कान्तिकलापश्रिया ॥

बहुत समय के बाद अनुकूल एक सुन्दर शक प्राप्त करने से सम्पूर्ण सत्कार पर दिव्य रूप कार्य करने में साहसी पुण्यबाण, कामदेव प्रसन्नता के भारे उठावला हो गया। बहुत दिनों के बाद उचित आहार पाने के कारण प्रसन्न-चित्त शृङ्गाररस उदीप्त सा हो उठा। अनुकूल सहकारी ( सहायक ) कारण प्राप्त कर पूर्ण मनोरथ कामदेव, विजया हाम्य पवित्र ( शुभ्र ) वाद्ययुक्त है, अत्यन्त उन्मत्त हो गया। अपने कर्म में अपने आपको सद्य मानकर दक्षिणदिशे खान ले रहा था। बहुत दिनों के बाद बहुत प्रसन्नता आहार प्राप्त हुआ है। इसलिए रूप सम्पत्ति है ही रही थी। सौन्दर्यलक्ष्मी विजय उठी थी। खी म रहने वाले सम्पूर्ण उचित लक्ष्मियों की अधिदेवता मानो नाच उठी ॥ कान्ति-समूह की लक्ष्मी कन्दकल ध्वनि कर उठी ॥

किं बहुना—

सर्गन्यापारस्विन्नम्य ब्रह्मोः कालाद्विधेरपि ।

आस्तोदिमां विनिर्माय श्लाघ्यः शिल्पपरिश्रमः ॥ २६ ॥

बहुत दिनों से सृष्टि-कार्य करने से थके हुए ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम भी इन्ने बनाकर प्रसन्नता हो गया ॥ २६ ॥

[ कोई कलाकार बहुत दिनों तक अभ्यास करता है किसी पदार्थ के निर्माण के लिए । तब किसी दिन वह कला-कार्य में पूर्ण-निष्णात होता है । बहुत दिनों के अभ्यास के बाद ही ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम प्रशसनीय बन सका । जब उन्होंने दमयन्ती जैसे अनुपम कला-कृति का निर्माण किया ] ॥

एवमस्या. सततद्विस्तीर्णस्वर्णपूर्णपात्रपूजितपूज्यद्विजन्मनि संपन्ने नामकर्मसमये समान्य मान्यजनं जनेश्वरो वरप्रदानमनुस्मृत्य दमनकमुने. 'दमयन्ती' इति नाम प्रतिष्ठितवान् ॥

इस तरह उनके नामकरण समय में निरन्तर फैले हुए स्वर्णमय पूर्णपात्रों से ब्राह्मणों का पूजन सम्पन्न कर माननीय लोगों को सम्मानित कर लोकपति ( राजा ) ने वर प्रदान की बात स्मरण कर, दमनक मुनि के आधार पर 'दमयन्ती' यह नाम निश्चित किया ॥

क्रमेण च प्रचुरामृतसंसिक्ता इव सुकुमाराः प्रसर्तुमारभन्ताङ्गावयवपल्लवा., चकार च चञ्चच्चाामीकररुचिरुचिराङ्गणमणिवेदिकासुकैश्चिद्विवसैरनुच्चचरणप्रचारचारुचापल्यलीला., सद्वासमकरोत्परिजनं जनयन्ती वालकेली., स्वच्छन्दमानन्द्याञ्चकार पितर तरङ्गभङ्गिरङ्गितेन, जननीमजीजनञ्चातविस्मयां स्मितमुग्धदर्शितदन्तकान्तिकुन्दपुष्पमनिष्पन्नाक्षरमल्पालपं जल्पन्ती ॥

क्रम से, पर्याप्त अमृत से सींचे हुए की तरह उसके कोमल अंग-पल्लवों ने बढ़ना शुरू कर दिया । चमकते हुए सोने की तरह सुन्दर आगन की मणिमय वेदिकाओं पर कुछ दिनों तक घुटने के बल चल कर उसने अपनी सुन्दर खचल लीला दिखायी । अपने चारों ओर परिजनों को बटोरेती हुई हासपूर्वक वाल लीला की । आनन्दपूर्वक विविध रंग की शैशवोचित लीलाओं से पिता को अबाध आनन्द पहुँचाया । मुस्कराहट के कारण दीख रही दन्त-कान्तिरूपी कुन्द पुष्पों में निकले हुए अस्पष्ट अक्षरों को कुछ-कुछ बोलती हुई माता को भी आश्चर्य में डाल देती थी ।

किं बहुना—

अपि रेणुकुतक्रीडं नरेऽणुक्रीडयान्वितम् ।

तम्या. प्रौढं शिशुत्वेऽपि वयो वैचित्र्यमाचहन् ॥ २७ ॥

अपिति ॥ रेणुना कृता क्रीडा यत्र । तथा 'कस्त्वा परिणेभ्यति, एव कस्मै दातव्या' इत्याद्यन्तिनिर्नरे पुंसि विषये अणुक्रीडान्वितमक्षयक्रीडाकरम् । तस्याः सयन्त्रिय वय । शैशवेऽपि प्रौढं वैचित्र्यं द्यौः । अपिर्विरोधार्थं । स च तुशयार्थस्यावयवा ॥२७॥

अधिक क्या कहा जाय :—

रेणु-क्रीडा ( धूलि क्रीडा ) पूर्वक होती हुई भी रेणु-क्रीडा से असंबद्ध थी। शैशव काल में भी उसकी प्रोक्षावन्त्या विचित्रता उत्पन्न कर रही थी। विरोध ।

रेणुहृत क्रीडा करती ( धूलि से खेलती ) थी किन्तु नर + अणु क्रीडवाम्बित्त ( उसकी विचित्र लीलाओं को देखने पर उसमें मनुष्य की कुछ समानताएँ मिलती ) थी। शैशवकाल में भी उसमें बहुत सी विचित्रताएँ थीं। परिहार ॥ २७ ॥

पञ्चमियमनवरतस्वैरविहायहारिणि क्रमेणातिक्रामति शैशवे वयसि पितुर्नियोगान् गुरुपदेशात्साधुवृद्धसंवासाद् बुद्धिविकासाच्च नाति चिरेण, प्राप्ता नैपुण्यं पुण्यकर्मात्म्येषु, ज्ञाना प्रवाणा र्वाणासु निराकुला कुलाचारेषु, कुशला शलाकालेष्येषु, विशारदा शारिदायेषु, प्रबुद्धा प्रबन्धालोचनेषु, चतुरा चातुरानायजनचिकित्मासु ॥

इस तरह निरंतर स्वेच्छया विहार और आहार करने के उपयुक्त शैशव अवन्त्या के समाप्त होने रहने पर पिता की आज्ञा से गुरुओं के उपदेश से, साधु एवं वृद्धों की संगति से, तथा बुद्धि के विकास से शीघ्र ही पुण्यकर्मों में निपुणता प्राप्त कर ले। वीणावादन में प्रवीण हो गयी, वस्तुतः जाचरण करने में धैर्यवती, द्युतविधान ( दूध खेजने ) में कुशल, शारिकाओं को खिलाने में निपुण, कालों की आलोचनाओं में तीव्र बुद्धि, आनुर ( रोगी ) तथा बनाय लोगों की चिरिरसा करने में बनुर हो गयी ॥

किं चान्यत्—

अकरोद्दनालस्यं लास्ये, प्राप प्राधान्यं धन्योचित व्यवहारेषु, वैचित्र्यं चित्रेषु, चातुर्यं तौर्यञ्चिके, कौशलं शल्योद्धारं, पाठ्य पटह-घादने, वैमल्यं नवमाल्यप्रयने, प्रागीन्यं गीन्याम् प्राकान्यं काम-कयासु ॥

७८०३०३ ॥ प्रगीता प्रमिद्धा तस्या भाव प्रागीन्यम् ॥

नर्तन में उसे आलस्य नहीं था। एक उच्छ्वरोटि के आदमी का जैसा व्यवहार होना चाहिए वैसे व्यवहारों में निपुणता और विश्रकला में विचित्रता प्राप्त की। वाद्यकला में चातुर्य, शन्य-चिकित्सा में कुशलता, पटह ( नगादा ) बजाने में पटुता, नवीन मात्रा श्रुपने में निर्मलता, गीत कलाओं में विशिष्टता तथा काम-कया में नैपुण्य प्राप्त किया ॥

किं बहुना—

न तत्काव्यं न तन्नाट्यं न सा विद्या न सा कला ।

यत्र तस्या प्रजुद्धाया बुद्धिर्नैव व्यजृम्भत ॥ २८ ॥

न तो ऐसा कोई काव्य था, न ऐसा कोई नाट्य था, न कोई ऐसी विद्या थी, न कोई ऐसी कला थी जहाँ उस जागृत बुद्धि वाली बाला की प्रज्ञा स्फुरित नहीं होती थी ॥ २८ ॥

एवमस्या शैशव एव निजजरठप्रज्ञाप्रज्ञातव्यवस्तुविस्ताराया क्रमेण तिलकभूतं नूतनन्यूतवनमिव वसन्तप्रवेशप्रथमपल्लघोल्लासेन, प्रत्यप्रघनसमयमह्वीमण्डलमिवामन्दविदलत्कन्दलकलापेन, केसरि किशोररुण्ठपीठमिवनयकेसराङ्कुरोद्गारेण, करिकलभरूपोलस्थलमिव प्रथममदोद्भेदेन, निशावसाननभस्तलमिव प्रभातप्रारम्भप्रभाप्रभावेण, सरसलिलमिव विदलितकोमलकमलकान्तिसंतानेन, मनोहारिणा संसारसारभूतेनाभूष्यत यषु कान्ततरतारुण्यावतारप्राक्प्रारम्भेण ॥

बाल्यकाल में ही अपनी प्रगाढ़ बुद्धि से जानने योग्य समस्त वस्तुओं के प्रारंभ से विस्तार तक को जानने वाली दमयन्ती का शरीर ससार के तत्त्व-भूत मनोहर यौवन से, अत्यन्त सुन्दर वसत श्रुतु क प्रथम प्रवेश के समय नवीन पल्लवों के विक्रास से उत्तम प्रतीत होने हुए आम्रवन की तरह, अमद गति से अकुरित होने वाले मूल समूह से अलकृत अचिर प्रवृत्त वर्षाकालीन भूमण्डल की तरह, गर्दन पर नवीन रोम वाले सिंह के बच्चे की तरह, प्रथमवार प्रकट हुए हस्तिपुत्रक के कपोलस्थल की तरह, प्रातःकाल की प्रारंभिक कान्ति से मण्डित आकाश मण्डल की तरह खिले हुए कोमल कमलों की कान्ति से अङ्कुरित सरोवर जल की तरह सुशोभित हो रहा था ॥

[ दमयन्ती अत्यंत रमणीय यौवन की अवस्था से मण्डित हुई । ]

ततश्च—

परिहरति वयो यथा यथाऽस्या

स्फुरदुरुकन्दलशालि बालभायम् ।

द्रढयति धनुषस्तथा तथा ज्या

स्पृशन्ति शरानपि सञ्जयन्मनोभू ॥ २९ ॥

पनपन हुए महान् मूल ( होनहार अङ्कुर ) की तरह इसकी नवीन अवस्था जैसे जैसे वृषभ को छोटती जा रही है वैसे वैसे कामदेव अपना धनुष टूट करता जा रहा है, प्रत्यञ्चा को छू रहा है और बाणा को सत्रा रहा है ॥ २९ ॥

अपि च—

मुञ्चन्त्या शिशुतां मरादवतरत्तारुण्यमुद्राङ्कित-  
स्फारीभूतनितान्तकान्तवपुपस्तस्याः कुरङ्गीदृशाः ।  
उन्मीलत्कुचकाञ्चनाञ्जमुकुलं यूनां मुहुःपश्यतां  
वाहोरन्तरमन्तरायसदृशा मन्ये निमेया अपि ॥ ३० ॥

और भी :—

शैशव को छोड़ती हुई, सवेग उत्पन्न होते हुए ( उभड़ते हुए ) यौवन के विनों में विह्वित होने के कारण प्राञ्जल ( स्पष्ट तथा अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली मृगशपा क दोनो बाहुआ के बीच स्वर्णकमल की कालिका की तरह उठने हुए स्तनों को पुन. पुन. देखन हुए युवकों की पलकों के बीच मानो कुछ व्यवधान सा पड गया है ॥ ३० ॥

[ पलकों के बीच यदि कोई चीज लेकर भर दी जायगी तो पलक गिर नहीं सकने । बीच की भरी हुई चीज उसको गिरने नहीं देती । कवि यहाँ कहता चाहता है कि दमयन्ती के सौन्दर्य का देखने समय युवकों के पलक नहीं गिरने । न गिरने का कारण कवि कल्पना करता है कि पलकों के बीच मानो कोई चीज अटक गयी है । इसीलिए उनके पलक नहीं गिरन ॥ ३० ॥ ]

ततश्च—

तत्तम्या. कमनायकान्तविजितत्रलोन्यनारोवपुः  
शृङ्गारस्य निरुतनं समभवत्संसारसारं वयः ।  
प्रम्मिन्विस्मृतपद्मपालिवलना. कामालसा दृष्टयो  
नो यूनां पुनरुत्पत्तन्ति पतिताः पार्श्वे शकुन्ता इव ॥ ३१ ॥

उनकी स्पृहणीय कान्ति में सम्पूर्ण त्रैलोक्य क रमणी-सौन्दर्य को जीती हुई दमयन्ती का वह यौवन संसार का सारतत्त्व है और शृङ्गार का भवन है जिसमें युवकों की कामविह्वल निनिमेष दृष्टिया फँसती हैं तो जाल में फसे हुए पक्षी की तरह फिर नहीं निकर पाती ॥ ३१ ॥

अपि च—

आयध्नत्परिवेषमण्डलमल वङ्ग्रेन्दुविम्बाद्वहि  
कुर्वच्चम्पकजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम् ।  
तन्वङ्गया परिनून्यतीच हसतीत्रोत्सर्पतीघोलेवणं  
लावण्यं ललतीच काञ्चनशिलाकान्त कपोलस्थले ॥ ३२ ॥

मुग चन्द्रबिम्ब के बाहर पर्याप्त गोल मण्डल बनाया हुआ, खिलती हुई चम्पक-कलिका की तरह कर्णाभरण का कार्य करता हुआ उस दृशाङ्गी का

अत्यन्त उत्कृष्ट सोदय स्वर्णमयी शिलासदृश कपोलस्पल पर नाच रहा है और उल्लसित हो रहा ॥ ३० ॥

[ प्रत्येक अत्यन्त काँतिशील पदार्थ के चारो तरफ काँति छिटकती है। उसके आकार के अनुसार एक गोल या चतुष्कोण मण्डल बन जाता है। दमयन्ती के मुखचन्द्र में जो लावण्य काँति छिटक रही है उसका परिवेप बन गया है। गौरवर्ण की छिटकती हुई काँति चम्पे के फूल की तरह कर्ण पुष्प का कार्य देती है। गौर वर्ण का होने व कारण कपोलस्पल को स्वर्णमयी शिला कहा गया है ] ॥ ३२ ॥

एतदाकर्ण्य राजा रञ्जितस्तत्कथया पुनरुदञ्चदुच्चरामाञ्चकञ्चु  
कितकायस्तत्कालमेघान्त स्फुरन्मन्मथमनोरथभरभज्यमानमानसस्त  
हसमपृच्छत् ॥

‘पक्षिराज राजीवचनाघटंस हस, पुन कथ्यता तस्या र्सप्रति  
घयोवृत्तवृत्तान्तव्यतिकर ॥’

यह सुन राजा ( नल ) उस कथा से अनुरक्त हो गया। रोवें लड़े हो गये जिससे ऐसा प्रतीत होना कि उसका शरीर कञ्चुक पहन लिया हो। उसी समय अन्तरात्मा में उभड़ती हुई कामवासना में उसका मानस व्यथित होने लगा। उसने हृष से पूजा— पक्षिराज कमलवन को मण्डित करने वाले राजहृष फिर कहो इस समय उसकी वय संधि की कथा को।

इत्युक्त पुनरेष त वभाषे—

‘देव किमेकोऽस्मद्विध पक्षी क्षीरतरङ्गधवललोचना ता वर्णयेत्  
यस्या सर्वदेवमय इवाकारो लक्ष्यते ॥’

ऐसा कहे जाने पर फिर उनमें कहा—

‘देव, क्या एक मेरे जैसा पक्षी उस दुग्धतरङ्ग-सदृश शुभ दृष्टि वाली सुन्दरी का वर्णन करे जिसकी आकृति सर्वदेवमयी की तरह है ॥’

तथाहि—

सुतारा दृष्टि, मन्नामा कटाक्षा, सुकुमाराश्चरणपाणिपल्लवा,  
सुधाकान्ति स्मितम् अरुणो दन्तच्छद भास्वन्तो दन्ता सृष्ट्या  
केशा प्रमुद्धा घाणी, गौरी शान्ति, गुरु मन्नाभोग पृथ्वी जघन  
स्थली, सुरभिर्निश्वात्स, मुगन्धराह प्रमोद, सधीर सन्त्याङ्गभोग ॥

एतावति । तारा कनीजिका देवी च । काम अभिलाष शरश्च । मन्मथ कामो  
वेभ्य । तुम ममश्च काममनसोर्मलोप । सुकुमारा कामला । तथा महेंद्रवत्



कनिष्ठेयोऽपि सुकुमारः । सुधावराकान्तिरस्तेति सुधाकान्ति शुभ्रं चन्द्रश्च । अरुण  
 वारुणो भविमारथिश्च । भास्वान् दंष्ट्रमान् सूर्यश्च । कृष्णो मेघको विष्णुश्च ।  
 प्रबुद्धा गुरुपदा । बुद्धः सुगन्धः गुदविष्णो बृहस्पतिश्च । पृथ्वी पृथुला मूष ।  
 सुरभि सुगन्धिवान्तश्च । गन्धवाह परिमन्त्रवाही वायुश्च । श्रीः कान्तिर्ल-  
 ष्मीश्च ॥

क्योंकि उसकी दृष्टि सुनारा ( सुन्दर स्त्रीविका वाली ) है । कटास सकाम  
 ( अभिप्रायपूर्ण ) है । चरन एव पापियत्तव सुकुमार ( कोमल ) है ।  
 सुम्पुराहट सुधाकान्ति ( अनृणच्छटा या चन्द्रकान्ति सहाय ) है । ओष्ठ अरुण  
 ( लाल ) है । दांष्ट्र भास्वान् ( चमकीले ) है । बाल सुकृष्ण ( बहुत काले )  
 है । बाणो प्रबुद्ध ( प्रतिभासम्पन्न ) है । कान्ति गौरी ( गौर वर्ण की ) है ।  
 स्तनो का विष्णार गुद ( विगाल ) है । अपनस्वली पृथ्वी ( बहुत बड़ी ) है ।  
 इवाम सुरभि ( सुगन्धित ) है । पमीना सुगन्धवाह ( सुन्दर गन्ध धारा  
 करनेवाला ) है । सम्पूर्ण अवयव सश्रीक ( शोभा-सम्पन्न ) है ।

[ सुनारा ( बालिपत्नी ) है । सकाम ( कामदेवयुक्त ) है । सुकुमार  
 ( कार्तिकेय ) है । सुधाकान्ति ( चन्द्रकान्ति ) है । अरुण ( सूर्य-सारथि )  
 है । भास्वान् ( सूर्य ) है । सुकृष्ण ( भगवान् कृष्ण ) है । प्रबुद्ध ( महात्मा बुद्ध )  
 है । गौरी ( पार्वती ) है । गुद ( बृहस्पति ) है । पृथ्वी ( बहुम्भरा )  
 है । सुरभि ( बसन्त ) है । सुगन्धवाह वायुदेव । सश्रीक ( लक्ष्मीयुक्त )  
 है । विविध जवदको का वर्णन करन समय ऐसे विशेषणों का प्रयोग  
 किया गया है कि वे विशेषण विभिन्न देवताओं के भी वाचक हैं । इसलिये  
 दमयन्ती को सर्वदेवमयी कहा गया है । ]

किं चान्यत्—

नशप्रमयीव निर्मिता विधिना ॥

तथादि—

भद्रपदा ज्येष्ठा सुहम्ना पूर्वोत्तरा सार्द्रहृदया मूलं कन्दर्पस्य ॥

भद्रेति ॥ भद्रं पदं पादन्वामो यस्या ज्येष्ठा प्रथमापायम् । शोमनी हस्तो  
 यस्या । पूर्वोत्तराङ्गसुतरं वयो यस्याः । सार्द्रमनिष्ठुर हृदयमस्या । कामस्य मूलं  
 कारणम् । पदे भद्रपदा ज्येष्ठा हस्तः पूर्वा उत्तरा आर्द्रा मूर्धं नक्षत्राणि ॥

ब्रह्मा ते उभे नशप्रमयी बनाया है क्योंकि—

बहू भद्रपदा ज्येष्ठा ( सुन्दर पदविन्यास करने वाली ) है और अपने पिता  
 की ज्येष्ठ संतान ) है । सुहम्ना ( सुन्दर हाथ वाली ) है । पूर्वोत्तरा ( उच्छृष्ट  
 उत्तर देने वाली ) है । सार्द्रहृदया ( स्निग्ध हृदयवादी ) है । कन्दर्पस्य  
 ( काम की अङ्ग ) है ।

[ भाद्रपद, ज्येष्ठा, हस्त, पूर्वा, उत्तरा, आर्द्रा आदि नक्षत्रों के नाम हैं । इन नामों से उसकी समानता है इसलिये उसे नक्षत्रमयी कहा गया है ॥ ]

निं घहुना—

लावण्यानिशयः स कोऽपि मधुरास्ते केऽपि दृग्विभ्रमा-  
सा काचिघ्नयकन्दलीमृदुतनोस्तारुण्यलक्ष्मीरपि ।  
सौभाग्यस्य च विश्वविस्मयकृत सा कापि संपद्यया  
लग्नानङ्गमद्वाग्रहा इय कृता सर्वे युवानो जना' ॥३३॥

लावण्यानि ॥ नवकन्दलीवन्मृदुतनुर्वैपुर्व्यस्या ॥ ३३ ॥

और क्या कहें—

वह कोई अलौकिक ही सौन्दर्यातिरेक है । दृष्टियों के वे मधुर विलास भी अलौकिक हैं । नवीन अङ्कुर की तरह कोमल अङ्गों वाली ( उस सुदरी ) की यौवनशोभा भी अपूर्व ही है । सघार को आश्चर्य म डाल देनेवाली वह कोई अलौकिक सौभाग्य सम्पत्ति है जिसके कारण कामरूप महाग्रह सभी युवकों को पकड़ लेता है ॥ ३३ ॥

[ महाग्रह—राहु, शनि आदि अत्यधिक अनिष्ट करने वाले महाग्रहों की तरह काम युवकों को सताता है ॥ ]

राजा—‘ततस्तत’ ।

राजा—‘इसके आगे ।’

हंसः—‘ततस्तस्या पुनरिदानीं—

दूराभोगभरेण भुग्नगतिना श्लिष्टा नितम्बस्थली  
घत्ते म्घर्णसरोजकुड्मलकला मुग्धं स्तनद्वन्द्वकम् ।  
आलापा स्मितसन्दरा परिचितभ्रविभ्रमा दृष्ट्य-  
न्तस्यास्तर्जितशैशघण्यतिवरं रम्यं वयो वर्तते ॥ ३४ ॥

हंस—इस समय उसके नितम्ब गति को स्वल्पित कर देने वाले विस्तार के भार से एक दूसरे से मिल गया है । मनोहर स्तनयुगल स्वर्णकमल की कलिका की शोभा धारण कर रहा है । वाणी मुसुराहट से मण्डित है । दृष्टि ध्रुविलास में परिचित है । सौदाव अवस्था न मिलन डोटकर यौवन की अवस्था रमणीय हो गयी है ॥ ३४ ॥

[ शैशव अवस्था यौवन की तर्जना में सङ्कुचित हो गयी है । ताण्ड्य अपनी तरफाई दिखा रहा है [ ॥ ३४ ॥

तदेष तस्या भकल्युवजनमनोमयूरघासयष्टे समास्तसंसार-  
सौन्दर्याधिदेवताया. कथितो वृत्तान्त. ॥

इस तरह साधुओं के मुखों के मानसपूर का निवासस्थान तथा साधुओं  
विशेष-सौन्दर्य की अभिप्रायी, उस सुन्दरी का वृत्तांत मैंने कह चुकाया ।

किमप्यत

हरचरणतारोजाराभनामातपुण्यः

परमसुकृतकन्दो सम्दमोयः स कोऽपि ।

अपि जयत् स यस्तौ तुल्यो लब्धयतेऽपि-

श्रिति कथितकथाः सप्तोऽपि हंतो व्यरंसीत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमादिस्य हृत् श्री दमयन्तीकथायां हरचरणतारो-  
जङ्गायां तृतीय अध्यायः समाप्तः ॥

— — —

इति विषयवद्वयकाशोने दमयन्ती तनुने स चण्डवाहा ।

शिशुमतिनिष्ठाविद्यापत्रे चतुरमनिरजुर्दामिषाहभित्तम् ॥ १ ॥

इति श्रीचण्डवाहनिर्वायते दमयन्तीकथाविषये तृतीय अध्यायः समाप्तः ॥

— — —

कथा अन्तिम —

भगवान् शंकर के चरणकमल की आराधना के कारण पुत्रात्मा तथा  
उत्कृष्ट पुण्यों का मूल कह चुके थे । मैं उसकी निज-कामना करता हूँ जो  
उस दुर्लभ को प्राप्त करेगा । इस तरह सारी कथा कहकर वह हंस श्री विश्व  
ब्रह्म कर लिया ॥ ३५ ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त

— — —

## चतुर्थ उच्छ्वासः

एवमेतदाकर्ण्य राजा तत्कालमाघूर्णितमाश्चर्येण, जाकुलितमौत्सुक्येन, आमन्त्रितमुत्कण्ठया कटाक्षितकन्दर्पेण, अभिवादितं रणरणकेन, ज्योत्कारितमाग्रहप्रद्वेण, पृष्ठकुशलमकालतरलनया, स्वीकृतमस्वास्थ्येन, अवलोकितं चिन्तया चेतः स्पृं स्पृयमेव स्वस्थीकृत्य चित्कितवान् ॥

यह सुन राजा शीघ्र ही आश्चर्य में पड़ गया । उत्सुकता से व्याकुल हो उठा । उत्कण्ठा से भर गया । कामदेव के कटाक्षों का विषय बन गया । चिन्ता ने नमस्कार किया । चित्तवृत्ति आग ही बन गयी । असामयिक चञ्चलता से कुशलता पीछे पड़ गयी । चित्त ने चिन्ता का अवलोकन किया । राजा ने स्वयं ही किसी किसी तरह चित्त को स्वस्थ कर अनुमान लगाया ॥

प्रायः सैव भवेदेपा पाण्याद्भ्रायि या मया ।

युगायितं विनिद्रस्य यत्कृते मे त्रियामया ॥ १ ॥

प्राय इति ॥ यदर्थं मे मम विगतनिद्रस्य त्रियामया राण्या युगेनेवाचरितम् ॥ या च पथिकाम्मया श्रुता । सैवेय हसेनापि कथिता प्रायो भवेत् । युग कृतयुगादि ॥ त्रियामयेति त्रिसक्यामितप्रहररात्रिवाचकत्वेन साभिप्रायम् । प्राय शब्दो चित्तके ॥ १ ॥

प्राय वही यह सुन्दरी है जिसके सम्बन्ध में मैंने उस पथिक से सुना था और जिसके लिये न सोने के कारण तीन ही प्रहर की रात मुझे युग की तरह प्रतीत हुई थी ॥ १ ॥

तदेतन्मे—

तद्दार्तामृतपानार्थिं भूयोऽपि धवणेन्द्रियम् ।

तृप्यते केन वानन्दवन्दे कान्ताकथानके ॥ २ ॥

दमयन्ती सम्बन्धी वार्ताऽमृत पीने के लिये कान उरकण्ठित हो गय, क्योंकि वानन्द के मूल प्रियाविषयक शर्चा से कौन तृप्त होता है ॥ २ ॥

तत्किमेनं पुन पृच्छामि ॥

नेदं नायकमथानम् ॥

नेदमिति ॥ नायकरय ईदमथान स्थितिरौचित्य न भवतीत्यर्थं । यतो घैर्यं हि नायकपद परम वदन्ति ॥

प्यास के भार को समाप्त कर देने वाला, सरोवर-जल अपनी लहरियों के कारण बहुत मनोहर लग रहा है। यहाँ के कमल भनभनाते हुए झमरो तथा महत्वपूर्ण परागों को धारण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

‘त्वमपि भद्रे वनपालिके कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय भुक्तावस्थानास्थानगोष्ठीस्थितस्य मम समीपमेप्यसि’ इत्यभिधाय राजा राजभवनमयासीत् ॥

कल्याणी वनरक्षिका, तुम भी जब यह कमलश्रेणी के नीचे पूरी त्रीडा कर ले तो भोजन के बाद विधाम-गोष्ठी में बैठे हुए मेरे पास इसे लाना” यह कह कर राजा राजभवन चले गये।

गते च राजनि राजीविनीनां जीवितसमाः समास्वादयन्स्वादुको-मलमृणालकन्दली, दलयन्दलानि, कबलयन्वहलमधुरस्निग्धमुकु-लानि, अनुशीलयन्शीतलशैबलावलीः, विलासेन स हंसस्तरंस्तरङ्गान्तरेषु चिरं चिक्रीड ॥

राजा के चले जाने पर कमलिनियों के प्राणसदृश कोमल मृणालमूलों को आस्वादित करता हुआ, पुष्पपत्रों को विदलित करता हुआ, पर्याप्त मधुर तथा चिकनी कलियों को खाना हुआ, ठंडी शैबल (शेवार) पत्तियों को छूता हुआ, विलासपूर्वक जलतरङ्ग में तैरता हुआ वह हंस देर तक खेलता रहा।

चिन्तितवांश्च तेन राज्ञा कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममा-दाय मत्समीपमेप्यसि’ इति रिन्द्रिष्टार्थमिवादिष्टा वनपालिका। ‘तत्र युक्तमिदं चिरं स्थातुमिति’ ॥

चिन्तितवांश्चेति ॥ तेन राज्ञा श्राव्यमुना प्रकारेण रिन्द्रिष्टार्थमिदं यथाभवति तथैव वनपालिकादिष्टाः इतीति किम् । यत् कृता कमलमालाया नितम्बके घनप्राये मध्यप्रदेशे क्रीडा येनेति राज्ञाभिधायः । मालाशब्दात्तस्त्रीत्वेन कमलमालाया साक्षात्स्त्रीत्वाप्यवसायाद्धितम्बकशब्दः श्यवयवोऽपि नद्वयमात्रे प्रयुक्तः । हंसेन श्वेदं प्रतीतम् । यथा कृतकं कापटिकं वा । तथा अलमपर्यम् । आलानितं बद्धम् । तथा बकवत् क्रीडा यस्य । तादृशमिमं गृहीत्वा मत्समीपमायास्यसीति ॥

उसने सोचा भी कि राजा ने ‘कृत-कमल’ इत्यादि द्वयर्पक वाक्यों में वनपालिका को आज्ञा दिया है।

[ अर्थात् कृतक ( छद्मवेषधारी ) को अलम् ( पूर्वरूप से ) आलानित ( मृद्वलित ) कर बकक्रीड ( बगुले की तरह छटपटाते हुए की स्थिति में ) मेरे पास लाना । ] इसलिये यहाँ बहुत देर तक ठहरना अच्छा नहीं है।

इत्यस्थान पवाशङ्कमान सह तेन राजहंसकदम्बकेनाम्यरतल-  
मुदपतत् ॥

तत्र च व्यतिकरे दिवापि स्फारस्फुरत्तारामण्डलमिव, विकच-  
नवकुवलयवनगहनमिव, अन्तरान्तरोन्निद्रकुमुदखण्डमुद्गीनास्ते क्षण-  
मशोभयन्त नभस्तलम् ॥

अनवरत में ही इस तरह की आशका करता हुआ राजहंस बग के साथ  
आकाश में उड़ गया ॥

उस समय, दिन में भी स्पष्ट चमकते हुए तारों की तरह, खिले हुए नवीन  
कमलवन की घनता की तरह, बीच-बीच में खिले हुए कुमुदखण्ड की तरह उड़े  
हुए वे हंस आकाश को सुशोभित किये ।

[ आकाश में जहाँ हंसों को पक्ति घनी हो जाती थी वहाँ वे घने कमलवन  
की तरह लगने थे । जहाँ एक दूसरे से कुछ अन्तर पड़ जाता था वहाँ बीच बीच  
में खिले हुए कुमुदखण्ड की तरह लगते थे । ]

अविलम्बिताश्च न चिराद्वापुर्वेदर्भमण्डलमण्डनं कुण्डिनपुरम्—  
अचतैरश्च चकितचलच्चक्रवाकालोन्यमानकृनान्वकारविभ्रमध्र-  
मद्भ्रमरभरभज्यमानाम्भोजभाजि राजभवनासन्नकन्यान्त पुरोद्यान-  
क्रांडासरसि ॥

बिना कहीं स्के जन्दी ही विदर्भ देश के अलङ्कार स्वरूप कुण्डिन नगर में  
पहुँच कर राजभवन के पास बग्याओं के अन्तपुर के उपवन वाले क्रीडासरोवर  
में उतर गये जहाँ घूमते हुए चक्रवाक चकित दीप्त पड़ रहे थे । अन्धकार का  
दृश्य उपस्थित कर देने वाले घूमने हुए भ्रमरो द्वारा कमल स्रष्टित किये जा  
रहे थे ।

[ भ्रमर इतना अधिक थे कि उनकी कालिमा रात्रि की घ्रान्ति उत्पन्न  
कर देती थी । इसीलिये चक्रवाक डर जाते थे । रात को चक्रवाक दम्पनी का  
एक दूसरे से वियोग हो जाता है अत रात से तो वे डरते ही हैं, रात के  
सदृश पदार्थ से भी डर जाते हैं । ]

सरभसप्रधरावितेन सरस्तीरविहारव्यसतिना कन्यकाजनेन निवे-  
दितास्तानवलोकयितुमतिकौतुकेन दमयन्तां कन्यान्तपुरात्पुराण-  
मदिरारुणायताक्षी क्षिप्रमाजगाम ॥

आगत्य च चट्टलतरचरणचञ्चुप्रहारविदलितारविन्दकन्दलानु-  
चालयालनलिनीवनविहारिणस्तान्प्रहीतुमेवै कशः सखीजनमादिदेश ॥

स्वयं च चलचलयचारववानालिनप्रकोष्ठेन सखिलासं विस्मय-  
करं करपल्लवेन तं राजपुत्रो राजहंसमुच्चिक्षेप ॥

शीघ्रता से दौड़ी हुई, सरोवर तटपर विहार के अभ्यासी लडकियो द्वारा बनाये जाने पर उन्हें देखने के लिये बड़ी उत्सुकता से पुरानी मंदिरा की तरह लाल आँखो वाली दमयन्ती शीघ्र अन्त पुर के बाहर आ गयी। और आकर चल चरण तथा चञ्चुओ के प्रहार से कमलदलो को तोड देने वाले, छोटी छोटी कमलिनियो के वन म प्रगल्भतापूर्वक विहार करनेवाले उन हंसो को एक-एक कर पकड लेने के लिये सखियो को आज्ञा दी। स्वयं भी ( यह राजकन्या दमयन्ती ) चल ककण की मनोहर ध्वनि से युक्त मणिबन्ध वाले करपल्लव से उस विस्मयकारी राजहंस को लीलापूर्वक उठाली।

पाणिपद्मजम्बित एव सोऽप्यभिमुखीभूय विभव्य च चेतश्चम-  
त्कारकारिणमस्यां कान्तिविशेषमाशियमदात् ॥

वह भी उनके हाथ में ही स्थित रहकर, उनकी ओर मुख कर चित्त को चमत्कृत कर देने वाले उनके अलौकिक स्वरूप को पहचान कर आशीर्वाद दिया। हे रम्भोर, ( कदली-सदृश ऊँचवाली दमयन्ती, )

‘कन्दर्पस्य जगज्जैत्रशस्त्रेणाश्चर्यकारिणा।

रूपेणानेन रम्भोर दीर्घायुः सुखिनी भव ॥ ६ ॥

कन्दर्पस्येति ॥ रूपेणेत्युपलक्षणे तृतीया। रम्भावदूरु यस्या। ‘उरुत्तर—’हायूडि  
समुद्रौ ह्रस्वश्चम् ॥ ६ ॥

आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाले कामदेव के जगद्विजयी अस्त्र, तुम इस सौन्दर्य से मण्डित होकर चिरकाल तक जीओ और सुखी रहो ॥ ६ ॥

अपिच—

निर्माय म्बयमेव विस्मितमना. सौन्दर्यस्तारेण यं

म्बव्यापारपरिश्रमस्य कलशं वेधां समारोपयत् ।

कन्दर्पं पुरुषां स्त्रियोऽपि दधते दृष्टे च यस्मिन्सति

द्रष्ट यावधिरूपमाप्नुहि पतिं तं दीर्घनेत्रं नलम् ॥ ७ ॥

निर्मायेति ॥ दर्पमहकार पुरुषा क दधते । न कमपीत्यर्थ । स्त्रिया पुन कन्दर्पं  
मन्मथ दधते । सकामा भवन्तीत्यर्थ । अपि पुनरर्थं समुच्चये वा ॥ ७ ॥

सौन्दर्य के उत्तम भाग से जिसका निर्माण कर स्वयं ब्रह्मा आश्चर्य में पड़ गये और वे अपने व्यापार श्रम का कण्डा जिसके ऊपर रखे, जिसे देखकर पुरुष दर्पहीन हो जाते हैं और स्त्रियाँ कामपूर्ण हो जाती हैं। दर्शनीय

रूप की सीमा को धारण करने वाले उस विशाल नेत्र नल को पति रूप में प्राप्त करो ॥ ७ ॥

[कलाकार मन्दिर बना कर कला को सबसे ऊपर रखता है। कला लगा देने के बाद उसे और करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता। कला रस बन का सान्पर्य है कि उसे जितना कौशल दिखाना था वह दिखा चुका। कलाकार ब्रह्म ही अपनी कला का कला नल पर ही रखे हैं। नल ब्रह्मा की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है ॥ ७ ॥

दमयन्ती तु नन्मिन्द्रणे 'क संस्कृतवाचः पक्षिणो विषदितवा-  
चश्च' इति मनमि विम्मयं मयं च, 'नामाप्याह्लादजननं नलम्य'  
इति वपुषि वेपयुं रोमान्चं च हृदयेऽनुरागमौत्सुक्यं च, समकाल-  
मुल्लोलायमानमुद्वहन्ती चिन्तयांचकार ॥

दमयन्ती तो लड़ी समय, "कहाँ ये संस्कृत बोलने वाला और तथ्यपूर्ण बातों को कहने वाला पक्षी!" यह सोचकर मन में आश्चर्य और भय, "नल का नाम ही आह्लादजनक है।" इस अनुभव से शरीर में कम्प और रोमान्च तथा हृदय में प्रेम औत्सुक्य, सब को एक ही साथ तरङ्गित स्थिति में धारण करती हुई सोचने लगी।

'सोऽयं यस्तेन पान्येन यान्त्या गौरीमहोत्सवे ।

नलोऽप्यनल पवासीद्वर्णितो मे पुरः पुरा' ॥ ८ ॥

सोऽयं यस्तेन ॥ यो नलः सः कथमनलः । परिहारे त्वनलो वद्वि । स्मरन्ता पश्येत्पुत्रात् ॥ ८ ॥

गौरी महोत्सव में जाने समय मेरे सामने उस पक्षि ने इसी नल के बारे में वर्णन किया था जो नल होता हुआ भी अनल था ॥ ८ ॥

अथास्या सखी परिहासशीला नाम नाम्नेव नलम्योद्भिन्नबहल-  
पुलकाट्कुरामिमामवल्लोन्य नर्मालापमकरोत् ॥

इसके बाद इसकी परिहासशीला नाम की सखी नल के नाम से ही इसे पूर्ण रोमाञ्चित देखकर कुछ मधुर चर्चा प्रारम्भ कर दी।

कोष्णं किं नु निपिच्यते तव बलानैलं मखि श्रोत्रयो-  
रन्तस्तिरिपक्षि पत्रमयया मन्दं मृदु ध्राम्यति ।

येनाङ्गेषु निखातमन्मथशरप्रस्फारपिच्छच्छधि-

र्नालीमेवकितोच्चकञ्चुकदचं रोम्णां वहत्युद्रमः ॥ ९ ॥



कोष्णानिति ॥ सखीश्यामन्त्रणे । त्विति वितर्के । तव कर्णयोर्मध्ये किं बलात्तैल निषिच्यमानमस्ति । किं वा मृदुतित्तिरिषिच्छ मन्द भ्रमदर्शिव । येन हेतुना । अङ्गेषु शरीरावयवेषु । निमग्ना ये कामशरा तेषां प्रस्फाराणि पिच्छानि तद्वृद्धविर्यस्य स तथोक्तो रोमणामुद्गमो रोमाञ्चो नीश्या ओषधिविशेषेण मेचकितस्य श्यामलितस्य उच्चकञ्चुकस्य कान्तिं दधाति । प्रस्फारस्य पिच्छानामप्रवेशे हेतु । अन्यथा शरेषु प्रविष्टेषु पिच्छान्यपि कथं न प्रविष्टानि तेन पिच्छवृद्धविरनि कविराचष्टे ॥ ९ ॥

सखी । क्या तुम्हारे कानों में कुछ गरम बला तैल छोटा गया है ? या तित्तिल पक्षी का कोमल पल्ल कानों में धीरे-धीरे घुमाया जा रहा है, जिससे तुम्हारे अङ्गों में घुसे हुए कामबाण के स्पष्ट पङ्क्तों जैसी कान्ति वाला उठा हुआ रोम-समूह नीली ( रङ्ग ) से रङ्गे हुए चमकीले उत्कृष्ट कञ्चुक की कान्ति को धारण कर रहा है ॥ ९ ॥

[ बाणों की पूँछ पर पङ्क्त लगाने की परम्परा थी । दमयन्ती के रोमाञ्च के रोम कामबाण के पङ्क्त सहस्र दीखते हैं । रङ्ग की दृष्टि से वे नीले कञ्चुक की तरह दीखते हैं ] ॥ ९ ॥

दमयन्ती तु तस्याः सखैलक्ष्यस्मितमेघोत्तरं कल्पयन्ती शनैः शिरःकम्पतरलितावतंसोत्पला सलज्जा चलद्विलोचनान्तेन ताम-तर्जयत् ॥

अथादीच्च तं राजहंसम् 'श्रद्धो महानुभाव, सर्वथाश्चर्यद्वैतुरसि ॥

विस्मय के साथ मुस्कराती हुई धीरे-धीरे शिरः कम्पित करने में हिलने हुए कर्णाभरण वाली लज्जावती दमयन्ती भी अपने चञ्चल कटाक्षों से उसे तर्जित की ओर राजहंस से बोली—'ओ महानुभाव, सब तरह से आश्चर्य के हेतु हो ।

तथाहि—

द्रष्टव्यानुरूपं रूपम्, महाश्चर्यगर्भाः प्रपञ्चितवाच्या वाचः, सूचितसंस्कारातिरेको विवेकः, सौजन्याश्रयः प्रश्रय, निष्कारणोप-कारधारी मैत्री ॥

वयोकि—

तुम्हारा रूप सर्वथा दर्शनीय है । बहुत आश्चर्यपूर्ण तथा विशिष्ट अर्थों से सम्पन्न वाणी है । विचार शक्ति अद्भुत संस्कार की सूचना दे रही है । नम्रता सौजन्य व्यक्त कर रही है । अकारण उपकार करने वाली मैत्री से आप सम्पन्न हैं ।

तत्त्वमनेकधा जनितविस्मयो बहु प्रष्टव्योऽसि ॥

इस तरह बहुत से आरक्षकों को जय देने वाले आप से मुझे बहुत कुछ पूछना है ।

किं तु प्रस्नुतं पृच्छाम ॥

कथय । सोऽयमात्मरूपसम्भाषितकन्दर्पद्वन्द्वदायानलो नलो नाम ॥  
यस्यैतानि मन्दरमथनक्षणशुभितक्षीरसागरतङ्गध्रमभ्रान्निभाञ्जि  
ध्रमन्नि यशांसि' ॥

किन्तु प्रासङ्गिक बात ही पूछनी है ।

कहिये, यह नल नाम का व्यक्ति कौन है ? जो अपने रूप से कामदेव के अहङ्कार रूप बनामि को उद्दीप्त कर दिया है, जिसके यश मन्दरावण से मधे जा रहे क्षीरसागर की तरङ्गों की तरह चक्कर काटते हुए घूम रहे हैं

इत्येवमुक्त सोऽपि सुन्दरि, यद्येवमुपविश्यताम् । अयर्थायता मन ।  
ध्रुयता सविध्रध्रम्' इत्यभिधाय कर्थायतुमारम्भयान् ॥

ऐसा कहे जाने पर उत्तरे भी, 'सुन्दरि !

यदि ऐसी बात है तो बैठिये, विल एकाग्र कीजिये, निश्चित होकर सुनिये ।' यह कह कर कहना शुरू किया ।

'अस्मि समस्तसुरासुरलोककर्णपूरीवृत्तवान्तकीर्तिकुन्दकुसुम, कुसुमायुधरुपरमणायदेहप्रभं, प्रभाययुक्तो विप्रमायश्च, सुचिरगुपता पकारा च, घनागमसमयो न पारिवृल्लथ, शिशिरस्त्रभायो न जात्ययुक्तश्च, राम कुशलवयो रामणीययेन जनको येदेहभागेन, नैवध प्रजातां पति, विरश्च इव नाभिभूत समरे धीरो धीरत्वेनो नाम ॥

अस्मिन् प्रभावो माहात्म्यम् । विरागो मां तेजोऽयतीति । विरोधे विषयं तार्थं शुचि पुण्यम् । विरोधे तु प्रीप्सु । यद्विषयकदा—शुचि सुखेऽनुपहते मृद्गराशाडयो' इति । 'धीप्सु हूनयेदेऽपि' इति ॥ घना प्रचुर आगम सिद्धांतो यस्य । वा समुत्थय । अरि शत्रुः । विरोधे घनागमसमयो वर्षाकाल । स च पारिवृल्लो भवति ॥ शिशिर कीर्तो मायकण्ठुवो च । जात्यं भीत्यं द्विम च । इत्युत्थवर्षातीतकालव्यतिरेक । तथा कुशलेन चतुरेण ययोदरथायौगुयण राम आह । तथा विदेहा देशास्तेषु मय येदेहो भागस्तेन जाहात्यवगुपतिप्रतिम । अयप्र रामो दाशायि । ये दिनके । दहरय मां कान्ति मरुद्वति स्याप्नोति इति कथा ह्ययस्य देशप्रभाषण शर रक्षाव्यनुहादिना रामगीवरेण मीमृश्येण । कुशलव लयस्य च जनको जगदिना । नैवध निवधदेशीय प्रजापती राजा । समरे युद्धे न कदाचिद्भिभूत । विरश्चस्तु विष्णुनाभेभूतो जात ॥

अपने उज्ज्वल कीर्तिकुन्द के फूलों से सुरलोक तथा असुरलोक के कानों को भर दिया है। कामदेव की तरह रमणीय शरीर शोभा से सम्पन्न है। प्रभावयुक्त होता हुआ भी विप्रभाव ( प्रभावहीन ) है। विरोध। प्रभाव-सम्पन्न है और विप्र + भाव ब्राह्मण में रहता है। परिहार। शुचि ( ग्रीष्म ) है लेकिन ताप नहीं देता। ( वि ) शुचि ( पवित्र ) है। किसी को ताप ( दुःख ) नहीं देता। परि। घनागम समय ( बादल आने का समय ) है लेकिन बारिबहुल ( जन्मबहुल ) नहीं है। वि०। घनागम-समय ( पर्याप्त वैदिक सिद्धान्त वाला ) है और ( वा ) अरिबहुल ( शत्रुबहुल ) नहीं है ॥

शिशिर स्वभाव ( ठंडा ) है लेकिन उसमें जलता नहीं है। ( वि० ) ठंडे स्वभाव का है लेकिन जडबुद्धि का नहीं है। परि। कुश और लव की रमणीयता में जैसे राम ( प्रशस्त ) थे वैसे वह भी कुशल ( सुन्दर ) अवस्थागत सौन्दर्य के कारण राम ( रमणीय ) है। वैदेह ( राज्य भाग ) के कारण जैसे जनक ( प्रशस्त ) थे वैसे ही वे ( निश्चित रूप से ) देह ( शरीर ) की कान्ति के कारण वह भी ( आह्लाद का ) जनक है। ब्रह्मा जैसे नाभिभूत ( नाभिदेश-उत्पन्न ) है वैसे वह भी समर ( युद्ध ) में कभी भी न + अभिभूत ( पराजित नहीं ) है। निषध देश की प्रजा वह पराक्रमी स्वामी है। उसका नाम वीरसेन है ॥

यस्य च बहुशोभयाङ्गप्रभया सह स्फुरत्युदारा मनोवृत्तिः, अखण्डनयाशया सहशी राजते राज्यस्थितिः, सज्जया सेनया सह इलाघनीया कृपाणयप्रिः ॥

यस्य चेति ॥ अत्र प्रथमातृतीययो रलेपः । बहुश इति । अभया भयरहिता । तृतीयान्ते बह्वी शोभा यस्यां तथा । तथा अत्रण्डी नय पाङ्गुण्य यस्याम् । तृतीयायां न खण्डनमस्या । तथा सङ्गोभनो जयो यस्या । सेनापदे सज्जया प्रवणया ॥

उसकी बहुश अभया ( पूर्ण निर्भीक ) मनोवृत्ति बहुशोभा ( पूर्ण सौन्दर्य-सम्पन्न ) अङ्गप्रभा ( देहकान्ति ) से ही प्रकट होती है। अखण्डनया ( पूर्ण नीनिसम्पन्न ) राज्य-स्थिति अखण्डना ( अलङ्घनीय ) आज्ञा से सुन्दर लग रही है। सज्जया ( सुन्दर विजय देने वाली ) तलवार सज्जा ( तैयार ) सेना के साथ सुशोभित हो रही है ॥

[ इस अनुच्छेद में विभक्ति श्लेष है। एक शब्द से सम्बन्ध श्लेष के आधार पर तृतीया के एकवचन और प्रथमा के एकवचन दोनों निकलने हैं। बहु-शोभया—मनोवृत्ति शब्द के विशेषण पक्ष में बहुश + अभया ( अधिक निर्भीक )

और अङ्गप्रभा पक्ष में बहुशोभा ( अत्यधिक शोभायुक्त ) शब्द के तृतीया का एकवचन ।

अखण्डना—राज्यस्थिति पक्ष में प्रथमा का एकवचन है अर्थात् राज्य-स्थिति अखण्ड ( पूर्ण ) नीति से सम्पन्न है । आज्ञा पक्ष में अखण्डना शब्द क तृतीया का एकवचन है । अर्थात् अनुल्लङ्घनीय आज्ञाओं से नीति सम्पन्न राज्यस्थिति मुहठ है ।

सज्जया—कृपापट्टि पक्ष में प्रथमा का एकवचन है । अर्थात् सुन्दर जय देने वाली कृपापट्टि । सना-पक्ष में सज्जा शब्द के तृतीया का एकवचन है । अर्थात् विजय देने वाली कृपापट्टि से तैयार सेना से मुशोभित है । }

यश्च शत्रुङ्कारो नारीषु, वीरो वैरिषु, वीभत्सः परदारेषु, रौद्रो द्रोहिषु, सहास्यो नर्मालापेषु, भयानकः संप्रामाङ्गणेषु, सकरण शरणागतेषु ॥

वह नारियों पर शत्रुङ्कारवान् रहता है । शत्रुओं पर शीर्ष दिखाता है । दूसरे की स्त्री को अपने लिए अग्राह्य समझता है । द्वेषियों पर क्रोध प्रदर्शित करता है । नम्रतापूर्ण बात के प्रसङ्ग में मुस्कराता है । लड़ाई के मैदान में भयङ्कर बन जाता है । शरण में आये हुए लोगों पर दया दिखाता है ।

यस्य च चतुरुदधितटीटीकमानशरच्चन्द्रविशदयशोराशिराजहं-  
स्य निखिंशता कृपाणेषु, कुचातुर्य कलत्रेषु, कूपदेशसेवा पाप-  
धिंकेषु लुब्धकपर्यायः कैवर्तकेषु तीक्ष्णता शस्त्रेषु धर्मच्छेदो धनु-  
विद्यायाम् ॥

यस्य चेति ॥ निखिंशता रुद्रास्वम् । कुचाम्यामातुर्यं दुर्वहभास्वात् । कूपदेश-  
स्य सेवामृगयाम्यामेसु तथा लुब्धक इति 'पर्याय एकार्यं शब्दान्तरम्' । तथा  
धर्मनामा धुमे यन्मय धनुर्विधीयते । तस्य च्छेद कर्तनम् । कृपापट्टिष्वेव  
निखिंशतादीनीति परिमल्योक्त्या न तस्येति नैव । तस्य राज्ञोः 'न । निखिंशता  
धरकर्मण्यम् । कुमित चातुर्यम् । तथा कुत्सित उपदेशो येषा तथा दाम्भिकाना  
सेवा । तथा कुम्भितो लुब्धो लुब्धकः । तस्य पर्यायः 'परिणाम' । तीक्ष्णता वाय-  
शुक्तिस्वम् । धर्मस्य पुण्यस्य च्छेदः ।

उसने शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह अपनी शुभ कीतिराशिरूप राव  
हसो में चारा चन्द्रों के तट को चिह्नित कर दिया है । उक्त महा निखिंशता  
खड्ग ( तलवार ) में है, निखिंशता ( शूरता ) किसी और में नहीं है । कुचा-  
तुर्य ( कुचो स्तना ) के भार से आतुरता ) केवल स्त्रियों में है । कुचातुर्य  
( अनैपुण्य ) किसी और में नहीं है । कूपदेश सेवा ( कूप के पास बैठकर मृगया  
अन्यास करने का कार्य ) केवल व्याधियों में है । दूसरे लोग कु + उपदेश

( अनुचित उपदेश ) का सेवन नहीं करते । लुब्धक शब्द का समानार्थक कुछ है तो केवल कैवर्त ( केवट ) वर्ग ही है । लुब्धक ( अनुचित लोभ का पर्याय परिपाक और किसी में नहीं हुआ है । तीक्ष्णता शस्त्रो म है, कोई आदमी कटु स्वभाव का नहीं है । धर्मच्छेद ( धर्म नामक पेड़ की लकड़ी से बने हुए धनुष का भङ्ग ) धनुर्विद्या के अभ्यास के प्रसङ्ग में ही होता है । धर्मच्छेद ( पुण्य का विषटन ) कही और जगह नहीं होता ॥

एवमस्य हरस्यैव करस्थं कृत्वाशेषमण्डलमनवरतविख्यातविजयाभिनन्दिन, सुन्दरकैलासनाभिरभ्यवनान्तरेषु विहरत मदननिष्ठद्गनैपधीपीनोच्चकुचकुम्भावष्टम्भमखणितवक्षस्थलम्य सुखेनाभिकामग्नि दिवसा ॥

एवमस्येति ॥ करे राजभागे स्थितमशेष मण्डल देशम् । अनवरतप्रथितविजयैर्हृष्टस्य । क जलम् । एला लता । असन पीतमाल । तै सुन्दरैरभिरभ्येषु काननविशेषेषु । विचरतस्तस्य सकामनिपधस्त्रीपीनोच्चकुचकुम्भयोरषष्टम्भेन मखणित वक्षस्थल यस्य तथोक्तस्य सत सुखेन यान्ति दिवसा । विहरणकृत्निह हरेण सहैपभ्यम् । नदा । कर पाणि । शेषायो नाग तस्य मण्डल कुण्डलाकार वपु । विजया गौरीमखी । नन्दी हरप्रतीहार । कैलासी गिरि नाभिर्मुखाथ ॥

इस तरह भगवान् शंकर जैसे हाथ में शेषनाग लिये रहते हैं और सदा पार्वती की विजया नामक सखी या भग के कारण प्रसन्न रहते हैं, सुन्दर कैलास पर्वत के नाभि ( उत्कृष्ट स्थल ) में विहार करते रहते हैं वैसे अशप मण्डल ( सम्पूर्ण देश ) को करस्थ ( अधिकार में रख ) कर सदा प्रशस्त विजयो को प्राप्त कर प्रसन्न होते हुए, सुन्दर + क ( जल ) एला ( इलायची ) तथा असन ( पीतशाल ) के कारण अभिरभ्य ( रमणीय ) वन में विहार करने हुए कामुक निपध देश की रमणियों के कलशसदृश उच्च स्तनो के सस्पर्श से कोमल वक्षस्थल वाले उस राजा के भी दिन सुख से बीत रहे हैं ॥

रुदाचिञ्चतुरुद्धिरेलाचलयितवसुधराविख्यातमपत्यमभिलपक्षनादरचरणाङ्गुष्ठनिष्ठशूनकैलासोन्मूलनागतपतद्दशवदनविरसविरुतविहमितामरमण्डलामाह्वनमहिमानमनवरतविरश्चरचितविचित्रनामसामयन्तुस्तुतिमनवरतसरुल्लोकप्रख्याणकामधेनुमनुपमवर्चसमर्चयाञ्चकार भगवन्तमभ्यिकापतिम् ॥

कदेति ॥ निष्ठवत निरसनम् । 'निष्ठापितम्' इति पाठे तु नि शेषेण स्थापनम् । अविरतम् । विचित्रनामभिर्भगभगवत्त्रिनेत्रादिभि । सामवेदार्यैश्च । विरभ्वेन विरचितस्तुतिम् ॥

किसी समय, चारों समुद्रों से घिरी हुई पृथ्वी भर में प्रसिद्ध एक सन्तान की इच्छा से भगवान् शंकर की स्तुति किया जो ( भगवान् शंकर ) कैलास

पर्वत को उखाड़ फेंकने के लिए आये हुए पर्वत सहित, रावण को अनायास ही दैर के अंगूठे से दबा देने के कारण, उसका कदम चीत्कार से हंसने हुए देवसमूह द्वारा पूजनीय महिमा वाले हैं, ब्रह्मा जिनके नामों पर आधारित सामवेद के मान्यम ने सदा स्तुति किया करते हैं, सगूर्ण ससार के लिए जो सदा कामधेनु हैं और जिनका तेज अनुपमेय है ।

अतिमत्ति तोषितहृरलम्बवरश्च निरुपमरूपयानुरूपया रूपवत्यभि-  
धानयाप्रधानया प्रियया सह मकरकेतनकेलिफलमनुभवन्नतिश्चिरमा-  
सांचक्रे ॥

अत्यन्त भक्ति से भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर उन्होंने वर प्राप्त किया । अनुपम रूप वाली रूपवती नामकी मनोनुकूल अपनी प्रधान पत्नी के साथ काम क्रीडा के पत्र का जनुभव करते हुए बहुत दिना तक सुखपूर्वक रहे ।

अतिक्रामति तु कियत्यपि समये संपन्नसत्त्वा समपद्यत रूप-  
वती ॥

हुच समय बीतने पर रूपवती गर्भवती हुई ॥

तेन च समस्तसंसारवस्तूद्घृनकान्तिकणकलितगर्भारम्भेण, नारा-  
यणनामिरिव विरञ्चोत्पत्तिकमलकन्दयन्त्रेण, कल्पपादपल्लवे पल्ल-  
वारम्भोच्छ्वासेन, मनाङ्ग्मेदुरितोदरा रराज राजीघनयना राजपत्नी ॥

सगूर्ण ससार के पदार्थों से निकले हुए कान्तिकाओं से निर्मित गर्भ के कारण उस कमलपत्रा राजपत्नी का उदर थोड़ा बड़ गया था, अतः वह ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाले कलक मूल से ( सुशोभित ) नारायण के नाभिदेश की तरह और नवीन पल्लव का आविर्भाव करने वाली कल्पवृक्ष की लता की तरह सुन्दर लग रही थी ।

क्रमेण च मेचकोच्चचूचुकुकुम्भकपोलिपाण्डिन्ना निम्नयन्ती  
मृगलाञ्जनच्छायमवाञ्छदच्छामृतपयः पिष्टमूर्तिमन्मधुमयमदन-  
मृगाङ्गमण्डलरसेनात्मानमालेतुम् ॥

कनकेने ॥ कुचकुम्भस्य चन्द्रना । मेचकचूचुकस्य लञ्जनमुपमानम् । अञ्ज-  
ममृतमेव यस्यो नीर तेन पिष्टो घृष्टो योजसौ मूर्तिमतां मधुमयमदनमृगाङ्ग-  
मण्डलावां रस सेनालेप्सुमात्मानमिषेप ॥

क्रम से श्यामल कान्ति वाले उठे हुए चूचुक विगिट स्तनकलश तथा रूपोल की शुभ्रता से मृगलाञ्जन विगिट चन्द्रमा को भी नीचा दिखा रही थी । मूर्तिमान् वसन्त, कामदेव और चन्द्रमण्डल के रस से अपने आपको लिप्त करने की इच्छा कर रही थी ।

अप्रतः सखीजनविधृतमपास्य मणिमयमुकुरमण्डलमनवरतनिशा-  
निर्मलकरवालतलेष्वात्ममुखकमलमवलोकयांचकार ॥

सखियो द्वारा गृहीत रत्नमय दर्पण को छोड़कर शान धराने के कारण निर्मल ( चमकती हुई ) तलवार में ही हमेशा अपने मुखकमल को देखा करती थी ।

[ उत्पन्न होने वाली सन्तान अत्यन्त बली एवं साहसी हो, इसलिये, विलासिताद्योतक मणिमय दर्पणों को छोड़कर तलवार से ही दर्पण का कार्य ले रही है । ]

निरस्य नीलोत्पलमजरटकण्ठीखकण्ठकेसरस्तयक्रमकरोत्कर्णाव-  
तंसम् ॥

नीलकमल को छोड़कर 'युवक सिंह के बेशर के गुच्छे को कर्णभूषण बना रही थी ।

अतिवहलकुङ्कुमाङ्ककस्तूरिकापङ्कमपहाय मत्तमातङ्गमदकर्मदेन  
निजभुजशिखरयोर्विचरयावकार विचित्रपत्रभङ्गान् ॥

अत्यन्त गाढे कुङ्कुम में मिश्रित कस्तूरी लेप को छोड़कर मतवाले हाथी के मदपङ्क से अपनी बाहुओं पर सुन्दर पत्र रचना करती थी ।

एधमन्तःस्फुरद्गर्भानुरुपदोद्ददसुखमनुभवन्ती कदाचिदुच्चस्थान-  
स्थिते सौम्यग्रहग्रामे, महाराजजन्मोचितेऽर्ह्य शुभसंभारकारणायां का-  
लवेकायां जातप्राये प्रभाते प्रभाप्रतानजनितपरिवेपमशेषतेजस्वितेजः-  
पुञ्जापहारिणमालोहितपादपल्लवोल्लसितपङ्कजच्छायम्, घौरिव रवि-  
मण्डलम्, उन्नमन्मेघमालेव विद्युल्लोलम्, अरणिरिव वितानवैश्वान-  
रम्, नरपालप्रिया प्रीणितगोत्रं पुष्पमजीजनत् ।

एवमन्तरिति ॥ घौरिव प्रमे रविमण्डलं जनयति । तमपि दीक्षिततिकृतवेष्टनम् ।  
तथा समस्तदीपप्रभृतितेजस्वितेजोमुष्पम् । पादा किरणा । पुष्पपद्मे आ ईषत्  
छोहितौ पादपल्लवी तयोश्चलितपङ्कजवच्छाया यस्य । तथा विद्युतां लोलनं छोलो  
विलास । मण्डलः पुरयपि ॥

इस तरह भीतर स्पन्दित होते हुए गर्भ के अनुकूल इच्छा विशेष के मुख का अनुभव करती हुई, किसी समय, जब सुन्दर ग्रहों का समुदाय उच्च स्थान पर था, एक महाराज के जन्म के लिए उचित दिन में, सुखसमूह के कारणी-  
भूत मूहूर्त में, जब भोर हो चला था, अपनी कान्ति के विस्तार से गोलाकार परिवेप बनाये हुए समस्त तेजस्वियों के तेजपुञ्ज का अपहरण कर लेने वाले

तथा अपने लाल किरण पत्रव मे कमरकान्ति को उल्लसित कर देनेवाले सूर्य-मण्डल को जैसे आकाश, बिजली के विकास को जैसे उमड़ती हुई मेघमाला और विम्बृत अग्नि को जैसे अरणि ( लकड़ी ) जन्म देती है वैसे ही राजपत्नी ने वंश को तृप्त कर देने वाले पुत्र को जन्म दिया ।

तत्र च दिवसे—

सांशुकोन्नतवंशस्य तस्य राशः पुरस्य च ।

बभूव लक्ष्मीः सा कापि यया स्वर्गोऽपि निर्जितः ॥ १० ॥

सायुकेति ॥ राज्ञः पुरस्य च सा काचिद्व्रजि शोभा । यथा स्वर्गच्छर्तातिवृत्त्वा स्वर्गो देवः स्वर्गलक्ष्मी लोकाश्च त्रिनः अशुना रविणा सह सांशुक वन्नतो वशो यस्य । रवेर्वंशस्य च तुल्यमुदयनमिष्टम् । प्रप्रे तस्याप्युदितरवाद् । पुरं च सन्ना-कोच्छ्रितवेणुक्म् ॥ १० ॥

उस सायुकवध ( सूर्यवशी ) कुलीन राजा की ओर सायुकवध ( बखविसिष्ट ध्वजा के बांसवाले ) उस नगर की ऐसी शोभा हुई कि स्वर्ग मे रहने वाले देव और स्वर्ग दोनों ही जीत लिये गये ॥ १० ॥

[ अंशुक किरण और बख दोनों अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है । वीरसेन सूर्यवशी राजा था । स्वर्ग शब्द देव और स्वर्गलोक दोनों का वाचक है । राजपुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में नगर में बड़ी ऊँची-ऊँची ध्वजाएँ फहरा रहीं थीं । अतः नगर ने अपनी शोभा से स्वर्ग को जीत लिया और राजा भी अपने नवीन वंशाङ्कुर से देवताओं की अपेक्षा अधिक महिमावान् हो गया ॥ १० ॥ ]

अपिच—

सवृद्धयालाः कालेऽस्मिन्मुक्ताहारविभूषणाः ।

प्राप्ताः प्रीति पुरे पौय वनेषु च तपस्विन ॥ ११ ॥

सवृद्धेति ॥ वृद्धः पितामहादि बाल पुत्रादिः । ताम्या सइ । मौक्तिकहारालं-कारमा पौरा- । मुनयस्तु सवृद्धकेशाः कृषादेरसंस्कारात् । तथा मुक्ता आहारा यैः । तथा श्यपेनमूषाश्च ॥ ११ ॥

और—

उस समय मे नगर मे नगर निवासी बालक और वृद्ध मुक्ताहार विभूषण (मुक्ताहार मे अलङ्कृत) थे और वन मे तपस्वी लोग मुक्ताहार विभूषण ( उपवास व्रत के कारण मण्डित ) थे ॥ ११ ॥

[ इतना दान दिया गया कि आबाल वृद्ध सभी मुक्ता के हार से अलङ्कृत हो गये । तपस्वी लोगो ने वन मे नर की मङ्गलकामना से उपवास आदि अपने व्रतों को और सय कर दिया ॥ ११ ॥ ]



सूतीगृहे च—

अलंकृतनिशान्तेन तरुणारुणरोचिषा ।

प्रदीपानां प्रभा तेन प्रभातेन यथा जिता ॥ १२ ॥

अलमिति ॥ येन प्रभातेनेव प्रदीपानां प्रभा जिग्ये । अलंकृतं निशान्तं गृहं येन । तथा तरुणारुणी मध्याह्नार्कस्तद्वद्रोचिर्यस्य । अत एव दीपप्रभा निप्रभा । महामना हि भूमिष्टेन तेजसा दीपप्रभाप्यभिभूयते । प्रभातेन तु अलमथर्थम् । तरुण्या नूननया अरुणस्य रविसारथे रोचिषा । कृतो निशाया रात्रेरन्तो येन । यदि वा अरुणरोचिषा लोहितकान्तिना तरुणोपलक्षितेन प्रभातेन तत्समये हि दिनकरकर-स्पर्शात्स्तरवो रक्षीभवन्ति ॥ १२ ॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर को अलङ्कृत कर देने वाले तथा मध्याह्नकालीन सूर्य की तरह पर्याप्त कान्ति वाले उस ( नवजात शिशु ) ने प्रदीपो की कान्ति को जीत लिया ॥

प्रभात पक्ष—नवीन एवम् अरुण कान्ति वाले, रात्रि के अन्तिम क्षणा को मण्डित कर देने वाले उस प्रातः काल ने प्रदीप की प्रभा को जीत लिया ॥ १२ ॥

[ रात्रि के अन्त में आने वाला प्रभात जैसे तरुण अरुण की कान्ति से प्रदीप की प्रभा को नष्ट कर देता है उसी तरह उस नवोदित बालक ने अपने भास्वर तेज से दीपको की हतप्रभ बना दिया । बड़े तेज के सामने छोटा तेज बिलीन हो जाता है । उस तेजस्वी बालक के सम्मुख दीपक का तेज म्लान हो गया ॥ १२ ॥ ]

चिरात्पल्लवितं राजघंशेन, समुच्छ्रसित राज्यधिया, प्रीतं प्रण-  
यिभिः, प्रनृत्त पौरैः, प्रमुदितं वान्धवैः, चिद्राणं द्रोहिजनै, उन्नदितं  
वियत्यदृष्टमङ्गलयादिभैः, चित्रायितमनिबद्धलपरिमलपतत्पुष्पवृष्ट्या,  
विकसितं दिग्बधूवदनारविन्दैः, विलसितमतिसुरभिसुखस्पर्शसमीर-  
णेन, स्वच्छन्दायितं वन्दीकृतारातिरमणाभि, धात्यायितमर्यिलोकेन ॥

चिरादिति ॥ चित्रायित भक्तिविशेषविन्यासायितम् । कुमारजन्मोत्सवे गुप्तीनां मोक्षणाद्वन्दीनां स्वाच्छन्दम् । आदवश्वे त्यागानिश्चयो हेतु ॥

बहुत दिनों के बाद राजवंश ने नवीन अक्षुर धारण किया । राज्यलक्ष्मी ने स्वास लिया । प्रेमी लोग प्रसन्न हो उठे । नागरिक लोग नाचने लगे । बन्धु लोग प्रसन्न हो गये । द्रोणी लोग विदीर्ण हो गये । आकाश में मङ्गल बाजे बज उठे । अत्यन्त गाढ़े पराग बरसते हुए फूलों की वृष्टि से आकाश चित्त-कबरे रङ्ग का हो गया । दिग्गङ्गनाजो का मुक्कमल खिल उठा । अत्यन्त सुखद एव सुगन्धित वायु ने अपना विलास प्रदर्शित किया । बन्दी बनाये गये सन्धुओं

की पत्नियों ने स्वच्छन्दता का अनुभव किया । पाचक लोग धनवान् जैसे हो गये ।

किं बहुना—

धृष्टिनिष्टधूर्लीकमशरत्रिर्मलाम्बरम् ।

अपीनमत्तलोकं च जगच्चन्मोत्सवेऽभवत् ॥ १३ ॥

शृणोति ॥ वृष्टया हि धूर्ली नश्यति । शरदा घोरमलता । पानेनेन्मादा । यस्त्वेहस्तं तदन्तरेणापि जगदजायत म तदुत्पत्तिप्रमात्र ॥ १३ ॥

उसके जन्मोत्सव में सप्ताह वर्षों के दिना ही धृष्टिहीन हो गया । बिना शरत् काल आये ही आकाश निर्मल हो गया । बिना मदिरा पीये ही सब लोग मत्तवाले हो गये ॥ १३ ॥

[ वर्षों से धृष्टि को नष्ट होना चाहिये, शरत्काल के प्रभाव से आकाश को निर्मल होना चाहिये । मदिरापान से ही लोगों को मत्त होना चाहिये । इन कारणों के बिना ही ये सब कार्य हो रहे हैं, यह सब उस नवजात सिन्धु का प्रभाव है ॥ १३ ॥ ]

भूते च धिमवभूयिष्ठे पृष्ठाजागरणन्यतिकरे, अतिक्रान्तेषु च सूतक-  
दिवसेषु नामकरणोचितेऽद्धि न लाम्यति धर्मधनान्येष साधुभ्यः'  
इति ब्राह्मणाः, प्रविश्य तस्य 'नलः' इति नाम प्रतिष्ठापयामासुः ॥

भूते चेति ॥ प्रविरयेति । निमिच्छामामुद्रिकलपगाज्जन्मलम्नाशा साधूनां धना-  
ग्रहणे अन्नमुत्सन्नमिप्रायमाश्रित्येवय्यं ॥

ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में छ दिनों के बीत जाने पर और प्रभुति दोष वाले दिनों के समाप्त हो जाने पर नामकरण के लिए उचित दिन में ब्राह्मण लोगों ने आकर "साधुओं की धर्म सम्पत्ति को यह नहीं लेगा" इसलिये नल नाम रखा ॥

क्रमेण च चतुष्टयधिवेलावनविकासोचितकीर्तिकुन्दकन्दलैर्विश्व-  
विद्वंभरामिलम्भलम्पाकैः कुमारसेवकैरिव सकलवक्रवर्त्तिचिह्नैरलं-  
कृताययवो विस्तरजटालवाल, कल्पपादपाङ्कुर इव वर्धितुमारमत ॥

ज्नेनेति ॥ कुमारमेवका युवराजानुचरा । तदुपमै राजचिह्नै रेन्वाकृतैश्चक्रवाप-  
कुलिशादिभिर्मुपिताद् । तथा विस्तरन्ते जटाला स्वभावजटाबन्धा वालाः कचा यस्य । वृत्तचूडाकरणस्य हि केशा विज्जतीभवन्ति । कल्पवृक्षस्तु प्रमरन्मूला-  
लवालः ॥

चारों समुद्रों के तट ( पृथ्वी ) के विकास के उपयुक्त कीर्ति के मूल, सम्पूर्ण पृथ्वी की प्राप्ति के मुक्क, चक्रवर्ती सम्राट की रेखाये उस बालक को सेवक की तरह अङ्कुरित कर रही थीं । कल्पवृक्ष का अङ्कुर जैसे विस्तर पटालवाल

[ आलवाल ( घाले ) में फैलती हुई जटा ( जड़ ) वाला ] होकर बढ़ता है जैसे वह विस्तर जटालवाल ( बढ़ते हुए जटा युक्त बेशो वाला ) बालक बढ़ना शुरू किया ।

[ उसके शरीर में चक्रवर्ती सम्राट् के लक्षण थे । उन लक्षणों से ज्ञात होता था कि वह समुद्रान्त पृथ्वी का विकास करेगा और सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित करेगा । यहाँ कल्पवृक्ष और बालक में केवल शब्दसाम्य है । दोनों ही विस्तर जटालवाल हैं । कल्पवृक्ष का अङ्कुर ऊपर की ओर तब बढ़ता है जब उसकी जड़ उसके आलवाल में खूब फैल लेती है । नियम सर्वविध वृक्षों के लिये है । जड़ जब नीचे फैलेगी तभी अङ्कुर ऊपर की ओर अधिक पल्लवित होंगे । उस बालक के बढ़ते हुए बाल स्वाभाविक जटाओं से युक्त हैं चूडाकर्म सस्कार के पहले बच्चों के बालों में जट बंध जाता है । उसी अवस्था का यहाँ वर्णन है । चूडाकर्म सस्कार के समय मुडन कराया जाता है । मुडन के बाद के बालों का स्वाभाविक जटबन्ध नहीं होता । ]

विरचितचूडाकरणादिसस्कारक्रमश्च प्राप्ते विद्याग्रहणकाले निमित्तमात्रीकृतोपाध्यायः स्वयमेव समस्तानवद्यविद्याम्भोनिभेः परं पारमयाप ॥

चूडाकरण सस्कार हो जाने पर विद्याग्रहण के लिये उचित समय में निमित्तमात्र के लिये अध्यापक का अवलम्बन लेकर उसने सम्पूर्ण पवित्र विद्याओं के सागर को अनायास ही पार कर लिया ।

तथाहि—

प्रबुद्धबुद्धिर्वीक्षे, सविशेषशेमुपीको वैशेषिके, विख्यातः सांख्ये,  
रजितलोको लोकायते, प्राप्तप्रभ. प्राभाकरे, प्रतिच्छन्दकश्छन्दसि,  
अनल्पविकल्पः कल्पज्ञाने, शिक्षाक्षमः, शिक्षायाम्, अकृतापशब्दः शब्द-  
शास्त्रे, अभियुक्तो निरुक्ते, सज्जो ज्योतिषि, तस्ववेदी वेदान्ते, प्रसिद्ध-  
सिद्धान्तेषु, स्वतन्त्रमन्त्रीचाद्येषु, पटुः पटुद्दे, अप्रतिमरत्नो झल्लरीषु,  
निपुणः पणवेषु, प्रवीणो वेणुषु, विप्रकृच्चिप्रविद्यायाम्, उद्दामः  
कामतन्त्रे, कुशलः शालिहोत्रे, श्रेष्ठः काष्ठकर्मणि, सायलपो लेप्ये,  
पण्डित कीदण्डे, शौण्डः शारिषु, गुणवान्गणिते, बहुलो वाहुयुद्धेषु  
चतुरश्चतुरङ्गचतुष्क्रोडायाम्, उपदेशको देशभाषासु, अलौकिको  
लोकज्ञाने ॥

प्रबुद्धेति ॥ चिप्रकृतलक्षणं ह्यन्य । कल्प वित्देवनाचाराधनविधिशास्त्रम् ।  
अकारादिवर्णान्मन्त्रस्थानानां बोधिना शिक्षा । अन्वयस्य प्रकाशक निरक्षम् । अती-  
न्द्रियशुभाशुभकर्मणां प्रकाशक ज्ञातिपम् ॥

बौद्धदर्शन में उनकी बुद्धि प्रबुद्ध हो गयी । वैशेषिकदर्शन में विशेष पद्धतियों के जानकार हो गये । सांख्यदर्शन में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर ली । चार्वाक-दर्शन में लोगों को प्रभावित करने लगे । प्राभाकर ( मीमांसा ) में भी अच्छी प्रतिभा प्राप्त कर ली । छन्दःशास्त्र में भी नूतन-नूतन कल्पनाएँ करने लगे । कल्प ( विपन्न लोगों की अर्चना विधि के ) शास्त्र में पर्याप्त कल्पना प्रबल हो गये । शिक्षा ( बच्चों का ठापति विषयक ज्ञान देने वाले ) शास्त्र को तो पढ़ा देने में समर्थ हो गये । व्याकरणशास्त्र में अनुसूत ही पदों का उच्चारण करने लगे । निरुक्त में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली । ज्योतिषशास्त्र में भी तैयार हो गये । वेदान्त में रहस्यों की भी जानने लग गये । सिद्धान्त ज्ञान में भी प्रसिद्ध हो गये । बीजा बजाने में भी कुशलता प्राप्त कर ली । नगाडा बजाने में पटु हो गये । शास्त्र बजाने में अनुपम हो गये । पगड बजाने में नैपुण्य प्राप्त कर लिया । येगु विद्या ( यँगी बजाने ) में प्रवीण हो गये । चित्र विद्या में आश्चर्य उत्पन्न करने लग गये । कामशास्त्र में प्रसन्न, अथर्वविद्या ( शास्त्रिहोत्र ) में कुशल, वाष्टकला में श्रेष्ठ, उड्डन कला में साहंकार, धनुर्विद्या में विद्वान्, दूत धेन्ने में उद्वृष्ट, गनिर्विद्य. में गृही, बाहुपुट में सकल, चतुरङ्ग दूत श्रीडा ( एक विशिष्ट दमक दून ) में चतुर, विभिन्न देश भाषाओं के शिक्षक तथा लोकज्ञान में सबथा व्यावहारिक बन गये ॥

किं यदुना—

रसे रसायने ग्रन्थे शास्त्रे शास्त्रे कलास्यपि ।

नले न लेभिरे लोकाः प्रमाणं निपुणा अपि ॥ १४ ॥

रस इति ॥ रस पारदः । रसायन उरामरणाह्वय औषधयोग । ग्रन्थः काश्य-शास्त्रादिश्चना । शास्त्र गृह्यादि । शास्त्र व्याकरणतर्कादि । कला गीतनृत्यादयः । एतेषु निपुणा अपि मन्तो लोका नले शक्ति प्रमाणमिषत्तां न प्राप्नुः ॥ १४ ॥

अधिक क्या कहें—

रस, रसायन, ग्रन्थ, शास्त्र, शास्त्र और कलाओं में निपुण लोग भी नल में ( रहने वाले ज्ञान की सीमा तक ) नहीं पहुँच सके ॥ १४ ॥

[ रस शृङ्गार आदि काश्यरसों और पारद आदि द्रव्य रसों के प्रसङ्ग में प्रयुक्त होना है । पारद आदि रसों से मोक्ष की प्राप्ति होनी है, इस तरह की बात रसयन्त्रदर्शन में मिलती है । रसायन भौतिक विज्ञान या औषधि विज्ञान के लिये प्रयुक्त हुआ है । ग्रन्थ काश्य, शास्त्र आदि रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है । तात्पर्य यह है कि विद्या के एक एक क्षेत्र में विशेषज्ञ भी अपनी अपनी विद्याओं में भी यदि नल की परीक्षा करती हैं तो उन्हें पता नहीं लगता कि नल किन्ती गहराई में है ॥ ]

क्रमेण शैशवमतिक्रामतोऽस्य सेवकैरियाद्वावयवैरप्यनुवृत्तिः कृता ॥

सेवक जैसे स्वामी का अनुकरण करते हैं वैसे उसके विभिन्न अङ्गावयवों ने भी शैशव अवस्था पार करने के समय उसका अनुगमन किया ॥

[ नल जब शैशव अवस्था को छोड़कर तर्पणता की ओर चला तो उसके अङ्ग भी तर्पण हो गये ॥ ]

तथाहि—

श्रवणासक्तस्य श्लोचनद्वयमपि श्रवणसमतिमकरोत् ॥

श्रवणनि ॥ श्रवणे शास्त्रावर्णने आसक्त । श्रवणसगति कर्णसगति ॥

श्रुतियों को सुनने में वह आसक्त था । इस कार्य में उसके दोनों ही ( आन्तरिक एवं बाह्य ) नेत्रों ने कान की सगति की ॥

उन्नतस्वभावस्य नासाग्रंशोऽप्युन्नतिं जगाम ॥

उसके उच्च स्वभाव के साथ साथ नासिका का अग्रभाग भी उच्च हो गया ॥

वक्रोक्तिकुशलस्य केशकलापोऽपि वक्रता भेजे ॥

वक्रोक्तिमो की कुशलता के साथ साथ उसके केश भी वक्र हो गये ॥

शङ्खनिर्मलगुणस्य कण्ठोऽपि शङ्खाकारमधारयत् ॥

शङ्ख सदृश निर्मल गुणों के साथ उसका कण्ठ भी शङ्ख की आकृति जैसा हो गया ॥

पृथुलतेरंसकूटद्वयमपि पृथुलमभूत् ॥

पृथुलेति ॥ असकूटेति कूटशब्द शिखरार्थं ॥

बुद्धि की पुष्टता के साथ उसके कंधे भी पुष्ट हो गये ॥

प्रमाणवेदिनो वक्ष स्थलमपि सुप्रमाणमजायत ॥

प्रमाणति । प्रमाण तर्कशास्त्र मान च ॥

( प्रत्यक्ष अनुमान आदि ) प्रमाणों के ज्ञान के साथ उसका वक्ष स्थल भी सुप्रमाण ( विशाल ) हो गया ॥

मध्यस्थस्य तस्य रोमराजिरपि मध्ये स्थिता शुशुभे ॥

मध्येति ॥ मध्यस्थोऽङ्कुरपक्षपान । अन्यत्र मध्ये उदरे तिष्ठतीति ॥

सभी बातों में मध्यस्था करने वाले उस ( नल ) की रोमपट्टिका भी उदर मध्य में सुशोभित हो गयी ॥

सुवृत्तस्य यादृश्युगल्लनपि सुवृत्तमभयन् ॥

इदृशेति । वृत्तं शीलं वतुलं च ॥

जब सुवृत्त ( सुन्दर स्वभाव वाले ) की मुजाए भी सुवृत्त ( सुडौल ) हो गयी ॥

गम्भीरप्रकृतेर्नाभिरपि गम्भीरा व्यराजन् ॥

गम्भीरेति । गम्भीरप्रकृतिरलक्ष्यकोपप्रसाद् । निम्ना च गम्भीरा ॥

जब गम्भीर प्रकृति ( गम्भीर स्वभाव वाले ) की नाभि भी गम्भीर ( गहरी ) हो गयी ॥

पल्लवसुकुमारहृदयस्य इन्द्रचरणैरपि पल्लवसौकुमार्यमङ्गी-  
चनम् ॥

उस पल्लव सुकुमारहृदय ( पल्लव सदाश कोमल हृदय वाले ) क हाय-  
पैरो ने भी पल्लव की कोमलता की अपना लिया ॥

अथ किं बहुना—

सोष्णीपमूर्धा ध्वजवक्रपाणिरूर्णाङ्गुविस्तीर्णललाटपट्टः ।

सुस्निग्धमूर्तिः ककुदुन्ननांसः कन्यैष न स्यान्नयनाभिरामः ॥१५॥

नीष्णीवेति ॥ सुष्णीपाकार शारीरिक लक्षणमुष्णीपम् । ऊर्णां अन्मध्ये शुभ-  
रोमवर्तः ॥ १५ ॥

अधिक क्या—

पगची से मण्डित शिर, ध्वज तथा चक्र से चिह्नित हाथ, ऊर्णा ( भौहों के बीच की घमरी ) से चिह्नित विशाल ललाट, कोमल आकृति तथा उन्नत कन्धे वाला वह ( नल ) किसकी आँसों के लिये रमणीय नहीं है ॥ १५ ॥

अपि च—

धाम्यथ्री संनिभेन्द्रोः सनद्वृषक्रकुदुवन्धुरः म्बन्धसंधिः ।

स्निग्या रुक्न्तलानामनुदरति इशोर्द्वन्द्वमिन्दीपरस्य ।

म्यानं वस्रोऽपि लक्ष्म्याः, स्पृशति भुजयुगं जानुनो, वृत्तरम्ये

जट्टे, शानोऽवलग्नः किनु निरधपतेः इलाजनीयं न तस्य ॥१६॥

मुख की कान्ति चन्द्र की तरह है । कन्धो की सन्धिया मतवाले साठ के डील की तरह मनोहर है । बाला तथा नेत्रों की मधुर कान्ति नीलकमल युगल की कान्ति का अनुकरण कर रही है । वसन्त्यल लक्ष्मी का स्थान है । दोनों हाथ जानु को छूते हैं । मुडौल जट्टे बड़े मनोहर हैं । मय ( कमर ) कृश है । उस निरधपति का क्या प्रशंसनीय नहीं है ॥ १६ ॥

[ सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार इन लक्षणों से युक्त मानव चक्रवर्ती सम्राट् होता है ॥ ]

अस्ति च तस्य नरपतिसूनो समानशीलवयोविद्यालंकारकान्ति-  
कलापपरिपूर्णदेहः शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेकं जीवितमपर  
उच्छ्वासः सालङ्कायनसूनुः श्रुतशीलो नाम मन्त्री मित्रं च ॥

अस्ताति ॥ अपर उच्छ्वास इति । न परोऽस्मादिष्यपर उच्छ्वा ॥

उस राजपुत्र के समान स्वभाव, अवस्था, विद्या, भूषण, सौन्दर्य तथा कला से पूर्ण शरीर से दो रहने पर भी-हृदय से एक, प्राणों की तरह प्रिय, स्वास की तरह अनिवार्य, सालङ्कायन का पुत्र मन्त्री और मित्र है ॥

एकदा तु पूर्वदिग्बधूकुङ्कुमपङ्कपल्लवितवदनायमाने निरुद्धान्ध-  
तमसे सौगन्धिकबन्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीव तरुणतरे  
तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाणे गगनाङ्गण-  
मम्भोजमुकुलनिद्रामुपि रोचिपां चये, चलिते च विचरितुमुपवनतरु-  
राजिरुणांत्पले निद्राविरामविधुतपक्षे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककर्मण-  
सभाङ्गणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञः प्रविष्टे मन्त्रिणि  
सालङ्कायने प्रणामपर्यस्तकणांत्पलधवलितसभाङ्गणे यथासतमुपविष्ट  
प्रस्तुतसेवालापरजितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयविनोदे,  
श्रुतिशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो नलः सेवा  
सुखमनुभवितुमागतवान् ॥

एक समय पूर्व दिग् बधू के कुङ्कुम पङ्क में निर्मित पल्लव सदृश मुख की तरह प्रतीत होने वाला, कमला का मित्र बन्धूक फूल की तरह लाल सूर्यमण्डल अन्धकार को नष्ट कर आकाश में तैर रहा था । कुसुम्भ पुष्प के केसरपुञ्ज की तरह गगन प्राङ्गण में कमल कलियों की निद्रा को चुरा लेने वाली किरणों बिखर रही थी । उपवन का तृप्तमूह रूप कर्ण पुष्प विहार के लिये स्पन्दित हो उठा था । निद्रा समाप्त होने के कारण पक्षी अपना पक्ष फड़फड़ा रहे थे । ( ऐसे समय में ) सभामण्डप में बैठे हुए राजा द्वारा सेवा का अवसर प्राप्त कर मन्त्री सालङ्कायन सभाभवन आये । आश्रित राजाओं के वर्ग ने प्रमाण के अवसर पर अपने कर्णाभरणों की कान्ति से सभाभवन को धवलित कर दिया, उचिन आसन पर आसीन होने के बाद प्रासङ्गिक सेवा विषयक चर्चा से राजा को प्रसन्न कर दिया । शास्त्रीय चर्चा विषयक मनोविनोद प्रारम्भ हो गया । श्रुतिशील के साथ अन्य क्रीडा सहायक अनुचरों को लिया हुआ नञ् सेवासुख का अनुभव करने के लिये आया ॥

आगम्य च क्षिणितलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणम्य पितुः पादारविन्द-  
द्वयमदूरदत्तमासनं भेजे ॥

आकर पृथ्वी तक शिर झुकाता हुआ पिता के पदकमल युगल को प्रणाम  
कर समीप में दिये हुए आसन पर बैठा ॥

उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादानादुत्पन्नमन्युरीपत्कोपकम्पितकर-  
परामृष्टकूर्चाग्रिमग्रन्थिरग्रणीर्मन्त्रिमण्डलस्य भ्रूमङ्गभाषणया शोण-  
काणान्तरतरत्तरलनारया दृशाऽभिमुखमस्य मालङ्कायन प्रणयपरपा-  
क्षरसभापत ॥

उपविष्ट इति ॥ आत्मनोऽप्रणामाद्द्विदिविनयाकौशल नल प्रीतिभाक् पितृको  
मन्त्री सिञ्चावुद्भवा पठपवर्गमवादीन् ॥

उसके बैठ जाने पर प्रणाम न करने के कारण क्रुद्ध कोप के कारण कुछ  
कापड़े हुए हाथ से अपनी मूछ की सिखा को छूत हुए भीहो की वक्रता के  
कारण भयङ्कर तथा लाल कौनो के बीच तैरती हुई कनीनिदा वाली आँवों से  
देखते हुए मन्त्रिमण्डल के मुख्य मालङ्कायन ने सामने बैठे हुए नल से प्रेम और  
रुसता भरी बातें कहनी शुरू कीं ॥

कुमार, राजहंसोऽपि 'अहंसरूप.' इति मा स्म मोहयान्मूः ॥

कुमारस्ये ॥ कुमारेत्यामन्त्रणे । राजमुख्योऽपि हसस्त्वं सरूपो रूपवानहनि'य-  
मुना प्रकारेण मोहवान् मा स्म मू मोहं मा या । रूपमदो हि नीचचिह्नम् । यश्च  
राजहस' म कथमहं मस्वरूप इति विरोधघो'तकोऽपिभव' ॥

राजकुमार, तुम राजहंस होकर भी अहसरूप ( हससदृश रूप वाले नहीं )  
हो । विरोध ।

राजहंस ( राजाओं में मुख्य ) हो । यह ठीक है । लेकिन "अह + सत्त्व." ( मैं सुन्दर रूप वाला हूँ ) यह अहकार मत करो । परिहार ।

अनुभवति चमूढः शस्त्रसंघात इय कोशशून्यताम् ॥

ननु यदि रूप'दर्हकाराद्वा नृपां मूढ' म्यात्तको दोष इत्याशङ्क्याह—अनुभव-  
ति ॥ चक्षुरा यौगपद्ये । यदेव कुनो मुह्यति तदैव कोशेन शस्त्रेण शून्यता इयति-  
रेकमनुभवति । यथा चम्बा स्वमेतया ऊटो घनः शस्त्रनिचय प्रत्याकारशून्यता-  
मापति ॥

मोह से घिरा हुआ आदमी कोशशून्यता का अनुभव करता है जैसे चमू  
( सेना ) द्वारा शत्रु के उठा ले जाने पर शस्त्रसमूह कोशशून्यता का अनुभव  
करने लगता है ॥

[ मोहसम्पन्न व्यक्ति अपने कोश ( निधि ) को नहीं संभाल पाता । वह तो  
सून्धी में विवेकशून्य पड़ा रहता है । मोह शब्द यदि अहंकार के अर्थ में



लगाया जाय तो भी तात्पर्य यह होगा कि अहंकारी व्यक्ति कहीं कुछ अनुचित कर बैठना है और पर्याप्त निधि का दुरुपयोग करता है। अतः एक दिन कोय शून्य हो जाता है ॥

इस पक्ष में च अलग पद है और मूठ अलग। शत्रुसघात पक्ष में चम्वा ऊढ ( सेना द्वारा डोया हुआ ) विग्रह करना चाहिये। चम्पू + ऊढ भिन्नभिन्न पद हैं ॥ ]

अविभव पुरुषो भेष इव कम्बलस्योपयोगं गच्छति ॥

अष्टकोशस्यापि किं तदाह—अविभवेति ॥ निर्धनं पुमान् अज इव बलस्य मैत्र्यस्य शस्त्रैर्षा क्मुपयोग साफल्य याति न कमपीत्यर्थं पृतेन निष्कोशस्या बलिभूमिति ख्यापितम्। अजस्तु अवेमैण्दाद्ववति स्म। तथा कम्बलस्याब्जादन विशेषरूपोपयोग याति ॥

अविभव ( निर्धन ) पुरुष बल ( शक्ति ) के किस उपयोग में आ सकता है। अवि ( भेडो ) से भव ( उत्पन्न ) होने वाला ( भेडा ) कम्बल के उपयोग में आता है ॥

[ अविभव शब्द का विच्छेद जब अवि + भव है तो इसका अर्थ है 'भेड से उत्पन्न'। जब अविभव शब्द "नास्ति विभवो यस्य" इस अर्थ का वाचक है तब 'ऐश्वर्यहीन' अर्थ का वाचक है। इसी तरह कम्बल शब्द के भी समझलेप के आधार पर दो अर्थ हैं। 'अविभव पुरुष बलस्य कम्पू उपयोग गच्छति'। इस पक्ष में कम्बलस्य का "कम्पू" उपयोग का विशेषण है। भेड वाले पक्ष में 'कम्बलस्य' एक शब्द है। तात्पर्य यह कि कोशशून्य आदमी अविभव ( धनहीन ) हो जाता है। अतः कोई भी बल का कार्य वह नहीं कर सकता ॥

प्रद्युम्नजातोऽपि बाणयुद्धव्यतिकरकारिण्या सद्रोपया यौवना वस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति ॥

तस्माद्बलस्य का कथेयाह—प्रद्युम्नेति ॥ यतः प्रद्युम्नजातोऽपि प्रकृष्टौज युजोऽपि। बाणैः शस्त्रैश्च युद्धं कोलाहलस्तरामपर्ककारिण्या। महदोपैरिति दोषा वि तथा। तारुण्यावस्थया। निरुद्ध आरमवशीकृत को नाम क्लेश दुःख नानुभवति। सर्वोऽप्यनुभवत्येवैत्यर्थं। नामानुपगमे। युग्म द्रव्यमपि। घर्णघातु शब्दार्थो घनन्त। प्रद्युम्न काम। तस्मात्जातोऽनिरुद्धाभिधो बाणाद्येन दैत्येन सम युद्ध भयव्यविधादिन्या यौवनेऽवतिष्ठत इति कृत्वा तारुण्ये स्थितया उपया उपयावया परन्या सदा निरुद्ध आरमीकृतो दुःखमनुभूतवानिस्थागम। युद्धव्यतिकरोऽनद्रसूनो क्लेशानुभवहेतु ॥

प्रद्युम्न ( पूर्ण तेज ) से उत्पन्न होकर भी वाणसुर ( शब्दकल्ह ) करने का अवसर देने वाली दोषपूर्ण यौवनावस्था से घिरा हुआ कौन नहीं अनिष्ट की तरह ब्रेश का अनुभव करता ।।

अनिष्ट पक्ष—वाण ( वाणसुर ) के साथ युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देने वाली, यौवनावस्था में स्थित सदा उषा के प्रेम में घिरे हुए प्रद्युम्नजात ( कामसुर ) अनिष्ट ने ब्रेश का अनुभव किया ।

[ प्रद्युम्नजात—द्युम्न शब्द तेज का वाचक है । उत्कृष्ट तजसम्पन्न व्यक्ति भी यौवनावस्था में यदि विचार में नहीं रहना तो अनिष्ट की तरह बाँधा जाता है । अनिष्ट प्रद्युम्न का पुत्र था और वृष्ण का पौत्र । वाणसुर की लडकी उषा की प्रेरणा में एक चित्रकण प्रवीण दैत्यपत्नी ने अनिष्ट को उषा के पास उठा कर पहुँचा दिया । जब वाणसुर को पता लगा कि अन्तःपुर में एक युवक आ गया है तो उसे पकड़ लिया गया ।

प्रद्युम्नजातोऽपि ( प्रकृष्ट तेज से जन्मा हुआ भी ) वाणसुरन्यतिकर-कारिष्या ( वाक्कल्ह का अवसर देने वाली ) सदोषया यौवनावस्थया ( दोष-पूर्ण यौवनावस्था से ) निष्ट ( घिरा हुआ ) कः ( कौन ) अनिष्ट इव ( अनिष्ट को उषा के पास उठा कर पहुँचा दिया । जब वाणसुर को पता लगा कि की तरह ) ब्रेशम् न अनुभवति ( दुःख का अनुभव नहीं करता ) ।

अनिष्टपक्ष—प्रद्युम्नजातोऽपि ( प्रद्युम्न का लडका होता हुआ भी ) वाण-व्यतिकरकारिष्या ( वाणसुर के साथ युद्ध का अवसर ला देने वाली ) यौवना-वस्थया ( यौवन की अवस्था में स्थित ) सदा उषया ( हमेशा उषा से ) निष्टः ( घिरा हुआ ) अपिष्ट ( अनिष्ट ) ब्रेशमनुभव ( ब्रेश का अनुभव करने लगा । ]

तत्तान्, सुविषमेघवर्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम् ॥

तत्तानेति ॥ तद्विषुपसहारे । तानोति प्रणयैर्वात्मन्त्रणे । तस्माद्भ्रम । सुष्टवति-शयेन । विषमे । तथाऽप्यवर्तिनि पाप कारितरि ' अस्थिरे चञ्चले । तथा विशेषेण घोरमन् इति विद्युनो रोचमाना विलासा' शृङ्गारादयो परिसन् । तथाविधे तारुण्ये स्थितः सन्स्मयेन सर्वेण विनयं मा स्म विस्मरार्थं । विद्युद्विलासोऽपि सुष्टु विषं घट यत्रेति कृत्वा सुत्रले मेघे वर्तते । तथा अस्थिरो लोलः । तथाविधे ॥

अतः हे वत्स, बिजली के विलास की तरह चञ्चल, उत्कृष्ट ( विषम ) पाप में रहनेवाली इस यौवन की अवस्था में आकर अहंकार के कारण नम्रता को मत भूलो ।

[ विद्युत्पक्ष—सुविष ( सुन्दर जल वाले ) मेघ मे रहनेवाला नितान्त चञ्चल विजली का विलास । ताक्ष्यपक्ष मे सुविषमेऽथर्वतिनि ( उत्कट पाप म रहने वाला ) पदच्छेद है । विद्युत् विलासपक्ष मे सुविष + मेघ + वर्तिनि ( सुन्दर जलवाले मेघ मे रहने वाला ) ।

अविनीतोऽग्निरिष दहति ॥

विनघविस्मृती दूषणमाह—अविनीत इति ॥ अविनीतो पुमानग्निरिष दाहमुत्पा दयथात्मन परस्य वा । अविर्णान्युस्तेन नीतो यथाग्निस्तस्तेतार दहति । उबल न्ती हि गढदरिका स्वीकृता दहतीति लोकोक्ति । अथवा अविरग्निवाहनम् ॥

अविनीत ( उड़्ड ) आदमी आग की तरह स्वयम् जलता है और दूसरो को भी जलाता है । अथवा अवि ( कम्बल ) मे नीत ( लगी हुई ) आग की तरह जलता है ।

[ कम्बल मे लगी हुई आग कम्बल को तो जलाती ही है उसके ओढ़ने वाले को भी भला देती है । अविनीत स्वय नष्ट होता ही है, सम्पर्क रखनेवालो को भी दूषित करता है । ]

[ यह सोचो कि स्वय जलने वाले या दूसरो को जलाने वाले कामदेव आदि स्तुति के पात्र बनते हैं । अत ऐसा करने से हम भी स्तुत्य बन जायेंगे । यह भी नहीं होगा । ] क्योकि—

अजातनयश्छाग इव नाभिनश्यते जनेन ॥

मन्वारमदाहका पतिविपत्तौ रथादय परदाहका कामत्रिपुरान्तकप्रभृतयश्च श्रयन्ते । ततश्चाविनयाहाहात्मकमपि मां जन स्तोप्यतीति ॥ निरस्यन्नाह—अजा तेति ॥ न जातो नयो यस्य स छाग इव न स्तूयते जनेन । स्तुतिमपि न प्राप्नो तीत्यर्थ । छागस्वजापास्तनय सुत ॥

जो अजात + नय ( नीति हीन ) होते हैं वे अजा + तनय ( बकरी के बच्चे ) छाग की तरह लोगो की स्तुति का पात्र नहीं बनते ।

[ यह सोचो कि मैं जैसा भी रहूँगा, मेरे सहायक तो अच्छे हैं । अत उनकी सहायता से मेरा कार्य चल जायगा । यह भी सोचना ठीक नहीं है । ]

किं च ग्रम —

सुसहायशून्यस्य भवतो यस्यामीमासाभियोगा राक्षसा इव, अन्याया पारदारिका इव, अयोगप्रिया लोहकारा इव अधुतागमा. शोक्रुणा इव सहाया. ॥

न-व्यामन स्वामी पाहच्छाहवा भवतु धेसुसहाय । तदपि स्वयि नास्ती र्वाविष्कुर्वन्नाह—सहदायेति ॥ यस्य ते ईदशा सहाया । न भीमासाभियोगो

विचारोमहो देषाम् । राष्ट्रमस्तु मायेऽभिवागो देषा ते । अमी इति नद्विभ्य  
 प्त्म् । न विद्यते न्याये पयनिःपन्पया न्यायराहित्या । उपनाते तु अन्यामन्वय  
 बद्धान्यन्न गच्छन्तीऽप्य्यादा । परस्परिता इत्यर्थः । अलघ्वलामो लघ्वपरिरुद्धा  
 रश्चिन्विचर्षन च यागः । तस्य क्रिया नास्ति यथा त तथास्तु अमवदूकर्मार्गे वा ।  
 पदे अया गच्छन्तीऽप्यया लह्यगता क्रिया यथाम् । तथा न श्रुत आगम राष्ट्र  
 रक्षते । शाक्यमारस्तु अनुनाया नयनव्यवस्थागता ययु ॥

यह नी कट् दता है —

अप सुन्दर सहायकों से मूल्य है । राष्ट्र जैत मन्साभियो ( मास  
 मोजन न त्पर ) रहन है वैस म ( अपर सहायक ) अनीनासाभियो  
 ( विचार करन की शक्ति से मूल्य ) हैं । दूसर की खी में पासक लाग जैत  
 अन्या + अय ( परकीया क पास गनन करन वाले ) होत है वैस य नी अन्याम  
 ( अनीति ) करन वाले है । सोहकार ( लोहार ) वैस अयोग्य ( लह  
 सन्दग्धी कार्य में लगे हुए ) हात है वैस य तुम्हारे सहायक नी अयोग्य  
 ( असाक्षिक एव निष्प्रयोजन कार्य में लग ) रहत हैं ।

छोक वा में जैसे अशुत्रा ( आशु क भाव ) का आगम हाता है वैसे में  
 ( जायक सहायक ) अशुत्रान ( बड़ों का धव नही करन वाले ) है ॥

[ राष्ट्र पन न अनी + मन्साभियो पदच्छेद है । अमी का अन्वय  
 सहाया के साथ है । सहाय पक्ष में अनीनासाभियो ज्यों का त्यों है ।  
 पारदारिका—दूसरे की दारा में आसक्त लोग अन्याय हात हैं । अपांत्  
 अन्या ( परकीया ) क पास अय ( गनन ) करत हैं । इस पक्ष में अन्याय का  
 अन्या + अय विच्छेद है । सहाय पक्ष न ता अनीति का बाधक अन्याय पर  
 ज्यों का र्यों है । अयोग्य—एसा व्यापार जो लोह से सन्दग्ध रहता हो ।  
 सहाय पक्ष में असाक्षिक तथा निष्प्रयोजन कार्य । असाप्त वस्तु की प्राप्ति  
 तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा को योग कहत है । इससे विरुद्ध व्यापार को  
 अयोग्य कहत है । अशुत्रान—छोकवा में अशुत्राना आगम  
 इस सनास में अशु क भावों का आगम बर्ण है । सहाय पक्ष में 'न श्रुता  
 आगमा' ये 'इस सनास में आगम ज्ञान विहीन बर्ण है । अपांत् छोक का वा  
 जैसे आशुत्रों का भाव ला दता है वैसे उसके सहायकों ने आगम ( वद ) को नहीं  
 मुता है । अशुत्रागमत्व रूप साधारण धर्म दोनों में है । अशु अन्व स त् प्रयय  
 करन पर अशुत्रा बना है ॥ ]

न च ते दुःशिक्षितनृपकलमन्याकरणार्गेषु निपुणा नर्तकीषु  
 निष्प्रमण्डली ॥

एव सहायसंपद निविध्य मित्रमण्डलीमवद्यथाह—न चेति ॥ दु शिञ्चितेति नृपकलभेति चाम-ग्रणम् ॥ ते तव मित्रमण्डली न च व्याकरणमार्गेषु कुशला । शब्दतत्त्वावबोधे हि नीतिशास्त्राधिगम । नीत्यवगमे हि कृत्याकृत्यविमर्शनम् । तस्मात्संपद न च तत्रैपुण्य भवन्मित्रमण्डलव्यामस्तीति भाव । नर्तकीपक्षे दु शिञ्चितनृपकलेति सर्वोधनम् । सा च भरतीक्षेपु करणमार्गेषु भव्या प्रशस्ता ॥

हे दु शिक्षित नृप कलभ ( ओ अशिक्षित नृप वे बच्चे ), नृपहारी मित्र मण्डली व्याकरण मार्ग म ( नीति शास्त्र के उचित व्याख्या मार्ग ) में नर्तकी की तरह निपुण नहीं हैं ।

नर्तकी पक्ष—हे दु शिक्षित नृपकल । ( नृपनीति को न जानने वाले ; नर्तकी ( नाचने वाली ) भव्याकरण ( उचित अनुकरण करने और हाव भाव दिखाने ) में निपुण होती है ॥

[ मित्र मण्डली पक्ष में अर्थ करते समय “दु शिक्षितनृपकलभ” इतना सम्बोधन का रूप है । व्याकरण मार्ग म जो निपुण नहीं रहेगा उसे नीति शास्त्र के ग्रंथ अच्छी तरह समझ में नहीं आयेगे । नर्तकी पक्ष में “दु शिक्षित-नृपकल” इतना सम्बोधन है । अर्थात् नृपकला में तुम अप्रशिक्षित हो । भव्या-करणमार्ग एक पद है । नर्तकी भव्य ( सुन्दर ) आकरण ( अनुकरण ) में निपुण होती है । यदि “भव्या” को नर्तकी का विशेषण बनाया जाय तो अर्थ होगा—भरत के बताये हुए विभिन्न करण मार्गों में भव्या ( उत्कृष्ट ) है ॥ ]

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजङ्ग इव भयाय लोकस्य ॥

तदेति ॥ तदिरयुपसहारे । आयुष्मन्नित्यामन्त्रणे । अहितया हितेतरया । प्रकृत्या अविनयादिरवभावेन । अयुक्तसहायमित्रलक्षणया चामार्यादिकया युक्तसंबद्धो भवौलोकस्य भयहेतु । भुजङ्गस्तु अहेर्भावोऽहिता तथा दशनलक्षणया प्रकृत्या युक्त ॥

आयुष्मन्, आप अपनी अहित प्रकृति के कारण सर्प की तरह लोगों के लिये भयदायक हैं । भुजङ्ग ( सर्प ) अहिता ( सर्प स्वभाव ) से लोगों के लिये भयदायक होता है ॥

[ अहित शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप अहिता है । प्रकृति शब्द का विशेषण जब वह बनता है तो उसका अर्थ होता है अहितकर स्वभाव । सर्प पक्ष में अहि शब्द से तल् प्रत्यय कर अहिता बनता है । भुजङ्ग अपनी अहिता ( सर्पोचित भाव ) के कारण भयङ्कर हुआ करता है ॥ ]

उग्रसेन कंसानुरागं जनयेत् ॥

दुष्टप्रकृतिर्नृपश्रेष्ठलोकस्य भयाय तत किमिरयाशङ्कथाह—उमेति ॥ उग्रा सेना यस्य म क प्राणिन सानुरागं कुर्यात् । न कसपीत्यर्थं विरागहेतुरेवेति भाव ।

उचिन्तारिवारो हि जनानुरागाय । परिवारो हि लोकस्योपद्रव रक्षण वा कुरुते ।  
उपमेनो दैत्य म कामाग्रस्यानुराग जनयतीत्यायमोच्छिन्नम् ।

उपमेन ( भूर शासक ) किसी अपने प्रति सानुराग कर सकता है ?  
( किसी को नहीं ) । उपमेन दैत्य कस म अनुराग उत्पन्न करता है ॥

कसानुराग पद का भूर शासक पक्ष में "कनु सानुरागिन्" पदच्छेद होता  
और उपमेन दैत्य पक्ष में "कस नाम के राजा में सानुराग" अर्थ है । "उप है  
सेना निभर्ता" इस विग्रह में तो भूरशासक अर्थ है । दैत्यपक्ष म उपमेन एक दैत्य  
का नाम है ।

अमृतमयमोघतहरिवाहुपुत्र इव मन्दरपानुगत नो न घृष्यते ॥

चेदनी विरदुद्रयः सहायादय । पृथ्वी वा मयि मन्दानुरागा । तत कि  
ममेति निरमृतदुह—अमृतम् ॥ मन्द रस प्रीतीयेषा तैमन्दानुरागया पृथ्व्या  
सानुगत नो न घृष्यते । उग्रमाने तु पुग देवे दैर्घैरनुवायाभेविममन्थे । तत्र  
च मुत्स्या यन्निष्ठं विष्णुः । तस्य भुजपङ्क्तो मन्दरमाग्नो विरेर्नग्यानमृतस्य  
सानूति नटाणि यन प्राप्स मन्दुष्ट ॥

अमृत मन्थन के लिये तत्पर भावान् विष्णु न बाहु जैसे मन्दर + सानुगत  
( मन्दर पर्वत की घोड़ी में सयुक्त ) होकर रगड़े मये दैके मन्द + सानुगत  
( मन्द प्रीति वाले लोगों में घिरा हुआ , जैन आदिमी नहीं रगडा जाता ॥

शुनीमिमाभ्यिरतां परिहर ॥

शुनानिने तस्मादस्तिरता चञ्चलत्व त्यज ॥ शुनी स्वस्थिरता ॥

शुनी ( कुतिया ) अस्थिर + रता ( हलुडी चवान म लयी रहती ) है । बाद  
अपनी अस्थिरता ( चञ्चलता छोड दे ॥

कुशीलताप्राही मा म्म तैलिक इव केवल मलोपभोगाय भूः ॥

कुशीलताप्राही कुशीलतां शील लौक्यादिच्छां गत्य स कुशील, तस्य भावः  
कुशीलता । ता गृह्णतीयेवशास्त्रपोष्य केवल दुर्जनानामुपभोगाय मा म्म  
भू । कुश लो हि दुर्जनानमेवोपयोगी न माधुनाम् । तैलिकस्तु कुशीलताप्राही लता  
गृह्णति । तस्य निष्पाक म पवोपयोगस्तस्य । अयोविकार लती ।

कुशीलताप्राही ( कुश स्वभाव वाग ) बनकर अयोपयोग ( कुशो क  
उपयोग ) की सावधानी मत बनो । कुशीलताप्राही ( कुशी नामकलता को ग्रहण  
करने वाला ) तैलिक ( तेली ) केवल अयोपयोग ( खल क ही उपयोग में  
आता ) है ॥

[ तेली का उपयोग खल में ही होता है । अर्थात् तेल पेरने क ही काम में  
आता है ॥ ]

आद्यर्जय गुणान् ॥

अङ्कस्थानि परिहार्यं कृष्यमुपदिशन्नाह—आवजयेति ॥

[ इन त्रुटियों के छोड़ कर ] गुणों को अर्जित करो ॥

निर्गुणे धनुषीच सूवश्येऽपिकस्याग्रहो भवति ॥

सुवशाखादेवास्माकं लोकग्रहो भविष्यतीति न विमृश्य यत—निर्गुण इति ॥

गुणानामेवाग्रह आदरो जनस्य न केवल कुलीनाभाम् । वेणुसभूतस्य धनुषोऽपि गुणेन ज्यया आ आभिमुख्येन वाणाकर्षणाय ग्रह आग्रह ॥

खूब सुन्दर वश ( बास ) से बने हुए धनुष में यदि गुण ( प्रत्यक्षा ) न हो तो उसका कौन सम्मान करता है । उसी तरह सुन्दर वश ( कुल ) में उत्पन्न हो कर भी निर्गुण ( गुण हीन ) होने पर तुम्हारा कौन सम्मान करेगा ॥

अभ्यस्य कला ॥

अभ्यस्वेति ॥ कला विद्वत्तादिका तामप्यभ्यस्य । असूदैवादिको लुप्तहिप्रत्यय ॥

कला का अभ्यास करो ॥

निष्कलो वीणाध्वनिरिच प्रशस्यते न पुरुष ॥

निष्कल इति ॥ वीणाध्वनिस्तु निष्कल कलयितुमशक्य ॥

वीणा की आवाज निष्कल ( सुंदर स्वरहीन ) हो तो जैसे मनुष्य की प्रशंसा का भाजन नहीं होती वैसे निष्कल ( वैदुष्य शीर्ष आदि कलाओं से हीन ) व्यक्ति को लोग आदर नहीं देने ॥

त्यज जाड्यम् ॥

आवजितशौर्यादिगुणोऽभवस्तसत्तत्कल पुरुषो य स्तब्ध स नश्यते इत्याह—  
स्यजेति ॥

जडता छोड़ो ॥

जाड्ययोगेन हिमानी दूष्यतां याति ॥

जाड्येति ॥ हि यस्माज्जाड्ययोगेन मानी स्तब्ध पुमान्दूष्यत्वमाप्नोति ।  
हिमानी हिमसहति । सापि जाड्यतोऽनिशैत्याद दूष्येत्यर्थान्तरम् ॥

जडता के योग से निश्चित ( हि ) रूप से मानी ( अहंकारी आदमी ) दूषित हो जाता है, जैसे जाड्य ( अत्यन्त शीतलता ) के योग से ( हि मानी ) हिमालय दूष्य ( अप्रशसनीय ) हो गया है ॥

मा स्म मुखरो भू ॥

वाचाल मत बनो ॥

ब्राह्मपरित्यागे किं विदुमन्त्रिमुखरस्तर्हि स्यामिष्येनदपि निषिष्यन्नाह—ना  
भवेत् ॥ मुखरो वाचालोऽपि नाम् ॥

कर्णाटचेटीमिव मुखरतां न शंसन्ति साधवः ॥

कर्णाट ॥ यस्मान्मुखरस्य भाव मुखरता वाचालतां साधवो न स्तुवन्ति ।  
कर्णाटचेटी तु मुखे रत सुरत यस्या ॥

वैसे मुख + रता ( कबल मुत्त म ही सौन्दर्य रखने वाली ) कर्णाट देश की  
चेटियों की प्रशंसा साधु लोग नहीं करते वैसे मुखरता ( वाचालता ) की भी  
प्रशंसा साधु लोग नहीं करते ॥

भज माधुर्यम् ॥

स्वभाव से मधुर बनो ॥

धवलवलीवर्दपङ्क्तिरिव समाधुर्या वाणी मनो हरति ॥

धवलेति ॥ यस्माद्या वाणी मह माधुर्येण म्या मनोहारिणी । न च वाचालतायां  
वाचो माधुर्यम् । वृषप्रेणी तु समा अविषमा । धुर्या धूर्वाहिनी । धुरं वहतीष्यर्थे  
'धुरो यद्दृष्टौ' इति यत् । अत्र शक्यम् । अर्गी वा । अद्याप्रकीलिकामिव हरति  
वहतीष्यर्थे । वा अयवार्थे ॥

समा + धुर्या ( बराबर धुरा को देने वाली ) रजले बौलों की षोठी जैसे  
मन का हरण करती है वैसे समाधुर्या ( माधुर्य गुण विशिष्ट ) वाणी मन का  
हरण कर लेती है ॥

वर्जय विपरीत्यम् ॥

वर्जयेति ॥ पूर्वोक्तादस्मदुपदेसाद्द्वैपरीत्यमन्यथामात्रं त्यज ॥

विपरीत वाचरण को छोड़ो ॥

विपरीतं शयमिव को न परिहरति ॥

यत -- विरतेति ॥ विपरीताचारं को न परिहरति । शयं तु विमि पक्षिभिः  
परीतं व्याप्तम् ॥

वि ( पक्षियों ) से + परीत ( घिरे हुए ) मृत्क की तरह विपरीत ( प्रति-  
कूल ) वाचरण करने वाले लोगों को कौन नहीं छोड़ देता ॥

कमलदीर्घाक्ष, शिक्षाक्रमेऽस्मिन्नपरमप्यभिधायसे ॥

सुविनातानामावर्जितगुणानामभ्यस्तकलात्तानामपि प्रायः प्रभवन्ति व्यसनानि,  
रहितव्यप्रमादाश्च । व्यसनेषु स्त्रीष्वप्यासक्तिर्महद्व्यसनम् । इव्यशरीरयो चयहेतु-  
त्वात् । स्त्रीष्वसने हि राजयत्नोद्भवः । तत स्त्रीव्यसन लक्ष्मीप्रमादं च परिहार-  
यन्नाह—कनठेति ॥ रूपवान्मवान् सर्वस्त्रीप्रिय स्याद्वनस्तासु विषामकरणं तव  
तत्कमलदलेष्यामन्त्रगेताभिहितम् ॥



कमल सहस्र विशाल नेत्र वाले राजकुमार, इसी उपदेश परम्परा में कुछ और आप में कहता हूँ ॥

**मा गा स्त्रिया. धियो या विश्वासम् ॥**

मागा इति ॥ स्तृणाति दुर्विनीता सती आरमन परस्य वा गुणगण प्र-ज्ञादयतीति स्त्री । यस्यां तु सतीधर्मयोगादस्यार्थस्या-यथास्वम् । तत्रातृणीति कल्याणपरपराभि स्वकुल पतिकुल चैभ्यर्था । सत्या दुर्विनीताया स्त्रिया क्षत्राया विश्वास विश्रम्भ मा वाजी । स्वलोभास्वभावाद्वा ता अनीत्रानुराग दर्शयन्ति । पर परिणामे विरुद्धा एवेति भाव । तथा विश्रस्मि-मवर्त्र निक्षेपस्य शोभ्यऽशोभ्य वा आस उपेयमन स्थापन विश्वास । तं श्रिया लक्ष्म्या मा गा । धनार्थं हि पितर पुत्रेभ्य पुत्राश्च पितृभ्यो दुह्यन्तीति । तस्माद्य एवाद्रोहण उपधाशुद्ध्या तत्रवामौ निक्षेपणीयेति भाव ॥

स्त्री और श्री ( लक्ष्मी ) पर विश्वास नहीं करना ॥

[ स्तृज् आच्छादने धानु से स्त्री शब्द निष्पन्न हुआ है । जो अपने तथा दूसरे व गुणों को छिपाकर रखे, मोहकता शक्ति का कारण गुणी लोग भी जिसमें कर्तव्यच्युत हो जायें, वह स्त्री पदार्थ है । कुलाङ्गना या पतिव्रता स्त्री का पक्ष में इसी व्युत्पत्ति का भाव होगा—अपने गुणों और सौभाग्य से पतिकुल को जो आच्छादित कर ले वह स्त्री है । पहले भाव वाली स्त्री पर अविश्वास करने के लिये मन्त्री ने उपदेश दिया है ।

श्री शब्द का साथ विश्वास शब्द का अर्थ भिन्न है । श्री को विश्व ( सब लोगो ) पर आस ( स्थापन ) नहीं करना । अर्थात् रुपये पैसों का देन लेन सबके साथ नहीं रखना चाहिये । जिसे श्रद्धा आदि दिये जायें उसकी योग्यता आदि पर विचार कर लिया जाय । अन्वया यह एक एसी चीज है कि अत्यन्त आत्मीय लोग भी इसके लिये विरोध करने लगते हैं ॥ ]

**अधिकमलवसतिरनार्यसगता स्त्रीश्च यं न प्रतारयति ॥**

किमिति श्रिया न विश्रम्भगायम् । श्रीश्च सर्वत्राप्यतिवदत्वाद्—अशीति । अविद्या सोऽसौ मल पाप तस्य वसतिरास्वदम् । तथा अनायैरमातुभि कृत मैत्रीणा स्त्री कपुरुष न वशयति । सर्वमपि प्रश्रम्भयतीत्यर्थ । श्रीस्तु अधिकमलं पद्मे वसतिर्यस्या । कमल हि तरणशास्त्रम् । मा च तनाविनाभावसवद्धा । तत पशामना श्री कपुरुष न प्रकर्षेण तारयति । त्रिविदिष्टा । न नारी अमारी अमा सुर्या । तथा धा विष्णु । तस्मिन्ना अमगता ॥

स्त्री पद्म—अधिक मल ( पाप ) की वसति ( निवासस्थान ) तथा अनार्य ( दुष्टो ) का साथ सगता ( मैत्री स्थापित की हुई ) स्त्री किसी धोखा में नहीं डाल देती ।

श्रीपद्म—अधिमन्त्रवसति ( कमल पर निवास करने वाली ) अनारी ( अमानुषी देवी ) च ( विष्णु ) स सगता ( युक्त ) लक्ष्मी किसका नहीं पतारित करती ॥

[ श्री पद्म में जनार्दन सगता पद जो ' अनार + अ+सगता' रूप में तोलना चाहिये । लक्ष्मी अनारी है । अर्थात् नर पत्नी नहीं है विष्णु देव की पत्नी है । अन देवी है । सगता है । अर्थात् न विष्णु ) स सगत सयुक्त है । लक्ष्मी का निवास कमल पर है । कमल पानी के साधारण क्षोत्र में भी कम्पित होता रहता है । एसी स्थिति में उस पर रहने वाली लक्ष्मी का कम्पित होना या तरलित होना स्वाभाविक ही है । लक्ष्मी जब स्वयं तरलित है तो उस पर विश्वास करने वाला भी तरलित हो ही जायगा ॥ ]

या क्षालकूटद्वितीया नीरापितापि नाद्रुहदया भवति । स्वीकृतापि धिन देन कंसानलद्वनचापलेनोद्वेजयति ॥

या लक्ष्मी ॥ या स्त्री अक्षालेऽकम्पाद्यकूट कपट द्वितीयं यस्या । तथा नीरोयते स्मेने निरोपित प्रमादिनाप्यार्द्रहृदया निमग्नहृदया न भवति । तथा विशालेनोप-  
यानेन मातृलक्ष्मिपात्रिक स्वकृतापि या स्त्री क पुत्र्य घनेन छौरयेन नन्देययति ।  
श्रीपदे कालकूट विष द्वितीयमस्या । तदनन्तरमुपपद्यते । तथा नीरे जले  
उपिता । अत्रिपुत्रीवात् । पर नाद्रुहदया । किं तु निर्वृत्तवदा । देवनामुभावा  
उज्जलेन तद्वचो वेपथय न नीतमिति भावः । तथा आप्तोयवरयमित्यापी स्पृश-  
नाश्राणुका या वि पत्नी गृहद्वारा म बाहा बाहन यस्य । तथा कम्पामुरस्य  
न चकृतमन्त्रद्वनम् । अर्थात्कम्पय लक्ष्मि मागामकम् । तथा मूत चापल  
यस्य । अर्थात् द्वेषुस्तेन स्वीकृता । तथा उच्च नद्य वा शिवविष्णु क कृष्टी वी यस्य  
म उद्ध ( ईश्वरो विष्णुश्च यस्य पमद्य ) नस्मिन् जयति । अथवा याश्च विष्णुना  
स्वीकृतापि सर्वो नरे उपिता । कालकूटद्वितीयापि सर्वो घनस्य मेघस्य चापणेन  
विश्रमिनेन कमेव जग मतापकारि वादनलमुद्वेजयति पीठयति अर्थात्द्वनपितरि  
विश्वे गृहद्वारा न नाद्रुहदया न न भवति । भवन्वेवेत्यर्थः । याश्च कालकूट-  
द्वितीया या कपटमेवार्द्रहृदयेति विराधोज्ञानवापिशब्दे निबद्धमे । अर्थात्शब्दोऽत्र  
स्मिन्वार्थः । यदि वा विशाडो विष्णुपत्नीपि भी स्वकृता । तत्र कपाटव्यर्थः ।  
अतिरिक्तपि निबद्धमे ॥

काल सनतसमय ) पर कूट ( कपट ) ही को साथ बनाती है । ( अनुनय-  
दिनय कर ) रापहीन कर देने पर भी जिसका हृदय नहीं पिचकता । अग्नि  
आदि को साजो देकर विवाह द्वारा स्वीकार करने पर भी लंघनचापल ( अव-  
हन्तान्त्र चरणा ) मे स्त्री जिसे नहीं व्यथित करती ।

लक्ष्मी-पद्म—कालकूट ( विष ) ही त्रिनका द्वितीय ( सहोदर बन्धु ) है,  
जो जल में रहती हुई भी स्निग्ध हृदय वाली नहीं है, वि ( गुरु ) को बाह

( बाहन ) बनाने वाले और ससार को सन्तप्त करने वाले कस रूप अनल ( अग्नि ) को ( मारने ) में घनचापल ( अतिशय चपलता प्रदर्शित करने वाले ) विष्णु द्वारा अङ्गीकृत हो कर भी अन्य लोगों पर जाकर सुशोभित होती है ॥

[ लक्ष्मी की उत्पत्ति के ठीक बाद कालकूट ( विष घट ) की उत्पत्ति हुई थी । इसी लिये उसे कालकूटद्वितीया कहा गया है । समुद्र की पुत्री होने के कारण नीरोपिता ( जल में निवास करने वाली ) कही गयी है । लक्ष्मी का पिता समुद्र है । अतः जलीय परमाणुओं का बाहुल्य उसमें स्वाभाविक है । फिर भी उसका हृदय आर्द्र नहीं है । लक्ष्मी किसी का परिग्रह कभी कभी कर लेती है और निष्पूरतापूर्वक कभी भी उस व्यक्ति को छोड़ देती है । यहाँ विष्णु को विवाह कहा गया है, क्योंकि वि ( गहड़ पक्षी ) उनका वाह ( वाहन ) है ।

आपि शब्द को वि का विशेषण बनाया जा सकता है । यथेच्छ क्वचिदपि आप्तुं प्राप्नु गन्तु सीलमस्य इति आपी, आपी असौ च वि आपिवि आपिवि वाहो वाहन यस्य असौ आपि विवाह तेन आपिविवाहेन । अर्थात् स्मरण मात्र करने से जो कहीं पहुँच जाय ऐसे गहड़ रूप वाहन वाले भगवान् विष्णु द्वारा लक्ष्मी गृहीत हैं ।

उद्वेजयति—उद्वे+जयति ये दो पद हैं । उश्च अश्च इस इतरेतर योग द्वन्द्व का रूप होगा यो । इको यण चि से उ का व यण हो जायगा । व के द्विवचन का रूप होगा वो । यो उद्वेष्टो यस्य इस विग्रह में उद्व रूप बनेगा । उद्व शब्द के सप्तमी का एकवचन होगा उद्वे । उ का अर्थ शिव है और अ का विष्णु । अर्थात् शिव और विष्णु जिनके उत्कृष्ट हो । शिव और विष्णु जिन पर प्रसन्न हों, वह हुआ उद्व । उद्व पर लक्ष्मी प्रसन्न रहती है ।

अस्या कारणेऽभ्रान्त समस्तोमन्दराग सदालोक, लोलनेत्री-कृता घृष्टा भुजङ्गमण्डली, प्राप्ता जलघो राजकुमारपराभवम् ॥

अस्या इति ॥ अस्या स्त्रिया हेतोलोक समस्तोऽप्यमन्दरागो इवानुराग सन्सदा भ्रान्त । तथा भुजङ्गानां विटानां मण्डली चपलाङ्गीकृता सती घृष्टा विप्रलब्धा । तथा जडा धीरस्येति जदधीर्जडबुद्धिः । राज्ञ सकाशात् कुत्सितो योऽसौ मार पञ्चविदवादिषण्वनेन विगोष्यहिंसा स एव पराभवस्त प्राप्त । अथवा राज्ञस्तथा कुत्सितार्ष मारात् स्मरात्पराभव प्राप्नोति कुबुद्धि । “अपि भ्राता सुनोऽप्येवं वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा । नादण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति धर्माद्धि चलित स्वकात्” इति स्मार्ता । तत स्वपितुरपि राज्ञ सकाशात्प्राप्तकुमारमृग्यायवत परिग्रहो युज्यत एव । पक्षे अस्या श्रियो निमित्ते । मन्दरोऽग पर्वत । अन्नमाकाशमन्तोऽस्येश्वभ्रान्तोऽप्योमावसान । सञ् शोभन नालोकोऽप्यति सदालोक । सम्य-गस्ताः सिद्ध इत्यर्थः । मपूर्वाद्दश्यते च । यद्वा सम्यगस्त सप्रभु भ्रान्त कुबुधोऽवभ्रान्त ( अर्धान्तरे भङ्गिध्वेन न दोष ) । तथा अलोत्प्रेत्र लोलनेत्री कृता

मुजंगमण्डली । नेत्र मन्यानरञ्जुः । तथा जलधिरथि पराभवं मन्यतलक्षणं प्राप ॥ राजकुमारेत्यामन्त्रणे ॥

इसी स्त्री पदार्थ के कारण सभी लोग बमन्द राग ( गाढ़ अनुराग ) में फँसकर सर्वदा भ्रान्ति में पड़े रहते हैं । चंचल नेत्र (स्वभाव ) वाली मुजंगमण्डली ( धूर्त परिपद् ) हमेशा धीरे में पडा कप्टी है । जड बुद्धि का आदमी कुत्सित स्वभाव वाले राजा कामदेव से पराजय प्राप्त करता है ।

[ स्त्रीपक्ष में अर्थ करने समय भ्रान्त शब्द के पूर्व स्रग्डाकार नहीं रखना चाहिए । मन्द राग के पूर्व स्रग्डाकार समझना चाहिए । जलधी की जगह जडधी समझना चाहिये । इत्योरभेदात् के नियम से ट और ल में अनेद माना गया है । राजकुमार शब्द में राज और कु दोनों ही अर्थ "मार" शब्द का विशेषण बन कर आये है । ] ।

श्री-मयस में—इस लक्ष्मी के लिए अभ्र ( आकाश ) के अन्त तक फैला हुआ सदाशोक ( सुन्दर कान्ति वाला ) मंदराचल समस्त ( सम्पत्क प्रकार से समुद्र के मयन के अवसर पर समुद्र में डुबामा-फँका गया ) । अबंचल बाँध वाली मुजंगमण्डली ( सर्प-मंडली ) भी चंचल बाँध वाली बना दी गयी । और रगही गई । हे राजकुमार ! इसी के लिए जलधि ने पराभव प्राप्त किया ॥ १०४ ॥

[ इस पक्ष में अभ्र + अन्त विच्छेद किया गया है । समस्त सद् उपसर्गक बहु क्षेपणे धानु से क्त प्रत्यय करने पर इसका अर्थ हुआ फँका हुआ । अर्थात् लक्ष्मी के कारण इतनी सुन्दर कान्ति का पर्वत फँका गया । मन्दराग पद से मन्दर + अग विच्छेद कर मंदराचल अर्थ निकाला गया । लोन्नेत्रीकृता शब्द दो अर्थों की ओर संकेत करता है । वासुकि आदि सर्पों को मयन-रञ्जु बनाकर समुद्र मया गया था । पर्वत की रगड खाकर दुःखी सर्पों की बाँधें नाश उठी थीं । नेत्र शब्द का 'मयने वाली रस्ती' अर्थ भी होता है । अर्थात् जन्दी जल्दी खोँची जाने वाली मयन रस्ती की तरह सर्पमण्डली रगड दी गई । सर्पों की एक ही हड्डी होती है । उन्हें यदि एक दो बार भी रगड दिया जाय तो वे निर्दल हो जाते हैं । इस लक्ष्मी के निमित्त विचारे सर्प बहुत दुःख पाने । जलधी शब्द का इकार दीर्घ रूप में इस लिए दीक्षता है कि 'दूलीपे पूर्वस्य दीर्घोऽयः' से यहाँ दीर्घ हो गया है ॥

अनयावष्टयः को न गुरुवारणयोग्यो भवति, को न वाजिपृष्ठमारो-  
हति ककणभवञ्जनानः प्रकटयति, क. कण्ठे हारावमोचनं न कुरुते,  
को न काञ्चनशृङ्खलामनुभवति । कुरङ्ग इवान्धोभूत को वागुसवञ्जनं  
करोति, कः कार्मुकनिर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्षमागच्छति ॥

अनयेति ॥ अनया स्त्रिया आश्रित क पुरुषो गुरुणा वारणे त्रिपेधे । वा अध-  
 वार्थे । आजि कल्ह वञ्चनाया वञ्चनात् ( पञ्चम्यास्तसिल ) प्रतारणात् । क  
 सुप्त वञ्चनाकृत सुप्तमित्यर्थ । कणज शब्दायमान । को न प्रकटयति । कण्ठे  
 गलान्त हा इति य आरावस्तस्य मोचनम् । काचनेति काचिदर्थे । शृङ्खलां य-ध-  
 नम् । गुरौ गुरुविषये अञ्चना पूजा । कुरङ्गपक्षे वागुराया मृगजालिकाया वञ्चना ।  
 पराभवादे प्रागधस्थया विमरशो लक्ष्यन इति विट्ठल । तस्य भावो वेलक्षम् ।  
 धनुर्मुक्तावाणस्तु वै स्फुट लक्ष वेद्यमावाति । पक्षे अनया लक्ष्या । गुरर्महान्  
 वारणो गज । वाजिपृष्ट तुरङ्गपृष्टम् । ककण हस्तसूत्रम् । नवमविच्छागम् । च  
 समुच्चये । नेति निपेधे । अतोऽस्या इत्यर्थ । हारस्य मुक्तासनस्य । अवमोचन  
 वन्धनम् । काञ्चनस्य शृङ्खलामाभरणविशेषम् । अगौरवाहं नीचे । अन्धीभूतो  
 निविद्येक । अपि तु सविष्णु म-गुरूनेव पूजयति । वै स्फुटम् । लक्ष शतमहसं  
 नाप्नोति ॥

इससे विरा हुआ कौन आदमी गुरुओ के निपेध का पात्र नहीं बनता  
 अथवा कौन कल्ह की भूमिका में नहीं चढ़ जाता, कौन धूर्तता से बोल्ना हुआ  
 सुख प्रदर्शित नहीं करता । कौन कण्ठ से 'हा आराव ( आवाज ) नहीं  
 निकालता । कौन ( किसी के प्रेम बधन में पड़कर ) किसी तरह की शृङ्खला  
 का अनुभव नहीं करता । कौन गुरु ( विशाल ) ( वासना ) का पूजक नहीं  
 बन जाता । धनुष में निकला हुआ वाण जैसे वै + लक्ष ( निश्चित रूप से लक्ष )  
 पर पहुँचता है वैसे ( स्त्रियो में रागाश्रित होकर कौन नहीं वैलक्ष ( हतथी )  
 बन जाता ।

मृगपक्ष में—मृग भी अन्धीभूत ( भय से विह्वल ) होकर वागुरा ) जाल  
 के तन्तुओ ) से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है ।

लक्ष्मीपक्ष में—लक्ष्मी में विरा हुआ कौन आदमी महान् हाथी और  
 घोडो की पीठ पर नहीं बैठता अतः ( लक्ष्मी की कृपा से ) नवीन कट्टण ( सोने  
 से बना हाथ का बलय ) कौन नहीं पहनता, कौन आदमी अगुरु का पूजन  
 करता है ( अर्थात् लक्ष्मी का कृपापात्र गुरु ( बडे ) की ही पूजा करता है ।  
 कौन आदमी है ( निश्चित रूप से ) लाख रुपये नहीं प्राप्त करता ।

[ स्त्री पक्ष में गुरु का अर्थ आचार्य तथा वारण का अर्थ निवारण है ।  
 वाजि शब्द में वा + आजि विच्छेद कर कल्ह अर्थ किया जाता है । कङ्कणप्र-  
 वञ्चनात्—( धूर्तता से ) कणन् ( बोल्ता हुआ ) क ( मुख को ) कौन नहीं  
 प्रकट करता । हारावमोचनम्—हा ( दुःखव्यञ्जक ) आराव ( ध्वनि ) कौन नहीं  
 छोड़ता । काचनशृङ्खला—( किसी स्त्री के स्नेहविषयक बधन ) वागुरा  
 वञ्चन—वा + गुरो + अञ्चन—किसी स्त्री विषयक विशिष्ट वासना में ही  
 पूज्य भाव रखना । मृगपक्ष में वागुरावञ्चन—वागुरा ( जालतंतु ) से मुक्ति  
 पाने की चेष्टा । वैलक्ष—कान्तिहीनता ।

लक्ष्मी पत्र—गुह्यवारण विशाल ज्ञापी, वात्रिपृष्ठ—घोडे की पीठ, क्वत्ता  
 नवऽवनाउ—जात—आ ( लक्ष्मी ) तत्रिपृ ( लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर लेने से )  
 नव क्वत्ता व क न प्रकटयति—नदीन क्वत्ता को कौन नहीं प्रकट करता ।  
 क्वत्ता शृङ्खला—स्वर्णमयी शृङ्खला मध्य भूषण । को वा शत्रु लक्षण  
 करति कौन जन्मी शत्रु ( अश्रेष्ठ ) व्यक्ति की पूजा करता है अर्थात् श्रेष्ठ  
 व्यक्ति को ही पूजा करता है । वैश्व—निदिवत् रूप से लक्ष्य पर पहुँचता है ॥

रम्य न परामूर्तिमंगलि । रम्य नापूर्व यदा समुच्छ्रुति ॥

रम्ये स्त्रीवत्त्वस्य परामूर्ति परामव । प्रतिपद्यन्ती च, पूर्वो यस्याप्यदा  
 शब्दस्वरूपान्तदपूर्व यदाऽप्यदा इत्यर्थः । पक्षे परा प्रकृष्टा भूतिरुच्यति अपूर्वमुदृष्ट  
 यत् ॥

स्त्री पत्र—स्त्री के कारण किञ्चन परात्रय नहीं होता । किञ्चन भयपत्र  
 नहीं मिलता ।

श्री पत्र—किञ्चन परा ( लक्ष्मि ) कोटि का एस्वर्य ( भूति ) नहीं मिलता ।  
 किञ्चन शत्रु यत्र नहीं पैलता ।

स्त्री पत्र—नापूर्वयत्र—यद्य क नूनं न निषेध ही है, अर्थात् यद्य नहीं है ।  
 किञ्च ( दुर्विनीता ) स्त्री के प्रेमी का अर्थ नहीं पैलता ॥

किमनोऽप्यस्या परमुच्यते ॥

इत्युच्यते और क्या कह ॥

यादवप्रिय शार्दूलमित्र शूर महत्तरं मयानोपसर्पति । सुनयना-  
 द्रेयं मिहमित्र बलमद्र दृष्टा प्रपलायन । न वसुदेवेऽपि चक्षु  
 पानयति ॥

वसुदेवस्यः शैलान् बद्धनाहूरापपरामवादीन्मभिश्च सप्रति पर  
 परिणाम यत्प्रदातश्च—वसुदेव इत्युच्यते प्रीति दवप्रिय शक्तिम् । अथवा  
 दुमानानि दव कनश्चिद्वैशुम्प दुपनापजनका य शिव कातस्म शूर विक्रान्त  
 महानर शूद्र भवाव समाप ब्रजति । अगमन वार्धक मय च शूरत्व इतु । शार्दूल  
 पत्र दव ज्ञाननम् । सुनयान नयप्रवनप्रसासहनायानामन्त्रम् । नाउ शार्दे,  
 वा नियवद्, बलन गव वा मद्र, दृष्टवाप प्रकटयति । मित्रमित्त दव । मिहस्तु  
 न द शब्द वा मिहनादस्य प्रनातवात् । तथा वसुदे वनमद्र । नत्र रक्ष्मि  
 चक्षुर्नयन न पानयति । वसुदेवमपि नालोकित इत्यर्थः । यदि वा वान्तऽवश्यमिति  
 वदति चक्षुर्विगमन् । पक्षे यादवा यदुवरदास्तथा मित्र गुरानामापुहपस्त  
 मयान्मित्रित्वद्वयनलक्षणात् नापसर्पति न तामर्मापि ब्रजति । एतन्न शत्रुरो बध्वा  
 न रक्ष्मयत इति स्थितिरुक्ता । शोभने नयन यस्या सा देवर यदनामान कृष्णस्य  
 गदाप्रकाशात् । बलमद्रमपि उपपन्नवन्धन प्रतीत वाच्यप्रकरणे पलायत स्पर्श  
 भयात् । तथा वसुदेव कृष्णस्य पिता ॥

या+दव ( जो बलेश जनक ) वीर तथा महान् ( बृद्ध ) प्रिय के पास नहीं जाती है । जैसे दवप्रिय ( जगलप्रिय ) विशाल एव वीर शादूल के पास कोई डर में नहीं जाता ॥

[ प्रिय के पास स्त्री के न जाने में उसकी बुढ़ापा कारण है तथा उससे डरने में उसकी वीरता कारण है । स्त्रीपक्ष में या अलग पद है तथा दवप्रिय अलग पद है । दवप्रिय का अर्थ बलेश देने वाला प्रिय है । दव का दूसरा अर्थ जगल है । शादूल पक्ष में—दवप्रिय का अर्थ अरण्यप्रिय है । ]

हे सुनय ! ( अच्छी नीति के जानकार ) नाट ( बोलने ) में श्रेष्ठ शक्ति के कारण कल्याणकर व्यक्ति को भी देखकर भाग जाती है जैसे पूर्ण बलिष्ठ तथा गभीर गर्जन करने वाले सिंह को देखकर लोग भाग जाते हैं ।

वसुदेव ( सपत्ति देने वाले ) अब ( रक्षक ) पर भी दृष्टि नहीं गिराती । वसुदेवेषुपि इसमें वेपि अश को निकाल कर चक्षु का विशेषण बनाते हैं । वेपि का अर्थ हुआ 'अधिक कपनशील । )

श्री पक्ष—लक्ष्मी यदुकुल में उत्पन्न व्यक्तियों के प्रिय शूर नाम के महान् ( यदुराज ) के पास भय से नहीं जाती है । वह सुनयना देवर ( कृष्ण के छोटे भाई गद ) तथा बड़े भाई बलभद्र को भी देखकर हट जाती है । वसुदेव ( कृष्ण-पिता ) पर भी दृष्टि नहीं गिराती ।

शूर और वसुदेव लक्ष्मी के दशधुर कोटि में आते हैं इसलिए उनका स्पर्श करना परपरा विरुद्ध है । यही बात बलभद्र के लिए भी कही जा सकती है । देवर में भी भागने का तात्पर्य वासनात्मक रूप से न देखना ही है ॥

केवलमनवरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधात्मिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुह्यपरपुरुषे मायाविनि कृतकेशिवधे धृतमन्दरागे रागं वध्नाति ॥

यदीदृशे परमोपकारिणि न प्रेमवती स्त्री, तदान्यत्र कस्मिन्नपि गुणिनि प्रेमबन्धं विधास्यतीति निरस्यन्नाह—केवलेति । नृपते इति नद्य प्रशस्य न नद्यमनवमप्रशस्य रत यस्या । श्वल वीजस्यद्वेतुरथात् । नहि तस्या सतति । रत च 'स्रतस्या फलम् । तथा विशेषेण दग्धो विदग्ध । तस्य भावा वैदग्ध्य सतापस्तस्य कला वैदग्ध्यकला शिक्षिता यथा । पश्चात्कर्मधारय । अपराध एवात्मा स्वरूपं यस्या' । तथा न प्रायते नरकाद् अत्र तथामृत यस्यापि कर्मण्युपसर्गं रानि ददातीत्यत्रपापरा । गुह्यं पित्रादीन् गुणिन सगुणान् ब्राह्मणपुरुषान् परिहृत्य परस्या पुरुषेऽयनारी काम्ने मायाविनि कापटिके कृतके कृत्रिमे अतिवमकक्षयाण दधातीत्यशिवधे मन्द-रागे अणप्रमोष्यनुरच्यते । परपुरुष इत्यत्र सर्वनामात्वाद् धृत्वा पूर्वापदस्य पुंवाधम् । पचे अनवरतं शशच्छिचिते वैदग्ध्यकलापो दक्षनातिशयो यथा सा चासी राधा-

निका । राधा च कृष्णपत्नी । सापि श्रिया एव मेद । त्रपापरा सलजा सती ।  
गुग्गिनो गुरून्दुरार्दीन्यद्रूनामादिपुरुषान् परिहृण्य परपुरये सुरारी रागं शीनि  
बन्धानि । किंभूते माया त्रिलोकीनिर्माणलक्षणा वामननृमिहमहिलाखादिलक्षणा  
वा विद्यते यस्य । तथा कृतः केशिनोऽश्वरूपस्य दैत्यस्य वयो येन । तथा धृतो  
मन्दरनाम्नाऽमोऽद्रिर्षेन ॥

केवल अनव ( अप्रसंगीय ) रत्न ( प्रेम वाली ) होती है । वैदग्ध्य कला  
( पीडा देने की ही कला ) पडी रहती है । अपराधात्मिका ( अपराध की  
प्रतिमूर्ति ) होती है । अत्रपापरा ( जिस पाप से अपनी रक्षा न की जा सके  
ऐसे पापों को उपस्थित कर देने वाली ) होती है । गुब्जों ( पिता आदि पूज्य  
जनों ) तथा गुणी पुरुषों को छोड़कर मायावी,—हृदिन अशिवध ( अकल्याणकर  
पक्ष के पोषक तथा निम्न कोटि के प्रेम वाले लोगों के साथ प्रेम करती है ।

श्रीपद्म—हमेसा जिज्ञाने केवल वैदग्ध्य कलाप ( ज्ञान की विविधता )  
की ही शिक्षा ली । राधात्मिका ( कृष्णपत्नी होने के कारण लक्ष्मी का ही  
एक रूप ) है । त्रपापरा ( लज्जापीडा ) है । गुग्गवान् गुह ( दूर आदि दबगुर  
कोटि के पुरुषों ) के स्पर्श आदि को छोड़कर पर पुरुष ( उत्कृष्ट कोटि के  
पुरुष, पुरुषोत्तम ) जिन्होंने मन्दर नामक अग ( पर्वत ) का ( धारण ) किया  
था—से प्रेम करती है ।

तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रमूरिव हृदयहराश्रेयोऽर्थिनां  
शरणं न स्त्री श्रौर्वा ॥

एवमुक्तकपटानामनार्द्रहृदयत्वादिदोषान्वितानां स्त्रीणां विधास विग्रहभ श्रीणां  
च विधानं यत्र तत्र निक्षेप सर्वथा परिहरन्सर्वोऽप्यायुष्मान्प्यायुष्मन्निति संबो  
धनेनाभिहितम् । तद्विशुपसंहारे । श्रेयोर्थिना स्त्री न रक्षित्री । कीदृशी । हृदयं  
चेन्नो हरति मोहकारिणी । एतेन अयहेतुत्वमुक्तम् । तथा अनिगमतिशयेन विभे-  
तीति भीर्भीरुः स्त्रीस्वभावत्वात् । अथवा भीर्भयहेतुत्वात् । दुष्टाशयत्वात् । तथा  
न गौर्वाग्यस्य सोऽगुस्त्वं जहानि अगुहा । ए एव मायामय वक्तुं वेत्ति क्षणमपि  
तन्नेव श्रयणीत्यर्थः । अथवा गौर्धन्वर्थः । अत्रोपलक्षणम् । तेन निर्धनं त्रिहाय  
घनिनमेवाश्रयणीति । यदि वा नती नन्ननाथां गम्भीरा गौर्वाग्यस्य तमपि जहा-  
तीत्यर्थः । न च मवादताश्चाटूनि कुत्रापि वक्तुं प्रमद्विष्णवः । सर्वोन्नतत्वात् । यदि  
वा अनिगमनिशयं मिय रानि द्दानीनि भीरा गौर्धस्य तमतिगम्भीरगं जहानि ।  
हिमाचलमूरपि अनिगम्भीरा गुहा पाषाणसन्धयो यस्याम् । श्रीश्राश्रेयोऽर्थिना न  
शरणम् । किन्तु श्रेयोऽर्थिनाम् । कीदृशी हृत्प्राप्त तथाऽप्य शुभकर्म हरति । तत्रा-  
प्या शुभकर्मणो मुक्तत्वात् । यदुक्तं नैपथे—'पूर्वजन्मविभवमयसृष्टा संपदेऽप्य  
विपदश्च विमृष्टा' इति । गौरी अपि हृदये हरो यस्या । तथा नतिगम्भीरः प्रणामप्र-  
शन्नो गुहः कार्तिकेयो यस्या । तदुक्तत्वात् ॥



अत हे आगुष्मन् ! श्रेयोऽर्थी ( क याण चाहने वाले ) लोगो का शरण स्त्री कभी नहीं होती । वह हृदयहरा मन को चुरा लेती है । अतिगम + भी ( अत्यन्त भयकर ) होती है ।

अगुहा—( जिसके पास चाटुकारितापूण वाणी नहीं है उसे छोड़ देती ) है ।

( अगुहा—गौ का अर्थ वाणी है ) जिसके पास गौ नहीं है उसे बहुव्रीहि समास के आधार पर अगु कहते हैं । ओहाक त्यागे धातु के आधार पर अगु को छोड़ने वाले को अगुहा कहा गया है । अर्थात् जो छद्मपूण कि तु मधुर मधुर बोलता है उसी के बश में स्त्री रहती है । जा ऐसा करना नहीं जानता उसको छोड़ देती है । अर्थात् अति गभीर भय को जो देता है ( रात्रि ) वह अतिगभीर गु हुआ और उसे छोड़ने वाली को अति गभीर गुहा कहेंगे । गिरी द्र भू ( हिमालय पर्वत की भूमि को भी अतिगभीरगुहा कहा जा सकता है, क्योंकि उसकी भी गुफाएँ बड़ी विशाल विशाल हैं । ]

श्रीपक्ष म—अश्रेयोऽर्थी ( अकल्याण चाहने वाले ) लोगो का शरण लक्ष्मी नहीं बनती । हृदयहरा—हृदय की जागतिक वृत्तियों का हरण कर शाश्वत मुक्ति देने वाली तथा अति गभीर गु ( अत्यन्त गभीर आगम्य वाली है )

पार्वतीपक्ष म—गिरी द्र भू ( हिमालय उनका उत्पत्ति स्थान है ) अपने हृदय में हर ( शिव ) को रखती हुई है । तथा उनके पुत्र गुह ( कार्तिकेय ) नति गभीर ( प्रणाम करने में पूर्ण प्रवीण ) है ॥

शृङ्गारप्रधानास्तान्, गाव इव विचारिता सरसा भवन्ति न म्त्रिय ॥

अधुना दुःखिद मयथा परिहार्यं स्वाभ्या ज्ञानस्य तविश्रामप्रतिषेधद्वारेण सेवत विषया शान्ते सुखवा त परमा वशी । पुत्र द्वि फलमधस्य तस्मिन्निधेयुषा श्रिय इति पूर्वविकथिततनुगामुक्तोऽयाम्कि च निषेधय नाह—शृङ्गारान् । रुचिशिवावचोभिरास्मात्प्रीतिरसौ विमनस्मो भविष्यतीति चित्त धारयन् कृ य चोप दिशन् तानेति कामलमाम त्रयति । शृङ्गारो रस प्रधान याम् । तथा विचारिता विवचिता गावो गिर एव सरसा प्रीतिरुत्तमा भवन्ति । अथवा गाया विनेपेण चारिता दत्ताम्बाद्वत्तगङ्गाया । तथा शृङ्गारप्रधानप्रधान यामु तास्तथोक्ता । तथा सरसा सद्गुणा । स्त्रियस्तु शृङ्गारा मण्डन प्रधान यामाम् । विचारिता स्तुर्णति दुःशीला मयो गुणगण छाद्यतीति तत्रता विभृष्टा सरसो न सरसा । किन्तु वैराग्यदेतव ॥

हतात् । स्त्रियो म शृङ्गार का प्रधानता रहती है । विचार स दखन पर के सरस नहीं होता । उनका ऊपर नन्वन विचार किया जाय तो वैराग्य ही उत्पन्न हो जायगा । )

गायन म शृङ्गार का पर । जसभाग ) उनम प्रथम हाता १ । विषय रूप म ( मन्त्र धारा का चरण पर ही सरस होता है

नदेना कन्दपरुण्डकयगत्रिनादमात्रापरिप्या नात्यन्तप्रियाम् योन्दा सयय प्रियस्त वि याम मय नर टुयन्ति स्त्रिय ॥

स्त्री इति नसम्प्राप्तनोरमा स्त्रयो नाय ० । वश्रम्भार्हा । कियद्दयर्थे । नरत्नम् — द्रवपयाद । मयया वि च नर प्रियः विगतः कामनिव कुर्वीत । नत् नाल् — इति नायन्त प्रियम्भर्हा । तथा च नायव — अन्तर्गृहगत म्यविर प्रीतिशुद्धा रक्षा पन्ना । अपरिगुद्धा न काचलाभाच्छुत् । श्रूयत हि — य गृहगता श्राना मयदन ज्ञान मानु गत्यानगतश्च दस वास्वम ह्यादि ॥

य न्दिना कामान्ध मुताहृत् मिटाकर मनादिनाद काल म हा उपकारी है । नरर सवश विद्यास नहा करना चाहिए क्योंकि विदास किउ हुए आदमी को सिखावता मृउ ) बना देता है ।

प्रियोऽपि दानोपभोगान्यानुपयोग नयेत् न लाभ दुर्यात् । रट लोमानुगत निरणकलापोऽपि सतापयति जनम् ।

स्त्रीया इ गन्कृदिनादनाप्रकल चाभिधय समान श्रांता फामाह—प्रियऽपि त्ये लाम दूरनाह—वह्नि । ल मनानुगत । करौघस्तु बहुल प्राय । तथा मानु रवि मना मानवीथ मयर्थ ॥

स्त्रिया भी जगर हों ता ज्ञान जीर उनभास क मात्म म उनका उपयोग करता चाहिए । उसन लाभ नहीं करना चाहिए । बहुत लाभ म पडा हुआ आदमी लाल का सतप्त करता है जैम बहुत ( पयात्र ) मानुगत ( सूर्यसवधा ) किरण लाल का सतप्त करती है ॥

जन पुत्र प्राप्स्यमि नप्रियात्तिनकुलकमल्पजहसा रायश्चि यम् ॥ जनरत्न वृत्तयज्ञोदानन्देहि नारायण इव त्वमि चिर रन्वते खल्विय लदमा ॥

याद ल मयना नया मन्पयत चरम्नाकमि—रागद्वयह—३ इति । जन एवं स्नात्रराचिरूपमात्स्यमि । चनानुरागमया हि मयत् । लघुता एतस्मापूर्वोक्त- वस्मदुपशान् । प्राप्य च श्रिय निरन्तर ज्ञे यम यन सहान्दहि घर्मादपात्रु प्रिय निपुत्रकानि भाव । मनु निशिनमिग लक्ष्मा पात्रु व्यवकल्पयति स्वयि विष्णविव बहुकाल सहरं ग्याम्यनि । विष्णौ कीरणि । कृत्रो यद्गादादयाया जनन्या आनन्दो यन नमिन् । हि स्फुटम् ॥

अत हे पुत्र । शीघ्र ही अपने कुलकमल की राजहंसी राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करोगे । हमेशा ऐसा दान करो जिसमें यश उत्पन्न हो । यशोदा को आनन्दित करने वाले नारायण की तरह तुम में यह राजलक्ष्मी विरकाल तक रमण करती रहेगी । पहले उपदेश दिया गया है कि सपत्ति का उपयोग उचित स्थान या पात्र में करना चाहिए । कृतयशोदानंदेहि—मे सभङ्गश्लेष के कारण चमस्कार है । कर दिया है यश जिस दान ने ऐसे—कृतयशोदान को दो । नारायण का विशेषण बनाने के लिए—कर दिया है यशोदा के आनंद को जिसने उसमें—कृतयशोदानन्दे—सप्तमी का एक वचन है । हि पृथक् पद रहेगा जो निश्चय अर्थ का बोधक होगा ॥

पाहि प्रजा. ॥ प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातवैः ॥

बलादपि प्रजाभ्यो वित्तमादाय पात्रेषु भयोपकरणीयमिति मा कृथा इदितदाह—पादीति ॥ पालय प्रजा यस्मात्प्रजा पाति य. क्षत्रियः स न पापी । ब्राह्मणस्तु प्रकृष्टो जपो यस्य स प्रजाप' । जपनं जाप ॥

प्रजाप ( प्रकृष्ट जप करने वाला ) ब्राह्मण जैसे पापो से लिप्त नहीं होता वैसे प्रजाप ( प्रजा का पालन करने वाला ) क्षत्रिय भी पापो से लिप्त नहीं होता ।

मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेषं कार्षी. । व्याकरणे हि वृद्धिर्गुणं बाधते, न सत्पुरुषेषु ॥

मा चेति ॥ वृद्धिं राज्यादिसमृद्धिम् । गुणेषु पाण्डिष्यादिषु । हि यस्माद्गुण-बाधिका वृद्धिरिति वैयाकरणममयः ॥

वृद्धि ( राज्यसमृद्धि ) प्राप्त कर गुणवान् व्यक्तियों में द्वेष मत करना । व्याकरण शास्त्र में ही वृद्धि गुण को बाधती है । किसी सज्जन पुरुष की वृद्धि ( प्रगति ) गुण से विद्रोह नहीं करती ।

[व्याकरण शास्त्र के अनुसार अपवाद शास्त्र उत्सर्ग शास्त्रको बाध लेता है । गुण शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र है और वृद्धि शास्त्र अपवाद शास्त्र है । इसीलिए गुण को वृद्धि बाध लेती है ; व्याकरण शास्त्र में ही गुण और वृद्धि का बाध्य-बाधकभाव चलता है । आप जैसे राजकुमार की वृद्धि ( प्रगति ) किसी गुण या गुणी की बाधिका न बने । ]

यत्स, मा चैवं चेतसि कृथादलान्दसोऽयम् । छान्दसश्च गुरुर्वक-स्वभाव एव भवति तत्किमनेनेति । यस्माच्चतुरानन्दपदः पुण्य-श्लोको भवान् । अतोऽह्मभावं यान्ति ते यकोक्तयोऽपि गुरुषः ।

सरलनया लघवोऽप्यन्तरङ्गा भवन्ति । किन्तु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दर्शयन्ति ॥

इदानीं सिद्धान्तमिच्छामात्मनोपदिष्टे आदरपरं कुमारं कुर्वन्मृदुवचोभिः प्रोत्साहयन्नाह—वासेत्सादि ॥ छन्दो वेदं छन्दशास्त्रं च । गुरुस्तस्वोपदेशा छन्दोऽष्टलघुद्वितीयोऽङ्कारादिषु । यन्माङ्काराणांश्चानुप्यरश्लोकं पवित्रयशां । तथा चतुरानानन्दयति तथाविधं पदं राजरत्नं यस्य । अतो वक्रवचमपि गुरुवः । तेन च अङ्गत्वं भावं भावनां यान्ति । स्वयि भाविनामानो भवन्तांग्ययः । अङ्गेनि । कामला-मन्त्रणे । सरलनया एकमार्गतया लघवो लघुवृत्ता अप्यन्तरङ्गाश्चेनोभिः प्रेनाः स्युः । परं तेषु कौटिल्यमपि प्रकाशयन्ति । अथ च पुन्यं श्रेयाद् श्लोकं पद्यम् । तदा च चारि आनन्दीनि पदानि पादा यस्य ते प्रसिद्धा गुरुवो वक्राकृतयोऽङ्गभावमवयवत्वं यान्ति । श्लोकश्चेति शेषः । सरलनया अन्तुनया लघवो लेन्नाकृतयोऽन्तरङ्गाम्यगताः स्युः । परमन्ते पादान्ते कुटिला अपि स्युः । 'वा पादान्ते स्वमौ वक्र' इति वचनात् ॥

वत्स, यह न सोचना कि यह सब छन्द ( गण्ड या कपट की उक्ति ) है । छान्दस ( वेदवेत्ता एवं कल्पनाप्रवीण ) गुरु टेढ़े स्वभाव का ( स्त बोलने वाला ) होता है, लेकिन उससे कोई हानि नहीं होती । उनकी वक्रता पर आपको ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि आप पुष्करश्लोक ( पवित्र यश वाले ) हैं तथा चतुर लोगों को आनन्द देनेवाला राज्य पद आपको प्राप्त है । अतः टेढ़े बोलने वाले भी गुरुत्व ( अपनी चतुरता के कारण ) आपके अङ्गभाव ( आरतीयता ) को प्राप्त कर लेंगे । सरल ( सीधे स्वभाव के ) हो जाने पर लघु ( छोटी बुद्धि या छोटे स्वभाव के ) लोग भी अन्तरङ्ग ( आरतीय ) हो जाते हैं, किन्तु अन्त में वे अपनी कुटिलता दिखाने ही लगते हैं ।

[ छन्दःशास्त्रप्रसङ्गः—इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों को बताने वाले छन्दःशास्त्र में गुरु (दीर्घवर्ण) वक्र स्वभाव ( टेढ़ी आकृति (S) के होते हैं । छन्दःशास्त्र में गुरुवर्ण का चिह्न (S) टेढ़ा और लघुवर्ण का चिह्न सीधा (I) होता है । लेकिन टेढ़ा होने से क्या होता है ? वक्र आकृति वाले भी गुरु वर्ण चतुरानन्दिपद ( आनन्द देने वाले चार चरणों से युक्त ) पवित्र श्लोक के अङ्गभाव ( अवयवत्व ) को तो प्राप्त करने ही हैं । अर्थात् गुरुत्व को भी तो श्लोक के विभिन्न चरणों में स्थान मिलता ही है । लघु वर्ण सीधे (I) लिखे जाते हैं, वे भी श्लोक के भीतर आते हैं किन्तु पाद ( श्लोक चरण ) के अवसान ( अन्त ) में कुटिल ( टेढ़े-गुरु-S ) हो जाते हैं । पादान्तस्य विकल्पेन—श्लोक के पाद के अन्त में आने वाला ह्रस्व वर्ण भी गुरु हो जाता है ।

[ मा चैवं कृया—उपलूक योजना के अतिरिक्त इसका यह अर्थ भी सम्भव है—

वत्स, मेरी इन बातों को ज्यो ज्यो ( अवहेलनापूर्वक ) मन में नहीं रखो । वेद वाक्य की तरह इसे समझो । छान्दस गुह्य प्रियवक्ता नहीं होता, वह तथ्य वक्ता हुआ करता है । तथ्य बोलने वाले लोग आप जैसे पवित्र आदमी के अङ्ग ही बन जाते हैं । राजा को अत्यन्त सरल भी नहीं होना चाहिए । सरल होने पर लघु ( बुद्धि के ) लोग उसके विश्वास भाजन बन जाते हैं और अन्त में अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं ।

यहाँ छन्द शास्त्र के आधार पर निर्मित पवित्र श्लोक में पुण्यश्लोक नल की तुलना की गयी है । एक श्लोक जैसे चतुरानन्दपद ( चार आनन्द देने वाले पदों ( चरणों ) से युक्त होता है वैसे नल चतुरानन्दपद ( चतुर लोगों को आनन्द देने वाले ( राज्य ) पद पर प्रतिष्ठित ) है एक श्लोक में जैसे टेढ़ी आकृति वाले गुह्य वर्ण स्थापन पा जाते हैं वैसे तथ्यविद् गुह्य वक्र स्वभाव वाले होने पर भी अपनी चतुरता के कारण राजा के अङ्ग बन जाते हैं । आचार्य चण्डपाल ने अङ्ग शब्द को सम्बोधन माना है । अर्थात् है अङ्ग ( प्रिय ) । वक्र बोलने वाले भी गुह्य तुम्हारे भाव ( श्रद्धा ) के पात्र बनते हैं । लघु ( ह्रस्व ) वर्ण जैसे लिखने में सीधा होता है और पाद के मध्य में रहना है तब तक तो ज्यो का ज्यो रहता है किन्तु ज्यो ही पाद के अन्त में पहुँचना है गुह्य ( ऽ टेढ़ा ) बन जाता है वैसे लघु स्वभाव के लोग अन्तरङ्ग तो बन जाते हैं किन्तु पूर्णतः उन्नति कर जब अन्तिम पद पर पहुँचते हैं तो अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं । ]

तिर्तिर्यग्गुणा—

तथा भव यथा तात त्रैलोक्योदरदर्पणे ।

विशेषैर्भूषितस्तैस्तैर्निस्त्यमात्मानमाक्षसे ॥ १७ ॥

तथेति ॥ तातेति कोमलामन्त्रणे । तथा तेन प्रसारेण भव यथा तैरस्मदुपदिष्टे प्रजाप्राणादिभिर्विशेषैरुपलक्षितमात्मानं भूषुषितं पृथ्वीस्थितं एव त्रैलोक्यमेव योऽसौ दर्पणस्तत्र निस्त्यमघिनश्च पश्यमि । अन्योऽपि तैस्तैराकण्यविशेषैर्मण्डितमात्मानं दर्पणे पश्यतीति । यशोऽर्थमेव प्रयत्नितव्यमिति भावः ॥ १७ ॥

अधिक क्या कहें—

वत्स ! ऐसा बनो जिससे त्रैलोक्य के आगनरूप दर्पण में अपने विशेष ( दान आदि ) गुणों में अलङ्कृत हो कर तथा इस भू ( पृथ्वी ) में उपित ( स्थित ) होकर सदा अपनी पवित्र आत्मा को देख सको ।

[ अत्यन्त यशस्वी कार्य करोगे तो समूचे ब्रह्माण्ड में तुम्हारा यश फैल जायेगा । इस पृथ्वी में रहते ही रहत अपने यशरूप निर्मल आत्मा को देख

सको। अदिकस्य राग मरण क बाद अपने कामों क कारण पशुस्त्री होत है।  
तुन एसा मल कर कि जीत हा जीत तुम्हारा बमर यश सपूर्ण सभार म  
फैर उठ ॥ १७ ॥ ]

किं चान्यत्—

रिमतिं यो ह्यर्जुनस्यारि पांत्स्य करोति नम्रे च न वा रिपौ ह्यम् ।  
न तेन राजा सहसागराजिना भवेन्मही किं सहसागरा जिता ॥१८॥

इति— अर्जुनस्य वृणोयाच्छाद्यति वारयति बल्यवशात् निजप्रकर्षेण  
तच्चरित्रापह्वकारि पौरुष या राजा घटे। अथवा नम्र रिपौ शत्रावपि स्य काप  
न च नव करोमि। धर्मविजयत्वात्। तन राजा अगराजिना। अष्टमक्षयकलाचला  
लकृता। तथा महमारा मममुद्रा महमा बलन किं मही न जिता मन्त्।  
जिनैरिति भाव ॥ १८ ॥

जो अन्न क यश को नै टैंक लेन वाले पराक्रम को धारण करता है तथा  
नम्र शत्रु पर नो क्रोध नहीं करता वह राजा शत्रु ही अगराजित ( पर्वतों  
स मुदाभित ) तथा सहसागर ( समुद्र सहित सपूर्ण पृथ्वी ) का नहीं जीत लेता  
( जीत ही लेता है । )

( अर्जुनवारि—आच्छादन अर्थ म वृ धानु से तत् स्वभाव वर्ष म गिति  
प्रथम हुआ है। अस्त्रक अर्थ हुआ अर्जुन को एक लेन वाला। सहसागराजिता—  
सहसा + अग + राजिता—( शीघ्र पदत मडित पृथ्वी ) सहसागराजिता—  
सह-सागरा - जिता—समुद्र सहित पृथ्वी जीत ली जाती है। सरल हा से  
यमक अलंकार का बड़ा भव्य निदर्शन है ॥ १८ ॥

अपि च—

‘किं तन जातु जातन मातुयोचनद्वारिणा ।  
वापेहति न य स्वस्य वंशस्याग्रे धृजौ यथा’ ॥ १९ ॥

किंमिति ॥ मातुर्जनन्यास्तारण्यमुया तन आतेन किम् । किमपि नेत्यर्थ । यो  
जातु कदाचिदपि स्वस्यावपस्याग्रे नारोहति । अग्रे गन्धता न यातीत्यर्थ । ध्वज  
पत्र वशो वशु ॥ १९ ॥

और ना—वैश वध ( दास ) क अग्रभाग म ध्वजवक्र लम्बित होता है  
वैश जो पुत्र अदन वध ( कुल ) में अग्रगम्य नहीं बन जाता तो उस माता के  
योधन का हृत्प करन वाले पुत्र स क्या लाभ ।

पश्चमुक्त्वा विधान्तवाचि वाचस्यतिसने मन्त्रिणि राजापि प्रेमा  
द्रंया दशा नलमवलोन्य वन्तुमात्मत ॥

१५ न० च०

ऐसा कहकर बृहस्पति सदृश मंत्री के चुप हो जाने पर राजा भी स्नेहपूर्ण दृष्टि से नल को देखकर बोलना शुरू किया ॥

‘तान्, युक्तमुक्तोऽसि सालङ्कायनेन । कस्यान्यस्य निर्यान्ति वद-  
नारविन्दादेर्घविधा. पदे पदेऽर्थतमर्था मृद्वथो मृष्टा. द्रिल्लिष्टाश्च वाच ॥

तद्दर्शितस्तयानेन निर्वापितदेहः स्नेहः । स्वीकृतस्त्वं मनसा  
समस्तसाम्राज्यभारोद्धहनधुर्यता प्रति । तेनायमनुशास्ति ॥

वत्स, सालकायन ने बहुत अच्छा कहा है । जिसके मुखकमल से प्रत्येक पद से गभीर अर्थों को व्यक्त करती हुई कोमल शुद्ध तथा श्लेषयुक्त वाणी इस तरह निकल सकती है । शरीर को तृप्त करने देने वाले स्नेह को इन्होंने तुम्हारे ऊपर दिखाया । तुमने भी हृदय से समस्त सत्कार के भारवहन में अपनी समर्पता स्वीकार की । इसीलिए ये तुमको अनुशासित करत है ।

युज्यते चैतत् ॥

यह उचित भी है ।

तथाहि—

संग्रहं नाकुलीनस्य सर्पस्येव करोति यः ।

स एव दलाप्यते मन्त्री सम्यग्गाहिको यथा ॥ २० ॥

संग्रहमिति ॥ न निषेधे । अकुलीनस्यानभिजातस्य । सर्पस्य तु नाकुर्वन्मीकरतत्र लीनस्य । कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसप्तः, देशकालविभागो विनिपातप्रती-  
कारः, कार्यसिद्धिश्चेति पञ्चाङ्गो मन्त्र गारुडादिविषयश्चेति योगान्मन्त्रिणावमा-  
स्याहितुण्डिकौ ॥ २० ॥

नाकु ( बिल ) में लीन ( घुसे हुए ) सर्प को पकड़कर जैसे गार्हिक ( साप बसाने वाला ) प्रशसा का पात्र बनता है वैसे ही अकुलीन ( निम्नपरपरा ) के लोगों का संग्रह न कर मन्त्री भी प्रशसा का पात्र बनता है ।

अच्छे मन्त्री का यही लक्षण है कि वह भ्रम परपरा के कुलीन लोगों का संग्रह करे ॥ २० ॥

किं च—

न पश्यसि सांग्रनमिदमस्माकमतिभीरुभूपालमण्डलमिव धलि-  
भिराक्रान्तम्, अशेषमद्रम्, अतिजीर्णशार्णकपेटमिवावरीतुं न शक्य-  
ते । क्वाप्युपरिपतितभ्रूचक्रा भीरुमटपेटिव नष्टा दृष्टिः ॥

नेति ॥ बलयस्त्वन्नौधिव्यानि । धलिनो धलवन्तश्च । आवरणं संभ्यानम् ।  
अद्रपठे संवरणम् । नि सौष्टवाद्वाक्यम् । उपरिपतितं क्षेपिव्यास्यस्तं भ्रूचक्रं

यस्याम् । भीरुमूपालमण्डलीपचे तु प्रतिमदानामिति शेषः । भीरवो हि वैरिणि  
विलोकयन्ति पलायन्ते । पेटशब्द मंधाने त्रिभिन्नः ॥

नहीं देखने—इस समय मेरे सभी अंग बलियो ( चमड़े की सिकुडन ) से  
आक्रान्त हैं जैसे डरपोक राने बलि ( दलवान् लोगो ) द्वारा आक्रान्त होकर  
शिपित पड जाते हैं । अन्वन् पुराना फटा हुआ कपडा जैसे शरीर को ढक  
नहीं पाता वैसे ये सिकुडे हुए चमड़े शरीर के सवरण में असमर्थ हैं । आसो  
पर भोहो के लटक जाने के कारण दृष्टि वैसे ही नष्ट हो गई है जैसे डरपोक वीर  
मंडली पर चक्र गिर जाय और वह नष्ट हो जाय ॥

ये हितवर्गोपदेशिनो नुल्यास्तेऽपि सालङ्कायनप्रभृतयो मन्त्रिण  
इव विरलीभूता दन्ताः । शब्दशास्त्रे हि राजादीनामदन्तता इलाध्यते ।  
नान्यत्र ॥

य इति ॥ हितवर्गं हितममूहमुपदिशन्ति मुखराश्च प्रधानभूता सालङ्कायन-  
प्रभृतयोऽस्माया यथा विरलीभूता इव केचित् । न मय तथाविधा । तथा ये दन्ता-  
हि स्फुट तवर्गमुपदिशन्त्युच्चारयन्ति । तवर्गस्य दन्त्यखात् । तथा मुखे भवा  
मुख्याः । तेऽप्यविरला विरला मम्पन्ना विरलीभूता । बलिप्रस्ताना हि माममुक्ता  
दन्ता विरला स्यु । मुफ्याश्चतु मरुया राजदन्ता । 'राजाहः-' इति सूत्रोक्ता  
राजादय ॥

हित-समूह के उपदेश देने वाले सालङ्कायन आदि—प्रमुख मंत्री जैसे घोडे हैं  
वैसे दाँत भी अब घोडे ही रह गये । व्याकरण शास्त्र में राजादि उच्चो की  
अदन्तता ( अकारावता ) प्रशंसित होती है—दूसरी जगह नहीं ( लोक में राजाओं  
की अदन्तता ( दंतहीनता ) प्रशंसा की बात नहीं । )

राजाह सत्त्रिभ्यष्टृच्—मूत्र में समासान्त टच् प्रत्यय होने के कारण ये शब्द  
अकारान्त रह जाने है ।

तदिदानीं मन अन्यश्वापद्मिष विषयविमुखं मनो वनाय धावति ।  
कृतं च यन्मनुष्यजन्मनि क्रियते ॥

तदिति ॥ विषया इन्द्रियार्था देसाश्च ॥

तो इस समय मेरा मन जंगली जानवर की तरह सासारिक विषयों से  
विमुक्त होकर वन की ओर भागता है । मनुष्य जीवन पाकर खो किया जाता है  
मैंने स्वप्न कर लिया ।

जंगली पशु भी विषय ( देश या गाँवो ) को छोडकर वन की ओर भागता है ।

तथाहि—

एता प्राप्य परोपकारविधिना नीताः श्रियः इलाध्यता-  
मापूर्वापरसिन्धुसीम्नि च नृपाः स्वाज्ञां चिरं प्राहिताः ।



भूभारक्षमदोर्युगेन भवता जाता वयं पुत्रिण-  
स्तत्सप्रत्युचितं यदस्य वयसस्तत्कर्म कुर्मो वने ॥ २१ ॥

एता इति ॥ यथाक्रम धर्मार्थकाममोक्षानामुपन्यास ॥ २१ ॥

इन सपत्तियों को प्राप्त कर तथा परोपकार के कार्यों में लगा कर इन्हें प्रशसा भाजन बना दिया । समुद्र की पूर्वी सीमा में लेकर पश्चिम सीमा तक राजाओं से चिरकाल तक अपनी आज्ञाओं का पालन कराया । पृथ्वी के भार सहने में समर्थ बाहुयुगल वाले आपको प्राप्त कर हमलोग पुत्रवान् भी कहूँ गये । अतः इस समय इस अवस्था में जो कर्म किया जाता है उसे जगल में करेंगे ।

( भविष्य के अर्थ में वर्तमान का प्रयोग 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद् वा' के नियम से किया गया है । वन जाने के लिये पैर नहीं बढाये हैं किंतु शीघ्र ही जाने वाले हैं इसी लिए वर्तमान का प्रयोग किया गया है । ) ॥ २१ ॥

इत्यभिधाय तत्कालमेव मौहूर्त्तिकानाह्वयादिदेश—'कथ्यतां यौव-  
राज्याभिषेकोत्सवाय दिवसः' इति ॥

ऐसा कह कर ( उसी समय ज्योतिष् शास्त्रियों को बुलाकर आज्ञा दिये—  
कहिये यौवराज्याभिषेक के लिए दिन ।

अथ कथयामासुस्तेऽपि—'देव, श्रूयतामनवद्यतनमेव राज्याभिषेक-  
योग्यमहः । केन्द्रस्थानवर्त्तिनः सर्वेऽप्युच्चप्रदा, पुण्यो मासः,  
पूर्णा तिथिः, इलाध्यो योगः, प्रशस्तो वारः शुभ नक्षत्रम्, कल्याणी  
घेला, विधीयतां यद्विधेयम्' इत्यभिधाय स्थितेषु तेष्वनन्तरमेव  
'सुधोणि, श्रूयतां यदम्माभिः श्रुतमाश्चर्यम् ॥

अथेति ॥ केन्द्रस्थानं शुभस्थानम् ॥

वे भी बोले—'देव ! सुनिये राज्याभिषेक के लिए अत्यन्त श्लाघ्य दिन है ।  
सभी उच्चप्रह शुभ स्थान में हैं । पवित्र महीना है । पूर्णा तिथि है । प्रशसनीय  
योग है । श्रेष्ठ वार है । शुभ नक्षत्र है । कल्याणकर समय है । करिये जो  
करना है ।' ऐसा कहकर अभी ठहरे ही हुए थे तब तक राजा ने कहा—'सुमध्ये !  
सुनो यह आश्चर्य ।'

उचितमुचितमेतद्वैर्यधाम्नां नृपाणां  
वयसि फटुनि कान्तालोचनानां तृतीये ।  
इति रभसमिघास्य प्रस्तुतं श्लाघमानो  
वियति पटुरकस्मादुत्थितस्तूर्यनाद ॥

उचिनेति । कटुवमग्रापिधरवमेव ॥ २२ ॥

तीसरी ( वानप्रस्थ ) अवस्था में जब रमणियों के लोचन कटु ( अग्नि ) हो जाने हैं, धैर्य रूपी तेज रखने वाले राजाओं के लिए यह अल्पन्त उचित है। बड़ी शीघ्रता से प्रस्तुत कार्य की प्रशंसा करती हुई अचानक आकाश में दाहध्वनि दृज दठी ॥ २२ ॥

अपि च—

उपरि परिमलान्धै सस्यनं संचरद्भि-  
 मंधुकरनिकुरम्बैद्वुम्ब्यमाना भरेण ।  
 अद्विरलमधुघातसारसंसिक्तभूमिः  
 नदसि सुरविमुक्ता प्रापतत्पुष्पवृष्टिः ॥ २३ ॥

पराग के कारण मस्त, धूमते एवं भनभनाते हुए भ्रमर-समूह से पूर्णरूप में घुम्वित लातार मधु धारा की वर्षा से भूमि को सींचती हुई, देवताओं द्वारा की गई पुष्पवृष्टि राजभवन में टल्लयित हुई ॥ २३ ॥

अथतेरुथ तत्कालमेवाम्बरतलादुल्लसद्ब्रह्मकान्तिकलापपवित्री-  
 कृनाष्टदिग्भागभूमयः सकलसागरभरिस्तीर्थान्बुपूर्णकमण्डलुमुत्कुश-  
 कुसुमौषधिद्विपाणयो दर्शनादेवापनीतसमस्तकलिकल्मषा केऽपि  
 कुतोऽपि ब्रह्मर्षयः ॥

उसी समय आकाश से कुछ अचौकिक नवस्त्री महर्षि उतरे जो अपनी ब्रह्मते-पेयधि से जाड़े दिशाओं की भूमि को पवित्र कर रहे थे। समस्त अनुदों एवं नदी तीरों के जल से पूर्ण कमण्डलु, मिट्टी, कुश, पुष्प तथा औषधिया को हाथ में लिए हुए थे तथा दर्शन मात्र से समस्त कलिके पापों का हरण कर ले रहे थे।

सहस्रेण सधिनयेन सपरिवारेण च चलत्कर्णोत्पलगलद्रुवहलरजः-  
 पुञ्जपिञ्जरितकपोलपालिना पृथ्वीपालेन प्रणम्य कृतातिथेयाः समुचित-  
 तान्यलंचक्रुरासनानि ॥

प्रसन्नता एवं विनय के साथ परिवार-सहित, शोणयित कर्णपुष्प से गिरते हुए पराग-समूह से पिण्ड गडम्पक वाले राजा द्वारा प्रणमानंतर अतिथि सत्कार पाकर उचित आसन को सुशोभित किये ।

कृतकुशलप्रदनालापाश्च प्रस्तुतकुमारामिपेकस्य नरपतेः स्वस्य-  
 कमण्डलुयारीणि दर्शयामासुः ॥

कुशल प्रदत्त-विषयक चर्चा के बाद प्रासंगिक, कुमार ( नव ) के राग्या-  
 भिपेक के लिए ( लाये हुए ) अपने-अपने कमण्डलु के जल राजा को दिखाये ।

इदं मन्दाकिन्याः सलिलमयगाहागतमरुत्-  
पुरन्त्रीणां पीतस्तनशिखरभुजोर्मिबलयम् ।  
इदं कालिन्दाश्च प्रविकसिततीरद्रुमलता-  
पतत्पुष्पैरन्त सुरभिततरङ्गं नृप पयः ॥ २४ ॥

स्नान के लिए आई हुई देवताओं की रमणियों के झूल स्तनों के अग्रभाग से टूटी हुई तरंग पक्ति वाला यह जल मन्दाकिनी का है । तट के खिले हुए तरुओं एवं लताओं के फूलों से पूर्ण सुगन्धित तरङ्गों वाला यह जल हे राजन् । यमुना का है ॥ २४ ॥

इदं गोदावर्यास्त्रिनयनजटालखण्डगलितं  
महाराष्ट्रीनेत्रैः कृतकुवलयं मञ्जनविधौ ।  
इदं चापि मेह्नुनिजनचिकीर्णार्घ्वमलं  
पयो विन्ध्यस्कन्धस्थलविलुलितं नार्मदमपि ॥२५॥ युग्मम् ।

भगवान् शकर के जटा खण्ड से गिरा हुआ तथा महाराष्ट्र की रमणियों के नेत्रों से स्नान के समय नीलकमल बना हुआ यह जल गोदावरी का है । धूमते हुए मुनियों ने कमलों को आधा-आधा तोड़कर जिनमें विछेर दिया है तथा जो विन्ध्याचल की चोटी से आविर्भूत हुआ है वह यह जल नर्मदा का है ।  
( महाराष्ट्र की रमणियों का नेत्र नीलकमल सदृश है । स्नान के समय उनके नेत्रों के प्रतिबिम्ब से जल भी नीलकमलमय बन गया है ) ॥ २५ ॥

इतश्च—

तदेतत्पुण्यानां परममवधिं प्राप्तमुदधे  
पयः प्रमाल्याङ्घ्री शयन्समये शार्ङ्गधनुषः ।  
विहारयोन्मज्जरुणवनितावृन्दवदनैः  
क्षणं यत्रोत्फुल्लप्रघकमलखण्डश्रियमधात् ॥ २६ ॥

तदेतदिति । शयनसमये सुगन्ते शार्ङ्गधनुषो विष्णोः सम्बन्धिनौ चरणी प्रचावय पुण्यानां परमसीमानं गतमुदधे समुद्रस्य तदेतत्पयो वर्तते । यत्र विहाराय श्रीदार्ढ्यमुन्मज्जाम्ति यानि वरणवधूतुद्भववक्राणि सै कृत्वा विष्णुमदम्भोज-  
खण्डशोभां ऋण दधी ॥ २६ ॥

सोने के समय, शार्ङ्ग नामक धनुष वाले भगवान् विष्णु के पैरों को धोकर पुण्य की अंतिम सीमा तक पहुँचा हुआ यह जल समुद्र का है । जहाँ यह ( जल ) नीला प्रसंग में स्नान करती हुई वरुण पत्नि या के मुख से खिले हुए नवीन कमल-समूह की शोभा प्राप्त किया था ।

[ वरुण-पत्नियों के मुख जब जल के ऊपरी भाग में दिखाई पड़ने से तो लगता था कि नये कमल ही खिले हुए थे ] ॥ २६ ॥

राजा तु तत्कालमुन्मीलद्वयहलपुलकाङ्कुरकोरकितदेहः किमप्यद्-  
भुतरनेनावेशित इय विधूय शिष्यश्चिन्तयाञ्चकार ॥

उसी समय राजा का शरीर पूर्ण रूप में रोमांचित हो उठा । कुछ अद्भुत  
रस व आवेश में आए हुए की तरह जिर को हिलाता हुआ सोचने लगा—

‘नूनमयमस्मद्गृहे हरिहरप्रहणामन्यतमः कोऽप्यवतीर्णो भवि-  
ष्यति । यतः कार्यं शिक्षाक्रम, कत्रेयमस्माकमास्मिन्की यूनोऽस्याभि-  
पेकाय बुद्धि कचानुकूलकालसंपत्तिः, कचामी ममस्ताभिरेकोप-  
करणपाणयो महामुनयः ॥

निश्चित ही यह मेरे घर में विष्णु, शिव या ब्रह्मा में से कोई एक होकर  
आया होगा । क्योंकि वहाँ यह उपदेशक्रम, वहाँ इस युवक के अभिप्रेक के  
लिए अचानक हमलोगों का विचार, वहाँ यह अनुकूल मूर्त, वहाँ समस्त  
सामग्री को हाथ में लिए हुए ये महर्षि ।

सर्वथा नमोऽस्तु घटिनदुर्घटाय वेधसे । यस्यापमेवमद्भुतो  
व्यापार, इत्यवधारयन्नुत्थाय गृहीत्वा तानि तीर्थोदकानि कृत्वा  
कनककुम्भेषु तात्कालिकास्तालितमृदङ्गशृङ्गारोत्तरमसोल्लास्यविला  
सिनीवृन्दैरानन्यमानो महलोद्गारमुखपरिवृतः सह सातङ्कायनेन  
‘सहस्रं समास्तात एवानुपालयतुराज्यम्’ इत्यभिदधातमनिच्छन्तमपि  
नलं यत्नाग्निवेश्याभिप्रेकपट्टे स्वयमेवाभिप्रेकमकरोत् ॥

मर्धे ॥ घटित योजित दुर्घट निघात्रक्रमादिलक्षणं येन तस्मै वेधसे नम ॥

असंभव पदार्थ को भी सर्वथा संभव कर देने वाले ब्रह्मा को नमस्कार है,  
जिसका इसी तरह अद्भुत कार्य हुआ करता है । यह सोचता हुआ उठकर  
उने तीर्थजलों को लेकर एक सोने के घड़े में रखकर तत्काल बजने हुए मृदंग  
एवं शाल की आवाज पर वेग से उल्टू लास्य ( नृत्य ) करती हुई बारागनाओ  
से आनंद का अनुभव करता हुआ नल की इच्छा नहीं थी तो भी उने अभिप्रेक  
के आसन पर बैठाकर स्वयम् अभिप्रेक कर दिया ।

परिधाप्य च महलाभरणयामसी सिंहासनमारोप्य पुत्रप्रेम्णा पुरः  
स्थित्वा कनकदण्डपाणिः क्षणं प्रातिहार्यमन्वतिष्ठत् ॥

मंगलमूषपतया वस्त्र पहनाकर, सिंहासन पर बैठा कर, पुत्र स्नेह के कारण  
स्वयम् हाथ में स्वर्ण दण्ड लेकर प्रतिहारी का कार्य सम्पन्न किया ।

सालङ्कायनोऽप्यतिम्नेहेनाम्योपरि लम्बितमुकाकलापमाध्वत्सु-  
धाधारमिन्दुमण्डलमिय कनकदण्डमापाण्डुरमातपन्नमधारयत् ॥

सालकायन भी बड़े प्रेम से उसके ऊपर मुक्ता-समूह से खचित अमृत बरसते हुए चन्द्रमण्डल की तरह स्वर्णदण्ड वाले अत्यन्त शुभ छत्र धारण किया।

सामन्तचक्रं च चलञ्चामीकरचारुचामरकल्पापठ्यापृतकरपल्लव-  
मस्याग्रे विनयमदर्शयत् ॥

सामन्त वर्ग भी हिलते हुए सुवर्ण सदृश सुन्दर चमर-समूह में अपने कर-  
पल्लव सदृश हाथों को सक्रिय बनाकर उसके आगे विनय प्रदर्शित किया।

मुनयोऽप्युच्चारयांचक्रुश्चतुर्वेदप्रशस्तमन्त्रान् । उत्थाय च गृही-  
त्वाक्षताञ्जिशरसि विकिरन्तोऽस्य पुनरिदमवोचन् ॥

मुनि लोग भी चारों वेदों के प्रशस्त मन्त्रों का उच्चारण किये। उठ कर  
उसके शिर पर अक्षत छिड़कते हुए बोले—

'याः स्कन्दस्य जगाद् तारकजये देवः स्वयभूः स्वयं  
स्य साम्राज्यमहोत्सवेऽपि च शचीकान्तस्य वाचस्पतिः ।  
ताभिस्तेऽद्य विरञ्चिवक्त्रसरस्वीहंसीभिराशास्मद्दे  
वैदीभिर्यसुधाविवाहसमये मन्त्रोक्तिभिर्मङ्गलम् ॥ २७ ॥

तारक विजय के अवसर पर ब्रह्मा ने स्कन्द को, स्वर्ग की साम्राज्य प्राप्ति  
के अवसर पर इन्द्र को, बृहस्पति ने ब्रह्मा के मुख सरोवर में विहार करने वाली  
हसी स्वरूप जिन वैदिक मन्त्रोक्तियों से आशीर्वाद दिये, आज पृथ्वी के साथ  
अपने इस विवाह के अवसर पर उन्हीं उक्तियों से आपकी मंगल कामना हम  
लोग करते हैं ॥ २७ ॥

अन्यदपि तत्र दिवसे सुधु समाकर्ण्यता यदद्भुतमभूत् ॥

हे सुधु और भी अद्भुत घटनायें उस दिन घटी उन्हे सुने—

दिशः प्रसेदुः सुरभिर्वयौ मरुद्दिशो निपेतुः सुरपुष्पवृष्टय ।

छुतामिपेकस्य नलस्य निस्थनाननाइता दुन्दुभयोऽपि चक्रिरे ॥ २८ ॥

नल के अभिषेक होने पर दिशायें प्रसन्न हो गयीं। सुगन्धित हवा बहने  
लगी। स्वर्ग से देवताओं ने फूलों की वर्षा की। बिना बजाई हुई भी दुन्दुभि  
ध्वनि करने लगी ॥ २८ ॥

अन्तरिक्षे च कोऽप्यदृश्यमान एवारी श्लोकद्वयमपठत् ॥

आकाश में अलक्षित होकर किसी ने दो श्लोक पढ़े—

'अहीनां मालिकां विभ्रत्तथापीताम्बरं यपु ।

हरो हरिश्च भूपेन्द्र ! करोतु तव मङ्गलम् ॥ २९ ॥

श्रीः—सिद्धोऽहीनां सर्पानां स्रवं तथा तेन प्रक्षारेण इताम्बर तान्दवादि  
 ध्वनि विनतमूर्त्तिवद्व्यासाहासात् । अथ च पराचीनावस्थायां दिग्गन्धर्वादि-  
 तम्बरं गनदस्रम् । यदि वा ध्वा समन्ताग्नीतं अस्तमतिविनततया ह्यन्नमन्दरमा-  
 कानं येन । तथाविधं वपुनिग्यं विभ्रम् । हरिश्च विष्णुर्वनमालीति स्नानवान् ।  
 ऋहीनां पूगमिव मालिकाम् । तथा पीताम्बरं हरिद्रवमनं वपुर्विभ्रम् राजेन्द्र,  
 तव मङ्गलं करोविष्यथः । केवलं व्याप्तृष्वीकम् । इताम्बरमरीत्यपिसाद्यार्थं ।  
 अष्टमूर्त्तिभिः भगवान् । यदाह मन्वन् 'तवीमनीरयत्रनानत्रलानल'कर्मोभाम्बर-  
 दिभिः ? इति ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र, सर्पों की माया तथा बख्खहीन शरीर को धारण करने वाले शिव  
 और अहीन ( लम्बी ) माया तथा पीतवस्त्र युक्त शरीर धारण करने वाले विष्णु  
 तुम्हारा मंगल करें ।

[ शिवपञ्च मे—तथापि + इताम्बर, यह विच्छेद कर इताम्बर शब्द का  
 गत वस्त्र या वस्त्र हीन अर्थ दिया जाता है । इन् गती से इत बना है । इतकने  
 गत का जो अर्थ होगा वही इत का होगा । शिव को पीताम्बर भी कहा जा  
 सकता है, क्योंकि समूर्त्त अम्बर ( आकाश ) को लहने पी लिया है । जयान्  
 अपनी व्यापकता से उसे आच्छादित कर लिया है ॥ २९ ॥

अपि च—

लीलया मण्डलीकृत्य भुजंगान्यारयन्दरः ।

देयाद्देवो वराहश्चतुन्यमभ्यधिकां धियम् ॥ ३० ॥

लीलनेत्रे ॥ लीलावश्या मुञ्चद्गाम्भर्गम् मण्डलीकृत्य हरः । मुञ्चं मण्डलं कृत्य  
 गां वमुषां धारयन् वराहश्चतुन्यं मभ्यधिकां धियं देयात् । अत्र वराह इति  
 नरवराहमूर्तिर्नरमिहवद्भुजंगमण्डलीकरगतुरोधाञ्जेयः ॥ ३० ॥

दिना अम के सर्पों को गोलाकार बना कर धारण करने वाले शिव तथा  
 अपने हाथ को गोलाकार बनाकर पृथ्वी को धारण करने वाले बराह जापने निर  
 अधिक लक्ष्मीप्रद हों ।

[ यहाँ मुञ्चं गान् शब्द क्लृप्त है । शिव पञ्च मे मुञ्चं शब्द का अर्थ रूप  
 है । वाचहरक्ष ने—( मुञ्चं मण्डलीकृत्य या धारयन् ) हाथ को गोलाकार करने  
 हुए पृथ्वी को धारण किए हुए ॥ ३० ॥

इत्याशास्य विश्रान्तायां वियद्वाचि स्थित्वा च किञ्चित्कृतोचिता-  
 पचिनिपु गतेषु श्रणादन्तर्धानं मुनिषु 'समुच्छ्वायन्तां वैजयन्त्यः,  
 यध्यन्तां तोरणानि, सिच्यन्तां चन्दनाम्भोभिः पन्थानः. मण्डयन्तां  
 मसृणमुक्ताफलशोदरद्वावलीभिः प्राङ्गणानि, कुसुमप्रगात्रि चत्वरणि'

पूज्यन्ता द्विजन्मानो देवताश्च, दीयन्तां दानानि गीयन्तां मङ्गलानि,  
विखुञ्ज्यन्ता वैरिचिन्ध, मुच्यन्ता पक्षिणोऽपि पञ्जरेभ्य 'इति श्रूयमाणेषु  
परित परिजनालापेषु लास्योन्मादिनि मृदुमङ्गलोद्गारमुखरे सचरति  
पुरपद्येप पौरनारोजने स दिवस समाप्तस्वर्गसुप्तस्येव भुक्ताशेषभुवन  
स्येवाभ्यादितामृतरसम्येवानुभूतपरमानन्दस्येव राज्ञ कृतकृत्यता  
मन्यमानस्यातिक्रान्तवान् ॥

इस तरह का आशीर्वाद देकर आकाशवाणी के शा त हो जाने पर कुछ देर तक ठहर कर उचित पूजाओं को कर लेने के बाद एक ही क्षण में मुनियों के अन्तर्धान हो जाने पर पताका फहरायी जाय । तोरण बांधे जायें । च दन जत्र मे माग मीचे जायें । मुक्ता-मणियों के महीन चूर्ण वाले रंगों से आंगन अलङ्कृत किये जाय । ब्राह्मण और देवता पूजे जाय । दान दिये जायें । इस तरह चारों ओर से परिजनो की आवाज आ रही थी । नक्षत्र मे मुग्ध तथा मधुर मङ्गलमय शब्दों से मुखरित नगरवनिताय पौर भाग पर विचरण कर रही थी । वह दिन राजा को स्वर्ण-मुक्त प्राप्ति की तरह प्रतीत हो रहा था । अभूत रस के स्वाद की तरह लगता था । परमानन्द की अनुभूति सहस्र था । इस तरह राजा अपने को कृतकृत्य समझता हुआ उस दिन को बिताया ।

एवमतिक्रामत्सु केपुचिद्विषसपु, जरठीभूते महोत्सवव्यतिकरे,  
गतवति यथायथमामन्त्रितायात समस्तसामन्तलोके यौवराज्यरञ्जिते  
च परित परिजने जनेश्वरो रिपुपयोधिषडवानल नलमापभापे ॥

इस तरह कुछ दिनों के बीत जाने पर, महोत्सव की चहल पहल के पुराने हो जाने पर आमन्त्रण पर आये हुए सम्पूर्ण सामन्त मण्डल के चले जाने पर यौवराज्य मे हस्त प्रजा के अनुरक्त हो जाने पर शुशु सागर के षडवानल नल से राजा ने कहा—

तात किमपि घ्नो यदि न खिद्यसे । सप्रति धिय सख्य ध्येयस्वर  
रमन्माकर्मैणम्, न स्त्रेणम् । आभारणाय योग्या जटाभारा न हारा ।  
आहाय्याय साधयो बुधा, न बाधवा । शयनायोचिता कुशपूलिका,  
न तूलिका । क्रीडायै वरा वेगवन्ता निर्धरप्रदा न चाहा । प्राथनी  
याश्च हरप्रसादा न प्रासादा ॥

नार्तत स्त्रीणामिदं स्त्रैणम् । 'स्त्रीपुमाभ्या नष्टाशौ इति नम ॥

वत्स यदि तुम्हें दुःख न लगे तो कुछ कहूँ । इस समय मृग वर्ग से ही मैत्री करना प्रियस्वर है स्त्री वर्ग से नहीं । अलंकार के लिए उचित जटाभार ही है हार नहीं । सहायता के लिए साधु विद्वान् ही उचित हैं बाधक नहीं ।

क्षण के लिए कुश के गुच्छे ही अच्छे हैं, तूल्का ( रुई का गदा ) नहीं ।  
 क्रीड़ा के लिए वेग में बहने हुए झरनों के प्रवाह ही अच्छे हैं, बाह ( घोड़े )  
 नहीं । भगवान् शंकर की प्रसन्नता ही प्रार्थनीय है प्रासाद ( महल ) नहीं ।

तदायुष्मन्नेष वृष्टोऽस्यापृष्टोऽस्यादिलष्टोऽसि क्षमितोऽसि दुरुक्त-  
 मुक्त. इत्यभिधायोन्सङ्गमारोप्य च तत्कालगलद्वयद्वलवाप्यान्वुप्लाविते  
 वससि निधाय परिष्वज्य च पुन. पुनः पुलककारन्तमुजलताभ्या-  
 मन्मर्मन्युभरनिबन्धमानोत्तरमज्जमाद्यवदश्रुक्लिन्नकपोलमाविर्भवन्नोद  
 मूर्च्छान्धकारकुञ्चितलोचननिममाघ्राय मूर्धनि वनाय वनितासहायः  
 प्रतस्थे ॥

अन्तर्मर्षे मनुमोर्ग दैन्यातिशयेन निरुद्धमानमुत्तरं यस्य ॥

अतः हे चिरञ्जीविन्, मुझे देखा, पूजा, आर्तिगत क्रिया, क्षमा क्रिया,  
 अम्ह बातें भी कहीं ।' यह कह कर उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया । तत्काल  
 निकलती हुई अशुभारा में भीगे हुए वस्त्र स्वयं पर रख कर, बार-बार रोमाञ्च  
 के कारण कष्टकित बाहुओं से आलिंगित कर, आन्तरिक क्रोध मार के  
 कारण उत्तर न देते हुए, निरन्तर गिरने हुए आमुओं से भीगे कपोल वाले  
 मोह के कारण मूर्च्छा से बन्द आँखों वाले नरक की शिर को स्पर्श कर पत्नी के  
 साथ वन के लिए प्रस्थित हो गये ।

प्रस्थिते च तस्मिन्परिहृतराज्ये राजनि, रजनीवियुज्यमानचलञ्च-  
 क्वाकीप्यिव कृतकरुणाकन्दरासु प्रजासु, प्रतिमथनमुच्चलितेषु जरत्पौर-  
 जनेषु, 'कल्याणिन् पप पितृप्रणयप्रणामाञ्जलिरन्य क्रमागतकर्मकारिण  
 श्रुतशान्तम्य कृतापराधम्यापि त्वया सहनीयाः कतिपयेऽप्यस्म-  
 दनुकम्पयाऽपराधाः । पश्य । पथोराशेनोद्वेगाय मृगाङ्गस्य मील-  
 यन्तोऽपि कमलकरान्कराः । किं न सहन्ते सुमनसोऽपि भ्रमरभरभञ्ज-  
 नानि' इत्यभिधाय समप्य च म्वसुतमुच्चलिते च प्रेणानुगतभूभुजि  
 भुजायामनिर्जितनाले मालङ्कायने बालमन्स इव श्रुप्यत्सरःसलि-  
 लसंतापवोपिताङ्गः, करिकलम इव वियुज्यमानयूयपति. पतद्वयद्वल-  
 वाप्यदिन्दुमन्दोद्वैर्भसि विधीयमानद्वार 'हा तात' इति श्रुवन्नलो न  
 लोचने तं दिवसं समुदमोतयत् ॥

राज्य को छोड़ कर उस राजा के चले जाने पर रात के समय अपन  
 पति में अलग होनी हुई चक्रवाकी की तरह प्रजा ने करुण कन्दन किया । घर-  
 घर में नगर के वृद्ध लोग चल पड़े । कल्याणकर । परम्परा से सेवाकार्य करने  
 वाले इस श्रुतिशील का पितृ-स्नेह में प्रणाम है । अपराध करने पर भी हम



पर अनुकम्पाकर कुछ अपराधो को क्षमा करेंगे। देखिए, चन्द्रमा की किरणें कमल-समूह को मुकुलित कर देती हैं, फिर भी समुद्र को क्या तरंगित नहीं करती ? क्या फूल भ्रमरो के भार और छेदन को नहीं सहते ?” यह कह कर अपने पुत्र को समर्पित कर अपराजेय सालङ्कायन राजा के प्रेम से उनके पीछे चल दिया। मूखने हुए मरोवर जल के सन्ताप से मछली के बच्चे की तरह, यूपपति से त्रिस्तुडते हुए हाथी के बच्चे की तरह छटपटाता हुआ, गिरते हुए पर्याप्त आमुओ की पक्ति से वक्षस्थल पर आमुओ की लडिया बनाता हुआ, हा पिताजी, हा, पिताजी, कहकर विलाप करता हुआ उस दिन आत्म नहीं खोला।

केवलममन्दमन्यूद्गारगद्गदया गिरा पुन. पुनरिमंश्लोकमपठन् ॥  
पर्याप्त क्रोध भार से विह्वल होकर इसी श्लोक को बार बार पढ़ता था।

तत्तातस्य कृतादरस्य रभसादाह्वाननं दूरन-  
स्तच्चाङ्गे विनिवेश्य बाह्युगलेनादिलब्ध सभाषणम् ।  
ताम्बूलं च तदर्धचर्वितमतिप्रेम्णा मुखेनार्पितं  
पापाणोपम द्वा कृतघ्न हृदय स्मृत्या न कि क्षीर्यसे ॥ ३१ ॥

वत्सल पिताजी का जल्दी जल्दी दूर से बुलाना, गोद में बैठा कर दोनों हाथों में आलिङ्गन कर बोलना, अत्यन्त प्रेम के कारण आधे ही चबाये हुए ताम्बूल को दे देना, आदि व्यवहारों को स्मरण करके भी, हे पत्थर सहस्र कृतघ्न हृदय क्यों नहीं फट जाते ॥ ३१ ॥

एतच्चाकर्ष्यं दमयन्ती चिन्तितवती—‘अहो, स्नेहवानार्द्रहृदय  
व्यस्वसौ महानुभाव । तत्सर्वथास्मत्प्रीतिपात्रं भवितुमर्हति’ इत्यच-  
धारयन्ती पुनः पप्रच्छ ॥

यह सुन कर दमयन्ती सोचने लगी। ओह, महानुभाव, प्रेमी तथा आर्द्र हृदय के प्रतीन होते हैं। अतः सब तरह से मेरे प्रेम के पात्र बन सकते हैं। यह विचार करती हुई पुन पूछी ॥

‘हु हंस, ततस्तत.’ ॥

हु हसति । हुमिरयभ्यय प्ररने ॥

इति विषमपदप्रकाशमेत दमयन्त्या तनुते स्म षण्डपाल ।

शिशुमत्तिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्पुटभित्तिचाहचित्रम् ॥

इति षण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे चतुर्थं उच्छ्वास समाप्तः ॥

“हां तो हंस, इनके जागे क्या हुआ ?

सोऽपि राजहंसः कथामुपसंहर्तुमिच्छन्निमं श्लोकमुच्चार-  
यांचकार ॥

वह राजहंस भी क्या को सनाप्त करने की इच्छा से इस श्लोक  
को पढ़ा—

‘सुन्दरि, ततश्च—

किमपि परिजनेन स्थेन तैस्तैर्विनोदैः

पितृविरहविषादं सोऽथ विस्मार्यमाणः ।

गमयति परिवर्त्त वासरणामिदानीं

हरचरणसरोजद्वन्द्वदत्तावधान- ॥ ३२ ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-  
सरोजद्वन्द्वदत्तायां चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः ॥

सुन्दरि, इसके बाद—

इस समय परिजन लोग कुछ कुछ मनो-विनोद द्वारा पिता के विषय से  
उत्पन्न क्लेश को दूरवा रहे हैं। वह (स्वयम्) भगवान् शंकर के चरण  
कमल में ध्यान लगा कर दिनों की बिता रहे हैं ॥ ३३ ॥

चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त ।

## पञ्चम उच्छ्वासः

अथ विश्रान्तवाचि वाचस्पताविद्योच्चारितानष्टविस्पष्टवर्णो वर्णित-  
निपधराजे रजहंसे 'अहं सेवार्थो' इत्यभिधायोपरुध्यमाना कृतोत्त-  
रासङ्गेन द्विजन्मना श्रुतानुरागेण । 'वत्से, चिरान्मिलितासि' इत्युक्तवै-  
वादिलिष्टा हृदये प्रवृद्धया चिन्तया । 'पुत्रि, कथंकथमपि दृष्टासि' इति  
संभाष्येवालिङ्गिता सर्वाङ्गिपूर्वकम्पजनन्या रोमाञ्चावस्थया । 'तरुणि,  
स्यज्यतामिदानीं शैशवव्यवहारः, इत्यभिधायेव मुग्धे स्पृष्टा प्रमुखेण  
मुखे वैवर्णेन । 'मुग्धे मुच्यतां स्वच्छन्दभाय.' इत्यनुशास्येव ग्राहिता  
निजाज्ञा गुदणा मकरध्वजेन दमयन्ती । तथापि क्षणमिव महानुभाय  
नामचलभ्यानुपलक्षितावस्थमवतस्थे ॥

अथेति । अनन्तर । स्तुतनले हसे सेवितुकामोऽहमित्युक्तवैव कृत उत्पादित उत्त-  
रस्या दिशि विषये आसङ्ग आसक्तिर्मेव । नलाधारत्वादुत्तरस्या । तथा द्वाभ्या  
( तस्मिन्स्मितमुखे यूनि मूपदीर्घभुजद्वये । उ ५९ श्लोक ) येनोदीच्याध्वगेनोक्त  
नस्मादेकस्मान् द्वितीयाद्दमाज्जनमोपतिर्यस्य स तथाभूत । धृतादाकर्णनाचोऽनु-  
राग प्रेमबन्ध । तेनोपरुध्यमाना व्याप्यमाना । कृतवैकल्यकेनाध्ययनानुरागेण  
विप्रेण दाक्षिण्य नीयमानेत्यर्थान्तरम् । एवभूता दमयन्ती प्रकर्षेण वृद्धि गतया  
चिन्तया पुत्रि चिरान्मिलिता स्वमित्युक्तवैव चित्तेऽवष्टब्धा । तथा उत्कम्प जन-  
यतीति उत्कम्पजनन्या । प्रमुखेन प्रधानेन । गुरुणा दुर्बहभारेण । अर्धान्तरे तु  
प्रवृद्धया जरत्या । उद्गतकम्पया जनन्या मात्रा । प्रकृष्टमुख यस्य तेन प्रमुखेन ।  
गुरुणा आचार्येण ॥

वृहस्पति सदृश स्पष्टतापूर्वक उच्चारण करने वाला वह राजहंस जब  
निपधराज ( नल ) का वर्णन कर चुप हो गया, तो उत्तर की ओर से सम्बन्ध  
रखने वाले तथा केवल श्रवण के आधार पर उत्पन्न होने वाले उस द्विजन्मा  
अनुराग ने "मैं सेवक हूँ" यह कह कर उसे घेर लिया । "वत्से, बहुत दिना पर  
मिली हो", मानो यह कह कर हृदय में बड़ी हुई चिन्ता ने उसका आलिङ्गन  
किया । 'पुत्री, किसी किसी प्रकार से दिखाई पड़ी हो ।' मानो यह कह कर  
सम्पूर्ण अङ्गो में कम्पन उत्पन्न करने वाली रोमाञ्च की अवस्था ने आलिङ्गन  
किया । 'तरुणी, छोडो अब लडकपन का व्यवहार ।' मानो यह कर उसके  
मुन्दर मुख को अत्यधिक उदासी में डूँ दिया । 'मुग्धे स्वच्छन्दता छोडो ।'  
मानो यह अनुशासन करते हुए आचार्य कामदेव ने दमयन्ती को अपनी आज्ञा

गृहीत करायी । फिर भी वह कुछ क्षण तक अपनी गम्भीर धैर्यशीलता का अवम्बन कर उस अवस्था को प्रकट न होने दी ।

[ इस अनुच्छेद में अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप दिया गया है । अनुराग विन्ना, अवस्था जादि पदाय बोलन हुए दिखाय गये हैं । अनुराग क उतोत्तरासङ्ग और द्विजन्मा दो विषेया दिय गये हैं । नल उत्तर का राजा था, उसक प्रति इस अनुराग ने यह आसक्ति लयी है, अथवा यह उत्तर ने सम्बन्ध रखन वाला है । जन इन उतोत्तरासङ्ग कहा गया है ।

द्विजन्मा—प्रथम उच्छ्वास में ही एक पक्षि ने दमयन्ती से नन्दविषयक चचाकर उसके प्रति अनुराग का जन्म दिया था । इस हस ने भी उमी = शार्करिक वृत्तात्त स उमे अनुराग को पुन उज्ज्वल बनाया है । अत दो बार उम लेन के कारण इस अनुराग का द्विजन्मा कहा गया है । ]

ता च तथा बलात्सरलीभ्रश्चिश्वाससूचितान्तर्मन्मयव्यथावेगाम्,  
अक्षण्डकुण्डिनधैर्यासिधारण, हृत्पुण्डरीकं मनोरधानीतनलावलोचना  
धर्मिवान्तर्मुष्ठीभूतचक्षुर्व्यापाराम्, आकस्मिकस्मरारस्मारण  
दाम्ब्यन्ता दमयन्तीमप्रलोक्य तदिद्विज्ञिताकारकुशला परिहासव्यसनिनी  
परिहासशीला नाम सर्वा 'महानुभाव, नास्माकमद्यापि तद्गुण  
श्रवणाय श्रान्यति श्रोत्रेन्द्रियम् । न तुष्यति प्रश्नरसायनाय जिह्वा ।  
न सन्तुष्यति विशेषज्ञानाय शेषुषी । नानुरागायोपरमते मन । तत्कथं  
वृत्तानसि गांतस्येव त्रिस्वरम्, वाद्यस्येव वितालम्, लास्यस्येवा  
न्यथापदप्रचारम्, अत्यन्तरसचिच्छेदकारिणं कथाप्रक्रमस्य विरामम्,  
एतत्परमपि पिपासया पय पातुमुद्यतस्येवारिरताया त्वपि वारिधार  
निवारणम् । इयं सा भुञ्जानस्यार्धवृष्टि, सोऽयमप्रातरतस्य रिरसा  
व्याघात' । तत्र युक्तमिवान्तरे विरन्तुम् । निन्कारणोपकारिन्,  
प्रसर्त्यता पुण्यराशेस्तस्य स्वरूपात्यानामृतप्रपामण्डपो निर्जान्तु च  
विरजालमनङ्गप्रोपतप्ता एवंविधकन्यका प्रसारितश्रवणाञ्जलय'  
इति दमयन्तीमर्धक्षणेन कटाक्षयन्ती तं राजहंसमालापयाञ्चकार ॥

न च । दमयन्ती गृह्यमाण स्मरणपरवर्णामित्थं । तदिद्विज्ञिताकारचञ्चलित  
चेष्टितम् । आकारो मुन्वरागादि । वारिधारया विधारण विच्छेद । निवारणम्  
इति वा पाठः । रिरसाया मया व्याघातोऽतराय' । 'रतिव्याघान' इति पाठ तु  
स्पष्टमेव ॥

बलात्कार बड़ी सरलता से निकलते हुए स्वासों से आन्तरिक कामव्यथा  
सूचित हो रही थी । धैर्य कृपागंधारा समय में ही कुण्ठित हो रही थी । मनरूप

रथ पर बैठकर हृदयकमल में लाये गये नल को देखने के लिये आँसो का व्यापार कुछ अन्तर्मुख सा हो गया था ।

[ नल विषयक चिन्तन के कारण भावमग्न दमयन्ती की आँसे कुछ निमीलित सी हो गयी थी । ]

अचानक आये हुए इस काम से पकड़ी जा रही दमयन्ती को देख कर उसके सकेत आदि को पहचानने में निपुण, मजाकी स्वभाव की, परिहासशील नाम की सली आये क्षण तक दमयन्ती पर कटाक्ष करती हुई बोली—

“महानुभाव, अभी भी उनके गुणों को सुनने के लिये हम लोगों के कान थके नहीं हैं । प्रश्न रसायन से जिह्वा तृप्त नहीं हो रही है । उनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने में मन थक नहीं रहा है । बिना स्वर के ये कौन से गति आप गा गये । बिना ताल के कौन बाजे बजा गये । बिना पैरो को थिरकाये कौन सा नृत्य कर गये, जिसने हम लोगों को मुग्ध कर दिया । इस कथा-प्रसङ्ग की समाप्ति रस को भङ्ग कर रही है । इससे भी अधिक इस प्रसङ्ग में यह कहा जा सकता है कि कथा की समाप्ति उषी तरह की है जैसे प्यास के कारण पानी पीने के लिये तैयार आदमी की प्यास अभी बुझी भी नहीं तब तक पानी की धारा रोक दी जाय । ( आपका यह कथा प्रसङ्ग ) लाते हुए आदमी की आधी ही तृप्ति है । “सभोग प्राप्त भी नहीं हुआ है तब तक रमण की इच्छा को छिन्न कर देना” इसी को कहते हैं । इस लिये बीच ही में विराम करना अच्छा नहीं है । उस पुण्यराशि ( नल ) के रूप वर्णन विषयक कथामृत पान कराने वाले मण्डप को विस्तृत कीजिये, जिससे बहुत देर तक काम की उद्यता से तप्त होकर अपनी कर्णज्वलि को फैलायी हुई इस तरह की कन्याओं कुछ तृप्ति का अनुभव करें ।

सोऽपि ‘सुन्दरि, किमन्यत्तस्य समस्तस्त्रीहृदयप्रासादप्रतिष्ठापित-  
प्रतिमस्याद्यापि प्रशस्यते ॥

वह भी, “सुन्दरी, और उसको दूसरी प्रशंसा क्या कहूँ, जब कि उसकी मूर्ति समस्त रमणियों के हृदय-प्रासाद कर प्रतिष्ठित हो चुकी है ।

यत्र श्रूयमाणे न मधुरो धेणुवीणाकणः, दृष्टे नाभिराम. काम. ।  
संभाषिते न सारा सरस्वती, परिचिते न श्लाघ्यममृतम्, अभ्यस्ते  
नानन्दीन्दु., प्रसादिते न प्रशंसास्पदं धनदः ॥

वचति । श्रूयमाणे नेत्यादी सप्तम्यन्ताद्यम् । अभ्यस्ते परिशीलिते ॥

जिसके सम्बन्ध में सुनते रहने पर वशी और वीणा की ध्वनि मधुर नहीं लगती, जिसे देखने पर काम भी मधुर नहीं लगता, जिससे बात करने पर

सरस्वती में भी तत्व नहीं प्रतीत होता, जिससे परिचय कर लेने पर अमृत भी प्रदरुनीय नहीं रह जाता, जिसके साथ रहने पर चन्द्रमा में भी आनन्द नहीं आता, जिसे प्रयत्न कर लेने पर कुबेर भी प्रदसा का पात्र नहीं रह जाता ।

किं वदुना—

भयति यदि सहस्रं वान्पटूना मुखानां  
निवृत्तममरधानं जीवितं चापि दीर्घम् ।  
कमलमुखि तथापि क्षमापतेस्तस्य कर्तुं  
सकृलगुणविचार शक्यते वा न वेति ॥ १ ॥

अधिक क्या—

हे कमलवदन, यदि बोलने में प्रवीण लोगों के सहस्र मुख हो जायें और उन्हें एक लम्बी जिन्दगी मिल जाय, अनुरम ढंग से वर्णन में वे दक्ष चित्त हो जाय तो भी तू राजा के गुप्तों पर विचार कर पायेंगे कि नहीं यह सन्देह की बात है ॥ १ ॥

अपि च

संसाराम्बुनिग्री तदेतदजनि स्त्रीपुंसरत्नद्वयं  
नारीणा भयती नृणां पुनरस्तौ सौभाग्यसीमा नल ।  
सा त्वं तस्य कुरङ्गशासनयने योग्यासि पृथ्वीपते—  
रेतत्ते कथितं किमन्यदधुना यामो वयं स्वस्ति ते ॥ २ ॥

सनारं किं स्वस्तियोगे त इति अनुर्थ्यन्तम् ॥ २ ॥

और—

इस सवार सार में दो ही स्त्री रत्न और पुरुष रत्न उल्लेख हुए । स्त्रियों में आप और पुरुषों में सौन्दर्य की सीमा पर पहुँचा हुआ नल । मृगशिशु नेत्रे ( मृग के बच्चे की तरह आँखों वाली ), उस पृथ्वीपाल के साथ विवाह की योग्यता तुम में है यही कह देता हूँ, और दूसरा क्या कहूँ । आप का महान्त हो । अब मैं जाता हूँ ॥ २ ॥

अन्यच्च—

चन्द्रमुखि, महानाम्नि सुसंधिकृति सुसमासारायाततद्धिते सत्त्वा  
रके परिभाषाकुशले बलायलविचारिणि विचार्यमाणे ध्याकरणे प्रेक्ष्य-  
माणे च दूते नापदादसम्बन्धो भयति । तत्रेभ्यतां तथाविधस्तस्या  
स्तिकं नोऽपि दूतः ॥

अन्वेषि । चन्द्रमुखीनि सवधनम् । नाम प्रातिपादिक तद्विषय प्रकारणमपि नामोपुपचारे मति महदिति विशेषस्य सकलत्वम् । नाममात्रस्य महत्त्वज्ञेन

व्यवच्छेद्याभावात् । सुष्ठु सन्धिर्वर्णसश्लेष कृतसञ्ज्ञकप्रत्ययश्च यत्र । समासस्त-  
 स्पुरुपादि । आख्यात क्रिया । तद्धितोऽणादि । कारकमपादानादि । परिभाषा  
 न्यायसूत्राणि । बलाबल पूर्वापरविधीना वाधस्थिति । अपशब्दोऽमाधुशब्द ।  
 दूतपक्षे । नाम सज्ञा । सुष्ठु सन्धि पणवन्ध करोतीति ही सप्तमी । सुष्ठु समासेन  
 मन्वेपेणाख्यात कयित् तस्मै हित येन तस्मिन् । सत्कारके सक्रियाजनके । परितो  
 भाषा संस्कृतप्राकृताद्या कर्णाटादिदेशभाषा वा तासु दृष्टे । बलाबल शक्यशक्ती ।  
 अपशब्दोऽपवाद ॥

और

दूतपक्ष—

हे चन्द्रवदने, यशस्वी, दीनो पक्षो मे सामञ्जस्य स्थापित करा देने वाले,  
 भेजने वाले का हित चाहने वाले, सुन्दर कामना करने वाले, विभिन्न भाषाओं  
 में प्रवीण, शक्ति और अशक्ति पर विचार करने वाले दूत के भेजने पर किसी  
 तरह की आशका नहीं रह जाती । अतः इसी तरह के किसी दूत को उसके  
 पास भेजो ।

व्याकरणपक्ष—प्रातिपदिक, पञ्च सन्धि, समास, आख्यात ( तिङन्त )  
 तद्धित, कारक, ( असिद्ध बहिरङ्गमन्तरङ्गे आदि ) परिभाषाओं के कारण  
 कुशल, ( विप्रतिषेधे पर कार्यम् आदि ) शास्त्रों के पूर्वापर विचार से पूर्ण  
 व्याकरण शास्त्र के आधार पर विचार करने पर अपशब्द से सम्बन्ध नहीं  
 रह जाता ॥

[ प्रातिपदिक को महासज्ञा कहा जाता है । ]

‘न च बृहत्यासंपदान्विते जगत्याऽप्याते सत्कृतगुरुगणे शार्दूल-  
 विक्रीडिताडम्बरिणि पुण्यश्लोके पर्यालोच्यमाने छन्दसि प्रार्थ्यमाने  
 च तस्मिन्निपधेश्वरे वृत्तमद्भो भवति’ इत्यभिधाय गन्तुमुदचलत् ।

ननु यद्यह दूत प्रेषयिष्यामि । तदा ‘स्वच्छन्दचारिणीयम्’ किञ्चदन्ती भविष्य  
 तीत्याशङ्क्याह-न चेति ॥ बृहतीजगतीशब्दौ छन्दोजातिवचनौ तृतीया-तौ ख्यात  
 पदेन प्रसिद्धार्थेन योज्यौ । तथा सङ्गते पदैरन्विते । अथवा छन्दसि कथम्भूने ।  
 पदान्विते कथं यथा भवति बृहत्यास बृहत्या जातौ आसोऽश्वर्यान चरयति  
 पदान्वयक्रियाविशेषणम् । यदि वा बृहत्या जात्या हेतुभूतया याऽमी सम्पच्छोभा  
 तयान्विते । पक्षे बृहत्या गुण्या सम्पदा श्रियान्विते । जगति लोके आख्याते  
 कीर्तिते । गुरवो विपरोत्तल्लारादय । आचार्याश्च । शार्दूलविक्रीडित छन्दोनाम,  
 सिंहविलसित च । श्लोक पद्य यशश्च । वृत्त पद्य शील च । इह यद्यपि श्लोकोऽ-  
 सुष्ठुच्छन्दो लोके प्रसिद्धम् । तथापि केचित्सर्वमपि पद्य श्लोकमाहुः ॥

नलपक्ष—

बड़ो सम्पत्ति से युक्त, ससार में प्रसिद्ध, बड़ो का सत्कार करने वाले,

पवित्र यज्ञ वाले निषध देस के राजा मे प्रार्थना करने मे किसी तरह का शील-भङ्ग नहीं है ।

वेदपक्ष—बृहती तथा जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उससे अग्नित (युक्त) तथा उसी के कारा प्रसिद्ध, गुरुवर्गों को विशेष स्थान देने वाले, शार्दूलविश्रीदित छन्द की तरह समृद्ध, पवित्र इन्को वाले वेद के पर्यालोचन मे छन्दोभङ्ग दोष नहीं होता । यह कह कर जाने के लिये तैयार हो गया ।

[ इस अनुच्छेद मे प्रयुक्त बृहती और जगती शब्द में हेतुतृतीया कर सम्पदा के साथ उभवा अन्वय करना चाहिये । आवृत्ति कर "अग्निते" और "स्थाने" का सम्पदा के साथ अन्वय होगा । अर्थात् बृहती और जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उसमे युक्त और उसके कारण प्रसिद्ध ।

शार्दूलविश्रीदित्वाम्बरिणि—यद्यपि शार्दूलविश्रीदित छन्द लौकिक छन्द है, उसमे वेद की समृद्ध बताना उचित नहीं है फिर भी यह कहना चाहिये कि शार्दूलविश्रीदित छन्द जिस जाडम्बर या परिमा के साथ पढा जाता है उस तरह के महत्त्वपूर्ण छन्दो से युक्त ।

पुष्पलुके—दलोक शब्द छन्दःशास्त्र मे अनुष्टुप के ही लिये प्रसिद्ध है फिर भी सामान्यत पद्यारम्भ रचनामात्र के लिये इसका व्यवहार होता है ।

वृत्तभङ्ग—यह शब्द छन्दोभङ्ग और शीलभङ्ग दोनों अर्थों को व्यक्त करता है । वृत्त के अर्थ छन्द और व्यवहार दोनो हैं ।

वेद के पर्यालोचन और निषधेश्वर की प्रार्थना मे केवल शास्त्री समानता है । कोई आर्षी समानता नहीं है ।

उच्चलितं च तं परिहासशीला पुनर्यभाषे ॥

'महानुभाव, यथेयमनुरागकन्दलैरालापैस्त्वयोक्ता, तथा सोऽपि स्पृहणीयोक्तिभिरभिधातथ्यः । यतो न ह्येकहस्ततलेन तालिका वाद्यते, न चैकं ततमतप्तेनापरेण लोहं लोहेन संधीयते, नाप्येकं रक्तमरक्तान्ग्येन वस्त्रमपि वाससा संयोजितं शोभां लभते । केवलं विद्युगलमेव भवति' इति ॥

जाने के लिये उद्यत उस हस्त से परिहासशीला पुनः बोली—

"महानुभाव, प्रेम को अङ्कुरित करने वाली जैसी बातें आपने इनसे कहीं वैसी उनमे भी उत्सुकता उत्पन्न करने योग्य बातें कहेंगे, क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती । एक ठंडा लोहा गरम लोहे से जोड़ा नहीं जाता ।



एक रक्त वस्त्र यदि अरक्त ( दूसरे रङ्ग वाले या बिना रङ्गे हुए ) वस्त्र के साथ जोड़ दिया जाय तो शोभा नहीं पाता । केवल विषमता ही होती है ।

[ इस अनुच्छेद में लोहे की उष्णता तथा आदि शब्द इस बात की व्यञ्जना करते हैं कि दमयन्ती में ही कामजन्य उष्णता तथा अनुराग का संचार नहीं होना चाहिये । इस को चाहिये कि नल में भी कामविषयक अनुराग की वही मात्रा उत्पन्न कर दे । )

पदंघादिनीं दमयन्ती परिहासशीलामलपत्—

सखि, किमस्य निष्कारणउत्सलस्यैवमभ्यर्थ्यते ॥

यस्यास्मासु निरपेक्ष. पक्षपात, म्यभावजं सौजन्यम्, अकृत्रिम स्नेहभाव, अनुपचरितमुपकारित्वम्, अपरिचया प्रीति, अनभ्यासं सौहार्दम्, अदृष्टपूर्वा मैत्री ॥

यस्येति । पक्षो मित्राद्यवष्टम्भ पक्षी च । अभ्यासं सामीप्यम् ॥

इस तरह बोलती हुई परिहासशीला से दमयन्ती ने कहा—

“सखि, इस अकारण कृपा करने वाले में इस तरह क्या निवेदन कर रही हो ?”

जिनका हम लोगो की ओर अकारण झुकाव है, जिनकी स्वाभाविक मुजबता है अकृत्रिम प्रेम है, आडम्बरहीन उपकार भावना है, अपरिचयावस्था में भी प्रेम है, बिना समीपवर्ती बने ही सौहार्द मिला है । इस तरह का स्नेह इसके पहले नहीं देखा गया था ।

तदेवंविधो निर्निमित्तवन्धु किमभ्यर्थ्यते । केन याच्यन्ते चन्द्र-चन्दनसज्जना परोपकाराय । किन्तु कतिपयमुहूर्त्तमैत्रीरञ्जितास्म-न्मनसो दुस्त्यजस्थाकाण्ड एवाम्य गन्तुमुत्सहमानस्य किंभ्रूम । मा गा इत्यशकुनम्, गच्छेति निन्दुरता, यदिष्टं तद्विधीयतामित्यौदासी-न्यम्, आदर्शनात्प्रियोऽसीति क्रियाशून्यालाप, कस्त्वमेवंविधो दिव्य-घातपक्षिरत्नमित्यप्रस्तुतप्रश्न, केनार्थीत्यप्रक्रान्तम्, किं ते प्रियमा-चरामीत्युपचारवचनम्, एतोपकारोऽसीति प्रत्यक्षमन्तुनि ॥

इस तरह के अकारण बन्धु में क्या निवेदन करना है । परोपकार के लिये चन्द्रमा तथा चन्दन की शीतलता कोन मांगना है । ( बिना मांग ही मिलती है । ) कुछ ही क्षणों की मित्रता से हम लोगो के मानस को अनुरक्त कर दिया है । अतः इसे छोटना बड़ा दुःखद है । असमय में ही जाने के लिये साहस किये हुए इससे क्या कहें । “न जाओ” यह कहना अनुभूत है । “जाओ” यह कहना निन्दुरता ही है । “जो अच्छा लगे वह कीजिये” यह कहना उदासीनता

है। "जब से दिव्यानी पड़े हो तब ने मधुर लग रहे हो" यह व्यापारहीन चर्चा है। इस तरह की दिव्य वाणी वाले पक्षियों में रत्न आप कौन हैं ?" यह अप्रासङ्गिक प्रश्न है। "किस प्रयोजन से आये हैं ?" यह पूछने का कोई प्रकरण नहीं। "आप का क्या प्रिय कहें ?" यह एक साधारण बात है। "आप ने बड़ा उपकार किया" यह प्रत्यक्ष स्मृति है ॥

तत्र ज्ञानीमः कल्याणयन्धो, किमुच्यसे। वरमदर्शनमेव भवाद्द-  
शाम्, न तु ल्यमानाद्वावयवदुःसहो दर्शनज्याघातः। वरमनास्वा-  
दिनमेवानृतम्, न तु सकृत्पान्था पुनरलामदुःखम् ॥

अतः हे कल्याणप्रद मित्र, मानुष नहीं होता कि आप से क्या कहूँ। आप जैसे लोग न दिव्यानी पड़ें यही अच्छा है, क्योंकि अज्ञा के काटे जाने की अपेक्षा भी अधिक दुःखद यह दर्शन का विच्छेद अच्छा नहीं ॥

अतः प्रार्थ्यसे भूयो दर्शनार्थम्, इय मविष्यति भवत्प्रियस्य  
कस्याप्युपायनमात्रमन्मदनुस्मरणनाटकसूत्रवारी हारलता' इत्यभि-  
धाय नलनुररीकृत्य 'महानुभाव, द्वाभ्यां श्रुतोऽसि पान्याद्ममाद्राज-  
हंसाच्च, द्वाभ्यामुद्यसे वाचा हृदयेन च, द्विकालं स्मर्यसे दिवा नक्तं  
च, इयां गतिरन्माकमिदानीं त्वं वा मृत्युर्वा' इति द्विसंख्यसंदेशार्थ-  
मिष द्विगुणीकृत्योन्मुच्य च म्वरुण्डकन्दलादुत्कण्ठितामिव स्यां  
मूर्त्तिमतां तस्य मुक्तावलीं गले व्यलम्बयत् ॥

"अब पुनः दर्शन कीजियेगा, यही प्रार्थना है। यह हार लता आप के प्रिय ( नर ) के लिये उपहार तथा हमारी स्मृतिरूप नाटक के लिये सूत्रवार होगी।" यह कहकर नल को हृदय से स्वीकार कर महानुभाव, दो से सुने गये हो, प्रथम बार उस पक्षि के तथा दूसरी बार इस राजहंस से। दो पदार्थों से धारण किये जा रहे हो, वाणी से और हृदय से। दो समय में स्मरण किये जा रहे हो, रात और दिन। इस समय हमारी दो ही गति हैं, तुम या मृत्यु। मानो दो सन्देश के लिये अपने कण्ठ कन्दल ( बटुकर ) से निकाल कर और उसे दुगुना कर उच्छ्वासवत्या की अपनी प्रतिमूर्ति उस मुक्तावली को उसके गले से लटक दी।

सोऽपि "सुन्दरि, सोऽयं स्कन्धीकृतो मया मुक्तावलीच्छलेन  
तस्य पुरो भवद्दर्शनाभारः" इत्यभिधाय सह तेन विहंगमगणेनो-  
त्पपात ॥

सोऽपीति ॥ स्कन्धीकृतोऽहीकृतः ॥

“मुन्दरी, मुक्तावली के बहाने उस ( नल ) के सामने आपके वर्णन का भार ही मैंने बङ्गीकार किया है।” यह कहकर वह हंस भी पक्षियों के साथ उड़ गया ॥

उत्पतिते च नभस्तलम् 'आगच्छत, सपद्यन्तां सफललोचनाः, पश्यतापूर्वं श्रीरत्नम्' इति चलत्पक्षपह्लवव्याजेन दूराद्विकपालानि-  
चाह्वयति तीव्रघ्नमयूखसंतर्तां दिवमियोपवीजयति, दिक्कुञ्जरनिकुञ्जा-  
वकाशा भशा इवाश्वासयति, पक्षिमण्डले तस्मिन्विस्मयोन्मुखी सा  
भूपालपुत्री निर्निमेषं निक्षिप्य चक्षुश्चिरमूर्ध्वैवावतस्थे ॥

उत्पतित इति ॥ दिक्पालानाह्वयतीत्यनेन भाविद्विकपालागमनं सूच्यते ॥

उन पक्षियों के समूह के उड़ जाने पर आश्चर्य से मुख ऊपर उठा कर वह राजकुमारी निर्निमेष दृष्टि को उन्ही पर लगा कर चिर काल तक उन्ही की ओर देखती रही। ( उड़ते हुए पक्षियों का समूह ) अपने पहलव सदृश पक्षों के बहाने मानो यह कहता हुआ दिक्पालों को बुला रहा था, “आओ देखो इस कन्यारत्न को और अपनी आँसों को तृप्त करो” या सूर्य की प्रखर किरणों से सन्तप्त आकाश को पखा शेरु रहा था, या दिग्गजों से घिरी हुई दिशाओं को आश्वासन दे रहा था।

चिन्तितवती च—

‘तात तावन्ममाप्येवं न विधत्से प्रजापते ।

पक्षी पक्षिवदुड्डीय येन पश्यामि तन्मुखम् ॥ ३ ॥

वह सोचती थी—

पिता ब्रह्माजी, मुझमें भी पक्ष क्यों नहीं बना देते कि उन पक्षों से उड़ कर उस ( नल ) का मुख देख सकूँ ॥ ३ ॥

अपि च—

उड्डीय वाञ्छितं यान्तो धरमेते विद्वद्गमाः ।

न पुनः पक्षहीनत्वात्पङ्कप्रायं कुमानुपम् ॥ ४ ॥

उड्डीयेति ॥ अपि मनोरथाय स्त्री मानुषी पुमान्मानुष इति 'स्त्रीपुंसयोरप-  
स्थान्ना द्विचतुःषट्पदोऽर्था' इति लिङ्गिवचनाभ्यानुपशब्दस्य स्त्रीपुंसस्य वृत्तित्वा-  
त्तथापि नपुंसशब्दमपि । लिङ्गस्य लोकाभ्रयात् । तथा च भवभूति — अद्वैत सुख-  
दुःखयोरनुगत सर्वोत्थवस्थासु यद्विधामां हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नदायो रसः ।  
कालेनावरणाययात्परिणते यस्नेहसारस्थितं भद्र तस्य सुमानुपस्य कथमप्येक ही  
तददुर्लभम् ॥ ४ ॥

चट कर अपने आकाङ्क्षित स्थान पर चले जा रहे थे पक्षी अच्छे किन्तु पक्षहीन होने के कारण लंगड़े की तरह यह कृतित मानव जीवन अच्छा नहीं ॥ ४ ॥

इति चिन्तयन्ती गतेष्वपि तेपृन्मुर्धा तां दिशमनुविस्मयविस्फार-  
लोचना निस्पन्दतया काष्ठकल्पामवस्थां दधानां विद्यत्सर्वाभिः  
सम्बोध्य स्वगृहमनीयत ॥

यह सोचती हुई, उन पक्षियों के चने जाने पर भी उसी दिशा की ओर आरचन के मारे आँखा को फैला कर, निश्चल होकर बाठ की दशा को धारण करती हुई, देर तक सखियों द्वारा बुझायी जाने पर अपने घर गयी ॥

ततः प्रभृति च तन्याः सरलीभवन्ति निश्वासा न हासाः, स्त्रल-  
न्ति वाचो न शुचः, घण्टे तन्द्रा न निद्रा द्रवति स्वेदाम्मो न  
मन्मः, मन्दायते स्वरो न स्मरः, वाञ्छा चन्दनाय न स्पन्दनाय,  
सन्नापशान्तये तद्गुणादानं न स्नानम्, प्रीयते हारो नाहारः, सुखा-  
याहे लग्नुद्यानप्रमञ्जनो न जनः ॥

न रति ॥ प्रमञ्जनो वात एवाद्ने लग्नुद्याय न परिजन ॥

उस दिन के बाद निश्वास ही उसके लिये सरल थे. हास नहीं। वागो ही कम हुई, चिन्ता नहीं। तन्द्रा ( जंभाई ) ही बड़ी निद्रा नहीं। पत्तीने ही निकले, शरीर की अकड़क नहीं गई। स्वर ही मन्द पडा, काम मन्द नहीं हुआ। चन्दन की इच्छा हुई, स्पन्दन ( घूमने ) की नहीं। वेदना की शान्ति के लिये उस नर के गुणों का ग्रहण ( श्रवण ) ही उपयुक्त था, स्नान नहीं। ( शीतलता के लिये कमल शैवाल आदि के ) हार ही प्रिय लगते थे, आहार ( भोजन ) नहीं। अङ्गों को छूता हुआ उपवन का पवन ही अच्छा लगता था, बादमी नहीं ॥

पठति च मुहुर्मुहुरिम श्लोकम्—

विश्रान्यन्ति न कुत्रचिन्न च पुनर्मुह्यन्ति मार्गेष्वपि  
प्रोत्सुहे विलगन्ति नान्तरतदध्रेणीशिखापङ्करे ।  
स्त्रियन्ते न मनोरथाः कयमनां त देशमुत्कण्ठया  
धावन्तः पथि न म्बलन्ति विषमेऽप्यास्ते स यस्मिन्प्रिय ॥५॥

विश्रान्यन्तीति ॥ मनसि रथा इव मनोरथा मञ्जुलता । विश्रानादयो रयधर्मा ॥ ५ ॥

बार बार इसी श्लोक को पढ़ती थी— ये मेरे मनोरथ उत्सुकतापूर्वक उस देश की ओर दौड़ रहे हैं। कहीं विश्राम नहीं लेते। मार्ग में कहीं ( एक

कर ) मृच्छित नहीं होते । कहीं भी ऊँचे शिखरो से टकराते नहीं । बीच की वृक्ष पङ्क्तियों की ऊँची शाखा रूप गगुल म फँसकर खिन्न नहीं होते । उस टेढ़े मेढ़े रास्ते में जहाँ वह प्रिय रहता है, कभी विचलित नहीं होते ॥ ५ ॥

तेऽपि राजहंसाः शशाङ्कधरेषु, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु, शिवरूपेषु,  
वनेषु, सुशोभां कौमुदी दधत्सु, शश्वदनुकृतसामुद्रवृद्धिषु, चन्द्रमण्डल-  
रूपेष्विव सर सलिलेषु विहरन्तस्तुहिनाद्रिकुञ्जानिव सत्रिप्रपथगात्रग-  
नगरग्रामाग्रहारपत्तनप्रदेशानुल्लङ्घयन्तः कतिपयदिवसैरासेदुरुद्यानं  
निपघाया ॥

तेऽपि ॥ हसा वनेषु सरोजलेषु च विरहन्तो नगादिप्रदेशान् न्यतिक्रामन्तो  
निपघोद्यानमापु । कीदृष्ट वनेषु । शशा अङ्गे यस्यास्तथाभूता धरा भूमिर्येषु ।  
तथा सच्छद्मान- पञ्चानना सिंहा येषु । शिवस्तु शशाङ्क चन्द्र धरति । तथा  
सह प्रपञ्चै पृथङ्गार्गागमोपदेशलक्षणवर्तन्ते तथाभूतानि पञ्चसहयानि धान-  
नानि खत्राणि यस्य । सरोजलेषु कीदृष्ट । कुमुदानामिव कौमुदी शोभा ताम् ।  
चन्द्रमण्डले तु कौमुदी चन्द्रिका ताम् । तद्विशेषण सुशोभामिति । अनुकरण-  
मनुहरणम् । चन्द्रपक्षे अनु पश्चात्कृता सामुद्री वृद्धिर्येन । चन्द्रोद्गमो हि जलधि-  
वितृद्ध्यै । न विद्यन्ते नावो यत्र तदनु, अनु यथा भवति एव कृतवृद्धिषु । पुरो  
त्पीठे हि न केऽपि नाव सिपन्तीनि । नगनगर-देशान् । कीदृश- । सत्राणि  
ग्राह्यणादीनां भोजनानि यज्ञा वा विद्यन्ते येषु । ते च ते पन्थानश्च सत्रिप्रपथ-  
स्तान्नाच्छन्ति प्राप्नुवन्तीति सत्रिप्रपथगास्तान् । हिमाद्रिनि कुञ्जास्तु सह त्रिप्रपथगा  
गङ्गाया ( तस्य द्विष्वम् ) ॥

वे राजहंस भी, अपने अंक ( गोद ) में खरगोशों को धारण की हुई पृथ्वी  
वाले, कपटपूर्ण सिंहों वाले, शिव के रूप सहस्र वनों में, कुमुदा की शोभा  
धारण करने वाले, निरन्तर समुद्रवृद्धि का अनुकरण करने वाले, चन्द्रमण्डल रूप  
सरोवर जलों में विहार करत हुए यज्ञों से अलङ्कृत मार्गवाले पर्वतों, नगरों,  
गाँवों, दानभूमियों और नगरक्षेत्रों को लापने हुए कुछ ही दिनों में निपध  
नगरी के उपवन में पहुँच गये ॥

[ इस अनुच्छेद के प्रायः प्रत्येक शब्द सिद्ध हैं । वनपक्ष—शशाङ्कधर—  
शश ( खरगोश ) अपने अङ्क ( गोद ) में जहा की धरा ( पृथ्वी ) धारण करती  
है, ऐसे वन को शशाङ्कधर कहा गया है ।

सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—प्रपञ्च के साथ ( शिकार को पकड़ने के लिये )  
चुपक से कपटपूर्ण भाव में जहा के सिंह बैठे हुए हैं ।

इस व्याख्या के अनुसार शशाङ्कधर और सप्रपञ्चपञ्चानन, दोनों ही वन  
के विशेषण हैं । ये विशेषण शिव पक्ष में भी लगेगे ।

सिद्धपञ्च—सशाङ्कधरेषु—सशाङ्क ( चन्द्रमा ) को धारण करने वाले, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—साङ्गोपाङ्ग वेदों से युक्त पाच मुक्तो बाले ।

मुग्धोभा ...विहरन्त—सरोवर पञ्च में—कौमुदी शोभा—कुमुदो मे होने वाली शोभा को कौमुदी शोभा कहा गया है । शश्वदनुवृत्त समुद्रवृद्धिषु—सरोवरों में इतना जल है कि बड़े हुए पूर्णिमा के समुद्र का सदा अनुकरण करते हैं । समुद्र तो केवल पूर्ण चन्द्र को देखकर बढ़ता है किन्तु ये सरोवर तो सदा बड़े रहने हैं ।

चन्द्रमण्डपञ्च—कौमुदी ( चन्द्रिका ) की शोभा धारण किया हुआ रहता है । शश्वदनुवृत्तवृद्धिषु—अपनी पूर्णता के बाद सदा समुद्र की वृद्धि करता है ।

तुहिनाद्रि लङ्घयन्तः—नगर ग्राम आदि हिमालय के कुञ्जों की तरह हैं ।

तुहिनाद्रि कुञ्ज पञ्च—हिमालय पर्वत के कुञ्ज सुन्दर त्रिपयगा ( गंगा ) के साथ हैं ( अत उन्हे सत्रिपयग कहा जाता है । द्वितीया के बहुवचन मे सत्रिपयगान् रूप है ।

नगर-ग्राम आदिपञ्च—सत्र ( यज्ञ, दान आदि ) कार्य जिन मार्गों में चल रहे हैं वे मार्ग सत्रिपय हुए । उन मार्गों के साथ जिन नगरों और गावों का सम्बन्ध है वे सत्रिपयग हुए । अर्थात् वे पवित्र आत्मा वाले हंस शोभा सम्पन्न धार्मिक मार्गों से गये जिनमे यज्ञ, दान आदि के कार्य चल रहे थे । ऐसे मार्ग से जाने का फल यह भी था कि कोई व्याध आदि हिंसक तत्त्व उनकी यात्रा के बाधक नहीं हुए । दूसरा लाभ यह भी था कि धार्मिक लोगो द्वारा बिछेरे गये भोज्य पदार्थों से भोजन का काम भी सम्पन्न हो गया ।

अग्रहार—अग्र ( ब्राह्मण भोजन ) के लिये राजकीय सम्पत्ति से अलग किये गये क्षेत्र को अग्रहार कहते हैं । “अग्र ब्राह्मण भोजन, तदर्थं ह्रियते राज-धनान् पृथक् क्रियते क्षेत्रादिरिति अग्रहार” ॥ नीलकण्ठ ॥

क्षेत्रोत्पन्नशस्यादुद्धृत्य ब्राह्मणोद्देशेन स्वाप्य धान्यादि , गुरुकुलावृत्त ब्रह्म-चारिणे दत्त क्षेत्रादि , शासभेदश्च । वाचस्पत्यम्, ताराणाथ ।

क्षेत्र में उत्पन्न अन्न से निकाल कर ब्राह्मण के लिये जो अन्न रक्ता जाय उसे या गुरुकुल से लीटे हुए ब्रह्मचारी को दी जाने वाली भूमि को अग्रहार कहते हैं । ग्राम विशेष का भेद भी अग्रहार है ॥

क्रीडितुमारमन्त च स्वच्छन्दम् ॥

स्वच्छन्द खेलना भी प्रारम्भ कर दिये ।

अथ तेषामन्यतमामवलोक्य क्रीडातडागपङ्कजपञ्जरे राजहसी-  
मागत्य त्वरया हंसदर्शनोत्सुक सरोरक्षिका राजानं व्यजिज्ञपत्—

क्रीडासरोवर के कमलों के बीच उनमें से एक राजहसी को देखकर  
सरोवरपालिका ने बड़ी शीघ्रता से हंस को देखने के लिये उत्सुक राजा को  
सूचित किया—

‘देव, हंसवार्त्तामनुदिनं पृच्छति देवस्तदद्य काचित् ॥  
कुरुते नालकवलनं दूरं विशिषति गर्भजम्बालम् ।  
त्वदरिवधूरिव राजन्नुद्यानसरोरगता हंसी ॥ ६ ॥

कुरुत इति ॥ राजन् नृप, उद्यानतडागगता हसी नालकस्य विसङ्काण्डस्य कवलनं  
प्राप्तं कुरुते । तथा गर्भं मध्ये यो जम्बालः । कर्दमस्तं च दूरं परिशिषति । अधुस्तु  
उद्यानेन पलायनेन सरोरगता रोगवत्ता यस्याः । यथा अलकस्य वलनं न कुरुते ।  
गर्भजान् बालं दूरे शिषति । भीत्या हि गर्भं पतति ॥ ६ ॥

‘श्रीमन्, हंस की बात प्रति दिन पूछने रहते हैं तो आज आपके  
उपवनसरोवर में कोई एक हसी कमल तन्तुओं को खा रही है और बीच के  
पङ्क को बाहर फेंक रही है । ( इस तरह का कार्य करती हुई ) वह आप के  
शत्रुओं की पत्नियों की तरह लग रही है ॥ ६ ॥

[ यह पद्य श्लेष के माध्यम में अरिवधू और हसी दोनों पक्षों में लगेगा ।  
हसी पक्ष .—

उद्यानसरोरगता ( उद्यान सरोवर में आयी हुई ) हसी नालकवलन ( विस-  
तन्तुओं का भोजन ) करती है और गर्भ ( बीच ) के जम्बाल ( कीचड़ ) को  
दूर फेंकती है ।

अरिवधूपक्ष — शत्रुपत्नी भी उद् + यान ( डर के मारे जोर से भागने )  
के कारण सरोरगता ( रोग की अवस्था ) प्राप्त कर गर्भज ( गर्भस्थ ) बाल  
( सन्तान ) को फेंक देती है । और अलक ( केसो ) का वलन ( बन्धन ) नहीं  
करती । जोर से भागने के कारण गर्भस्त्राव हो जाता है । विधवा होने के कारण  
वेणीबन्धन नहीं करती ॥ ६ ॥ ]

अपि च—

अभिलषति नालमशनं स्वपिति नवाम्भोजपत्रशयनेऽपि ।  
नीरागमना नृपते तव रिपुवनिनायते हंसी ॥ ७ ॥

अभिलषतीति ॥ नाल कमलकाण्डमशनमाहारं वाञ्छति । स्वपित्यपि नूतना-  
वृत्रपत्रशय्यायाम् । नीरे आगमनं यस्याः । रिपुवनिता तु नीराग वेशाग्नौपेतं  
मनो यस्याः । अन एवालमग्वर्धमशनं नाभिलषति । नापि कमलदलतल्पे शेते ।  
या अथवार्ये ॥ ७ ॥

राजन्, पानी में बायी हुई वह हंसी विसतन्नु भोजन की अभिलाषा करती है। नवान कमल्पन की शय्या पर सोती भी है। तुम्हारे शत्रुओं की पत्नियों की तरह आचरण कर रही है ॥ ७ ॥

[ हवीरस—नीरामना ( सरावर जल में आकर ) नाल ( विस तन्नु रूप ) जघन ( भोजन ) चाहती है। नव + अन्भोजन + शयन ( नवान कमल्पन की शय्या ) पर सोती है।

रिपुवनितास—नीराग + मना ( वैराग्यपूर्ण चित्तवृत्ति वाली ) रिपुपत्नी न + तल्म + अघनम् ( पूर्ण भोजन नहीं ) करती है। न + वा + अन्भोजन पत्र + अघन ( न तो कमल्पन की शय्या ) पर सोती है।

अयान् जोक सन्तप्त रिपुपत्नी का चित्त राग सम्मग्न न रहकर नीराग सन्मन हो गया है। उदासी के मारे उस भोजन की अच्छा नहीं लगता। अब वह कमल्पनशय्या जैसे कोमल आसन पर सोती भी नहीं। नीरामना, नालम् अघनम् और नवान्भोजनयन ये साधारण शब्द हैं क्यों कि इनका अन्वय हंसी और रिपुपत्नी दोनों में हुआ है ॥ )

राजापि तस्याः श्लिष्टार्थमिदमार्यायुगलमवधारयन्स्तोक्स्मिन्न-  
सुधाधवलितधरपल्लव 'लज्जिके, यथा कथयसि तथा तेऽप्यागता  
हंसाः कथमन्यथा तस्याः खल्वेकाकिन्याः संभ्रमः' इति तद्वार्त्तया  
यावदान्ते ॥

तावतीलोत्पलदलदीर्घलोचना चन्द्रमुखी दन्धुककुसुमकान्तदन्त  
च्छदा नीलांशुकपटा परिधाना पङ्ककलमञ्जरीगोराही प्रकाशदासा  
हंसेरनुगम्यमाना। मूर्त्तिमती शरद्विष वनपालिका प्रविश्य।

नवदति ॥ यावत्तद्वार्त्तयास्त नृपस्तावत् । शरदुपमा वनपालिका प्रविश्य  
देवैः यमिधाय त राजहस राज पादप'निघार प्रणाम चकार । नीलोत्पलदलदीर्घा  
लाचनादीनामुपमानानि । दन्तच्छद ओष्ठ । नीलमशुक वासस्तस्य परी उत्तरी  
यम् । परिपाके हि शालिर्गौ । स्यादन्तस्नन्मञ्जरीवज्रैरमङ्ग यस्या । प्रवृद्धा काशा  
काशपु'पप्येव हामो यस्या ॥

राजा भी श्लिष्ट अर्थों में सम्मग्न उत्तरी दोनों आपांशों पर विचार करना हुआ 'लज्जिके, जैसे बसा रही हो उसमें यह प्रतीत होता है कि वे इस नीला ही गये हैं। जन्मया जकेनी उत्तरी सम्भावना कैसे की जा सकती है।' इसी तरह उसका साथ बात कर ही रहा था तब तक शत्रु काल की प्रति-  
मूर्ति जैसी एक वनपालिका आयी। उसके बड़े-बड़े नयन नीले कमल स-  
थे। मुख चन्द्रमा की तरह था, ओष्ठ दन्धुक पुष्प सहस्र मनोहर थे। नीला



वस्त्र पहनी हुई थी। उसके अङ्ग पके हुए धान की बाल सदृश मोरे थे। हास्य शुभ्र प्रकाशपूर्ण था। हंसो से अनुगत थी।

[ वनपालिका का उपमान यहाँ शरत्काल है। शरत् भी उल्लिखित कमलों से सुशोभित रहता है, चन्द्रमा का प्रकाश उन दिनों में अत्यधिक प्राञ्जल बन जाता है। बन्धुक फूल भी खूब खिलते हैं। चने, गेहूँ आदि की हरियाली भी बढ़ जाती है। धानों की बालें पक कर पीली हो जाती हैं। हंस भी मान-सरोवर से लौट आते हैं। काश पुष्प खिल आता है। वनपालिका के विभिन्न अङ्गों में शरद्बधु की ये सारी समानताएँ पायी जाती हैं। इसीलिए उसे शरत् की प्रतिमूर्ति कहा गया है। ]

‘देव, सोऽयं कथमप्यागतो रणरणककारणमपराधी विहंगः’ इत्यभिधाय तं राजहंसमुभयकरकमलाञ्जलिगतमुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजाधमिव पुर. पादारविन्दयोर्निधाय राह प्रणाममकरोत् ॥

“देव, उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाला अपराधी यह वही हंस है।” यह कह कर अपने ( लाल ) कमल सदृश हाथों की अञ्जलि में सफेद कमल के खिले हुए आधे अंश की तरह उस हंस को लेकर राजा के चरण-कमल के सम्मुख रख कर प्रणाम की।

[ वनपालिका की अक्षय अञ्जलि में वह शुभ्र राजहंस लाल कमलों के गुच्छे में खिले हुए सफेद कमल के आधे अंश की तरह लय रहा था। ]

राजापि ‘सारसिके, साधु कृतम्। तत्क्रियतामशून्यः स्वाधिकारः। गम्यतामिदानीं ‘यथास्थानम्’ इत्यभिधाय तुष्टिप्रदानपरितोषितां तां लवङ्गिकासहितां विसृज्य, विरलीकृतपरिजनः प्रत्युज्जीव-नौषधमिव प्राणरक्षाक्षरमिव स्वस्थीकरणमणिमिवाश्वासनाभेपजमिवाह्लादनरुन्दमिव तमग्रेस्थितमानन्दनिःस्पन्दपद्मपालिना चिरं चक्षु-पाऽधलोन्मय बहुमानयन्मुग्धस्मिनेन स्वागतमपृच्छन् ॥

सोऽपि ‘देव’ दर्शनामृतमनुभवतो ममाद्य स्वागतम्’ इत्यभिधायोपश्लोक्याचकार ॥

राजा भी, “सारसिके, अच्छा किया तुमने। अब जाओ अपनी जगह पर और चरितार्थ करो अपने अधिकार को।” यह कह कर सन्तोष लायक दान देकर लवङ्गिका सहित उसे विदा कर, नीकरीं को भी वहाँ से त्रम पर सजीवनी ओषधि सदृश, प्राणरक्षा के अक्षरों सदृश, स्वस्थ करने वाले मणि सदृश

और प्रसन्नता के मूल सद्य आगे बैठे हुए उस हंस को आनन्द के मारे निनि-  
नेय दृष्टि से देख कर उसे बहुत आदर दता हुआ मुस्कुटाहट के साथ स्वागत  
वचन कहा। उसने भी, "देव, आपके दर्शन रूप अमृत का अनुभव कर मेरा  
स्वागत हो गया।" यह कह कर उनकी स्तुति की।

देव—

प्रसृतकमलगन्धं नीरसंमरुककण्ठं

घृतकुवलयमालं जातभङ्गार्मिकं च ।

त्वयि वृत्तस्यि भीतास्ताथदास्तां तडागं

निजमपि च कलत्रं शत्रवो नाद्रियन्ते ॥ ८ ॥

प्रसृतेति ॥ प्रसृतं कमलानामञ्जाना गन्धो यत्र । तथा नीरेण समन्धो युक्त  
कण्ठः पालिप्रान्तो यस्य । तथा घृता कुवलयाना नीलोत्पलाना माला येन । तथा  
जाना उपपन्ना भङ्गान्तरङ्गा ऊर्मय कण्ठोला यत्र । एतच्चतुष्टयमपि तडागादरहेतुः ।  
देव, स्वयि स्ते पत्नीना शत्रवाम्नादगमेवविधं नाद्रियन्ते । यावत्कलत्रमपि ।  
तन्किंचिदिष्टम् । प्रसृत के मूर्धनि मटगन्धो यस्याः । स्तनाभावान् । तथा निर्गतो  
रसो वक्त्रान्दुनकला शङ्करादिर्वा यत्र । तथा मन्त्राग्नेर्लग्न कण्ठो यस्य । तथा  
घृता कुस्मिन्वलयानां सुवर्गायभावाःकाचादिवल्याना माला येन । तथा जानभङ्गा  
मन्त्रा ऊर्मिका अङ्गुलीयकं यस्य ॥ ८ ॥

"देव, कमलो की गन्ध से व्याप्त जल से पूर्ण, कमलपङ्क्ति को धारण  
किये हुए, चञ्चली हुई वक्र तरङ्गी वाले तडाग को कौन कहे, आपका क्रोध करने  
पर ( इन विशेषणों से युक्त ) अपनी भी पत्नी को आपके शत्रु आदर की दृष्टि से  
नहीं देखने ॥ ८ ॥

[ इस श्लोक के प्रथम दो चरण श्लिष्ट हैं। दोनों चरणों की पदावली  
तडाग और कलत्र दोनों पक्षों में लगती है। तडागपक्ष—प्रसृतकमलगन्ध—  
कमल की गन्ध जहाँ फैली हुई है। नीरससत्कण्ठ—जिसके कण्ठ ( तट ) व  
बराबर तक जल लगा हुआ है। घृतकुवलयमाल—जो कुवलय ( कमल ) की  
माला धारण कर रक्खा है। जातभङ्गार्मिक—जिसमें टूटी टूटी लहरिया  
तरङ्गित हो रही हैं। कलत्रपक्ष—प्रसृतकमलगन्ध—प्रसृत ( फैल गया है )  
क, सिर ) पर मत्त गन्ध जिनने नीरसम्—शोरु क बारण शृङ्गार आदि की  
विलासपूर्ण चेटायें जिनकी समाप्त हो गयी हैं। शोक-सन्ताप के कारण नीरस  
बन गई हैं। सत्कण्ठं दुर्बल हो गयी हैं। घृत + कु + वलय + मालम्—घन  
के अभाव और सन्ताप की अधिकता के कारण कु ( कुत्सित काच आदि का )  
वलय ( कलत्र ) और माला धारण की हुई हैं। जातभङ्गार्मिकम्—जिनके हाथों  
की ऊर्मिका ( अङ्गुठी ) समाप्त हो गयी है।

जल, पुष्प, गन्ध आदि रमणीय पदार्थों से सम्पन्न आपके सरोवर की शोभा के बारे में क्या कहना है। आप जब क्रुद्ध हो जाते हैं तो आपके उल्लास को व्यक्त करने वाले इस सरोवर की कौन कहे अपनी पत्नियों को भी नहीं देख सकते। शत्रु के उल्लास को आदरपूर्वक नहीं ही देखा जाता है। अतः आपके सरोवर को वे योग आश्चर्य से नहीं देखते इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य की बात यही है कि ये अपनी पत्नियों को भी आदर के साथ नहीं देखते।

यहाँ तडाग और कलश्र दोनो के विशेषण समान ही हैं, किन्तु इन विशेषणों से तडाग की प्रसन्नता तथा उल्लास की स्थिति व्यक्त होती है और इन्हीं विशेषणों से कलश्र की अत्यन्त विपन्न स्थिति ज्ञात होती है ॥

किं चान्यन्—

असमहरिततीरं विस्रज्ज्वालशेषं

स्फुटकुमुदपरागोल्लाससंपद्भियुक्तम् ।

वयमिह बहुश्लोक दृष्टवन्तो वनान्ते

त्वदरियुवतिलोकं ग्रीष्ममासे सरश्च' ॥ ९ ॥

असमेति । हरितते सिंहपद्धते सकाशादीर चेषञ्चासो हरिततीर, असमो हरिततीरो यस्य । अथवा मा लक्ष्मीस्तया सह सम, न सममसममश्रीकन । यथा हरिततीर्वांनरपद्मीरीरयति क्षिपति । पश्चात्कर्मधारय । तथा विगतध्वज विगतमालम् । तथा बालशेष इतमश्रीदित्वात् । तथा स्फुट कु कुम्भा यस्य त स्फुटकम् । तथा उद्गतोपरागस्य रागाभावस्योल्लासो यस्य । स चासौ सपद्भियुक्तश्च । अथवा स्फुटा कुरिततोदरभरणादिमात्रजा मुद्यस्य स स्फुटकुमुत् । तथा पगतो रागोल्लासो यस्य । स्फुटकुमुच्चासावपरागोल्लासश्च स्फुटकुमुदपरागोल्लास, स चासौ सपद्भियुक्तश्च । बहु श्लोको यस्य । ईदृश स्वदहितस्त्रीजनमपश्याम । ग्रीष्मे मर इष । तदपि कीदृक् । सम हरित तीर यस्य तस्यमहरिततीर, न सम हरिततीरमसमहरिततीर, विपम शुष्क च तीर यस्येत्यर्थः । तथा विस्र ज्ज्वालशेषो ज्वालशेषो कर्दम पुत्र शेषो यत्र । तथा विस्रज्ज्वालशेषो ज्वालशेषो कर्दम पुत्र शेषो यत्र । तथा विस्रज्ज्वालशेषो ज्वालशेषो कर्दम पुत्र शेषो यत्र । तथा विस्रज्ज्वालशेषो ज्वालशेषो कर्दम पुत्र शेषो यत्र । तास्ति क अल यत्रेत्यकम् । बहुश इति क्रियाविशेषणम् ॥ ९ ॥

तीर पर अनुपम हरी हरी घास लगी है। अब्भद्र गन्ध युक्त कीचड़ ही बच गया है। कमलों की पराग सम्पत्ति का विकास स्पष्टतः नष्ट हो चुका है। वन के पास ग्रीष्मकालीन सरोवर और आपके शत्रुओं की पत्नियों की बहुत शोकपूर्ण स्थिति में मैंने बहुत बार देखा है ॥ ९ ॥

[ इस पद्य में अधिकांश पद अरियुवतिलोक और सरोवर, दोनों पक्षों में लगते हैं ।

सरोवरपद्म—पानी के हट जाने में भूमि की आर्द्रता के कारण (असमहरिततीरम्) तटीय भाग अनुपम ढग से हरा हो गया है। जल के कम हो जाने में (विनञ्ज्वालशेषम्) दुर्गन्धपूर्ण कीचडमात्र अवशिष्ट रह गया है। खिले हुए कुमुदों की पराग सम्पत्ति से स्पृष्टः हीन हो गया है। मैंने बहुयः (बहुत बार) उस पीथकालीन अक (अल्पजल वाले) सरोवर को देखा। क का अर्थ जल है। क के साथ अल्प अर्थ में नञ् समास हुआ है।

अरियुवतिश्लोकपद्म—असम+हरि+तति+ईरम्—बड़े बड़े सिंघों के समूह से डरायी जा रही हैं। विनञ्जन्—पति के नष्ट हो जाने के कारण माला आदि शृङ्गार के साधनों को छोड़ चुकी हैं। बालशेषम्—पति के नष्ट हो जाने पर केवल बच्चे ही अवशिष्ट रह गये हैं।

स्पृष्ट कुमुद—भोजन वन्न मात्र प्राप्त हो जाने से होने वाली कुत्सित प्रसन्नता का पात्र बन गयी हैं। उनमें (अपराग) वैराग्य का ही उद्भास है। संपद्भियुक्त—सम्पत्ति से हीन हो गयी हैं। मैंने उन्हें बनों के बीच बहुशोक (शोक पूर्ण स्थिति) में देखा है ॥ ]

राजापि 'श्लेषोक्तिनिवे, तथा गृहोत्वास्मन्मनो गतवानसि, यथा सुधसंबित्तिशून्याः संतापारम्भिणो रणरणकाङ्कुरप्ररोहकाः कथमप्य-म्नाकमेतेऽतिक्रान्ता दिवसाः ॥

राजा भी, "श्लेष वचनों के सागर, आप मेरे मन को इस तरह लेकर चले गये थे कि वे मुझ और चेतना से शून्य, सन्ताप उत्पन्न करने वाले दिन किसी-किसी तरह बीते।

तत्कथय । का भामामिनन्दनीया सा दिक्, यस्यां विहारमकरोः । के ते सफलचक्षुषो जनाः, यैश्चिरमालोकितोऽसि । के लब्धसुभाषिता-मृतरसाम्वादाः यैः संभाषितोऽसि । के प्राप्तप्राणितव्यफलाः यैः सह गोष्ठ्यामनुष्ठितवानसि ॥

तो कहिये, वह कौन सी प्रसन्ननीय दिशा है जहाँ आपने विहार किया। वे कौन से सफल नेत्र वाले लोग हैं जो आपका चिरकाल वक्र अवलोकन किये। मनोहर उक्ति मुखा का आस्वादन करने वाले वे लोग कौन हैं जो आपने बातें किये। किसने अपने जीवन का फल प्राप्त किया जिसके साथ आपने गोष्ठी की!

स्पृष्टशीयसंगम, गते त्ययि तर्कशास्त्रमिव प्रस्तुतपरमोद्दम्, व्याकरणमिव भूतनिष्ठमिदमस्माकमासीन्मनः ॥

सृष्टेति ॥ प्रकृतोऽकृष्टमोहं मनः, शास्त्रं तु प्रस्तुतं परमं उहो वितर्कं यत्र ।  
भूता संजाता निष्ठा बलेशो यत्र मनसि, व्याकरणे तु भूतेऽतीतकाले निष्ठासङ्गः  
प्रत्यययो यत्र ॥

आकाङ्क्षणीय संगति वाले हस, तुम्हारे चले जाने पर मैं तर्कशास्त्र की तरह  
परमोह ( उत्कृष्ट मोह ) में पड़ गया । व्याकरणशास्त्र की तरह मन भूतनिष्ठ  
( बलेशयुक्त ) हो गया ॥

[ तर्कशास्त्र में परमोह ( परक+ ऊह = विशिष्ट तर्क ) किया जाता है ।  
व्याकरणशास्त्र भूतनिष्ठ ( भूत अर्थ में निष्ठा प्रत्यय होते ) है । त्त और क्तवतु  
प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं । ]

तदेहधेहि' इत्यभिधाय स्वयं करकमलतलेनोत्क्षिप्य सस्नेहं  
परामृशत् ॥

'आओ आओ' यह कह कर स्वयं ही अपने करकमलो से उठा कर बड़े  
प्रेम के साथ उस पर हाथ धपपपाये ।

सोऽपि 'एष महान्प्रसादो यदेवमनुकम्पतेऽस्मान्देवः' इत्यभि-  
धाय गमनादारभ्य दमयन्तीदर्शनालापव्यतिकरमशेषं हारलतार्पण-  
पर्यन्तमाचचक्षे ॥

वह हस भी, "यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप हम पर इतनी कृपा  
करते हैं ।" यह कह कर दमयन्ती से साक्षात्कार और वार्तालाप विषयक चर्चा  
से लेकर हारलता प्रदान तक की सारी बातें उनसे कह सुनाया ।

आख्याय च चरणेनैकेन प्रीवाप्रादाकृष्य ता तथास्थितामेव मुक्ता-  
वलीमिदमवादीत् ॥

यह सब कहने के बाद एक चरण में अपनी गर्दन में से उसी तरह रक्खी  
हुई मुक्ता माला को निकाल कर बोला—

‘उन्मादिनी मदमकामुंकमण्डलज्या  
सौभाग्यभाग्यपरवैभववैजयन्ती ।

मुक्तावली कुलधनं नरनाथ सैषा

कण्ठग्रहं तव करोतु भुजेव तस्याः ॥ १० ॥

हे नरेन्द्र, उन्मत्त बना देने वाली, कामदेव के धनुर्मण्डल की प्रत्यञ्चा, ऐश्वर्य  
और दैव की अत्युत्कृष्ट पताका, कुलधन रूप यह मुक्ता की माला उस दमयन्ती  
की बाहुलता की तरह आप के कण्ठ का आलिङ्गन करे ॥ १० ॥

अपि च—

प्रेमप्रपञ्चनवनाटकसूत्रधारी मूर्त्ता मनोभवनृपस्य नियन्त्रणाशा ।

तस्याः स्वयंचरणपरिग्रहद्वेतुरेपा हारावली इदि पदं भवतः करोतु ॥ ११ ॥

और—

प्रेम = विस्तार रूप नवीन नाटक का सूत्रधार, सम्राट कामदेव की निरोपजा की मूर्तिमती आवृत्ति, उस दमयन्ती को स्वयम्बर में परिगृहीत करने = जिसे निमित्त यह रत्नावली आप के हृदय में स्थान प्राप्त करे ॥ ११ ॥

राजा तु तामादाय निरूप्य च चिरं चिन्मयांचकार ॥

राजा तो उसे लेकर बहुत देर तक देखता हुआ सोचने लगा ॥

‘आनन्दिसुन्दरगुणामलकोपमान-

मुक्ताफलप्रचयमद्भुतमुद्वहन्ती ।

एषा च सा च नयनोत्सवकारिकान्ति-

श्चेतोदरा हृदि पटं न करोति कस्य’ ॥ १२ ॥

आनन्दादि ॥ गुणस्तन्तु शौर्यादिश्च । आमलकोपमानानां मुक्ताफलानां मूर्ति-  
कानां प्रचयं ममवायम् । अद्भुतमाश्चर्यकारिणम् । उद्वहन्ती । दमयन्ती तु मन्त्रा-  
स्वाप्तान्मालिन्याद्वा, कोपाक्षुषो, मनादृर्वात्मादरयाद्वा मुक्ता अथवा । तथाद्भुतं  
चित्रं फलानां प्रचयं उद्वहन्ती परिश्लेषुति शेषः । चेनोदरा मनोप्ला । अन्यत्र  
चेनपि हरोऽस्याः । एवंभूतेयं मुक्तावली सा च कस्य हृदि बद्धमि चेत्तपि च,  
पद्मवस्थानं न करोति, सर्वस्यापि करोत्येवेत्यर्थः ॥ १२ ॥

आनन्द देने वाली, सुन्दर गुणों ( सुत्रों ) में गुणों हुई, आवले सहस्र मुक्ता  
फलों को धारण करने वाली, चित्त को धुरा लेने वाली और आँखों को आनन्द  
देने वाली यह रत्नावली और वह दमयन्ती जो आनन्द उत्पन्न करती है—  
सुन्दर ( उदारता आदि ) गुणों से युक्त है । मल, कोप तथा मान ( चिन्ता )  
की स्थिति में गिरी हुई है, ( पुण्या के ) फल समूह को धारण की हुई है,  
चित्त में हर ( शिव ) को रक्खी है, शरीरान्ति आँखों को आनन्द देने  
वाली है, जिसके हृदय में स्थान नहीं बनाती ॥ १२ ॥

इति चिन्तयन्निगुणामेकगुणीकृत्य पुनः सस्पृहमैक्षत ॥

हंसस्तु विदस्य परिहासमकरोत् ॥

[ महा रत्नावली और दमयन्ती के समान विशेषण हैं ॥ ]

यह सोचता हुआ द्विगुणित की हुई उस रत्नावली को एक गुणित कर  
बड़ी उत्कृष्टा से फिर उसे देखने लगा ।

[ जो दोहरी की गयी उसे एकहरी कर दिया । हंस को लानी थी इसलिए  
दोहरी कर छोटी कर दी गयी थी । राजा ने अच्छी तरह देखने के लिये एकहरी  
कर दी ॥ ]

'तया दत्ता मयानीता म्वयमाह्लादिनी त्वया ।  
इत्यनेकगुणाप्येषा कथमेकगुणीकृता' ॥ १३ ॥

तया दत्तेति ॥ गुणाश्वरुतादयस्तन्तुमरिका च ॥ १३ ॥

हंस ने हंसकर परिहास किया—उसके द्वारा दी गयी और मेरे द्वारा लार्ई गयी, स्वय ही आनन्द की अभिव्यञ्जिका यह रत्नावली अनेक गुणो वाली है । इसे आपने एक गुण वाली कैसे कर दिया ॥ १३ ॥

राजापि परिहासेनान्तःसूत्रं दर्शयन् 'पक्षिपुंगव, किं न पश्यस्ये-  
कगुणैवेयम् ॥

राजा ने भी उसके भीतर के तन्तु को दिखाता हुआ कहा, "देखते नहीं, पक्षिवर, इसमें एक ही गुण ( तन्तु ) है" ।

अथवा—

कः करोति गुणधान्गुणसंख्यां इलाध्यजन्ममद्वसः स्फुटमस्याः ।  
कुम्भिकुम्भपरिणाद्दिनि तस्या स्वैरमास्यत यया कुचयुग्मे' ॥ १४ ॥

कः करोतीति ॥ परिणाहो विशालता ॥ १४ ॥

अथवा—

"उत्पत्तिकाल से ही स्पष्ट रूप से प्रशसनीय तेजवाली इस रत्नाली के गुणों की संख्या का कौन गुणी आदमी वर्णन कर सकता है । ( एक समय ) यह हाथी के कुम्भस्थल सहस्र विशाल स्तनयुगल पर स्वेच्छया रह चुकी है ।" ॥ १४ ॥

इत्यभिधाय नीत्वा च निजकण्ठकन्दलम्, 'इहास्ते सा तव  
पूर्वप्रणथिनी' इत्यन्तःस्थितां दमयन्तीं दर्शयितुमिव हृन्मध्यवर्तिनीं  
तामकरोत् ॥

यह कह कर अपने कण्ठदल को आगे बढ़ा कर "यह है तुम्हारी पूर्व परिचिता प्रेमिका" मानो अपने हृदय के भीतर ठहरी हुई दमयन्ती को दिखाने के लिये हृदय के बीच में उसे कर दिया ।

[ वह रत्नावली बहुत दिनों तक दमयन्ती के हृदय पर लोट चुकी है । इस समय उसके गले से निकल कर नल के पास आ गयी है । नल उसे गले में पहन रहा है गले से लटकती हुई यह माला हृदय तक आती है । दमयन्ती को नल अपने हृदय में ला चुका है । इसीलिए कहता है, "रत्नावली, तुम ऐसा न समझना कि दमयन्ती के हृदय से दूर आ गयी हो । छो देखो, यहीं तुम्हारी पूर्व परिचित दमयन्ती रहती है ।" मानो इसी भाव से माला को पहनता है ॥ ]

कृत्वा च किञ्चिदनुच्चस्मितं मधुरमधुरया वाचा 'विहंगपुंगव,  
पुनः कथ्यतां कौहशी सा, कौहप्रपा, कि च वय, कौहशी लावप्य-  
संपत्, को विनोदः, कौहश वाग्बैदग्ध्यम्, कि प्रियम्, का गोष्ठी इति  
धृतामप्यपूर्वाभिपत्तद्वार्तामादरेण पृच्छन्नागच्छंश्च चटुलकरकृतदारसं-  
घानम्यानवरतधिरचिताद्भुतभ्रमणकर्मकामुक्कवल्यस्य लक्ष्यतां मकर-  
केनोरचिदितापक्रमानतिवहृम्येलालपानधतन्ये ॥

कुछ मुन्कुरगता हुआ अत्यन्त मधुर वाणी में, "पक्षिवर, फिर कहिये । वह  
कैसी है, किस रूप की है, क्या अवस्था है, किम तरह की सौन्दर्य सम्पत्ति है,  
कैसा विनोद है, कैसा वाग्बिभास है, क्या प्रिय है, कैसी गोष्ठी है", यह सुनकर  
भी न मुने हुए की तरह आदर के माथ पूछना हुआ खंचक हाथों से घर सन्धान  
किये हुए निरन्तर विरक्षण ढग से धनुष को घुमाने वाले कामदेव के धनुष का  
लक्ष्य बनता हुआ बहुत क्षणों तक जिनके व्यतीत होने का प्रकार ज्ञात नहीं  
हुआ, बैठा रहा ।

स्थिते च विभूय्य मध्यमं नभोभागं भगवति भासुरभासि भास्वति,  
श्रवणपुटपथमवनरति च प्रहरावसानप्रहारभांकारिभेरीरवे, 'वयस्य,  
विश्रन्यतामिदानीममन्दारतदपरिकरितरोधसि मन्दिरोद्यानारविन्द-  
दीर्घिकायानेवं प्रार्थ्यसे च न गन्तव्यमविसर्जितेन त्वया पूर्ववत्, इति  
नियम्य तं राजहंसं स्वयमप्याह्निकायोदतिष्ठत् ॥

कान्तिपूर्ण भगवान् सूर्य के आकाश के मध्यभाग में चले जाने पर, प्रहर की  
सनाप्ति के अवसर पर दत्ताये गये नगाड़े के शब्द के काना में चाते रहने पर,  
"मित्र मन्दार वृक्षों में तिरहे हुए तट वाले इन भवन के उद्यानस्थित कमलपूर्ण  
बावली में विश्राम करो, यही प्रार्थना है । पहले की तरह अनुमतिविना ही फिर  
न चले जाना ।" इस तरह राजहंस को कह कर स्वयं भी दैनिक कार्य करने के  
लिये उठ खड़ा हुआ ।

एवं च—

शिथिलितसरुलान्यव्यापृतेन्नस्य रासः

परिहृतनिजयन्धोर्यान्ति हंसेन सार्यम् ।

दिनमनु इममन्तीवृत्तवार्ताविन्दोदै

रविदितपरिवर्त्ता वासराः शारदीनाः ॥ १५ ॥

शिथिलितेति ॥ दिनमनु दिनं लक्ष्यते । एतेन रात्रिभियेभः । पक्षिभो हि निशि  
नीचे नीलीयन्ते । तापदेशेनचोऽपि दिवसा हसवार्त्तया अविदितपरिवर्त्ता । शरदि  
भव शारदं रूपमुष्णानिशायादि तद्विषते यस्यामौ शारदी इनो येषु ते  
शारदीनाः ॥ १५ ॥



अपने बन्धुओं को समीप में रहने के लिये मना कर दिया था। अन्य कार्यों को भी छोड़ दिया था। हंस के साथ दमयन्ती सम्बन्धी चर्चा के विनोद में दारुकालीन दिन यो ही व्यतीत हो जाते थे। उनके व्यत्यय के प्रकार का पता नहीं चलता था। पता नहीं लगता था कि दिन कब समाप्त हो गया। ॥ १५ ॥

[ मुख के अधिक चण समाप्त हो जाते हैं किन्तु उनकी समाप्ति के प्रकार का पता नहीं चरता। पक्षी में वार्ता का प्रसङ्ग है इसीलिए कवि दिन की चर्चा करता है। क्योंकि रात को वे पक्षी अपने घोंसले में छिप जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी उपलब्धि असम्भव हो जाती है। इसी तरह भवभूति ने भी समयव्यत्यय की चर्चा उत्तररामचरित में की है—अविदितगतयामा रात्रिरेवं धरसीत् ॥ १५ ॥ ]

एकदा प्रस्फुरत्प्रभातारम्भप्रभया प्रभिद्यमाने नयनीलाञ्जनिकाकुसुम-  
कान्तिनि तमसि, विलोनलाक्षाम्भोभिरिद्य सिन्धुमानाया शनैः शची-  
दयितदिशि मन्दमुन्मिपत्कमलमुकुलोच्छलच्चटुलालिचक्रवालकलकले  
नोन्निद्रितेन तन्द्रामुद्रितोन्मिपच्चक्षुषा चलच्चञ्चूकोटिकण्डूयन-  
विरामधुतपक्षरोमराजिना राजहंसकदम्बकेनानुगम्यमानो विहाय  
विहंगमः सरस्तोरम्, उपसृत्य किंनरमधुरगोतध्वनिविनिद्रितमावद्य-  
कावसाने राजानम्, इदमवदीत् ॥

एकदेति ॥ नीलाञ्जिका तापिच्छ ॥

एक दिन प्रातः कालीन किरणें छिटक रही थीं। तापिच्छ पुष्प सदृश कान्ति वाला अन्धकार समाप्त हो रहा था। गले हुए लाह से मानो इन्द्र की (पूर्व) दिशा सीधी जा रही थी। खिलते हुए कमलों की कलियों में से उछल कर निकलने वाले चञ्चल ध्रमर समूह की गुञ्जार ध्वनि से जगा हुआ जभाई के कारण बन्द आँखों को खोलता हुआ, चञ्चल चोच के अग्रभाग से शरीर को खुजला लेने के बाद पक्ष के रोमों को कम्पित कर, राजहंस वर्ग के आगे आगे चल कर, सरोवर तट को छोड़ कर, विध्ररो को मीठी गीत ध्वनि से उचिन समय पर जगे हुए राजा के पास जा कर बोला—

‘देव, विज्ञापयामो देवम्य दशानम् अनालेप्यं चन्दनम्, अस्पर्श  
कपूरपासुपटलोद्भूलनम्, अपानव्यममृतम् । अनास्वाद्यं रसायनम्,  
अलेह्य मधु । कुतः किलैतदनुभवतामस्माकमपि वर्षसहस्रेणापि परि-  
तोषः । किं तु तिरयति स्वातन्त्र्यं प्राणिना परपरिग्रहो दुस्त्यजाश्च जल-  
जन्मोऽपि जन्मभूमयो भवन्ति । अवगमिष्यति च विश्रब्धमेतत्सर्वमपि

देवो यादृशा येन च जन्मान्तराधनोपरोचेन प्रेषिता धयम् । अनवसरः  
स्वल्पयमस्य कथाप्रक्रमस्य । तथादिशतु देवोऽस्मान्नामनाय । न च  
प्रस्तुतानुचरालापेषु धयं विस्मरणीय । किमन्यज्जन्म च जीवितं च  
तदेव श्लाघ्यं मन्यामहे, यत्र प्रसङ्गेन भवाद्दशा अनुस्मृतिं कुर्वन्ति ।  
तदेव प्रस्थानप्रार्थनाप्रणामः' इत्युक्तवन्नमिममवनिपालः कथमपि  
विसर्जयामास ॥

देवेति आस्तां मनुष्याणाम्, अस्माकमपि पश्चिञ्चानीयानामपीत्यविशब्दाय ।  
तिरयनि तिरस्करोनि ॥

श्रीमन्, मैं आप का दर्शन चाहता हूँ जो एक तरह का न लेने योग्य  
चन्दन है, अस्तुस्य कर्पूर धूलि श्री राशि में स्नान है । न चखने लायक  
पोष्टिकभेद है । न पीने लायक जमूत है । न चाटने लायक मधु है' यदि हम  
इच्छा सहज बर्षों तक भी अनुभव करने रहें तो सन्तोष कहा हो सकता  
है । किन्तु विनाह प्राणियों की स्वतन्त्रता छीन लेता है । जल में रहने वाले  
लोगों की भी जन्मभूमि दुस्तयज होती है । जैसे और जिस जन्मान्तरिय  
पुण्य के कारण हम लोगों को आपने भेजा यह सब सुत्पिर हो कर आप स्वयं  
समजते । इन सब कथाओं को कहने का अवसर नहीं है । अच्छा, अब जाना  
दें, हम लोगों को जाने के लिए । मृत्यों की प्रासङ्गिक जवाँ में हमें भूजेंगे  
नहीं । उसी जीवन और जन्म को हम श्लाघ्य मानते हैं जिसे प्रसङ्गतः आप  
जैसे लोग याद करते हैं । अच्छा तो, यह चखते समय का मेरा प्रार्थना-द्योतक  
प्रणाम है ।" इस तरह कहते हुए उस हंस को राजा ने किसी किसी तरह  
जाने की अनुमति देदी ॥

गते च तस्मिन्नाविस्मरणीयोपकारे कादम्यरुदम्वकेश्वरे, श्रवण-  
प्रणालिक्रिया प्रविश्य मानसं सरस्तरलयन्त्यां विदर्भराजहंससुतायां,  
प्रहरति प्रत्यङ्गमनङ्गधानुष्के, समीपवनाविकासिकुन्दमकरन्दास्वादमद-  
मेदुरगिरां गच्छति श्रवणपथमतिमधुरे मधुलिहां शकारे, धाकर्णपूरी-  
कृतकार्मुकगुणे रणरणकारम्मिणि तत्रावसरे ॥

गते चेति ॥ तस्मिन्गृहमवृन्दनेतरि । श्रवणमाकर्णनमेव प्रणाली जलमार्गस्तया ।  
कृत्वा मानसं चेत एव सरस्तरहागम् । अथ च मानसाख्य देवतहाग कर्मतापन्नम् ।  
विदर्भराज एव हंसरतस्य पुन्यां तरलयन्त्यां सप्याम् । तथा प्रवगीकृतमधुगुणे  
अनङ्गधनुर्धरे । तथा मधुलिहां मधुरगिरां शकारे कर्णे गच्छति श्रीसुवयकारिणि  
बावमरे सति । 'हंसो विहंगभेदे स्याच्चिल्लोमनृपतावपि' ॥

अविस्मरणीय उपकारी उस हंस वर्ग के चले जाने पर श्रवण-नालिका  
द्वारा मन सरोवर में प्रवेश कर विदर्भराज हंस की पुत्री विदुष्य करने

लगी । प्रत्येक अङ्ग में कामदेव अपना धनुष मारने लगा । समीप के वन में खिले हुए कुन्द पुष्प के पराग का आस्वाद लेकर मद के कारण गम्भीर आवाज वाले भ्रमरो की अत्यन्त मधुर ध्वनि कानों में पहुँच रही थी । कामदेव ने अपने धनुष को कानों तक चढ़ा रखा था । अतः वह अवसर बड़ा ही उत्कण्ठाकारी था ।

आविर्भूतविषादकन्दमसमव्यामोहमीलन्मन-  
श्चिन्तोत्तानितनिमेषनयनं निश्वासदग्धाधरम् ।

जातं स्थानकमुत्सुकुम्भ्य नृपतेस्तत्तस्य यस्मिन्नभूत्  
प्रेयान्पञ्चमराग एव रिपवः शेषास्तु सर्वे रसाः ॥ १६ ॥

आविरिति ॥ उत्कण्ठितस्य नृपतेस्तस्थानकमवस्थान्तर जातम् । यत्र (स्थानके) पञ्चमे पञ्चमाख्ये रागविशेषे रागो रसवत्ता स एव प्रिय । शेषास्तु रसा विषयानु रागा रिपवः ॥ १६ ॥

राजा की ऐसी अवस्था हो गयी थी जिसमें विषाद का अङ्कुर निकल आया था । विषम मोह ने मन को व्यथित कर लिया था । चिन्ता के कारण आँखें निरन्तर पलकशून्य बनी रहती थी । गरम श्वासा के कारण ओष्ठ सूख गये थे । उस समय उसे केवल कोकिल का स्वर अच्छा लगता था, शेष सभी रस शत्रु जैसे प्रतीत होते थे ॥ १६ ॥

ततश्च वृद्धिकदंशदुःसहव्यथामवस्थामनुभवन्निय, कण्टकैश्चरण-  
मर्मणि विध्यमान इव, मुहुर्मुहुर्मुर्मुर्पुञ्जराजीवाङ्गानि धारयन्नुग्रग्रीष्मा-  
निलोह्लोलैरालिङ्गयमानो, मनागपि न कापि शर्म लेभे ॥

ततश्चेति ॥ तापातिरेकात्प्रतिक्षणं क्षणमात्रशुष्कत्वान्मुर्मुर् पुञ्जो येषां तानि मुर्मुर्पुञ्जानि, तथाभूतानि राजीवानि येष्वङ्गेषु तानि । मुर्मुर्स्तुपवद्भिः । यद्विध प्रकाश — 'मुर्मुर्स्तुपवद्भिः स्यान्मन्मथे रविवाजिनि' ॥

इसके बाद बिच्छू के डक मारने की तरह असह्य पीड़ा की अवस्था का अनुभव करता हुआ, काटे से चरण के मध्य भाग में विधे हुए की तरह, बार बार निर्भ्रम अगारों की राशि में अङ्ग कमल को रखता हुआ कहीं भी थोड़ा भी आराम नहीं पा रहा था ।

तथापि—

इच्योत्तच्चन्द्रमणिप्रणालिशिशिराः सौगन्ध्यरुद्धाम्बरै-  
निर्गच्छन्नवधूपधूमपटलैः संभिन्नवातायनाः ।

सोद्योत्सङ्गभुयो विकीर्णकुसुमाः पूर्णेन्दुरशिमधिया  
रम्यायां निशि नो हरन्ति हृदयं हृद्यं किमुद्वेगिनाम् ॥ १७ ॥

स्वोद्विदि ॥ चरचन्द्रकान्तप्रगालशीताः । सुगन्धितनमोभिर्घुंघूमैर्मिथ-  
गवाचाङ्गीर्गुण्या । प्रासदमूमयः परिपूर्णचन्द्रेण रमणीयायामपि रात्रौ चेतो  
हरन्ति उद्वेगापेयस्य । राज्ञ हृदि शेषः । युक्तचैतव् । दुःखितानां किं हृद्यम् ।  
न किमपि मात्रं ॥ १७ ॥

जो चन्द्रकान्तमणि के चूते हुए प्रवाह में गीतल हो गयी है, सुन्दर  
गन्ध से आकाशमण्डल को घेरते हुए नवीन धूम में निकलते हुए धूम मण्डल  
में जिसके गवाक्ष भर गये हैं और जहाँ पूरा बिखरे हुए हैं, वह भन्म भवन  
की मूर्ति पूर्ण चन्द्र की कान्ति से रमणीय रात्रि के समय उनके हृदय का हृद्य  
नहीं करती क्योंकि उद्वेगपूर्ण आदमियों के लिये कोई भी चीज शान्त  
नहीं होती ॥ १७ ॥

अपि च—

हृद्योद्यानसरस्तरङ्गशिखरप्रेङ्खोलनायासिताः  
समोगध्रमस्त्रिभङ्गिनरत्वधूस्वेदोद्विन्दुच्छिदः ।  
सायं सान्द्रवितिद्रुकरववनान्यान्दोलयन्तः शनै  
रङ्गेऽङ्कारसनाः पतन्ति पवनाः प्रालेयशीता अपि ॥ १८ ॥

हृद्योद्याने ॥ रम्यतडागोर्मिनरलनेन खेदिता । तथा किनरीस्वेदजलविन्दु-  
मुपः । वनानि कमयन्तः । शनरङ्गे लगन्तो हिमममा अपि वायवोऽङ्गारा इव  
पतन्ति ॥ १८ ॥

रमणीय उपवन सरोवर की लहरियों के अग्रभाग में टकराने के कारण  
पका हुआ, सम्भोग के परिश्रम से थकी हुई किनर रमणियों के पसीनों की  
बूंदों को समाप्त करने वाला, घने तथा खिले हुए कमल-वनों को धीरे-धीरे  
कम्पित करना हुआ सायकालीन, बर्फ की तरह ठंडा पवन भी उसके अङ्गो  
म अङ्गार की तरह लगता है ॥ १८ ॥

तदाप्रभृति चाम्य प्रायः प्रीतिरभूद्दक्षिणात्यजनेष्वेव, पुलकमकरे-  
श्रामापि विदर्भदेशस्य, श्रुतापि श्रवणयोः सुध्रमजीजनदक्षिणा दिक् ॥

उसी समय में इसका स्नेह दक्षिण के लोगों में ही कन्द्रित हो गया ।  
विदर्भ देश का नाम भी रोमाञ्च उत्पन्न कर देता था । कानों तक पहुँची हुई  
दक्षिण दिशा सुख उत्पन्न कर देती थी ।

किं बहुना—

लिप्तेवामृतपद्मेन स्पृष्टेवानन्दकन्दलैः ।  
आर्त्ताहिन्दक्षिणा तस्य कर्णयोर्मनसो दशोः ॥ १९ ॥

दक्षिण दिशा उसके कान, मन तथा नेत्र में अमृत पदु से लिपी हुई और  
आनन्द के अङ्कुर से स्पृष्ट ही लगती थी ।

[ दक्षिण दिशा का नाम उसके सम्पूर्ण अङ्गो मे तृप्ति का अभिव्यञ्जन करता था ] ॥ १९ ॥

दमयन्त्यपि हंसदर्शनदिवसादारभ्य भ्रमद्भृङ्गकुलकलकलाञ्जादित-  
पर्यन्तेषु, प्रत्यग्रोत्प्लवपुष्पपल्लवास्तरणेषु, विचलद्विनोदविहंगेषु विह-  
रति नासन्नोद्यानलतामण्डपेषु, न च विक्रचकुयलयकह्वारकुशेशयसार-  
वारिणि रणञ्चटुलचञ्चरीरुचक्रवारुचक्रे क्रीडति क्रीडामरसि न च  
स्पृशति पाणिनापि माणिऋयमालामण्डनानि, न च रचयति रचिरा-  
लकचल्लरीमङ्गान्तरालेषून्मिपत्कुसुमचिन्त्यासान्, न च ह्चिदुच्चहंस-  
तूलिकातरुषेऽपि कोमलरूपोलावष्टम्भभाजि निद्रासुषमनुभवति, केवल-  
मधिपाण्डुगण्डस्थलस्थापितपाणिपल्लवा प्रेषयन्ती प्रतिक्षणमुत्तर-  
स्यां दिशि दशं तद्देशागतान्गगने पक्षिणोऽपि सम्पृहं पश्यन्ति, तत्र-  
त्यानध्वगानपि बन्धुबुद्धवालापयन्ती, तन्मण्डलगताय मरुतेऽप्यपनी-  
तोत्तरीयांशुका हृदयमर्पयन्ती दिनं दिनमनङ्गेनाभ्यभूयत ॥

दमयन्ती भी हंस के दर्शन के दिन से पास के ही उपवन वाले लता कुञ्ज मे घूम रही थी, जहाँ का सम्पूर्ण भाग उढने हुए भ्रमर वर्ग की कल-कल ध्वनि से गूँग उठा था । अभी अभी तोडे गये पुष्पपल्लवो का विस्तार बनाया गया था । विनोद के लिये रक्थे गये पक्षी घूम रहे थे । खिले हुए नील, लाल तथा शुभ्र कमलों के कारण सरोवरजल महत्त्वपूर्ण बन गया था । चचल भ्रमरो और चक्रवाको का समूह वहाँ घूम रहा था । वहाँ भी वह नहीं खेल सकती थी । हाथो मे अलङ्कारो को पहने हुए थी किन्तु बलय ( नामक ) भूषण को छूती नहीं थी । वि० । हाथ ही उसका भूषण था अतः अलङ्कारो को नहीं छूती थी । अथवा उस समय हाथ ही अलङ्कार और अलङ्कार्य दोनों का कार्य कर रहे थे । मनोहर केशो की वेणी की वस्त्रा के बीच खिलन हुए फूलों को नहीं लगाती । हंस की तरह शुभ्र, रुई की गद्दी पर अपने कोमल कपोल भाग को रख कर निद्रा-सुख का अनुभव नहीं कर पाती । केवल अपने पाणि पल्लव पर ( चिन्ता के कारण ) पीले कपोल को रख कर सदा नेत्रकान्ति को उत्तर दिशा की ओर की हुई, आकाश मे उस दिशा से आये हुए पक्षियो को भी उत्सुकता से देखती हुई, उस दिशा के पक्षियों को भी बन्धु समझ कर बातें करती हुई, उस दिशा से आयी हुई हवा के लिये भी ऊपर के बख को हटा कर हृदय अर्पित करती हुई दिन प्रति दिन काम से पराजित हो रही थी ।

तथाहि--

लास्यं पांसुकृणायते नयनयोः, शस्यं श्रुतेर्यल्लकी,  
नाराचाः कुचयोः सचन्दनरसाः कर्पूरवारिच्छटाः ।

तस्याः काप्यरविन्दसुन्दरदशः सा नाम जने दशा  
प्राणप्राणनिबन्धनं प्रियकथा यस्यामभूत्केवलम् ॥ २० ॥

नृत्य उषकी आँखों में धूलि रज की तरह लगता था । वीर का स्वर कानों में बाटे की तरह प्रतीत होता था । चन्दन-रस से युक्त कर्पूरजल की धारा उसके स्तना पर बाप की तरह लगती थी । कमल सद्भा सुन्दर नेत्रवाली उष दमपन्ती की कोई बखूब ही दशा हो गयी थी । उस समय उसके प्राणों की रक्षा के लिये प्रिय की कथा ही उपयुक्त थी ॥ २० ॥

एवमनयोरन्योन्यप्रेपिनप्रच्छन्नदूतोक्तिवर्षितानुरागयोः चलन्त्य-  
ज्ञानि न मनोरथाः परिवर्तते चक्षुर्न हृदयम्, कृशतामेत्यङ्गयष्टिनो-  
त्कृष्टा, मन्दतां यात्युत्साहो नाभिलाषः, स्फारीभवति निःसहता न  
निद्रा, वर्धते चिन्ता न रतिः, शुष्यत्यधरपल्लवो नाग्रहरस ॥

एवमिति ॥ तां दिशं प्रति चलन्त्यभिमुखीभूय निवर्तन्ते । एवं चक्षुरपि ॥

इस तरह एक दूसरे के भेने हुए गुप्त दूत की उक्ति से बडे हुए अनुराग वाले इन दोनों के अङ्ग तो कम्पित हुए किन्तु मनोरथ नहीं । आँखें इधर उधर चली किन्तु हृदय नहीं । अङ्गलतिका में दुर्बलता आयी किन्तु उत्कृष्टा में नहीं । उत्साह क्षिपित हुआ किन्तु अभिलाषा नहीं । चिन्ता बढ़ी किन्तु रति नहीं । बसहनीयता स्पष्ट थी किन्तु निद्रा नहीं । अधरपल्लव सूखा किन्तु एक दूसरे की प्राप्ति के सम्बन्ध में आग्रह रस नहीं सूखा ।

किं बहुना—

कर्पूराम्बुनिपेकभाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलै-  
रास्तीर्णैऽपि विवर्त्तमानवपुषोः स्रस्तस्रजि स्रस्तरे ।  
मन्द्रोन्मेषदशो किमन्यवभवत्सा'काप्यवस्था तयो-  
र्यस्यां चन्दनचन्द्रचम्परुदलश्रेण्यादि वशीयते ॥ २१ ॥

अधिक क्या—

जो कर्पूर के जल से सींचा गया है, सरस कमलिनियों के पत्ते बिछे हुए हैं, मानार्थे बिखरी हुई हैं ऐसे विस्तरे पर भी बरबटें बदलने हुए निर्निमेष दृष्टि वाले उन दोनों की दूसरी ही दशा हो गयी है । चन्दन, चन्द्रमा और चम्पे की दल पंक्ति आदि पदार्थ बाग की तरह लग रहे हैं ॥ २१ ॥

आसीच्च तयो कृतान्योन्यगुणप्रदनालापजपयोः पुनरुक्तावर्त्तित-  
नामधेयस्वाध्याययोः संकल्पसमागमावस्यध्यानयोः स्मरानले स्वं  
हृदयं जुह्वतोस्तप्यमानयोरङ्गीकृतमौनप्रतयोरपि वियोग एव, न  
योगः ॥

आसीञ्चेति ॥ कृतोऽन्योन्यगुणप्ररमालाप एव जपो जाप्य यथाभ्याम् । पुनरा-  
वर्तितं नामैव स्वाध्यायो ययो' । सङ्घवे चित्तकर्मणि य समागमस्तत्राबद्धं ध्यानं  
यथाभ्यान् । कामाग्री स्वचेतो होमयतो । तप्यमानयो । मौनिनोरप्यनयोर्वियोगो  
विरह एवासीत् । न योग । योगः स्वयम्भोऽध्यात्मविषयश्च । अन्यस्य जपं  
स्वाध्याय ध्यानं होमं तपो मौन व्रत च कुर्वतो योगलाभः स्यात् । तप्यमानेति  
संतापपक्षे कर्मकर्तारि, तप पक्षे तु कर्तारि, तपे कर्मविषयत्वात् ॥

एक दूसरे के गुण विषयक प्रश्न सम्बन्धी चर्चा रूप जप में लगे हुए हैं ।  
बार-बार का नामग्रहण ही उनका स्वाध्याय बन गया है । चित्त में जो मिलन-  
विषयक धारणा बन गयी है उसी में ध्यान को केन्द्रित कर लिये हैं । काम  
( यज्ञ ) की आग में अपने-अपने हृदय का हवन करते हुए मौनव्रत धारण कर  
तपस्या में लगे हैं । यह दशा उन दोनों के लिये वियोग ( विशिष्ट ढंग की योग-  
साधना ) की है । योग ( मिलन ) की नहीं ।

[ इतनी तपस्या करने के बाद भी विरह की ही मात्रा अधिक है । मिलन  
के लिये कोई अनुकूल सामग्री तैयार नहीं है । ]

कदाचिच्च नरुणजननयनकुरङ्गवागुरामनङ्गजेन्द्रमदप्रवाहदकार-  
पहसितसुरासुरसुन्दरीरूपश्रियं शृङ्गाररसराजधानीमवलोक्य यौव-  
नावस्थां दमयन्त्या 'कोऽस्याः किलानुरूप पतिर्भवेत्' इति, चिरं  
चिन्ताकुलो विदर्भेश्वरः स्वयं स्वयंवरधर्मप्रारम्भाय समं मन्त्रिभि-  
र्मन्त्रनिश्चयं चकार ॥

किसी समय युवक जनों के नेत्रमृग को बाध लेने वाली रस्सी, कामजजेन्द्र  
के मद-प्रवाह की गडगडाहट, देव और दानव रमणियों के सौन्दर्य को नीचा  
दिखा देने वाली, शृङ्गार रस की राजधानी दमयन्ती की यौवनावस्था को  
देखकर, "कौन इसका अनुकूल पति होगा" इस विषय की चिन्ता में बहुत देर  
तथा व्याकुल रहकर स्वयं ही विदर्भ राजमन्त्रियों के साथ स्वयंवर धर्म को  
प्रारम्भ करने का सिद्धान्त स्थिर किये ॥

न चिराच्च प्राच्यप्रतीच्योदीच्यदक्षिणात्यनरपतिनिमन्त्रणे  
संप्राभृतान्प्रगल्भश्रायान्प्रधानप्रेष्यान्प्रेषयामास ॥

शीघ्र ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं के राजाओं को निमन्त्रण  
देने के लिये उपहारों के साथ पूर्ण इड एड मुख्य दूतों को भेजा ॥

प्रस्थितं कंचिदुदीच्यनरपतिनिमन्त्रणाय प्रवृद्धवृद्धब्राह्मणमात-  
सस्त्रीमुपेन दमयन्ती दिल्लक्षार्थमिदमवादीत् ॥

उत्तर के राजाओं को निमन्त्रण देने जाने के लिये तत्पर किसी विद्वान् वृद्ध  
ब्राह्मण से अपनी विश्वासपात्र स्त्री द्वारा श्लेषभरी भाषा में दमयन्ती बोली—

‘भूपालामन्त्रणे तात तथा संचार्यतां यथा ।

नलोप्यागमबुद्धिः स्यात्प्रार्थ्यसे किमत परम्’ ॥ २२ ॥

भूदेति ॥ तातेति संबोधने । नृपनिमन्त्रणे तथा संचार्यतां यथा भागनावतति-  
शास्त्रप्रतीतिर्लोप्या न न्यादिनि बाह्यार्थः । इष्टार्थस्तु नलनानापि नृपो यथागमन-  
बुद्धिर्भवेदिति ॥ २२ ॥

हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करने में ऐसा कीजियेगा कि जागमबुद्धि  
( शास्त्रीय पद्धति ) न लोप्य ( छुप्त या निरन्वृत्त न ) हो । यही प्रार्थना है ।

द्वितीय पक्ष—हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करते समय ऐसी पद्धति  
अपनाइयेगा कि नल भी जाने की धारणा बना लें । यही निवेदन है । इसमें  
अधिक क्या कहें ॥ २२ ॥

मोऽप्ययगतश्लोकार्यस्तयाविधमेव प्रत्युत्तरमदात् ॥

‘केनापि व्ययहारेण कयापि प्रौढलीलया ।

करिष्याम्यागमस्यार्थे रमसेन नलद्वनन् ॥ २३ ॥

केनेति ॥ आगमस्य शास्त्रस्य । अर्थे लङ्घनं न करिष्यामीनि बाह्यार्थः । इष्टार्थस्तु  
आगमनस्यार्थे रमसेनौत्सुक्येन घनं निविडं नलाख्यं नृपं करिष्यामि आनेप्यत्ये-  
वेत्यर्थः ॥ २३ ॥

वह भी श्लोक का अर्थ समझकर बैसा ही उत्तर दिया—

किसी भी विधेय क्या तथा किसी भी विधेय युक्ति में ऐसा यत्न करूँगा  
कि आगम ( शास्त्रीय मार्ग ) का लोप न हो ।

इम्पित पक्ष—किसी भी युक्ति सया किसी भी प्रौढ क्या से नल को शीघ्र  
जाने के लिये बड़ा घना प्रयास करूँगा ॥ २३ ॥

तदायुष्मति सुखमास्ताम्’ इत्यभिधाय गतवान् ॥

अथ नातिचिरेपागतस्तया रहः समाहूय स ब्राह्मणः सोमशर्मा  
नर्मालापलीलया दमयन्त्या वभापे ॥

‘आयुष्मति, आप सुखपूर्वक रहें, । यह कहकर चला गया ।

बिना अधिक देर के लौटे हुए सोमशर्मा नामक ब्राह्मण को बुलाकर  
दमयन्ती सोमल शब्दों में बोली—

‘आहृतोर्दीच्यभूपेन तातादेशविधायिना ।

नालीकापि त्वया वार्ता विद्वन्नाथेदिना मम’ ॥ २४ ॥

आहूयति ॥ आकारितोत्तरनृपेण त्वया विद्वच्छलीकापि वार्ता न कथितेति  
बाह्योर्थः । आन्तरस्तु नलस्येवं नाली वार्ता सा कापि त्वया नाम्यथापि ॥ २४ ॥



विद्वन्, पिता जी की आज्ञा पूर्ण करने वाले आपने उत्तर के राजाओं को निमन्त्रित किया, किन्तु इस सम्बन्ध में झूठी भी बात मुझ से नहीं बतायी ॥ २४ ॥

[ केवल 'नालीका' शब्द श्लिष्ट है । अर्थात् उत्तर के राजाओं को आपने निमन्त्रित किया किन्तु नालीक (नल सम्बन्धी कोई समाचार) नहीं बताये ॥ २४ ॥ ]

सोऽपि 'एष कथयामि श्लेषोक्तिकुशले, श्रूयताम्' इत्यभिधाय विद्वसन्नाख्यातुमारब्धवान् ॥

उसने भी, "श्लिष्ट बातों को कहने में चतुर दमयन्ती, लो, अभी कहता हूँ ।" यह कह कर हँसता हुआ क्या कहना प्रारम्भ किया—

इतो निर्गत्य मया मण्डलेश्वरामन्त्रणक्रमेण परिभ्रमताऽभ्रंकपानेरु-  
कूटकोटिस्थपुटितकटकस्य निपधनाम्नो महीध्रस्य दक्षिणारण्यस्थ-  
लीषु मृगया सक्तः ॥

यहाँ से चलकर विभिन्न मण्डलाधिपतियों को निमन्त्रित कर परिभ्रमण करते हुए, अनेक चोटियों में फैले हुए निपध नामक पर्वत के दक्षिण वाले जगल की भूमि पर शिकार खेलने में लगे हुए—

माद्यन्मांसलतुङ्गपुंगवककुत्कूटाक्षतांसस्थलः

कालिन्दीजलकान्तिकुन्तलशिराः पूर्णेन्दुविम्बाननः ।

एक कोऽपि मनोहर पथि युवा दृष्टः स यस्मिन्सकृद्-

दृष्टे नष्टनिमेषया मम दृशा लब्धं फलं जन्मनः ॥ २५ ॥

मस्त, पुष्ट, उच्च तथा उत्तम कोटि के पर्वत शृङ्ग की तरह उन्नत कंधे वाले, यमुना जल की नीली कान्ति की तरह बेशों वाले, पूर्णिमा के चन्द्र जैसे मुख वाले किसी एक मनोहर युवक को रास्ते में निनिमेष दृष्टि में देखकर मैंने जन्म का फल प्राप्त कर लिया ॥ २५ ॥

तेनापि 'दाक्षिणात्योऽयम्' इति निश्चित्य साभिलाषमाभाषितोऽ-  
स्मि ॥ मयापि कृतोचितालापेनोत्तम् ॥

उसने भी, "यह दक्षिण देश का आदमी है ।" यह समझ कर बड़ी दिलचस्पी से मुझसे बातें कीं । मैंने भी उसके उचित ढंग से बात कर लेने के बाद कहा—

'यथेयमाकृतिर्लोकलोचनानन्ददायिनी ।

तव भद्र तथा सत्यं सत्यागोऽसि नलोमवान्' ॥ २६ ॥

यथेदमिति ॥ सञ्ज शोभनशयागो यस्य । तथा न त्वं लोभवान् । भसीत्यभ्ययं युष्मदर्षे । पद्मे सायागस्त्वन् । तथा नलास्यो भवान् इति पृथग्वाक्यद्वयम् । एक-  
वाक्यतायां तु भवानमीति मध्यमपुरुषो दुर्लभ ॥ २६ ॥

श्रीमन्, लोगो के नेत्रों को आनन्द देने वाली जैसी आपकी यह आहृति है उनमें यह ज्ञात होता है कि आप लोभवान् ( लोभी ) नहीं हैं और सत्याग ( सुन्दर त्याग करने वाले ) हैं ।

[ सत्याग शब्द को कर्ता बनाकर त्व का आक्षेप कर अस्ति क्रिया का उप-  
पादन किया जायगा । अन्यथा भवान् का अस्ति क्रिया के साथ अन्वय उपपन्न नहीं  
होगा । अलौकिक सौन्दर्य समन्वित आप की आहृति से यह स्पष्ट है कि "नलो  
भवान्" आप नल हैं । लोभवान् न ऐसा अन्वय इसलिये किया जाता है कि  
अपरिचयावस्था में नाम का प्रकषण अन्वाभाविक न हो जाय ॥ २६ ॥

प्रथमुक्तः सोऽपि मनाङ्मुग्धस्मितमेघोत्तरं कल्पितवान् ॥

अथ प्रथमवयोविभूषिताङ्गस्तुङ्गतुरंगमाहूढो गाढप्रयितपरिकर  
करणे कौण्डिमाकलयंस्तद्वितीयो युवा तमेव देशमागतवान् ॥

ऐसा कहने पर वह भी मधुर मुस्कान के साथ उत्तर सोचने लगा ।

पहली अवस्था ( यौवन ) में अलङ्कृत, एक ऊँचे अरव पर आहूड, कमर  
में पेटो बांधा हुआ, हाथ में धनुष लिये हुआ, एक दूसरा सुबक उसी स्थान  
पर आया ।

आगत्य च बालनालनलशालिति शिलोच्चयस्यलीप्रदेशे कांचित्का-  
ञ्चनकुम्भकान्तिकुचकण्डलुठिनकुसुममालिकामवलोकयन्निदमवादीत् ॥

आकर नवीन एव द्यामल नल घास से मुशोभित पर्वत के उच्चतर प्रदेश  
पर किसी स्वनिम कुम्भ कान्ति वाले स्तनों एव गले में पुष्पमाला धारण की हुई  
नायिका को देखता हुआ बोला—

‘युवराज, पद्य—

नद्यास्तीरे विदर्मायाः कापि गोपालशालिका ।

गाः समुधारयत्येषा क्षेत्रीकृत्य नलं वरम् ॥ २७ ॥

नादा इति ॥ विशिष्टदर्माया नद्यास्तीरे । काप्यनिर्दिष्टनामा । गोपी । धरं श्रेष्ठ  
नल ( वं ) वृगविशेषम् । वेदारीकृत्य । गा धेनु । समुत् सहर्षा । चारयति ।  
श्लेषबद्धेवत्या तु विदर्माभिधानाया नद्यास्तीरे, कापि । महनीयमहिमा, गोपालस्य  
मूपस्य, शालिका मुना, नल राजान, धरं वरपितारं क्षेत्रीकृत्याधर्षाकृत्य, तिरः  
समुधारयति । वर इप्सापाम, वर्यंत इति वर । क्षेत्रं सद्मूमि ॥ २७ ॥

युवराज, देखो, विदर्भ ( अधिक के कुशों से युक्त ) नदी के तट पर यह कोई

गोपालपुत्री ( ग्वाले की लडकी ) उत्कृष्ट नल सजक घास धाले स्थान को खेत समझ कर गायो को प्रसन्नतापूर्वक चरा रही है ॥ २७ ॥

द्वितीय पक्ष—विदर्भ नामक नदी के तट पर कोई गोपालपुत्री ( राजा की लडकी ) नल नामक वर को अपनी इच्छा का विषय बनाकर गो ( वाणी ) का उच्चारण कर रही है ॥ २७ ॥

[ विदर्भिया — विशिष्ट दर्भों से युक्त नदी अथवा विदर्भ नाम की नदी । गा — वाणी या गाय । क्षेत्रीहृत्य—मन वा विषय बनाकर या गाय के चरने का क्षेत्र बनाकर या समझ कर । समुत्—( मुद्रा सहिता ) प्रसन्नतापूर्वक । चारयति ( चरा रही है ) समुच्चारयति—नल विषयक बातों का सम्यक् उच्चारण कर रही है । नल एक घास का नाम है । एक पक्ष में नल शब्द से नल राजा अर्थ है ॥ २७ ॥

एतदाकर्ण्य मयाप्युक्तम्—‘महानुभाव, न केवलमियमन्यापि कापि कापि’ इति ॥

इत्युक्तवन्तं मामवलोक्य भावितार्थः स पुनः सस्मितमवोचत् ॥

यह सुन कर मैंने कहा, श्रीमन्, केवल यही नहीं कही कोई दूसरी भी ।

ऐसा कहने पर प्रासङ्गिक अर्थों को समझ कर मुस्कुराते हुए उसने कहा—

‘इयं च सा च—

अनुभवतु चिराय चञ्चलाक्षीरसपरिणामफलानि गोपपुत्री ।

अपसरति महोद्यमेन यस्याः कथमपि संप्रति नैषधेऽनुराग ’ ॥२८॥

अनुभवतिवति ॥ गोपालिका क्षीरस्य सपरिणामानि यानि फलानि क्षैरेयीदधि-  
प्लुतप्रसृतीनि तान्यनुभवतु चिराय । चञ्चला लोला गोचारणवशात् । यस्याः  
सप्रत्येव धेनुरागो महोद्यमेन हेतुना । कथमपि केनापि प्रकारेण न निवर्तते । श्लेषे  
तु गोपपुत्री भूपपुत्री दमयन्तीलक्षणा चञ्चलाक्षी लोलनेत्रा शृङ्गारादिरसपरिपाक-  
फलान्युपभुङ्क्षाम् । यस्याः संप्रति नैषधे नले महोद्यमेऽनुराग प्रेमबन्धः ।  
कथमपि नापसरति ॥ २८ ॥

यह भी और वह भी—

चंचला गोपपुत्री ( ग्वाले की लडकी ) जिसका इस समय यह धेनुराग ( गोविषयक प्रेम ) किसी भी तरह कम नहीं होता, क्षीर के सपरिणामफल ( दही धी आदि का ) चिरकाल तक अनुभव करे ।

द्वितीय पक्ष—चंचलाक्षी गोपपुत्री ( चंचल नेत्रों वाली पृथ्वीपाल की लडकी ) जिसका नैषध ( नल ) से लगा हुआ अनुराग बड़ा पतन करने पर भी नहीं घटता, शृङ्गार प्रभृति रसों की परिपक्वावस्था का चिर काल तक अनुभव करे ।

[ गो के अर्थ पशु और पृथ्वी दोनों हैं । अतः गोप के भी पशुपाल तथा

पृथ्वीपाल दी अर्थ होंगे। चंचलाक्षीरसपरिणामफलानि—पशुपालपुत्री पक्ष में चंचला एक पद है और क्षीर + सपरिणामफलानि दूसरा। भूपालपुत्री दमयन्ती पक्ष में चंचलाक्षी + सपरिणामफलानि यह विच्छेद है। अर्थात् चंचल नेत्रों वाली दमयन्ती नरक में जनुराग को प्राप्त कर शृङ्गार के इलाय-नीम फल को प्राप्त करें। नैषधेनुराग—एष धेनुराग न अपसरति—इस गोपपुत्री का धेनुराग हट नहीं रहा है। दमयन्ती पक्ष में नैषधेऽनुराग न अपसरति—नरक में जो इसका अनुराग हो गया है वह हट नहीं रहा है। नहो-दमेन—दमयन्ती पक्ष में महादहन सप्तम्यन्त है और नरक का अन्वय अपसरति क्रिया में है। ग्वाले की लटकी व पक्ष में यह पद तृतीया एक वचन है ॥२८॥]

आस्तां तावदन्यत् । अन्यन्य, कथय कुत प्रष्टव्याऽसि, किं च कियद्वाद्यापि बर्त्मातिक्रमितव्यम्' इति ॥

छोड़िये दूसरी बातों को पणिक जी, कहिये, आपकी कथा से पूछा जाय। अभी तक कितना रास्ता तय करने के लिये बाकी है।

अथ कथितस्ववृत्तान्तेन मयापि 'कोऽयमशेषमनुष्यमस्तकमणिः, कश्च भवानपि स्वप्रज्ञाप्राम्भारपराङ्मुखीकृतपुरंदरगुह' इति पर्य-नुयुक्तः स पुनरुक्तवान् ॥

मैंने अपना सब वृत्तान्त कह दिया और उनसे पूछा, "समस्त मनुष्यों में श्रेष्ठ ये कौन हैं, और अपनी प्रज्ञाबैभव से देवेन्द्र गुह बृहस्पति को भी नीचा दिखाने वाले आप कौन हैं?" तब उसने कहना शुरू किया—

'अयमस्तौ सौम्य, समस्तशस्त्रशास्त्रकोविदो विदारितवैरी वैरसेनि-र्नलः । किमन्यद्दहमपि श्रुतशीलो नामास्त्यैवाज्ञाकारी, इत्यभिधाय विधान्तवान् ॥

"सौम्य, सम्पूर्ण शस्त्रों तथा शास्त्रों के विद्वान्, शत्रुदल को विदलित किए हुए ये वीरसेन के पुत्र नरक हैं। अधिक क्या बताऊँ, मैं भी इन्हीं का आज्ञाकारी हूँ। मेरा नाम श्रुतिशील है।" यह कह कर वह चुप हो गया।

नलोऽपि कृत्या त्वदाध्यास्तास्ताः प्रकटितप्रेमदन्द्लाः कथा, समर्थ्य च स्वयंवरामन्त्रणमुत्सुकतया तत्कालमेवोड्डीय गन्तु-मीहमान संभाषितेन स्मितेनालोकितेन च माममृतवर्षेणैवाहादयश्र-निच्छन्तमपि प्रतिप्राह्य च बलाद्गन्धर्वाणि स्वाङ्गाभरणानि धिराश्व व्यसर्जयत् ॥

नरक भी तुम्हारे निमित्त प्रेमाक्षुर व्यक्त करने वाली उन-उन कथाओं को कह कर उत्सुकतापूर्वक स्वयंवर में जाने के लिए निमन्त्रण का समर्पण कर

तत्काल ही मानो उड़कर पहुँच जाना चाह रहा था। सम्भाषण से, मुस्कुराहट से और दर्शन से मुझ अमृतवर्षा की तरह आनन्दित करता हुआ, मैं नहीं चाहता था तो भी बलात्कार अपने बहुमूल्य अलङ्कारों को देकर कुछ देर के बाद छुटी दी।

स्वयं च मृगयाव्यसनितया मृगयालुभिः सह—

धीरं रङ्गन्तमारुह्य सारं रहसिं चाजिनम् ।

हारं रम्यं गले विभ्रत्स्वैरं रन्तुमगात्पुन ॥ २९ ॥

धीरमिति ॥ धीरमग्रासं रङ्गन्तं वल्गन्तं, रहसिं वेगे सारमुत्कृष्टं चाजिनमश्रममारुह्य कण्ठे हारं गुणविभ्राणं स्वच्छन्दं क्रीडितुं पुनरप्यगात् ॥ २९ ॥

घिनार का अभ्यासी होने के कारण स्वयं भी वह शिकारियों के साथ— धैर्यशील, दौड़ में उत्कृष्ट, फड़कते हुए घोड़े पर चढ़ कर गले में सुन्दर हार पहना हुआ, पुनः स्वेच्छया विहार करने चला गया ॥ २९ ॥

तदायुष्मति, स्वामिसुते यथा मया नत्कथाप्रदानानुराग उपलक्षितस्तथा निश्चितमचिराद्यमेप्यति' इत्यभिधाय स ग्राहणं स्वगृहं मगात् ॥

‘चिरञ्जीविनी राजपुत्री जिस तरह उसने मुझ से बातों तथा प्रश्नों में प्रेम प्रदर्शन किया उससे निश्चित है कि वह शीघ्र ही आवेगा।’ यह कह कर वह ग्राहण अपने घर चला गया।

गते च तस्मिन्दमयन्ती ‘इलाध्यः स कालः, धन्यः स फलमो वासरः, सलक्षणा सा का नाम वेला, यस्यामिदमिन्दुदर्शनेनेव कुमुदमस्मच्चक्षुस्तदालोकनेन कमप्यानन्दमनुभविष्यति, इति चिन्तयन्ती कान्यपि दिनानि कयाप्यवस्थया व्यनैपीत् ॥

उसके चले जाने पर दमयन्ती, ‘वह कौन सा स्पृहणीय समय होगा, वह कौन सा धन्य दिन होगा, वह कौन सी शुभ शकुन की वेला होगी, जब चन्द्रदर्शन से कुमुद की तरह मेरी आँखें उनके दर्शन से आनन्द का अनुभव करगी।’ इस तरह सोचती हुई कुछ दिनों को किसी किसी तरह व्यतीत किया।

अथ नलोऽप्यामन्त्रितस्तेन ब्राह्मणेन रणरणकेन च, प्रेरितो मन्त्रिणा मदनेन च, परिवृत्त सेनयोत्कण्ठया च, तत्कालमेव विदर्भमण्डलाभिमुखमुदचलत् ॥

नल भी उस ग्राहण और मनोगत उत्सुकता से आमन्त्रित होकर, मन्त्री और कामदेव द्वारा प्रेरित होकर सेना और उत्कण्ठा से परिवेष्टित होकर शीघ्र ही विदर्भ देश की ओर चला दिया ॥

चलिते च चतुरङ्गवलयलनचूर्णितशिलोच्चयचक्रवाले चक्रि-  
चक्रवट्कमणचोत्कारयधिरितिकुहुमिधिपमवैरिवृन्दयनवैद्युतानले नले,  
चलन्तश्चटुलतरचरणप्रदाररणितधरणिमण्डलाः कान्तकाञ्चनरचना-  
रोविष्णयश्चकासांचक्रश्चक्रयत्तिवाहोचिताः साश्चर्यमपर्यन्तपर्यायाः  
पर्यापितामनुरङ्गाः शृङ्गारिताश्च चलच्चावचामपावधूलनालंकृतकपोल-  
मितिभागसंलग्नितभृङ्गसंगीतमुखरितमुखमण्डलाः कथमप्याधोर-  
रणनिरुन्धमानशौर्यविकारनङ्कुरणाः स्फुरत्कुम्भमिचितिसिन्दूरा दूरापसा-  
रितम्यन्दनाः म्यन्दमानामन्दमदस्पर्द्धमितमेदिनाका कम्पयावमृवुर्मुवं  
मूरिभारभुद्राङ्गपन्नगशिर शिथिलावष्टम्भामिमेन्द्राः ॥

उत्पृष्ट शत्रु वर्ग रूपवन के किये जनि सहय नल की चतुरङ्गिणी सेना के  
चरने पर शिला समूह चूर्णित हो गय । सर्पमण्डल के चोत्कार से दिशायें  
बधिर हो उठीं । चमकन हुए स्वर्णालङ्कारों से मुद्योभित चक्रवर्ती राजा की  
सवारी के लिए उपयुक्त, सर्वथा अद्वितीय, सवे हुए घोड़े उद्भासित हो रहे थे ।  
चलते हुए मुन्दर चैवर के कम्पन से मजेन्द्रों के कपोल भाग मण्डित हो गये थे ।  
बहाँ लगे हुए भ्रमरो के संगीत से उनका मुत्तमण्डल शब्दायित हो उठा था ।  
वीरता के कारण उन्नत वे हाथी हस्तिपालों द्वारा किसी-किसी तरह रोके जा  
रहे थे । वे रथों को दूर हटा दिये थे । उनकी चूती हुई मदधारा से पृथ्वी पङ्क-  
युक्त हो गई थी । उनके पर्याप्त भार से संकुचित अङ्गवाले सर्पों ने अपनी  
शिरःफलाओं न टंक को सिधिल कर दिया था । पृथ्वी कांप उठी थी ।

किञ्चिद्गुना । तथावसरे—

पूर्वापरपयोराशिसामासंक्रान्तसैनिके ।

तस्मिन्सम्भार भूर्भाराद्वराहवपुषो हरेः ॥ ३० ॥

पूर्वेति ॥ पूर्वापरसागरावधिसञ्क्रान्तश्चमूषरे तस्मिन्सले मूर्मेदिनी भाराद्देतोर्हरेः  
सस्मार । 'अर्धागर्ष'—इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी ॥ ३० ॥

अधिक क्या कहै—

उस समय जब पूर्व और पश्चिम समुद्र तक उसके सैनिक फैले तो पृथ्वी  
भार के कारण बराह शरीरधारी भगवान् का स्मरण करने लगी ॥ ३० ॥ है

[ बराह अवतार धारण कर पृथ्वी का भार धारण एक बार भगवान्  
किये थे । इसीलिये नल की सेना के असह्य भार से व्यपित होकर पृथ्वी पुनः  
भगवान् का स्मरण की ॥ ३० ॥ ]

अपि च—

आसीत्पिण्डितपाण्डुपङ्कजवनं श्वेतावपत्रैः ष्वचि-

न्मायूरानपचारणैः ष्वचिदमृदुघालनीलोत्पलम् ।

उन्मेघं कचिदूर्ध्वधूलिपटलैस्तम्य प्रयाणेऽभय-  
त्प्रोद्वीचि हचिदम्बरं सर इव प्रेहृत्पताकापटैः ॥ ३१ ॥

आसीदिति ॥ सितच्छत्रैः पिण्डितपुण्डरीकवनं, श्रीकरीमि सनीलोत्पल, रेणु-  
पटलैरक्षतमेघ, हचिदम्बरं ध्वजाश्रलैः प्रवृद्धोर्ध्वरङ्ग, तदागमिषाग्धरमाकाश तस्य  
याणेऽमृत । प्राच्यदेशे महासरसु मेघा अम्भो ग्रहीतुमुन्नमन्त इति प्रसिद्धयो  
न्मेघस्वमुक्तम् ॥ ३१ ॥

उसकी यात्रा के अवसर पर आकाश में कहीं शुभ्र छत्रों से मुकुलित श्वेत  
कमलो का वन बन गया था । कहीं मयूरपक्ष से बने हुए छत्रों से ऊपर की ओर  
नालदण्ड दिये हुए नीलकमलो का वन बन गया था । ऊपर की ओर उठी  
हुई धूलि से उन्नत मेघ बन गये थे । फडफडाते हुए ध्वजबलों से लहरियाँ  
बन गयी थीं । अत आकाश सरोवर जैसा प्रतीत होता था ॥ ३१ ॥

[ राजा के सैनिक प्रयाण के अवसर पर आकाश एक महान् सरोसर  
बन गया था । श्वेत छत्रों का समूह शुभ्र कमलवन की शोभा सम्पन्न कर रहे  
थे । दण्डसहित मयूर पक्ष के छत्र नीलकमलवन की शोभा सम्पन्न कर  
रहे थे । उठी हुई धूलि मेघ का दृश्य सम्पादित कर रही थी । ध्वजबल  
सरोवर-लहरी को दृश्यपूर्ण कर रहे थे । यह जनसामान्य में प्रसिद्धि है कि  
मेघ बड़े सरोवरो, झीलों और सागरों में पानी लेने के लिये आते हैं । इसी  
प्रसिद्ध के आधार पर कवि ने आकाश को सरोवर बनाकर वहाँ मेघ दिखाने  
का प्रयास किया है ॥ ३१ ॥ ]

जाताश्च जहाजघनस्पृशो, वक्षस्थलीलोलनलम्पटा, ग्रीवाग्रहणा  
प्रद्विष्यः, प्रसभं लगन्त्यो घस्त्रेषु, निरुपाः स्त्रिय इव, नक्षत्रदाभि-  
घातोद्यता घुन्वन्त्यश्चिबुककपोलाधरचक्षुषि सैनिकानाम्, अति-  
प्रसरेण शिरोऽचलन्ना, प्रयत्ना धूलयो वियदाधरणाश्च चक्रुश्चैरति-  
प्रसङ्गमासघ्नवननिहुञ्जेषु ॥

जाताश्चेति ॥ धूलयो निर्लज्जा स्त्रिय इव । जघेत्यादीन्मुभयत्र समानानि । नत्वा  
अरवादीनां सुरा, पद पादविन्यासस्तेपामभिघातादुत्थिता पक्षे नक्षत्रपदयो-  
श्चाभिघाते उद्यता मोघमा । घलासैन्यात्प्रयुद्धा, पक्षे प्रवृद्धवीर्या । वियदा-  
धरणा नभस्त्रादिन्यो विगच्छद्दृष्ट्याश्च । त्रियन्नभ । विपूर्वश्लेण शतरि च  
वियदिति । अतिप्रसङ्गमतिन्यासि, पक्षे रतिप्रसङ्गं सुरतप्रबन्धम् ॥

जघा और जघन को छूती हुई, वक्षस्थल के मर्दन के लिये लोटुप, गलवाही  
देने के लिये आग्रह करने वाली, हठात् बलों में त्रिपट्वी हुई निर्लज्ज स्त्रियों  
की तरह सुर के विघात से उठकर पदस्पर्श करने में उद्यत, अधिक प्रसार से  
सफेद धूलिया सैनिकों के शिर में लगती हुई उनके बिबुक, कपोल, ओष्ठ तथा

नेत्रों को चूमती हुई, समीप के अरुणकुञ्जों को आकाश का आवरण बन कर छा ली ॥

[ यहाँ धृति और निर्लज्ज त्रियों में पूर्ण समानता बतायी गयी है । ]

कूजन्तश्च कोटिशः क्षोदण्डमण्डलाग्रव्यग्रपाणयः, पाणिनीया  
इयाधिकरणकर्मकुशलाः समुल्लसन्तो विचेलुर्जलानपटवो लाम्पटवो-  
ल्लुण्ठितरिपुपुरः पुरः पदानयः ॥

कूजन्तश्चेति ॥ पदानयो विचेलु । किं कुर्वन् । कोटिशोऽनेकधा कूजन्तः  
शब्दायमाना । तथा क्षोदण्डेन धनुषामण्डलाग्रेण चासिना व्याकुला पाणयो  
येषां ते । तथाधिक रगकर्मणि कुशला । पाणिनीयपट्वेऽधिकरणकर्मणी कारके ।  
लाम्पटवेनोवल्लुण्ठिता भरिपुरोऽरिनगयो यै । पुरोऽग्रतः ॥

हल्ला करत हुए, बार बार धनुष तथा तन्वार पर हारों को खचलता से  
फेरते हुए पाणिनि के अनुयायियों की तरह अधिकरण कर्मकुशल ( अधिक + रण  
कार्य म निपुण ) थे । धृष्टता से नारियों को लूटकर बड़े उल्लास के साथ  
पैदल चरने वाले सैनिक आगे बढ़े ।

[ अधिकरण और कर्म कारक व विचार में जैसे पाणिनी के अनुयायी कुशल  
होते हैं वैसे वे सैनिक अधिक+रण+कर्म ( कार्य ) में कुशल 'निपुण' थे । ]

तत्र च व्यतिकरे—

मन्दं मन्दरमन्दिरेषु शयितानुन्निद्रयन्किन्नरान्-  
मेरोर्मस्तकमन्दरे प्रतिखानुत्थापयन्नुल्वणः ।  
आध्य धावत यात मुञ्चत पुनः पन्यानमेवंविध-  
स्त्रैस्तोत्र्यं बधिरीचकार थहलः सैन्यस्य कोलाहलः ॥ ३२ ॥

उस समय—

मन्दराचल के भयनों में सोये हुए किन्नरों को धीरे से जगात हुए, मेरु की  
उच्चतर कन्दराओं में उड़त प्रतिध्वनि करत हुए, 'बैठो, दौड़ो, छोड़ो फिर  
इस रास्ते को ।' सैनिकों का इस तरह का कोलाहल तीनों ओकों को बधिर  
बना रहा था ॥ ३२ ॥

एवमसौ क्रीडितानेकपामरान् गिरीन् ग्रामांश्च बहुतरङ्गोपशोभिताः  
सरितः सान्निध्यं व्यूढपत्नरथान् पथः पादपांश्च लङ्घयन्, सालसद्विताः  
पुरीर्नारीश्च सेवमानः, पच्यमानगोधूमश्यामलाः क्षेत्रमुचो मिल्हपल्लीश्च  
परिहरन्, विधयाः शत्रुसामन्निनीरटवीश्चातिकामन्, परिवारीणि  
थन्धुकुलानि सर्पांसि च बहुमानयन्, नाति चिरेण रधिरथतुरंगपरिहृत-  
यिपमशिरःशिखरसहस्रमजस्रममरणगन्धर्वंसिद्धरुद्धस्कन्धमध्यं  
विन्ध्याचलमनुससार ॥



एवमिति ॥ अमुना प्रकारेणासौ नल इदमिदं कुर्वन्तरणिरथाधस्यक्वाधित्यका-  
मध्यं विन्ध्याद्रिमनु लक्ष्मीकृत्य समार । किं कुर्वन् । लह्यन् । कान् । गिरीन्द्रान्  
ग्रामाश्च । संप्रत्युभयानपि विशिनष्टि । क्रीडिता अनेकपा गजा अमराश्च देवा येषु ।  
पक्षे पामरा प्राण्याः । सरितो बहुभिरन्तरैरलकृता । सीमानश्च बहुतरं यथाभव-  
त्येव गोपैर्गोपालैः शोभिता । विशेषेणोदानि पत्राणि वाहनानि रथाश्च यैः । पक्षे  
पत्ररथः पक्षी । सालेन प्राकारेण सहिताः । नार्थं सालसा हिताश्च । अलसशब्दो  
भावप्रधानो लक्षणादिबत् । पक्षेऽलिर्गोधूमैः सस्यविशेष श्यामला । पक्षी तु  
गोधूमैर्धूमो गोधूम । तत पच्यमान. परिपाक गच्छन् बहुलीभवन्त्योऽसौ गोधूम-  
स्तेन श्यामला । न तु पच्यमाना वासो गीश्रेणि । ट्प्रसन्नात् । कृष्यावनी हि  
दग्धा समधिक फलतीति । तथा च ( रघुवने नवमे सर्गे ) कृष्या दहस्यपि खलु  
चित्तिमिन्ध्वनेदो बीजप्ररोहजननीं ज्वलन. करोति' । गोशब्दो भूम्यर्थो न धेन्वर्थोऽ-  
नौचित्यात् । विविशेषे विगमे च । धर्मा भर्ता तरुविशेषश्च । परिवृष्यन्ति परिवारी-  
भवन्ति परिवारीणि । अन्यत्र परि समन्ताद्धारि जल येषु ॥

इस तरह अनेक हाणियों और देवताओं से युक्त गाँवों और पर्वतों में  
श्रीडाकर, बहुत तरङ्गों से सुशोभित नदियों तथा अधिकांश गोपों से अलकृत  
पर्वतीय सीमाओं, विशेषरूप से पत्र ( अदक ) और रथ से युक्त मार्गों तथा  
पत्ररथ ( पक्षियों ) से युक्त पेड़ों को लावने हुए, साल ( चारदीवारी ) से युक्त  
नगरियों और अलसाई स्त्रियों का सेवन करता हुआ, पकने की स्थितियों में  
आये हुए समृद्ध गेहूँ के पीधों कारण श्यामल रंग की क्षेत्रभूमियों और जलती  
हुई आग के धूम से श्यामल भीलों के गाँवों को छोड़ता हुआ, धव  
( पति ) हीन शत्रुपत्नियों तथा विशिष्ट ढग के धव नामक वृक्षों से युक्त जगलों  
को लावता हुआ, चारों तरफ से घेरकर रहने वाले बन्धुजनों को सम्मानित  
करता हुआ, चारों तरफ से जल से भरे हुए सरोवरों की प्रशंसा करता हुआ,  
शीघ्र ही, भगवान् सूर्य के रथों के घोड़ों से वञ्चित, हजारों उच्च शिखर रूप  
शिखों को धारण करने वाले, निरन्तर देवों, गन्धर्वों और सिद्धों द्वारा घिरे हुए  
मध्यभाग वाले विन्ध्याचल को लक्ष्य कर चला ।

ततश्च—

दिशि दिशि किमिमानि प्रच्यवन्तेऽन्तरिक्षा-  
दविरतमुत देवा भूतधात्री प्रसूते ।  
इति शबरवधभिस्तर्यमाणान्यवापुः  
सपदि विपुलविन्ध्यस्फन्धमध्यं बलानि ॥ ३३ ॥

इसके बाद—

“सभी दिशाओं में आकाश से यह क्या चूर रहा है, अपना समस्त प्राणियों  
को धारण करने वाली देवी पृथ्वी निरन्तर यह सब क्या उत्पन्न कर रही

हैं ?' इस तरह की उद्भावना करती हुई शबर युवतिया विशाल विन्ध्याचल की चोटियों के बीच धीरे ही इस सेना को प्राप्त कीं ( देखो ) ॥ ३३ ॥

श्रुतशीलस्तु तुङ्गशृङ्गरङ्गत्सारङ्गाङ्गनासु नक्षत्रासत्राकाशावकाश-  
विशदंशजालजटिलासु चलच्चित्रचित्रककरिकलमरुदम्बरकसंवारशर-  
लासु हारिहरिताङ्कुररमणीयासु यनस्थलीषु निक्षिप्तचक्षुपमघटोन्नय  
राजानमिदमयादीत् ॥

ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरों पर मृगवधुए घूम रही थीं। तारों के समीप  
रिक्त आकाश में प्रवेश करते हुए बाँसों के कारण वह भूमि धनीभूत प्रतीत हो  
रही थी। चलते हुए आश्चर्यजनक रङ्ग-विरङ्ग के हाथियों के बच्चों में विविध  
रङ्गों से चित्रित हो गयी थी। सुन्दर हरे अङ्कुरों के कारण रमणीय थी।  
ऐसी उस वनस्थली पर दृष्टि देकर धृतिशील ने रात्रा से कहा ॥

'देव'—

मायदन्तिकपोलपालिविगलदानाम्बुसिक्तद्रुमा  
कीडत्कोडकुलार्थचर्वितपतन्मुस्तारसामोदिताः ।  
अन्तःसुस्थितपान्यमन्यरमरुल्लोललतामण्डपाः  
अस्यैता न हवन्ति हन्त हृदय विन्ध्यस्थलीभूमयः ॥ ३४ ॥

नामदिति ॥ मुस्तायाः कन्दविशेषस्य रसेन निपांसेनामोदिताः । अन्तर्मध्ये  
सुस्थिता पान्या यासु । तथा मन्यरमरुता मन्दानिलेन लोहन्तश्चलन्तो लता-  
मण्डपा यासु । पश्चात्कर्मधारयः ॥ ३४ ॥

देव, क्या ही सुन्दर यह विन्ध्याचल की भूमि है जहाँ मतवाले हाथियों के  
कपोलस्थल से बहने हुए मदबल से पेड़ सीव उठे हैं, खेलते हुए सुकरो के  
आधे बचाये हुए मुस्ता के रस से जो सुगन्धित हो गयी है, भीतर की और  
पश्चिजन मजे में बैठे हुए हैं, मन्द-मन्द हवा से लतामण्डप ढोल रहा है,  
किस का मन नहीं हर लेती ॥ ३४ ॥

इतश्च पश्यतु देवः—

पया सा विन्ध्यमध्यस्थलविपुलशिलोत्सङ्करङ्गतरङ्गा  
सम्भोगधान्ततीराश्रयशबरपयवृशर्मदा नर्मदा च ।  
यस्याः सान्द्रद्रुमालीललिततलमिलत्सुन्दरीसंनिधौः  
सिद्धैः सेव्यन्त एते मृगमृदिनदत्तकन्दलाः कूलकच्छा ॥ ३५ ॥

शबर देखें धीमान्—

विन्ध्याचल के बीच की बड़ी-बड़ी शिलारों की गोद में पिरकती हुई  
रुहरियों वाली, तीरभूमि पर स्थित, सम्भोग धम से धाम्त शबर युवतियों

को आराम देने वाली यह वह नर्मदा नदी है जिसकी घनी धूल-भक्तियों की मधुर छाया से सुन्दरियो से लिपटे हुए सिद्ध लोग मृगो द्वारा रँदि गये अङ्कुरो वाले तटप्रदेश का उपभोग कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

अपि च । अन्तरेऽप्यस्याः—

मज्जत्कुञ्जरकुम्भमण्डलगलदानाम्बुनः सौरमाद्  
भ्राम्यद्भृङ्गकुलावलीः कुवलयश्रेणीः समाविध्रतः ।  
कल्लोलाः कलिकालकल्मषमुपः प्रोल्लीललीलाकृतः  
स्वःसोपानपरम्परा इव वियद्वीथीमलंकुर्वते ॥ ३६ ॥

मज्जदिति ॥ भृङ्गकुलानां कुबलयान्युपमानम् । विध्रत इति कल्लोलविशेषं जसन्तम् । 'नाभ्यस्ताद्'-इति नुमभावः ॥ ६६ ॥

स्नान करते हुए हाथियों के कुम्भस्थल से चूते हुए मद जल की सुगन्ध के कारण गूँजते हुए भ्रमर वर्गों और कमलश्रेणियों को धारण करने वाली, उत्कृष्ट विलास सम्पन्न, कलि के पापों को नष्ट करने वाली नर्मदा की तरङ्गों स्वर्ग सीढ़ियों ( सोपान ) की पङ्क्ति की तरह आकाश मार्ग को अलङ्कृत कर रहीं हैं ॥ ३६ ॥

इतश्चास्यास्तीरे—

अंसघ्नंसिजलाद्रजर्जरजटाजूटैर्मनाड्मन्थरा-  
स्तिभ्यत्तारचतन्तुनिर्मितकुथत्कौपीनमात्रच्छदाः ।  
शीतोत्कण्टकितास्थिशेषतनवः स्मात्योत्तरन्तः शनै-  
रेते पश्य पतन्ति पिच्छिलशिलाजाले जरत्तापसाः ॥ ३७ ॥

असेति ॥ तरुणु जातास्तारवाः । ते च ते तन्तवश्च । पिच्छिलं मसृणं कर्द-  
मिलम् ॥ ३७ ॥

देखिये जल से भीगी हुई शिथिल जटाये कन्धे तक लटक रहीं हैं, आर्द्र बल्कल तन्तुओं से निर्मित अत्यन्त पुराना कौपीनमात्र बस्त्र धारण किये हुए हैं, ठंडी के कारण रोगटे लड़े हो गये हैं, शरीर में हड्डी ही अवशिष्ट रह गयी है, देखिये, ऐसे वृद्ध तपस्वी स्नान कर धीरे-धीरे पिच्छिल ( फिसलने वाले ) शिला समूह पर उतर रहे हैं ॥ ३७ ॥

इतोऽपि—

पश्यैताः फरिकुम्भसंनिभकुचद्वन्द्वोत्सद्वीचयः  
फ्रीडन्त्यञ्जविकासभासि पयसि स्वैरं पुलिन्दस्त्रिय ।  
उन्मीलन्नवनीलनीरजधिया पश्मान्तरेः नेत्रयो-

१८ १८ 'यासां हस्तलतादता अपि परिभ्राम्यन्ति भृङ्गाक्षनाः ॥ ३८ ॥

इधर भी—

देखो, हाथियों के कुम्भस्थल सङ्घ स्तनयुक्त से जल तरङ्ग को सुशोभित करती हुई, कमलों के विकास के कारण इस मनोहर जल में शबर युवतियाँ खेच रही हैं, जिनके नेत्र भाग के पत्रकों को विकसित हो रहे कमल समझ कर (आयी हुई) अनुर बहुएं हस्तलता से भगायी जाने पर भी चक्कर काट रही हैं ॥ ३८ ॥

[ शबर युवतियाँ स्नान कर रही हैं। उनके उन्नत स्तनों के झोके से पानी तरङ्गित हो उठा है। उनके पत्रकों को कमल समझ कर अनुरियाँ उनके सामने भनभना रही हैं। युवतियाँ अपने हाथों से उन्हें किसी-किसी तरह हटा पाती हैं ॥ ३८ ॥

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

यालोन्मीलत्कुवलयवनं विस्तरद्गन्धरुद्ध-

श्रान्यद्भृङ्गैरनुकृतपयःपूर्णमेघान्वकारम् ।

द्वर्पात्पदयत्ययमतितरां वीरचारी मयूरो

मुग्धः पादर्वे भ्रमति च मयाच्चक्रवच्चक्रवाकः ॥ ३९ ॥

वालेति ॥ विस्तरता प्रसरता गन्धेन रुद्धाः। अत एव श्रान्यन्तो मृङ्गास्तेर-  
मुकृतः पयःपूर्णमेघोऽन्धकारश्च येनेति वनविशेषगम् । मेघादि मयूरस्य हर्षः ।  
अन्धकाराच्च रात्रिशब्दाया चक्रवाकस्य भयम् ॥ ३९ ॥

नदीन, विकसित हो रहे, कमलवन की फैलती हुई गन्ध मे बसे हुए और चक्कर काटने हुए अनुरों के प्रतिबिम्ब से सरोवर का जल पूर्ण मेघ की तरह अन्धकाराच्छन्न दीखता है। अतः तटप्रदेश पर घूमने वाले मयूर उसे प्रसन्नता के साथ देख रहे हैं किन्तु भोग-भाला चक्रवाक डरता हुआ उसके पास चक्र की तरह घूम रहा है ॥ ३९ ॥

[ भ्रमते का प्रतिबिम्ब काले मेघ और रात्रि दोनों तरह की भ्रान्तियों को उत्पन्न कर रहा है। मयूर तो उसे मेघ समझ कर आनन्द मानते हैं किन्तु चक्रवाक उसे रात्रि समझ बैठता है। रात्रि में वह करनी प्रियतमा से विदुक्त हो जाता है। अथ- रात्रि से वह खूब डरता है। इस प्रतिबिम्ब को रात्रि समझ कर दुःख के मारे चक्र जैसा नाच रहा है। वन्दित सामग्री से जल की अतिशय सौरभसम्पन्नता व्यक्त हो रही है ॥ ३९ ॥ ]

- इदं च -

कुरुरभरसहं सहंसमालं मुदितमयूरचकोरचक्रवाकम् ।

क इह सुरचिरं विलोम्य प्रवरमते रमते नरो न रोधः ॥ ४० ॥

कुरुरेति ॥ प्रवरा मतिर्यस्य तसंबोधनम् । इह रोधस्तटं विलोषय को नरो न  
 र्मते श्रीहरयेव सर्वे । कथंभूतम् । कुरुराणा भ्रमतिशय सहते । तथा सह  
 हंसमालया तथा मुदिता भयूराश्रकोराश्रकृवाकाश्र यत्र । यतः सप्तु रुधिरम् ॥४०॥

ओ प्रजासम्पन्न महाराज, जहाँ कुरुर भरे हैं, हंसों की पङ्क्ति है, प्रसन्न  
 मयूर और चक्रवाक हैं ऐसे इस रमणीय तट की चिरकाल तक देख कर  
 किस आदमी का मन यहाँ नहीं लगता ॥ ४० ॥

इतश्च—

यककृतनिनदं नदं न दम्भात्कृतसवनं सवनं भजन्त एते ।

निरुपमविभवं भव स्मरन्त प्रशमधना मुनयो नयोपपन्नाः ॥ ४१ ॥

वकेति ॥ प्रशम एव धनं येषां ते मुनयो नययुक्ता । अनुपमसामर्थ्यं भवमीश्वरं  
 स्मरन्तो षष्ठे कृतशब्दम् । तथा न दम्भात्कृतसवनं कृत सवनं  
 स्नानं यत्र तम् । तथा सह वनैः सवनं वनयुक्तम् । नदं जलाधारविशेषम् । एते  
 भजन्ते ॥ ४१ ॥

इधर—

शान्ति सम्पत्ति को रखने वाले नीतिसम्पन्न ये मुनि इस नदी तट पर  
 जहाँ कपटपूर्वक स्नान करने वाले बगुले बोल रहे हैं, अनुपम ऐश्वर्य को  
 धारण करने वाले भव ( भगवान्, शंकर ) को स्मरण करते हुए आडम्बर-  
 शून्य यज्ञ कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

[ बगुले पानी में गोता इसलिये नहीं लगाते कि उन्हें पवित्र होना है ।  
 उनका उद्देश्य होता है पानी में कपटपूर्ण ढंग से चोच दबाकर मछलियों  
 को पकड़ना ॥ ४१ ॥ ]

विधृतपाप्मानः खल्वमी महानुभावाः ॥

तथाहि—

मुद्गरधिवसतां सतां मुनीनामपविपदां विपदाङ्कपङ्कभाञ्जि ।

तटनिकटवनानि नर्मदायाः कथमिभवन्ति भवन्ति कल्मषाणि ॥४२॥

मुद्गरिति ॥ इभवन्ति गजवन्ति तथा वीनां पङ्क्तिः पदमङ्के यत्र तयोक्तं पङ्कं  
 भजन्ते तानि नर्मदायास्तटसमीपवनानि कर्मभूतानि अधिवसतां सतां विदुषाम् ।  
 अपगता विपद्येभ्यस्तादृशां मुनीनां कथं कल्मषाणि पापानि भवन्ति । भवन्त्ये-  
 वेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

निश्चित ही ये लोग सर्वथा निष्पाप हैं, क्योंकि—

पक्षियों के चरणों से चिह्नित पङ्क्त वाले तथा हाथियों से भरे हुए नर्मदा  
 नदी के समीपवर्ती वनों में निवास करने वाले सज्जनों एवं मुनियों को पाप  
 कैसे छू सकते हैं ॥ ४२ ॥

[ वि + पद + अद्भु—पक्षियों के पैरों से चिह्नित । इभवन्ति—हाथियों से युक्त । नर्मदा नदी के पवित्र जल में समीपवर्ती बन भूमि पङ्क्ति हो ही गयी है । रेंगते हुए पक्षियों के पैरों के चिह्न उस पर पढ़ गये हैं । जगत् इतने बने हैं कि हाथी आदि महान् एव हिंस्र जानवर वहां मजे में रह सकते हैं । भयकर जगत् तथा कठिन परिस्थितियों में रहने के कारण मुनियों का तपस्यात्मक महत्त्व और बढ़ गया है ॥ ४२ ॥ ]

इनश्च—

कचिप्रवरगैरिकासमसमुल्लसत्पल्लवं  
लवङ्गलवलीलनातलचलच्चकोरं कचित् ।  
कचिद्गिरिसरित्तटोतघ्णविस्फुरत्कन्दलं  
दलन्निचुलमञ्जरीमधुनिच्छभृङ्गं कचित् ॥ ४३ ॥

कचिच्चटुलकोकिलाकुलितनूतचूताङ्कुरं  
कुरङ्गमुलसेवितप्रथलसालमूलं कचित् ।  
कचिप्रथरसचररसुरवधूपदैः पायनं  
घनं नयति विक्रियामिह मनो मुनीनामपि ॥ ४४ ॥ युग्यम् ॥

कचिदिति ॥ प्रवरं गैरिकं यत्र । तथा असमप्रतिमम् । सर्वोत्कृष्टमिति पावत् । तथा समुल्लसन् पल्लवा यत्र । पञ्चाद्यथायुक्ति कर्मधारयम् । गैरिकाशब्दो नपुंसकः । 'प्रवरगैरिकोपम' इति वा पाठः ॥ ४३-४४ ॥

कहीं साल रंग के अनुपम ढंग से घमकते हुए पल्लवों वाली लवङ्ग और सखी सजाओं के नीचे चक़ोर घूम रहे हैं । कहीं पर्वतीय नदियों के तट पर होनहार घमकते हुए अद्भुत वाले बेंत की सिल्ली हुई मञ्जरियों के पराग में भँरे अंटके हुए हैं ॥ ४३ ॥

कहीं आम का नवीन कलिकाङ्कुर चंचल बोपलो से भरा हुआ है । कहीं विशाल साल वृक्षों की छाया मृगसमूह से सेवित हो रही है । कहीं उतमकोटि की देवाङ्गनाओं के चरणों से पवित्रित यह अरुण्य मुनियों के चित्त में भी विचार सा देता है ॥ ४४ ॥

तदिदमघतनं दिव्यसमस्य सैन्यस्याध्वधमापन्नघेदापनुत्तिनिमित्त-  
मधियसतु देयः ॥

तदिति ॥ खेदापनुत्तिः खेदापन्नोद् ॥

अतः सैनिकों के मार्गप्रम की निवृत्ति के लिये आप आज के दिन यहाँ निवास करें ।

यत्र—

वायुस्कन्धमवष्टभ्य स्फारितैः पुष्पलोचनैः ।

वियद्विस्तारमेते हि वीक्षन्त इव पादपाः ॥ ४५ ॥

वायुस्कन्धमिति ॥ इदं संवृत्यार्थोऽसार्थश्च । कुतोऽत्रावास । हि यस्मात् तुङ्गा-  
पुष्पितारश्चात्र पादपाः सन्ति ॥ ४५ ॥

जहाँ हवा के कन्धे पर चढ़कर पुष्परूप नेत्रों को खोल कर ये पेड़ मानों  
आकाश का विस्तार देख रहे हैं ॥ ४५ ॥

अपि च येषाम्—

स्कन्धशाखान्तरालेषु पश्य जीमूतपङ्क्तयः ।

लम्बमाना विलोक्यन्ते चलद्वल्गुलिका इव ॥ ४६ ॥

और जिनकी मुख्य शाखाओं के बीच लटकती हुई बादलों की पक्तियाँ  
रेगती हुई वल्गुलिका की तरह दीख रही हैं ॥ ४६ ॥

येषां च—

उच्चैः शाखाग्रसंलग्ना मन्ये नूनं वनौकसाम् ।

कुर्वन्ति पुष्पसंदेहं निशि नक्षत्रपङ्क्तयः ॥ ४७ ॥

उच्चतर शाखाओं से सयुक्त ये नक्षत्र पक्तियाँ रात में निश्चित ही वन-  
वासियों को फूल का संदेह उत्पन्न कर देती हैं ॥ ४७ ॥

[ पेड़ इतने ऊँचे हैं कि रात को ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शाखायें  
तारों को छू रही हैं । शाखाओं से सम्बद्ध प्रतीत होने वाले तारे फूल की तरह  
लग रहे हैं । वनवासी अचानक उन्हें फूल समझ बैठते हैं ॥ ४७ ॥ ]

इतश्च—

पतेषु प्रचण्डपवनाहततरुतलगलितसुगन्धिविधिविकचकुसुम-  
प्रकरमकरन्दभापीय पुन शिखरशाखाभिमुखमुत्पतन्त्यो विभान्ति  
दुरारोहतया कृता. केनापि निःश्रेणय इव श्रेणयो मधुलिहाम् ॥

इधर—

प्रचण्ड वायु के झोंके से पेड़ों के नीचे गिरे हुए तरह-तरह के खिले हुए  
फूलों का मधु पीकर पुन गेडों की ऊँची शाखाओं की ओर उड़ती हुई भ्रमर  
पङ्क्तियाँ मानों किसी के द्वारा निष्पत्तिवद्ध की तरह कर दी गयी हैं, क्योंकि  
पेड़ इतने ऊँचे हैं कि भ्रमर उन पर चढ़ नहीं पाते ॥

। इतश्च—

निश्चलानां सैन्यभयेन तुङ्गतरुशिखरपक्षरपुञ्जितगोलाङ्गूल-

मण्डलानां निर्यन्त्रप्ररोहाङ्कुराकाराः कुर्वन्ति वनदेवतानां क्रीडान्दोलन-  
दोलाञ्जुवाङ्कामधोविलम्बिताङ्गूललतिकाः ॥

सैनिकों के भय से चुपचाप बड़े बड़े पेड़ की ऊँची डालियों की छाया में झकट्टे हुए लंगूर वन्दरों की, निकलते हुए नवान अङ्कुर के आकारवाली नीचे लटकती हुई पूछे वनदेवताओं के खेलने के लिए झुआ की रस्सी की आशका उत्पन्न कर दे रही हैं ।

[ वन्दरों की लम्बी-लम्बी पूँछें रस्सी की तरह लटकी हुई हैं । ऐसा लगता है कि वनदेवता लोगों की झूले की रस्सी लटकी हा । ]

इतथ—

चकासत्युद्गीयमानास्तरुशिरःशिखरशास्त्राग्रस्त्रलनविलम्बप्रहृगण-  
विमानपङ्क्तिपताका इव विहगावलयो निश्चन्द्रम् ॥

इधर उड़ती हुई पक्षिपक्षियों पेड़ की ऊँची डालियों से टकरा कर अंटके हुए तारों के विमानसमूह की पताका की तरह सुशोभित हो रही हैं ।

[ पेड़ इतने ऊँचे हैं कि प्रहृगण ( तारकन ) उनसे चिरके हुए-से प्रतीत होते हैं । पेड़ों की शाखाओं के अपभाग में उड़ती हुई पक्षियों की मगड्डी उन तारक विमानों की पताका की तरह प्रतीत होती है ] ।

इतथ—

विजृम्भमाणमञ्जरीजालेषु सर्वतुर्विकासिसहकारवनेषु वनदेवतामि-  
रुहामदवदहनप्रतीकारायमनागतमेव संगृहीतधारिगर्भाम्मोदपटलमि-  
वालोन्मते कोकिलाकुलकदम्बकम् ॥

इधर—

सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले आम के बगीचों में खिलती हुई मञ्जरीया पर कोयलों के धने समूह को वनदेवताएं जंगल की विशाल अग्नि को बुझाने वाले वन भरे मेघ की तरह देख रही हैं ।

इतथ—

विकसितसितपुष्पपिण्डपाण्डुरशिखराः सुधाधवलितोर्ध्वमूमयो  
विलासप्रसादा इव कुसुमसायकस्य जरावचलमौलयः कञ्चुकिन इव  
वनदेवतानाम्, उन्नादयन्ति मनोऽमन्दमुखुकुन्दपादपाः ॥

इतरेषु ॥ गोलाङ्गूलानां कृष्णमुन्मकंडानां लाङ्गुललतिका पुष्पवह्वय ।  
अतिलोमतावात्रिप्यंघवप्ररोहाङ्कुर आकारो घासाम् ॥

खिलने हुए सफेद पुष्पों के कारण खेत शिखरवाले मुञ्जुकुन्द के "पेड़ चुन्ने



से पुते हुए बिलास भवन की छत की तरह तथा कामदेव के पके बाल वाले कञ्चुकी की तरह वनदेवताओं के मानस को उन्मत्त बना देने है ।

तदेवंविधेषुमुकुलविगलितबहलमकरन्दसीरुपासारसुरभितभूत-  
लेपु मुग्धमृगपरिहृतदावानलज्वालायमानोन्मदशबरसीमन्तिनीचरणप्र-  
हारविकशिताशोककाननेषु नवजलधरनिकुरम्बकान्तितमालतरुशिरः-  
स्थितशब्दानुमेयमाद्यन्मयूरमण्डलेषु मदनालसपुल्लिन्दराजसुन्दरी-  
शिक्ष्यमाणवनरूपोत्कुम्कुटकुम्कुहकुलकुहरितेषु कूजत्कुररपरि-  
वारितसरःपरिसरेषु चलच्चकोरसारसरस्वरमणीयेषु विहरतु देवः सह  
सैन्येन नर्मदोर्मिमन्दानिलान्दोलितलतापल्लवेषु धनेषु ॥

तदेवमिति ॥ मुग्धमृगेश्यादि वनविशेषणम् । लौहिर्यान्मुग्धमृगैर्दावानलभ्रान्त्या  
कुमुमिताशोककाननानि परिहृतानीति भावः ॥

इस तरह के जंगल में आप ससैन्य विहार करें । यहाँ की पृथ्वी खिलती  
हुई कलियों के गाढ़े पराग बिन्दुओं की वर्षा से सुगन्धित हो गई है । अशोकवन  
शबर युवतियों के पद प्रहार से खिल उठे हैं । इनके इस विकास को वनाग्नि  
की ज्वाला समझ कर भोले मृग ( जंगल ) छोड़ दिये हैं । नवीन मेघसदृश कान्ति  
धारण किये हुए तमाल वृक्ष के ऊपर बैठे हुए मतवाले मयूर केवल शब्दमात्र से  
पहचाने जाते हैं । कामातुर, तन्द्रायुक्त शबरपतियों की युवतियों द्वारा सिखाये  
जाते हुए कुक्कुटों और कुक्कुटों की ध्वनि से गुञ्जित हो उठा है । सरोवर  
का तट कूजने हुये कुररो से घिरा हुआ है और भ्रमणमग्न सारसों की ध्वनि  
से रमणीय प्रतीत हो रहा है । नर्मदा की लहरियों के कारण बोजिल बने हुये  
मन्द पवन से लता पल्लव कम्पित हो रहे हैं ।

राजापि ध्रुतशीलेन दर्शितांस्तांग्तान्देशानवलोक्य चिन्तितवान् ॥

राजा भी श्रुतिशील द्वारा दिखाये हुये उन-उन स्थानों को देखकर  
सोचने लगा ।

‘कृतकीडाः क्रीडेर्मदकलकुरङ्गीहृतमृगा.

परिभ्राम्यद्भृङ्गाः पग्भृतकुल्लाकान्ततरवः ।

वनोद्देशाः पौष्पैः सुरभितदिगन्ताः परिमलै-

र्न चेतः कम्प्यन्ते विलसितविकारं धिदधति ॥ ४८ ॥

सूकर खेल चुके हैं, मद के कारण मनोहर मृगियाँ मृगों को अपनी ओर  
आकृष्ट कर ली हैं भँरि भूम रहे हैं, कोयल से वृक्ष भरे हुये हैं, पुष्पों के पराग  
से दिवायें सुरभित हो गयी हैं, ऐसा यह वनप्रदेश किसके चित्त में विकार का  
विलास नहीं उत्पन्न कर देता ॥ ४८ ॥

इतश्च—

यार्चीनां निवया भृशान्ति जलदानुग्रन्थिसो गन्धिरा  
 नृत्यत्केकिङ्कदम्यकानि विकसद्दीप्तन्धि रोधासि च ।  
 धत्ते सैकतमुद्गदन्मद्रुलङ्गौञ्चारलीसारसा-  
 नम्या पद्मपरागापिङ्गपयस संन्यं च सिन्धोर्न किम् ॥४९॥

वार्चीनां नाम अन्धमैरन्धिका वीचिनिचदा जलदानु स्पृशन्ति । रोधासि च स्पृशन्ति । तद्वय मया विन्यो, किं वा न भेद्यम् । चकारो वार्धे ॥ ४९ ॥

सहृष्ट अन्ध वाते बनर्गे न पूर्ण तरङ्गों का समूह नवों का झं रहा है, तटप्रदेश पर मधुरवा नाच रहा है, लतायें पहचिउ हो रही हैं, बाहुकामयी मूनि बोउत हुए मुग्धर युवक श्रेया क समूह तथा सारस पक्षियों का धरत कर रही है, बनर्गे क परा से पीने उल वाली इस नदी की कौन सी चीज प्रहा करन योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥

तदुचिनमिहाय दिवसमावासं कर्तुम्' इति विचिन्त्य अक्रोग संहाभापितसेनासन्निवेशस्तत्कालमेव 'विरचयत तुरङ्गममन्दुरा-सरसदीर्घदृषानलनालनिम्नस्थलांपु, कुस्त कायमानानि सरित्सेव्य-सैकतेषु, उन्नमयत पटकुटी, कूलाननेषु, आलानपत मद्रमचमतङ्ग-जान् मदकण्डूकपोलकापसद्देषु सरलसालसहकांसर्जातुनस्कन्नेषु, दूरमुत्सारयत शैबलशिलाजालकाष्ठकूटकण्टकपटलानि, समीकुरुत विषमभूभागान्' इति सेनापतिप्रमुखमुखरलोककलकलमुत्तालमुत्थियत मसहमानस्तद्विरामापरसं प्रतिपालयन्नेकान्तेऽन्यतमप्रदेशे तस्याः सरित्. सूक्ष्ममुक्ताफलशोदवबलमालुकापुलिनपृष्ठ पथास्थानगोष्ठा वरन्व ॥

तदुचिनत्र ॥ मन्दुरा वाजिराला । कापो मापत्रनि कापमान लोकप्रमिदया रोहिषादिवृ-मयावामवरेष । मद्रमचमतङ्गजानिति । मदेन वीर्यविपाकेन मत्त नवैषयादिप्रयोगान् । जालानि मर्कटिकारूपकृमिकृतगृहाणि । कूट वप्रम् ॥

अत्र आज यहीं पर ठहर जात्रा पच्छ है । यह सोचकर कटापनात्र क सकत से मेना क विग्राम की सूचना दिया । "अत्र तत्काल ही लम्बी-लम्बी दूब और नल घासों वाली हरी जाह पर घोर्गे के रहन की जाह बनाओ । निवास क त्रिु बाहुकामय तट पर कुटीर बनाओ । नील परपरों वाले उर्गों म तम्हू तानो । अधिक खुदगाहट व्यक्त करन वाले बनर्गे क धर्पा को सह सकने में समर्थ सीधे-सीधे इन साल, सन्की, सर्ज और अर्जुन वृष न तनों में मदमत हाथियों को बाध दो । शैवायों, पररों, काछों तथा कटो को दूर

हटाओ । ऊँची नीची जमीनो को बराबर करो ।” इस तरह सेनापति आदि मुख्य लोगों के बोलने पर जनसामान्य से उठी हुई जोरो की कलकल ध्वनि को न सहता हुआ उस कोलाहल बन्द होने के अवसर की प्रतीक्षा में उस नदी का एक एकान्त स्थान पर जहाँ बालुकामयी भूमि मुक्तामणि के चूर्णित सूक्ष्म कणों के कारण धबल हो गयी थी, अपनी निवास गोष्ठी की रचना किया ।

अथ नातिदूरे पुरोऽस्य शीतशैवलचक्रवाले चरतश्चक्रवाककदम्ब-  
कस्य मध्ये कोऽप्युत्क्षिप्य रक्षपुटम्, उद्गमय्य ग्रीवाग्रम्, अतद्ग-  
परवशो दूरादुपसर्पन्नुरागिणीं काञ्चिच्चक्रवाकीं, दर्शितचाटुचातुर्य-  
श्चक्रवाकयुवा दृष्टिपथमवातरत् ॥

इनके समीप ही शीतल शैवालपुञ्ज में चरते हुए चक्रवाक वर्ग के बीच से अपने पखों को फड़फड़ा कर, गर्दन को ऊपर उठाकर, कामवशीभूत कुशल, चाटुकारिता दिखाता हुआ, किसी अनुरागिणी चक्रवाकी की ओर आता हुआ कोई चक्रवाक युवक उन्हें दीख गया ।

अपरे च शत्रवरो राजहंसास्तामेव चक्रवाकीं कामयमानास्तमा-  
पतन्तमन्तरान्तरा निपरय खल्लयाम्बभूवुः ॥

और भी चार राजहंस उसी चक्रवाकी को चाहते थे । अत आते हुए उस चक्रवाक युवक को बीच-बीच में हमला कर रोक दिये ।

तांश्चावलोम्य राजा विहसन्नासन्नवर्तिनं श्रुतशीलमायभापे ॥

‘वयस्य, विलोक्यतामिदमसमञ्जसम् ॥

जुहें देख कर हसते हुए राजा ने श्रुतिशील से कहा—

मित्र, यह विषमता देखा ।

अमी राजहंसाः सतीष्वपि स्वजात्युचितानुचरीषु कथमन्यासत्ता-  
मपीमां चक्रवाककामिनीं कामयन्ते ॥

न खल्वेपामियमनङ्गभूमिः ॥

न खचिति ॥ यथा चक्रवाकी चक्रवाकस्य सजातीया, एव मनुष्यजातेर्नलस्य मानुषी दमयन्त्युचिता । यथा हंसानां सानुचिता, एवं लोकपालानामपि दमयन्तीति ॥

इन्हीं की जाति वाली, इनके पीछे चलने वाली राजहंसियों के रहने पर भी ये राजहंस दूसरे में अनुरक्त इस चक्रवाक युवती को क्यों चाह रहे हैं ?

इन लोगों के काम का पात्र यह नहीं है ।

अथवा—

किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्य-

स्त्रिदिषपतिरद्वह यांतापसां यस्तिपेवे ।

हृदयवृणकुटीरे दीप्यमानेस्मरान्ना-

शुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥ ५० ॥

किन्तु इति ॥ इरवा कुटी कुटीर । 'इस्वे' इत्यधिकारे 'कुटीराम'-इति सूत्रेण रप्रत्यय ॥ ५० ॥

या—यना नीलकमल सदृश नेत्र वाली स्वर्ग की रमणियां नहीं थी कि स्वर्ग के स्वामी इन्द्र तपस्विनी अहल्या के साथ रमण किये ? जब हृदयरूप वृण मन्दिर में काम की आग धक उठती है तो विद्वान् भी उचित अनुचित पर विचार नहीं करता है ॥ ५० ॥

पयंवादिनि राजनि, अकस्मात्कोमलकण्ठकुहरेद्ब्रह्मोलनालंकार-  
सुन्दरोऽमन्दमूर्च्छनावच्छिन्नसरसस्वरस्वरूपः प्रसन्नप्रयुज्यमानतान-  
विशेषामिष्यक्तिस्पृष्टश्रुतिसुभगो गगने गान्धारप्राप्तगामी गीतध्वनि-  
रुदचरत् ॥

राजा इस तरह कह ही रहे थे कि अचानक कोमल कण्ठनली से निकलने के कारण अञ्जहार सदृश, सुन्दर द्रुतगामी मूर्च्छनाओं से युक्त मधुर स्वर विशिष्ट, बहुत अच्छी तरह प्रयुक्त तान के माध्यम से प्रकट, स्पृष्टरूप से कानों को मधुर लगने वाली, गान्धारपद्धति की गीतध्वनि आकाश में गूँज उठी ।

अवाहीच्च चलदलिपटलपीयमानापूवंपरिमलोद्गारिपारिजात-  
मञ्जरीमकरन्दयिन्दुवर्षवाही धायुः ॥

भनभनाने हुए भ्रमर बर्ग द्वारा पीये जाते हुए अपूर्व पराग बरसने वाले परिवात पुष्पों की मञ्जरी के परागकणों को वर्षा होने वाली हवा बही ।

अथ कौतुकौत्तानिताननेन नरपतिनाप्यदृश्यत, शतकुम्भमङ्ग-  
पिशङ्गप्रभामण्डलमध्यवर्तिनः प्रधानपुरुषस्याग्ने शृङ्गीतजात्यजाम्बूनद-  
दीर्घदण्डः कुण्डलालंकारवानुन्मिपन्मन्दारमुकुलमालामण्डितमौलिर-  
चनरन्मन्वराग्निनिमेषः सुवेशः पुरुषः ॥

स्वर्णलण्ड की तरह पीत कान्ति राशि के बीच किसी प्रमुख पुरुष के आगे उत्तम स्वर्ण का दण्ड लिये हुए, कुण्डल पहने, शिखरी हुई मन्दार कलियों की माला से शिर को अलङ्कृत किये, पलङ्कहीन, सुन्दर देह से मण्डित, आकाश से उतरते हुए किसी पुरुष को उरमुक्ता से ऊपर की ओर मुँह उठाकर राजा ने देखा ।

अवतीर्य च सोऽतिविस्मयविस्फारितविलोचनमवनिपालमवादीत्  
निपद्येभ्वर, त्वरितमुत्तिष्ठ । अर्घाय सज्जो मध ॥ किं न पश्यसि—

उतरकर उसने अत्यन्त आश्चर्य के कारण खुली हुई आँखों वाले उस पृथ्वी-पाल से कहा—“निपथपति, शीघ्र उठिये। पूजन के लिये तैलार हो जाइये। क्या देखते नहीं ?

अचतरति घृताचीऋग्धविन्यस्तद्वस्तः

श्रुतिसुखकृतगीते किन्नरे दत्तकर्णः।

किमपि सपग्निर्भ्रं रम्भयारभ्यमाण-

व्यजनविधिरधीशः स्वर्गिणामेव देवः ॥ ५१ ॥

यह देवताओं के स्वामी इन्द्र है। घृताची नामक अम्बरा के कन्धे पर हाथ रखे हैं। कानों को सुख देने वाली गीतियों को गाने वाले किन्नरों की ओर कान लगाये हैं। अपूर्व आलिङ्गनपूर्वक रम्भा (अम्बरा) पंखा झेल रही है ॥५१॥

अपि च—

विरचितपरिवेषाः स्वाभिरङ्गप्रभाभि-

र्भुवनवहनमारोद्धारधुर्यांसपीठा।

उरसि परिविलोलदुर्दीर्घदामान पत्ने

यमवरुणकुबेरा स्वामिनो लोरुपालाः ॥ ५२ ॥

और—ससार का भार धारण करने में समर्थ उत्कृष्ट कन्धों वाले, अपनी अङ्गकान्ति से छटा मण्डल बनाये हुए, वक्षःस्थल पर हिलती हुई लम्बी मालायें पहने हुए, ये लोकपाल स्वामी यम, वरुण और कुबेर हैं।” ॥ ५२ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य ससंभ्रमोत्थानवशवर्गितोत्तरीयाञ्जलस्खल-  
त्कमककंफरणत्कारमुखरितमाधाय मूर्ध्नि संपुटितपाणिपल्लवयुगल-  
माश्चर्यरसरभवशमुच्छ्वास्यमानसर्वाङ्गिपुलक कनिपयपदान्यभिमुखं  
सह परिजनेनोच्चलितवान् ॥

राजा तो यह सुनकर घबड़ाहट के साथ उठने के कारण फड़फड़ाते हुए दुपट्टे के अञ्चल के सस्पर्श से सोने के कण जिनमें मुखरित हो उठे थे ऐसे करपल्लव युगल को जोड़कर शिर से लगाया। आश्चर्य रस के आवेश में लम्बी सासे भर रहा था। पूरे अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था ( इस तरह की मुद्रा में ) अपने नौकरों के साथ कुछ कदम सामने की ओर बढ़ा।

अथ सकलसुरशिरःशेखरायमाणचरणरेणुरनेकनारुक्कामिनीकूच-  
कुम्भकुङ्कुममञ्जरीमुद्राङ्कितविपुलवधः स्थलीदृश्यमानमहानीलमणि-  
मण्डननिभमव्यवृप्रशस्त्रवणः, श्रवणाशेखरारोपितप्रत्ययग्रपारिजातमञ्ज-  
रोगलदूषदलकिञ्जल्ककणानुपान्ते गायतस्तुम्बुरोः साक्षादमृतायमान-

गातरस्मनुषारानि च परिपूर्णरुणोद्गोणान् रुपोलपालिलग्नानुद्वहन् , अनरतशचाशुम्भतसक्रान्ताम्बूललान् उनायमानाच्छाच्छहरिचन्दन निवृद्धान्धुरस्नग्धसधि , अथक इय हारयष्ट्यास्फालितयक्षस्यल , विन्ध्यगिरिरिचि सहस्राक्ष , पन्नगेन्द्र इय रुण्डला पातालमुन्नासमानश्च , \* कलिशालशापायतीर्णसरस्वतागातप्रवाह इय मत्तमातङ्गगामा दिशि दिशि विकीर्णस्तककपिश\*शुरशुमानिजाविकृतपद्मारागारुणप्रभामण्डल मण्डन , सह लाकपालैर्मगजम्पुरदर पूर्वादिग्भागम्बरादजातरत् ॥

अथ मन्त्रेण अपानांतर पूर्वदिग्भागयोर्ग्न पुरादगोऽवानत् । हारयष्टि-मुक्ताभ्या । नम्यत्र हरस्य हारी यष्टि शूलचण्डा । अथको दारविशय । सहस्र-मन्त्राणि यस्य । बहुबाहो इति ममामात पञ्च । विन्ध्यपर्व सहस्रशब्द प्रानुर्यं-वचन । अथा विभातका । कुण्डल कर्णालकार तद्वान् । तथा पाता रक्षिता-अलम्बयर्ष राचमानश्च । पद्मगेन्द्रसु कण्डलादा । तथा पाताले मुखातालमुत्तया-भाममान । मत्तमातङ्ग अथि याद्रेरावज जीवचाण्डान्श्च । पद्मारागस्य मण्येन्द्र-स्य लहित प्रभामण्डल नम्यण्डनमस्य । अशुमानु अविकृत पद्मानां रागोऽ-हस्य प्रभामण्डल दिग्म्बम् । पुनानि मण्डन यस्य ॥

\* कलिकाले पुरागात्री किल ध्रुपत—पुरा मरुवतीशचीन्पादैर्भवविपदे-सवाद् आयमान कुन्दन दधाविना शशा सनी मरुवता कलिकाल चाण्डालकले-वतनार । अतएव कलिकाल चाण्डाला एव मरु गायत्रीति विवृतिनामकटीका ॥

इसके बाद अपनी चरणधूलि में देवताओं के गिर का अर्पण करने वाले महाराज का लोकपाल के साथ पूर्व दिशा की ओर से उठे । उनके विशाल दम स्थल अनेक रमणियों के स्तनकलश पर बत हुए कुड्डम के मञ्जरी चिह्न में चिह्नित या ओर उस पर बुधसुर के शास्त्र के चिह्न विशाल नीलमणि के अर्द्धाकार की तरह सुन्दर लगे रहे थे । कानों पर अर्धत नवीन पारिजात की मञ्जरी खड़ी हुई थी । उसके निकट ही हुए गात्र पराग बिन्दु कपोलभाग पर अंकक हुए थे । ऐसा प्रतीत होता था कि समीप में गत हुए तन्द्रुस्रमो के साक्षात् अर्द्धमहर्षि गात्ररथ के बाँव जब काला में नर तम और उनके ठहरने के लिए स्थान न रहा तो बाहर निकल आये थे । सदा शची ( शत्रुघ्नी ) के धुम्बन से ला हुए ताम्बू चिह्न सदा नम्य हरिचन्दन के रेश में अचनीच कर्मों के जोड़ सुन्दर लग रहे थे । अथकासुर के दम स्थल पर हारयष्टि ( शकर की का त्रिशूल ) लगी हुई थी वैसे इनके दम स्थल पर भी हारयष्टि ( मुक्ता की माना ) लगी हुई थी । विन्ध्या-चल जैसे सहस्रान्न ( बहुत से छटाप = पौधा संयुक्त ) है वैसे वे भी सहस्रान्न ( हजार नेत्रों का ) थे । सपराज जैसे कुण्डली ( फटा बनाम रहत ) हैं और पाताललोक का उद्भासित करत हैं वैसे य भी कुण्डली ( कुण्डल धारण किय

हुए) वे और पातालमुद्भासमान. (अल पाता, पूर्णरक्षक तथा भव्य कान्ति वाले) वे। कलि के समय में शाप के कारण अवतार ली हुई सरस्वती का गीतप्रवाह जैसे मत्तमातङ्गगामी (मतवाले चाण्डाल में सगत रहता) है वैसे वे भी मत्तमातङ्गगामी (मतवाले हाथी पर चढ़कर चलने वाले) वे। विभिन्न दिशाओं में स्वर्ण की तरह पीतकान्ति विखेर रहे थे। विशुद्ध पद्म-रागमणि की अरुण कान्ति से अलंकृत होकर सूर्य सदृश प्रतीत होते थे।

[ इन्द्र-पक्ष में पातालम् शब्द का विच्छेद अल पाता है। (पाता + अलम्)। अर्थात् इन्द्र पर्याप्त रक्षक हैं। उद्भासमान — भव्यकान्तियुक्त हैं। सर्पराज-पक्ष में पाताल शब्द लोक का वाचक है। पाताल लोक अधेरे से भरा रहता है। सर्पराज के मणि से ही वह उद्भासित होता है।

मत्तमातङ्गगामी—एक बार दधीचि और सरस्वती में विवाद हो गया। दधीचि के शाप के फलस्वरूप सरस्वती को कलिपुत्र में चाण्डाल के घर अवतार लेना पड़ा। तभी से कहा जाता है कि कलि में मधुर गीत प्रवाह चाण्डालों में ही पाया जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर गीतप्रवाह को मत्तमातङ्गगामी कहा गया है ॥ ]

अवतीर्य चक्षुषां सहस्रेणोन्मीलनीजवनानुकारिणा निरूप्य पादयोः पुर' पतितमष्टाङ्गाशिलश्रुतलमिमम्, ऐरावतकुम्भकूटास्फालनकर्कशाङ्गुलिना, दुर्दान्तदैत्यदानववधूवैधव्यदानशालामूलस्तम्भेन, शचीकुचकलशसंस्पर्शसंक्रान्तकुङ्कुमपत्रवह्नीकेन, दक्षिणपाणिना, सहेलमुन्नमय्य भूर्धिन पस्पर्श ॥

उन्होंने उतर कर खिलते हुए कमलवन सदृश अपने हजारों नेत्रों से, पैरों के सामने साष्टाङ्ग पृथ्वी पर पड़े हुए उस ( राजा ) को देखकर शीघ्र ही उठाकर उनके शिर पर दाहिना हाथ फेरा। उनके हाथ की अंगुलिया ऐरावत के किण्ट कुम्भस्थल के स्पर्श से कर्कश हो गयी थीं। उनका हाथ बड़ी कठिनाई से दमन किये जाने वाले दानवों की पत्नियों के लिये वैधव्य दान रूप भवन का आधार-स्तम्भ था और उनमें शची के स्नान कलश के स्पर्श से कुङ्कुम की बनी हुई पत्र-रचना मुद्रित हो गयी थी।

कृत्वा च कुशलप्रश्नात्प्राप्यवहारानुच्यैः काञ्चनासनं समुल्लसन्मणिमयूखमञ्जरीजालजटिलमयनिभुजास्वभुजोपनीतमध्यतिष्ठत् ॥

कुशलप्रश्नविषयक व्यावहारिक बातों के बाद वे राजा द्वारा अपने हाथों से लाये हुए खिलती हुई मञ्जरी सदृश मणिकिरणपुञ्जबाल स्वर्ण के उँके सिंहासन पर बैठे।

उपविष्टेषु ययोचितासन्नमासनेषु यमवरुणकुबेरप्रमुखेषु देवेषु क्रमेण कृतोचिताचारः पुरः पृथ्वापृष्ठ एव त्रिनयाधिपय निपथेश्वर-पुरंदरमवादीव ॥

समीप में ही यम, वरुण, कुबेर आदि गान्धर्मुख देवताओं के उपयुक्त आसन पर बैठ जाने पर क्रम से उचित सत्कार कर नम्रतापूर्वक पृथ्वी पर ही उनके सामने बैठकर निपथ-मन्नाट इन्द्र में बोले—

दिष्टया दिवोकसा नाथ जातो युष्मत्समागमात् ।

आकल्पं कीर्तनीयानां श्रेयसामस्मि भाजनम् ॥ ५३ ॥

देवताओं के स्वामी ! भाग्य की उन्मृष्टता के कारण आपके आगमन से सर्वदा के लिये मैं प्रसन्ननीप मङ्गलों का पात्र बन गया हूँ ॥ ५३ ॥

अपि च—

इष्ट्या कतून्युगशतानि तपश्चरित्वा

वाञ्छन्नि संगममुखं मुनयोऽपि येषाम् ।

तेषामनुप्रदहृतां स्वयमेत्य मेऽथ

युष्माकमादिशत किं प्रियमाचरामि ॥ ५४ ॥

और—

यज्ञ कर और सैकड़ों युगों तक तपस्या कर, मुनि लोग जिनके मिलने की आकांक्षा करते हैं वह आप वृषाकर स्वयं ही आ गये हैं। अतः आज्ञा दीजिये, मैं आपका क्या प्रिय कहूँ ॥ ५४ ॥

इति प्रकाशितप्रधयालापे पार्थिवपुंगवे पुरंदरो दरदलितकुन्द-कलिकाकान्तदन्तद्युतियोतिताधरदलमोषद्विहस्य लीलावलितकंधरः कुबेरमुखमरलोकयाञ्चकार ॥

इति प्रकाशितेति ॥ दरदलितेयत्र दरेत्यन्ययमीपदर्शे ॥

इस तरह राजा के नम्रतापूर्ण सन्नाप व्यक्त करने पर इन्द्र बोरी जिन्ही हुई कुमुद की कच्ची सट्टा चमकते हुए दांतों की कान्ति से अफरदल को प्रकाशित करते हुए मुस्करा कर लीलापूर्वक कन्धे को घुमाकर कुबेर का मुख देखने लगे।

सोऽपि 'निपथेश्वर. श्रूयतामस्मदागमनकारणम् ॥

वे भी, 'निपथेश्वर, मुनिये हम लोगों के आगमन का प्रयोजन।

'अस्ति चिद्भाधिपतेर्मीमभूमिपालस्य सुता सुतारनयननिर्जितेन्दी-वरा वरार्थिनी निजकान्तितिरस्कनत्रिदिनारौरूपसंपत्तिः कुन्ददन्ती दमयन्ती नाम ॥



विदर्भ देश के राजा भीम अपनी लड़की—जिसने अपनी सुन्दर कनीनिका वाली आँखों से नीलकमलों को भी जीत लिया है, अपनी कान्ति से स्वर्ग की रमणियों को भी तिरस्कृत कर दिया है, के लिये वर की खोज में है ।

तस्याश्च चम्पकदलावदातदेहाया किल भयंवरमहोत्सवः सांप्रतं प्रस्तुतः' इति नारदादधिगम्य वयमपि विदर्भाविपतिपुरं प्रस्थिताः ॥

चम्पक दल सहस्र स्वच्छ देहवाली उस ( दमयन्ती ) का स्वयंवर महोत्सव होने वाला है । नारद द्वारा यह बात जानकर हम लोगों ने विदर्भ-नरेंद्र की नगरी के लिये प्रस्थान किया है ।

किंतु लघयति पुरुषं स्वमुखेनार्थिभावो यतस्तत्र गत्वापि दमयन्ती किं ब्रूमो वयमिन्द्राद्यो लोकपालास्तथामर्थयामह इत्यसदृशं महिम्नोऽस्मद्विधेषु, स्पृहणीयरूपासि कं नोत्सुक्यसीत्यनुचितमपरिचितेषु चाटुचातुर्यम्, अजरसः खल्वमरा वयमिति ग्राम्य. स्वप्रशंसोपक्रम, प्राप्नुहि भ्रयाणामपि लोकानामाधिपत्यमस्मत्सङ्गमादिति महत्प्रागल्भ्य-प्रलोभनम्, अल्पायुषो मनुष्यास्तदस्माक देवानां मध्ये कश्चिद्वृणी-त्वेति पापीयः परदोषोदाहरणद्वारेणाभ्यर्थनम् ॥

किन्तु अपने ही मुख में अपनी याचना का वर्णन करना व्यक्ति को हत्का बना देता है । वहाँ जाकर भी हमलोग दमयन्ती से क्या कहें । यदि यह कहे कि "हम इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी याचना करते हैं", तो यह हम जैसे लोगों की भयानक प्रतिज्ञा है । "तुम्हारा रूप बड़ा ही आकाङ्क्षणीय है अतः किसे नहीं उत्कण्ठित कर देती हो" इस तरह की चाटुकारितामूक कुशलता किसी अपरिचित व्यक्ति पर दिखाना अनुचित है । "हम देवजन कभी बुद्ध नहीं होते" यह असभ्य ढंग की अपनी प्रशंसा होगी । "हम लोगों के साथ से तीनों लोकों का साम्राज्य प्राप्त करो" यह अत्यन्त घृष्टापूर्ण प्रलोभन होगा । "मनुष्य अल्पायु होते हैं अतः हम देवताओं में से ही किसी को चुनो" इस तरह दूसरों में दोष दिखाकर याचना करना पापपूर्ण कार्य है ।

अथो देशकालकार्यांकिकुशलस्त्वमुच्यते । गच्छामि, भव दूतो देवानामशेषवैदग्ध्यविशेषोक्तिकोविद, किमन्यदिह शिष्यसे, तैस्त-रुपायै. ताभिस्तामि कलाभिः, तैस्ते प्रलोभनप्रकारं., क्रियतां देव-कार्यम्, आर्याणां प्रायः परोपकारकरणाद्यमेव जन्म च जीवितं च, न च भवन्तमस्मदनुभावादन्य. कोऽपि कन्यान्तःपुरे रहस्यपि वर्तमानां विदर्भेश्वरसुतामुपसर्पन्तमुपलक्षिष्यते' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

तुम देश, काल, कार्य तथा बोलने में अत्यन्त निपुण हो । अतः तुम से कहा जाता है, "आगे बलो । देवताओं का दूत बनो । समस्त सहृदयोचित

विद्येय उक्तियों के विद्वान्, तुम्हें क्या सिखाता है। उन उन उपायों से, उन उन कलाओं से, उन उन प्रयोग-प्रकारों से, देवताओं का कार्य करो। आयों को प्रायः परोपकार ही करने के लिये जीवन और जन्म मित्र है। हम लोगों के प्रभाव से कन्यान्तःपुर के एकान्त में भी बैठी हुई विदुर्भाराज की लक्ष्मी के पास जाते हुए तुम्हें कोई भी दूसरा आदमी नहीं देख सकेगा।' यह कहकर रुक गये।

नन्तोऽप्येतदाकर्ण्य तदिदं सङ्कटम् 'इतो व्याघ्र इतस्तटी, इतो द्याग्निरितो दम्यवः, इतो दुष्टदन्द्मूक इतोऽप्यन्वकूपः' इति न्यायात्। इतः कर्णान्तकृष्टशयसनो मर्मप्रहारी प्रहरति मकरध्वज इतश्चायमेते-  
पामलङ्घनीय आदेशः। तत्र जानीमः किमशोत्तरम्। एकराघेऽस्माकं भवता च प्रवृत्तिरिति प्रणयप्रार्थनामहकारिणां विद्वत्विनया प्रति-  
कृतोक्तिः, अनभिज्ञोऽस्मि दूतोक्तीनामिति शाठ्यम्, असमर्थोऽस्मि संदिग्धक्रियाकारिनायामित्याडालङ्घनम्, आडालङ्घनं च सेतुवन्धन-  
मिव स्वल्पयति श्रेय स्रोतः, पण्डनुषददर्शनमिव वर्धयत्यलङ्घनीयम्,  
रजस्वलाभिगमनमिव हरत्यायुः, इत्यनेकविधमवधार्य 'न नाम दुरधि-  
गना केऽपि पदार्थान्तत्रभवतामशेषजगदीश्वराणाम्, न च न जानीय  
ममापि प्रसिद्धमध्यवसायम्, एवं स्थितेऽप्येव करोम्यादेशम्,  
आदिष्टपरामर्शो न श्रेयानादेशकारिणः, किंतु बलीयान्परतो विधि  
प्रमाणम्' इत्यभिधाय मन्त्या भयेन च देवानां दौत्यादेशं समर्थितवान्॥

नल ने भी मुनकर, "यह बड़ा संकट है। 'एक ओर व्याघ्र है तो दूसरी ओर खाई का किनारा। एक ओर जगल की आग है तो दूसरी ओर छुट्टेरे। इधर दुष्ट सर्प है तो उधर अन्धकार (विद्याल गड्ढा)' इस ग्याय के अनुसार एक ओर तो कानो तक बागों को खींच कर हृदय पर चोट पहुँचाने वाला कामदेव प्रहार कर रहा है और दूसरी ओर इन लोगों की अलङ्घनीय आज्ञा है। मालूम नहीं होता यहाँ क्या उत्तर है।

"एक ही वस्तु के लिये हमारी ओर आप लोगों की प्रवृत्ति है" यह स्नेहपूर्ण प्रार्थना को नष्ट कर देने वाली विनयहीन प्रतिकूल उक्ति होती। 'मैं दूज की तरह बीजना नहीं जानता' यह उठता होगी। "सन्दिग्ध कायों को करते मैं मैं अचर्नर्प हूँ" यह आज्ञा का उल्लङ्घन करना होगा। आज्ञा का लङ्घन कन्यान्तःपुर की धारा को सेतुवन्ध की तरह रोक देता है। नपुंसक के मुख-  
दर्शन की तरह अनङ्गल को बटाटा है। रजस्वला से मिलन की तरह आयु को नष्ट करता है। इस तरह बहुत बार विचार कर, मनस्त्रलोकों के स्वामी, आप लोगों के लिये कोई चीज अप्राप्य नहीं है। हमारे प्रतिष्ठ टघम को आप लोग नहीं जानते हैं ऐसी बात नहीं। ऐसा होने पर भी यह आप लोगों

की आज्ञा का पालन करता हूँ। दी हुई आज्ञा के ऊपर विचार करना आज्ञाकारियों के लिये उचित नहीं होता। बड़े की आज्ञा ही प्रमाण होती है” यह कह कर भक्ति तथा भय से देवताओं की आज्ञा का पालन किया।

स्थित्वा च कश्चित्क्षणमुचितालापलीलया कृत्वा च कांश्चिदन्यो-  
न्यप्रस्तुतप्रियव्यवहारान्, आपृच्छथ, यथागतं गतेष्वथ तेषु देवेषु  
निपवेश्वरश्चिरं चिन्तयाञ्चकार ॥

उचित वार्ताक्रम में कुछ देर तक ठहर कर, प्रसङ्गप्राप्त कुछ प्रिय व्यवहारों का सम्पादन कर, अतीत के सम्बन्ध में कुछ पूछ जाँच कर देवताओं के चले जाने पर निषधपति देर तक सोचना रहा।

तदिदम्, अनुच्छ्वासविरामं मरणम्, अमोहं मूर्च्छनम्, अरोग-  
मङ्गव्यथनम्, अशल्यप्रवेशमन्तःशूलम्, अदारिद्र्यो निद्राविघातः ॥

‘यह तो श्वास के रहते ही मरण है। बिना मोह की ही मूर्च्छा है। बिना रोग के ही अङ्गों की पीड़ा है। बिना शल्य-प्रवेश के ही आन्तरिक उप वेदना है। बिना दरिद्रता के आये ही निद्रा का अभाव है।

किमन्यत्—

तस्यामाकर्णितानुरागायां यन्ममाद्य दीर्घदौर्जन्यदोहदिना दैवेना-  
कस्मिकमौत्सुक्यानुरागव्यवसाय वन्ध्यमध्यवसित कर्तुम् ॥

और क्या—

सुन लेने मात्र से उसमें मैं अनुरक्त हो गया हूँ। आज मेरे उत्कण्ठापूर्ण प्रेमविषयक यत्न को मष्ट कर देने के लिये अपनी विशाल दुर्जनता से कष्ट देने वाले भाग्य ने ठान लिया है।

इदानीं किमत्र श्रेयो यस्माद्, अनुपयोगं गमनम्, दलाध्यं  
निघर्तनम्, अपार्यकमासनम्, असाधीयानध्यवसायः ॥

इस समय यहाँ क्या मङ्गलमय वरद होगा जिससे गमन अनुपयोगी हो, लोटना प्रयास हो, वहाँ बैठना व्यर्थ हो और यत्न निरर्थक हो।

इति चिन्ताकुले नले भयान्मूकीभूतेष्व्यासन्नवर्तिषु परिजनेषु प्रण-  
यात्प्राचरणप्रान्तप्राच्छादितवदनभागं किमप्यासन्नमुपसृत्य शनैस्त-  
त्कालयोग्यालापैरनुशीलयञ्शीलहः क्षुतशीलो नलमायभाषे ॥

नल के चिन्ताकुल हो जाने पर सभी समीपवर्ती मौन थे। प्रेम-पीड़ा के कारण उसने अपनी चादर से मुख ढक लिया। ऐसी स्थिति में कुछ समीप आकर

विचारवान् धृतशील तत्काल प्रसङ्गानुसृत वागों से अनुरञ्जन करता हुआ नल से बोला—

देव, जानामि देवस्य देहं दहति दहन इव दास दासणो दौत्य-  
चिन्तामारः । को नाम सामान्योऽपि न्ययमभिलषितेऽर्थे दूतत्वदास-  
भावमङ्गीकुर्यात् । विशेषतोऽनुरागिण्यङ्गनाजने । तथापि किं न जानाति  
देवो, यथा याचको ब्राह्मण इव निर्वेदः कस्य संतोषाय, विपवैद्य इव  
विषादः संदेहकारी शरीरस्य, भीमाभिमन्युनिरुद्धं कुर्यत्प्रमिव मनो  
महान्नं संतापमनुभवति ॥

देवति ॥ निर्वेदः खेदो वेदरहितश्च । विषादोऽजीव रोचनम् । यश्च विषं काल-  
कृतमादयति । भीमो शौचीश्रमिनो मन्युर्दस्य तेन निरुद्धम् । कुर्यत्प्रमिव भीमेन  
मध्यमपाण्डवेनाभिमन्युना चार्जुनसुतेन निरुद्धम् ॥

‘देव, जानता हूँ कि यह कठिन दूत-कार्य की चिन्ता का भार आप के  
शरीर को काष्ठ की तरह जला रहा है । कौन साधारण आदमी भी अपने  
अभिप्रेत तत्त्व के सामने दूत जैसे दास कार्य को स्वीकार करेगा और उसने  
भी प्रेमपूर्ण अङ्गनाओं के विषय में ? फिर भी क्या आप नहीं जानते कि निर्वेद  
( वेदज्ञान विहीन ) भिक्षुक शाह्या की तरह निर्वेद ( खेद ) किसके लिये सन्तोष  
कर होता है ! विषाद ( विषखाने वाले ) विपवैद्य की तरह विषाद ( परवाचाप)  
किसके शरीर को सन्देह में नहीं डाल देता ? भीम और अभिमन्यु से घिरी हुई  
कुह सेना की तरह भीम ( रौद्र ) तथा अभिमन्यु ( उत्कृष्ट श्रेष्ठ ) से घिरा  
हुआ मन अत्यधिक वेदना का अनुभव करता है ।

तदलमनेन चातूलीश्रमेणेव मीलयता चक्षुरद्वेगेन ॥

ददन्निवि ॥ उद्भेगो दुःखम् । चातूलीश्रमस्तु उद्वृष्वं वेगः ॥

ऊपर की ओर उठने वाली हवा के बक्कर की तरह उद्वेग के मारे इन  
आँखों को निमीलित करना व्यर्थ है ।

किं देवेन न श्रतम्, अमृतमयनावसरे सुरामुरकरपरिवर्त्यमान-  
मन्दरमन्याननियोंपवधिरितसमस्त्रोदःकंदरादिवापि दूरोरुञ्जलित-  
दुग्धनुषारासारतारकितनमसः, समुत्पन्नानेककौस्तुभादियस्तुविस्ता-  
रादुद्गन्धदृप्सरोमुखमण्डलैः क्षणमिव विहितविकचनलिनस्रण्ड-  
शोभाद्, अनेकाद्वर्यकुश्रेः शीरसागरादजनि जनितजगद्विस्मया स्मर-  
जननी हस्तस्थिततरुणारविन्दा देवी देदीप्यमानपुण्यलक्ष्मा लक्ष्मीः ॥

क्या आपने नहीं सुना है ? अमृत के लिये समुद्र-मन्थन के अवसर पर  
देव और दानव अपने हाथों से मन्दराक्षर रूप मन्थन दण्ड चला रहे थे ।

उसकी आवाज से सम्पूर्ण क्षितिज गुफाएँ बधिर हो गयी थीं। दूर से ऊपर की ओर छलके हुए दुग्ध कणों की घनघोर वर्षा से गगनमण्डल ताराङ्कित जैसा हो गया था। कौस्तुभमणि आदि पदार्थ बिखरे हुए थे। ऊपर की ओर आती हुई अप्सराओं के मुखमण्डल से खिले हुए कमल समूह सदृश शोभा हो रही थी। इस तरह के अनेक आश्चर्यों वाले धीरे सागर से विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाली काम को उत्पन्न करने वाली, हाथ में खिला हुआ कमल ली हुई, स्पष्ट पवित्र लक्षणों में युक्त देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई।

यस्याः सर्वाङ्गलावण्यमधु विकचलोचनचपकैरापीय पीयूषजुषो मदनमदपरवशाः परम्परमेवेर्ष्यन्तश्चन्द्रकपाणिना समं सद्गरम् ॥

उसके सर्वाङ्ग सौन्दर्य मधु को खिले हुए लोचन-चपक (नेत्र रूप प्याले) से पीकर अमृत से स्नेह रखने वाले इन बेशों ने कामोन्मत्त होकर आपस में ही एक दूसरे से ईर्ष्या करते हुए चक्रपाणि ( विष्णु ) से लड़ाई छेड़ दी।

अथ सा सर्वानप्यन्तरान्तरापततस्तानुहृद्द्वय मन्दरगिरिशिखर-शातकुम्भनिकपोपलायितवाहोर्भगघतश्चिक्षेप क्षेपीयः कण्ठे वैकुण्ठस्य स्वयंधरकुसुममालाम् ॥

अथ सेति ॥ अतिशयेन चिप्रं क्षेपीयः । 'शूलदूर'-इत्यादिना सिद्धम् ॥

इसके बाद उस ( लक्ष्मी ) ने बीच बीच में पड़े हुए उन सभी देवताओं को छोड़कर मन्दराचल पर्वत के स्वर्णमय शिखरों के लिये कसौटी के परपर सदृश ( नीली ) भुजाओं वाले भगवान् ( विष्णु ) के कण्ठ में वैकुण्ठ की स्वयंवर माला घीघ्र ही पहना दी।

पथं साऽपि कदाचिच्चम्पककल्पाकलापगौराङ्गी रामिणी त्वयि वञ्चयिष्यति दधान् । वञ्चितो यतः पूर्वमात्ममुखमण्डलश्रिया शशी, तिरस्कृतो मदनः सौभाग्येन । सट्टप्रनृत्तायाश्च किमयगुण्ठनेन । विधेरिव धामभुवामचिन्त्यानि चरितानि भवन्ति ॥

एव मापीति ॥ सट्टप्रनृत्ताया स्तोत्रमपि नर्तितुमारब्धवत्या किं नीरङ्गवा ॥

इसी तरह चम्पे की कलियों के समूह सदृश गौर अङ्गावाली, तुम में अनुरक्त वह भी सम्भवतः देवताओं को वञ्चित कर देगी। क्योंकि पहले उसने अपने मुखमण्डल की शोभा में चन्द्रमा को वञ्चित किया है। सौन्दर्य में कामदेव को अपहसित किया है। [ अतः देवताओं की अवहेलना करने की उसकी आदत पढ़ गयी है। एकबार चन्द्रदेव तथा कामदेव का तिरस्कार कर चुकी है तो अब इन्द्र आदि लोकपालों के तिरस्कार में उसे कोई कठिनाई नहीं है। ]

वर्जोंक एक बार जो नाव चुकी है उसे धूँघट लगाने से क्या लाभ । ब्रह्मा की तरह त्वियों का चरित भी विचारगम्य नहीं होता ।

किमु न स्मरति देवो दिवि विश्रुतमर्थसारं स्थलोंकादवतीर्य पुरा  
गोर्न गन्धर्वगायनैर्गातगोष्टोस्थिनस्याग्रे युगलमिदमार्ययोर्देवस्य ॥

क्या आपको स्मरण नहीं है ? गोष्ठी में बैठे हुए आपके बागे स्वर्गलोक में भी प्रसिद्ध अर्थतत्त्वों वाले दो आर्षों छन्दों के गीत गन्धर्व गायकों ने गाये थे ।

क्वचिदपि कार्यारम्भेऽकल्पः कल्याणभाजन भवति ।

न तु पुनरधिकविषादान्मन्दाकृतपौरुषः पुरुषः ॥ ५५ ॥

कविदिन ॥ कल्पोऽग्निविन्द्य । तु पुनरिति शब्दो ममूषवाचकत्वात्पुनरर्थमेव  
द्योतयन् । यथापि चेति ममुच्चय ॥ ५५ ॥

असमर्थ आदमी भी कार्य = अनुकूल यत्न करने रहते हैं तो वहीं भी कल्याण का पात्र बन जात है । शक्तिशाली भी अधिक विषादके कारण अपना पुद्गलार्थ यदि मन्द कर देता है तो वह कल्याण का पात्र नहीं बनता ॥ ५५ ॥

अपहस्तितान्तरायानर्यादुररीकृतान्प्रसाधयतः ।

विधिरपि विमेति तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य ॥ ५६ ॥

समस्त विन्नों को दूर कर स्वीकृत कामों को करने हुए अत्यन्त साहसी  
आदमी में ब्रह्मा भी डरते हैं ॥ ५६ ॥

एवमनेकथा प्रस्तुतपुराणपुरुषाण्ययानप्रपञ्चप्रक्रमेणातिक्रान्ते भूमि  
दिवसे मङ्गलोद्धार इव वाञ्छितार्थसिद्धेः, तर्जनहुकार इवान्तराया-  
णाम्, ओंकार इवीत्साहस्युतेः, पुण्याहध्वनिरिव हृदयप्रसादप्रासा-  
दस्य, पुनर्नवीकृतानुसारागस्तम्भोत्तम्भनस्य तस्य नरपतेः शिश्राय  
ध्रुतिं श्रुतशालेन ध्राविनमिमनेवार्य समर्थयश्रिय मध्याह्नशह्वनि ॥

इस तरह अनेक प्रकार में प्रसङ्ग प्राप्त भगवान् विष्णु के चरित कहने  
कहने दिन के एक विनियोग भाग = व्यतीत हो जाने पर ईश्वर पदार्थ की सिद्धि  
के लिये मङ्गल चोत्क उद्धार की तरह, विन्नों को डारने वाले हुकार की  
तरह, उत्साहस्मृति की लङ्कार की तरह हृदय की प्रसन्नता रूप नवन की  
पुण्याहध्वनि की तरह मध्याह्नकाल की शब्ध ध्वनि श्रुतिशील द्वारा मुतापे हुए  
अर्थों को मानो समर्पण करती हुई पुन- नये किये गये अनुसारागस्तम्भ से उठे हुए  
राजा के कानों तक पहुँची ।

राजा तु तमारुण्यं विसर्जितपरिजनस्तत्रैव पुलितमध्ये मध्याह्न-  
समयसमुचितव्यापारमकरोत् ॥

राजा ने तो उसे सुन कर अपने परिजनो को छोड़ कर उसी तट पर मध्याह्न-कालिक सन्ध्या आदि समयोचित कार्यों की किया ।

अनन्तरमतिक्रान्तेषु केषुचिन्मुहूर्तेषु गगनमध्यतलाद्विलम्बमाने मनाडमार्तण्डमण्डले चण्डवात्याहतशुष्कपत्रमिव दण्डप्रान्त-प्रचलितकुलालचक्रमिव तेन पुरंदरादेशभ्रमेण भ्रान्तमात्मनो मनः क्षाप्येकान्तरुमनीयनर्मदाप्रदेशदर्शनविनोदेन स्वस्थीकर्तुमिच्छन्नि-च्छानुकूलकृतिपयासपरिजनपरिवृत श्रुतशीलस्कन्धाघट्टम्भविहारो विहाय दूरमिव शिविरसंनिवेशम्, इतस्ततस्तरुणतमालमण्डपमण्ड-लिनमयूरद्वारिणा चलच्चकोरचक्रवाकचक्रवालवलयितेन स्नानागत-तापसपदपंक्तिरघितदूर्वाङ्कुरेणापसरत्पय पूरतरङ्गितवालुकेन पु-लिनप्रान्तेन प्रार्ची दिशमयासीन् ॥

इसके बाद कुछ समय व्यतीत होने पर आकाश के मध्य भाग से सूर्य-मण्डल के लटक जाने पर प्रचण्ड वायु के झोके से शुष्क पत्र सदृश, दण्डे के अग्रभाग से चलाये हुए कुम्भकार के चक्र सदृश उस इन्द्र की आज्ञा रूप बज्रर में घूमते हुए मन के अनुरञ्जन द्वारा कही नर्मदा के एकान्त और मनोहर स्थान को देखकर अपने आप को स्वस्थ करना चाहता था । कुछ आप्त अनुचरों के बीच श्रुतशील के कन्धे पर हाथ रखकर शिविर से कुछ दूर पर घूम रहा था । इधर उधर प्रौढ़ तमाल छाया के नीचे इकट्ठे हुए मयूरों के कारण मनोहर, चलने हुए चकोरो, बक्रवाको और बक्रवालो से घिरे हुए, स्नानार्थ आये हुए तपस्वियों की पदपंक्ति से टूटी हुई दूर्वा घास वाले, लिंसकते हुए जल के नीचे गई हुई कम्पित बालुका वाले तट से होता हुआ पश्चिम दिशा की ओर गया ।

[यहाँ तट का वर्णन किया गया है । पानी की साधारण लहरों से निकटतम तट की बालुकायें कभी पानी के नीचे जाती है, कभी पानी के लिंसक जाने पर ऊपर आ जाती है । पानी के आने जाने के कारण उनमें कम्पन भी बना रहता है । ]

तत्र च चटुलचञ्चरीककुलाकुलितविविधग्रीरुधां तलेषु विचरतो-ऽस्य रसातलविनिर्गताः पद्मगाङ्गना इव नागमद्वारिण्यस्तमाल-कन्दलीकोमलाङ्गयष्टयः श्रोणीभरालसगमनास्त्रिवलीतरङ्गिततनुमध्य-लतिकाः, काश्चिरकण्टकन्दलावलम्बितमातङ्गमौक्तिकलताः स्फुरन्न-क्षत्रवल्गवाः कृष्णपक्षरात्रय इव कृतकीडाशरोत्परिग्रहाः, काश्चिदु-भयप्रथणावसक्तदन्तिदन्तपत्रप्रमाधवलितमुखण्डला सुरसरिस्स-लिलसंचलितफालिन्दीजलदेयता इव नमोदयामन्त्रिताः, काश्चित्परि-

धानीकृततरक्तपलधास्नडिल्लतालेखामेखलाश्चलदम्बुवाहपङ्क्तय इव  
विन्ध्यस्कन्धानुरग्धिन्य', काश्चिन्मातङ्गमदमण्डलमिलन्मधुकरकरा  
लिता सकलनीलोत्पलवनलङ्गम्य इवान्यजलाशयेभ्यो महानदामयत  
रन्त्य, काश्चिहोहिताशोककुसुमस्तवककृतकर्णावतसोत्तंसास्त्रिपुरपुर  
भ्रय इव हरशरानल गालाकुलितशिरमो धूमध्यामला सलिलमनु  
सान्त्य' काश्चिह्यलितलीलामृगैरनुगम्यमाना' शरारवत्योऽञ्जनशल  
न्यन्त्राधिदेवता इव तीर्थाधिगाहनानुरागिण्य, काश्चिज्वराजर्जरशबर  
कञ्चुकिकरारालभ्यलीलागामिन्य' म्फुरदिन्द्रनीलशिलापुनिका इवेन्द्र  
जालिकै सचार्यमाणा वृष्णाञ्जनिकाकुसुमकान्तय काश्चिच्चिपिट  
मासा कुन्दकान्निदन्तपङ्क्तयो मायूरपिच्छुच्छाप्रनञ्जकुरुरकवरीन  
लापाश्चलद्वलयमूसरकरनलोत्तालनालिकारम्भरमणायरीसिकरासक  
क्रोडानिर्मरा कादम्यमधुपानपूणितदृशो वृष्णियमवतैरपरयदमजन  
नागनास्नदणकिरातकामिन्य ॥

न्व वेत्ति । चट्टालिकुलाङ्गुलिनवीर्यमूलेषु विचरता नृसतर्षट्टिपयमवनीर्णा  
किरातकामिन्यश्चिर चिक्रीडुरिनि मन्वच । क्यमृता । नागमदन राजमदचलन  
हारिण्यस्तनालकृतावात् । पद्मगाङ्गनाम्नु नागाना वासुकिप्रभृतीना मद गर्व  
हरति मुष्णन्ति कृतक्रीडाशर।परिमहा मृतां रात्रय सनपत्रा इव । मुष्णाना  
नपत्रनि स्त्रीणा रात्रय उपमानम् । दन्तपत्रप्रमाणा सुरमरित् स्त्रीणा कालिन्धुप  
मानम् । रक्तपद्मवाना तदिल्लता स्त्राणामम्बुवहृपङ्क्तदपना । होहिताशोककुसु  
माना हरशरामनज्वाला स्त्रीणा च रथामयन धूम उपमा । कृष्णाश्वनिका तापि  
च्युलता ॥

वहा दोपहर क बाद स्नान करन क न्दिये जाया हुइ किरातों की तदा  
रमिया चक्क भ्रमरा से व्याप्त विभिन्न बुझों के नीच धूमते हुए राजा की  
दृष्टि न पड़ो । व पाताल लोक से आयी हुइ नागमदहारिणी ( सर्पों क मद का  
हरण करन वाली ) सर्प पत्नियों की तरह नागमदहारिणी ( हाथी क मद को  
अङ्गराग रूप म लगान से मुशोभित ) थी । उनक अङ्ग तमाल के  
अङ्कुर सदस कोमल थ । कुष्ठ ने अपन नवीन अङ्कुर सदस कण्ठ म लता सदस  
गजमुन्त्र की मानाए लका ली थी । अत ऐसा प्रतीत होडा या मानो घमकत  
हुए नपशों से मुक्त कृष्ण पन की रात्रिया क्रीडा शरीर धारण की हुइ हो ।

[ रात पैसी कानी थी और तारकमण्डल की तरह मुष्णामारा  
पहन थीं । ]

दोनों कानों में ला हुए हाथी दाँड निमित्त कर्णाभूषणों की कान्ति ने  
कुष्ठ के मुखमण्डल धवलित हो गये थे । ऐसा प्रतीत होता था कि देवनरी गग



के जल से घिरी हुई यमुना जल की अधिष्ठात्री देविमा नर्मदा के आमन्त्रण पर आयी हुई थी ।

[ हाथी दाँत से बने कर्णभूषणों की कान्ति गंगा का दृश्य उपस्थित करती है और उनके शरीर की नीलिमा यमुना के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है । ]

कुछ रक्त पल्लव तथा विद्युच्छता सहस्र करधनी पहने हुई थी । अतः विन्ध्याचल की चोटियों पर मंडराती हुई मेघमाला सहस्र लग रही थी । हाथियों के मदपुञ्ज ( से बने हुए अङ्गराग मे लिप्त शरीर ) पर भनभनाने हुए भ्रमरो द्वारा और काली बना दी गयी थी । अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सभी नीलकमल-वनो की लक्ष्मियाँ विभिन्न जलाशयों से आकर उस महानदी नर्मदा में उतर रही थी । कुछ लाल अशोक कुमुमों के गुच्छों को कानों पर रखे हुई थी । वन ऐसा प्रतीत होता था कि शिवजी की वाणान्नि की ज्वाला से श्वश्रु बुद्धि वाली, धूम के कारण नीली, त्रिपुरासुर की रमणियाँ पान में उतर रही थीं ।

[ अशोक के लाल फूलों के गुच्छे कानों में आग की तरह लगते थे और उनकी शरीरगत नीलिमा धूम की नीलिमा की याद दिलाती थी । ]

कुछ के पीछे सुन्दर मृग दौड़ रहे थे । अतः तीर्थों के स्नान में अमुराग रखने वाली अञ्जन पर्वत की शरीरधारिणी अधिष्ठात्री देवियों की तरह लगती थीं ।

[ अत्यन्त कालिमा के कारण अञ्जन पर्वत की अधिष्ठात्री देवी से सन्तुलित की गयी हैं । सभ्य लोग अपने साथ कोई पालित जानवर लेकर चलते थे । जैसे इस शताब्दी के लोग कुत्ता लेकर चलते हैं । देविमा भी मृग लेकर चलती थी । इसीलिये मृगों से अनुगत सब तरुणियों को अञ्जनशिला की अधिष्ठात्री देवियों से सन्तुलित किया गया है । ]

कृष्णाञ्जन पुष्प की श्रान्ति सदृश कान्ति वाली कुछ तो अत्यन्त वृद्ध किरात वञ्चुकियों के हाथ पर अवलम्ब देकर घूम रही थीं । अतः ऐसा प्रतीत होता था कि इन्द्रनीलमणि की पुत्रलक्ष्म्या इन्द्रजाल खेलने वाले लोगों द्वारा चत्रायी जा रही थीं । कुछ की नाक चिपटी थी । दाँत कुन्द पुष्प की तरह सुन्दर थे । बंधे हुए मयूतपला के गुच्छों से वेणियाँ चितकवरी हो गयी थीं । बद्धुणों के कारण अधिक शब्द करने वाले बरतलों द्वारा अधिक जोर में तालियाँ बजाती हुई रमणीय एष सुन्दर रास-श्रीठा में मस्त थीं । कदम्ब का मद्य पीने के कारण उनकी आँखें गुर्रायी हुई सी थीं ।

ततश्च ना सूक्ष्ममुक्ताफलधवलवालुकापुलितपृष्ठे लब्धपदभागाः  
स्वैरं स्यैरमनुचचरणचलनकमालकारितनूपुरथाकृष्टकलहंसकुल-  
मनाकुलकलगीतनरङ्गासन्नरङ्गितकुरङ्गमनङ्गभावभूयिष्ठमनुभूय तौर-  
विहारसुखम् . अनन्तरमरुजलचरमेवेगनदहसलिलमुत्कुलद्रविधि-  
विरसितान्बुजजातिजोधितजीवन्जीवकमुत्कृजिनकुररमारसितसारसमु-  
न्ददासिहंसावर्तसमुरःप्रमाणाच्छोदकमतिरमणीयं हृदयानरन् ॥

उत्तरनेने ॥ अन्बुजजातिभिर्जीविता जीवजीवाः पश्चिमिनेया यत्र। दोषाद्भिभाषा,  
इति रूप । अन्बुजजातिरेव जीविन पेयामिति वा । अतिप्रियावात् । उर प्रमाण वचो-  
द्वयमुदकं यत्र । अगावे हि पदमि न जट्टकीहा ॥

इसके बाद मुक्तामणियों के चूर्ण में धवल बालुका वाले तटप्रदेश पर  
पैर रख कर (इच्छानुसार बिना बहुत पैर उठाये ही चलने के कारन नूपुरों  
की मधुर ध्वनि से मनोहर हंसों को आहूट कर लेती थीं । धीरे गीतलहरी  
से समीपवर्ती मृगा के मानस को तरङ्गित कर दे रही थीं । कामभास से  
सम्पन्न तट-विहार-नुत्न का अनुभव कर रही थीं ।

इसके बाद छाती भर निर्मल पानी वाले अत्यन्त रमणीय सरोवर में  
उतरां । वहा क्रूर जलधर नहीं थे । पानी में बहुत वेगवान् प्रवाह नहीं था ।  
विविध रंग के सिले हुए कमल वर्ग से जीवन्जीव नामक पत्नी प्रसन्नतापूर्वक  
जीवन व्यतीत कर रहे थे । कुरर बोल रहे थे । सारस मधुर ध्वनि कर रहे  
थे । पूर्ण प्रसन्न हंस ही उसके बलछार थे ।

अथतीर्य च ताः काश्चित्पद्मपतिपुरन्ध्रथ इषोद्गोर्णविषमण्डूपाः॥  
काश्चिद्राक्षसप्रमदा इव रक्तोत्पलाकृष्टिष्यसनिन्यः, काश्चिद्गोपाला-  
ङ्गना इव गृहीतपुण्डरीकाक्षाः, काश्चित्कार्तिकेयशरपङ्क्य इव विश्ले-  
पितक्रौञ्चा, काश्चित्कुरुसेना इव धातंराष्ट्रशकुनिमार्गणानुयायमाना .  
काश्चिद्राश्रय इव विषटितचक्रवाकमित्युताः, काश्चिच्चक्रोराङ्गना इव  
चञ्चुकनदीर्घकमलनालैः शशधरकरनिर्मलजलमास्वाद्यन्त्यः, काश्चि-  
त्वारिष्य इव सरसविसाप्राणि प्रसमानाः काश्चिज्जलयन्त्रपुत्रिका  
इव संपुटितमुखपाणिपल्लययुगलाग्रन्ध्रोन्मुक्तसूक्ष्मवारिधाराः,  
काश्चिद्रीरुनार्य इव श्रियवारितरणाः . अनगण्डशैलशिसरास्फालनो-  
ल्ललत्तरङ्गान्तरतरत्तरुपतामरसरससुरभिसलिलभवगाहमानाश्चरं  
चिकीडुः ॥

अथवावेति ॥ विषं जलं, गररच । रक्तोत्पलं रक्षाङ्गं, रक्षेनोत्कृष्टं पलं मासं च ।  
गृहीतपुण्डरीके अवलोकितसिताम्बुजे अचिगी यासाम् । चक्षुषो हि ग्रहणमव-  
लोकनमेव । यथा श्रोत्रगानमाकर्णनम् । अथवा शैयान्नेत्रन्यस्माद्भा । अग्यत्र पुण्ड-

रीकाशः कृष्णः क्रीडः पद्मी निरिच्छ । एतराष्ट्रो दुष्योधनस्य पिता, शकुनिर्मातुलः ।  
 पक्षे एतराष्ट्रो हंस । यद्विधः—'एतराष्ट्रं सुराणि स्यात्पश्चिच्चत्रियभेदयोः' । शकुनिः  
 पद्मी । अश्वत्थूनि चञ्चूनि कृताति चञ्चूकृतानि । अन्यत्र चञ्चवो कृतानि एतानि  
 यानि दीर्घकमलनालानि तैः दशधरकरनिकरवलिर्मल जलम् । अन्यत्र किरण-  
 निकर एव निर्मलजलम् । चकोर्षो हि चन्द्रकरान्पिबन्ति । प्रिय वारिणो जलस्य  
 तरणं यासाम् । अन्यत्र वारितो निपिदो रणो यवामिः । ता वारितरणाः,  
 प्रियाणा वारितरणा प्रियवारितरणा ॥

सूर्यराज की पत्नियाँ जैसे विष ( जहर ) का कुछा करती हैं वैसे उनमे  
 से भी कुछ पानी में स्नान कर विष ( जल ) का कुछा कर रही थीं ।

राक्षसपत्नियाँ जैसे रक्तोत्पलाकृष्टिष्यसनिनी ( रुधिरपूर्ण उत्कृष्ट पल  
 ( मांस ) खींचने की आदत वाली ) होती हैं वैसे ही कुछ रक्तोत्पलाकृष्टिष्यसनिनी  
 ( लाल कमल तोड़ने की अभ्यासी ) थीं । गोपपत्नियाँ जैसे गृहीतपुण्डरीकाक्ष  
 ( कृष्ण को ( आदर से ) ग्रहण करती ) हैं वैसे वे भी गृहीतपुण्डरीकाक्ष  
 ( कमल महश नेत्र धारण कर रही ) थीं । कार्तिकेय के बाण जैसे विश्लेषित  
 क्रीडच ( क्रीडच पर्वत को छिन्न कर देने वाले ) हैं वैसे वे भी विश्लेषितक्रीडच  
 ( पक्षियों को अलग करने वाली ) थीं ।

कीरवो की सेना जैसे धार्तराष्ट्र ( दुष्योधन ) और शकुनि के बताए हुए  
 मार्ग से चलती थी वैसे वे भी धार्तराष्ट्र शकुनि मार्ग ( धार्तराष्ट्र ( हस ) नामक  
 शकुनि ( पद्मी ) के मार्ग ) से दौड़ रही थीं । जैसे रात्रि के कारण चक्रवाक का  
 जोड़ा बिलग हो जाता है वैसे उन्हें भी देग कर बिलग हो जाता था ।

[ अत्यन्त काली होने के कारण इन्हें भी रात ही समझता था । ]

चकोरपत्नियाँ जैसे चन्द्रकिरण रूप निर्मल जल का आस्वादन शौच से  
 करती हैं वैसे वे भी लम्बे कमल दण्ड को शौच बना कर चन्द्रकिरण सहस्र  
 निर्मल जल पी रही थीं । कुछ हृषिनिधियों की तरह कमलतन्तु के अग्रभाग को  
 खा रही थीं । कुछ जलयन्त्रपुत्तलिका की तरह वरपल्लव युगल की वन्द  
 अञ्जलि बनाकर उसमें पानी की थोड़ी-थोड़ी धारा गिरा रही थीं । कामर  
 नारियाँ जैसे प्रियवारित + रणा ( अपने प्रिय को लड़ाई में जाने से रोकती ) हैं  
 वैसे वे भी प्रिय + वारि + तरणा ( वारितरण ) ( जल में स्नाना पसन्द करती )  
 थीं । स्तनशिखा की चोटियों में टकराने के कारण उत्पन्न होने वाली तरङ्गों  
 के बीच पूर्ण विकसित कमलों के मधु से सुगन्धित जल में स्नान करती हुई वे  
 देर तक खेलती रहीं ।

[ रक्तोत्पलाकृष्टिष्यसनिनी — राक्षसपत्नीपक्ष में उत्पल शब्द का अर्थ  
 उत्कृष्ट मांस है । राक्षसपत्नियाँ जैसे रुधिरपूर्ण मांस खींचने में अनुरक्त रहती

हैं वैसे वे शबर सहजियाँ रक्त ( रक्त ) अल्प ( कमल ) तोड़ने की अग्यासी थीं । मनोविनोद के लिये फूलों को तोड़ लेती थीं ।

गृहीतपुण्डरीकाक्ष—गोपवधुएँ पुण्डरीकाक्ष ( कमल सहज नेत्र वाले ) भावान् हृद्य को आदरपूर्वक पकड़ती हैं । वे शबर सुवर्तिया भी पुण्डरीक सहज नेत्र धारण करती हैं । इस पक्ष में गृहीत शब्द धारण जर्प में प्रयुक्त हुआ है ।

विरलेपितश्रीञ्च—कातिकेय जी ने अपने बाण से श्रीञ्च पर्वत का भेदन कर दिया था । शबर सुवर्तियों ने भी श्रीञ्च पक्षियों को अग्न्य कर दिया है ।

श्रीञ्च शब्द यदि यहाँ पक्षिप्रामाण्य का वाचक माना जाय तो भी सगति बैठ जाती है क्योंकि सब पक्षी रात को अपने अपने घोंसले में चले जाते हैं । वे नायिकाएँ इतनी काली हैं कि उन्हें देख कर पक्षियों को रात्रि का भान हो जाता है अतः वे भाग जाते हैं । श्रीञ्च शब्द का ही एक भेद है । जल के समीप रहने वाली यह एक विहग जाति है । विनोदप्रिय शबरराङ्गनामँ सरोवर तट पर इधर उधर दौड़ती घूमती हैं अतः पक्षी वहाँ से भाग गये हैं । इस प्रकार भी विरलेपितश्रीञ्चाः का उपपादन किया जा सकता है ।

धार्तराष्ट्रशकुनिमार्गाः—शुतराष्ट्र का पुत्र होने के कारण दुष्योधन को धार्तराष्ट्र कहा जाता है । कुरसेना दुष्योधन और शकुनि के बन्धुएँ हुए मार्ग के आधार पर चञ्चली थी । तरुणिमा भी धार्तराष्ट्रशकुनि मार्ग से दौड़ रही हैं । धार्तराष्ट्र शब्द इस का भी वाचक है । शकुनि का अर्थ पक्षी है । अर्थात् इस पक्षी के रास्त से दौड़ रही हैं । विनोद के लिये हृषों को पकड़ना चाहती हैं अथवा सरोवर तट का रास्ता हृषों का ही मुख्य मार्ग है । इस समय वे सुवर्तियाँ भी उन्हीं के रास्तों में चल रही हैं ।

चञ्चूहृददीर्गकमन्त्रालैः—चक्षोरपत्निमा चन्द्रकिरण को ही अपनी चर्चों से पीती हैं । चक्षोरपत्नी पक्ष में शशधररश्मिनिर्मलरश्मि में रूपक है । अर्थात् चन्द्रकिरणस्य निर्मल जल को चक्षोरवधुएँ पीती हैं । शबर सुवर्तियाँ कमन्त्राल को चोंच बनाकर चन्द्रकिरण सहज निर्मल जल पीती हैं । इस पक्ष में उपमा है । कमन्त्राल का मध्य भाग फोड़ होता है । उसके एक भाग को पानी में लगा दिया जाय और दूसरे भाग को मुँह में लगा कर ऊपर की ओर हवा खींची जाय तो कमन्त्राल के मध्य से मुँह में पानी आ जायगा, शबरसुवर्तियाँ इसी विनोदकृत्य रंग से जल का आस्वादन कर रही हैं ।

अञ्चन्नुत्रिका—मुँह में पानी भर कर दोनों हाथों में मुँह को बन्द कर के दोनों हाथों के बीच साधारण डिब्ब बनाकर धीरे धीरे पानी गिरा रही हैं । ऐसी स्थिति में वे अञ्चन्नुत्रिका की तरह लगती हैं । पानी का पश्चारा बनाते समय लोग वहाँ सर्प का मुख बना देते हैं वहाँ गैड़े का

मुख बना देते हैं। उन्हीं मुखों से पानी की धारा निकलती है। कहीं-कहीं आदमी का भी आधार बना कर मुख से पानी बहाने का शौक देला जाता है। इसी आकृति को ध्यान में रख कर यह तुलना यहाँ निर्दिष्ट की गयी है।

प्रियवारितरणा—कायर नारियाँ अपने प्रिय को रण में जाने से मना कर देती हैं। इस पक्ष में प्रिय + वारित + रणा यह विच्छेद है। अर्थात् प्रिय को वारित (निवारित) कर दिया है रण में जिसने। सबर युवति पक्ष में—प्रिय (पसन्द) है वारि (जल में) तरण (तैरना) जिनको। अर्थात् कुछ युवतियाँ जल में तैर रही हैं। तैरना उनकी मनपसन्द क्रीडा है। ]

अचनिपतिरपि विस्मयविस्मृतनिमेषोन्मेषनयनस्ताश्चिरमवलोक्य चिन्तयाञ्चकार ॥

राजा भी आश्चर्य के मारे निनिमेष दृष्टि से उन्हें देर तक देख कर सोचने लगा—

जातिर्यत्र न तत्र रूपरचना नेत्रोत्सवारम्भिणी

रूपध्रीरपि यत्र तत्र सुलभ- इलाह्यो न जन्मोदय- ।

इत्येकस्थानमस्तसुन्दरगुणप्रद्वेषमभ्यस्यतो

धातस्तात वृथाश्रमस्य भयतः सृष्टिक्रमो दह्यताम् ॥ ५७ ॥

जहाँ सुन्दर जाति है वहाँ आँखों की आनन्द देने वाली रूप रचना नहीं, और जहाँ सौन्दर्यलक्ष्मी है वहाँ प्रसन्ननीय कुल नहीं उपलब्ध होता। "एक ही जगह सभी अच्छे गुण रहें" इस बात में द्वेष का अभ्यास रखने वाले और व्यर्थ परिश्रम करने वाले, हे तात ब्रह्मन् ! आप का यह सृष्टि-क्रम नष्ट हो जाय ॥ ५७ ॥

तथा हि—

ग्रीवालम्बितपद्मनाललनिकाः कर्णाद्यतंसीकृत

प्रत्यग्नोन्मिपतासितोत्पलदलैः संदिग्धनेत्रद्वयाः ।

कस्यैता जलदेवता इव कुचप्राग्भारभुग्नोर्मय-

स्नानासकपुलिन्द्रराजघनिता- कुर्धन्ति नोत्कं मनः ॥ ५८ ॥

क्योकि—

स्नान में लगी हुई जलदेवता की तरह ये किरातपतिपत्नी की रमणियाँ— जो गले में मृणाळ की माला पहनी हुई हैं, नवीन विकसित नीलकमलों के दलों को, जो दो नेत्रों की छान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं, कानों में पहनी हुई हैं, स्तनों के प्रथम प्रहार से लहरियों को धूणित कर दे रही हैं—किसके मन को उत्कण्ठित नहीं कर देती ॥ ५८ ॥

अपि च—

एनस्याः करिकुम्भसंनिभकुम्भप्राम्भारपृष्ठे लुड्-  
गुञ्जागर्भगजेन्द्रमौक्तिकसरध्रंणीमतोहारिणि ।

दूरादेत्य तरङ्ग एष पतितो वेगाद्विलीनः कथं

को धान्योऽपि विलीयते न सरसः सामन्तिनासंगमे ॥ ५९ ॥

एतन्वा इति ॥ मौक्तिकमरो मुक्तादाम ॥ ५९ ॥

दीच-दीच में गुञ्जे से युक्त गजमुक्ता की मात्रा की लट्टियों के कारण मनोहर इसके करिकुम्भ सदृश स्तनों के प्रथम जंग में दूर से आकर टकराता हुआ यह प्रवाह विलीन हो गया । दूररा भी कीन ऐसा सरस आदमी है जो स्त्री सङ्गम की स्थिति में विलीन नहीं हो जाता ॥ ५९ ॥

इयं तु—

निजप्रियमुखभ्रान्त्या हर्षेणाचुम्ब्यदम्बुजम् ।

दद्याधरा तु शृङ्गेण सीत्कारमकरोन्मृदु ॥ ६० ॥

अपने प्रिय के मुख की भ्रान्ति में प्रसन्नता के कारण इसने कमल का चुम्बन किया । धरार ने इसके अधराष्ठ को काट लिया । अत्र शोभन्त्यापूर्वक सी-सी कर रही है ॥ ६० ॥

अनयापि—

अविरतमिदमम्भ स्वेच्छयोच्छालयन्त्या

विकचकमलकान्तोत्तानहस्तद्वयेन ।

परिकलित इवार्यः कामवाणातिथिम्यः

सलिलमिव वितीर्णं द्याल्यलीलासुखाय ॥ ६१ ॥

खिले हुए कमल सदृश हाथों को उठाकर स्वेच्छमा निरन्तर इस जल को उठालती हुई ऐ-नी रग रही है, मानों कामवान के अति-प्रिया ( कामियो ) को बर्ष दे रही है और शैशवमुत्तम मुक्तों को तिलाञ्जलि दे रही है ॥ ६१ ॥

[ बाल्यकाल की परिस्रान्ति तथा यौवन के प्रारम्भ का संकेत इस पद्य में किया गया है ॥ ६१ ॥ ]

अस्याश्च—

कर्णमूलविषये नृदु गुञ्जनापिपल्लवहनोऽपि हठेन ।

एष पट्पद्मयुवा हरिणाक्ष्याश्चुम्बति प्रिय इवाम्यसरोजम् ॥ ६२ ॥

करपल्लव से मना किये जाने पर भी यह धरार-पुत्र कानों के समीप कुछ मधुर गुञ्जार का ॥ हुआ बत्तात्कार प्रिय की तरह इस हरिसदृश नेत्रों वाली नायिका के मुख कमल का चुम्बन करता है ॥ ६२ ॥

इतोप्येया—

भ्रमकरं मकरं मकरान्दिनीं कमलिनीमलिनीमलीनीकृताम् ।

तरलयन्तमवेक्ष्य महाभयादुदतरत्सरितस्त्वरितैः पदैः ॥६३॥

भ्रमकरमिति ॥ मकरन्दोऽस्यस्यां मकरन्दिनीम् । तथा अलिनीभिर्भुङ्गीभिर्मलिनीकृता कललिनीं तरलयन्त लिपन्त भ्रमकरमावर्तकर मकर यादोविशेष विलोभ्य यदुत्पन्न महाभय तस्मात्वरितैरुत्तालैः पादक्रमैरसौ शबरसुन्दरी सरित उत्तीर्णा ॥

इधर यह भी—

अलिनी ( भ्रमरिया ) द्वारा मलिन बनायी हुई कमलिनी को उद्वेलित करते हुए और ( पानी में ) चक्कर उत्पन्न करते हुए घड़ियाल को देखकर डर के मारे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर नदी से बाहर निकल गयी ॥ ६३ ॥

पताश्च—

मन्दायते दिनमिदं मदनोऽपि सज्ज-

स्तत्किं न गच्छत गृहानिति पद्मिनीभिः ।

मीलत्सरोजगतभृङ्गरुनैरिवोक्ताः

स्नात्वा शनैरनुरसन्ति तटं तरुण्यः ॥ ६४ ॥

“अब दिन समाप्त हो रहा है । कामदेव ने भी अपनी तैयारी कर ली है । तुम लोग घर क्यों नहीं जा रही हो ?” मानो इस तरह, मुकुलित होने हुए कमलो के बीच भ्रमरो की गुनगुनाहट रूप शब्दों के माध्यम से कमलिनियों द्वारा कही गयी तरुणिया स्नान कर तट की ओर आ रही हैं ॥ ६४ ॥

[ भ्रमरो के शब्द के बहाने कमलिनियों ने मानो तरुणियों से घर जाने के लिये कहा, क्योंकि सन्ध्या हो चली थी और काम ने अपनी तैयारी कर ली थी ॥ ६४ ॥ ]

एवमनेकविधविलासासकशबरसुन्दरीदर्शनाद्वादपुलकिते विविध-  
वितर्ककारिणि पङ्कनिमग्नजरत्करेणुकायमाननिःस्पन्ददृशि तत्काल-  
मुत्पन्नया मनाङ्गमन्मथव्यथया धीरतया च स्पृहया च विचिकित्सया  
च जिघृक्षया च जिह्वासया च समकालमाकुलिते हृदये संकीर्णभाव-  
भाजि राजनि, राजीवयनविराजिते तस्मिन्नर्मदाह्लादे खलिलक्रीडा-  
सुखमतिचिरमनुभूय तीरभुवि सेव्यसितसैकतस्थलीमलङ्कुर्घाणासु  
च तासु शबरराजसुन्दरीषु श्रुतशीलश्रिग्निततवान्—

इस तरह विविध विलासा म लयी हुई किरात युवतियों को देवहर आनन्द के मारे उभे रोमाञ्च हो गया । कई तरह के तर्क मन में उठने लगे । कीचड़ में पसी हुई बुड़िया हडिनी की तरह जैसे निर्ममेष हो गयी । तत्काल उत्पन्न

कान की पीडा की स्थिति में एक ही समय धैर्य, आकर्षण, संशय, प्रह्ला और त्याग की विभिन्न भावभरी इच्छा का एक साथ का हृदय भर गया। कमलवन में सुशोभित नर्मदा नदी के उस सरोवर में देर तक जलविहार कर किरात पत्नियों की सुवर्णिया इन्त दादुनानी रमणीय तटभूमि पर आ गयीं। श्रुतशील मोचने लगा—

‘उन्मादि यौवनमिदं शयराङ्गनानां  
वेधोऽप्ययं नश्वययाः कमनीयकान्तिः ।  
रेवानटं चलचक्रोरमयूरहारि  
किं स्यान्न वेदि जयिनी च मनोमवाहा ॥ ६५ ॥

‘शबर सुवर्णियों का यह उन्मादक यौवन है। महाराज भी अत्यन्त सुन्दर कान्तिवाले स्वयुवक हैं। चञ्चल चक्रोर और मयूरों के कारण यह रेवा का तट अत्यन्त मनोहर हो गया है। कामदेव की विद्वयशील भाजा का वातावरण प्रभूत है। ऐसी स्थिति में क्या होगा, यह समझ में नहीं आता ॥ ६५ ॥

[ शृङ्गार = आम्बन शबर सुवर्णियों और नल तथा चक्रोर, मयूर, रेवा-तट आदि उद्दीप्तन सामग्री का उचित प्रयोग यहाँ हुआ है ॥ ६५ ॥ ]

तथाहि—

विकलयति कलाकुशलं, इसति शुचिं, पण्डितं विडम्बयति ।  
अधरयति धीरपुरुषं, क्षणेन ममरध्वजो देवः ॥ ६६ ॥

विकलयतीति ॥ अधरयति विधुरपनीत्यर्थं ॥ ६६ ॥

क्योंकि—

महाराज कामदेव एक क्षण में कलाकुशलों को भी विकल कर देते हैं। पवित्र को भी हास्यास्पद बना देने हैं। विद्वान् को भी धोखे में डाल देने हैं और धीर पुरुष को भी नीचा दिखा देने हैं ॥ ६६ ॥

अपि च—

मध्ये त्रिवन्त्रीत्रिपथे पांशरकुचवत्वरे च चपलदशाम् ।  
छन्दयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्वलितम् ॥ ६७ ॥

त्रिवन्त्री त्रिपथों के मध्य, त्रिवन्त्री ( उदर की पेटो ) रूप त्रिमार्ग तथा स्थूल स्तनवन चौराह पर पाडा भी विचित्र पुरुष को कामपिशाच परमान कर झन्डा है ॥ ६७ ॥

[ यह लोकसामान्य में प्रसिद्ध है कि चौराहे पर पिशाच रहते हैं। यदि कोई जपवित्र आदमी उस रास्ते से जाता है तो उसे पकड़ लेते हैं। त्रिपथों की



त्रिवली को त्रिमार्ग और स्तनो को चोराहा कहा गया है । इन पर विचलित होने पर कामपिशाच बहुत परेशान करता है ॥ ६७ ॥ ]

तदस्तु प्रस्तुतरसानुनयेनैव प्रभूणां मतयो निवर्त्यन्ते निषिद्ध-  
निषेवणात्, न प्रतिकूलतया' इत्यवधारयप्रयनिपतिमत्तादौत् ॥

तदस्तिवति ॥ निषिद्धस्य निषेवण सेवनमाप्रहस्तस्मात्सफाशात् प्रभूणां मतयः  
प्रकृतरसानुमस्यैव व्यावर्त्यन्ते, न प्रतिकूलतया हठात् निषिद्धस्थानभिजातसहमा  
देराप्रह कुर्वाणः प्रभुः सहायसंपदानुजीविना निवार्य । पर तदभिमतं प्राक् पुर  
रुह्य दोष च दर्शयिष्या । सहसा निवार्यमाणो हि पराभवमिव मन्येत ॥

अच्छा, स्वामियो की बुद्धि को निषिद्ध पदार्थ के सेवन की ओर से प्रासंगिक  
वातावरण व अमुकूल चचा द्वारा ही निर्वातित किया जा सकता है, प्रतिकूल  
चर्चा द्वारा नहीं ।" यह विचार करता हुआ राजा से बोला—

‘देव’ रमणीयः खल्वयं प्रदेशः ॥

महाराज, निश्चित ही यह रमणीय स्थान है ।

तथाह्यत्र—

आह्लादयन्ति मृदवो मृदितारविन्द-  
निष्यन्दिमन्दमकरन्दकणान्किरन्तः ।

पते किरातघनितास्तनशैलगण्ड-

संघट्टजर्जररुचः सरित समीरा ॥ ६८ ॥

बोकि यहाँ—

आमर्दनप्राप्त कमलो से चूने वाले मधुविन्दुओं को बिखेरती हुई, किरात-  
पत्नियों के स्तनशैल के तट से टकराने के कारण जर्जर कान्तिवाली नदी की  
कोमल ( मन्द ) हवा आनन्द दे रही है ॥ ६८ ॥

एताश्च—

उपनिदि पुल्लिने पुल्लिन्दवध्वः स्तनपरिणाहविनिर्जितेभकुम्भाः ।

शिथिलितसलिलार्द्रकेशयन्धाः किमपि मनभोचवैभवं बहन्ति ॥ ६९ ॥

और इन—

घबर पत्नियों ने भी स्तनो की विगलता से हाथियों के कुम्भस्थल को जीत  
लिया है, जल से आर्द्र वेणीबन्धन को शिथिल कर दिया है और नदी के समीप-  
वर्ती तट पर कामदेव के अपूर्व ऐश्वर्य को धारण कर रही हैं ॥ ६९ ॥

इतथावलोक्यतु देवः—

सरसिजमकरन्दामोदमत्तालिर्गात-

धयणसुखनिमीलच्चक्षुषः किंचिदेते ।

अपि दिवसमशेषं निश्चलाद्वाः कुरङ्गाः  
पुलिनमुधि विद्वाराद्वारवन्ध्या वसन्ति ॥ ७० ॥

मरिचेति ॥ अग्निमिश्रकमे तनोऽशेषमपि दिवसमिष्ये ॥ ७० ॥

इधर भी देवें श्रीमान्—

निश्चल अंगों वाले में भृगु कमल की मधुमय गन्ध में मस्त अनरो का पान मुनकर मुख के मारे आँखों को कुठ बन्द कर अनग और भोजन दोनों को छोड़कर इस तट पर सारा दिन व्यतीत कर देन हैं ॥ ७० ॥

इतोऽपि—

पद्मान्यातपवारपानि नलिनीपत्राणि पर्यङ्किका  
द्वेन्द्रान्दोलनदोहदोऽपि च चलद्वीर्चाचयैः पूर्यते ।  
आहारो विसपल्लवं पुलिनभूर्लाविद्वारास्पदं  
रेवावारिणि राजहंसशिश्नस्त्रिष्टन्ति धन्याः सुखम् ॥ ७१ ॥

पद्मानी दे । अत्रानपत्रामभृतयो राजधर्मा राजहंसशिश्नयुग्मावनीया ॥ ७१ ॥

और इधर—

जहाँ धूप निवारण करने वाले छाते का कान कमल करते हैं, कमलिनी-पत्र पत्र का कार्य कर रहे हैं; चञ्चल तरङ्गसदृह झूझ झूठने की इच्छा पूर्ण कर दे रहे हैं; भोजन का काम मृत्पापल्लव से चञ्चल है; लीलापूर्वक विहार करने का स्थान यह तटीय प्रदेश है, ऐसे रेवा के जल में भाग्यवान् राजहंसों के बच्चे सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ७१ ॥

इहापि—

चिरधिरचितचाटुश्चन्द्ररेखायमाणः  
प्रथमरसविसाध्रग्रासलीलार्पणेन ।  
इह रमयति हंसां राजहंसो रिरंसुः  
पुलकयति च चञ्चूकोटिकट्टयनेन ॥ ७२ ॥

यहाँ—

रमन की इच्छावाला यह राजहंस बहुत देर से चाटुशरिता करता है, चन्द्र की तरह अपनी जाहति बनाना है । प्रथम रस ( लड्डू प्रेम ) से मृत्पाल के अग्रभाग का समर्पण करता है । चौथे के अग्रभाग से मृत्पाक हो को पुनर्वित और अनुरक्त करता है ॥ ७२ ॥

अपि च—

इह चरति चकोरः कोरकं पङ्कजाना-  
मिह चलदलिचक्राच्चक्रवाको विभेति ।

इह रमयति जीवजीवको जीवितेशा-

मिह वहति विकारं हारि हारितकोऽपि ॥ ७३ ॥

इह चरतीति ॥ प्रतिष्ठमानभृङ्गवृन्दाघकवाको विभेतीति तपरिवनीभ्राम्येति शेष । जीवजीवक पक्षी जीवितेशा रमयतीति सम्बन्ध ॥ ७३ ॥

ओर इधर देखिये—

यहा चकोर कमल की कल्पियो को चर रहा है । चञ्चल धमर वर्ग से चक्रवाट डरता है । जीवजीवक पक्षी अपनी प्राणप्रिया के साथ खेल रहा है । मनोहर हारीतक ( ताता ) भी ( काम ) विकृति का अनुभव कर रहा है ॥ ७३ ॥

एवमसौ निपथेश्वर. श्रुतशीलेन प्रज्ञापूर्वमपरमणीयप्रदेशान्तर-दर्शनव्याजेनान्तरितशयरसुन्दरीदिदृक्षाग्रहो गृहान्प्रति प्रत्यावृत्तः ॥

इस तरह श्रुतशील ने बुझिमानो क साथ दूसरे रमणीय प्रदेश को दिखाने के बहाने किरात कामिनियो को देखने की इच्छा को भोडकर निवाम-स्थान की ओर नल को लौटा लिया ।

चिन्तितवांश्च—

‘कथं नु सा दमयन्ती पुरंदरप्रमुखेषु लोकरपालेष्वर्थिषु मया मनुष्यजन्मना लब्धव्येति । निवारयिष्यन्ति च ता पल्लु दिव्य सम्बन्धार्थिनो बान्धवाः । नत्किमिह शरणम्’ इति विमुक्तदीर्घनिःसहनिःश्वासमसकृच्चिन्तयति राजनि ‘राजन्, रामाजन. पद्म इव वारित सुतरां प्रवर्तते । नाललस्य दीर्घमनुरक्तस्य जायतेऽपरागो नाप्यलीकामिनिवेशोऽस्य हीयते । किंचान्यदन्यपरिग्रहवर्तिनीनामपि स्त्रीणामन्यत्रापि रागाग्रहो भवति । यत. पश्य वरुणप्रतिग्रहेऽपि प्रतीचीयं मयि रागिणी भविष्यति’ इत्येवमिममाश्वासयन्निय भग-यान्भानुरुत्तुह्वतकशिखराणि करे. पतनभयादिवायलम्बमानः शनै-र्गगनतलादयनोर्यं प्रतीचीं दिशमयासीत् ॥

कथं नु सेति ॥ इन्द्राद्रिषरेषु सरमु मयि विषये कीदृगनुराग, बन्धवोऽप्येना दिग्भयसम्बन्धार्थिवात्सेष्वेव प्रोभाहयिष्यन्ति, इति चिन्तयति राजनि कमेणाग्ध-रादवतीर्य भगवान्भानु पश्चिमामगात् । किं कुर्वन् । इमं नृपमित्यमुना प्रकारेणा-श्वासयन्निव । तमेव प्रकारमाह—अहो. राजराजवा चेतसि नैतच्चिन्तनीयम् । यद्विषयसम्बन्धार्थिनो बन्धव पता निवारयिष्यन्तीति तदपारमत्तो विरुद्ध्यतीति । यतो रामाजनो वारितो निपद्योऽनीव प्रवर्तते । तथाऽस्य स्त्रीजनस्य दीर्घमनु-रक्तस्य बहुकाल सानुरागस्य सनोऽलमन्वयं न रागापाय स्यात् । तथाऽयालीकोऽ-प्यभिनिवेशो न हीयते । किं पुनर्यादृशव्यभिनिवेश । यथा पद्मोऽज वारितो

अलात्प्रवर्तते । तथास्य रक्तस्य सतो नालं काण्डं दीर्घमनु सह परागो मकरन्दः स्यात् । तथास्त्री मृद्धो कं अल तथोरभिनिवेश प्रवेशः सोऽप्यस्य न हीयते न हीनः स्यात् । किं चान्यदुच्यते । स्वीकृतानामपि स्त्रीणां पुरुषान्तरे रागानुबन्ध । यस्मात्सप्रयदि परय एवं बहुरस्वीकृतापि पश्चिमाशा ममापि विषये रागिणी न वि-  
प्यतीति । पञ्चशब्द उभयलिङ्ग ॥

इन्द्र आदि प्रमुख लोकपाल जिसके वाचक हैं उस दमयन्ती को मनुष्य योनि में उत्पन्न मैं क्यों न प्राप्त करें ? देवताओं से सम्बन्ध रखने की कामना-  
वाले उसका बान्धव उसे रोकेंगे भी । ऐसी स्थिति में क्या उपाय है ? इस तरह लम्बे-लम्बे असह्य स्वासो को भरता हुआ राजा सोच रहा था तब तक, "राज्ञन्, स्त्रीजन कमल की तरह वारित होने पर और प्रवृत्त होने हैं । पूर्ण अनुरक्त हो जाने पर इनका अनुराग का अपराग ( अभाव ) नहीं किया जा सकता । इनकी मूठी प्रवृत्ति भी निवारित नहीं की जा सकती । अधिक क्या कह ? विवाहित स्त्रियों का भी दूसरे लोगों में हठपूर्वक प्रेम देना जाता है । क्योंकि, देवो, पश्चिम दिशा का विवाह वरुण से हुआ है, फिर भी यह मुझमें अनुरक्त होगी ।" मानो इस तरह का आश्वासन देने हुए भगवान् दूर्य मानो गिरने के भय में ऊँचे पेटों के अग्रभाग से करों ( किरणों ) की टेंक लेकर धीरे धीरे आकाश में उठ कर पश्चिम की ओर चले गये ।

[ स्त्रियों को कमल की तरह बताया गया है । कमल वारि में उत्पन्न होते हैं । यहाँ वारि शब्द से तसिल् प्रत्यय हुआ है । स्त्रीजन में वारित रामाजन. का विशेषण है । इसका अर्थ है—निवारित करने पर भी । वारित एक ऐसा साधारण धर्म है जो स्त्रीजन और कमल दोनों में लगता है । कमल वारितः ( अर्थ में ) उत्पन्न होता है और स्त्रीजन वारित ( निवारित ) होने पर भी प्रवृत्त होता है ।

रक्तस्य अस्त्रं नालम् दीर्घम्—नाल कमल का नालदण्ड बड़ा होता है और उसमें पराग भी होता है । जायनेऽपराग इस योग में कमलपत्र में छुट्टाकार ( S ) नहीं माना जायगा । अतः इसका तात्पर्य होगा "जायने पराग." अर्थात् लम्बे नालदण्ड वाला लाल कमल परागपूर्ण होता है । नाभ्यन्तोरभिनिवेशोऽप्य हीयते—अग्नी ( अमर ) और व ( जल ) इन दोनों में इसका अभिनिवेश ( प्रवेश ) बन्द नहीं होता । अर्थात् अमर और जल से इसका सम्बन्ध रहता ही है ।

स्त्री भी यदि किसी में अनुरक्त हो जाती है तो निवारित करने पर भी नहीं मानती । दीर्घम् अनुरक्तस्य स्त्रीजनस्य न अलम् अपरागः जायते—  
स्त्रीजन जब पूर्णरूप से अनुरक्त हो जाता है तो उसके प्रेम का अभाव पूर्णतः

नहीं होता। अलीकोऽपि अभिनिवेशोऽस्य न हीयते—इसकी झूठी भी प्रवृत्ति घटती नहीं। परिणीत स्त्रीया भी दूसरे में अनुरक्त हो जाती है। इसी बात के समर्थन के लिये कहा गया कि पश्चिम दिग्बधु का परिणय बहण के साथ हुआ है, किन्तु वह कान्तिशील भगवान् सूर्य को देखकर रोगान्वित हो रही है। उसके आकर्षण में जल्दी गिर न जाय, मानो इस भय से पेड़ों का सहारा अपने करो ( किरणों ) से ले रहे हैं। सन्ध्या का समय है। अस्त होते हुए भगवान् सूर्य की किरणों पेड़ों की डालियों पर दीख रही हैं। सन्ध्या राग से पश्चिम की दिशा अद्य हो गयी है। ]

अम्बरान्त-प्रसारितकरे रागिणि रक्तया परियुक्ते तु पश्चिम-  
ककुभाऽम्भोजिनीजीवितेश्वर ॥

अम्बरान्तरिति ॥ नमोन्त प्रसारिताशौ इक्षतान्विते रक्तया पश्चिमया दिशा युक्ते  
सथ्यम्भोजिनीजीवितेश्वरे रक्षौ प्राच्या चिन्तितम् ॥

अम्बर ( आकाश वस्त्र ) में कर ( किरण पाणि ) फैलाकर रागपूर्ण होकर रागिणी पश्चिम दिशा के साथ कमलिनी के प्राणप्रिय ( सूर्य ) के चले जाने पर—

[ भगवान् सूर्य पर नायक और पश्चिम दिशा पर नायिका व्यवहार का आरोप किया गया है। अम्बर शब्द आकाश और वस्त्ररूप अर्थ का उपास्थापन करता है। कर शब्द किरण और पाणि का वाचक है। राग शब्द से लाल रंग और अनुराग दोनों अर्थ समझे जाते हैं। कमलिनी के प्राणप्रिय सूर्य अनुराग प्रदर्शन करते हुए रागिणी पश्चिम दिग्बधु के साथ चले गये। ]

पूर्वाहं विदितोदयाहमसकृत्तन्मां विहायाधुना

यस्यामस्तमुपैति तां कथमयं रागी जघन्यामगात् ।

इत्येवं दल्यितांशुके दिनपतौ याते दिशं पश्चिमा-

मीर्ष्यारोपविपादिनीव तमसा प्राची ककुन्लक्ष्यते ॥ ७४ ॥

तदाह—पूर्वेति ॥ आद्याहम् । तथासकृद्विदितोदयाहं तस्माद्यस्यामस्तमेति जघन्यां च निःकृष्टौ तामिमां रागी आरुह्य सन् रविमां विहाय कथमगात् । पश्चिमां दिश गते सिधिलांतावशुमनि विषये य ईर्ष्यारोपोऽसूयाकोपस्तस्माद्विपादिनी च सती पूर्वा दिक् तमसाद्यकारेण लक्ष्यते । अन्यामपि प्रथमां कृतोदयां विहाय अस्तकारिणीं निःकृष्टौ च यदा रागी बिलास यानि, तदा तस्मिन्निशचिहितवासासि पूर्वां स्त्रीर्ष्याविपादिनी तमसा तमोभावेन प्राप्यते ॥ ७४ ॥

“पहली मैं हूँ। अनेको बार मैंने उसका उदय किया है। फिर भी इस समय मुझे छोड़कर बड़े प्रेम से कैसे उस पापिनी के साथ चला गया जहाँ सदा उमका हास ही होता है।” इस तरह ईर्ष्या, क्रोध और विपाद से भरी हुई पूर्व दिशा

वंसुक ( किरण वज्र ) को विधित कर दिनपति ( सूर्य ) के पश्चिम दिशा के नाय चले जाने पर जन्धकारपुक्त दिशाई पड़ती है ॥ ७४ ॥

[ पूर्वा शब्द पूर्व दिशा और प्रथम, दोनों अर्थ का वाचक है । प्रगाढ़ अनुराग उत्पत्ति और अवतति की प्रतीक्षा नहीं करना, भगवान् सूर्य की सदा उत्पत्ति हुई है पूर्व दिग्बधु के साथ । पश्चिम क सम्पर्क में वे जब भी गये हैं, उनकी अवतति हुई है । उनका उदय पूर्व के साथ होता है और अस्त पश्चिम के साथ । फिर भी रागिणी पश्चिमा के साथ राग होने पर उदयदायिनी पूर्वा को उन्होंने छोड़ ही दिया । पूर्व की ओर जो अंधेरा छा गया है वह है पूर्व दिग्बधु का ईर्ष्या, क्रोध और विषाद से मलिन हुआ मुख ॥ ७४ ॥ ]

विश्लेषाकुलचक्रयाकमिथुनैरुत्पीडमाक्रन्दिते

कारुण्यादिव मालिनास्तु नलिनीप्वस्तं च भिवे गते ।

शोकेनेव दिग्गुणामिरभितः श्यामायमानैर्मुख-

निःश्वासानलधूमवर्तय इवोद्गीर्णास्तमोराजयः ॥ ७५ ॥

विश्लेषेति ॥ उत्कृष्टा पीडा यत्रेभ्युत्पीडमित्याक्रन्दिक्रियाविशेषणम् ॥ ७५ ॥

विद्योग के भय में चक्रवाक का जोड़ा ओर से क्रन्दन करने लगा । मानो कहना के मारे कमलिनियां वन्द हो गयीं । सूर्य अस्त हो गये । मानो शोक के मारे दिग्गुणाओं का मुख काला जैसा हो गया । उनके निःश्वासरूप अन्त की धूमपङ्क्ति सहस्र अन्धकार श्रेणियां फैल गयीं ॥ ७५ ॥

[ चक्रवाक रात को अपनी प्रिया से विपुक्त हो जाता है । विद्योग भय के कारण कहा क्रन्दन कर रहा है । उसकी सहानुभूति में कमलिनियां वन्द हो गयीं हैं । दिग्बधुओं का मुख काला हो गया है । निःश्वास जन्तु की धूम-श्रेणी ने भूमण्डल को आक्रान्त कर लिया है ॥ ७५ ॥ ]

तथाविवे च वेलाप्यनिकरे राज्ञः संध्यावसरभावेद्यितुमस्या-  
सन्नविहारि द्वारि लीलाकिंनरमिथुनमिदमगायत्—

ऐसे ही समय सन्धि के अदसर पर सन्ध्या विधि की सूचना देने के लिये समीप में बिहार करता हुआ मनोहर किन्नर युवा गान करने लगा—

‘रक्तेनाकं विनिहितमधोवक्त्रमेतत्कपालं

तारामुद्राः किमु कलयता कालकापालिकेन ।

संध्यावध्याः किमु विलुडिता कौकुंभी शुक्तिरेवं

शङ्कां कुर्यन्नयति जलधावर्धमग्नार्कविम्बम्’ ॥ ७६ ॥

रक्तेनेति ॥ अघस्ताद्वक्त्रं यस्य तदधोवक्त्रमधोमुखम् । तथा रक्तेन रुधिरैर्नाकं लिप्यम् । तस्यामृत कपालं काष्ठ एव कापालिकस्तेन तारा नक्षत्राण्येव मुद्रा हच-

कारयानि हस्तपादादीनामस्थ्याभरणानि कलयता युञ्जानेन किमुपन्यस्तम् ।  
किंविन्ति वितर्कं । किंवा सध्यैव या वधूस्तस्या सम्बन्धिनी कौङ्कुमी शुक्तिर्विपरीत-  
मधोमुखी लुटिता । एवमिथ सङ्खामुरपादपरसमुद्रेऽर्धमप्राकैविम्ब जयायधुना ॥७५॥

“काल कापालिक बधिर भरे कपाल का मुख नीचा कर तारक मुद्राओं को धारण कर रहा है क्या ? सन्ध्या वधू की कुङ्कुमभरी मुक्ति उलट गयी है क्या ?” समुद्र में आधा डूबा हुआ सूर्य का विम्ब इन विभिन्न शकाओं को उत्पन्न कर रहा है” ॥ ७३ ॥

[ अवषड पथ क लोच कपाल हाथ में लिये रहते हैं । भ्रम आदि के विभिन्न चिह्नो में अपने को चित्रित किये रहते हैं । रक्त, मदिरा आदि पदार्थों को पीते रहते हैं । भगवान् सूर्य का सन्ध्या क समय आधा अश अस्त हो गया है और आधा बाकी है । वह लाल विम्ब ऐसा लगता है जैसे कापालिक ( अवषड ) ने अपने कपाल में रक्त भरकर उसे उड़ेल दिया हो या उलट दिया हो । जाकाश क छिटकने हुए तारे उनके शरीर के विभिन्न चिह्नो की तरह लग रहे हैं । काल ( समय ) को ही यहाँ कापालिक बनाया गया है । समय ही तो व्यापारयिता है जैसे कपाल आदि उड़ेलन का व्यापारयिता कापालिक है । दूसरी उद्भावना है शक्ति के साथ । सूर्य का विम्ब ऐसा लगता है मानो सन्ध्या वधू की कुङ्कुम रखने वाली रंग की सिनुही उलट गयी है ॥ ७६ ॥ ]

अथ क्रमेण गगनमन्दाकिनीतीरतापसैर्विकीर्यमाणेषु संध्यार्धाञ्जलि  
जलविन्दुदुन्दुष्विव किञ्चिदुन्मीलत्सु विरलतरतारास्तयकेषु,  
वासरविरामघादितघाद्येष्वमरसदनेषु, दह्यमानवहलधूपधूममजरी  
ष्विव वियति विहरन्तांषु तनुतिमिरवह्वरीषु, स्वपत्पतत्रिबुलकोला-  
हलेन वासार्थिधान्तागताध्यगस्वागतालापमिव कुर्वाणासु वन-  
राजिषु, अन्यत्र परिभ्रमणपरिहारार्थमिव पद्मिनीना क्रीडपानमा-  
चरत्सु चञ्चलचञ्चरीकेषु, रत्युत्सवोत्साहवैशमहामन्त्राक्षरेष्विव श्रूय-  
माणेषु महासरित्कूलकुलायनिलीनजलकुन्कुहकुहरितेषु, रामायण-  
व्यनिकरेष्विव मन्दोदरीप्रहस्तप्रबोधितोत्सिक्तदशाननेषु संध्याप्रदीपेषु  
जाते जरत्कुम्भकारकुन्कुटकुटुम्बपक्षपिच्छविच्छाये मनाकमोनुविदे  
सध्यारागे राजा विपादविस्मृतसंध्याद्विक परिजनानुवन्धात्संध्या  
वधन्दे ॥

अर्थ ॥ क्रोश कणिका शपथविशेषश्च । अथमन्यत्र न यास्याम हापर्ये पद्मि-  
नीनां समीपे क्रीडपानम् कुर्वांसु भृङ्गविलासिषु । वामादरीप्रकृष्टपाणिञ्जलिततैल  
मिन्वनिमुक्षेषु दीपेषु । रामायणसर्पेषु तु मन्दोदरीनाम्न्या पत्न्या प्रहस्तेन  
सेनान्या प्रकृपेण बोधित उत्सिक्त उद्विक्त सन् दशाननो रावणो वेपु तथाभूतषु ।  
कुम्भकार कुक्कुट पक्षिविशेष ॥

इसके बाद क्रम में आकाशगद्गा के टट्टप्रदेस के तपस्विनी द्वारा दी गयी सूर्योपनिषद् की अञ्जलि के विचारे हुए बिन्दुओं के बुदबुद की तरह कहीं कहीं तारा के गुच्छे निकल रहे थे। दिन की समाप्ति के तबसुर पर देव-भक्तों में बाजे बज रहे थे। अल्प हुए पर्यान्त धूम की धून मञ्जरी की तरह आकाश में पतनी त्रिनित्र ( अन्धकार ) स्थाय फैल रही थी। सोते हुए पञ्जिदा के कन्धके के बहने, निवास की कामना में आद हुए श्रान्त पक्षियों के प्लिद वनप्लुति स्वागतवाणी बोल रही थी। अचरत अमरकननिनियों के दृष्ट कान्धपान ( दपयग्रा ) कर रहे थे कि अब वे किसी दूधरी जगह अना करन नहीं आये। महानदी की तटान पुत्रजों में धुम हुए नर की ध्वनिपां कान्धेश्वर विषयक उत्तेजना के महामन्त्रान्तर की तरह मुताया पड रही थी। रानाया के प्रसन्न में वैम मन्दादरी जोर प्रहस्त नामक म्नापति द्वारा प्रान्तिध धमडी राना पाया जाया है वैम ही मन्दादरी मन्द, वृषा उदर वाली। रमिनों के प्रहस्त। उहृष्ट हाया में मन्वाधित ( जगद ) पन सम्मिक्त ( तैल में भर हुए ) दीप दिवायी पड रहे थे। छोटे अन्धकार में मिश्रित सन्ध्या का रंग वृद्ध कुम्भकार सजक कुक्कुट समुदाय के पक्ष के गुच्छे की तरह हो गया था। राता विषय के कारण दैनिक मध्या कार्य नर गया था। अतः परिवजनों द्वारा निवेदनपूर्वक माद दिरूप जाने पर उसने सन्ध्या-वन्दन किया ॥

[ रावापन में उचित पद का जय धमडी है और दीपपत्र में "तै-पूर्व" अर्थ है। कुक्कुटों ( मुने ) की एक कुम्भकार जाति होती है। पत्र बनाने वाले कुम्भकार में यह तात्पर्य नहीं है। अर्थात् कुम्भकार जाति वाले वृद्ध मुने के पक्ष समुदाय का वैसा रंग होगा है वैसा ही रंग उस समय अन्य अन्धकार मिश्रित सन्ध्या का भी हो गया था ॥ ]

ततश्च क्रमेण—

रजनिमवनिनाय सांध्यकर्मावसाने

हरचरणसरोजद्वन्द्वसेवां विधाय ।

मृदुकलितधिपञ्चीपञ्चनप्रायगीत—

अयमल्लुकाविकोद्वैम्नां स तस्मिन्ननैरीत् ॥ ७७ ॥

इति थीानिविकनमद्विवरचितायां दनन्तीकथायां हरचरण-  
सरोजाङ्गायां पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः ॥



इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म षण्डपाल ।  
 शिशुमतिलतिकाविकासचैत्र चतुरमतिरफुटभित्तिचारचिग्रम् ॥

इति षण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे पञ्चम उच्छ्वास. समाप्तः ॥

---

इसके अनन्तर क्रम से—

सन्ध्या विधि के समाप्त हो जाने पर भगवान् राकर के चरणारविन्द  
 का अर्घन कर उस राजा ने मधुर वीणा के प्रायः पञ्चम स्वर से अनुगत गीत  
 के श्रवणसुख के साथ वही पर उस रात को बताया ॥ ७७ ॥

पञ्चम उच्छ्वास समाप्त ।

---

## षष्ठ उच्छ्वासः

अथ द्वित्रेति ॥ अथ निशानिवाहनात्प्रथमम् । अथर व्योम वस्त्र च । व्योम स्वभावस्वरङ्गस्यापि मालिन्यञ्जालने माक्ते । वस्त्रपथे तिमिरवन्नलिनम् ॥  
 अथ द्वित्रेति ॥ अथ निशानिवाहनात्प्रथमम् । अथर व्योम वस्त्र च । व्योम स्वभावस्वरङ्गस्यापि मालिन्यञ्जालने माक्ते । वस्त्रपथे तिमिरवन्नलिनम् ॥

इसके बाद, द्वितीयादि वर्ग सध्या कार्य के निमित्त सूर्यार्घ्य की अञ्जलि दे रहा था । अथकार से मालिन्य आकाश मानो रज ( अञ्जलियों ) से धोये जान क कारण कुछ निमल ही रहा था । मातृसंज्ञ प्राप्तकालीन कान्ति क विकास द्वारा आकाश पुष्पवाटिका क पुष्पसदृश तार बुने जा रहे थे । निद्रा की बुरा तेन वाले कृष्णसदृश नगाडे की ध्वनि उठ रही थी । एते समय म राता का ज्ञान क िय घाने दूर पर वैनायिक ने ( एक श्लोक ) पढ़ा—

उदयगिरिगताया प्राक्प्रभापाण्डुताया  
 मनुत्तरति निशीथे शृङ्गमस्ताचलम्य ।  
 जयति किमपि तेज साप्रत व्योममध्ये  
 सलिलमिव विमिरं जाह्वयं यामुन च ॥ १ ॥

उदयेति ॥ उदयाद्रिगणप्रथमप्रभापाण्डिमि निशीथे चाथकारेऽस्ताचलशृङ्ग गन्तु प्रवृत्ते किमपि सर्वोत्कृष्ट तेजा अयति । तत्र कविरुपेवते—साप्रतमिन्द्राना नमोमये जाह्वय गाह्, यामुन च कालिन्दीय, सलिल विमिरन गगनमिथ्यं । व्याग्नि जाह्वयेवामीत् । यमुनाया समेद साप्रतमेव । अत एवारिमन्वृत्ते 'यमुना-त्रिविक्रम' इति नाम कविरुपायन । तथा च—'प्राच्याद्विष्णुसदीर्घतोरपूजास्य त्रिविक्रम । निर्मम विमलव्योम्ब यपद् यमुनामपि' । प्रमया पाण्डुता प्रभाकृत वयोन प्रकाश इति यावत् । न तु प्रमाया । पाण्डुतात समाप्त । उदय प्रभाया आरक्षवात् । प्रकाशस्तु इन्द्रनीलादीनामपि पाण्डुरेव । जाह्वयी देवताधिष्ठात्रा यस्थनि द्बताधः । अन्यथा शैपिकरुद् स्यात् ॥ १ ॥

प्रातःकालीन कान्ति स उदयगिरि प्रकाशित हा रहा है । रात्रि अस्ताचल की चोटियों की ओर लिसक रही है । इस समय गंगा और यमुना जल क सन्मिश्रण की तरह कई अचौकिक तज सुगोभित हो रहा है ॥ १ ॥

[ आकाश में गङ्गा का ही रहना प्रसिद्ध है । गंगा और यमुना का सगम पृथ्वी में ही प्रसिद्ध है । अस्ताचल की ओर अंधकार की उपस्थिति बताकर और उदयाचल की ओर प्रकाश की स्थिति बताकर आकाश में भी गंगा और यमुना का सगम कवि ने करा दिया है । महाकवि श्रीत्रिविक्रमभट्ट की इस अनोखी कल्पना पर सद्बुद्धो न इहे यमुना त्रिविक्रम की उपाधि दी हे । प्रकाश गंगा की धवल धारा का प्रतिनिधित्व करता है और अन्धकार यमुना की नील धारा का ॥ १ ॥ ]

अपि च—

यात्यस्ताचलमन्धकारपटले जातेऽरुणस्योदये

तापिच्छच्छदपद्मरागमहसोर्मध्यं ककुम्भागयो ।

अन्तर्विष्णुविरञ्चयोरिव मनाग्लिङ्गोद्भवभ्रान्तिकृत्

तेजः पाण्डुरपिञ्जरं च किमपि श्यामं च तद्वोऽचतात् ॥२॥

यातीति ॥ अस्तगिरिं गच्छति तम समूहे पश्चिमाया कृष्णाया, सपद्मारुणो दयाया पूर्वस्याश्च लोहिताया दिशोर्मध्ये पाण्डु विञ्जर श्याम वा किमपि दुर्लभ मनाक स्तोकोदय तेजोऽर्थात्प्रकाशात्मक वा युष्मान्पातु । प्रकाशारुणोदयतम शेष समुदायरूपत्वात् पाण्डु विञ्जर श्याम चेत्युक्तम् । तद्विर्येन चिन्त यद्भुङ्क्वाच्य युष्मानमाह—अतरित्यादि ॥ द्विभागयोर्विष्णुविरञ्चौ, प्रकाशात्मनश्च तेजसो लिङ्गोद्भव उपमानम् । अथवा सत्त्व पाण्डु तदेव विष्णु, रज विञ्जर तदेव स्रष्टा, तम श्याम तदेव च हर, पद्मत्रयीमयश्च रविरित्यागमिकसमय । तदुक्तम्—‘साध शुभ्र स हरिलोहितपीत रज स जगत्कर्ता । कृष्णं तु तमः स भवो भानुश्चेतरत्रयी मूर्ति’ । अभिधानकारोऽप्याह—‘द्वादशारमा त्रयीतनु’ । एतेन पाण्डु तेज इत्युक्ते साधस्य, विञ्जरमित्युक्ते रजस्य, श्यामित्युक्ते तमस्य प्रतीतिरिति । ततश्च तमो-  
न्विताया अपाच्या अरुणाग्नितायाश्च प्राच्या मध्ये मनागीपल्लवप किमप्यद्भुत वैभव तदुत्कृष्टं पाण्डु विञ्जर श्याम च तेजोऽर्थात् सत्त्वरजस्तमस्यैव त्रयीतनु-  
लक्षण चो युष्मानवसु । अमुमेवार्थं मत्त्वरजस्तमसो सज्ञातरेण विष्णुविरञ्चलिङ्गो-  
द्भवलक्षणेन द्रव्यमाह—अतरित्यादि । ‘पुरा स्वमाह्वार्यार्थं विवदमानयोद्बुद्धि-  
गनारायणयो शिवेन स्वस्य लिङ्गोद्भवस्योर्ष्वार्षोमानविज्ञान महत्त्वहेतु पण उच’  
इत्यागम ॥ २ ॥

अंधकार समूह के अस्ताचल की ओर चले जाने पर और सूर्य के उदित हो जाने पर दोनों दिशाओं के बीच तापिच्छ तथा पद्मरागमपि जैसी कान्ति हो गयी थी । विष्णु और ब्रह्मा के बीच त्रिङ्गोत्पत्ति विषयक भ्रम फैला देने-  
वाले स्वप्न की तरह सकल वैसरिया और श्याम रंग का तत्कालीन तेज आपकी रक्षा करे ॥ २ ॥

[ भगवान् सूर्य को त्रयी तनु कहा गया है । उनमें ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनों के रंग का होना आवश्यक है । उदय के समय सूर्य का समीपतर स्थान

शुभ्र दीवता है। प्रकाश जोर अन्धकार के सम्मिश्रण वाला स्थान पिञ्जर ( कमरिया ) रंग का दीवता है। जहाँ प्रकाश का पूर्ण प्रभाव नहीं पहुँच सका है वहाँ काञ्चिमा बनी ही है। उदयकाल में सूर्य का बालनेत्र इन तीनों ही तत्त्वों का दानन कयता है। सत्वगुणप्रधान होने के कारण विष्णु को शुभ्र, रजोगुणप्रधान होने के कारण ब्रह्मा को पिञ्जर, तमोगुणप्रधान होने के कारण शिव को कृष्ण ( काला ) कहा गया है। इन तीनों ही रंगों के संबन्धित स्व को धारण करने वाले भगवान् सूर्य आपकी रक्षा करें।

एक बार ब्रह्मा और विष्णु ने बीब हाड लग गयी कि दोनों में कौन बड़ा माना जाय। बड़े विवाद के बाद यही निश्चय किया गया कि श्री शिवजी के त्रिङ्ग के जन्तिम छोर का जो पता लगा होगा उसी को बड़ा समझा जायगा। ब्रह्मा ऊपरी भाग का पता लगाने के लिये गये और विष्णु निचले भाग का। विष्णु नीचे जा-जाने पड़े गये किन्तु उस त्रिङ्ग की सीमा का पता न लगा। उन्होंने अपनी जगमर्षता स्वीकार कर ली। ब्रह्मा को भी ऊपरी भाग का पता न लगा किन्तु उन्होंने बताया कि उन्हें ऊपरी सीमा का पता लग गया। उनके दूध मिथ्या भाषण पर शिवजी नाराज हो गये और विष्णु की महत्ता स्वीकार कर ली गयी। इसी बात का यहाँ निर्देश किया गया है। विवाद के समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों उपस्थित हुए थे। उस समय वैसा रंग था या दृश्य था वैसा ही दृश्य सूर्योदय के समय में हुआ है ॥ २ ॥ ]

अनन्तरमुत्तिष्ठतोत्तिष्ठनान्यत गजत्राजिवेगसरीः संयोजयत शकटानि, वेष्टयत पटकुटीः, मुकुलयत मण्डपिकाः, संवृणुत काण्डपटान्, उन्मूलयत कीलकान्, उद्वहत वेगाद्बहनीयमाण्डम्, मारयत करभकन्दमान्, उल्लिखत क्षीणोक्षकान्, उत्तरत सरितम्, अपसरत पुरतः, कुरुत संचारसहं मार्गम्, इत्यनेकविधप्रयाणाकुललोककोलाहले समुच्छन्दति, नदत्सु प्रस्थानवादित्रेषु, समुत्थाय नरपतिरावश्यकशौचायसाने नर्मदान्मोभियेकपूततनुरनुयन्ध्य सांध्यविधिम्, अधि-कृत्य भगवन्तमुदयगिरिशिरुशिखरमाजं मास्करम्, इमं श्लोकमपठत् ॥

अनन्तरमिति ॥ वेगसरी वेसरी । काण्डपटो गुणलयनी ॥

इनके बाद, "उठो, उठो । हाथी, घोड़े और ऊँटनिर्दों को लाओ । गाड़ियों को जोड़ो । पटकुटीरों को लोडो । तन्वुओं को समेटो । तन्वुओं के किनारे वाले पट्टों को बटोरें । खूँटियों को उखाड़ो । ले चरने लायक बर्तनों को जन्दी ले चरें । ऊँटों और हाथियों के बच्चों को लाओ । क्षीण ( दूटे हुए ) बर्तनों को फेंको । नदी में स्नानो । सामने की ओर बढ़ो । घस्ने को चरने लायक

बनाओ ।" इस तरह प्रस्थान कार्य म वयप्र लोगो को अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उठ रही थीं । प्रस्थानसूचक बाजे बज रहे थे । राजा ने उठकर शौच आदि कार्य के बाद नर्मदा जल के स्नान स पवित्र होकर, सन्ध्या आदि कार्य कर, उदयाचल क शृङ्ग पर ठहरे हुए भगवान् सूर्य को प्रणाम कर यह श्लोक पढा :—

‘जयत्यम्भोजिनीबन्धुर्बन्धूकारुणरश्मिरुः ।

धैद्रुमो वासरारम्भकुम्भः पल्लववानिव’ ॥ ३ ॥

बन्धूक ( अड्डल ) पुष्पसदृश अरुण कान्ति वाले, कमलजियो के प्रिय भगवान् सूर्य दिन के प्रारम्भ म विद्रुम मणि निर्मित, किसलय पल्लव स मण्डन पडे की तरह सुशोभित हो रहे हैं ॥ ३ ॥

[ उदय के समय जो पूर्ण पिण्ड का लाल गोलक दिखाई पडता है उससे कुम्भ की ओर उस गोलक से विद्युरित होने वाली किरणो की किसलय से तुलना की गयी है ॥ ३ ॥ ]

अभ्यर्च्य च पञ्चोपचारैः सुरासुरगुरुं गौरीपतिं तरिप्रयस्य भग-  
वतो नारायणस्यापि धार्डिल्लितार्थसिद्धये स्तुतिमकरोत् ॥

राजा ने देवों ओर दानवों के पूज्य, पार्वतीपति, भगवान् शंकर का पञ्चो-  
पचार पूजन कर आकाङ्क्षित अर्थ की सिद्धि के लिये, उनके प्रिय भगवान् नारायण  
को भी स्तुति की ।

‘जयत्युद्धिनिर्गतस्मरविलोललक्ष्मीलस-

द्विलासरसमन्थरस्फुटकटाक्षलक्षीकृत ।

अमन्दरयमन्दरधमणघृष्टहेमाङ्गद-

सुरारिवधनाटकप्रथमसूत्रधारो हरिः ॥ ४ ॥

जयत्युदेति ॥ सुरारिवधनाटकस्य ऋधमे प्रस्तावनायां सूत्रधार ॥ ४ ॥

समुद्र से निकली हुई काम चञ्चल लक्ष्मी के रमणीय विलास रस के मन्द  
एव विकसित कटाक्षो द्वारा लक्षित, मन्दराचल को बढी तेजी से धुमाने के  
कारण पिसे हुए स्वर्ण कण वाले, देवद्रोहियों के बधरूप नाटक क प्रथम  
सूत्रधार थी हरि का मङ्गल हो ॥ ४ ॥

जयत्यमलकौस्तुभयुतिविराजितोरःस्थल

सद्वेलद्वतदानयो नयतमालनीलच्युतिः ।

विनम्रसुरमस्तकच्युतविकासिपुष्पावली-

धिकीर्णमधुसीकरस्नापितपादपीठो हरिः ॥ ५ ॥

लोलुभमणि की निर्मल कान्ति से जिनका वज्र न्यून सुयोधिन है, बिना किसी विशेष यत्न के जिन्होंने दानवों को समाप्त कर दिया है, नवीन तमाल की तरह जिनके शरीर की कान्ति नीची है, नम्र देवताओं के मन्त्रों से गिरी हुई पुनपन्ति के बिखरे हुए मधुक्तों से जिनका पादपीठ (सडाऊँ) चिन्क हो गया है ऐसे भगवान् सर्वोद्भूत हैं ॥ १ ॥

जयत्युदरनि.सरद्वरसरोजपीठीपट-

च्चतुर्मुखमुखावलीयिहितरम्यसामस्तुतिः ।

अलम्बमहिमायधिर्मधुवधूविलासान्तक-

ज्जगतिरतयसम्भवो भवमयापहारी हरि ॥ ६ ॥

जयत्यसुरसुन्दरीनयनवारिसंवर्धित-

प्रतापवददलसत्तक्षणकेकिकण्ठच्छविः ।

दलत्कनककेतकीकुसुमपत्रपीताम्बरः

सुराधिपनमस्कृतः सकललोकनायो हरिः ॥ ७ ॥

जिनके उदर से निकले हुए कमल के आसन पर बैठकर ग्रहा चारों मुखों ने रनोप सामवेद की स्तुति पढ़ने रहते हैं, जिनकी महिमा की सीमा नहीं पानी गयी है, जिन्होंने मधु दैत्य की पत्नी के विनाश का अन्त कर दिया है, जिन्होंने हुए स्वर्गकेतकी के फूल की तरह पीत जिनके वस्त्र हैं, देवेन्द्र जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे समस्त लोकों के स्वामी भगवान् सर्वोद्भूत हैं ॥६-७॥

जयत्यखिललोकजिह्वरककालकेतूद्रमो

मदान्धदशरुन्वराधिरददुष्टपञ्चाननः ।

हिरण्यकशिपुप्रियानुखसरोजचन्द्रोदयः

सुरेन्द्ररिपुसिंहिकासुतशिरकुठारो हरिः ॥ ८ ॥

३२ ॥ ८ ॥ हरिको मौमसुर ॥ ८ ॥

समस्त लोकों पर विजय करने वाले, नरकानुर के विनाश के लिये पुच्छल तारे के उदय की प्रतिमूर्ति, हिरण्यकशिपु की रमणियों के मुखकमल के लिये चन्द्रोदय, मदान्ध रावणान्ध दृश्यों के लिये भयङ्कर सिंह; देवेन्द्रजन्तु सिंहिका-पुत्र राट्ट के शिर के लिये कुठार भगवान् हरि सर्वोद्भूत हैं ॥ ८ ॥

[ बुधजन्तु का उदय किसी अलौकिक आपत्ति का सूचक होता है। नरकानुर के लिये भगवान् धेनकेतु के उदय की ही तरह ये। क्योंकि उन्होंने उनका विनाश किया था। हिरण्यकशिपु की पत्नियों का मुख यदि कमल है तो भगवान् उनके लिये चन्द्रोदय हैं। चन्द्र के उदित होने पर कमल मुकुटित हो जाते हैं। भगवान् ने हिरण्यकशिपु का वध कर उसकी कान्ताओं को मृत

बना दिया । विहिका के लहने का नाम राहु था । वह इन्द्र का विद्रोही था । भगवान् उसका शिर काट लिये थे ॥ ८ ॥ ]

जयत्यमरसारथिर्मदनतप्तलक्ष्मीलसत्-

पयोधरयुगन्धलीसरसचन्दनम्यासरुः ।

अचिन्त्यगुणविस्तरः सकलकेशिकंसाह्वना-

कपोलफलकोलुसत्तिलकमङ्गहारी हरिः ॥ ९ ॥

जयतीति ॥ अमराणां सारथिर्मेता अग्रणीरिति यावत् ॥ ९ ॥

देवताओं के अग्रणी, कामसन्तप्त लक्ष्मी के स्तनयुगलरूप भूमि पर आर्द्र चन्दन के स्थासक, अवर्ष्य गुण विस्तार वाले, केशी और कस की समस्त स्त्रियों के कपोलस्यन्द पर सुशोभित होने वाली तिलक रचना को समाप्त करने वाले भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ९ ॥

[ किसी आर्द्र पदार्थ को हाथ में लेप कर किसी भित्ति या स्थान पर धापा मारते हैं । उस पर हाथ की आकृति उभड़ जाती है । उसी उभड़ी हुई हाथ की आकृति को स्थासक कहते हैं । सरस चन्दन का स्थासक उष्ण स्थान को शीतल और गुणन्धित बनाने के लिये लगाया जाता है । काम-सन्तप्त लक्ष्मी के लिये भगवान् स्थासक हैं । शैत्योत्पादक हैं । सीभाम्बवती स्त्रियां तिलक आदि से अपने का प्रसाधित करती हैं । विधवाएं अपना प्रसाधन नहीं करती । भगवान् ने केशी और कस का बंध कर उनकी पत्नियों के शृङ्गार का प्रसङ्ग ही समाप्त कर दिया है ॥ ९ ॥ ]

जयत्यसमसाहसः सकललोकशोकान्तरुत्

सहस्रकरभासुररुक्मुरितचाचक्रायुधः ।

विहङ्गपतिवाहनः कलुषकन्दनिर्मूलन-

समस्तभुवनावलीभवनशिल्पधारी हरिः ॥ १० ॥

समस्त भुवनमण्डलरूप भवन के शिल्पी भगवान् जिनका साहस अनुपम है, जो समस्त जनों के दुःख का निवारण करने के, सूर्य की तरह चमकने वाला, चञ्चल एवं मनोहर अस्त्र जिनका चक्र है, पक्षिगज गहड़ जिनके वाहन हैं, पाप के अन्ननिहित मूलों को जो समाप्त कर डालने हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १० ॥

जयत्यमलभावनायनतन्द्रोककरपद्मः

पुरन्दरपुरःसरविदशतृन्दञ्चूडामणिः ।

अरानिकुलकन्दलीयनविनाशदाधानसः

समस्तमुनिमानसप्रपराजहंसो हरिः ॥ ११ ॥

निर्मल भावना से विनम्र बने लोगों के लिये कल्पद्रुम, इन्द्रप्रभुव समस्त देववर्म में शिरोमणि, शत्रुवर्गरूप होनहार वन के लिये बनामि और समस्त मुनिजनों के मानव के मुख्य राजहंस भावान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ११ ॥

[ मुनिजनों का हृदय मानसरोवर है । भगवान् उसके मुख्य राजहंस हैं । राजहंस के लिये जैसे मानसरोवर बड़ा प्रिय है वैसे भगवान् के लिये मुनिजनों का हृदय बड़ा प्रिय है ॥ ११ ॥ ]

एवमभिवन्द्य देवदेवम्, समाकृत्य विजयिवारणेन्द्रस्फन्धम्, अग्रतः प्रधावितानेककरितुरगपरिजनः, पुरः पुरोधसा नियर्चिते महानर्दायागे, युगमहद्वारविचक्षुत्तान्तसाक्षिणाम्, अनवरततपस्यद्बलविप्रतिष्ठित-  
शिवलिङ्गरुद्ररोचमम्, अनेकसुरमुन्द्रासेवितर्तारसंकेतलतामण्डपाम्, अनवरतमउज्ज्वलगतमदामोदमृषभिनतरङ्गाम्, अपरगङ्गाम्, अपरसागर-  
राजमहिषाम्, अपरमार्कण्डेयतपसिद्विसखीम्, समुत्तार्य मगयतां मेकलकन्याम्, अन्कुलपल्लविनाङ्गोहसल्लकीसरलसालसर्जर्जुननिम्ब-  
कदम्बजम्बूनम्बोदुम्बरखदिरकरञ्जाञ्जनाशोकमोभाञ्जनकनायेकस्तहभिर-  
गौणम्, अभिमतं मतङ्गजानाम्, अनुभूतसारं सारङ्गैः, शिशिरतरं तरङ्गानिलैः न्यर्गवनसमं समञ्जरीकैर्लताजालकैवल्लह्वयदक्षिणं नर्मदा-  
तांगपुण्यारण्यम्, अग्रतो, गगनवीथिमिव सिंहराशिराजिनामुत्पतङ्गा-  
मुन्थितवृश्चिकामाधिभूतनाद्रोहिणामूलां च, छन्दोर्जातमिव शार्दूल-  
चिकोडितमनोहरां हाग्निहरिणामन्दाक्रान्तामनवरतवसन्तनिलकोट्या-  
सितामतिविचित्रघण्टकमालां च, स्नीतामिव बहुकोटराद्यपवृतामुत्पल-  
कुशलशां च, लङ्कामिव संचरद्द्विगुणपञ्चाननविभीषणां चारपुष्प-  
कामफण्डाडम्बरिनमेयनादां च, गीतविद्यामिव तताग्रनन्दघनसुपिर-  
वंशस्वनमनोहरामनेकनाल्लभेदां निरादकपभनव्यमप्राप्तयुक्तां च,  
चित्रविद्यामिवानेककण्टकपत्रलतास्थानकविपमानृग्वागननापला च,  
कलियुगशिवशासनन्यतिमिव महावतिकान्तःपानिभिः कालनुसै-  
वानरैः संकुलामनेकधाभिन्नन्नोतसं च, कापालिकरुषट्वाङ्गयष्टिमिव  
समुद्रोपरुण्डलानाम्, मायामिव शम्बराधिष्ठिताम्, महभूमिमिव  
करौरैः केसरिसस्रैरसंचाराम्, अतिचाटचन्दनैः कुनगोरोचना-  
विशेकैरक्षतदुर्घावाह्मिरारब्धमहलाचारैरिव तृणस्थलैरलंकृताम्,  
विविधव्याधां विन्ध्याटवीमवगाहमानो मेघवृषमिथुनयुजः सधनुषः  
सकुम्भकन्यानेकत्र राशीभूतान् गिरिग्रामपारलोकानाल्लोकयन्, 'इयं  
गगनवीथीव चित्रशिवण्डिमण्डिना सरितीरभूमिः, इयं सरिदिव



बहुतरङ्गोपशोभिता गोष्ठवसतिः, इयं च नक्षत्र मध्यगतापि न विशाया  
 तरुपङ्क्ति, इयं पुष्पवत्यपि न दूषितस्पर्शा वीरुत्, इयं सनिहित-  
 मधुदानयापि हरिमिया वंशजालि, इयं वृत्तमातङ्गसङ्गापि न परिहृता  
 द्विजैः सल्लकीसंतति, इमे च केचित्सशिखण्डिनो महाद्रुपदा, केऽपि  
 विच्छिन्नकीचकवंशा वृकोदरा, केचित्सपुण्डरोकाशा पाण्डुसंतानका-  
 केऽप्युद्धृतभुवो महावराहा, केप्युत्कृष्टसुरभिध्रीद्रुमावलिहरिकरा-  
 कृष्टपन्नगनेत्राः स्फुरन्मणिभित्तयोः मन्दरागाः केऽपि सस्थाणवो  
 दुर्गाश्रया श्रयमाणगजवदनघ्नीत्कारा सगुहा कैलासकूटायमाना-  
 सेव्या खल्वमी विन्ध्यास्कन्धसंधिसानव इति मन्त्रिसूनुना ध्रुत-  
 शीलेन सह विदितविदग्धालाप, कयापि वेलया कमप्यध्यानमतिक्रम्य  
 काप्यपरिमितपतन्निर्जरजलतुषारस्पर्शमञ्जरितपादपुष्पपरिमलमि-  
 लन्मधुकरझङ्कारहारिणि रममाणशररमिधुनसंमर्दमृदितामन्दमृदु  
 शाद्वले जलस्थलीप्रदेशे ध्रान्तसैनिकानुकम्पया प्रयाणविच्छेद  
 मकरोत् ॥

एवमिति ॥ समुत्तीर्य भगवती मेकलकन्याम् । उपसृष्टेः स्यादौ लकारानुप्रासा-  
 द्भेदो केचिन् 'भङ्गोष्ठ' इति पठन्ति, तच्च प्राकृते । सस्कृते खङ्गोष्ठ इति । तथा  
 उल्लङ्घय दक्षिणभागस्थित मतङ्गशान्ता गजानामभिमत नर्मदातीर पुष्पारण्यम्,  
 क्षप्रतो विविधविष्प्याटवीमवगाहमान इति सम्बन्ध । कथभूतां विन्ध्याटवीम् ।  
 सिंहराशिर्मृगेन्द्रवृन्द ज्योतिषोक्त पद्ममो राशिप्र । तेन राजिताम् । तथा पद्म  
 शोभ सूर्यश्च । वृश्चिकोऽली अष्टमराशिश्च । पुन किमुताम् । आविर्भूता सह  
 आर्द्रण शरद्वेरेण, रोहिणी ओषधिविशेषो, मूलो मूलकश्च यस्याम् । पञ्चे आर्द्रा  
 रोहिणी मूलानि तारा । शार्दूलविक्रीडितेन सिंहविलसितेन मनोहरा । तथा  
 हारिणीभिश्चारिर्हारिणीभिर्मन्दमाजान्तम् । सर्वदा वसन्तैरितलकैश्च तरविशेषैर्भू-  
 पिनाम् । तथा अतिविचित्रा क्षमकानां माला श्रेणी यस्याम् । पञ्चे शार्दूलविक्री-  
 डित हरिणी भन्दाका-ता वसन्तनिलका चम्पकमाला च दृन्दांसि । तथा बहुभि-  
 कोटरावगैर्दृष्टां दृष्टाम् । कोटराणा वनमिति कृत्वा 'वनमिथो सजाया—' इति  
 सूत्रेण पूर्णपदस्य दीर्घ । 'वनपुराणा—' इति सूत्रेण णस्त्वम् । कुशो दर्भः । लवो  
 लेस । सीतां तु बहुकोटेन प्राञ्जकौटिक्वेन रावणेन रणसा प्रार्थिताम् । तथा उपश्री  
 कुशलबी स्वसुती यस्या । तथा सचरद्भिविगुणैर्विरग्नुभि पद्माननै सिद्धैर्विशेषेण  
 भीषणाम् । तथा चारुपुष्पमर्धात् मनोहरमरोज क नल यस्याम् । अत एवानवसरे-  
 ऽपि आदम्बरितो विस्तृतो मेघनादस्तण्डुलीयको यस्याम् । लङ्का तु द्वी गुणो येषां  
 पद्मानां ते द्विगुणा दशेरयर्थ । ससख्यायाननानि यस्य स दशमुखो, विभीषणश्च  
 तद्भ्रान्ता सचरन्-यस्याम् । पुष्पक विमानम् । मेवनादो रावणात्मज । शीतविद्या  
 मिवति । तता विस्तीर्णा अवनद्धाः सुरिलष्टा घनमुपिरा बहुविवरा वंशा वेणवस्तेषां  
 स्वनेन रम्याम् । तालास्तहविशेषा । निपादा दावराः । मध्ये भवो मध्यम ।

प्राप्त खेटकम् । पद्मे ततं तन्त्रीगतेन अवनदेन पौंश्रेण च घनेन कारयकृतेन सुपिरमल्लक्ष्यस्वनेन च मनोज्ञम् । यद्यपि 'तत्र तन्त्रीगत शेषमवनद्ध तु पंष्ट रम् । घन कास्यकृत् प्रोक्त सुपिर वारयमेव च' इति भरत । तथाप्यत्रानेकविषय-  
 खाद्वाग्नेनाशानसदहायमुच्चित्तमव । अनेकनालमेदाशङ्कानुटादयो यस्यम् ।  
 तथा निपादेन स्वरो मध्यममल्लक्ष्यमेव युक्तम् । चित्रविद्यामिवेति । कटके  
 सूत्रे पत्रं पर्णं, एताभिर्वर्णानि शास्त्रानिर्वा स्थानकैश्चाटवर्णैरियमान् । तथा  
 ऋज्वोऽङ्गुष्ठिना भगता स्वार्थं प्राप्तंभारता मुनया यस्याम् । चित्रविद्यायै  
 कलिद्राकृत्-शाव-त्रिमङ्गि-सङ्गभिन्नवार एवावयवा । एतैर्मिलितैश्च शिशु-  
 मन्त्र-स्वभिनक वर्धमान-मर्धनामद्रात्याणि पञ्च पत्राणि निरघने । तदत्र  
 शास्त्रायां वा एवाहम् । तथा स्थानकानि पाशोऽङ्ग-श्रुतु श्चाशान-द्रव्य-  
 अर्धञ्जु-गमगालीड-वर्तित-त्रिमङ्गि-मन्त्रानि । तैर्विषयाम् । स्थानक-इत्येव  
 श्चाशान गतापमपि स्यादकृत्-द्रव्यगुणम् । प्रया हि चित्र श्चाशानतमेव  
 लिखत । तस्मि भवानि तासमानि । मयूरात्मनाऽष्टामतादीनि करगानि तापमा  
 र्यानि । तत्र श्चाशान तासमानि यस्याम् । यद्वा श्चाशानतत्र तास ह्यतीति  
 केषित् । श्चाशानतत्र दुम्भारहारिणीमिष्यं । कलियुगेति । अण्णु रतिरति ।  
 महती अग्रतिर्यथा ते महाप्रतिका वृषास्तेषाम्-तर्मप्य पत्ररम-वा ते कृग  
 सुभर्मकैरेदृष्टाम् । तथा सुप्रतिप्रसवाम् । पद्मे महाप्रतिका कापाठिका ।  
 तद्वन्-पातिमिस्तद्वन्मूर्ते कालमुद्यैवा ईवदत्तंविशिष्टैर्नाराचिताम् । बहुधा  
 भिन्नप्रवाहाम् । शतं प्र लक्ष-या प्रवाह । अग्न्या इति यावत् । कृत्तुगे ह्येक  
 मेव शिवशामतममूल, कलौ तु बहुमानायमिति भाव । श्लेषचित्रमिदु बवपे-  
 रैवयम् । नयाहि 'मन्त्रानु-रलकन्दलै मविकर्षातोयोजिता विभ्रती, ववत्रे-पमदष्टि  
 पातमुमगेतोहायन्ती स्मरम् । काञ्चीशाम नितम्बमङ्गि दधती स्यालम्बिना वाममा,  
 मूर्ति कानरिपो मितामुच्छरा पायादुनाया जगत्' । अस्यायं -- 'कानरिपो  
 शिवस्य मूर्ति पायात् । कौशली । विगतकेर्षेऽन्तर्लक्षितोदलैरायोजिता मला  
 विभ्रती । तथा त्रियमदष्टिरातमुमगेत ववत्रेग स्मर दइन्ती । तथा नितम्बमङ्गि  
 काञ्चीशानप्राय म्बल सर्व दधती । तथा वाममा ववत्रे विना व्यतिरिक्ता । तर्प  
 सिवायुक्त चन्द्र धरतीति । पत्र मीयम् । कमिषापय शिरोऽर्धम् । उमादे स्याल-  
 म्बिना लम्बमानेन । शेष सुगमम् । मनुद्रस्यामोऽरेहरक्षणे कृत्ने लम्बाम् । यद्विलु  
 सनुद्र मुद्रान्वित यदुपकटगलममीपत्रलम्बाम् । मुद्रा मूषगासिपमन्थि । शम्बर  
 श्वारद्विर्पो दानवविदेयश्च । शम्बरो हि विनिर्मिता माना । अत्र एव शम्बरी-  
 च्यत । मरुन्मिमिति । न मन्वरो गतिर्यस्याम् । केमरिणा मिहाना प्रमयै पेतै ।  
 कौशलि । करि-नीरयन्ति तै । पद्म करीरैःस्वद्विरेपे । तथा केमरिण किञ्चरको  
 पेत्रा प्रमवा पुष्पाणि यत्र तपविषे । अनिरेति । चन्दनस्तरत्तद्वमथ । कृनो  
 गवा रोचनाविशेषेऽमितागतिराया यै । पद्म गोरोचना गन्धद्रव्यविशेष । सा  
 चार्त्वाव मद्रश्या तस्या विनापमिच्छकम् । अचनामल्लता दूर्वा बहनपमीरगम् ।  
 पद्मेऽप्यस्तगुलादि । दूर्वने समानम् । तथा एकस्मिन्स्थाने सन्दीहृत्तनावाना  
 प्राणशकृत्तनानवलाक्यन् । काशतान् । मेपा-वा वृषा-मिधुनानि युञ्जन्ति  
 धारयन्ति । तथा सद घनुषा कौद-वेन सघनुष । तथा सिकुम्भा मद्रलार्थं मस्तक-

न्यस्तकलशा कुमार्यो येपु । गणिसमूहो ज्यौतिषोक्तो मेवादिश्च मेघवृषमिधुन  
 कुम्भकन्याराशिविशेषसज्ञा । मन्त्रिसुनुना ध्रुवशीलेन सह 'इय च गगनधीष्यादि'  
 'इमे च केचिरसशिखण्डिन' इत्यादि च विहितविदग्धालाप प्रयाणविच्छेदम  
 करोत् । यदुक्तं तद्द्वयाख्यायते । तथाथा । चित्राशिश्रमर्गा शिरण्डिनो मयूरा ।  
 पक्षे शिखण्डिनि मसर्पय । बहुतरमिति क्रियाविशेषणम् । गोपैर्वक्ष्ये  
 शोभिता । सरिषु बहुमिस्तरङ्गैस्फलोभिता । गोष्ठ गोष्ठम् । नक्षत्रमभ्य गता ।  
 न विगतशाखा च । पतन तरुणामुच्चता स्तोभोगता चोक्ता । विशाखा हि नक्षत्र  
 मभ्य न गति विरोधसूचकोऽपिशब्द । पुष्पवती वसुमिता रजस्वला च ।  
 नदूपितस्पर्शा मृदुत्वात् । रजस्वला स्वपृष्ट्येति विरध । सनिहितभ्यो मधुदा  
 चौद्रमद । नवा अविच्छाया । हरि सिंह । या च हरविष्णो प्रिया वदहभा मा  
 कथमापन्नमधुसङ्गकन्दत्येति विरोध । मानद्वा गजा शपथारच । द्विजा पक्षिणो  
 विपारच । इमे चेति । मडद द्रुपद वृक्षस्थान यपु तथाक्ता । तथा सह शिखण्डिभि  
 र्मयूरै अथ च महाद्रुपदा क्षत्रविशया । द्रुपदनयश्च शिरण्डी । चित्र  
 शिखण्डिमण्डितेश्यनेन पूर्वमन्त्रयो मयूरसज्ञाय उक्त । इदानीं विध्यस्त्वये  
 द्विति न वीनरुक्त्वयम् । चिच्छिन्ना पृथग्भूता कीचरा सञ्छिदा वशाश्च  
 निरिच्छदा येपु । वृका अरण्यभान उदरे मध्ये येपु । वृकोदरो भीमोऽपि । स  
 च विरोधेण द्विन्तकीचकाशपराज्ञात्वय । पाण्डु सत नरुस्तद्विरोधो यपु । तथा  
 पुण्डरीकै सिताम्भोजैरक्षैश्च विभीतकै सह । पाण्डो सताना एव सतानका  
 सुता पाण्डवास्ते तु पुण्डरीकाक्षेण विष्णुः सह महा तो वराहा येपु ।  
 तथा उरुक्षेण हता विस्तारेण रुद्धा भूर्य । महावराहो विष्णु । स चोत्सृष्ट  
 पृथ्वीक । अमन्दो रागो यन्धस्तस्म दरागा । तथा ठाकृष्टा मनोज्ञा मरभयश्च  
 भक्ता धीद्रुमाश्च पिप्लस्तपामावलिस्तत्र हरय कपयस्तैराकृष्टानि प गगनश्रिणि  
 येपु । हरयम दरागत्वे हेतु । पक्षे म दरात्योऽगोऽद्रि । तदो कृष्टोपष्टता सुरभि  
 धीलक्ष्मीद्रुम पारिजातरच ये । म दरण हि सुरभिप्रभृती यम्भोधेरदृष्टतानि ।  
 सुरभिधनु । इह तु प्रस्तावात्कामधनुः । यद्विधमहाश — र रभिरचम्पक स्वर्ग  
 जातीफलवस्ततयो । सधौ पक्षे मौरभयाम् इति । तथा वल्लेक्ष्यस्य हरे  
 विष्णोश्च करैराकृष्ट भ्रामित प तपो वामकिलक्षण नेत्र म धानम कपणरगुह्यंत्र ।  
 कैलासकृष्ण ह्वाचरन्त । स्थानु सिधरपद म शिखश्च । दुर्गा विश्ववासिनी देवी  
 गौरी च । दुर्गा आश्रयो ययामिति वा । तथा आश्रय्यमाना राजानां वदनचीकारा  
 मृद्धानि येपु । कैलासे च । गजवदनो हरश्च । गुहा पापाणसधि । गुह  
 कारिकेय ॥

इस तरह भगवान विष्णु को प्रणाम किया । विजयी गजेन्द्र पर आरुढ़  
 हुआ । अनेक हाथियों और घोड़ों पर आरुढ़ परिजनो को आगे दीटा दिया ।  
 पुरोहितो के सम्मुख महानदी याग सम्पन्न किया । इसक बाद सहस्रो युगों के  
 परिवर्तनविषयक वृत्तांता को सांगो, निरंतर तपस्या मे लगे हुए ब्रह्मर्षिया  
 द्वारा पूजित शिवलिङ्गों से घिरी हुई अनेक देवरमणियों द्वारा सेवित तटीय  
 लतामण्डपा वाली, अवगाहन करते हुए बनैले हाथियों की मददगंध से गुग्गुंधित

हरद्वी काशी, अभिनव गंगा, समुद्र की दूसरी रात्रयली, मार्कण्डेय ऋषि की तपस्या की दूसरी सासी, मेकल नामक पर्वत की पृथ्वी नर्मदा नदी को पार किया। उच्च वाद विकसित एवं पल्पवित अद्भुत, सल्लकी, सीने सीधे सात, सर्द, शूल, नीम, कदम्ब, जामुनसमूह, गुल्मर, खैर, बरउच, बडजन, लशोक तथा सांभान्यजनक आदि वृक्षों में व्याप्त, हाथियों का आकाङ्क्षित, मृगा का प्रिय स्थान, शरङ्ग-सृष्ट वायु के कारण अतिशय शीतल, मञ्जरीमुक्त लता-जाल के कारण स्वर्ग-सदृश, नर्मदा-तट के दक्षिणभागीय पवित्र अरण्य को पार किया और विन्ध्यादबी का भ्रमण किया।

जकान-बीषियों ( गणन-मार्ग ) जैसे सिंह राशि ( सिंह नामक राशि ) से सुशोभित रहती हैं, उत्पन्न ( उत्पन्न ) से मुक्त रहती हैं, बुद्धि-सम्पन्न राशि तथा आर्द्रा, रोहिणी और मूल नक्षत्रों से मुक्त होती हैं जैसे वह विन्ध्यादबी भी सिंहराशि ( सिंहसमूह ) से सुशोभित थी। उत्पन्न ( उत्पन्न ) राशियों में मुक्त थी। इंद्र ऊपर किने हुए बुद्धि ( बुद्धि ) ( बुद्धि ), आर्द्र ( शूलवेर ), रोहिणी जोर मूल नामक पौषों में मण्डित थी। छन्दवर्ग जैसे शार्ङ्गविक्रीडित, हरिणी, मन्दाक्रान्ता बसन्त-तिलका और चम्पकमाला छन्दों के कारण मनोहर है जैसे वह विन्ध्यादबी भी शार्ङ्गविक्रीडित, (सिंहों के विकास) में मुक्त थी। हरिहरिणीमन्दाक्रान्ता ( मनोहर हरिणीयों द्वारा मन्दतारुवर्ष आक्रान्त ) थी। निरन्तर बसन्त एवं तिलक ( वृत्त ) से प्रसूक्त थी। अन्यन्त विचित्र चम्पकमाला ( चम्पे की पङ्क्तियों ) से मण्डित थी। शंभ्रा जैसे बहूकोट रावन ( अत्यन्त कुटिल रावा ) द्वारा धिर गयी थी और कुच तथा लव की उत्पन्न की थी जैसे ही वह विन्ध्यादबी बहु + कोटरावा ( बहुन से खोखलों से पूर्ण जगलों ) से घिरी हुई थी और कुच के लव ( शंभ्र ) को उत्पन्न की हुई थी।

[ विन्ध्यादबी-पक्ष में बहूकोटरावा पद का विच्छेद बहु + कोटर + वन है। 'कोटरावा वनम्' इस विग्रह में समास होने पर 'वमण्डित्योः संज्ञायाम् कोटरादिभ्योऽङ्गादीनाम्' ( पा० सूत्र ) से वन के पूर्ववर्ती 'र' के अ को दीर्घ हो गया और 'वन पुरगामिथकासिप्रकोशरिकाकोटराग्रेण्य' ( पा० सूत्र ) से उत्तरवर्ती वन के न को न हो गया। ऐसे पदों के अंगत वहाँ से जिनमें बहुवचन में खोजेंगे थे। ]

रत्न जैसे सचरद + दिगुत्पन्नानन + विभीषण ( धूमते हुए पाच के दुग्ने ( दग् ) मुँह वाले रावन और विभीषण से मुक्त थी, चारु + पुथका ( सुन्दर पुण्य विमान से सम्पन्न ) थी, अरुणतम्बुरित + मेघनादा ( असमय में भी मेघनाद ( रावापुत्र ) के गर्जन से व्याप्त रहती ) थी जैसे वह (विन्ध्यादबी)

भी सञ्चरद् + वि + गुण + पञ्चानन + विभीषणा ( घूमते हुए बन्धन-विहीन पञ्चानन ( सिद्धो ) के कारण विभीषण ( भयङ्कर ) थी । चारुगुणवा ( सुन्दर फूलों से मण्डित ) थी । अकाण्डाडम्बरितमेघनादा ( जलमय मे भी बादलों के गर्जन से व्याप्त ) थी ।

[ विन्ध्याटवी पक्ष में विगुण + पञ्चानन + विभीषणा पद में विगुण का अर्थ बन्धन हीन है । गुण शब्द का अर्थ रस्सी है । वि का अर्थ विगत है । अर्थात् रस्सी से रहित वे सिंह हैं । बन्धनहीनता के ही कारण वे विभीषण ( बड़े भयङ्कर ) हैं । ]

गीत विद्या जैसे तत ( वीणाध्वनि ), अवनद्ध ( पींकरध्वनि ), घन ( झाल की ध्वनि ), मुषिर ( वेणु की ध्वनि ), अनेक तात्र ( चञ्चत् पुट आदि ) और निपाद, मध्यम ग्राम आदि स्वर से युक्त होती है वैसे यह ( विन्ध्याटवी ) भी तत ( फेरे हुए ), अवनद्ध ( बारी घने, एक दूसरे में सटे हुए ), घन मुषिर ( बहुत छिद्रों से युक्त ), वरास्वन ( वेणुओं की ध्वनि ) के कारण मनोहर, अनेक ताल वृक्षों से युक्त, निपादों ( किरातों ) और मध्यम ग्राम ( मध्यवर्ती ग्रामों ) से मण्डित थी ।

[ गीत विद्या और विन्ध्याटवी दोनों ही पशो म स्वन शब्द का अर्थ ध्वनि है । वरा के पूर्ववर्ती तत, अवनद्ध आदि सभी विशेषण विभिन्न यादों की ध्वनि के ही वाचक हैं । फिर भी यहाँ वरा स्वन का उपादान स्पष्टार्थक है । आचार्य भरत ने कहा है—“तत तन्वीगत ज्ञेयम्, अवनद्ध तु पींकरम् । घनं कास्यकृत प्रोक्त मुषिर वाश्यमेव च ॥” वीणा की आवाज को तत कहते हैं । मृदङ्ग की आवाज अवनद्ध, झाल की आवाज घन और बारी की आवाज को मुषिर कहते हैं । ]

चित्र विद्या की तरह यह विन्ध्याटवी अनेक कण्ठक ( काटे ), पत्र ( पत्ते ), लता, स्थानक ( आलवाल, पाले ) के कारण जैधो, और ऋजु तापस ( सीधे सादे तपस्विणों ) के आगमन से युक्त थी ।

[ चित्र विद्या में कलिका, कण्ठक, दाखा और विभङ्गी नामक चार पदभावयम प्रसिद्ध हैं । इन्हीं के मिश्रण से शिशु, मकल, स्वस्तिक, वर्धमान और सर्वतोभद्र नामक पाँच पत्र निष्पन्न होने हैं । यहाँ दाखा शब्द लता का पर्याय है । पार्श्वगत, ऋजु ऋज्वागत, द्वयर्भास, अर्धशृजु, गमनालीड, स्वरित और विभङ्गी नामक स्थानक होने हैं । स्थान शब्द के कह देने से ही ऋज्वागत भी मतार्थ हो जाता किन्तु चित्र में ऋज्वागत का अधिकांश प्रयोग होता है, इसलिये उसका पृथक् प्रयोग हुआ है । मयूरासन, उट्ट्रासन आदि को

तापस संज्ञा दी गयी है। श्रेयवागत नामक स्थानक की सुन्दरता में चित्र दिद्या ताप का हटा करती है। ]

कल्पिुा की शिवशासन स्थिति की तरह महाव्रतिक (जल से प्रेम करने वाले बड़े-बड़े पेशों) के बीच कालमुख (काले मुँह वाले) वानरो (बन्दर) से सजीर्ण हो गयी थी और वहाँ विविध झरने बह रहे थे।

[ विष्णुाटवी पद्म म वृक्षों का महाव्रतिक कहा गया है। अप् वा अर्थ है जल। अप् (जल) से त्रिनकी रति (प्रेम) हो उन्ने अव्रतिक (अप् - रतिक) कहा गया है। महत् शब्द के साथ अव्रतिक के पुहन पर महाव्रतिक बन गया। अर्थात् जल से स्नेह रखने वाले बड़े-बड़े पेशों के बीच-बीच में काले मुख वाले बन्दर भरे थे। जगह-जगह पर झरने गिर रहे थे।

कल्पिुा + शिवशासन + स्थिति—कल्पिुग म शिवोपासना की पद्धति से विष्णुाटवी की समानता बतायी गयी है। कलि की शिवोपासनापद्धति महाव्रतिकान्त जाती (कापालिक लोगों के समीप रहने वाले) लोग तथा काप-मुख-नर (शिव की उपासना करने वाले मनुष्यों) से व्याप्त रहती है। महाव्रतिक कापालिक को कहते हैं। काल + मुख शिवोपासक को कहते हैं। वानर शब्द में "वा" का अथवा अर्थ है और नर का मनुष्य। शिवोपासना की पद्धति में कापालिक समीपवर्ती लोग तथा शिवोपासक अधिक पाये जाते हैं। यह पद्धति भिन्न श्रोतस् (विविध धाराओं (सम्प्रदायों) वाली हो गयी है। समयगुण में इस उपासना की एक ही धारा थी अब इसकी अनेक धाराएँ हो गयी हैं। ]

कापालिक की खट्वाङ्गपट्टि जैसे समुद्रोपकण्ठगना होती है वैसा वह (विष्णुाटवी) भी समुद्रोपकण्ठगना (समुद्र के तट तक फैली हुई) थी।

[ कापालिक खट्वाङ्गपट्टि धारण करते हैं। खट्वाङ्ग नरवान् शिव का एक अस्त्र है। शिवोपासकों का एक वर्ग कापालिक है। ये लोग नृत्य मनुष्य की खोपड़ी हाथ में लिये रहते हैं। भोजन उसी में करते हैं और पानी भी उसी से पीते हैं। सकर ली के अनुकरण में उनके अस्त्र खट्वाङ्ग को भी धारण करते हैं। खट्वाङ्ग (टेडी-मेडी छडी) की मुठिया के पास मुद्रा लगी रहती है। जब उस पट्टि के उपकण्ठ को समुद्र (मुद्रा संहित) कहा गया है। उस छडी की मुठिया के पास अङ्कार के रूप में हृद्दी लगी गयी रहती है उसे मुद्रा कहते हैं। समुद्रोपकण्ठ रूप साधारण धर्म विष्णुाटवी और खट्वाङ्गपट्टि दोनों में है। ]

नाया की तरह सम्बराधिष्ठि थी।

[ शम्बर नाम का एक दैत्य था । माया का निर्माण उसी ने किया था । इसी लिये माया को शम्बरी कहते हैं । माया जैसे शम्बर नामक दैत्य से अधिष्ठित है वैसे ही वह विन्ध्याटवी शम्बर (हिंसक जन्तुओं) से अधिष्ठित थी । ]

महभूमि जैसे करीर नामक वृक्ष के केसरिप्रसव ( पराग पूर्ण फूलों ) के कारण असचरणीय ( अगम्य ) होती है वैसे वह विन्ध्याटवी भी करीरकेसरि-प्रसव ( हाथियों को चीत्कार करा देने वाले सिंहा के बच्चों ) के कारण असचरणीय ( अगमनीय ) है ।

[ महभूमि में करीर ( करीर ) के पेड़ अधिक होते हैं । इन कट्टेले पीधों के कारण वह भूमि अगम्य होती है । केसरिप्रसव करीर का विशेषण है । प्रसव का अर्थ यहाँ पुष्प है । केसर से युक्त पदार्थ को केसरी कहा जा सकता है अतः केसरिप्रसव का अर्थ हुआ पराग पूर्ण पुष्प । विन्ध्याटवी पक्ष में करीर शब्द का अर्थ है हाथी को चीत्कार करा देने वाला । करी ( हाथी ) को जो ईरण ( चीकार ) करावे वह करीर है । केसरिप्रसव तो सिंह-शिशु अर्थ में प्रयुक्त हुआ ही है । अर्थात् वह विन्ध्याटवी हाथिया की चिगाड करा देने वाले सिंहा के बच्चों के कारण अगम्य थी । सिंह शिशुओं के डर से चलना असम्भव था । ]

मङ्गलकार्यस्थल की तरह अत्यन्त सुन्दर चन्दन, गोरोचन-अक्षत दूर्वा ( अम्बुजित्त दूर्वा ) वाली तृण-स्थली से अलङ्कृत थी । विभिन्न व्याधो से ब्राह्मण थी ।

मङ्गलकार्य के अवसर पर भी चन्दन, गोरोचन, अक्षत ( तण्डुल ), दूर्वा आदि पदार्थों का सपह किया जाता है । पूजन के स्थल पर इनकी थोड़ी-थोड़ी मात्रा मगूहीन की जाती है । विन्ध्याटवी में तो इन सभी पदार्थों के विशाल वन हैं । इसमें उसकी पूजनीय स्थानता और बढ़ी हुई है । ]

( विन्ध्याटवी में ही घूमता हुआ वह ) इकट्ठे हुए बहुत से पर्वतीय गाँवों व ग्रामवासियों को देखा । कुछ लोग मेघ ( भेड़ ) और वृष ( बैल ) के मिथुन ( जोड़े ) को लिये हुए थे । कुछ लोग सधनुष ( धनुष के साथ ) थे । कन्यायें मकुम्भ ( घड़ा ली हुई ) थीं ।

[ मेघ, वृष, मिथुन, धन, कुम्भ, कन्या, ये विभिन्न राशियों के नाम हैं । श्लेष व माघ्यम में इनका भी यहाँ स्मरण दिखाया गया है । अगले वाक्यांश में विन्ध्याटवी के विभिन्न पदार्थों का वर्णन है । ]

'मह नदी तट की भूमि आकाश मार्ग की तरह चित्र शिखण्डियों ( चित्र वर्ण के मयूरी ) से अलङ्कृत है ।'

[ आकाश-मार्ग चित्रशिलशिखरो ( सप्तपि तारो ) से अन्वृत्त है । ]

नदी जैसे बहुत-रङ्गीपशोभित ( बहुत जल्लहरियों से सुशोभित होती है )  
वैसे ज्य गोश्वमनि ( पशु बहुत श्व ) भी बहुतरम् + गोप + शोभिन  
( जल्लहरि खाने से सुशोभित ) है ।

यह उक्त पक्ति नक्षत्रों के मध्य तक पहुँची हुई है और विशाखा ( शाखा  
में विह्वल ) नहीं है ।

[ विभिन्न नक्षत्रों की गाना में विशाखा भी एक नक्षत्र है । नक्षत्र  
मध्यगत होने हुए भी विशाखा ( नक्षत्र ) में हीन दक्षाना विरोध का मूल है ।  
क्योंकि जो नक्षत्र मध्यगत होगा वह विशाखा से भी संयुक्त रहेगा ही । विशाखा  
शब्द का शाखा-विहीन अर्थ कर विरोध का परिहार किया जाता है ]

यह उक्त पुष्पवती ( फूलों से लदी ) है और इसका स्वर्ण दोषजनक  
नहीं है ।

[ पुष्पवती ( रजस्वला ) का स्वर्ण दोषजनक माना जाता है । उक्त  
पुष्पवती है फिर भी उसका स्वर्ण दोषमूलक नहीं है । पुष्पवती होती हुई भी  
दोषजनक नहीं है । यही विरोध है । पुष्पवती शब्द का पुष्पपूर्ण अर्थ कर  
लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है । ]

यह मधुदा ( मधु देने वाले छत्तों से युक्त ) नवीन वासों की पक्षि हरि-  
प्रिया ( जिहों को प्रिय ) है ।

[ जो सन्निहित + मधुदानवा ( मधुदानव के पास रहने वाली नायिका )  
होगी वह हरिप्रिया ( भावान् विष्णु की प्रिया ) कैसे होगी । विरोध । मधुदा  
और नवा को वसनाति का विशेषण बना देने पर विरोध का परिहार हो  
जाता है । मधु देने वाली नवीन वासों की पक्ति । मधु के छत्तों से युक्त वस-  
नाति को मधुदा कहा गया है । ]

यह उक्तकी वृक्ष की पक्ति मातङ्गो ( हाथियों ) से सृष्ट है और द्विजो  
( पक्षियों ) में छुटी नहीं है ।

[ मानस ( चाण्डाल ) में सृष्ट है फिर भी द्विज ( ब्राह्मण ) से छुटी  
नहीं है । यह विरोध है । ]

[ इनके बाद विन्ध्यावत की तटीय चोटियों का वर्णन है । ]

ये शिवर महाद्रुपद ( बड़े-बड़े पेड़ों की भूमि ) हैं और सशिषण्डी  
( मयूरों में युक्त ) हैं । अतः द्रुपदपुत्र शिखण्डी से युक्त महाद्रुपद ( सशिव  
वध ) की तरह हैं । वृकोदर ( भीम ) जैसे विच्छिन्न कीचक वंश ( कीचक  
राज के वंश को समाप्त कर दिये ) ये जैसे ये कोई शिवर भी वृकोदर  
( मैदियों को अपने उदर ( गुफाओं ) में लिये हुए ) हैं और विच्छिन्न कीचक



वक्ष ( सन्धिद्वय तथा निश्चिद्वय\_दोनों तरह के वास यहाँ से काटे गये ) है । पाण्डुसन्तानक ( पाण्डु की सन्तान सुधिष्ठिर आदि ) जैसे पुण्डरीकाक्ष ( विष्णु ) के साथ थे वैसे ही कुछ ( शिलर ) पाण्डुसन्तानक ( पीनरग के सन्तानक नाम के वृक्ष से युक्त ) हैं और पुण्डरीक ( कमल ) तथा अन्न ( रुद्राक्ष आदि के पीधो ) से युक्त हैं । महावराह ( भगवान् विष्णु ) जैसे उद्भ्रमभू ( पृथ्वी का उद्धार क्रिये ) ये वैसे ये भी महावराह ( बड़े बड़े सूकरों से युक्त ) हैं और उत + हत + भू ( पृथ्वी के पर्याप्त भाग को अपने विशालता से छेक हुए ) है । कुछ शिपरो पर उत्तम कोटि के सुरभि ( चम्पा ) और श्रीद्रुम ( पिप्पल ) की तरुणियों में ( शिव ) हरिकर ( बदरो व हाथा ) ने पन्नग नग ( सर्प नग्री ) का आकृष्ट कर लिया है मणिभित्तियाँ चमक रही हैं । अतः अन्न रसग ( पर्याप्त आकर्षण वाले ) है ।

[ इन विशेषणों के कारण व शिलर समुद्र की तरह है । समुद्र भी आकृष्ट सुरभि श्रीद्रुमादि हरिकराकृष्ट पन्नग नग है और स्फुर-मणिभित्ति तथा मन्दराग है । आकृष्ट ( उत्तम ) सुरभि ( कामधेनु ) श्रीद्रुम ( पारिजात ) आदि पदार्थों के समूह को प्राप्त करने के लिये हरिकर ( भगवान् विष्णु के हाथा ) द्वारा पन्नग ( कामकिनाग रूप ) नेत्र ( मन्थन-रस्ती ) आकृष्ट / खींची गयी थी । मणि की भित्तियाँ वही स्फुरित हो रही थीं । मन्दर नाम का अन्न ( पर्वत ) वही रक्खा गया था । मथन की रस्ती की नेत्र कहने ह । भगवान् विष्णु ने अपने हाथों ने मन्दराचल को मथन दण्ड बनाकर और वासुकि नाग की मन्थन रस्ती बना कर समुद्र का मन्थन किया था । विध्य स्वयं पक्ष में अमन्द-राग श्रवण करता है और समुद्र पक्ष में मन्दर + अन्न ।

विध्य के शिपर पर्याप्त आकर्षण वाले है । वन्दरो के हाथों ने सर्पों की बालों को आकृष्ट कर लिया है । चम्पे का फूल अधिक सुगन्धित होता है और पिप्पल क पेड़ में अधिक मोचले होत हैं । गन्ध और खोखले दोनों ही नरों को अधिक प्रिय हैं । वन्दरो के हाथों को बड़े गौर से देखते हैं कि वे किधर जात हैं । वन्दर भी सर्पों के विरोधी होत हैं । आकृष्ट शब्द के अर्थ खींच लेना और अपनी आर आकृष्ट कर लेना दोनों हो सकते हैं । खींच लेना जर्म ही समन है क्योंकि वन्दर सर्प के मुँह को हाथ में पकड़ लेत है और उन्ने पड़ मया जमीन में रगड़ते लगते हैं । रगड़ते रगड़ते उनके मुँह आँव आदि को समाप्त कर डालते हैं । अतः खींच लेना या समाप्त करना अर्थ भी यहाँ उचित ही है । ]

कोई ( शिलर ) सस्याणु ( वृक्षा से युक्त ) है और दुर्गाश्रम ( दुर्गा ( अगम्य ) आश्रय ( स्थान ) वाले ) हैं ।

[ सन्ध्यायु ( शिवजी की मूर्तियों से युक्त ) हैं और दुर्गा के भी आश्रय ( नगिर ) वही बने हैं उन शिखरो पर कुछ सन्ध्यायु ( शिवोपासक ) हैं और कुछ दुर्गा ( विन्ध्यवासिनी ) की ही आश्रय ( शरण ) मानने वाले शक्त जन हैं । ]

कुछ स्रुह ( मुत्तारों से युक्त ) हैं । ध्रुवमातागन्धर्वनवीकार ( कुछ पर हारियों के चीत्कार सुने जा रहे ) हैं । अत्र कैलास के शृङ्गों की तरह हैं ।

[ कैलास की चोटी भी स्रुह ( काठिन्य से युक्त ) है और वहाँ गन्धर्वन ( गणेश ) की का चीत्कार सुनायी पडता है । ]

इतिहे ये विन्ध्याचल की तटीय चोटियां सर्वथा सेवनीय हैं ।" इस तरह मन्त्रियुक्त श्रुतशील के साथ वैदुष्यपूर्ण बातें कर कुछ ही समय में मनोहर मार्ग को पार कर थके हुए सैनिकों पर कृपा कर एक अत्यन्त सुन्दर स्थान पर यात्रा स्थगित किया जो पर्याप्त रूप से गिरते हुए क्षत्रियों के स्पर्श से उगे हुए वृक्ष पुत्रों के पराग के लिए झुंते हुए क्रमरों के कारण मनोहर हो गया था ।

नैऋतैश्चिरन्तनवासरव्यापारैरहःशेषसहितामतिवाह्य तामपि निशा-  
मन्तरन्मुष्निपत्पठमपक्षिरक्षावधूनितपवनैरिवापनीयमानेषु गगन-  
चत्वरच्चर्चाप्रकरपाण्डुपुष्पपुञ्जकेषु नक्षत्रेषु, म्बविग्द्वोत्पन्नतम.कलङ्क-  
कलुषितानि मनाःकुम्भमपङ्कपिङ्गुरैः करैः परान्मृदय प्रसादयति दिननाये  
दिटनुत्तानि, पुनः पूर्वक्रमेण प्रम्यानमकरोत् ॥

उन उन पुरातन दैनिक कार्यों के साथ अवशिष्ट दिन और रात को भी बिनाकर मात्र काठ जब बगई लैते हुए पक्षी अपने फटफटाने हुए पंखों की टना से ताजा मार्ग में दौंचे हुए स्वैत पुत्र-राशि सहज नक्षत्रों को मानों बहार रहे थे, अपने विरह में ललत अन्धकार हृदय रक्तहृ से कटुपित दिशाओं के मुख को भगवान् सूर्य कुङ्कुम-श्लेष से लिप्त अपने कपो से प्रमत्त कर रहे थे, पुनः पङ्के की तरह यात्रा शुरू किया ।

[ प्रातः काल में स्वाभाविक ढंग से तारे तिरोहित हो जाते हैं । कवि कल्पना करता है कि पक्षी अपने पंख की हवा से उन तारों को बंदोर रहे थे । भगवान् सूर्य के तिरोहित हो जाने के कारण दिग्बधुएँ विरहवेदना से उदास थीं उनका मुख म्लान हो गया था । अन्धकार को ही म्लानता के रूप में लिया गया है । प्रातःकाल सूर्य अपने हाथों में कुङ्कुम लगाकर दिग्बधुओं के मुख को उज्वल बना रहे थे । किराणों से दिशाओं को उद्भासित कर रहे थे । ]

एवमपसरन्मार्गान्मार्गान्नीवारीणि वारीणि सहस्रनिनदान् नवान्  
सकरेणुरेणुस्थलमाच्छादितदिशि खराणि शिखराणि लङ्घयन् सुनी-  
रागान् गिरिगहनश्रामस्तपस्विनश्च मानयन्नेकदा नातिदूर इयोत्कं-  
कादभ्येकदाधचुम्ब्यमानाम्बुजराजिरजोरञ्जिताम्भसि सरिच्छीरे तह-  
तलोपविष्टमेकमध्वधान्तमध्वनीनभिदं चारुश्लोकयुगलमतिमधुरगीत-  
तरङ्गरञ्जिताक्षरं गायन्मद्राक्षीत् ॥

एवमिति ॥ मार्गादीनां लङ्घनादिकं कुर्वन् । अघातमलगाभी हृत्पध्वनीनस्त  
चाटुरलोकयुग गायन्तमद्राक्षीत् । अपसरत्सैन्यमयाच्चिबर्तमानं मार्गं मृगतमूहो  
येभ्यस्तास्तथोक्तान् । नीवारोऽभ्येष्टिविति । सह हसनिनदै । सरो जलाधार । सह  
कौण्ठभिरगैः । आच्छादिता दिशो यैश्चान्याच्छादितदिशि । खराणि तीक्ष्णानि ।  
सुशुनीर जलमगाश्च तरवो येष्विति । पथे सुष्टु निर्यातरागान् । मानयन्निति  
मानिरुपभोगार्थं पूजार्थञ्च । उपभोगे यथा 'मानयिष्यन्ति सिद्धा, सोऽकण्ठानि  
प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि' ॥

भागने हुए मार्ग ( मृग समूह ) वाले रास्ते को, नीवारि ( नीवार धान से  
सम्पन्न ) वारि ( जल ) को, हृत्पध्वनि युक्त नदी को, करेणु ( हृदिनियो ) से  
युक्त रेणु स्थली ( धूलिबहूल स्थानो ) को और दिशाओ को घेरे हुए तीक्ष्ण  
पर्वतों को पार किया । सुनीर ( सुन्दर जल ) और अग ( वृक्ष ) वाले पर्वतीय  
घने गाँवों और सुनीराग ( पूर्ण वैराग्य-सम्पन्न ) तपस्वियों को सम्मानित  
किया । सभीव में ही उत्कण्ठित हसो का समूह कमलों को चूम रहा था । उनके  
पराम से नदी तट पर जल रञ्जित हो गया था । वहाँ पर पेड़ की छाया के  
नीचे मार्ग के धके हुए एक राही को देखा जो माधुर्य की तरङ्गों में तैरते हुए  
इन दो सुन्दर श्लोकों को गाया ।

तव सुहृदुपभुक्तार्थाफलः कामकेलि

जनयति वनितानां कुङ्कुमालोहितानाम् ।

धयति स च समूहो मेघलाभूपितः सन्

जनयति वनितानां कुङ्कुमालोऽहितानाम् ॥ १० ॥

तरेति ॥ तत्र सम्बन्धी सुहृन्मित्रजनो मुक्तलक्ष्मीफलं कुङ्कुमेन वा ईपसो-  
हितानां वनितानां जनितात्यर्थांशरागाणां योपितां मन्मथलीलां जनयति । 'वनिता  
जनितात्यर्थांशरागयोपिति' इति विश्वप्रकाश । तथा अहितानां समूहो मेघलाभुवि  
गिरिमन्मथुवि उपितः कुमाल कुङ्कुमस्रक् सन् वैरागागहसज्जनताया महत्त्वर्थादि-  
योपापतिताया वडिंप्रवृत्तनादिसम्बन्धाद्जनिताया शयरागवस्य कुं भूमिगो धयति ।  
स चेति चकारात् सुहृदहितसमूहयोऽभ्योन्यमयमकितपादरिपनविशेषणार्थो  
सम्बन्धेपद्वारेण सम्बन्धः । तद्यथा, मेघलाया कटिपट्टिकया भूपितः सुहृत् अहित-  
समूहोऽपि अनुभुक्त्वियत्तः । अत्र प्रथमपृथगीपपादौ विशेषणतत्त्वरेणालङ्कनी  
द्वितीयचतुर्थौ तु सम्पूर्णमन्त्रेण ॥ १० ॥

मित्र पद्म — तुम्हारा मित्र-मण्डल लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है । कुङ्कुमराग-रञ्जित प्रेमपूर्ण कान्ताओं की कामनीय को उत्पन्न कर रहा है । ( कभी कभी ) मेखला ( करधनी ) से भूषित होकर वनिता ( स्त्री की कु ( भूमिका ) को धारण करता है । कु ( पृथ्वी रूप ) माला को धारण करता है ।

शत्रु पद्मः—बापके अहितों ( शत्रुओं ) का समूह पर्वत की तटीय भूमि पर बसता है । कुमाल ( कुत्सित मालाओं को धारण करता ) है । अन्न सञ्जन, यति ( संन्यासी ) और वनी ( वनवासी ) के धर्म का धर्म धारण करता है । और श्रीकल ( विन्व फल ) का भोजन करता है ॥ १७ ॥

[ मित्र पद्म — उपमुक्त + श्रीकल — मित्र वर्ग लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है । कुङ्कुम रंग से रञ्जित पूर्ण प्रसाधित स्त्रियों में भी अपने प्रति राग उत्पन्न कर देता है । अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण उच्च वर्ग की रागपूर्ण स्त्रियों को आकृष्ट कर लेता है । रागभरी स्त्री को वनिता कल्प है । मेखला + भूषित — करधनी से अलङ्कृत है । कुमाल—कु ( पृथ्वी ) ही उनकी माला है । पृथ्वी के लोगों को वे माला की तरह हृदय से लगाते हैं । कु शब्द पृथ्वी का वाचक है किन्तु यहाँ पृथ्वीस्य लोगों के वर्ग में प्रयुक्त हुआ है । वनीताना कुम् श्रयति—आपका मित्र मण्डल इतना रक्षित है कि करधनी कादि पहन कर स्वयम् स्त्री की भूमिका में उतर जाता है । नृप जादि काम में भाग लेता है ।

शत्रुपद्म—आपके अहित लोगों का समूह उपमुक्त + श्रीकल ( विन्व फल खाता ) है । अण्ड में रहने के कारण उसे दूसरा कोई भोजन नहीं मिलता । कुमाल ( कुत्सित मालाओं धारण करता ) है । मेखला + भू + उषित—(पर्वत की तराई वाले भूमि में रह रहा) है । सन् + जनयति वनिताना कुम् श्रयति । (सन् + जन + यति + वनिताना कुम् + श्रयति) । सन् और जन को मिश्रकर सञ्जन बनाते हैं जिसका जर्ज होता है सिष्ट व्यक्ति । सञ्जन, यति ( संन्यासी ) और वनी ( वनवासी ) का द्वन्द्व समास हुआ है । वनी के आगे जो द्वन्द्व प्रत्यय दीवता है उसका सञ्जन, और यति शब्द से भी अन्वय होगा, वनों कि द्वन्द्व के अन्त में आनेवाले अथ का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है । द्वन्द्वान्ते ध्रुवमान् प्रत्येकमपि सम्बन्धते । अर्थात् आपके शत्रु सञ्जनता, यतिता और वनिता ( वनवासिता ) की भूमिका में है । पर्वत के बीच जमीन पर सोते हैं । किसी से सम्पर्क न होने के कारण रागद्वेष विमुक्त हैं । अन्न सञ्जनता की भूमिका में हैं । पत्नियों से विमुक्त हैं । जगत् में मारे मारे फिरते हैं । अन्न ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन हो जाता है । इससे संन्यासी का धर्म यतिता भी उनमें है । बाहर रहते हैं घास बल्कल आदि पहनते-पोते हैं अन्न वनिता ( वनवासी का धर्म ) भी उनमें प्राप्त है ॥ १८ ॥

अपि च—

त्वत्तो भयेन नृप पश्य जनो वनेषु

कान्त्या जितस्मर तिरोहितवानरीणाम् ।

शाखामृगश्चपल एव गिरेरुपत्य-

कां त्याजितः स्मरति रोहितवानरीणाम् ॥ १३ ॥

त्वत्त इति ॥ नृपेति मशोधरम् । कान्त्या सौन्दर्येण जितस्मरेति तद्विरोपणम् । पश्येत्याभिमुख्यकरणे । अरीणा जनरवद्भयेन वनेषु तिरोहितवान् । जितस्मरेत्यनेन 'स्मरोऽपि किल स्वया भिन इति तिरोहितोऽभूत्' इति प्रतीयते स्मृतिगोचर एव न तु दृश्यते हायन्वर्थात् । तथा एव प्रत्यक्षवर्ती शाखामृगो वानरश्चपलो लोलः । अनेनैव वनवासिना रिपुव्रतेन गिरेरुपत्यकामधोभूमिकां त्याजितो रोहितवानरीणा मकंटीनां स्मरति । वानरीणामिति 'अधीगर्ध—' इति सूत्रेण कर्मणि वष्टी ॥ १३ ॥

जितस्मर, (अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लेने वाले महाराज) देखिये, आप के भय से वानरों के आदमी जंगलों में छिप गये हैं । यह चपल शाखा मृग ( बन्दर ) पहाड़ की चोटी को छोड़ कर रोहितवानरी ( लाल मुह वाली बन्दरी ) का स्मरण कर रहा है ॥ १६ ॥

[ द्वितीय श्लोक शत्रुघ्न चरण में यमक है । द्वितीय चरण के तिरोहितवान् + वरीणाम् विग्रहवाले पद का कर्ता जन है । अर्थात् वरीणाम्+जनः+तिरोहितवान् । शत्रुघ्नो के आदमी छिप गये हैं । शत्रुघ्न चरण के तिरोहितवानरीणाम् एक समस्त पद है । अर्थात् लाल मुह वाली वानरियों को बन्दर याद कर रहा है । 'अधीगर्धदेवेता कर्मणि' इस नियम से यहाँ कर्म में पठी हुई है । यहाँ राजा को जितस्मर कहा गया है । उसने अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लिया है । जीता तो प्रनिन्दनी को ही जाता है । अतः काम भी उसका प्रनिन्दनी ( शत्रु ) हुआ । वह भी हार कर छिप गया है । इसीलिए तो दिखाई नहीं पड़ना । यह भी कहा जा सकता है कि वह जगत् में ही छिप गया है । इसीलिए अरण्य का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर हो गया है । उसकी नीरव भूमि उद्दीपक बन गयी है ॥ १३ ॥

'अहो नु खल्वयमनल्पशास्त्रीयसंस्कारामृतसंपर्कपल्लवितप्रज्ञाङ्कुरः फोऽपि कुशल काव्यशक्नोक्तिपु पथिकयुवा योग्या, सम्भाषणस्य' इत्यर्थधारयति राजनि ससंभ्रममुत्थाय स्थित्वा च पुरः स पत्न्यः सप्रणाममिमं श्लोकमपाठीत् ॥

अहा, यह तो निश्चित ही काव्य शक्नोक्ति में अत्यन्त कुशल पथिक युवक है । इसका प्रज्ञाङ्कुर ( बुद्धि रूप अङ्कुर ) पर्यान्त शास्त्रीय संस्कार सुधा से सींच

कर पल्लवित क्रिया गया है। अतः इससे बात करनी चाहिए।” राजा यह सोच ही रहा था कि वह पथिक जल्दी से उठा और खड़ा होकर प्रणाम करता हुआ दस श्लोक की पद्या—

‘वेद्या वेदनयाश्चिन्तो गोविन्दश्च गदाधरः।

शंभुः शूलो विषादी च देव केनोपमीयसे’ ॥ १४ ॥

वेद्या इति ॥ वेदनया पीडया आश्लिष्ट सम्पन्न । गदेन रोगेन अधरो विधुरः । शूलं शंभुरोपोऽस्य । अत एव विषादान्वित । तस्माद् देव केनोपमीयमे त्वमिति वाद्योऽर्थः । सध्वनस्तु वेदानां नयेन मनेनाश्लिष्ट । गदा कौमोदकी । अथवा गदो ज्ञाता मोऽधरोऽनुभो यस्य । शूलमायुधम् । विषमतीति विषादी नीलकण्ठ-त्वात् ॥ १४ ॥

‘देव ब्रह्मा वेदना ( व्यथा ) से युक्त है, गोविन्द गद ( रोग ) से ( अधर ) पीडित है, शंभु शूल ( रोग ) और विषाद से भरे हैं। आपको उपमा हन जिससे दें ॥ १४ ॥

[ संसार के दड़े लोगो के उपमान इन्हीं तीनों देवों में से कोई बनने है। इन तीनों में कुछ न कुछ कमी है अतः आपकी तुलना मैं जिससे करूँ ?

ब्रह्मा ‘वेदनया’ युक्त है। वेदना शब्द के तृतीया का एकवचन है। गद ( रोग ) से गोविन्द अधर ( पीडित ) है। शंभु शूली ( शूल ) रोग सन्पन्न और विषादी ( विषाद ) सम्पन्न है। वास्तव पञ्च—ब्रह्मा वेद + नय + आश्लिष्ट ( वैदिकज्ञान से संयुक्त ) हैं। यहाँ वेदनय शब्द के साथ आश्लिष्ट शब्द समस्त हुआ है। गोविन्द कौमोदकी नामक गदा को धारण करते हैं। शंभु शूली (शूल अत्र धारण करने वाले) हैं और विषादी (विषमज्ञान करने वाले) हैं। इसमें किसी एक से आपकी तुलना कैसे की जाय। आप में सबो की विशेषतायें भरी हुई हैं। ब्रह्मा की तरह आप ज्ञान सम्पन्न हैं। गोविन्द की तरह प्रसिद्ध अन्न-धारी हैं। शिव की तरह सहिष्णु हैं। भगवान् जिव जैसे विष घटय अथवा पदार्थ को -पचाकर दिग्ब का मङ्गल चाहते हैं वैसे आप भी स्वयं विविध परेशानियों को उठाकर भी संसार का मङ्गल चाहते हैं ॥ १४ ॥ ]

राजा तु तदाकर्ण्य क्षणमाग्रहोपरोधयिस्मयद्वयैरसैः समकाल-मान्द्रावितमना प्रथममुन्कुल्लया दशा, ततो मुन्वस्मिताभ्यंण, तदनु सर्वोद्घोषमभ्यगप्रदानेन, तमन्व्यर्च्य ‘पान्य, कथय केयमुत्तुङ्गकल्पोल-दोन्त्रायिस्डानुच्चवञ्चूरिक्षतमृ गालवलयान्कूजतः कलहंसानससृत्रिण-प्रवर्चितप्रज्ञयहोद्गारमुखरमुखांस्तारतापसानिव दिवमायेपयितुमुद-दन्ती सरित्, तदणतकतलमलंकुर्वाणः प्रसन्नतरस्वतीकः कश्च भगान्’ इति सप्रणयमपृच्छत् ॥

राजा त्विति ॥ मृगालवलयानामक्षसूत्रम्, उच्छृजन्स्य ब्रह्मयज्ञोद्धारः राजहंसानां तापता उपमानम् । ब्रह्मयज्ञो वेदाभ्युपनम् ॥

यह सुन कर एक क्षण तक आप्रह, बन्धन, जाश्चर्य और हर्ष रस से एक ही समय राजा का मन तरङ्गित हो उठा । पहले तो प्रफुल्लित नेत्रों से, फिर मधुर मुस्कान से, इसके बाद सम्पूर्ण अगो के भूषण दान से उसका सम्मान कर नम्रता से पूछा—“पयिक, कहो, इन उच्चतर तरङ्गरूप डालियों पर बैठे हुए अपने उन्नत चञ्चुओं से कोमल कमल-तन्तुओं को ऊपर की थोर फेंक कर कूजने हुए, ब्रह्मसूत्र को धारण किये हुए, ब्रह्मयज्ञ में मन्त्रोच्चारण की ध्वनि में मुखरित मुख वाले तट के तपस्वियों की तरह इन राजहंसों को स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए बहती हुई यह कौन सी नदी है ? और इस घने वृक्ष की छाया में अरगन्त मधुर बोलने वाले आप कौन हैं ? ॥

[ राजहंसों के उपमान तोर के तपस्वी हैं । तपस्वी जैसे पवित्र जल में स्नान करते हैं वैसे ये हंस भी उसमें गोता लगा रहे हैं । तापसजन ब्रह्मसूत्र धारण करते हैं तो हंस मृगाल-सूत्र धारण कर रहे हैं । तापस लोग ब्रह्मयज्ञ वैदिक मन्त्रों की ध्वनि करते हैं तो ये हंस भी कूजन कर रहे हैं । इन सब कारणों से हंसों की पर्याप्त समानता मुनियों से हो गयी है ॥ ]

सोऽपि 'सभ्रमरया कूलकीचकवेणुलतया सदृशी नावातरण-योग्या किमियमप्रसिद्धा महापदी देवस्य' इत्यभिधाय कथयितुमा रब्धवान् ॥

मोऽपीति ॥ किमियमसिद्धोवस्य न विदिता, यासी नावा वेद्यया तरणयोग्या । शब्दायमानकीचकवशवक्ष्या । सभ्रमरया समृद्धया । सदृशी । [वशवक्ष्यपि भवाते धाताभावे णस्य शब्दस्य योग्या न भवति । सदृदपि सभ्रम. सावर्तो रयो जवो यस्या इति सभ्रमरया ।

वह भी, “तट के छिद्र-बहुल बाँसों की तरह नावातरण योग्य ( नौका से पार करने योग्य ), भ्रम ( आवर्त ) और रय ( वेग ) युक्त यह महानदी श्रीमान् के त्रिये अप्रसिद्ध है ?” यह कहकर ( विवरण देना ) शुरू किया ॥

[ छिद्र बहुल बाँस ( कीचक ) पक्ष—सभ्रमरया—भ्रमरो से युक्त, नावातरणयोग्या न + अवात + रण + योग्या । अवात ( हवा के न रहने पर ) रण ( ध्वनि ) के शेष नहीं । छिद्रबहुल बाँस तब तक आवाज नहीं करत जबतक हवा नहीं बहती । हवा बहने पर ही उनमें से ध्वनि निकलती है । नदी सभ्रमरया ( आवर्त और वेग से युक्त ) है और लता भी सभ्रमरया है । सभ्रमरा शब्द के तृतीया के एङवचन सभ्रमरया है । नावातरण योग्या भी दोनों ही हैं ॥ ]

‘भानोः सुता संवरणस्य भार्या नापी सरित्सेयमघस्य ह्यनी ।

यस्याः कुरुः सूनुरभूत्स यम्य नान्ना कुदक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥ १५ ॥

नन्दोरिति ॥ संवरणं चित्रपविशेष ॥ १५ ॥

“कुर्य की लडकी, राजा संवरण की पत्नी, पापी की विनाशिका, यह वही यमुना नदी है जिसके पुत्र कुरु हुए। उ-हों के नाम पर कुरुक्षेत्र कहा जाता है ॥ १५ ॥

[ तापी, यमुना और यमी ये पचास-वाक्य सम्य हैं ॥ १५ ॥ ]

एतस्याः सलिलान्नावगाहसमये कुर्यन्ति नित्यं नृणां

नीरन्ध्रोन्नतकर्कशस्तननटीसंघट्टपिष्टोर्मयः ।

भ्राम्यन्तुभृङ्गनिमालकैः क्षणमिष व्यालालनेधैर्मुधै-

रत्कुल्लोरपलगर्मपङ्कजवनभ्रान्ति महाराष्ट्रिकाः ॥ १६ ॥

एतस्या इति ॥ उत्तुङ्गलोपलानि गर्भे मध्ये यस्य पङ्कजवनस्य । महाराष्ट्रिका-  
स्त्रियः ॥ १६ ॥

स्नान के समय घने जंघे एक कर्कश स्तनतट से इनकी लहंगियों को छूँट करती हुई महाराष्ट्र की नायिकाओं अपने चंचल भ्रमर-सदृश बालों तथा चंचल मुखों और नेत्रों से यमुनों की पानी के बीच सदा कमल वन की भ्रान्ति उत्पन्न करती हैं ॥ १६ ॥

[ नेत्र और मुख कमल की तरह हैं और बाल भ्रमर की तरह हैं । अचानक देखकर लोगों को भ्रान्ति हो जाती है कि पानी में बादलों के मुख नेत्र और नेत्र नहीं हैं अपितु कमलों के ऊपर भ्रमर मठरा रहे हैं ॥ १६ ॥ ]

अपि च—

यद्येतस्याः सहृदपि महन्नर्तिताम्भोजराजि-

भ्रङ्गत्पत्रव्यजनविधुतं चारि नोद्धारहारि ।

रोधोमाजां पियनि कुसुमैर्वासितं पादपानां

पीयूपाय स्पृहयति ततः किं इच्चिन्नाकिलोकः ॥ १७ ॥

तट के पुत्रों से मुग्धित, वायु द्वारा नचाये गये कमल-समूह के चंचल पत्ररूप पत्रों में कम्पित इस नदी के मनोहर जलका को यदि स्वर्ग के लोग एक बार भी पीनें तो क्या वे लम्बे की इच्छा करेंगे ? ॥ १७ ॥

मामपि पुष्कराक्षनामानं धार्मिकमघगच्छतु देवः ॥

धार्मिक ॥ वार्तायां नियुक्तो धार्मिकः ।

मुझे भी आप पुष्कराक्ष नामक धार्मिक समजें ॥



[ सन्देश-वाहक या किसी बात-विशेष की जानकारी के लिये नियुक्त व्यक्ति को वार्तिक कहते हैं ॥ ]

तथाहि—

स्थित्वा स्वदागमनमार्गमुत्वे गवाक्षे  
वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायताश्या ।  
संप्रेषितो निपथनाथ तथास्मि यस्याः ।

क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥ १८ ॥

स्थितेति ॥ गवाक्षे स्थित्वा तथा आपताक्षया दीर्घवशा वार्तान्तरं ज्ञातुमिह प्रेषितोऽहम् । यस्या मुग्धमनोमृगस्य ख क्रीडागिरि । मृगो हि गिरौ मनसवयि रमते ॥ १८ ॥

निपथराज, तुम्हारे आगमनमार्ग की सामने वाली खिडकी पर बैठ कर वार्ता-विशेष को जानने के लिये उस विशालाक्षी दमयन्ती द्वारा भेजा गया हूँ जिसके भोले मनरूप मृग के लिये आप ही क्रीडा शैल हैं ॥ १८ ॥

[ जिस ओर से आप का आगमन होगा उसी के सामने वाली खिडकी पर बैठ कर आप के सन्देश या समाचार की प्रतीक्षा कर रही है । मृग का मन जैसे पर्वत पर रमता है वैसे उम दमयन्ती का मन आप में रमता है ॥ १८ ॥ ]

एष्यति च श्वस्तनेऽहनि मार्गश्रमह्वान्तमिनो नातिदूरद्व्योत्तुङ्ग-  
सरत्सालसर्जाजुननिचुलनिषयान्तरचलचटुलचकोरमयूरद्वारीतदंस-  
कुलक्रीलाहलिति पयोष्णीपुलिनपरिसरे स्थितं तथा प्रहितमाप्तं  
कोडाकिन्नरभिधुनम् ॥

मार्गश्रम से थका हुआ, यहाँ से थोड़ा दूर पर ऊँचे ओर सीधे घाल, सर्ज, अर्जुन और निचुल वृक्षों के नीचे घूमने हुए चञ्चल चकोर, मयूर, द्वारीत और हंसों के कोलाहल से मनोहर पयोष्णी नदी के तट पर ठहरा हुआ, उम ( दमयन्ती ) के द्वारा भेजा हुआ क्रीडा किन्नर का जोड़ा कल आप से मिलेगा ।

‘इय च चान्यतां तथा स्वहम्नकिसलयलिखिताक्षरगर्भा भूर्ज-  
पत्रिका’ इत्यभिधाय पुरोऽस्य हेमपत्रिभ्रमं दृश्यज्ज् ॥

यह वाचिये, उसके विश्वम्भ सदृश कर द्वारा लिखे गये अक्षरों से गभित भूर्ज पत्रिका । यह कह कर उनके सामने चिट्ठी रख दिया ॥

राजापि पार्श्वपरिजनेनोत्क्षिप्यापिनांतामतिवहत्पुलकाङ्कुरकण्ट-  
कितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमुन्मुच्य सादरमवाचयत् ॥

समीपवर्ती परिजन द्वारा वज्रकर दी जाने पर राजा भी पर्याप्त रोमाञ्च के कारण कम्पित्त कण्ठ वाले हाथों से स्वयं छीलकर आदर के साथ लेंगे पडा ।

‘नलोऽपि मां प्रन्यनलोऽस्ति यत्तद्ब्राह्मणं नैषय नैष धर्मः ।

तथावलानां यत्तद् ग्रहीतुं न मानसं मानसमुद्रयुक्तम् ॥ १९ ॥

नन् इति । नैषय इत्यभिजनाम्नामन्त्रेण कुलीनबोद्धिद्वयम् । मानसमुद्रेपेनेन च मङ्गलानामेव पराजयो नात्रलानाम् । मां प्रति खं नलादयोऽपि सन्नलो बद्धि-  
रुद्धात्तनकथनेन मनायक इत्यर्थः । न नलोऽनल इति विरोधः । परिहास्तु प्रागेव  
व्याचक्षते । न चैष भवदृशा धर्मो यस्माद्ग्रहीतव्यता तस्मात्तथावलानां दुर्बलानां  
मानस चेतो ग्रहीतुं न युक्तम् । यत्तदिति क्रियाविशेषः हठादिपर्येऽप्ययम् ॥ १९ ॥

‘नैषध । तल होकर भी तुम मेरे लिये बनल हा । मानरूप सागर मे  
सुल्ल अबलाओं के मानस इस तरह ग्रहण करना तुम दैतो का धर्म  
नहीं है ॥ १९ ॥

[ नैषध इस सम्बोधन से उसकी उच्च परम्परा की ओर संकेत किया गया  
है । अर्थात् इतनी उच्च परम्परा मे तुम्हारा चढ़भव है फिर भी अबल  
( निर्दल ) को तुम इस तरह सत्ता रहे हो । तुम्हारे जैसे आदमी के लिये यह  
व्यवहार नितास्त अनुचित है ॥ १९ ॥ ]

अपि च—

निपतति किल दुर्बलेषु दैवं तद्वितथं ननु येन कारणेन ।

यत्तदिति न यथा तथावलानां प्रभवति कृष्टदारासनो मनोभू ॥ २० ॥

निदग्धीने ॥ अथवा त्रियोऽशक्त्या ॥ २० ॥

दैव भी दुर्बलों को ही सत्तावा है, यह एक निश्चित सत्य है । इसीलिये  
तो कामदेव अपने धनुष को निश्चय तरह निर्दला और अबलाओं पर सत्तावा है  
उस तरह बन्वानों पर नहीं ॥ २० ॥

[ मुझे विदना ज्ञान मन्वुल कर रहा है उतना आपको नहीं । यह एक  
सागान्य नियम है कि दुर्बल आदमी अधिक कामुक होते है ॥ २० ॥ ]

अपि च—

कदा किल मविष्मन्ति कृषिद्विनोद्यानभूमयः ।

उत्फुल्लन्थनपद्मानमभ्रच्छरणभूपिता ॥ २१ ॥

अतः यह विज्ञात है—

कब यह कुण्डिन नगर के उपवन की भूमि पूर्ण विकसित स्थल-कमल  
सदृश ( जापके ) बरणी से अलङ्कृत होगी ? ॥ २१ ॥

इति लेखल्लिखितप्रणयसुभाषितामृतस्सप्लवेनाप्लावितहृदय,  
 'विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगलमुद्योय येन तां पश्यामि' इति  
 चिन्तयन्नरपति पुरत स्थितं तं प्रियावार्तिकुमादिलयत्रिवोच्चरोमाञ्च  
 निचयेन पित्रन्निवाभिलाषतृपितया दृशा, स्तपयन्निच मधुरस्मिनामृत  
 रसेन, पुन पुन सादरमभाषत ॥

लेख के प्रणय-पूर्ण सुभाषित मुधा की धारा से राजा का मानस भर गया।  
 "भगवन् पक्षियों की तरह मुझ में भी दो पख बना दो कि उड़ कर उने देखू।"  
 इस तरह सोचता हुआ राजा सामने बैठ हुए प्रिया के सन्देश बाहक से अपने  
 रोमाञ्च समूह द्वारा मानो आलिङ्गन करना हुआ, अभिलाष पूर्ण प्यासी जाला  
 में मानो पीता हुआ, मधुर मुरकान के अमृत रस में नहलाना हुआ बड़े  
 स्नेह से बार बार बात किया।

'पुंकराक्ष, सा सर्वथा विजयते राजपुत्री। यस्या प्रसन्नमुदार-  
 सत्कान्तिश्लिष्टं सुकुमारमनेकालकारभाजनं ययो वचनं च, सप्रश्रय-  
 प्रगत्भो विवेकचान्विदग्धबुद्धिर्भयद्विध परिजनश्च ॥

पुंकरेति ॥ प्रसन्नं निर्मलम् । उदारं रम्यम् । सत्कान्तिं तेजस्वि । श्लिष्टं सुष-  
 टिनसर्वावयवम् । सुकुमारं मृदु । अनेकालकारभाजनं बहुभूषणपात्रम् । यय श-  
 देन तदाधारभूतं शरीरमुष्णते । पश्ये प्रसन्नं शशिपर्यप्रनीनिकृत् । महार्थमुदारम् ।  
 औजस्वलय कान्ति । सप्रश्रय रलेप । अमरठ सुकुमारम् । अनुप्रासोपमा  
 द्योऽलकारा ॥

'पुंकराक्ष, वह राजपुत्री सब तरह में उत्कृष्ट है, जिसका शरीर निर्मल,  
 रमणीय, तेजस्वी, सुशील, एवं कोमल है और विविध भूषणों से मण्डित है,  
 वाणी स्फुट अर्थ से सम्पन्न, गम्भीर, उज्ज्वल, ममृण एवं सुकुमार है और  
 अनुप्रास, श्लेष आदि अलकारों से युक्त है, नम्र निर्भोक, विवेकयुक्त तथा  
 परिपक्व बुद्धि के आप जैसे लोग जिसके परिजन है।

तत्कथय 'कथनोयकीर्तिं कास्ते कथमास्ते कं विनोदमनुतिष्ठति  
 केन ध्यापयन्नेण परिणामयति वासतं वाऽसौ भगवस्त्वामिसुता इत्येव  
 मुक्तः स पुन पल्लवयन्ननुरागरुन्दलं नलमलपत् ॥

तो, कहिये प्रशंसनीय यदा वाची, आपके स्वामी की पुत्री कहां रहती है ?  
 कैसे रहती है ? किस वस्तु में मनो विनोद करती है ? किस कार्य में अपना  
 दिन बिताती है ?' ऐसा बहे जाने पर उनके अनुराग की पुन पुन पल्लवित  
 करता हुआ उनसे ( पुंकराक्ष ) बोला—

त्वदेशागतवायसाय ददती दध्योदनं पिण्डितं

त्यशाम्न सदशे ददां निदयनी चन्येऽपि मुग्धा नले ।

त्वत्संदेशकथार्थिनी मृगयते तान्राजहंसान्पुन

क्रोडोद्याननरङ्गिणीतरुलच्छायासु वापीषु च ॥ २२ ॥

त्वरेणेति । तव नामापि दुर्लभं तनोऽस्य सदशे समुचिते । 'नाम्ना त्वसदशे' इत्यद पाठः । स तु रथपृष्ठे ॥ २२ ॥

'आपके देश की ओर से आये हुए कौदो को दही-भात का कवल देती है । तुम्हारे नाम से समानता रखने वाले जङ्गली नल नामक घास पर भी अँख लगायी रहती है । तुम्हारी सन्देश-कथा की इच्छुक वह विनोदवनों, नदियों और पेड़ों की छाया तथा जलाशयों पर उन राजहंसों को खोजती चरती है ॥ २२ ॥

अपिच । सांप्रतं तथा—

त्यद्रदेशागनमाद्यतेन मृदुना संजातरोमाञ्चया

त्यद्रूपाञ्चित्रचारत्रिचक्रफलके निर्वापयन्त्या दशाम् ।

त्यन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्यन्मार्गवातायने

नीचैः पञ्चमगोनिगर्भितगिरा नक्तंदिनं स्थीयते ॥ २३ ॥'

स्वरेणानयेते ॥ नीचैरिति निमृगम् । प्रपृष्ठरागात्वात् ॥ २३ ॥

इस समय यह—

आपके देश की ओर से आई हुई कोमल हवा से रोमाञ्चित हो उठती है । आपके सौन्दर्य की प्रतिवृत्ति वाले उस सुन्दर चित्रपट्ट पर अपनी आँखों को शान्त करती है । आपके नामामृत से अपने कानों को सँघती है । एकान्त में पञ्चम स्वर भरे गीतों को गाती हुई आपके मार्ग के सम्मुख वाले गवाक्ष के पास दिन रात बैठी रहती है ।" ॥ २३ ॥

पथमनुगुणमनुरागस्य, सदृशं शृङ्गास्य, सहोदरमादरस्य, प्रियं प्रेमप्रपञ्चस्य, प्रोत्साहनमनङ्गस्य, अनुकूलमुत्कण्ठायाः, समुचितम-  
भिनिवेशस्य, कौतुकजननं जल्पति पुष्कराक्षे, श्रवणकुतूहलानि  
विस्मृतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानुभवति भूमुजि, जलतीभवत्सु  
पूर्वाढ्येलालयेषु, गगनमध्यासन्नवर्तिनि व्रजति तीव्रतां ब्रध्नमण्डले,  
स्खलयति पथि पथिकानसहोर्मिणि घर्मजाले, जलाशयाननुसरत्सु  
पिपासाकूनतरलिततारकेषु श्वासिषु श्वापदेषु, पङ्किलकूलकर्मविम-  
दोद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवराहमहिषमण्डलेषु, विटपि-  
कोटरकुटीरनोडनिलयनिलीयमानेषु संपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलाय-  
कोणरूणितकोरूयमानकुरुकुहेषु गिरिसरित्सुरङ्गाङ्गणेषु रङ्गतरङ्गचरि-  
तखर्वदूर्यानिनीलनिम्नशाद्वलस्यलस्यितये द्विण्डमानासु कारणदश-

खण्डिमण्डलीषु, शिशिरनिवासवाञ्छया कृजत्सु करञ्जनिकुञ्जपुञ्जित-  
कपिञ्जलकपोतपोतकेषु, वहति मनाङ्ग्लानकोमलकुसुमकोशकोष्णा-  
मन्दमकरन्दधिन्दूहारिणि तापीतीरतरङ्गस्पर्शसेव्ये मध्याद्रमरुति,  
श्रमवशधिलोलमीलन्नयननीलोत्पलासु वहलतरुतलच्छायामाश्र-  
यन्तीषु सीद्दत्सैनिकनितम्बिनीषु प्रस्तावपाठकः पपाठ ॥

वृत्ति ॥ एवं मधनमण्डलादिष्वीदृशेषु तरसु प्रस्तावपाठकः पपाठ । विपामाया  
आकृतेनाभिप्रायेण सरलिता तारा कनीनिका यैः । श्रामान्वितथापदैः । गिरिमरिता  
सुरज्ञा' सधयस्तवहणेपु ॥

इस तरह पुष्कराक्ष प्रेम के अनुकूल, सृङ्गार के सदृश, आदर के समगुण,  
प्रेम-प्रपञ्च के प्रिय, काम के उद्दीपक, उत्कण्ठा के अनुगुण, प्रवृत्ति के उचिन  
सभाषण कर रहा था । मुनने की उत्कण्ठा में राजा भी समस्त अन्य कार्यों  
को भूत कर तन्मय जैसा हो गया था । असह्य धूप पचिको को मार्ग से स्थलिन  
कर रही थी । प्यास की व्याकुलता से चक्कर-कनीनिका वाले जगली जानवर  
हाफते हुए जलाशय की ओर जा रहे थे । नदी के तट तथा वन में विहार  
करने वाले हाथी, सूकर और भैसों का समूह पक्षुपूर्ण नदी-तट के कोचड के  
मर्दन में व्यस्त था । पक्षी अपनी पक्षों को समेट कर पेटों के खोसले रूप  
कटी के घोसले में छिप रहे थे । तट-गत घोसलों के एक देश में कुक्कुट पक्षी  
कूकू कर रहे थे । मयूरो और चक्रवाकों का समूह पर्वतों, नदियों और सुरङ्गों  
के बीच घूमते हुए मृगों द्वारा चरे गये दूर्वादल तथा नल नामक नीले तृण  
वाली तलहटी की भूमि खोजी जा रही थी । कपिञ्जल और वपोन के वृक्ष  
करञ्ज वृक्ष के नीचे इजट्टे होकर ठण्डी जगह पर निवास की आकाङ्क्षा से  
कूज रहे थे । दोपहर की धूप के कारण कुछ म्लान कोमल फूलों के कोश में  
रहने वाले ( दोपहर की धूप के कारण ) कुछ उष्ण पराग विन्दुओं की पर्याप्त  
वर्षा करने वाली, तापी ( यमुना ) नदी के तटीय तरङ्गों के सम्पर्क के कारण  
मेघ्य, दोपहर की हवा बह रही थी । सैनिकों की षकी हुई कान्ताएँ धम के  
कारण अपने चञ्चल नयन कमल को मुकुलित करती हुई पने पेटों को छाया  
का आश्रय ले रही थीं । ऐसी अवसर पर प्रस्ताव पाठक ने पदा — ।

‘विधिप्राः पत्रालोर्दलयति गलत्स्वेदमलिलै-

रमन्दं सृद्नाति प्रमदरुत्कुम्भतनतटी’ ।

प्रदन्धेनाकामजनजघनजटोरुयुगलं

श्रम सेनाङ्गेषु प्रसरति शनैः कामुक इव ॥ २४ ॥

विधिप्रा इति ॥ अने विधिः पत्रालीर्वाहनधेणीर्बिलेपनपत्रजल्लीश्च दलयति । तथा  
मत्सरिकुम्भानेव स्तनतटीरमन्द रोदयति । प्रदन्धेन सातायेन प्रकृष्टदन्धेन च ।

करजविशेषेण । प्रयाजाहटवाकन्दर्पभावाच्च । जयन च जह्ये शौर्युगलं च  
प्राग्द्वयाममाडम । तत कर्मधारय । तदाक्रमन्काशीव धम सेना । अत्रेयु  
हमन्त्रवादिषु प्रसरति ॥ २३ ॥

सेना के विभिन्न जङ्गलों में धम ( पनावट ) वामुक की तरह धीरे धीरे  
जैक रहा है विविध पत्तियों ( सवारियों ) को बहने हुए पत्तियों के जल  
में वक्षित कर रहा है । मतवाले हाथियों के कुम्भस्पर्श रूप स्तनतट को  
भ्रान्त कर रहा है । पैदल सैनिकों के जघा, जयन ऊर्ध्वगुण पर आक्रमण  
कर रहा है ॥ २४ ॥

[ वामुक पक्ष—वामुक भी अपने पत्तियों के जल से कामिनी के जङ्गलों  
पर की गयी पत्र रचना को विदग्ध कर देता है । मतवाले हाथियों के कुम्भस्पर्श  
स्तनतट का जोरो से भ्रान्त करता है । कामिनी जन के जनन,  
जुद्धा और ऊर्ध्व पर गाड बन्ध के साथ आक्रमण करता है । गहना यही  
है जिसेना के थोड़े हाथी पत्तियों से लय-पथ हो गये हैं और सैनिक विन्ध्यु  
धर गये हैं ॥ २४ ॥ ]

अपि च—

कूजत्क्रौञ्चं चटुलकुरुरद्वन्द्वमुन्नादिहंसं  
श्रीडत्क्रौडं निपतितलतापुष्पकिञ्चलकहारि ।

अस्याः सान्द्रदुमवनतलप्रान्तसुताध्वनीनं  
रोधः सिन्धोः स्थगयति भवत्सैनिकानां प्रयाणम् ॥ २५ ॥

दृश्यते ॥ कौञ्चकृन्नादीनि विशेषणानि रोधसो रम्यनाहेतुवाच्येन्यप्रयण-  
श्चलनमाद्यनानि ॥ २५ ॥

जहां कौञ्च पक्षी कूज रहे हैं, चक्र कुरुरों का जोड़ा ( विशालमन )  
है, हंसों का उत्तम कचरव हो रहा है, सूतर खेच रहे हैं, पके हुए पक्षि पत्ते  
वृक्ष-वन की छाया में सो रहे हैं, और गिरे हुए लता-पुष्पों के पराग से जो  
मनोहर बन गया है, ऐसे इस नदी तट को आपके सैनिकों का अभियान  
जगन्त कर रहा है ॥ २५ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य 'वाहक, वाहनां बहमतो यः हल्यादिहैव वासः,  
नद्वद् सैनिकान्, जयतरन तापीतीरतरुतलश्रयान्, आश्रयत धम-  
च्छिउदच्छाया, कुरुरत पटकूटो', कारयत ज्ञायमानानि, मुञ्चनामन्द-  
सुदुशाद्वलेष्वतलान्वलीवर्दकान्, कर्दयत कर्दमे महिषान्, खादयत  
चेत्तरोभिर्नशकरीराङ्कुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेलकान्, अवगाहा-  
यसाने पृष्ठावकीर्णपुलिनपङ्कपांसवो विहरन्तु स्वयंशं वंशस्तम्बेषु  
मन्धेरमा, तरुयुग्नेषु वधनीत तीव्रवेगान्वेगसरान्, अथतरन्तु

तार्पातीरतरङ्गेषु तुरंगाः, शिशिरतरङ्गानिलान्दोलितविधिधविकच-  
मञ्जरीजालजटिलेपूत्फुल्ललताखण्डमण्डपेषु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु  
किन्नरमिथुनानि' इति सेनापतिमादिदेश ॥

राजा त्विति ॥ कायमानानि नृगमयगृहाणि । वशानां करीरागामङ्करा ॥

राजा तो यह सुन कर, "बाहुक ! अधिकांश लोगो को यही का वास  
अभिमत है । अतः सैनिको को कहो । तापी नदी के तटगत वृक्षों की छाया  
के नीचे उतरे । यकावट को नष्ट कर देने वाली छाया में ठहरे । बैसों को  
कीचड़ में उछावें । गदहों को बाँध और करीर के कपोलों को खिलवाँ । उँटों  
को क्रम से घुमावें । स्नान कर लेने के बाद तट के कीचड़ कर्णों की पीठ पर  
फेकने हुए हाथी अपनी इच्छा के अनुसार बाँध के जङ्गलों में विहार करे ।  
जोर से भागने वाले खच्चरों को पेड़ों के मूल में बाँध दें । यमुना के तटीय  
तरङ्गों में घोड़े उतरें । किन्नर-मिथुन ठण्ठी लहरियों से स्पष्ट वायु द्वारा कम्पन,  
विविध खिली हुई मञ्जरियों से व्याप्त विकसित लता समूह के मण्डपों में दो  
पहर का समय बितायें ।" ऐसी सेनापति की आज्ञा दिया ।

स्वयमपि पुष्कराक्षसूचितार्थपथश्रमपिन्नकिन्नरमिथुनद्विदक्षया  
कृतमृगयाविनोदव्यपदेशी दिशि दक्षिणस्यामातस्तोरुपरिवारपरि-  
वृतो झरन्निर्झरन्नात्कारिवारिरमणीयासु रममाणपुल्लिन्दनितम्बिनी-  
चदनचन्द्रबिम्बतासु सान्द्रद्रुमद्रोणीषु विचरितुमारभत ॥

स्वयं भी पुष्कराक्ष द्वारा सूचित, आधे रास्ते में ही श्रम के कारण थके  
हुए किन्नर-मिथुनों को देखने की इच्छा से शिकार द्वारा मनो विनोद के बहाने  
कुछ प्रामाणिक परिजनो के साथ दक्षिण दिशा की ओर विहार करने के लिये  
चल पडा । वहाँ घने वृक्षों की खोजने वाली नहरे गिरते हुए झरनों की झा झा  
ध्वनि से मनोहर थीं । रमण करती हुई किरात-कागताओं का चदनचन्द्र उनमें  
प्रतिबिम्बित था ।

पुरः स्थितश्चास्य चर्मं दर्शयन् जात्यतरतुरंगमारोपितः पुष्करा-  
क्षोऽप्यभासत ॥

एक उत्तम कोटि के घोड़े पर पुष्कराक्ष आगे आगे रास्ता दिखाता हुआ  
बोझ ।

'देव, मार्कण्डेयप्रमुग्धमहामुनिनिवासपवित्रिताः पुण्याः खल्विमाः  
पयोष्णीपरिसरवनभूमयः ॥

श्रीमान्, पयोष्णीतट के ये वन स्थल मार्कण्डेय जैसे बड़े-बड़े मुनियों  
के निवास के कारण पवित्र एवं पुण्य हो गये हैं ।

तथाहि—

श्रूयते किलास्मादुद्देशात्पूर्वदिग्भागे भगवतः पुराणपुत्र्याच-  
तारम्य परशुरामस्य जनयितुर्जमदग्नेराधमः । ततोऽपि नातिदूरेण  
सुरामुरमौलिमालानुकुलमुक्तमकरन्दचिन्दुम्नपितपादारविन्दस्य भग-  
वतः स्वम्बेदप्रमरप्रवर्तितपयोष्णीप्रवाहस्य महावराहम्यायतनम् ॥

वचोक्ति—

हम लोग जहाँ हैं इसमें पूर्व दिशा में भगवान् विष्णु के अवतार परशुराम  
क पिता जमदग्नि का आश्रम था, ऐसा मुना जाता है : उस स्थान से थोड़ी  
ही दूर पर देवा और दानवों के शिर में लगी हुई माला की कल्पियों के पराग  
से न्नात किने हुए चरण कमल वाले भगवान् महावराह, जिनके अरने पत्तने की  
धारा से पयोष्णी नदी का प्रवाह निकला है, की बुरी है ।

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

सैषा चलच्चन्द्रकिचक्राकचञ्चकोराकुलकुलकच्छा ।

स्व.सीमसोपानपटकरङ्गा गङ्गाप्रतिस्पर्धिपयाः पयोष्णी ॥ २६ ॥

मैत्रि ॥ चन्द्रकी मयूर । कच्छा काशादिचेत्रप्रदेशा । स्व.सीमेषत्र स्वरिच  
व्यय स्वर्गार्थम् ॥ २६ ॥

महाराज, इधर भी देखें—

जहाँ मयूर और चक्राक घूम रहे हैं, चञ्चन् घबनि करन हुए चकोरो  
से तट व्याप्त है, स्वर्ग की सीमा तक पहुँचने वाली सीढियों की तरह  
तरङ्गे हैं, जब जितना गंगा के साथ प्रतिस्पर्धा करता है ऐसी यह पयोष्णी  
नदी है ॥ २६ ॥

यस्याः पश्यैते—

मुक्ताक्षैः श्रूयमाणां सिकतिलपुलिनप्रान्तविश्रान्तपान्यै-

रुन्धानं मञ्जुगीतप्रियहरिणकुलान्यम्बुपानागतानि ।

सांध्यध्यानावसाने क्षणमिव मुनयः संनिधौ पङ्कजाना-

मोद्गारोच्चारस्वयं मधुकरमधुरश्चानमाकर्णयन्ति ॥ २७ ॥

मुक्तेः ॥ सिकतास्यास्तीत्यर्थे हल्च् । मधुकरश्चानस्योरुष्णान्नकत्वात्पान्याना  
मुक्ताक्षुषम् । गीतप्रियवाहरिणानां रोषो मुनीनां च देवत्रयीवेदत्रयीवाचिर्न्योकारे  
हीनात्वात् तत्प्रतिनिधौ मधुकरश्चाने बहुमानः । तथा च 'त्रयीं तिस्रो वृत्तींश्चिमुवन-  
मयो त्रीनपि सुरा नकाराधैर्वर्णैस्त्रिभिरभिद्रक्षतीर्णविकृति । तुरीयं ते धाम ध्वनि-  
निरावृत्तानममुभि' समस्तं व्यस्तं (सां दार १६ गृगान्योमिति पदम्) ॥ २७ ॥



देखिये जिसने—

यहाँ की मधुर मधुकर ध्वनियों कमलों के समीप पानी पीने के लिये आये हुए मधुर पीत से अधिक स्नेह रखनेवाले हरिणों की रोक रही हैं, बाढ़ भरे तट के एक देश में विधाम करने वाले आंसू टपकाने हुए पषिकों द्वारा सुनी जा रही हैं, सायकाल ध्यान की समाप्ति के अवसर पर मुनि लोग (उन ध्वनियों को) ओंकार सहस्र रमणीय समझ कर सुन रहे हैं ॥ २७ ॥

[ विमुक्त पषिकों के लिए नदी का बाढ़वा-बहुल ऐकान्तिक तट ही उद्दीपन के लिए पर्याप्त था, तबतक मधुकरों की मधुर ध्वनि भी मिल गयी जो उन्हें बिना हनाये नहीं छोड़ी। हरिण सभी सुखों की अपेक्षा वर्ण सुण को अधिक महत्त्व देने हैं। इसी लिए मधुकरों की ध्वनि उन्हें रोक रही है। मुनियों के लिए भी वह आकर्षण की चीज हो गयी है, क्योंकि उनकी प्रियतर ध्वनि ओंकार की उसमें पर्याप्त समानता है ॥ २७ ॥

राजा तु 'नमस्याः खत्वमी महानुमावाः ॥

राजा तो, 'ये महानुभाव प्रणम्य हैं।

तथाहि—

मृगेषु मैत्री मुदितात्मदृष्टौ कृपा मुहुः प्राणिषु दुःखितेषु ।

येषां न ते कस्य भवन्ति चन्दाः कौशैयकौपीनभृतो मुनीन्द्राः ॥२८॥

मृगेषु ॥ मैत्री मुदिता कृपा इति तिस्रोऽपि चेत प्रसादिभ्यो भावनाः ।

कौशैयकौपीनभृत इति नि मङ्गलबोक्त्वा पापकारिषूपेक्षाप्यभिहिता ॥ २८ ॥

क्योंकि—

मृगों के साथ जिनकी मित्रता है, आत्मदर्शन में ही जिनकी प्रसन्नता है, दुःखी प्राणियों पर जिनकी कृपा है ऐसे कौशेय रज्ज के कौपीन पहनने वाले मुनि किसके लिये वन्दनीय नहीं है ।”

इत्यवधारयैस्तान्वचन्ने ॥

यह सोधता हुआ प्रणाम किया ।

मुनयोऽपि 'सोऽयं सोमपीथी निषधनाथ' इत्यनुध्यानादवगम्य प्रयुक्तप्रसोक्तादिषु, अनुगृह्यन्त इच्छार्द्रैर्दृष्टिपतैः, आभ्यासयन्त इव प्रियभ्यामाहप्रस्तात्तापेन, न्नपयन्त इव दूरदृशितदन्तज्योत्स्नामृत-प्लवेन, आह्लादयन्त इवादरेण, दूरप्रार्थ्यमनन्तरमिदमवोचन् ॥

मुनयोऽपीति ॥ दूर अर्थ यद्दशितं तेन दन्तज्योत्स्ना सैवागुनप्लवस्तेन । दूरेषु यमीपदर्थं ॥

मुनि भी, “यह यही सोमपाद-कर्ता, निषध देश का राजा है ।” ध्यान शक्ति द्वारा यह जानकर, वेदोक्त आशीर्वाद देकर स्नेहार्द्र-दृष्टि से मानो अनु-

गृहीत कर रहे थे। मधुर स्वागत-प्रदशनवियमक बातों से आरवाहन सा दे रहे थे। मुस्कराते हुए दाँतों की कान्ति से सुगम की धारा से नहला सा रहे थे। आदर द्वारा प्रमुदित सा कर रहे थे। ( इन भावाभिव्यञ्जनों के द्वारा ) अर्घ्य देकर बोले—

‘आयुष्मन्, अस्मदीयमिह धर्मोपदेशप्रदानमेव प्रथममातिथेयम  
निथिजनेऽनोऽभिधीयसे। पुण्यं पयोऽस्याः सरित तदेतद्वगाह्य  
कुरु पुण्यमयमान्मानम् ॥

“आयुष्मन्, अतिथि लोगों के लिये हून लोगों का यहाँ पहला आतिथेय धर्मोपदेश ही है। अतः तुम से यही कहा जाता है कि इस नदी का जल पुण्य है। इसने स्नान कर अपने आपको पुण्यमय बना लो।

तथाहि—

पर्वतभेदिपवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतद्गहनम्।

हरिमिव हरिमिव हरिमिव बहति पयः पश्यन् पयोष्णीं ॥ २९ ॥

पर्वते ॥ राजन्। पर्यत यूयमदटोऽयत्। पर्वतविदारकं पावनं नरकस्य  
दुर्गनेऽत्रं परामविष्णु। अत एव बहुमत बहुमाननीयम्। गहनमगाधम्। पयः-  
पापः। कर्ममूलम्। पयोष्णी वहति धारयति। उपमाने हरिशब्दत्रयमिन्द्रविष्णु-  
मिहार्थम्। तत्रमेव विदिष्यते। तद्यथा पर्वतभेदी गिरिविशारको यः पवित्रं त  
श्रायते धारयति चत्रवरम्। नरकस्य भौमामुरस्य जैत्रमभिष्णुत्कं विष्णुम्।  
मनद्गान्मुनिविशेषादीयदूनाः बहुमतद्वा गजा मतद्रादुत्तरावान्। तान् हन्तीत्यच्।  
द्विष्वा। अथवा बहुमतद्गान्हन्तीति मिहम् ॥ २९ ॥

क्यों कि देवी—

यह पयोष्णी नदी इन्द्र, विष्णु तथा सिंह की तरह पर्वत तोड़कर निकलने  
वाले, पवित्र, नरक को जीत लेने वाली ( दुर्गाति से बचाने वाली ), अत्यन्त  
माननीय एवम् अगाध जल ला रही है” ॥ २९ ॥

[ विष्णुपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् ( गोवर्धन पर्वत उठाने वाले और पवित्र )  
नरकस्य जैत्रम् ( नरकामुर को जीतने वाले ) बहुमतम् ( बहुजो के द्वारा सम्मानित )  
गहनम् ( दुर्ग ) भगवान् विष्णु हैं।

इन्द्रपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् ( पर्वतों के पत्थों को काट लेने वाले  
और पवि ( वज्र ) को धारण करने वाले या वज्र से लोगों को रक्षित करने  
वाले ) जैत्रम् ( विजयी ) नरकस्य बहुमतम् ( मनुष्यों द्वारा सम्मानित )  
गहनम् ( अविज्ञेय )।

सिंहपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् ( पर्वतभेदि ( बन्दराजा ) में रहने वाला  
और वृषिह भगवान् के आशिक स्वर्ण को धारण करने के कारण या

भगवती का राहन होने के कारण पवित्र) नरकस्य जैत्रम् ( मनुष्य को जीत लेने वाला ) बहु + मतङ्ग + हनम् ( बहुत से हाथियों को मार गिराने वाला ) ।

पयोणीजलपथ —

पर्वतभेदिपवित्रम्—(पर्वतीय चट्टानों को तोड़कर निकलन वाग, अत्यन्त निर्मल) नरकस्य जैत्रम् ( दुर्गति से बचाने वाला ) बहुमतम् ( सर्व पूजित ) गहनम् ( अगाध ) ।

प्रथम एवं द्वितीय चरण के विशेषणों के चार अर्थ हैं । पयोणी नदी भगवान् बराह के स्वेद-बिन्दु के प्रवाह से निकलती है अतः उसका पवित्र होना स्वाभाविक है । श्लेष द्वारा कवि ने इसे बहुविध अवतार के देवा के समान सिद्ध किया है । पयोणी का जल पापों को नष्ट करने में सिंह, विष्णु और इन्द्र जैसा शौर्य-सम्पन्न है । यहाँ वीर रस की ध्वनि है । श्लेष से अनुप्राणित उपमा अठ्ठार है ॥ २९ ॥ ]

रजापि 'एवमेतत्—

महाबराहद्विनिर्गताया किमन्यदस्या. परतः पवित्रम् ।

यदीयमालोकनमप्यघानि निहन्ति पुसां चिरसंचितानि ॥ ३० ॥

महावेति ॥ आदिबराहद्विनिर्गताया अमुन्या परत परत परम-वदपर किं पवित्रं न किमपीत्यर्थं ॥ ३० ॥

राजा भी, "यह ठीक ही है—

महाबराह के अङ्गों से निकली हुई इस नदी से पवित्र और क्या हो सकता है जिसका दर्शन भी मनुष्यों के चिर संचित पापों को नष्ट कर देता है ॥ ३० ॥

तदेव करोमि भयतामादेशम्' इत्यभिधाय यथाविधि स्नानाय सरिन्मध्यमघातरत् ॥

अतः लीजिये, आप लोगों की आज्ञा का पालन कर ही देता हूँ ।" यह कह कर विधिपूर्वक स्नान करने के लिये नदी में उतरा ।

अवतीर्य च मन्त्रमार्जनप्राणसंयमसंध्यासूक्तजपपितृतर्पणादिसमुचित्वाह्निकावसाने रक्तकमलगर्ममर्षाञ्जलिमुत्क्षिप्य भगवतो भास्करस्य स्तुतिमकरोत् ॥

अधीर्येति ॥ मन्त्रमार्जनं मन्त्रस्नानम् । प्राणसंयमं श्वात्मस्थासरोधनं कर-न्यासोऽङ्गन्यासश्च विद्यते यत्र तत् संध्यासूक्तम् ।

उत्तर कर मन्त्र द्वारा स्नान, प्राणायाम, मन्त्रा, पुष्पमूक्त जादि का पाठ जन, पितृतर्पण आदि दैनिक कार्यों के अन्त में लाल कमल में बज्र देकर भगवान् सूर्य की मूर्ति किया ।

जयति जगदेकचक्षुर्विन्वात्मा वेदमन्त्रमयमूर्तिः ।

तरपिन्तरपनरण्डकमघपटलपयोनिधौ पुंसाम् ॥ ३१ ॥

संसार के एकमात्र नेत्र, सम्पूर्ण विश्व के हृदय, मनुष्यों के पाप पुत्र रूप सागर को पार करने के लिये तण्डक ( नौका ) भगवान् तरणि ( सूर्य ) सर्व-प्रसन्न हैं ॥ ३१ ॥

[ भगवान् सूर्य को "त्रयी तनु " वेद मूर्ति कहा गया है ॥ ३१ ॥ ]

तदनु च चटुलचञ्चरीककुलाकुलिनकमलकुड्मलगलद्वहलमकरन्द-  
सुमित्रतरङ्गनुत्पनत्कपिञ्जलं जलमवगाद्य चिरमुत्तीर्य तीरमापृच्छद्य  
मुनिजनमभिवाद्य च पुनः पुलिनपालिपर्यटनाय प्रस्थितः प्रणयादनु-  
यत्नतो मुनीन्निवर्तयन्निदमवादीत् ॥

तदनन्तर चञ्चल भ्रमरो मे व्याप्त कमल-कलियों से गिरते हुए पर्याप्त पराग मे सुगन्धित तरङ्ग तथा उल्ले हूए कपिञ्जला से अलङ्कृत जल मे स्नान करने के बाद तट पर आकर देर तक मुनियों का पूजन और प्रणाम कर तटपक्ति पर घूमने के लिये चल पडा । स्नेह से पीड़े पीड़े चलते हुए मुनिया को लोटता हुआ कहा—

'चक्रधरं विषमाश्रं कृदमदकलराजहंससंचारम् ।

हरिहरविरिञ्चिसदृशं भजन पयोष्णीतटं मुनयः' ॥ ३२ ॥

चक्रेति ॥ चक्रवाकधाम् । विषमविभीनकम् । तथा कृतो मदकलराजहंसाना मंचारो येन तथाविधम् । पयोष्णीतटं धूर्य मघ्नत । मुनय इति सम्बोधनम् । हरि-  
हरविःश्रिमादृश्य विशेषगत्रयेण । तदा चक्रं सुदर्शन धारयति विष्णु विषमाय्य श्रीग्यस्य त्रिनेत्रवाद्धर । कृतो मदकलराजहमेन कृवा सञ्चारो येन स मङ्गा, हंस-  
वाहनवात् ॥ ३२ ॥

चक्रवाक को धारण करने वाले, बड़े-बड़े स्त्राक्ष आदि के वृक्षों से मण्डित जोर प्रौढ एवं मुरर राजर्षि की गति मे, युक्त विष्णु, शिव और ब्रह्म सहस्र पयोष्णी तट का मुनि लोग सेवन करें ॥ ३२ ॥

[ यहाँ पयोष्णी तट के तीन उलमान हैं । हरि ( विष्णु ), हर ( शिव ) और विरिञ्चि ( ब्रह्मा ) । भगवान् विष्णु जैसे चक्रधर ( चक्र धारण करने वाले ) हैं वैसे यह भी चक्रधर ( चक्रवाक पक्षी को धारण करने वाला ) है ।

भगवान् शकर जैसे विषमाक्ष ( त्रिनेत्र ) हैं वैसे यह भी विषमाक्ष ( विभीतक वृक्षो ) से युक्त है । भगवान् ब्रह्मा जैसे मन्द-कण्ठ-राजहंस-संघार ( प्रौढ एव सुन्दर राजहंस की वाहन बनाये हुए ) हैं वैसे यह भी प्रौढ तथा सुन्दर राजहंसों की गति में युक्त है ॥ ३२ ॥ ]

पद्ममुक्तास्तेऽप्यार्द्रहृदयाः स्वल्पपरिचयेनाप्युपचितोचितप्रणयाः  
प्रियंवदतया प्रियमाशशंसुः ॥

राजा के इस तरह कहने पर स्वल्प परिचय रहने पर भी प्रगाढ़ स्नेह वाले वे आर्द्रचित्त मुनि मधुरभाषिता के साथ सिय आशीर्वाद दिये—

‘सुगमस्तवास्तु पत्न्या क्षेमा दिग्देवताः शिवा शकुनाः ।

अभिलषितमर्थमचिरात्साधयतु भवानविष्णेन’ ॥ ३३ ॥

“आप का मार्ग सुगम हो । दिग्देवतायें कल्याणकर हों । मङ्गलमय पशुन हो । शीघ्र ही अपनी आकाङ्क्षित वस्तु को निर्विघ्न प्राप्त करें” ॥३३॥

इत्यभिधाय ध्यावृत्तेषु मुनिषु कौतुकादितस्ततः संवरञ्चदुल-  
पञ्चरणचक्रचुम्बनाकृततरलितपुष्पपरागपटलपांसुलिनतस्तलेषु चह-  
रसुरभिशिशिरकोमलपवनेषु घनेषु, घनेचरमिथुनमन्मथकौडानुकूलेषु  
कलेषु, पुतिन्दडिम्भकाध्यासितफलितचदरीषु दरीषु, पुञ्जिनकुञ्जरेषु,  
निकुञ्जेषु, दुर्दर्शभानुषु सानुषु, सानुचरध्वरान्नेकस्मिन्नतिनिविडसंधि-  
सनिवेशे शिलान्तरालप्रदेशे, प्रियतममुद्दिश्य पठन्त्याः किंनर्याः साध-  
र्यमार्यागीतिमिमामशृणोत् ॥

इत्यभिधायेति ॥ पुलिन्दडिम्भैरध्यासितासु कासु फलवद्दरीषु, न केवल फल-  
वद्दरीषु, तथा दरीषु । चकारादिमन्तरेणापि समुच्चयः स्यादेव । तथा माये  
दशमसर्गे,—सावशेषपद्मुक्षमुपेवा स्मरतमाश्रयवमनाभरणेषु । गन्तुमुरिधनमकार-  
णन स्म द्योतयन्ति मद्बिभ्रममामाम् । अध्यासितास्त्विति व्यस्तमेव । न च  
फठनयो वदर्यो यास्विनि दरीवितोषगम् । ‘नष्टतश्च’ इति कर्त्तव्यस्य दुर्निवार  
त्वात् । यादुलकाश्रयजातकम्प्राययाभाव इति तु न युक्तम् ॥

यह कह कर मुनि लोग चले गये । भनभनाता हुआ चञ्चल ध्रुव-समूह  
चूमने की उत्कण्ठा से पृथ्वी को कम्पित कर रहा था । अन उनके पराग में  
वृक्ष केवल पुलि-धूसरित हो गये थे । वन में सुगन्ध, रीतिल एव मन्द हवा  
बह रही थी । तट के स्वान घबर दम्पतिमों की काप फ्रीडा के अनुकूल थे ।  
बैर फल में युक्त मुकाभों में किरातों के बच्चे बैठे थे । निगुञ्जों में हाथी  
इकट्ठे हुए थे । पर्वता की चोटियाँ मूर्ध के कारण मुश्किल से देखी जा रही  
थीं । परिजनो के साथ इधर-उधर उत्कण्ठापूर्वक घूमता हुआ राजा घने

पर्वत सन्निवाले एक स्थान पर एक शिवा के कोने अपने प्रिय को निमित्त कर पढती हुई किन्नरी की आर्षा छन्द वाली इस गीति को बड़े आदर्चन से सुना—

‘विपिनोद्देशं सरसं केतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम् ।

ग्राममिमं धा सर संकेतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम्’ ॥ ३४ ॥

विपिनेत्रि ॥ सरस सजलम् तथा केतकमकरन्देन वामित वियत्तमः ककुभश्च दिशो येन तथाभूतम् । विपिनप्रदेशम् । अथवा इम पुरोवर्तिनं ग्रामं सर मञ्ज । कीदृश ग्रामम् । संकेतयति निवासयति अनुकूलत्वान्निवासहेतुर्भवतीति संकेतकम् । तदेवानुकूल्यमाह—अकरमिति । न विद्यते करो राजप्राज्ञोऽशो यत्र । पर्वतीपरवादकरम् । आश्रयमाश्रित सद्भाव । दवस्यामिताद्विपन्तो विस्त्रियन्तः ककुमास्तरवो यत्र । यदि वा ‘विष् बन्धने’ आहूपूर्वरय आश्रयनमाश्रितम् । आवन्ध इत्यर्थः । यद्वा मित्वा सम्बद्धा । दवेन असिता असंबद्धा वय पक्षिणो यत्र । तथा यद् बहव क पयो यस्यां सा वासो कुश्च तथा भातीति । इगः शतरि यद्बहदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

जगत् के इस सरस स्थान पर चलो जहाँ का आकाश ओर दिखाएँ केवड़े के पराग से सुरभिउ है अथवा इस गाँव में चलो जहाँ के ( गृहपात्रित ) पक्षी जगत् से असम्बद्ध हैं और जहाँ का बहता हुआ जल और भूतल अत्यन्त भन्म है ॥ ३४ ॥

[ इस पद में यमक की बड़ी अच्छी योजना है । ग्रामपक्ष—संकेतक—निवासयोग्य । अकरम्—कररहित । पहाड़ी गाँव है । दया के कारण राजा ने कर माफ कर दिया है । दवासितवि—दव ( जगत् ) से असित ( असंबद्ध ) हैं वि ( पक्षी ) जहाँ के । मनोरञ्जन के लिए लोग घरों में पक्षियों को पाले हैं अब पिबड़े में बन्द रहने के कारण उन्हें जगत् में जाने का अवसर नहीं मिलता । चत्+क+कु+भ—यत् ( बहता हुआ ) क ( जगत् ) कु ( पृथ्वी ) भ ( भन्म ) है । ‘इण् गतो धातु के शतृ प्रत्यय का रूप यत् है । बहते हुए अर्थ में इसका यहाँ प्रयोग हुआ है । दवासितवि और यत्ककुभ इन बहु-ब्रीह्यन्त पदों का कर्मधारय हुआ है । अर्थात् इस सामन वाले गाँव में चलो जो संकेतक, अकर, दवासितवि, यत्ककुभ है ।

अरप्य-स्थान पक्ष में तो मकरन्दवानित-वियत्ककुभम् का सीधा अर्थ है—पराग से सुगन्धित कर दिमा है आकाश और दिशाओं को जिसने ॥३४॥ ]

तदनु पुनस्तत्प्रतिवादिना किन्नरेण च पठ्यमानामिमामार्याम-  
श्रौषोत् ॥

वदिति ॥ किञ्चिन्नरा किञ्चिप्यथादिरूपमिध्रा किन्नरा ॥

तदनन्तर उसके प्रतिवादी किन्नर द्वारा पढ़ी जाती हुई इस आर्षा को सुना—

‘अजनि रजनिः किमन्यत्तरणिस्तरतीव पश्चिमपयोधौ ।

घनतरुणि तरुणि विपिने वृचिदन्मिन्नेव निवसामः’ ॥ ३५ ॥

अजनीति ॥ घनास्तरवो यस्मिन् तरिमन्विपिने । तद्वशीति सम्बोधनम् ॥ ३५ ॥

ओ तरुणि । रात हो चली, अधिक क्या कहे, सूर्य पश्चिम सागर में तैरने सा लगा है । हम लोग इसी घने वृक्षों वाले जंगल में निवास कर ले ॥ ३५ ॥

[ ‘घने है तव ( वृक्ष ) जिसमें’ इस विग्रह में घनतरुणि शब्द विपिने का विशेषण है । अर्थात् सप्तमी का एकवचन है । दूसरा तरुणि पद तरुणी शब्द का सम्बोधन है ॥ ३५ ॥ ]

एवमन्योन्याल्लापमारुण्य किन्नरमिथुनस्य विस्मितो नरपतिः अहो माननीयमहिमोद्दामा दमयन्ती यस्याः परिचारिणः पक्षिणोऽपि श्रवणस्पृहणीयामेवंविधसुभाषितामृतमुचं वाचमुच्चारन्ति ॥

किन्नर-मिथुन की इस तरह की आपस की बात सुनकर राजा आश्चर्य में पड़ गया । दमयन्ती अपनी प्रशसनीय महिमा के कारण सर्वथा उत्कृष्ट है, जिसके समीप रहने वाले पक्षी कानों को प्रिय लगने वाली मनोहर उक्ति रूप सुधा बरसती हुई वाणी बोल रहे हैं ।

प्रथममिह तावदाभिजात्यवित्तविद्याविवेकविभ्रैरनाकुले कुले जन्म ततोऽप्यनुरूपरूपसंपत्तिस्तदनु श्लाघानुगुणगुणलाभस्ततोऽपि च शुचिविदग्धस्निग्धपरिजनाघातिरिक्तं महती भाग्यपरम्परा’ इति चिन्तयन्नतिदूरवर्तिनं पुष्कराक्षस्य मुग्रमवलोक्यांचकार ॥

प्रथममिति ॥ आभिजात्यादीनि अहंकारकृतवैकल्यस्य कारणानि । कुले श्वेभिरनाकुले । अनुगुणोऽनुरूपः ॥

प्रथमतः तो उत्तम परम्परा, सम्पत्ति, विद्या, विचार और ऐश्वर्य के होने हुए भी अहंकार-रहित ऐसे कुल में जन्म, इसके अतिरिक्त यथानुकूल ही मौन्दर्य-सम्पत्ति, उस पर प्रशंसा के ही सहस्र गुणों की प्राप्ति, इसके अतिरिक्त बुद्धिमान् एवं स्नेहपूर्ण परिजनों की उपलब्धि, यह बहुत बड़ी सोभाग्य-शुद्धि ला है ।’ यह सोचता हुआ थोड़ी दूर पर स्थित पुष्कराक्ष के मुख की ओर देखा ।

पुष्कराक्षोऽपि पुरःसृत्य तं किन्नरमभाषत ॥

पुष्कराक्ष भी आगे बढ़ कर किन्नर से बोला—

‘सुन्दरक, कामतामुखावलोकनासक्तः समीपमागतानप्यम्प्राप पदयति ॥

‘सुन्दरक, अपनी गिया का मुह देखने में लगे हो ? समीप में भी आय हुए हम लोगों को नहीं देखन ?

नदिनो दत्तदृष्टिर्भव ॥

इतर जरा देवी -

स एव निपथेश्वरः कुसुमचापवक्रं विना

प्रसादितमहेश्वरः स्मर इधागतो मूर्तिमान् ।

विलोक्य विलोचनानृतसमुद्रमेनं नृपं

विधेहि नयनोत्सवं कुरु कृतार्थनामारुनः ॥ ३६ ॥

न एति । एव निपथेश्वरो नरः कुसुमचापवक्रं विनामूर्तो मूर्तिमान् प्रसादिन-  
महेश्वरः स्मर । एतावता पूर्वस्मगद्गुणतिरेकोक्तिः । यत्. पूर्वं कुसुमचापवक्रं  
धनम् । नचमूर्तिमान् दशगद्गुणवान् । तथा प्रकोरिणमहेश्वरः । यदा तु प्रसाधितेति  
पाठः, तदा प्रमथिना बलदुर्गना महान्त ईशान्नागादिना येन तादृग् निपथेश्वरः ।  
स्मरस्तु नाधयितु वशीकृतुं प्रारब्धो महेश्वरः शिवा येन । कुसुमान्येव च वक्रं  
धनुर्मगद्गुणम् ॥ ३६ ॥

वह निपथन्नराट् आ गया जो पुपबाण समूह को धारण किये बिना ही  
भावान् शङ्कर को प्रसन्न किया हुआ मूर्तिमान् काम की तरह यह है । आत्मा के  
लिये अमृत-सागर इस राजा को देखा, नेत्रोत्सव मनाओ और अपने आप का  
वृत्तार्थ करो ॥ ३६ ॥

[ यहाँ कामकी अपेक्षा नर को उत्कृष्ट बनाया गया है । काम फूल  
का बाण धारण करता है । नर बिना फूलों का बाण धारण किये ही काम  
है । काम शंकर जी को रष्ट किया था । नर शंकर जी को प्रसन्न किया है ।  
काम अनङ्ग ( अङ्गहीन ) है, नर मूर्तिमान् ( साङ्ग ) है । इन विचित्रताओं से  
सम्पन्न नर को देखकर अपने आप को वृत्तार्थ करो ॥ ३६ ॥ ]

त्वमपि विहंगवागुरे परमरहस्यसखी देव्या सा हि त्वञ्चक्षुषा  
पश्यति, त्वत्कर्मभ्यामाकर्णयति, तदन्मनसा मनुते ॥

पतिमोहिका, तुम भी ( देखना ), क्या कि देवी की तुम एतन्त सखी  
हो । तुम्हारी ही आँसों से वह देवकी है, तुम्हारे कानों से सुनती है और  
तुम्हारे ही मन से कुछ निश्चय कर पाती है ।

नदिह दमगन्तामनोरथान्यपिपामाच्छिदि लाघप्यपुण्यहृदेऽ  
मिमन् राजनि निरपय चक्षु' इति किन्नरमियुनमभिमुखीकृत्य नरपति-  
नवादीति ॥

- दमयन्ती के मनोरथ-पथिक को शान्त करने वाले, सौन्दर्य के पवित्र सरोवर  
इस राजा से अपनी त्रासों मृप्त कर लो ।" इस तरह बोलता हुआ किन्नर-  
मियुन को सामने कर राजा से कहा -



‘देव, तदेतर्किनरमिथुनम्, इदं हि द्वितीयमिद्य हृदयं देव्या,  
प्रिय प्राणेभ्योऽपि प्रेम्णा प्राभृतमेतत्प्रहितं तुहिनाचलचक्रवर्तिना देव-  
म्य, देवेन देव्यै दत्तम् । तथा च दमयन्त्या. समर्पितं परं पात्रं  
मन्त्रगीते. ॥

देवेति ॥ तुहिनाचलस्य हिमाचलस्य चक्रवर्तिना नृपेण प्राभृतं प्रहितमेतत् ।  
भीमायेति शेषः । मन्त्रा गीयन्तेऽस्यामिति मन्त्रगीति ॥

महाराज यही वह किन्तु-र-मिथुन है । यह देवी का द्वितीय हृदय है ।  
हिमालय के चक्रवर्ती राजा ने बड़े प्रेम से महाराज ( भीम के लिये इन्हें  
उपहार में दिया था । महाराज ने इन्हें देवी को दे दिया और देवी ने दमयन्ती  
को समर्पित कर दिया । गुप्त मन्त्रणा के ये उत्तम पात्र हैं ।

तथाहि—जातव्याति जातिषु, गीतयशो गीतकेषु, वर्धितमानं  
वर्धमानेषु, सारमासारितकेषु, निपुणं पाणिकासु, धाम साम्नाम्,  
आचार्यकमृचाम्, आलयः कलादिभेदानाम्, रसगोप्यामपि सुस्वरं  
स्वरालापेषु, अवग्राम्यं ग्रामरागेषु, विचित्रभाषं भाषासु प्रवर्तकं नर्त-  
नानाम्, कारणं करणमार्गस्य, वाद्येष्वपि प्रवीणं वीणावेषु, लब्ध-  
पाटयं पटहेषु, अप्रतिमल्लं ब्रह्मरीषु ॥

जातेति ॥ जातयो नन्दयन्तीप्रभृतय । वर्धमानान्वासारितकानि पाणिकाः  
सामानि श्रेष्ठ कलादिभेदा गीतविषया भरतशास्त्राद्गम्या । मध्यमादय सप्तस्वरा  
पट्जमध्यमगान्धारोऽस्यो ग्रामा । भाषा पटुत्रिणात् । कला गीतवाद्याया मुहूर्त-  
भेदाश्च । करणानि तलपुष्पपुटादीन्यष्टोत्तराक्षतपक्षयानि ॥

नन्दयन्ती आदि जातियो में इनकी बड़ी ख्याति है । गीत के प्रसङ्ग में  
इनका बहुवचनित यश है । वर्धमाना में इनका बड़ा सम्मान है । आसारितको  
क ये सार हैं । पाणिकाओ में बड़े निपुण हैं । सामगान में इनका प्रशसनीय  
स्वान है । श्रुचाओ के आचार्यरूप हैं । कलाभेदों के मित्र हैं । रसगान के  
प्रसङ्ग में स्वरालाप करने में इनका स्वर बड़ा अच्छा है । ग्रामरागों में भी  
निपुण हैं । विभिन्न भाषाओं में भी इन्हें विविध वातृता प्राप्त है । बहूत से  
नृत्य-प्रकारों के ये आविष्कारक हैं । ( तल पुष्पपुटी आदि ) कारण मार्गों के  
जन्मदाता हैं । वीणा, वेणु आदि वाद्यों में प्रवीण हैं । नगाडा बजाने में भी  
इन्हें पाटव प्राप्त है । शाल बजाने में तो अप्रतिम हैं ।

[वर्धमान, आसारितक, पाणिक, साम, श्रुक्, कला आदि गीत के विषय है ।  
मध्यम आदि सात स्वर है । पट्ज, मध्यम और गान्धार दो ग्राम कहलाते हैं ।  
तल पुष्पपुटी आदि एक ही आठ कारण होते हैं । सगीत के ये सब पारि-

भाषिक शब्द है। व्यावहारिक कार्यों के अविरक्त किन्नरो की सबसे अधिक उपयोगिता संगीतमूलक मनोरञ्जन में ही है। अतः इस विषय में इतना अधिक नैपुण्य सर्वथा स्वाभाविक है। ]

कियहुना—

कालमिव कलाबहुलं सर्वरसनुप्रवेशि लवणमिव ।

तत्र नृप सेवां कर्तुं किन्नरयुगलं तथा प्रद्वितम् ॥ ३७ ॥

कालमिति ॥ कला गीतवाद्याद्या मुहूर्तभेदादथ विद्वन्वधीयते वा कला कल विद् । तेषां समूहः कालम् । तद्यथा । कालशास्त्रविषये । बहुल तस्मिन् भवति । तथेदमपि समग्रकलासर्वांगम् । रसाः शृङ्गाराद्यास्तिकाद्याश्च । समयार्थे तु कालशब्दे पुंश्वं स्यात् । यदा तु 'काल इव कलाबहुलम्' इति पाठः । तदा काल कलामि-  
निनेयेन्मैशाद्यंशरूपाभिर्वहुलो व्याप्तः । इदं तु कलामिर्गतिनृपादिभिर्ग्यांसम् ।  
कालोऽवसर आत्मसमर्पणायावसर इव प्रेषित इति भावः ॥ ३७ ॥

अधिक क्या—

काल ( मुहूर्त विद्या के विद्वन् समूह ) की तरह में कलाबहुल ( विविध कलाओं से पूर्ण ) है। नमक की तरह सभी शृङ्गारादि रसों में इनकी गति है। राजन्, आप की सेवा के लिये इस तरह का किन्नर-युगल उसने भेजा है ॥३७॥

[ काल .—ज्योतिष् शास्त्र में कला, लम्बेय, निम्बेय, पल आदि शब्द समय के अंशसूचक हैं। कला का अध्ययन करने वालों और उसके जानकारों के समूह को काल कहते हैं। अर्थात् कला पल आदि का बिन्दुद्वर्ग जैसे कला-बहुल होता है, दिन, रात, कला, पल का हिस्सा लगाता रहता है वैसे वह किन्नर-मियुन भी कलाबहुल ( विभिन्न कलाओं का इत्याद्य जानकार है ) । लवण :—नमक जैसे तिलक, अम्ल, कटु और कषाय सभी रसों में अपनी सत्ता रखता है उसी तरह इन किन्नरो की गति सभी रसों के प्रसङ्ग में कदापि है ॥ ३७ ॥ ]

'तदेतदात्मपरिग्रहेणानुगृह्यताम्, इत्यभिधाय विधान्तवाचि तस्मिन्स किन्नरयुधा किमप्युपसृत्य मृगमदमिलन्मलयजरसोह्लासिलेखालाञ्छितललाटपट्टापिंकरकमलमुकुलं प्रणतिप्रेङ्खितमणिकर्णाय तंसनया सह प्रियया प्रणाममकरोत् ॥

अतः इन्हें आप अपना समझ कर अनुगृहीत करें।" यह कह कर उस ( पुष्कराक्ष ) के चुप हो जाने पर वह किन्नर युवक कुछ आगे बढ़ कर कस्तूरी-मिश्रित चन्दन रस के मनोहर तिलक से अङ्कित ललाट तक मुकुलित कर-कमलों को पहुँचाता हुआ, नम्र होने के कारण हिलने हुए मणिमय कर्णभूषण से मण्डित अपनी प्रिया के साथ ( राजा को ) प्रणाम किया ॥

उक्तवांश्च—

लब्धार्धचन्द्र ईश कृतकंसभयं च पोटपं विष्णो ।

ब्रह्मापि नाभिजातः केनोपमिमीमहे नृप भवन्तम् ॥ ३८ ॥

लब्धति ॥ अर्ध चन्द्रस्य अर्धचन्द्र शशिकला गलापहस्तन च । तत्तु निन्दा भास्ये । तद्यत्क ईश्वर । कृतकसस्य भय येन तापैरप विष्णो । निन्दाभासे तु कृतक कृत्रिमम् । सभय भवान्वितम् । वैष्णवतो नाभिर्जातो ब्रह्मा । निन्दाभासे तु अभिजात कुलीन पश्चान्नभ्योत ॥ ३८ ॥

बोला भी—

“राजनृ ईश ( भगवान् शंकर ) अर्धचंद्र ( गलहस्त ) प्राप्त किये हुए हैं । विष्णु का पराक्रम भी कृतक ( कृत्रिम ) और सभय ( भय सहित ) है । ब्रह्मा भी न + अभिजात ( कुलीन नहीं ) हैं । आप की तुलना किसमे कहें ? ” ॥ ३८ ॥

[ शिव, विष्णु और ब्रह्मा जो तीन महान् देव है सबो मे कुछ न कुछ दोष है । अत आप की तुलना किसमे कहें । वर्णिन विशेषण आपातत देवताओ की निन्दा का आभास कराते है, किन्तु विशेषणों के वास्तविक अर्थ समझ जाने पर देवताओ का स्वाभाविक स्वरूप ही ज्ञात होता है । निन्दा की प्रतीति नहीं होती ।

प्रशसापदा — ईश ( शिव ) अर्धचन्द्र ( खण्ड चन्द्र ) को धारण कर रहे हैं । विष्णु का पराक्रम कृत-कष भय ( कष को भय उत्पन्न कर देने वाला ) है । ब्रह्मा नाभिजात ( नाभि से उत्पन्न ) हैं ।

बलात्कारसे किसी के गले में हाथ लगाकर निकाल देनेकी विधि को अर्धचंद्र कहते हैं । अर्थात् शिव अपमानित हैं और आप सम्मानित हैं, विष्णु का पराक्रम कृत्रिम और सभय है जब कि आपका पराक्रम वास्तविक ऐवम् भिन्नु है । ब्रह्मा न अभिजात हैं और आप अभिजात ( कुलीन ) हैं । अत आपकी तुलना किस से कहें ? ॥ ३८ ॥ ]

इदं च—

अरुणमणिक्किरणरन्जितलिखिताशरमहुलीयकाभरणम् ।

तस्याः करकिसलयमिद्य तव करकामले चिरं लगतु ॥ ३९ ॥

अहमेति । अनपाशिषा पाणिग्रहण सूचिनम् । अरुणमणि पद्मरागादि । लिखिताम्यचराणि यस्मिन् । करकिसलय अरुणम् । तथा मणिक्किरणभरणरत्न कान्तिभि क्लितम् । तथा लिखिताम्यचराणि येन ॥ ३९ ॥

यह—

अरुणमणि की किरणों से रञ्जित, लुदे हुए अमरोदासी धगुडी उस

( दमयन्ती ) के कर किसलय की तरह आप के कर-कमलों में बिरकाल तक रहे ॥ ३९ ॥

[ कर किसलय पद्म—दमयन्ती का हाथ भी अरुणमणि निमित्त भूपर्णों के रंग से रञ्जित है । विद्याभ्यास के समय बहुत से ब्रह्मरों को लिखा भी है । अत्र अरुणमणिरञ्जितत्व और लिखितासरत्व दोनों भ्रमं बगूठी की तरह हाथ में भी है ॥ ३९ ॥ ]

अनया च—

तव सुभग रम्यदशया तयेव रक्तान्तनेत्रमण्डनया ।

चीनांशुकयुगलिकया क्रियतामङ्गे परिष्वङ्कः ॥ ४० ॥

तवेति ॥ दशा वक्षान्तसूत्रमवस्था च नेत्र चित्रवस्त्रविरोपोऽपि च ॥ ४० ॥

जीर इत्थे—

ह सुन्दर ! मनोहर किनारी वाली, लाल रंग तथा विविध चित्रों से अलङ्कृत यह शिल्प वस्त्र जो जोड़ी तुम्हारे अगो म उस ( दमयन्ती ) की तरह आलङ्कृत करे ॥ ४० ॥

[ यहाँ दमयन्ती उपमान है । रम्यदशया और रक्तान्तनेत्रया ये दोनों विशेषण चीनांशुकयुगलिका और दमयन्ती दोनों वस्तु में लगेंगे । दमयन्ती पद्म :—रम्यदशया—विविध सौभाग्य सम्पत्ति से पूर्ण होने के कारण रमणीय दशा वाली है । रक्तान्तनेत्रया—नेत्रा का प्रान्त भाग लालिमा से मण्डित है । दशा वस्त्र की किनारी और अवस्था का वाचक है । नेत्रशब्द नयन अर्थात् विविध चित्रों से चित्रित अत्यन्त चमकीले एक वस्त्र विरोप के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ४० ॥ ]

अयं च—

उज्ज्वलसुवर्णपदकस्तस्याः संदेशकथनदूत इव ।

रुचिरमणिकर्णपूरः श्रयतु श्रवणाम्तिकं भवतः ॥ ४१ ॥

उज्ज्वलेति ॥ उज्ज्वल सुवर्ण पद यस्य । पद्मे उज्ज्वलाभ्यप्राभ्याग्नि शोभन वर्णानि पद्मानि वचनानि यत्र ॥ ४१ ॥

और यह—

उज्ज्वल स्वर्ण-निमित्त ये मनोहर मणिलिखित कर्णभूषण सन्देश कहने वाले दूत की तरह आप के कानों के समीपवर्ती बनें ॥ ४१ ॥

[ सन्देशवाहक दूत भी कान्ति गुण विद्युत् सुन्दर पदों से युक्त वाक्यों का प्रयोग कानों के पास जाकर करता है ॥ ४१ ॥ ]

किंचान्यत्—

आनन्ददायिनस्ने कुण्डिननगरे कदा भविष्यन्ति ।

त्वन्मुखकमलविलोलनागरिकानयनपट्टपदा दिवसाः ॥ ४२ ॥

दूसरी बात यह बतावें कि—

वे आनन्ददायक दिन कब होंगे जब कुण्डिनपुर में नगरबधुओं के नेत्र-भ्रमर आप के मुखकमल पर चञ्चल बनेंगे ॥ ४२ ॥

एवमाविर्भावितप्रथयमुज्ज्वलितानुरागमुदीरितादरमाप्यायितप्रणय-  
मभिधाय स्थितवति किन्नरे, नरेश्वरो दमयन्तीप्रहितभाभृतानि स्वय-  
मादरेण गृहीत्वा, 'सुन्दरक, तस्याः संदेश एवाम्माकं कर्णपूर, परि-  
करोऽयं मणिकर्णावतंसः । तस्याः सुगृहीतेन नाम्नेव धयं मुद्रिता-  
प्रपञ्चोऽयमङ्गुलीमुद्रालंकारः तदनुरागेणैव धयमाच्छादिताः पुनश्च-  
माच्छादनयुगलमपरं च युवां प्रेपयन्त्या तथा किं न प्रहितमस्मा-  
कम्, किमन्यत्त्वत्तोऽपि प्रिय प्राभृतं भविष्यतीति । तदेहि शिथिर-  
मनुसरामः' इत्यभिधाय बहु मानयन्किन्नरमिथुनमतिचपलकपिकुला-  
न्दोलिततलशिखराग्रगलितशिलास्फालनस्फुटत्फलरससुगन्धिता स्रव-  
त्कुसुममकरन्दद्रवादितपांसुपटलेन धर्मना निजायासमुदचलत् ॥

एवमिति ॥ कर्णपूरोऽवतंसं कर्णयो पूरणं च । मुद्रिता भरखीनाम्ना दुस्तर प्रवेशा कृता ॥

इस तरह नम्रता-प्रदर्शनपूर्वक स्वच्छ अनुराग, आदरपूर्ण उक्ति एवं प्रगाढ़ प्रेम के साप ( अपनी बातें ) कहकर किन्नर के चुप हो जाने पर नरपति ( नल ) दमयन्ती द्वारा भेजे गये उपहारों को स्वयम् आदर के साथ लेकर, "सुन्दरक, उनका संदेश ही हमारे लिये कर्णपूर है । यह परिजन मणि कर्ण-भूषण हैं । उनके नाम से ही हम मुद्रित हैं । यह अंगुलि का मुद्रालंकार ( नामाङ्कित अंगुठी ) प्रपञ्चमात्र है । उनके प्रेम से ही हम ढँक गये हैं । यह वल्लयुगल पुनश्च जैसा लगता है । आप दोनों को भेजकर उन्होंने क्या नहीं भेज दिया । आप लोगों से ददकर और क्या सुन्दर उपहार हो सकता है । अच्छा, आदये डेरे पर चले ।" यह कहकर किन्नर को बहुत मानता हुआ अपने आवास की ओर ऐसे रास्ते से चला जो चञ्चल बन्दरों द्वारा हिलाने गये पेड़ों के अग्रभाग से गिरने और शिलातल की चोट से पटे हुए फला के रस में सुगन्धित हो गया था और धूलि चूने हुए पुण्य मकरन्दों की तरलता से आर्द्र हो गयी थी ॥

[ इस अनुच्छेद में कर्णपूर, मुद्रित तथा आच्छादन पदों के प्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं—

दमयन्ती का सन्देश ही कर्णपूर है। काना को तृप्त करने में उसके मधुमय सन्देश को जितनी सफलता मिल सकती है उतनी इन बाह्य अन्तरणों को नहीं। उसका नाम से ही मैं मुद्रित हो गया हूँ। मेरे भीतर किसी दूसरे कल्पित स्थान नहीं है। मैं उसके नाम से बिल्कुल सीमित हो गया हूँ। यदि वस्त्र आच्छादन का ही कार्य करता है तो उसका कार्य तो उसके स्नहन ही पूर्णकर दिया। अतः किये हुए कार्य को करने का कारण ये पदार्थ पुनरुक्त मात्र हैं। ]

उच्चलिते च पश्चिमाभ्योनिधिसलिलशालितपादपल्लवे प्रासाधि  
नास्तागिरिगङ्गां प्रशान्तिं वियद्वीथीपान्ये विप्रस्वति, क्रमेण तस्या  
दिशि दिनकररथचक्रचङ्क्रमणचूर्णनोच्चलन्मन्दरगिरिगैरिषाधूलि  
पटलोल्गोल इवोल्लास संघ्यारागः ॥

चलित इति ॥ पान्यो हि सलिलेन चरणी प्रचावय वासागार प्रविशति ॥

सम्पूर्ण सप्ताह का भ्रमण कर परिष्वस समुद्र के जल में अपने पाद (किरण)-  
पल्लव को धोकर आकाश मार्ग के पथिक, भगवान् सूर्य त्रिवास की कामना  
करने वाली की तरह अस्ताचल की कन्दरा में प्रवेश कर रहे थे। क्रम से उस  
दिशा में सूर्य-रथ के चक्कों के चलने से धूमिल होकर ठठे हुए मन्दराचल का  
लाल धूलि-पटल की लालिका (सन्ध्या राग) उमड़ पड़ी थी।

[ पश्चिम दिशि भर रास्ता चलकर सन्ध्या को जत्र कहीं ठहरता है और  
वास निकेतन में प्रवेश करता है तो अपने पैरों को धो लेता है भगवान् सूर्य  
भी दिन भर धूमे हैं। शाम को अस्तगिरि की गुहा रूप अपने भवन में जाने के  
पहले पश्चिम समुद्र में अपने किरण रूप पाद पल्लव को धो लेते हैं। सन्ध्या  
की यहाँ नायिका रूप में चित्रित किया गया है। भगवान् सूर्य को अपनी ओर  
आते दस उसका राग (प्रेम) उमड़ पड़ा है। ]

तेन च संवलितानि विजृम्भितुमारमन्त जग्मनिसुग्मनककुभि  
विषानजरत्कृक् राकुचंघरातोमरोर्षीपि तमांसि ॥

न चेत ॥ जग्मनिसुग्मन इन्द्र ॥

जत जग्मनसु ( इन्द्र ) की दिशा ( पूर्व ) में जगत् के बृह मयूर की गर्दन  
की रोमपङ्क्ति की तरह अन्धकार फैलन लगा

ततश्च नष्टयार्थीङ्गशेधादर्शनमयान्तापु द्विकन्ययासु, वननुनि-  
होमभूमगन्धेन संतर्प्यमाणासु चन्द्रदेवतासु, निद्रान्धसिन्धुरयूयेपिषो  
अनप्रस्थलीपु परिणमन्सु शनैस्तिमिरेषु, जाते मनाग्निशाञ्जनपत्त्र-  
स्तरकिते निशामुखे, नरपतिन्तेन किंनरमिथुनेन सार्धमर्घपयायात

प्रज्जलितदीपिकापाणिपरिजनपरिकरितः शरणागतकपोतमुत्पतितो-  
ल्लूककृतशब्दं शिविमिच शिविरसंनिवेशनविशात् ॥

तनश्चेति ॥ नष्टचर्यां शिशुक्रीडाविशेष । निद्वान्धेत्थादौ परिणाम', परिपाक-  
स्तिर्यकप्रहारदान वा । निशामु हि कपोता पारावताः शरणं नीदमागच्छन्ति,  
बलकारेण घूसा उड्डीयन्ते । उपमाने तु 'नारदकृतां शिविरप्रशंसामसूयन्तौ कपोतो-  
ल्लूकरूपधारिणौ सुरी सत्त्व भिज्जासमानौ शिविनृपमागतौ' इत्यमागम ॥

इसके बाद, नष्टचर्या (एक तरह की बच्चों के खेल) की तरह दिग्गङ्गाएँ  
बहृष्ट होती जा रही थी । वन में रहने वाले मुनियों के होम के धूम की गन्ध से  
वनदेवताएँ लुप्त हो रही थी । अगटाइया लेने हुए हाथियों के समूह की तरह  
ऊँचे स्थानों पर बन्धकार, आक्रमण कर रहा था । स्वरूप विकसित अञ्जन  
पर्वत के गुच्छे की तरह रात हो जाने पर राजा उस किन्नर मिथुन के साथ  
आधे रास्ते में जलती हुई दीपिका हाथ में लेकर आये हुए परिजनो से समन्वित  
होकर शरण में आये हुए कबूतर और उड़ने हुए उल्लूक की रक्षा के लिये बचन  
देने वाले राजा शिवि की तरह अपने शिविर में प्रवेश किया ।

[ नारद द्वारा शिवि की प्रशंसा सुनकर अग्नि और इन्द्र क्रमशः कपोत  
और बाज बन कर शिवि की परीक्षा करने आये थे । कपोत को बाज लडेडता  
हुआ जाया । कपोत शिवि के शरण में आया । उन्होने कपोत की रक्षा के लिये  
कपोत बराबर अपने शरीर का मांस बाज को खाने के लिये दिया ।

यहाँ शरणागतकपोतम् और उत्पतितोल्लूककृतशब्दम् ये दोनों शब्द  
शिविम और शिविरसंनिवेशम् दोनों में पृथक्-पृथक् अभिव्यक्त होते हैं ।

राजा ऐसे शिविर में प्रवेश किया जिसमें रात होने के कारण कपोत  
शरण लिये थे, दिन भर के छिपे हुए उल्लूक रात को जहाँ से उड़ भागे थे और  
सैनिक जहाँ इतशब्द ( वातचीत कर रहे ) थे । रात को कबूतर शिविर में  
जाकर शरण लिये थे और दिन भर के ठहरे हुए उल्लूक भाग चुके थे । शाम का  
समय या इस लिये सैनिकों की धूम मची थी । उल्लूक दिन भर छिपे रहते हैं  
रात को ही उन्हें दिखाई पडता है इसलिये घूमते हैं । कपोत रात में  
अपने घोसले में चले आते हैं ।

शिवि पक्ष - शरणागत + कपोत और उत्पतित + उल्लूक के लिये (रक्षा का)  
शब्द देने वाले । शिविर की तुलना शिवि से की गयी है । ]

तत्र च क्रमेण कृतकरणीयस्त्वरमाणपार्चकचन्द्रोपनीतमुत्पतत्पाक-  
परिमलस्पृहणीयमत्युष्णमेदुरमांसोपदंशमाज्यप्राज्यमुपभुज्य पुष्क-  
राक्षकिन्नरमिथुनात्तत्रै सह मधुरससारमाहारम्, अनन्तरमाद्यन्त-

शुद्धिचन्दनोद्धतितकरः कर्पूरपारीपरिकरितताम्बूलोज्ज्वलवदनार-  
विन्दः 'सुन्दरक, कमपि प्रस्तारय विद्याविनोदं त्वयापि विहंगवागुरिके,  
गीयतां किमपि मधुरम्' इति मृदुमणिपर्यङ्किकासुखासीनः किन्नर-  
मिथुनमादिदेश ॥

तत्र चेति ॥ कर्पूरस्य पाती शकलम् ॥

वही दैनिक कार्य कर लेने के बाद पुष्करास, किन्नर-मिथुन, और सिट्ट  
जनों के साथ जल्दी जन्दी पाचस्वर्ग द्वारा लये हुए, उड़ती हुई भोग्य-  
गन्ध के कारण मनोहर, अत्यन्त गरम योग्य मातों को आस्वादित करना  
दृशा भी मे तने हुए रसमय भोग्यों को खाया । आधमन के बाद पवित्र चन्दन मे  
हाथ फेर कर कर्पूरखण्ड-मिश्रित ताम्बूल से मुख-कमल को सुशोभित कर,  
'सुन्दरक, कुछ विद्या-विनोद का प्रसङ्ग देखो । पश्चि-सुन्दरी, तुम भी कुछ  
मधुर गाओ ।' यह मणिमय कोमल पर्यङ्क पर सुखपूर्वक बैठ कर किन्नर मिथुन  
को आदेश दिया ।

दर्शिते च यांशिकेन वंशमुखोद्गीर्णगान्धारपञ्चमरागस्थानके  
स्थिरीकृतमध्यमश्रुतिप्रसन्नप्रेहोलनाप्रयोगमुचिनस्यानकृतकांस्यताल  
मकठोरतारस्वरम्, आकर्षदिव हृदयम्, अभिपिञ्चदिवामृतेन श्रवणे-  
न्द्रियम्, अस्तं नयदिवान्यविषयसंधानम्, अनुच्चप्रपञ्चितपञ्चमं  
विपञ्चास्वरसंदर्भितमभूत्तत्किमपि गीतम् ॥

बशी बसाने वाले बशी के मुख में निकले हुए गान्धार और पञ्चम राग  
के स्थानक दिखाये । कहीं मध्यम स्वर, कहीं उचित स्पन्द पर झाल द्वारा ताल  
देने के कारण कोमल उच्च स्वर वाली शीता के स्वर से मिश्रित सामान्य  
पञ्चम स्वर का वह अत्यन्त मनोहर गीत हृदय को मानो घोंच सा रहा था ।  
अमृत से श्रोत्रेन्द्रिय को घोंच सा रहा था । अन्य विषय के चिन्तन को समाप्त  
सा कर रहा था ।

यत्र—

प्रसरति रणरणस्वरसः कुण्ठयति हठेन चित्तमुत्कण्ठा ।

स्मरति स्मरोऽपि धनुषः प्रगुणीकृतनिशितवाणस्य ॥३३॥

त्रिसरं—

ऐसे मनोहर सगीत के कारण जब रणरणक ( उत्कण्ठा ) रस फैल रहा  
था और चित्त को हठात् विरत बनाता चला जा रहा था । वाय भी अपनी  
सजी हुई प्रत्यङ्गा एवं तीखे बाण वाले धनुष का स्मरण करने लगा ॥ ४३ ॥



पंचविधे च व्यतिकरे वैतालिकः पपाठ—

'सकलविषयवृत्तीर्मद्रयान्निन्द्रियाणां  
हृदि विदधदधस्थां कांचिदुन्मादिर्ना च ।  
ध्वनिरनुगतवीणानिक्रमः कोमलोऽयं  
जयति मदनघाणः पञ्चमः पञ्चमस्य ॥ ४३ ॥

सबन्धेति ॥ पञ्चमस्य रागस्य ध्वनिर्जयति कथंभूतः । पञ्चम पञ्चानां पूरणो मदनघाण ॥ ४३ ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक ने पढ़ा— समस्त इन्द्रियो की विषय-प्रवृत्ति को रोकती हुई, हृदय में कोई उन्मादक स्थिति उत्पन्न करती हुई वीणा के स्वर से मिश्रित कामदेव के पञ्चम घाण स्वरूप पञ्चम स्वर की यह कोमल ध्वनि अपूर्व है ॥ ४३ ॥

अपि च—

प्रियधिरहविषादस्यौषधं प्रोपितानां  
विविधविधुरचिन्ताभ्रान्तिविभ्रान्तिद्वेतु ।  
अयममृततरङ्ग. कर्णयोः केन सृष्टो  
मधुररसनिधानं तिःस्वनः पञ्चमस्य ॥ ४५ ॥

प्रियेति ॥ अत्र पञ्चमस्येवार्थत्वात् । न तु पञ्चानां पूरणस्येति श्युस्वरार्थः ॥ ४५ ॥

जिनके पति परदेश चले गये हैं ऐसी विमुक्त कान्ताओ के प्रिय वियोग से होने वाले बलेश की दवा, विषोपजन्म विभिन्न चिन्ताओ और भ्रान्तियों की स्थिति में आराम देने वाली, कानों के लिये अमृत-लहरी, मधुर रस का निकेतन, पञ्चम स्वर की इस ध्वनि का निर्माण किसने किया ॥ ४५ ॥

अपि च—

अयं द्वि प्रथमो रागः समस्तजनरक्षणे ।  
यस्य नास्ति द्वितीयोऽपि स कथं पञ्चमोऽभवत् ॥ ४६ ॥

अयमिति ॥ प्रथम प्रधानभूत आय । द्वितीय. समानो द्वयोः पूरणश्च । स कथं पञ्चानां च पूरणोऽयं च पञ्चम इति सज्ञा ॥ ४६ ॥

समस्त लोगों का मनोरञ्जन करने वाला यह पहला राग जिसका दूसरा कोई भी नहीं है पाँचवा कैसे हो गया ? ॥ ४६ ॥

[ जो अपनी उत्कृष्टता के कारण इतना महान् है कि उसके बाद की दूसरी यैणी में रखने के लिये भी कोई राग नहीं है वह पञ्चम कैसे हो जायगा ? विरोध । पञ्चम स्वर इतना मुन्दर राग है कि उससे किसी दूसरे की

तुलना ही नहीं है इसीलिये वह अद्वितीय है। पञ्चम का अर्थ योग्यता-जन से पञ्चम श्रेणी नहीं है। परिश्रार ॥ ८६ ॥

इति विधिधनुदञ्चत्पञ्चमोद्गारगर्भ-  
पटति मधुरकण्ठे घाम्नि वैतालिकेऽस्मिन् ।  
अपहरति च चित्त किन्नरद्वन्द्वगीते  
सुखमय इव निद्रानि स्पृष्टो लोक आसीत् ॥ ८७ ॥

इति । परब्रह्मलोकनममयममुष्णामितसान्द्रानन्दमय इव । रहस्य हि तत्र परब्रह्मत्वाद्मोदाव पूर्वाचार्यैर्व्याचर्यत । सुखमय इव निद्रानिमोहित इवेत्युभयवाचीवशाद्गो योग्य । अपवा सुखमयः मन्त्रितानिमीलित इवेतीवशान्द्रां निद्रकने ॥ ८७ ॥

इस प्रकार कई तरह से पञ्चम स्वर के प्रति उद्गार प्रकट करता हुआ मधुर स्वर में वैतालिक बोल रहा था। किन्नर-मुण्ड का गीत लोगो का चित्त आकृष्ट कर रहा था। सुखमयता के कारण लग निद्रा के प्रति निःसूह हो गये थे ॥ ४७ ॥

एथमनरत्नमारोहायरोहमूर्च्छनामहिते गीतामृतल्लोतसि  
निमग्नमनसि कठोरितोत्कण्ठे रणारणकारम्मभाञ्चि राजनि 'रञ्जनि' कि  
न विरमसि । दिवस, कि नाधिर्भवसि । अध्वन् कि न स्लोकतां  
वज्रसि । कुण्डिननगर, कि न नेदीयो भवसि । श्रम, किमन्तरायो-  
ऽसि । विवे, किमुत्क्षिप्य न मां तत्र नयसि' इत्यनेकवा चिन्तयति  
स किन्नरयुवा प्रक्रमोचितश्लेषमिदमवादीत् ॥

उत्तर-वटाव से पूर्ण मूर्च्छनाओं की लहरी में राजा का मन तरङ्गित हो रहा था, गीत की अमृतधारा में गोता लगा रहा था। उतकण्ठा से कठोर हो गया था और उरमुक्तता के वेग में भर गया था। "रात, क्यों न समाप्त हो जाती हो? दिन क्यों न प्रकट हो जाते हो? रास्ता, क्यों नहीं बन ही जाते? कुण्डिन नगर, क्यों नहीं समीप आ जाने? श्रम, क्यों प्रतिवन्दन बनते हो? शैव, क्यों न मुझे फेंक कर वहाँ पहुँचा दें?" इस तरह सोच ही रहा था कि किन्नर-युवक प्रवृत्तानुक्रुत इस श्लोक को बोला—

"वर्धमानोहृत्सद्रागः सुजातिमृदुपाणिक्ता ।  
इमयन्तां च गीतिश्च कस्य नो हृद्यंगमा ॥ ४८ ॥

वर्धमानेति ॥ वर्धमानो वर्धिष्युः । न तु हीयमानः । उह्वयन् रागोऽनुरागो यस्याम् । सुष्टु शोभना चत्रियाख्या यस्याः । पाणि कर ॥ पदे वर्धमाने ताड

विशेषे उच्चपन् राग धीरागादिर्यत्र । जातयो नन्दयन्तीप्रभृतय । पाणय सम-  
पाणयादय ॥ ४८ ॥

उन्नतिशील अनुरागबहुल, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कोमन्करों वाली दमयती तथा वर्धमान ताल, श्रो आदि राग, नन्दयती आदि जाति, समपाणि आदि पाणियों वाली यह गीति किसके लिये हृदयस्पर्शी नहीं हैं ? ॥ ४८ ॥

[ गीतिपक्ष में वर्धमान, राग, जाति एवं पाणिका शब्द पारिभाषिक हैं । समीचक इन विभिन्न तत्त्वा से युक्त यह गीति और अनुराग आदि विभिन्न मृदंगीय गुणों से अउत्कृत दमयती किसके लिये प्रिय नहीं हो सकती ? ॥ ४८ ॥ ]

अपिच—

साप्यनेककलोपेता साप्यलक्षारधारिणी ।

सापि हृद्यस्परालापा किन्वलाधारणा तव ॥ ४९ ॥

म गीति ॥ कला विज्ञानकौशलम् । अलङ्कार आभरणम् । स्वर ग ३ । आलाप मियोभाषणम् । गीतिपक्षे 'पताकेनावकृष्टिश्च विरलाहुलिना च या । आवाप इति विज्ञया कलाविद्विदितु सा कला' इत्याद्यापादय सप्त कला । अलकारा उपमारूपकादय । स्वरा पञ्चादादय सप्त । आलाप आलसि । पर किं नु दमयती असाधारणा अनन्वविषयवादैकाग्रया । गानिस्तु सागरणा जाति साधारणा चेति ॥ ४९ ॥

और भी ( बहुत सी साधारणतायें ( समानतायें ) इस गीति में और दमयती में हैं । जैसे— )

वह भी अनेक कलाओं से विभूषित है वह भी अनेक अलङ्कारों को धारण करती है, उसकी भी बात और स्वर हृद्यस्पर्शी हैं, किन्तु तुम्हारे ही लिये हान के कारण यह असाधारण है ॥ ४९ ॥

[ गीति पक्ष—गीति में आवाप आदि सात कलाय होती हैं । उपमा, रूपक आदि अलङ्कार होत हैं । आलाप ( दोषस्वर ) होते हैं ।

दमयती पन्—दमयती में भी चित्र विज्ञान आदि कुशलतामूलक कलाय हैं । कटक कुण्डल आदि अलङ्कारों को वह भी धारण करती है । उसमें भी आवाप ( सजाप ) मधुर है ।

इतने जग तक तो दमयती और गीति में समानता है किन्तु गीति स्वर साधारण है ।

किसी भी स्वर में गीति का प्रयोग किया जा सकता है । किसी भी जाति में उसका प्रयोग किया जा सकता है । दमयती असाधारण है क्योंकि वह नल मात्र के लिये है, और किसी के लिये नहीं ॥ ४९ ॥ ]

अपि च—

संगीतका त्वदांत्सुन्यात्वां स्मरन्ती समूर्च्छना ।

किं तु तस्यान्वयि स्वामिंल्लयमज्ञो न हृदयते ॥ ५० ॥

महोदयि ॥ स्वयौत्सुक्यं स्वदौत्सुक्यं तस्माद्धेतो । सम्यग् गीतं "क्याति रस्या" । इति सर्वत्र त्वदुक्ता गीयत इति भावः । तथा स्वां स्मरन्ती सह मूर्च्छं नया वनेने इति समोहा ॥ गीतिस्तु मङ्गल गीतं स्वरगुणदूषणग्रामश्रुतिवतिमूर्च्छना-लक्ष्यं यस्याम् । तथा 'स्वर मन्तर्जितो यत्र रागात् प्रविपद्यते । मूर्च्छं नामिति तां प्रदुर्मुनयो ग्राममम्भवान्' । सा चैकविंशतिविधा । यदुक्तम्—'मस्य स्वराश्रयो ग्रामा मूर्च्छंतास्त्रैकविंशतिः' इति यथोक्त्या सह समूर्च्छना । इत्येतावन्म दमयन्ती गीत्योः साम्यमुक्तम् । अत्रुना तु भेद निरूपयति—कितिवि ॥ लयस्वत्परता । इतमभ्यविलम्बितलक्षणम् ॥ ५० ॥

प्रसिद्ध कविवाणी ( वह दमयन्ती ) तुम मे उक्तता क कारण तुम्हें याद करती करती मूर्च्छित हो जाती है किन्तु स्वामिन्, तुम मे उसकी तत्परता नहीं होती ॥ ५० ॥

[ यहाँ भी दमयन्ती और गीति में कुछ समानता दिखाकर कुछ अपमानता भी दिखाई गयी है, जिसमे दमयन्ती की उत्कृष्टता व्यक्त हो रही है ।

दमयन्ती पद्य—संगीत का :—सुन्दर गीत ( कवि ) वाली है । समूर्च्छना—तुम्हें याद करती करती मूर्च्छित हो जाती है ।

गीतिपद्य—संगीत का स्वर, गुण, दूषण, ग्राम आदि लक्षणों से युक्त है । समूर्च्छना = १ मूर्च्छनाओं में विगिष्ट है । संगीतकात्व और समूर्च्छनात्व नृत्क समानता दोनों में है । विषयता यही है कि गीति में द्रुत, मध्य, विलम्बित आदि लय का भङ्ग होना है किन्तु दमयन्ती में लय ( तत्परता और तल्लोचता ) का अभाव नहीं है ॥ ५० ॥ ]

एवमुक्तवति किनरेश्वरे किमप्यलीककोपकुटिललोलद्वभ्रवलया-चलितकंयरमवलोन्य किनरी दन्तुमारभत ॥

किन्तु पति के ऐसा कहने पर कुछ मिथ्या कोप के कारण ध्रुपशिक्षया को बंधन बनती हुई गर्दन घुमा कर बोलना शुरू की ।

'सुन्दरक' भा मेवं वार्दाः ॥

'सुन्दरक ऐसा न कहो ।'

शुकाक्षी घनवार्षद्वयाः सुवाच. कारुण्यस्वरा ।

दमयन्त्याः कथं गीतिः साहृदयमवगाहते ॥ ५१ ॥

शुभ्रेति ॥ शुष्कमवकृष्टमद्गमषयो यस्या । कु र्भृपत् कलोऽस्यामिति ( गौरा-  
दिग्वाब्दीषि ) काकलि निपादसंज्ञ स्वरो यस्या । वैसाधरयपठे शुष्कमनाद्रंम ।  
काकली रलेष्मवैगुण्याद् द्विधानून स्वरः ॥ ५१ ॥

शुष्काङ्गी ( कृष्ण अङ्गी वाली ), सुगठित तथा आकर्षक अवयवों वाली,  
मुन्दर वाणी और मधुर स्वर वाली दमयन्ती की समानता गीति कैसे धारण  
कर सकती है ? ॥ ५१ ॥

[ गीति पद्य—गीति शुष्काङ्गी ( नीरस स्वल्प वाली ) है । यद्यपि वह  
कही सरस भी होती है फिर भी कोई कोई गीति नीरस भी हो जाती है ।

दमयन्ती तो आद्यन्त अशुष्क है । गीति काकलीस्वर ( सर-सर स्वर  
वाली ) है । गाने वाले को कफ बगैरह आ गया तो स्वर बिगड  
जायगा अतः उसमें सरसरापन का आना स्वाभाविक है ।

दमयन्ती पक्ष—इस पक्ष में शुष्काङ्गी का शुष्क शब्द कृष्ण अर्थ का  
वाचक है । कृष्णाङ्गी होना नायिका के लिये गुण की बात है । काकलीस्वरा  
( मधुर स्वर वाली ) ॥ ५१ ॥ ]

अपि च —

गीतेर्ग्रामाः किल द्वित्राः सा तु ग्रामसदस्यभाक् ।

कूटतानघना गीतिः कथं तस्याः समा भवेत् ॥ ५२ ॥

गीतेरिति ॥ पदत्रय-यमगान्धारास्त्रयो ग्रामा । गान्धारस्य स्वर्गविषयत्वाद्  
द्वित्रिवेति द्वित्रा । ग्राम खेटक च । कूटताना पञ्चत्रिंशत् । तैघना । दमयन्ती तु न  
यपरविस्तारबहुला ॥ ५२ ॥

गीति के तो दो ही तीन ग्राम होते हैं, उसके तो सहस्र ग्राम  
हैं । कूट, तान, और घन वाली गीति उस ( दमयन्ती ) के समान कैसे हो  
सकती है ? ॥ ५२ ॥

( गीति में पद्म, मध्यम और गान्धार तीन ग्राम होते हैं । गान्धार को  
यदि केवल स्वर्ग में ही प्रयोज्य माना जाय तो दो ही बच जाते हैं । इसी लिये  
द्वित्रा शब्द का प्रयोग किया गया है । पैंतिष कूट तान होते हैं । अत एव गीति  
कूटतानघना ( कूटतान से भरी हुई ) है । दमयन्ती कूट ( छल ) के तान  
( विस्तार ) के घन ( बहुलता ) से रहित है । उसमें छल प्रपञ्च की बहुलता  
नहीं है । अत दमयन्ती और गीति में कोई तुलना नहीं है ॥ ५२ ॥

विः चान्पत्—

ज्वरितेष बहुलहनप्रयोगप्रकाशितमूर्च्छना बहुलरुम्पा च,  
उन्मत्तेष बहुभाषा बहुताला च, वेद्येष बहुगा बहुदृष्टागा च, भटवीथ  
पहुककुभमेदा बहुलनिपादस्थानका च गीतिरियम् ॥

ज्वरितेत्यादि ॥ लङ्घनमुद्ग्राहितादधिकोच्चारणम् । पञ्चे लङ्घनं शोषणम् । धन-  
शनमिति यावत् । प्रयोगे उच्चारणे प्रकाशिता मूर्च्छना उत्तरमन्द्रादिका यस्याम् ।  
पञ्चे प्रकृष्टा योगा द्यायादयः । मूर्च्छना मोह । कम्पोऽङ्गकृतं स्वरकृतं च चलनम् ।  
वन्नसेति । भैरवीप्रभृतयः पट्विभङ्गायाः । तालत्रयत्पुटादिः । उन्नत्ता तु बहु  
मापने तालिकाश्च दत्ते । वेद्येवेति । रागः धीरागादि । तथा बहुलष्टकनामा रागो  
यस्याम् । वेरया तु बहुसु रागोऽस्या इति बद्धासक्तिः । प्रभूतठक्करगामिनी च ।  
द्वयशब्दोपलब्धिता क्रीडया कराहनिः ठक्करा । गमे- प्रःप्ययाद्दः । अटवीति ॥ ककुभो  
ध्वनिर्विशेष । निपादः स्वरविशेषः । स्थानकं मन्दमध्यमतारलक्ष्यम् । अटवीपञ्चे  
ककुभोऽङ्गुनवृष । निपादाः शयराः । स्थानकान्पालवालाः शिविरसनिवेशश्च ।  
पूर्वं ज्वरिताद्युपमानप्रतिपादितदोषा गीतिः कथंकारमिव दमयन्तीसमा ॥

ज्वरग्रस्त स्त्री की तरह गीति अत्यधिक उच्चारण द्वारा मूर्च्छनाओं को  
प्रकाशित करती है, बहुत कम्प व्यक्त करती है । पगली स्त्री की तरह विविध  
ढंग की उक्तियाँ और तालों से युक्त होती है । वेद्यया की तरह बहुगा ( बहुत  
गान वाली ) तथा विविध रागों वाली होती है । जगल की तरह बहुत ककुभ  
( ध्वनि ) युक्त, निपाद ( स्वर ) और स्थानक ( मन्द, मध्यम, तार आदि  
स्थानकों वाली ) होती है ।

[ ज्वरित स्त्री पक्षः—ज्वर से पीड़ित स्त्री बहु + लङ्घन + प्रकाशित +  
मूर्च्छना होती है । बहु ( अधिक ) लङ्घन ( उपवास ) प्रयोग ( करने ) से दुर्बल  
होकर प्रकाशित मूर्च्छना ( मूर्च्छित हुना करती ) है । अत्यधिक उपवास के  
कारण मूर्च्छा व्यक्त करती है ।

बहुलक्ष्म्याः—ज्वरवेग में आफर शरीर को कपाती रहती है ।

गीति पक्षः—बहुलं + धन + प्रयोग + प्रकाशित + मूर्च्छना बहुत अधिक  
उच्चारण द्वारा विभिन्न मूर्च्छनाओं को व्यक्त करती है । बहुलक्ष्म्याः—  
स्वर तथा आलाप के कारण विविध कम्पनों से युक्त होती है । गाते समय लीग  
जोर से उच्चारण करते हैं जिससे विभिन्न मूर्च्छनायें व्यक्त होती हैं और  
आलाप लेते समय स्वरों में उतार-चढ़ाव के अवसर पर कम्पन भी होता है ।  
कम्प एक स्वर भी होता है ।

उन्नत्त स्त्री पक्षः—पगली स्त्री बहुभाषा ( बहुत कुट अनावश्यक ढंग से  
बहबडाती रहती ) है । बहुताला ( पागलपन के मारे कभी ताली बजाती है या  
ताल गरजाती ) है ।

गीति पक्षः—बहुभाषाः—गीति, भैरवी आदि उत्तम भाषाओं  
से समन्वित होती है । बहुताला—कञ्चत्पुट आदि तालों से मण्डित  
होती है ।

वेश्या पक्ष—बहुगा—वेश्या बहुतो के पास जाती है। बहुदृष्टरागा—  
उसका अनुराग बहुतो के प्रति देखा जाता है।

गीति पक्ष—बहुगा—बहुत गान युक्त होती है। बहु + इष्ट + रागा—श्री  
आदि विविध राग उसमें पाये गये हैं या देखे गये हैं।

अटवी पक्ष—बहु + ककुभभेदा—जङ्गल म विविध प्रकार के ककुभ  
(अर्जुन वृक्ष) पाये जाते हैं। बहुलनिपादस्थानका = बहुत से निपाद  
(किरात) और स्थानक (अजमान (घाले) और कुटीर) से जगल भरे  
रहते हैं।

श्रीति पक्ष.—बहुककुभभेदा—विविध ककुभ (ध्वनियों) के मेद से  
युक्त। बहुल + निपाद + स्थानका—बहुत निपाद (स्वर) और मन्द्रमध्यम,  
तार आदि सांगीतिक तत्वों से युक्त। जो ग्वरित स्त्री की तरह क्षीण है,  
पागल की तरह बुद्धिहीन है, अटवी की तरह अव्यवस्थित है ऐसी गीति स्वस्थ,  
बुद्धिमती और व्यवस्थित दमयन्ती के समान कैसे हो सकती है ? ]

सद्वरमिदमुच्यताम्—

वेदविद्योपमा देवी मनोहरपदक्रमा ।

उद्द्योतिता पुराणाङ्गमन्त्रब्राह्मणशिक्षया ॥ ५३ ॥

वेदति ॥ पदक्रम पदव्याम । पुराण जीर्ण वपुर्येवाम् । तथा मन्त्रप्रधानब्राह्म-  
णानां पुरोध मन्त्रतीनां च शिक्षोपदेशेनोद्द्योतिता । वेदविद्या तु पदक्रमाभ्याम-  
भिधीयते । पुराणानां मार्कण्डेयादीनाम् । अङ्गानां शिक्षाकषनादीनाम् । मन्त्र  
ब्राह्मणस्य ग्रन्थविशेषस्य शिक्षयाभ्यामेन भूष्यते । अन्त पुरे हि वृद्धा एवाधि-  
क्रियन्ते । यदुक्त्वा—'आशीतिकाश्च पुरुषा पञ्चशाकाश्च योषित । सुधैरश्व-  
रोयानां शौचमायारिकाश्च ये' ॥ ५३ ॥

अच्छा हो यदि यह कहा जाय—

पुराने अवयवों वाले, मन्त्र ( मन्त्रणा ) में प्रधान स्थान रखने वाले वृद्ध  
ब्राह्मणों की शिक्षा से उद्भासित, मनोहर ढंग से पदविन्यास करने वाली देवी  
( दमयन्ती ) वेदविद्या की तरह है ॥ ५३ ॥

[ वेदविद्या पक्ष.—वेदविद्या मनोहरपद-क्रमा होती है । उसका  
स्वाध्याय पदपाठ और क्रमपाठ के माध्यम से किया जाता है ।  
वेदपाठ के एकादश प्रकार होते हैं—सहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ,  
चर्चा, आधिक, चर्चक ( क्रमचर्चक ) ध्वणीपार, क्रमपार, षट (क्रमषट), जटा  
( क्रमजट ), दण्ड ( क्रमदण्ड ) । पुराणाङ्गमन्त्र ब्राह्मणशिक्षया उद्भासित  
रहती है । मार्कण्डेय, भागवत आदि पुराणों, व्याकरण, ज्योतिष, निघन्त, कल्प  
आदि अङ्गों और मन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थों से उद्भव है । देवी दमयन्ती भी

पुराणाङ्ग मन्त्र ब्राह्मण शिक्षया उद्भासिता है। पुराने बज्जो वाले सच्चिदानन्द के मुख्य ब्राह्मणों द्वारा प्रशिक्षित, मनोहर-पदक्रमा ( सुन्दर पद-विन्यास करने वाली ) है। दमयन्ती के शिक्षक वृद्ध ब्राह्मण थे। इन ब्राह्मणों का कार्य मन्त्रों को देना भी था। पुरोहित आदि उच्च कोटि के लोग उनके शिक्षक थे। वेद विद्या की तरह उसका स्वल्प निर है ॥ ५३ ॥ ]

किं त्वियमेकपया, सा तु दृष्टानपया' इत्येवमनेकविचयक्रोक्ति-  
विशेषैरभिनन्दयति दमयन्ती किन्नरमिधुने, भूतभूयिष्ठायां विभावर्याम्,  
सुरसङ्घ इवाद्दयमानमानुषे निशीथे, स्थगितवति शृङ्गभासि तमसि  
सुवनम्, अनन्तरमवसरपाठकः पपाठ ॥

किं त्वियमेकपया । इयं दमयन्ती एकपया । वेदविद्या तु दृष्टानपया इत्यत्रान्यथा । भूयिष्ठं भूना भक्तिरन्ना, भूतभूयिष्ठा । आहिताग्न्यादित्वात् । निशीथे तमोऽतिशयान्मानुषादरानम् । सुराणां मनुहै च स्वभावात् ॥

किन्तु यह तो एकपया ( एक नर-मार्ग पर चलने वाली ) है। वह ( वेदविद्या ) तो दृष्टानपया ( सैकड़ों मार्ग देखी है या सतपथ ग्रन्थ के अनुसार देखी गयी ) है। इस तरह अनेक प्रकार की वनोक्तियों से दमयन्ती के किन्नर-मिधुन विनोद कर रहे थे तब एक काफी रात बीत गयी। देव-समूह सद्य रात्रि में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते थे। अन्तर सद्य कान्ति वाला अन्धकार ससार को आच्छादित कर चुका था। ऐसे समय में अवसर-पाठक ने पडा—

[ महा देवसङ्घ से रात्रि की तुलना की गयी है। देवसङ्घ अदृश्यमान मानुष होता है। देवताओं के समूह में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। रात्रि भी अदृश्यमान-मानुष है। अन्धकार की अतिशयता में स्वप्न भी मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। ]

‘उपरम रमणीयार्त्किन्नरद्वन्द्वगीता-

दमिनवनि निशीथो नाथ नेत्राणि पश्य ।

मद्वतवशविलोलहोचनाम्भोरुहाणां

मिलितु कुलधभूनां सेवको लोक एयः ॥ ५४ ॥

“महाराज ! देखिये, रात्रि नेत्रों को परास्त कर रही है। किन्नर-सुल के मनोहर गीत से विराम ग्रहण कीजिये जिसने कि काम के वशीभूत चञ्चल नेत्र कमलोज्ज्वली कुण्डलधरों का यह सेवक समूह ( उनसे ) मिल सके ॥ ५४ ॥

[ परित्रन अपनी प्रियाओं के साथ दाया कर रहे थे। राजा जब तक जा रहे थे तब तक उनका जगना और उनकी सेवा में रहना आवश्यक था। रात कान्ति जा चुकी थी परित्रनों की कान्ताएँ उनकी प्रतीक्षा में थीं। इसी विषे



अवसर-पाठक राजा को विधाम करने के लिये कह रहा है । राजा के विधाम करने पर ही परिजनो को अपनी प्रियाओ से मिलने का अवसर मिलेगा । सेवक शब्द यहाँ शुद्ध प्रेमी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । फुलाङ्गनाओ के साथ मिलन का प्रसङ्ग है । अतः सेवक पद ज्यादा औचित्यपूर्ण है ॥ ५४ ॥

अपि च —

शतगुणपरिपाट्या पर्यटन्नन्तराले  
कमलकुचलयानामर्धरात्रेऽपि खिन्नः ।  
उपनिदि दयितायाः कापि शब्द निशम्य  
भ्रमति पुलिनपृष्ठे चक्रवच्चक्रवाकः ॥ ५५ ॥

दुखी चक्रवाक आधी रात में भी नीलकमलो के बीच सैकड़ों तरह से घूमता हुआ नदी के किनारे कही प्रिया के शब्द को सुनकर तट पर ( बैचैत होकर ) चक्र की तरह नाच रहा है ।" ॥ ५५ ॥

अथ यथाप्रियं प्रेषितपरिजनो रजनितोपमतिवाहयितुमनुरूपं  
निरूप्य किन्नरमिधुनस्य शयनमासन्ननिद्रागृहे हंसपिच्छच्छायाच्छ-  
प्रच्छदपटाच्छादितहंसतूलतल्पप्रमजत् ॥

यह सुनकर, परिजनो को अपनी-अपनी आकाङ्क्षित जगह पर भेजकर रात्रि के अवशिष्ट भाग को विताने के लिये समीपवर्ती निद्रागृह के पास किन्नर-गुम्ब को अनुकूल शय्या देकर राजा स्वयं हंस पल की कान्ति जैसी कान्ति वाली निर्मल चादर से आच्छादित हंस सहस्र, रुई वाली शय्या पर लेटा ।

तत्र च दमयन्त्यनुरक्तोऽयमित्रीर्ष्येवानायान्त्यां निद्रायां द्रोणी-  
द्रुमान्तरालसुप्तोत्थितधिविधविहगविरुतानि धिनिद्रधनदेवतापटधमान-  
प्राभातिरुपुण्यकोर्तनानोवाकर्णयन्ननेरुक्तालप्रणालिरापर्यायेण पर्य-  
स्तेऽस्तगिरिस्तके मुक्तास्तथकितनीलधितानपट इव तारातिमिरपटले,  
पट्टांशुक्रवैजयन्तीष्विव भविष्यति दिनकरोदयोत्सरे नभस्तलमलं-  
कुर्वन्नीपु पूर्वस्यां दिशि प्रभातप्रभाचह्वरीनु, बल्लकीवाणरमणीये  
थयति थयणपथमीपदुन्मिपत्कमलमुकुलमुपमुकमधुकरमन्द्रध्यनौ,  
ध्वस्तनिद्रेण प्रभातोचितपङ्जानुबिज्जशुद्धभापामालपतानेन किन्नर-  
मिधुनेन गीयमानमिमं श्लोकमश्रुणोत् ॥

तत्रेति ॥ द्रोण्यां द्रुमास्तेषामन्तराल द्रोणीद्रुमान्तरालम् । मध्ये निम्न प्रान्तयो-  
श्चोन्नततररात्रिविराजितो नीलरत्नः पर्वनादिभूभागो द्रोणी । यद्वाह मुकुटताडितक-  
नादके बाण — 'आशा प्रोषितदिग्गजा इव गुहाः प्रव्वस्तसिंहा इव, द्रोण्यः वृत्त-

महाजुमा इव सुवः प्रोत्खातशैला इव । विभ्रानाः षड्कालरिक्तमकलत्रैलोक्यकृष्टां  
दृशां, ज्ञानाः षीज्जमहारया' कुहरतेर्देवस्य शून्याः समाः ॥ यथा प्रगालिकया  
काळ इयानिति ज्ञायते, सा काळप्रगालिका तान्नमयघटिका । अथवा प्रकृष्टा  
नादिकैव डलपौरैक्ये प्रगालिका । नादिका कालविशेष । तथा च 'अहोरात्रं च  
विद्वद्भिः कल्पते पठिनादिकम्' । यथा च—'सनावा तिष्ठति कुन्तलेष्वरमुना वारोऽ-  
होरात्रस्वसु-च्यते रात्रिरिय जिना कमलया देवी प्रमादाद्य च । इत्यन्त'पुरसुन्दरीः  
प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते, देवेनाप्रतिरक्तिमूत्रमनया द्वित्राः स्थितं नादिका' ।  
अन्यदपि प्रगालिकया जलपद्धत्या परिचिष्यते । तारागां मुक्ता, त्रिनिरपटलस्य  
नीलविनामपट उरमा ॥

“मह दमयन्ती न अनुरक्त है ।” मानो उन ईर्ष्या से निद्रा नहीं आ रही थी ।  
नीला सद्ग आकृति वाली ( ऊँची-नीची ) पर्वतीय भूमि के पेटों के बीच सो  
कर उठे हुए पक्षिया का कण्ठव जगी हुई वनदेवता द्वारा पगे जा रहे प्रात-  
कालीन पवित्र कीर्तन की तरह सुन रहा था । समय गति के क्रम से तारे और  
अन्धकार जन्माचल के मन्त्रक पर मुक्ता के मुक्ता से युक्त नीले तन्मू के वल्ल  
की तरह बिखरे थे । भविष्य में होने वाले सूर्योदयोत्सव के उपलक्ष्य में आकाश  
को अर्द्धवृत्त करती हुई पूर्व दिशा की प्रात कालीन कान्तिरुताएँ शिन्क वल्ल  
से बनी हुई पत्राका की तरह लग रही थीं । थोड़ी-थोड़ी चिटकती हुई कमल  
कल्पिता के मुख से निकले हुए ध्रमरों की गम्भीर ध्वनि बीजा की जङ्गल की  
तरह लग रही थी । प्रातः काल के अनुकूल पङ्क ध्वनि युक्त सुद भाषा में किन्नर-  
सुतक द्वारा गाये जाते हुए इस श्लोक की मुता—

‘धुतरजनिधिरामोन्मीलदम्भोजराजि-  
न्तनुतुहिननुपारानुद्गिरन्गन्धवाहः ।  
कल्पितकलमकुम्भभ्रमभ्रान्तिपूद्गाटितेषु  
म्बलति निधुवनान्तधान्तकान्ताकुचेपु ॥ ५६ ॥

“पवन ने रात के अन्त में खिन्की हुई कमल-पंक्ति को हिला दिया है । छोटे-  
छोटे ओष के बिन्दुओं को बरस रहा है और रतिश्रीवा के अन्त में पकी हुई  
कान्ताओ के स्तनों पर जो हाथी के बच्चे के कुम्भन्यत्र की भ्रान्ति उरान्न  
कर दे रहे हैं, सञ्जित हो रहा है” ॥ ५६ ॥

तदनु पुनः प्रमानप्रहतप्रयागभेरीरयचिनिद्रितस्यापूरयतः सम-  
विपमवनविभागानु-रुल्लोलजलनिधेरिव चलन सैन्यसमूहस्य कल-  
कलमाकर्षयन्नुत्थाय कृतोचिताचारश्चाद्यचिंतवन्द्युडचरण-  
ध्रुल्लगुस्वचारीप्रचारेणाडम्बरितनाण्डवस्य स्रण्डपरशोः पदलीला-  
मिवाभ्यस्यता स्फुरद्गुरुरायमाणघोणाप्रस्वलत्स्वलीनवशविगलित-

बहुललालाजलप्लवेन वनभुवि फेनिलजलनिधिमिधाकारयता जात्यतर-  
सुरगसैन्येन परिवृतः पूर्वप्रस्थानस्थित्या प्रतस्थे ॥

इसके बाद पुन. प्रातः काल वजापे गये प्रस्थानसूचक नगाडे की आवाज से जगे हुए, वन के ऊँचे-नीचे स्थलों को भरते हुए, क्लोत्रपूर्ण समुद्र की तरह उमड़ते हुए सैन्य समूह के कलकल स्वर को सुनकर जगा और दैनिक कार्य किया। भगवान् शंकर को अच्छी तरह पूजन किया। सुर की विशिष्ट गति से उछरने हुए, मानो ताण्डवनृत्य करते हुए भगवान् शंकर की पद-लीला का अनुकरण करते हुए, फड़फड़ाती हुई तथा पुर-पुर ध्वनि करती हुई नासिका के अग्रभाग से खिसकते हुए लगाम धारण करने के कारण गिरते हुए लार की जलधारा से मानो वनस्थली पर फेनिल जलनिधि का आह्वान करते हुए उत्तम कोटि के घोड़ों वाले सैन्य के साथ पूर्व प्रस्थान के अनुसार पुन-चल पडा।

स्थपुटस्थलीस्थितं स्थूलमेकव्यग्रमग्रे राजा गजग्रामण्यमचलोन्म्य  
पुष्कराक्षमभापत ॥

राजा सामने की ओर एक ऊँची-नीची अण्ववस्थित जगह पर चुपचाप  
ठहरे हुए एक मोटे हाथी को देखकर पुष्कराक्ष से कहा—

‘भद्र—

सालानकमनलानमरयुन्नतमनुत्नतम् ।

दन्तचन्तमदन्तं च पश्यैनमगजं गजम् ॥ ५७ ॥

सालेति ॥ शलीनां समूह आलं तदेव प्रयायकावापटहस्तेन सह । मद्विधु-  
गजे शृङ्गाः समीपीभवन्ति । तेन च मत्तो ज्ञायत इति भावः । तथा अनालान  
घन्यस्वान्निरगलस्तमम् । तथातीवोन्नतमुच्चम् । तथा नास्ति उन्नता प्रेरणा-  
स्येति स्वच्छन्दचरमायर्थं । यद्वा अनुश्लेषामन्त्रणम् । तमिति गजविशेषणम् ।  
दन्तचन्तं दन्तुरम् । अदन्तं तृणादिकमदन्तं । अगजं गिरिजं गजं पश्येति  
सम्बन्धः । अथवा सालांस्तस्मिन् दन्तम् । तथा अकमकृत्सितम् । सर्वलक्षणपरिपूर्णम् ।  
तच्च ‘उच्चैः कृमभ -’ इत्यादिना षट्यति । अत्र ‘किम्’ शेषे । शेषं पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

‘भद्र, भ्रमरसमूह रूप नगाडे से युक्त, शृङ्गलारहित, प्रेरणाविहीन,  
अदन्त उन्नत, दाँतों से युक्त ( वृक्षादि को ) खाते हुए इस पहाड़ी हाथी  
को देखो ॥ ५७ ॥

[ सालानकम् .--सह = स + आल + आनक = सालानकम् । अलि ( भ्रमर )  
के समूह को आल कहते हैं । आनक का अर्थ नगाडा है । आल ( भ्रमर समूह )  
और आनक ( नगाडे ) से सहित जो होगा वह सालानक कहलयेगा । गजमद का

आत्वादन करने के लिये अक्ररो का समूह कुम्भस्थल पर भवभना रहा है । अतः अमर ही जानक 'नगाड़े' का काम कर दे रहे हैं । राजकीय हाथियों के कुम्भ पर बुद्ध के समय नगाड़ा रखकर बताया जाता है । यह जगनी हाथी है । इस पर नगाड़े का काम अमर ही करते हैं ।

अनालानम्—आचान ( गृह्यशा ) रहित । जगली हाथी है इसलिये उचने गृह्यशा नहीं है । अत्युन्नतम् ( अत्यन्त उच्च ) है अनुन । तम् ( उच्ये ) देखो । मुन्न का अर्थ है । प्रेरित । अनुन का अर्थ है अप्रेरित । अथवा अनुन्नत है । जमान् अकड कर नहीं खड़ा है । साधारण एव स्वाभाविक स्थिति में खड़ा है । दन्तवन्तम् ( दाँतवाले ) अदन्तम् ( खाते हुए ) अग + जम्- ( अग ( पर्वत ) से उत्पन्न होने वाले ) गजम् ( हाथी ) को देखो । परिहार पक्ष के सभी अर्थ ये ही हैं । आपाततः विरोध की प्रतीति यहाँ होती है । साजानक है फिर भी अनालान है । अत्युन्नत है फिर भी अनुन्नत है । दन्तवाद् है फिर भी अदन्त है । अगज है फिर भी गज है ॥ १७ ॥ ]

अयं हि मन्मथविलासेषु परं वैदग्ध्यमवलम्बते ॥

कामक्रीडा में यह अत्यन्त निपुण है ।

तथाहि—

नृदुकरपरिरम्भारम्भरोमाञ्चितायाः

सरसकिसलयाम्रसशोषार्पणेन ।

मदमुकुलितचक्षुश्चाटुकारी करीन्द्रः

शियिलयनि रिरंसुः केलिकोपं प्रियायाः ॥ ५८ ॥

क्योंकि—

रसिञ्जा से आँखों को निमीलित कर चाटुकारिता करने वाला यह गनेन्द्र सरस तथा नवीन पत्तों के अग्रभाग का कवल देकर अपने कोमल कर ( शुण्ड ) के आलिङ्गन से रोमाञ्चयुक्त प्रिया के लीन की रमन की इच्छा में विचित्र कर रहा है ॥ ५८ ॥

अपिच—

उपनयति करं करेणुकायाः किसलयमङ्गमनङ्गसङ्गताङ्गः ।

स्पृशति च चन्द्रक्षिपश्मंलेखं मुखमखरेण करेण रेणुदिग्धम् ॥५९॥

कामयुक्त अङ्गवाला ( यह हाथी ) हृदिनी के कर ( शुण्ड ) में कोमल पत्र खण्ड दे रहा है । चंचल पक्ष्म-पत्तियों से अङ्कुरित नेत्र वाले उसके धृति धृतरित मुख को अपने कोमल कर ( शुण्ड ) से छू रहा है ॥ ५९ ॥

अथवा विवेकपूर्वव्यवहारविचारेष्वमी मानुषेभ्यः स्तोकमेवाव-  
हीयन्ते ॥

( ऐसा प्रतीत होता है कि ) विवेकपूर्ण व्यवहार और विचार में मनुष्य  
की अपेक्षा ये योद्धा ही कम होते हैं ।

तथाहि—

श्रूयते पुरा किल नारायणनाभ्यम्भोरुद्धकुहरकुटीमधिशयानस्य  
वेदविद्यां निगदतो भगवतः पितामहस्य बृहद्रथन्तरविकीर्णभासमा-  
नानि सामानि गायतः सामस्तोभरसनिष्यन्दादुदपद्यन्तैरावतसुप्रतीरु-  
कुमुदवामनाञ्जनप्रभृतयोऽष्टौ दिग्गजेन्द्राः ॥

\* श्रूयत इति ॥ सामस्तोभरसनिष्यन्दादिति । सामानि स्तोम भासक्तिस्तमाद्र-  
सस्य स्वेदस्य निष्यन्द छावस्तत इत्यर्थ । स्तोकरसपाठे तु रस भामक्ति ।  
निष्यन्द स्वेदः ॥

सुना जाता है कि पुराने जमाने में जब नारायण के नाभिकमल की कुटी  
में लेटकर ब्रह्मा वेद गा रहे थे । बृहद्रथन्तर के फुटकल सुन्दर सामी वी गाते  
समय सामस्तोम के रसविन्दु से ऐरावत, सुप्रतीक, कुमुद, वामन, अञ्जन  
आदि आठ दिग्गजेन्द्र उत्पन्न हुए ।

तेभ्योऽभवन्भद्रमन्द्रमृगसंकीर्णजातयो गिरिचरनदीचरोभय-  
चारिणः करिणः ॥

उनसे भद्र, मन्द्र और मृग नामक पर्वत में घूमने वाली, नदी पर चरने  
वाली और पर्वत तथा नदी दोनों पर भ्रमण करने वाली क्रमशः संकीर्ण जातियाँ  
उत्पन्न हुईं ।

प्रसिद्धं चैतत् । 'सामजा गजाः' इति ॥

यह प्रसिद्ध है कि हाथी साम से उत्पन्न हुए हैं ।

केचित्पुनरन्यथा कथयन्ति—

कुछ लोग दूसरी तरह कहते हैं—

किल सकलसुरासुरकरपरिवर्त्यमानमन्दरमन्थानामधितदुग्धा-  
म्भोनिधेरजनि जनितजगद्विस्मयो लक्ष्मीमृगाङ्गसुरभिसुरद्रुमधन्वन्तरि-  
कौस्तुभोच्चैःध्रुवसां सहभूः शशधरकरकान्तिरैरावत । तत्प्रसूति-  
रियमशेषयनान्यत्लं करोतीति ॥

समस्त देवों और दानवों के हाथों से घुमाये जाते हुए मन्दराचल रूप  
मन्परण्ड से क्षीर सागर के मथने पर सद्यः की आश्चर्य में डाल देने वाला

चन्द्र की कान्ति सदा शुभ्र ऐरावत लक्ष्मी, चन्द्रना, कामधेनु, वन्द्यवृक्ष, धन्वतरि, कौमुभ तथा उच्चैश्रवा के साथ ही उन्मत्त हुआ । उसी की संगति मनस्त बना को अकृत कर रही है ।

तदेष मद्रजातिर्नपिप्यति ।

यह तो मद्रजाति का होगा, क्योंकि—

नयाहि—

उच्चैःकुम्भः नपिशदानो बन्धुरस्त्वन्धसंधिः ।

स्निग्धानाम्रद्युतिनखमपिलम्बवृत्तोल्लसन्तः ।

शूः सतच्छदपरिमलस्पर्शदानोदरोऽय

मद्रं सान्द्रमगिरिसरित्तिरचारी करोन्द्रः ॥ ६० ॥

कुम्भम्बल उंचे हैं, दंत पीछे हैं, कंधा = जोड़ बनाहर हैं, नव नदि की तरह लाल और चिन्न हैं, दस न्यत्र गेठ है, गुड दिव्य है, मद्रक चतच्छद व मकरद की लय से सजा करदा है, पत पडा, पहाडा और नदिमा के तट पर विहार करने वाला, यह बोर गवैत्र बडा ही नन्द है ॥ ६० ॥

तन्मोदनामयम्, अनुरागिणोर्दन्त्यो. क्रीडारसधिवानं कृतो न श्रेयान्' इत्यभिधाय, हृत्तद्वयः, स्वैरं रममाणमृगमिथुनविलानै रुद्रासिनपुलकं. कुनुमितकाननानिन्द्रैस्त्वम्भयमान, सपरिर्ज्ञपोपान्त-पादपतलचलत्केलिकिलकेकिनेकारधर्मिनोद्यमानः समीपचरसेवक सुभापितैश्च, समसमं च, निम्नगात्रमनिम्नगात्रं च प्रायविषमम-प्रायविषमं च, सभ्वापदमभ्वापदं च, सपादपमपादपं च, विन्यस्त्वम्-मुल्लङ्घन, देव, विलोभ्यतामिह विषमधियाणि पत्रगकुलानि श्रोत्रांगहनं च, इह शरासनरुस्याणि वनानि पापद्विकपुलिन्दवृन्दं च, इह बहुसुखानि शरद्वन्द्वानि रत्नाकरस्यलं च, इह सुमधुराणि फलानि कीचकननं च, इहामोदिनमिम्बकुम्भि कुलुमानि सरित्तिरं च, इह संप्रभावण्यानि दग्धधारण्यानि मुनिमण्डलं च' इति विविचयनप्रदेशान्दर्शयतः पुत्रराजस्य विचित्रवचनोक्तीर्भाविष्यन् तमेगातिहम्य शिलरपरस्वरं परैरसह्यं सहा चलमयततार ॥

पद ३ । उच्चैःकुम्भ इ पायनिमान तेनैव करिगा हृत्तद्वयो मृगमिथुनविला-नदिमि' पुलकद्वयेन इहसा विन्यमतिहम्य 'देव, वीचरताम् इह विन्यस्त्वम्भे इदमिदमिति वनप्रदेशान्दर्शयत' पुत्रराजस्य वक्रोक्तीर्भाविष्यन्तिहम्यशिलरपर-स्वर' सहामयात् । केडये किलतीति केडिकिल' ('इगुपव' इति क) क्रीडापात्रम् ।

केलिक्रिडानां केकानुकारप्रवृत्तानां च केकारवैविनोद्यमानः। सह मया धिया समं  
 सध्रीकम्। अक्षम विषमम्। न समोऽस्येति कृत्वा उरुकृष्ट घा। निम्नगा नदीध्यायत  
 इति क। तथा अनिम्नमुच्च गात्र मूर्तिर्घस्य। प्रावभिर्दपद्भिर्विषमम्। अग्ने भव-  
 विषमसमम्। अवेति नप्रथे। श्वपदं हिंस्रपशु। अश्वानामपदमभूमिम्। समनिर्जलो  
 हि देशोऽधोयः। अयं च प्रावविषयो निम्नगाधारश्च। सह पादपैवृष्टैः। सपा  
 अपादान् गूढपद पानीयपादपम्। शृम्पे हि सर्पादिप्रातुर्यम्। अथवा भतिवैषम्या-  
 रसचरतां पदान् न पातीत्यपादपम्। इह विषेति ॥ विषम विषं येषु पक्षगजुलेषु।  
 द्रोणीगहनेषु तु विषमा विषाणिनो दन्तिन शृङ्गिणा वा राम्बरादयो यत्र। इह  
 शरेति ॥ शरेण मुन्त्रेण असनेन वीजकवृत्तेण च करम्बाणि शकलानि। पुलिन्दवृन्दं  
 तु घरासन्न घनु करे पश्य। तथा याणा सन्नपस्येति याणि सतरम। इह वेति ॥  
 बहु सुखं देया तानि बहुसुखानि। स्थल तु बहु विपुलम्। तथा सुष्टु पानिराकरो  
 यत्र। बहुशब्द वैपुल्येऽपि। इह स्मेति ॥ सुष्टु मधुराणि घनं ह्य सुष्टु मधु यत्र  
 तस्सुमधु। तथा रणन्यवर्यं राणि। सच्छिद्रा हि वशा चायुवशाद्रणन्तीति।  
 इहामपिनि ॥ आमोदिता सुरभिता विश्वाः सर्वा ककुभो दिशो यैः। तीरं तु आमो  
 दिना हर्षिता घय पक्षिण श्का शुन मंज्जा वृका कुम्भिनश्च गजा यत्र। आमोदो  
 हर्षेऽपि। यद्विश्वप्रकाश—‘आमोदो गन्धहर्षयो।’ यदा तु विरवा शृण्ठी कुम्भी  
 च घल्लीविशेष। तदा बहुघोही ‘शेषात्’—इति कब्दुर्वार’। सादर्यवृत्ते शुनः।  
 सज्ञाप्रतिक्रियो क्वम्। इह सेति ॥ सती शोभना प्रमा कान्तिस्तया यन्थानि  
 रहितान्परण्यानि मुनिमण्डल तु मप्रमाधम्’। तथा ध्यानमस्यास्तीति ध्यानि ॥

अच्छा, यह करे आनन्द का अनुभव। अनुरागी दम्पतियो के क्रीडारस  
 में विघ्न डालना अच्छा नहीं।” यह कह कर विह्वल हो उठा। स्वच्छन्द विहार  
 करते हुए मृगदम्पतियो के बिलास (दर्शन) में रोमाञ्चित हो गया। पुष्पिन  
 वानरों की हवा से काँप उठा। गिरते हुए धरनों के समीप वाले पेड़ों के नीचे  
 नीडापात्र, मयूरो की ध्वनियो और समीपवर्ती सेवकों के सुभाषितों से मनो-  
 विनोद करता हुआ सम (शोभा-सम्पन्न) एव विषम (ऊँचे नीचे) निम्नगात्र  
 (नदियों की रक्षा करने वाले) ग्राम-विषम (घट्टाना के कारण विषम)  
 और अपवा-विषम (आगे कुछ दूर सम) सरवापद (हितक जन्तुओं से युक्त)  
 और अरवापद (अश्वों के न चलने योग्य) सपादप (वृशों से युक्त) और  
 अपादप (पादरहितों (सर्पों) की रक्षा करने वाले) विन्ध्य स्वन्ध को पार  
 कर, “देव, देखिये यहाँ भयङ्कर विषवाले सर्पों व जतये हैं और यह घनी पर्वत  
 भूमि बड़े-बड़े शृङ्गों वाले पृगों से अलङ्कृत है। यहाँ धर और असन वृशों  
 से वन चितकवरे रग का हो गया है और व्याधों का समूह धनुष तथा बाणों  
 से युक्त है। यहाँ किरात दम्पतियाँ बहुत सुखी हैं और रत्नाकर का स्थान  
 भी बहुत सुन्दर सामि (सजाने से युक्त) है। यहाँ सुन्दर मोठे फल हैं और  
 कीचक वन सुन्दर मधु से युक्त है तथा राणि (ध्वनियुक्त) है। ये पूल समस्त

दिशाओं को सुगन्धित कर दिये हैं और इस नदी-तट के पक्षी, भेड़िये और हाथी पसन्न हैं। वन की आग से जला हुआ यह जल्लसमुन्दर वाग्नि से शुभ्य है और यह मुनिमूह काग्निमान् सया ध्यानमग्न है।" इस तरह वन के विविध भागों को दिखाते हुए पुत्रराज की श्लेषपूर्ण बातों पर विचार करता हुआ उन से विविध चोटियाँ को धार कर शत्रुओं के लिये असह्य सहायक नामके पर्वत पर उतरा।

{ विषम विषाणि से लेकर मुनिमगडान् तक अधिकांश स्थानों पर लिंग-श्लेष और वचन श्लेष दोनों हैं। वही सामान्य श्लेष भी है।

विन्ध्य स्कन्ध सम है और विषम है। विरोध। सम ( मा ( लयनी ) से युक्त है इस त्रिं सम ) है। विषम ( ऊँचा-नीचा ) है। परिहार।

निम्न गान है और अनिम्न गात्र है। विरोध। निम्नगा ( नदियों ) का प्राय ( रक्षा ) करने वाला है अथ निम्नगा + व है और बृहत् उन्ध ( अनिम्न ) उरीर ( गान ) वाला है इस लिये अनिम्न + गात्र है। परिहार

श्राव + विषम है फिर भी अश्राव + विषम है। विरोध। श्राव + विषम ( परशर के कारण ऊँचा नीचा ) है और अश्राव + विषम ( आगे कुछ दूर पर हाट्ट जमीन है और कुछ ऊँची नीची भी ) है। परिहार। सश्रावपद है फिर भी अश्रावपद है। विरोध। श्रावपद ( हिंसक जन्तुओं ) से युक्त है और बहूव ऊँचा नीचा होने के कारण अश्राव के चकने योग्य नहीं है। परिहार।

• सपादप है फिर भी अपादप है। विरोध। सपादप ( पादपों से युक्त ) है और अपादप इस लिये है कि अपाद ( पदविहीन ( सर्पों ) की रक्षा करता है। विन्ध्य स्कन्ध की अन्वहारबहुल गुहाओं में सर्प मजे में रह रहे हैं। परिहार।

• विषम, विषाणि से लेकर मुनि-मगडान् तक लिङ्ग श्लेष और वचन श्लेष है।

विषमविषाणि—जब यह पत्रग कुछ का विशेषण है तो इसका विग्रह है—विषम है विष जिनका। अर्थात् पत्रग कुछ अयम्न विषमर हैं। जब यह श्रोत्र गहनम् का विशेषण है तो एकवचन है और पत्रगकुण्डानि के साथ बहुवचन है।

श्रोत्री + गहनम्—नीका की जाहति वाली, चारों तरफ ऊँची जोर बीच में गहरी पथरीली या पहाड़ी जमीन को श्रोत्री कहा गया है। श्रोत्री का गहन स्पष्ट विषमविषाणि है। विषम ( बड़े-बड़े ) विषाणी ( शृङ्ग वाले जानवर ) जिस श्रोत्री गहन में रहते वह विषम विषाणि है। विषमविषाणि शब्द के नष्टक लिंग प्रथमा का एकवचन है।



शरासनकरम्बाणि— यह पद भी वनानि और पापटिक-पुलिन्द-वृन्दम् दोनों पक्षों में लगेगा ।

वन पक्ष वन शर और असन नामक वृक्षों से करम्ब ( कर्करित रग का ) हो गया है ।

पुलिन्द-वृन्द पक्ष—इस पक्ष में शरासनकरम् एक पद है और बाणि एक पद है । दोनों पापटिक-पुलिन्द वृन्दम् के विशेषण है । शरासन ( धनुष् ) जिसके वर में है वह वृन्द शरासनकरम् हुआ । बाणि हैं जिनके पास वे बाणि हुए । बाणिन् शब्द के नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन बाणि है ।

बहु + सुखानि—यह पद शबर-द्वन्द्व और रत्नाकर स्थान दोनों में लगेगा । शबर द्वन्द्व—बहुत है सुख जिनको वे बहुसुखानि हैं । बहु सुख शब्द का नपुंसक, प्रथमा, बहुवचन । रत्नाकरपक्ष—बहुत से सुन्दर खानि ( खजाना ) है जिनमें वह बहुसुखानि है । इस पक्ष का बहुसुखानि नपुंसक लिंग के प्रथमा का एकवचन है ।

सुमधुराणि—एक पक्ष में—पूर्ण मधुर अर्थ है । कीचक वन पक्ष—यहाँ सुमधु और राणि पृथक्-पृथक् पद है । दोनों ही पद न० प्र० एकवचन है । सुन्दर है मधु जिस में वह सुमधु है । रणन ( ध्वनन ) कार्य सम्पादित होता है जिस से वह राणि कहलाता है । राणिन् शब्द का न० प्र० एकवचन । छिद्र युक्त वासों के वन को कीचक वन कहते हैं । वास के वन में मधुपविष्टया मधु वा छत्ता लगाती है । वास के छिद्रों में जब हवा का आगमन निर्गमन होता है तो उनसे ध्वनि निकलती है ।

आमोदित-विश्वककुम्भि —कुसुम पक्ष—आमोदित ( सुगन्धित ) कर दिया है विश्व (नमस्त ) रकुम्भ ( दिशाओं ) को जिन कूत्रों ने । आमोदित-विश्वककुम्भ शब्द के नपुंसक लिङ्ग प्रथमा का बहुवचन रूप है ।

सरित्तीर पक्ष—प्रसन्न हैं वि ( पत्नी ), श्वक ( जंगली कुत्ते = भेड़िये ) और कुम्भी ( हाथी ) जिन नदी तट पर वह वि + श्वक + कुम्भि कहलाता है । यह नपुंसक प्रथमा का एकवचन है ।

सम्प्रभावन्ध्यानि —शरणपक्ष—सम्प्रभा ( सुन्दर कान्ति ) में वन्य ( मूष्य ) जगत् के जिन भाग में आग लग जाती है वह भाग कान्तिहीन हो जाता है । मुनिमण्डल पक्ष में सम्प्रभावन् एक पद है और ध्यानि दूसरा पद है । अर्थात् मुनि लोग सम्प्रभावन् ( सुन्दर कान्ति से युक्त ) हैं और ध्यानि ( ध्यानमग्न ) हैं । ]

रमणीयतया म्निगन्धतया च पुनः परिवर्तितमुखो विलोक्य विन्ध्य-दक्षिणमेखलाशिखरश्रेणीपादपान् पुष्कराक्षमभापत ॥

‘मद्र, दुस्त्यजाः खल्वमी विन्ध्यतटीतरवः ॥

रमणीयता और कीमलता के कारण पुन मुल फेर कर विन्ध्याचल के दक्षिणी तट शिखर समूह के दृशों को देख कर पुष्कराज से बोला—कल्याण, ये विन्ध्याचल के पेड़ बड़ी कठिनाई से छोड़े जा सकते हैं ।

तथाहि—

बायासाः कुसुमायुधस्य शयरीसंनेतलीलागृहाः

पुष्पामोदमिलन्मधुवतवधूङ्गाररुद्धाध्वगाः ।

सुस्निग्धा प्रियवान्धवा इव दृशो दूरीभवन्तश्चिरात्

कस्यैते न दहन्ति हन्त हृदयं विन्ध्याचलस्य रुमाः ॥ ६१ ॥

क्योंकि—

किरात-वान्ताओं के संकेत वाले विनास गृह काम के घर हैं । पुष्पगन्ध में निचली हुई भ्रनरवधुओं की शक्ति से पक्षिक बह जा रहे हैं । चिरकाल के क्रिये आँखों में दूर हो रहे प्रिय वन्धु की तरह विन्ध्याचल के ये पेड़ किसके हृदय को व्यथित नहीं कर देते ? ॥ ६१ ॥

अपि च—

भ्रान्यद्भृङ्गमरावतप्रकुसुमश्च्योतन्मधूद्गन्धिपु

च्छायावत्सु तलेपु पान्यनिचयाधिधन्य गेहेष्विव ।

निर्यन्निर्जरवारिवारितृपन्तृष्यन्ति येषां फलै-

स्ते चन्दन्तु फलन्तु यान्तु च परामभ्युन्नति पादपाः ॥ ६२ ॥

और—

धूमते हुए भ्रनरों के भार से नवे हुए फूलों से मधु टपकने वाले, वस्तुतः गन्ध एवं छाया युक्त पेड़ों के नीचे घर की तरह विग्राम करने हुए पक्षियों के समूह बहते हुए झरने के जल से प्यास बुताकर जिन के फलों से तृप्ति का अनुभव करते हैं वे वृक्ष प्रनत रहे, फलें और अत्युत्तम उन्नति प्राप्त करें ॥ ६२ ॥

अपि च—

यत्र न फलिताम्ररवो विकसितसरसीरुहा. सरस्यो वा ।

न च सज्जनाः स देशो गच्छतु निधनं श्मशानसमः ॥ ६३ ॥

यत्र जेते ॥ देशरमशानयोः समतायामरनिजनकथं हेतु ॥ ६३ ॥

और—

जहाँ फले हुए पेड़ नहीं हैं, खिले हुए कमलों की बागलियाँ नहीं हैं और जहाँ सज्जन नहीं हैं, वह श्मशान सदृश स्थान नष्ट हो जाय ॥ ६३ ॥

तत्कथय कदा पुनरिमां विन्ध्यवनवीथीं विचित्रपत्रलकुचां  
दमयन्तीमिव निर्दिष्टमलोकयिष्यामः ॥

तत्कथयेति ॥ विचित्रपत्रा लकुचास्तरवो वक्ष्याम् । दमयन्ती तु विविधपत्रवह्नी-  
युक्तस्तनी । पत्र टात इति के पत्रलौ ॥ .

तो कहिये, पुन कब विचित्र + पत्रल + कुचा (विविध पत्र रचना युक्त स्तनी  
वाली) दमयन्ती की तरह विचित्र + पत्र + लकुचा (सुन्दर पत्रों वाले लकुच  
वृक्षों से युक्त) इस विन्ध्याटवी को निर्दिष्टतापूर्वक देख सकेंगे ?

तथाहि—

पोनोन्नमद्धनपयोधरभारभुङ्ग-

मध्यप्रदेशरुचिमल्लवलीलनायाः ।

उत्कण्ठितोऽस्मि चलदेणदृशः प्रिया

स्तस्याश्च पर्वतभुवो वनवीथिकायाः ॥ ६३ ॥

पोनोन्नेति ॥ कठिनस्तनभरेण भुङ्गने मध्ये उदरे रुचि मल्लन्ते धारयन्ति हरिणि  
तथोक्ता वक्ष्य एव लता यस्याः । वली उदररेखा । तथा चलतामेणानामिव दृशौ  
यस्या । वनवीथीपक्षे पयोधरो मेघ । रुचिमती तेजसिधनी लवली नागनी लता  
तथा । चलदेणानां दृक् दर्शनं वक्ष्याम् ॥ ६३ ॥

स्यूल, उच्च, तथा घने स्तनों के भार से कुछ नबे हुए उदर भाग में काग्नि  
शील वलीलता (पेटी) वाली, पचल हरिण नेत्र सहस्र नेत्र वाली उस  
प्रिया के लिये और इस पर्वत में उत्पन्न होने वाली वनवीथियों के लिये  
उत्कण्ठित हूँ ॥ ६४ ॥

[प्रिया के सभी विशेषण वनवीथिका पक्ष में भी लगते हैं । वनवीथी पक्ष—  
जहाँ पीन (बड़े बड़े उमड़ने हुए घने बादलों से युक्त मध्य भाग में काग्निमयी  
लवली की लता है और जहाँ चलने हुए हरिण देखे जाते हैं । दमयन्ती पक्ष  
अनुवाद भाग में देखें ॥ ६४ ॥ ]

अपि च—

सानूनां सानूनां विलोपय रमणीयतां च सानूनाम् ।

सालवने सालवने विहरिष्यति सह मयाऽन्न कदा ॥ ६५ ॥

सानूनास्त्विति ॥ सानूना तटानां सम्बन्धिनो ये सानवो मार्गास्तेषां रमणीयताम-  
नूना परिपूर्णां विलोक्य भलवनेन सह यत् सालानां सर्जतरुणां वनं तस्मिन्मया  
मम कदा सा विहरिष्यति । अन्न प्राच्य. सानुशब्दस्त्वटार्थोऽन्यथाप्यर्थः ।  
यद्विध—'सानु श्रुते सुधे पद्यायां पयल्लवे धने' । यदि वा 'णु स्तवने' भान-  
वनमान् प्रसंसा तथा सह वर्तन्त इति सानूनि येषां स्तुरयानामित्यर्थः ॥ ६५ ॥

तट बाजे मार्गों की अनन्य रमणीयता को देखकर न कटे हुए इन साज वन में मेरे साथ वह स्व विहार करेगी ॥ ६१ ॥

[साधुनाम् ( तटमात्रे ) सानुनाम् ( मार्गों की ) जगुनाम् ( अनन्य ) रमणीयताम् ( रमणीयता को ) देख कर साधवने ( न कटे हुए ) साधवने ( सब नामक वृक्षों के वन में ) सा ( वह ) मेरे साथ स्व विहार करेगी ? एक साधवने का अर्थ "न कटा हुआ" है । अवन का अर्थ है कटना । न सवन = अवन और जगुना सङ्घित साधवने । जगुना किन काटा छटा नहीं गया है । प्रथम साधु शब्द तट या वाचक है और द्वितीय साधु शब्द मार्ग का । 'साधु शब्द श्रेष्ठे मार्गे पहाया पञ्चमे वन ।' विश्व ॥ ६१ ॥ ]

सखे सखेदा इव वयम्, तत्कथय क्रियद्दुरेऽद्यापि स विद्वन्-  
धिषय, यत्र ब्रह्माण्डशुक्तिसंपुटमभ्यमुक्ताफलगुलिकया तयालङ्कृतं  
तन्कुण्डितं नगरम्' इत्यभिदधाने निषधनाथे तैस्तरात्रापैरनुवर्ति-  
तोक्तिः पुष्कराऽशोष्यमापत् ॥

देव, प्राता ननु वयम् ॥

सख इति ॥ ब्रह्माण्डमेव शुक्तिमपुटः । सा च तन्मध्ये मुक्ताफलगुलिका मधु-  
मुक्ताफलम् । गुलिकाकरत्वात् । पनावता स्थूलवृत्तवत् ॥

मित्र, हम लोग एक से गये हैं । तो बताओ, जमी वह विद्वन् देश नहीं ब्रह्माण्ड स्व शुक्ति-समुद्र ( साधु ) में मृदु मुक्तानां सख वस वनपत्नी द्वारा जगुना वह कुण्डित नाम का नगर है, कितनी दूर है ?" ऐसा कहने पर वन-वन ( प्रेमबहुत प्रसङ्गिक ) बातों से संबद्ध बातें करता हुआ पुष्कराक्ष भी बोला—“देव हम लोग पहुँच गये ।”

इदं हि—

वीरपुत्रो तदेतद्वत्पातनामकं महाराष्ट्रम् ।

दक्षिणसरस्वती सा बहति विदर्भा नदी यत्र ॥ ६६ ॥

वीर पुत्रों से मुक्त वरदा के तट पर यह महाराष्ट्र देश है जहाँ दक्षिण ( देश ) की सरस्वती विदर्भा नदी बहती है ॥ ६६ ॥

[ महाराष्ट्र में वरदा और विदर्भा नाम की दो नदियाँ हैं । दक्षिण पूर्व में बहती हुई विदर्भा नदी गोदावरी में गिरती है ॥ ६६ ॥

इहाकरमया सिंहलद्वीपमुवा सदशी, बहुदया त्यागिजनतया  
तुल्या सनृद्धनया मूनिघातकृपपजननिक्षेपकुम्भिकया समाना, प्रजा ॥

इति । न कराराजदेवांशान्प्रयं यस्यां नाऽकरमया । मुवा तु न करमा यम्पानिति करमरहितया तथा बह्वी दया यस्यां सा बहुदया । त्यागिनां जनतया

तु बहु ददातीति बहुदा तथा बहुदया । जनानां समूहो जनता । 'प्रामजन इति समूहे तल्' । समूहो नयो यस्यां सा समृद्धनया । कुम्भिकाया तु समृत् सत्तिकोपेतं धन यस्यां तथा समृद्धनया ॥

यहां की प्रजा सिंहल द्वीप की तरह अ+कर+भया (करके भय से मुक्त) है । बहुत देने वाली उदार जनता की तरह बहु+दया (उदृत दया से युक्त) है । कृपण लोगो द्वारा पृथ्वी में गाड़ कर रखी जाने वाली मिट्टी से युक्त और धन से भरी हुई कुम्भिका की तरह समृद्ध + नया (न्यायसम्पन्न) है ।

[ प्रजा अकरभया है । उसे कर का भय नहीं है । राजा की ओर से कर की छूट दे दी गयी है । सिंहल द्वीप में करभ (हावी) नहीं होते हैं । जहाँ करभ नहीं हो वहाँ की भूमि अकरभा कहलाती है । अकरभा शब्द के तृतीया का एक वचन अकरभया है । बहुदया—प्रजा बहुत दया युक्त है । बह्नी दया यस्यां जसौ बहुदया प्रजा । बहुत देने वाली जनता बहुदा कहलाती है । बहुदा शब्द की तृतीया का एक वचन बहुदया है ।

समृद्धनया—प्रजा समृद्ध (सम्पन्न) नय (नीति) वाली है । मिट्टी में गड़ी हुई कृपण की धनभरी कुम्भिका भी समृद्धना है । मृत् ( मिट्टी ) से सहित पदार्थ समृत् है । समृत् धन है जिसमें वह है समृद्धना । समृद्धना शब्द की तृतीया का एक वचन है समृद्धनया । कृपण लोग अपने धन को मिट्टी के नीचे घडे में बन्द कर रखते हैं । इस अनुच्छेद में उपमान कोटि के शब्द प्रथमान्त हैं । शब्दों का आहृति-साम्य ही साधारण धर्म है जैसे सिंहल द्वीप की भूमि से भी अकरभया इस आनुपूर्वी का अन्वय है और प्रजा से भी । समृद्धनया और बहुदया की भी यही स्थिति है । ]

इह समरुन्दानि कमलयनानि राजराजन्यचक्र च, इह बहु-  
धामानि नगराणि लोकहृदयं च, इह सारग्भाणि कृपाणकुलानि दरा-  
रूपरुपेक्षणं च, इह बहुकृपाणि जनमनांसि प्रजापालयल च इह मदा-  
यिप्राणि प्रामपुरपत्तनानि मेयगोष्ठं च ॥

इति ॥ सह सकरन्देन वनानि । रामग्यचक्र तु सम को राजांसो यस्य । तथा दानमस्यास्तीति दानि । इह वेति ॥ बहुनि धामानि गृहाणि येषु । हृदयं च बहुधा अनेकधा मानोऽस्यास्तीति मानि । इह क्षेत्रं ॥ सह भारग्भैरुपमै कुलानि । प्रेषणकं तु सारमुत्कृष्टम् । तथा भाणो रूपकविशेष सोऽस्यास्तीति भाणि । यदाह धनिक -'भाणस्तु भूतंचरित कृतं स्वैव परेण वा । 'यत्रोपवर्णवेदेको निपुणः पण्डितो विद' । इह वेति ॥ यद्वा कृपा येषु तानि । यलं च बहु । तथा कृपाणः स्वर्गोऽस्यास्तीति । इह वेति ॥ महान्तो विमा येषु । गोष्ठं तु महान्तोऽवयो मेग्दास्ते पृथ प्राणिनो बलवन्तो वयः ॥

यहां कमलवन परागपूर्ण है। समन्त राजाआ का वर्ग समान कर (माद्गुजारी) लगाता है और दान देता है। मगर बहुत भवनों से युक्त है और लोगों का हृदय बहुधा मानी है। तलवारों तैयार रहती हैं। नाटक प्रकरण आदि का मण्डल दशरूपक दर्शन उत्कृष्ट भाग नामक रूपक से युक्त है। प्रजा की रक्षा करने वाली सेना बहुदृष्टपापो से युक्त है और जनता के मन से कृपा भरी है। ग्राम, नगर और राजधानियां महाबाह्याणो से युक्त हैं और मेघ-गोष्ठ (भेड़ों के रहने वाले स्थान) बड़े-बड़े बलवान् भेड़ों से युक्त हैं।

[समकरन्दानि-कमलवनानि के साथ तो इस का "परागपूर्ण वा मकरन्द सहित" अर्थ है। राजराज्य पक्ष में यहाँ दो पद हो जाते हैं। समकरम् और दानि। राजसमूह अपनी-अपनी प्रजा पर समान ही कर लगाता है। ऐसा नहीं कि कोई शूर राजा अपनी सुन्दर-भुविधा के लिये प्रजा पर अधिक कर लगा देता हो। समानः करः यत्स्य तन् समानकरम् राजराज्यम्।

दानि—यह भी राजराज्य का विशेषण है। राजसमूह दान देने वाला है इस लिये उसे दानि कहा गया है। पुंलिङ्गरूप तो इसका दानी होगा। किन्तु नपुंसकलिङ्गान्त राज्य शब्द का विशेषण होने के कारण दानि ही गया। दानिन् शब्द का नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचन है।

बहुमानानि—बहुत है धाम (भवन) त्रिषु नगर में उन्हें बहुमानानि नगरानि कहा गया है।

लोकहृदय पक्ष में बहुधा और मानि पृथक्-पृथक् पद हैं। लोगों का हृदय बहुधा मनस्वी है। मानिन् शब्द की नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा का एक-वचन है।

सारम्भानि—कृपाण-कृत पक्ष में यह पद नपुंसक, प्रथमा का बहुवचन है। कृपाणसमूह सदा सारम्भ (सयत्न या तैयार) रहता है। दशरूपक प्रेक्षा-पक्ष में सारम् और भानि पृथक्-पृथक् पद हैं। रूपक के दश भेद होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाग, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, बीपी, अङ्क और ईशामृग। इसी लिये इन्हे दशरूपक कहा जाता है। सारम् (उत्कृष्ट) भानि (भाग नामक रूपक से युक्त) दशरूपक दर्शन है। लोग भाग नामक रूपक को बहुत अधिक पसन्द करते हैं। भानिन् शब्द का न० प्र० एक-वचन है।

बहुदृष्टानि—जब यह जनमनासि का विशेषण है तब तो बहुदृष्ट शब्द का नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा बहुवचन है। जनसामान्य के मन में बहुत कृपा है। जब यह प्रदापालवन्दम् का विशेषण बनता है तो बहुदृष्टानिन् शब्द का

नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा एकवचन है। प्रजा की रक्षा करने वाली तेजा के पास पर्याप्त कृपाण हैं। उस समय नगरो में पहरा देने वाली पुत्रिस्त तलवार लेकर पहरा देती थी।

महाप्रियाणि—घास, नगर और बरतन महाब्राह्मणों से मुक्त है। इस पक्ष में न० प्र० बहुवचन है। ब्राह्मण शब्द के पूर्व महत्त्व शब्द का प्रयोग बहुत पहले अच्छा माना जाता था। बाद में चल कर इसके अर्थ की अवगति हो गयी। महाब्राह्मण का अनुत्तम प्राद्विण अर्थ हो गया। मेघगोष्ठ पक्ष में यह शब्द न० प्र० एकवचन है। महा + अवि + प्राणि ( बड़े-बड़े भेड़ रूप प्राणी जिसमें रहते ) हैं, भेड़माला में बड़े बड़े भेड़ वाले गये हैं। ]

इयं च गगनवीथीश्च पूर्वोत्तराफल्गुनीराशिवायूपयुक्ता ब्राह्मणा-  
ग्रहारभूमिः ॥

इयं चेति ॥ पूर्वश्यामुत्तरश्या चाकशु सारमुत्कृष्ट नीर यस्मात् ॥ तथा शिवा  
क्षयाग्नी ॥ तथा धूर्पैर्यजवीलैर्युक्ता ॥ गगनवीथी तु पूर्वा उत्तरा परगुन्धो राशयो  
मेघाद्या वायु पवनस्तैर्यपहुकोपयोगीकृता ॥

राजा द्वारा ब्राह्मणों के लिये दी गयी यह भूमि आकाश मार्ग की तरह पूर्व और उत्तर में अफल्गु ( पर्याप्त ) जल से भरी है। शिवा ( कृष्णानवारिणी ) है। मूष ( मङ्गस्तम्भो ) से मुक्त है, आकाशवीथी पूर्वा, उत्तरी, फल्गुवी नक्षत्रों ( नेत्र, वृष आदि ) राशियों और वायु के उपयोग में लायी जाती है। [ पूर्वोत्तरा फल्गुनी राशिवायूपयुक्तात्वरूप साधारण धर्म आकाशवीथी और अग्रभूमि दोनों में है। ]

इत्यर्थ—

आरुह्यैता शिखरिसदृशाभ्राममध्येश्चकूटा-  
नन्योन्यांसप्रणिहितभुजा संगता कौतुकेन ।  
प्रेक्षावेशाद्विचित्रदृशो योषित पामराणां  
पश्यन्त्यस्त्वां निभृततनयो लिप्यलीलां वहन्ति ॥ ६७ ॥

आरुह्यैति ॥ शिखरी गिरिः । कूटा अवकरोकरा प्रेक्षायामवलोकने आयेव  
आग्रहाः । पामरा प्राकृतपना ॥ ६७ ॥

इत्थर—

गाव के बीच पर्वत सहस्र ऊँचे स्थानों पर चढ़कर घामौली की स्त्रियों एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर कोरूह से दृष्टि होकर, देखने की उपाय उत्सुकता से निःशेष दृष्टि से तुम्ह देपनी हुई निश्चय करीर होकर विन बना रही हैं ॥ ६७ ॥

किं चान्यत्—

नृप चलसि यथा यथा स्वमस्मिन्नपि चद्रनानि तथा तथा चलन्ति ।  
तरलितनयनानि पामरीणां पथनधिनर्तितनपङ्कजोपमानि ॥ ६८ ॥

और दूसरी बात यह कि—जैने जैने आप इस स्थान की ओर बटन है  
वैने वैने हवा में कमिन्त कमः बटन चबल नेत्र वाले इन क्रियों के मुख  
भी बचने है ॥ ६८ ॥

[ राग ज्यों ज्यों उनकी दृष्टि के मनीस झूठा है त्यों त्यों उनकी स्वल्प-  
रत्न विभेयताओं के सम्बन्ध में कुछ कहनी मुनयो, चित्र बनाती सीन्दर्य विशेष  
का बीजा करती हुई राग्य-बधुआ के नेत्र और मुख क्रियाशील हैं ॥ ६८ ॥ ]

अपि च—

उत्कन्नाद्रलितांशुकेषु रमनादत्यन्तमुच्छ्वासिषु  
प्रोत्सुङ्गमननमण्डलेषु विलुङ्गुञ्जावलीदानसु ।  
आसां श्वेदिषु दृश्यते मृगदशां मंक्रान्तदिम्बो भवा-  
नाश्लिम्भनिव गोपिकाः कृतयहप्राकाम्यरूपो हरिः ॥ ६९ ॥

उच्छ्वासि ॥ अशुकादं स्वेदिषु च स्तनमन्त्राय निरावरण्येन नृप-  
प्रतिनिम्बेन मक्रान्तौ हेतुः । प्राकाम्य महापिद्विदोष । प्राकाम्येण रूपणि  
प्राकाम्यरूपणि । कृतयि कृतयि प्राकाम्यरूपणि येत् ॥ ६९ ॥

कम्पन के कारण इनके बल नीचे गिर गये हैं, वेग के कारण बन्धी  
जन्मी श्वास ले रही हैं, हिलने हुए गुड्डे की माताओं वाले स्वेद विन्दु मुक्त  
इनके स्तनमण्डलो पर आपका प्रतिदिम्ब पड गया है । ( ऐसी स्थिति में )  
विविध रूप धारण कर गोपियों का गच्छिजन करन हुए हरि की तरह जाप  
ला रहे हैं ॥ ६९ ॥

[ मित्रनी गोपियां हीत्री यों हरि अपने शरीर धारण कर उनके साथ  
विगत करतें थे । सभी नारिषो के स्तनमण्डल पर राजा का प्रतिदिम्ब  
दिक्षामी पडता है अतः ऐसा अगता है कि नर भी हरि की तरह कई शरीर  
धारण कर प्रत्येक अङ्गना में निरु रहा है ॥ ६९ ॥

अतो नु स्वस्वाश्रयमिदमेतासां तथाविधनेपध्यनिरपेक्षाप्युन्माद-  
यति यूनो मनो युधनीनां योवनयोः ॥

अतो निनि ॥ तथाविधनुदारं हारुण्डादिम्भं नेपप्यम् ॥

बोहू, यह निश्चय ही आश्चर्य की बात है कि उस तरह के विभिन्न  
और अचङ्कार की जनशा न करती हुई युधनीयो की शोभा युवकों का मन  
हर ले रही है ।



तथाहि—

माल्यं मूर्धनि कर्णिकारकलिकाः पिष्टातकं चन्दनं  
मुक्तादाम गले च काचमणयो लाक्षामयाः कङ्कणाः ।  
रागोऽङ्गेषु हरिद्रया नयनयोरत्युत्थणं फञ्जलं  
वेपोऽयं विरसस्तथापि हृदयं ग्राम्या हरन्ति स्त्रियः ॥ ७० ॥

माश्वमिति ॥ हरिद्रा तण्डुलचूर्णम् । पिष्टातक विलेपनम् ॥ ७० ॥

वयो किः—

कर्णिकार की बलियाँ ही इनके शिर की माला हैं । घुणित किया हुआ उबटन ही इनका चन्दन है, गले में काच की मणियाँ ही मोती की माला हैं । आँखों में ज्यादा-ज्यादा काजल है । इनका वेप तो नीरस है फिर भी ये ( ग्राम्यवधुएँ ) बित्त जो आकृष्ट कर ले रही हैं ॥ ७० ॥

इतश्च—

कन्दलितकन्दविशेषाः कर्कशकर्कटिका विशालकालिङ्गाः  
कूष्माण्डमण्डितमण्डपाः सुवृत्तवृन्ताका सुद्वस्तितद्वस्तिर्गुणपुनर्नवाः  
स्थूलमूलकाः पिण्डितपलाण्डवो धास्तृक्यास्तुभूतमूललाः संजीवित-  
जीवन्तिकाः सर्पपराजिकाराजिराजिताः सरित्सारिणीसारिवारिसेचन-  
सुकुमारपल्लवितविविधशाकाः शाकवाटिकाः ॥

कन्दलितेति ॥ शाकवाटिका । सुद्वस्तिर्भेदि ॥ हस्त कन्दलोद्भेदः संजातोऽस्येति ।  
तारकादिवादिषु । द्वस्तिर्गुण पुनर्नवा च वल्लीभेदी । धास्तृकेन शाकविशेषेण  
धस्तुभूतं गणनाहं भूतलं यासु । राजिकाना राजसर्पपाणां राज्या राजिता ॥

इपर—

तरकारी की वाटिका में कन्द अङ्कुरित हुए हैं, कर्कश ककड़ी लगी हुई है । ये बड़े बड़े कलिङ्ग ( Cucumber ) के बीधे लगे हुए हैं । कूष्माण्ड की लता से यह मण्डप अलङ्कृत है । ये गोत्र भटे हैं । पुनर्नवा और एरण्ड अङ्कुरित हुए हैं । जड़ में मोटे मोटे गोल प्याज हैं । वपुआ के छाग से यहाँ का भूतल महत्त्वपूर्ण हो गया है । जीवन्तिका ( गिलोप ) के बीधे हरे भरे हैं । सरसों की धारिया सुन्दर लगी रही हैं । नदी की नहरों से उत्तम सिंचाई के कारण विविध प्रकार की तरकारियाँ उगी हुई हैं ।

इतश्च—

विकसन्मुचुकुन्दानन्दिनो मकरन्दस्यन्दिसुन्दरसिन्धुघाराः पामरी-  
संकेतनिकेतकेतकीयनाः फन्नाम्रातफाः कुडमलितकङ्कोलफलाः  
कोरकितकुरण्टकाः पल्लवितवल्लीका कुल्लम्बिलिखोत्तासिनः सुजान-

जातयो विचित्रशतपत्रिकास्ताण्डवितपाण्डुपिण्डितागुरुकरवीर-  
वीरुयो दृश्यमानसर्वर्तुपुष्पाः पुष्पायुधावासा आरामा ॥

इधर—

ये बगीचे खिलते हुए मुचुकुन्द के कारण खानन्दप्रद हैं। यहाँ सुन्दर सिन्दुवार का मकरन्द बू रहा है। यह पामर-युवतियों का संकेत-स्थान, केवडे का जंगल है। ये सुन्दर आघ्रातक हैं। कड़्कोल-फल में कलिया आ गयी हैं। कुरबक भी कुड्मलित हो गये हैं। खिलो हुई मत्तिका से उल्लास व्यक्त हो रहा है। यहाँ सुन्दर जाति पुष्प हैं। विचित्र वचा इतनी हैं। पीने तथा मुञ्जेन शीघ्रम जोर करवीर वृत्तों की लताएँ हिल रही हैं। सभी खेतुओं के फूल दिखाई पड़ते हैं। ये उद्यान कामदेव के निकेतन हैं।

इनश्च—

नानिदूरे दक्षिणदिशि दशं निवेशयतु देवः ॥

और इधर—

थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर श्रीमान् अपनी दृष्टि लगावें।

• पतास्ता परिपक्वशालिकलमाः सुस्वादुदीर्घस्रवो  
यप्रप्रान्तद्वरिष्ठमस्थलचलत्पीनाङ्गोमण्डलाः ।  
दृश्यन्ते पुरतः सरोरुहवनभ्राजिष्णुनीराशयाः  
प्रान्तोन्नादिविचित्रपत्रिनिचयाः सस्यस्थलीभूमयः ॥ ७१ ॥

एता रति ॥ विचित्रपत्रिणो विविधपत्रिणः ॥ ७१ ॥

ये वे अन्न के खेत हैं जहाँ पके हुए शालिधान लगे हैं, मीठे-मीठे बड़े बड़े इंसुदण्ड ( ईख ) हैं। पर्वतीय तराई की हरी घासों के बीच हृष्ट-पुष्ट गावों का समूह चर रहा है। आगे कमल वनों से सुशोभित जलाशय दिखाई पड़ रहे हैं। किनारे ( मेड़ों ) पर विविध पत्रियों का समूह चर रहा है ॥ ७१ ॥

अपिच—

स्व.सौन्दर्यविडिम्बि कुण्डिनमिदं सैषा विदर्भा नदी  
सा चेर्यं वरदा स चायमनयो पुण्याम्भसोः सङ्गमः ।  
अभ्यैधोन्मदहंसद्वारिणिं तटं नेनास्थिति कल्प्यतां  
यस्मिन्मत्तकरीन्द्रकुम्भकपणक्रीडासहा. पादपाः ॥ ७२ ॥

सौन्दर्य में स्वर्ग की विडम्बना करने वाला यह कुण्डिन नगर है। यही वह वरदा नदी है और यही वह विदर्भा है। यही इन दोनों पवित्र जल वाले नदियों का सगम है। मदकल हंसों से मनोहर इसी के तट पर सेना का

पडाव रक्खा जाय जहाँ के पेड़ मतवाले गजेन्द्रो के कुम्भस्थल की खुजलाहट रूप क्रीडा को सह सकने है ॥ ७२ ॥

एवमनेकथा दर्शनीयप्रदेशप्रकाशनव्याजेन चिनोदलीलां परत्तय-  
यति पुष्कराक्षे, 'प्राप्ताः कुण्डनपुरम्' इत्युच्छ्वसितहृदयो निषधेश्वरः  
परमपरितोषारपारितोषिकप्रदानपूर्वमिदमवादीत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार से दर्शनीय स्थलों की व्याख्या के बहाने पुष्कराक्ष के उत्तम मनोविनोद करने रहने पर "हम लोग कुण्डनपुर पहुँच गये।" इस उक्ति से प्रसन्न होकर राजा नल बड़े सन्तोष के साथ पारितोषिक देता हुआ बोला—

'भद्र, भवत सौकुमार्यमाधुर्यमधुविश्रम्भसंदर्भितभङ्गश्लेष-  
गर्भाभिर्गांभिराक्षिप्तमनसामस्माकमविदितखेद इव, अहृष्टसविपम-  
विभाग इव, अनुत्पादितस्वेदलव इव, अर्धगव्यूतिमाप्रशेषोऽतिक्रान्त  
क्रीडाविहारभूमिसमो महानपि मार्गः। समुचितश्चार्यं सेनानिवेशस्य  
सरित्सङ्गमोपकण्ठचनविभागः ॥

"कल्याणिन् । आपकी कोमल, मधुर एवं मधुमय प्रसंग-सहित भङ्गश्लेष-  
गर्भित वाणी से हम लोगों का मन आकृष्ट था । अत इतने महान् मार्ग को  
जो अब एक ही क्रीडा बाको है, बिना थकान का अनुभव किये, ऊँची नीची  
जगहों के विभागों को बिना देखे, बिना पसीनों के कणों के उत्पन्न हुए,  
पार कर गये । नदी सगम के समीपवर्ती घन का यह स्थान मेना के ठहरने  
के लिये उपयुक्त है ।

तथा हि—

इह भवतु निरासः सैनिकानामिहापि  
थमतरलतुरंगमासयोग्या तृणाली ।  
इह हि कवल्यन्तः पल्लवान्वारणेन्द्रा  
विदधतु तरुल्लण्डे गण्डकण्ठयनानि ॥ ७३ ॥

अत —

सैनिक लोग यहाँ विश्राम करें । यहाँ भी थम से धके हुए घोड़ों के  
खाने लायक घास है । यहाँ वर पक्षियों को खाने हुए गजेन्द्र पेड़ों के तनों  
में कपोलों की खुजलाहट मिटावें ॥ ७३ ॥

इतश्चात्यन्तमनोहरतयाम्माकमासनयोग्या. सरित्सङ्गमोत्सङ्गभूमयः ॥  
इधर नदी-संगम के मध्यवर्ती स्थान अत्यन्त मनोहर होने के कारण  
हम लोगों को बैठने योग्य है ।

तथा हि—

अवसृताम्युतरद्वितसैकता निचुलमण्डपनृत्तशिखण्डिकाः ।

कुररसारसहंसनियेपिताः पुलकयन्ति न कं पुलिनश्रिय ॥५३॥

वयोकि—

पानी के हट जाने के कारण तरङ्ग की बाहृति वाली बालुका की रेखायें बन गयी हैं । निचुलकुञ्जो में मयूर नाचते हैं । कुरर, सारस और हंसों से सेवित यह तट की शोभा किसीको रोमाञ्चित नहीं कर देती ॥ ७४ ॥

[ पानी में जैसे ऊँची नीची लहर आती हैं । पानी हट जाने पर तरङ्गों की रेखायें कुछ तटमण्डप पर चिरकाल तक दिखायी पडती रहती हैं ॥७४॥ ]

इत्यभिधाय 'भद्र, यथाक्रममृत्तान्योन्यसम्याधकलहम्, अनुप-  
द्रततीर्थायतनम्, अलुण्ठितासन्नोद्यानम्, अच्छिन्नचैत्यद्रुमम्,  
अविच्छिन्नरुमलवनं निवेशय सेनाम्' इति सेनापतिमादिदेश ।

सोऽपि यथादिष्टमनुतिष्ठन्निद्रमवादीत् ॥

अ- उन्नचैत्वद्रुमेति ॥ चै- या ग्रामप्रदेशप्रसिद्धवृषा ॥

यह कह कर, "भद्र, बिना एक दूसरे संघर्ष से कलह किये, तिरा तीर्ष-  
गृहो में किसी तरह का उपद्रव किये, समीपवर्ती उद्यान को बिना दूटे, यज्ञ  
स्पर्श के पेड़ों को बिना काटे तथा कमल वन को बिना हानि पहुँचाये सेना  
को ठहराओ ।" यह सेनापति को आज्ञा दिया ।

'मज्जत बलसमूहाः खर्वदूर्वास्यलानि

स्यविरशुक्रविशीर्यत्पशुपिच्छच्छयीनि ।

उपनदि मृदुर्घांवायुनाऽन्दोलितानां-

कुसुमितलतिकानामन्तरालेष्वमूनि ॥ ७५ ॥

मज्जेति ॥ यद्यपि पक्षपिच्छयोरभिधानकृता न भेदः प्रत्यपादि तथापि महदेवा-  
न्तरम् । यत्र पक्षदात्रेण पक्षती एव । पिच्छशब्देन तद्दशोऽभिधीयते ॥ ७५ ॥

वह भी आज्ञानुसार कार्य करता हुआ बोला—

नदी के पास कोमल तरङ्गों की हवा से कम्पित, खिली हुई लताओं के  
बीच, वृद्ध सुग्गों के सरते हुए पंखों के संघ की कान्ति उदय कान्ति वाले,  
छटी हुई दूर्वानास में युक्त इस स्थान पर सैनिक वर्ग ठहरे ॥ ७५ ॥

अपि च—

स्मरविहरणवेदीं पट्टपदापानशालां

तटमनु चनमालां सरमया मास्म भाङ्क्षुः ।

कमलधनविद्वारानन्तरं यत्र तैस्तै-

मर्दनमद्विनोदैरासते राजहंसाः ॥ ७६ ॥

स्मरेति ॥ तद्वन्निनि ॥ तट लक्ष्मीशाय । सस्मया. सगर्वा मन्तो भवन्तो धन-  
मालां भां रम भाङ्घु । धन्यासकलं भङ्गनिपेधकारणम् । धासते इति बहु-  
वचनान्तम ॥ ७६ ॥

तट के पास की यह धनधेनी कामदेव की विहरण-भूमि है । भ्रमरों की मधुशाला है । कमल वन में विहार कर लेने के बाद राजहंस महीं काममद के विनोद के साथ ठहरते हैं । अहंकार के मारे आपलोग इसे नष्ट न करें ॥ ७६ ॥

अपि च—

सुरसदननिवासं सैनिका भास्म कुर्वन्-

सरिति मुनिकुटीनां भङ्गमुल्लुण्ठनं वा ।

इह निपधनृपाद्या तस्य यः ह्यपि कोऽपि

फलममुपि तरुखण्डे खण्डनं वा करोति' ॥ ७६ ॥

और—

जो कोई कहीं भी पक्कावट मिटाने वाले पेड़ों के तनों को काटता है उन सबके लिये निपधराज की यह आज्ञा है कि देवमन्दिरों में सैनिक निवास न करें और नदी तट पर बने हुए मुनि-कुटीरों को तोड़ने और लूटने का कार्य न करें ॥ ७७ ॥

[ तम्बू धरैरह तानने के लिये लकड़ी की आवश्यकता होती है । इसी लिये सैनिक पेड़ों की लकड़ियों को काट रहे हैं । राजा सोचता है कि सैनिक मुनियों के कुटीरों को उदाह कर वही से लकड़ी आदि सामान लेकर तम्बू न तानने लगे या सिविर बनाने के आलस्य से देवमन्दिरों में जाकर न ठहर जायें । सैनिक जहाँ ठहरते थे वहाँ के आस पास के लोगों को बहुत कष्ट देने थे । राजा इसी आशका से उन्हें मना करता है । प्राचीन भारत में मन्दिर इतने विद्याल आकार के होते थे कि उसमें बड़ी बड़ी सेनायें भी विधाम कर सकती थीं ॥ ७७ ॥ ]

पवममुशासति यत्नानि यद्गुनि बहुधा याहूके, तत्क्षणाद्भुत्तम्भितैः  
प्रेहृत्पताकापटपहृवविराजितैः प्रयाणयोग्ययन्त्रचित्रशालागृहैः  
सञ्चारिणि गन्धर्वनगर इव रमणीये, हरिततोरणैरुड्डीनशुकावलीमय  
इव, गैरिकारक्तोन्नमितपटकुटीभिस्तत्कुल्लकिशुकमय इव, द्येतांशुक-  
मण्डपैश्च ताण्डयितपृहृत्पुण्डरीरुखण्डमय इव, जाते सरित्सङ्गसङ्गिनि

शिविरसंनिवेशे, क्रमेणात्रान्तसकलदिङ्मुखेषु निपद्येखरागमनवार्ता-  
निवेदनदूतेष्विव विदर्भराजधानीधामनिर्गतेषु वहलसैन्यधूलिपटलेषु,  
रसनि विपक्षभितिपालकर्णपुटीकट्टुनि नयजलधरध्वनितगम्भीरे  
तत्कालप्रदहनशङ्खसहप्रयाणश्ल्लरीशांकृते, स्वयंवरायातसमस्तराजन्य-  
चक्रकर्णकर्तरीषु पश्यमानासु सानन्दवन्दासवन्दिवृन्दारकवृन्देनोच्चै-  
र्नलनाममालासु, क्षणादेवोत्तम्वितशातकुम्भस्तम्भमयने मृदु  
मसृपास्तरणभाजि जात्यवैद्यपर्यन्तपर्यङ्किकायां सुखतिपण्णे राजनि,  
न्मुष्यते च परिजने, नातिदूरवर्तिनि कुण्डिने दण्डपाशिकस्योच्चै-  
र्वागुदतिष्ठन् ॥

एवमिति ॥ बन्हाविंशत्र यदि स्तुत्यर्थं ॥

इस तरह बाहुक ( मेतापति ) ने सैनिकों को बहुत प्रकार से अनुशासित  
किया । नदी-संगम की भूमि पर शिविर बनाया गया । तत्काल खड़ी की  
गयी फड़फड़ाती हुई पताका के बख्क-मल्लवो और जङ्गम यज्ञनिमित्त चित्रशाला-  
गृहों के कारण वह गन्धर्बनगर सदृश सुन्दर लग रहा था । हरे तोरणों के  
कारण उड़ती शुक-भक्ति से बना हुआ सा लगता था । गैरिक और लालवर्ण  
की उठायी हुई कुटियों से खिन्ना हुआ किशुकमय प्रतीत होता था । श्वेत  
बम्बो में बनाये हुए मण्डपों से खिन्ना हुआ विशाल कमल-वन सदृश प्रतीत  
होता था ।

क्रम से पर्याप्त सैनिकों के ( पैर से उठा हुआ ) धूल समूह समस्त दिशाओं  
में आक्रमण करता हुआ नल के आगमन की वार्ता की सूचना देने वाले दूतों  
की तरह विदर्भ राजधानी के घरों में घुस गया । विपक्ष राजाओं की कर्ण-  
कुटी में कटु लगने वाले नवीन मेव के गर्जन सदृश गम्भीर, तत्काल  
बनाये गये शंख के साथ प्रयाण की सूचना देने वाली झाल की झनकार बज  
उठी । स्वयम्बर में माये हुए समस्त राजसमूह के काना में चाकू की तरह  
प्रनीत होने वाली नल की नाममाला को स्तुति करने वाले बन्दियों का मुख्य  
वर्ग पड़ने लगा । शीघ्र ही उठाये गये स्वर्ण-निमित्त खम्भो वाले भवन में कोमल  
एव स्निग्ध विस्तर से युक्त, उत्तम वैदूर्य मणि से खचिन पाटियों वाले पद्म  
पर राजा के बैठ जाने पर, परिजनों के सुस्थिर हो जाने पर कुण्डिन नगर के  
घोड़ी ही दूर पर दण्डपाशिक की उच्च ध्वनि उठी—

‘सिच्यन्तां राजमार्गाः कलशमुखगलघ्नन्दनाम्बुच्छटाभि  
स्तम्भाः प्रेङ्खत्पनामाः कुसुमपरिकरास्तोरणाङ्काः कियन्ताम् ।  
स्थाप्यन्ता पूर्णकुम्भाः प्रतिनगरगृहं प्राङ्गणे धान्यमिश्रैः  
सिद्धार्थैः स्वस्तिकालीलिखत नरपतिर्नैश्वः प्रात एषः ॥३८॥

“कलश के मुख से गिरते हुए चन्दन जल की धारा से राजमार्ग सींचे जायें । लम्बो पर झण्डे फहरा दिये जाय । प्रत्येक घर के बाँधन में धान्यो ( जव, अशत, आदि सप्त धान्यो ) से युक्त सफेद सरसो से भरे हुए बलश रखे जाय । स्वस्तिक चिह्न लिखे जाय क्योंकि निषध देश के सम्राट् (महाराज नल ) आ गये ॥ ७८ ॥

अपिच—

मत्काञ्च्यश्चन्दनाट्टमनकलशयुगामुक्तमुक्तावलीकाः  
पात्राण्यादाय दूर्वादलदधिकुसुमोन्मिथसिद्धार्थनाजि ।  
सोत्तंसा हंसपिच्छच्छविवसनभृतो वर्तिताश्चर्यचर्या  
नार्यो निर्यान्तु तूर्यध्वनिलयललितं गीतमुच्चारयन्त्यः ॥७९॥

मन्वाञ्च्येति ॥ आमुक्त योजितम् ॥ ७९ ॥

करधनी पहन कर, चन्दन से आर्द्र स्नान-कलश-युगल पर मुक्ता की मालाये लटका कर, दूर्वा दल, दही और पुष्प से मिश्रित सफेद सरसो से युक्त पात्रो को लेकर, भूषणो से मण्डित होकर, हंस पक्ष की कान्तिप्रदृष्ट चक्षुओं को पहन कर, आश्चर्यजनक सजावट के साथ वाद्य-ध्वनि और लय से ललित गीतों को गाती हुई नारियाँ निकलें ॥ ७९ ॥

अपिच—

अपि भवत कृतार्थाः पौरनार्यश्चिरेण  
घजतु निषधनाथश्चभुषां गोचरं वः ।  
ध्रुवमयभवतीर्णं स्वर्गलोकावनहो  
हरचरणसरोजद्वन्द्वलब्धप्रसादः ॥ ८० ॥

इति श्रीत्रिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-  
सरोजाङ्गार्यां षष्ठ उच्छ्वासः ॥ ६ ॥

इति विषमपदप्रकाशमेव दमयन्तीया तमुते स्म चण्डपालः ।

शिशुमतिलनिकाविद्याचैत्रं चतुरमतिस्पुटभित्तिकादिग्रम् ॥ १ ॥

इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविरणे षष्ठ उच्छ्वास समाप्तः ॥

और—

पुराङ्गनाएँ कृतार्थ हो । निषध-मन्नाट् ( नल ) आप लोगों की बाँखों के सामने त्विरकाल तक रहें । निश्चित ही ये भगवान् शङ्कर के चरण कमल युगल का आशीर्वाद प्राप्त कर कामदेव का अवतार बनकर आये हैं ॥ ८० ॥

[ भगवान् शंकर की प्रसन्नता के बिना कामदेव साग नहीं हो सकता, अनङ्ग ही रहेगा । नल शरीरधारी कामदेव का अवतार है । नल रूप में कामदेव तब अवतीर्ण हुआ है तब उसने भगवान् शङ्कर का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है । शरीरधारी काम की उपपत्ति के लिये शिव जी के आशीर्वाद की योजना अत्यन्त भव्य है ॥ ८० ॥ ]

पष्ठ उच्छ्वास समाप्त ।





## सप्तम उच्छ्वासः

एवमविश्रान्तमतितारस्वरेण पुरः पौरपुरंध्रिमण्डलान्युद्वण्डयतो  
दण्डपाशिकस्य कलकलमारुर्णयत्यास्थानस्थिते राजनि, प्रविश्य  
प्रणामप्रेङ्खोलितगलकन्दलाचलम्बितजाम्बूनदस्थूलशृङ्खलास्फालित-  
वक्षःस्थलः स्थविरवयाः सवेपः प्रतीहारः सविनयमुक्तवान् ॥ -

एवमिति ॥ उद्वण्डयतो गाढमुखाहायतः । दण्डपाशिकस्तलार । दण्डपाशोऽस्य-  
श्येति । 'अत इतिटनी' इति टन् । जाम्बूनदस्य वनकस्य स्थूला शृङ्खला  
आभरणविशेष ॥

इस अरह निरन्तर उच्च स्वर से नगर के वधूमण्डल को जोर से उत्साहित  
करते हुए दण्डपाशिक की कलकल ध्वनि को राजा सुन रहा था, इतने ही में  
एक अपने पद के अनुकूल वेप धारण किया हुआ बुद्ध प्रतीहार जिसके प्रणाम  
के लिये आगे बढ़े हुए प्रीवाङ्कुर से लटकती हुई सोने की सिकरी वन स्थल  
से टकरा रही थी. विनयपूर्वक बोला—

देव, धृतमाङ्गल्यकल्पवेपा' पुष्पफलाक्षतपूर्णस्वर्णपात्रपाणयः  
पुर.स्थिता अधीयाना ब्राह्मणाः कुण्डिनपुरपौराः पुरं प्रयश्च देवदर्श-  
नार्थितया द्वारि सेवावसरमनुपालयन्ति ॥

देवेति ॥ एतो माङ्गल्ये कल्पो दशो वेपो मण्डन ये. ॥

"श्रीमन् , मङ्गल्ये धारण किये हुए, हाथों में पूज्य, फल और अक्षत से  
पूर्ण स्वर्णपात्रों को लिये हुए, सामने की ओर स्थित ( मङ्गलगान ) पढ़ने हुए  
ब्राह्मण, कुण्डिनपुर के नागरिक और नगर वधुएँ अपने दर्शन के निमित्त द्वार  
पर सेवा की प्रतीक्षा कर रही हैं ।

कथयन्ति चैवमदूरे विदर्भेश्वरोऽपि देवं द्रष्टुमायाति ॥

लोग कहने हैं कि विदर्भ-पति भी आप को देखने के लिये समीप में ही आ  
रहे हैं ।

लग्न इव ध्रूयते च शङ्खस्वनविदर्भितो विदर्भोपरुण्डे पटङ्गन्दि-  
चृन्दकोलाहल ॥

विदर्भ के पास शङ्ख ध्वनि से युक्त वग्दीजन समूह कोलाहल ( एक दूसरे  
से मिश्रित सा ) सुनायी पड़ रहा है ।

‘तदादिशतु देवो यथाकर्त्तव्यम्’ इत्यभिधाय स्थिते तस्मिन्  
‘भद्रभूते, त्वरितं प्रवेशाय विदर्भाधिपस्य परिजनं स्वयमपि तद्व्य-  
पथमनुसर’ इति नलो दौवारिकमादिदेश ॥

श्रेणि ॥ भद्रभूतिरिति द्वास्थ्यस्य नाम । तस्य चामन्त्रणम् ॥

अनः कर्तव्यमार्ग को धीमान् आदिष्ट करे ।” यह कह कर उसके एक  
जाने पर, ‘भद्रभूति, विदर्भपति के परिजनों को शीघ्र लाओ और स्वयं भी  
उनके आगे रास्ते में जा कर अगवांनी करो ।’ नल ने दौवारिक को यह  
आदेश दिया ।

सोऽपि-‘यथाज्ञापयति देवः’ इत्यभिधाय यथादिष्टमकरोत् ॥

अनन्तरमनतिचिपदितस्ततो दोधूयमानचादचामरकलापपवन  
नर्तितकर्णकुवलयः वल्गुवल्गानोल्ललनलङ्गनलास्यलोल्लापदै पथि प्लव-  
मानमिव तरल्लतुंगमधिरुदः कनककलशशिखरैरेकदेशस्फुरित-  
विद्युत्स्तवकैरकाण्डादभ्यरितमेमण्डलैरिव मायूरानपत्रखण्डैरान्छा-  
दितमगनान्तरालः, शन्त्रोद्वहनकिष्किङ्कितकठोरकण्डोपकण्ठै कटिन-  
प्रसोष्ठुलुडल्लोद्वल्लयैरुर्व्वदोऽऽट्टजूटकैरलककपालमौलिमिर्धौदक-  
परिधानैर्निशानकुन्तपाणिभिर्मितस्वरितपातिभिः पत्तिमिरनुगम्यमानः,  
मनाङ्गुदुन्दुद्वध्वनिकरन्विते कोमलकांस्यतालशालिति वांशिक-  
वाद्यमानग्रंथानिन्वने दत्तकर्णः, कर्णिकारगौराङ्गोऽङ्गणस्य नातिदूरेऽप्य-  
दृश्यत भीमभूमिपालः ॥

अनन्तरमिति ॥ वस्तु यद्भवतं विक्रममागता । उल्लसन्मुखैर्विलमनम् ।  
लट्घनं फाला । लास्यं नृत्यभूमिः । तेषु लीलापदै प्लवमानं तरन्तमिव । आमन-  
स्यैयैमानुद्धानमुन्वाव । मायूरानपत्रममूहानां मेघमण्डलानि, सौवर्गकलशानां  
विद्युत्तय उपमानम् ॥ कटिनेति ॥ राजपुत्रा हि प्रकोष्ठे मणिचूर्णान्तरे दादर्याय  
लोहवलयानि धारयन्ति । जूटकः केशवन्धविशेषः । अलकाः कुटिलाः करालाः  
सद्यलवाङ्गीद्रा मौलयः सयतकेशा येषाम् । अर्धे ऊरु प्रमाणमस्य तदर्थोदकम् ।  
यैव वामना कटीप्रमृति अर्धोक्षपर्यन्तमाच्छाद्यते ॥

यह भी, “धीमान् को जैसी आज्ञा” यह कह कर आज्ञानुसार कर्म किया ।

इसके बाद शीघ्र ही आगत क घोड़ी दूर पर कर्णिकार सहय शरीर  
वाले महाराज भीम दिखायी पड़े । श्वर उधर पुनः पुनः घुमाये जान हुए  
धरमण्डल की हवा में उनके कानों में लगे हुए कमल नाच उठे थे । एक  
चंचल अश्व पर जो अपने अत्यधिक उमग, उठाल एवं छत्रांगों के कारण पिरकते  
हुए पैरों से आकाश में ठैरता हुआ सा प्रतीत होता था, बैठने थे । स्वर्ण-

कलश के शिखरो क भाग से चमकते हुए विशुद्ध गुच्छो से युक्त असमय म ही मडराते हुए मेघ मण्डन की तरह मयूर-पद्म-निर्मित छातो से आकाश का एक भाग ढक गया था । चारो तरफ से उमड़ते हुए सैनिक जिनके कठोर वन्धो पर शस्त्रो के ढोने के चिह्न बन गये थे, कठोर कलाइयो मे लोहे के कड़ुण लगे थे, विशाल जटाजूटो को ऊपर की ओर उठाकर बांधे हुए थे, बालो के कारण उनके गिर बडे भयङ्कर प्रतीत होने थे, आधे ऊरुभाग तक ही वस्त्र पहने हुए थे, हाथ मे तीक्ष्ण भाले लिये हुए थे, खूब जल्दी-जल्दी चल रहे थे, उनका अनुगमन कर रहे थे । मन्द तथा कोमल मृदङ्गध्वनि से मिश्रित झाल के मधुर ताल मे मुशोभित वशीवारक द्वारा बजाये जा रहे वेणु की ध्वनि मे कान लगाये थे ।

ततश्च चामरग्राहिणीहसनपल्लवमवलम्बमान सहैलमुत्थाय  
प्रथमप्रस्थितेन संभ्रमवशयतिगतवक्षस्थलावलम्बितकुसुमदाम्ना  
विसर्पिकर्पूरकुङ्कुममिलन्मृगमदामोदेन त्वरितसंपातपतत्पट्यास  
पांसुना सामन्तचक्रेण परिकरित कतिपयपदानि निपधेश्वरस्तदभि-  
मुखमगात् ॥

ततश्चेति ॥ पट्यामो वास-सुरभीकरणद्रव्यम् । परिकरितः परिवारितः ॥

तदनन्तर चवरधारिणी सेविज्ञा के कर-पञ्जव के सहारे उठ कर निपधति अपने सामन्त राजाओ, जो उससे भी पहले ( अपने आसनों से ) उठ खडे हुए थे, शीघ्रता से उठने के कारण जिनके वक्ष स्थल पर लटकती हुई मालायें हिल रही थी, कपूर, और कुङ्कुम से मिश्रित कस्तूरी की गन्ध जिनके शरीर से फैल रही थी, जल्दी जल्दी चलने के कारण पावडर की धूलि झर रही थी, के साथ उनके सम्मुख कुछ कदम आगे बढ़ा ।

सोऽपि सत्परोपसृतस्य ताम्बूलप्रसेविकायाद्दिनः पुरुषस्य  
स्कन्धमचष्टम्य दूरादेव तुरंगपृष्ठादवातरत् ॥

सोऽपीति ॥ चर्मनिर्मित पर्णपूगाद्यास्पदं प्रसेविका स्थनितेति क्वानि ॥

वह भी शीघ्रतापूर्वक दौड कर आये हुए ताम्बूलपात्र ले चढ़ने वाले सेवक के कन्धे पर हाथ देकर दूर ही से ( इन्हें देखकर ) घोडे की पीठ से उतर गये ।

पयमन्योन्यनयनसंपातस्मिताननौ समकालमीपन्नमितमौलि-  
मण्डलौ समसमयप्रसारितभुजा सरमन्माम्श्लेषवशविदीर्यमाणद्वारा-  
वलीगलन्मुक्ताफलच्छलेनाङ्गेषामान्तमिथ प्रथमप्रेमामृतनिष्यन्दिविन्दु-  
विसरमुद्गिरन्तावन्प्रोन्यमाशिक्षितपनु ॥

एक दूसरे पर एक दूसरे की दृष्टि पड़ी। मुँह पर मुस्कराहट आयी। एक ही समय दोनों के सिर झुके। एक ही समय हाथों को फैलाकर दीप्रता-पूर्वक आग्निज्जन करने के कारण भग्न हुईं हारपतियो के गिरते हुए मुक्तापत्तों व बहाने अगों में न अटते हुए प्रगाढ स्नेह सुधा के चून हुए विन्दुओं को प्रवाहित करते हुए एक दूसरे का आग्निज्जन किये।

[ रत्न की माला दोनों ही राजे पहने हुए थे। मिलन के समय एक दूसरे के वक्ष स्पल की रगड़ से मालाजा की लट्टियाँ भग्न हो गयीं। उनकी एक एक मुक्ताये विसर गयीं। वे विसरी हुईं अलग-अलग मुक्तायें ऐसी लग रही थी मानो स्नेह सुधा के प्रवाह से जब दोनों के हृदय भर गये तो मुक्ताम्प से बाहर उनकी बूँदें छिटक रही थी। ]

तथात्रिवे च व्यतिकरे, प्रपथे प्रेक्षकाणां दक्षिणोत्तरदिग्पालयोर्धर्म  
राजयनद्योरिव समागमे महाप्रयनोत्सवो हर्षोत्कर्षकलकलश्च ॥

उसी समय दक्षिण और उत्तर दिशा के स्वामी धर्मराज और कुवर के मिलन की तरह ( दक्षिण दिशा के सम्राट् भीम और उत्तर के चक्रवर्ती नल के मिलन में ) दर्शकों के नेत्रों को बड़ा आनन्द हुआ और आनन्द व मारे कलकल ध्वनि गूँग उठी।

तदनु पुनः प्रधावितप्रतीहारोपनीतम्, अतिविचित्रत्रिभङ्गी-  
रत्नीर्णकर्णाटिकारूपरमणीयस्तम्भिकावष्टम्भम्, अजङ्गममाणमाणिक्य-  
मकरमुखमुक्तमोक्तिकसरविराजितम्, अपूर्वकर्मनिर्मितमव्यव्यालावली-  
कीर्णमुखालङ्कृतम्, उच्चकाञ्चनासिंहासनद्वितयसुभौ भेजतु ॥

वदन्विति ॥ सिंहासनादीं अत्तम्भनस्तम्भिकानु पश्चिमभागे त्रिभङ्गिभङ्गेन स्थान-  
कविरोपै चित्रेण खोरूपमुत्कीर्यते। मौक्तिकसरो मुक्ताहार। ग्याल सिंहादिहिंस्र  
मात्रम्। तदावली काञ्चनादिनिर्मिता शोभायै क्रियते ॥

इसके बाद दौडकर प्रतीहार द्वारा लाये गये दो ऊँचे स्वर्ण निर्मित सिंहासना पर बैठ गये। उन ( सिंहासनो ) के उपरिभागीय स्तम्भा पर कर्णाटक-सुन्दरिया के आकर्षक एवं अत्यन्त विचित्र त्रिभङ्गी चित्र खुदे हुए थे। जंभाई लेव हुए मकर के मुख से लटकती हुईं मोती की माला ( के चित्र ) में मण्डित थे। अग्रभाग में अपूर्व कलाकारिता के साथ बनायी गयी सुन्दर हिंस्र जन्तुओं की श्रेणी से अलङ्कृत था।

अन्योन्यकुशलप्रदानसुखालापव्यतिकरविरामे च विदर्भेश्वरो  
निपवनायमवादीत् ॥

तदनन्तर एक दूसरे के कुशल-प्रश्नविषयक सुखमय वार्तालाप से विराम ले लेने पर विदर्भराज नल से बोले ।

‘अद्याश्मत्कुलसंतति सुकृतिनी धन्याद्य दिग्दक्षिणा  
पुण्यप्राप्यसमागमातिथिजना जाता कृतार्था धिय ।

श्लाघ्यं जन्म च जीवितं च निजमप्यद्यैव मन्यामहे

यत्रास्मत्सुकृतोदयेन बहुना यूयं गृहानागता ॥ १ ॥

भवेति ॥ पुण्यै प्राप्य समागमो येषां तद्योक्ता अतिथिजना यासु । धियां ह्येन  
देव फलम् । यदतिथय सत्क्रियन्ते ॥ १ ॥

आज हमारे वंश की प्रजा पुण्य पूर्ण हो गयी है, दक्षिण दिशा धन्य हो गयी है, पुण्य से प्राप्त होने वाले अतिथि जन का समागम प्राप्त कर राजल्हमी वृत्तकृत्य हो गयी है, हम भी अपने जन्म और जीवन को आज ही प्रशंसनीय समझते हैं जब हमारे महान् पुण्योदय से आप लोग हमारे घर पधारे हैं ॥ १ ॥

इत प्रभृति च—

आ ब्रह्मावधिविस्तरत्कविगिरो गीर्वाणकर्णातिथे

कीर्तेः पूर्णकलेन्दुसुन्दररचो यास्याम्यह पात्रताम् ।

किं चान्यन्नितफलमोऽप्ययमभूदाकण्ठवृत्तस्य मे

युष्मत्सङ्गसुखामृतेन सफल. संसारचक्रभ्रम’ ॥ २ ॥

आनन्दीति ॥ कविवर्षाया स्वर्गताया इन्दुशुभाया कीर्तेः पात्रमहम् ॥ २ ॥

आज से—

ब्रह्मलोक तक फैलने वाली कविदाणी का विषय, देवताओं के कानों के अतिथि, पूर्णचन्द्र की सुन्दर कान्ति सहस्र कीर्ति का पात्र बन जाऊँगा दुख देने वाला भी यह संसार चक्र का मेरा भ्रमण आप लोगों के मिलन-रूप सुखामृत से मुझे पूर्णतः तृप्त कर सफल हो गया ॥ २ ॥

[ मैं आज ऐसी कीर्ति का पात्र बन गया जो ब्रह्मलोक तक फैली रहेगी । कवि लोग उसकी ध्यापकता का दर्शन मर्त्यलोक तक ही न कर ब्रह्मलोक तक करेंगे । “हमारी कीर्ति ब्रह्मलोक तक फैली है” इस बात को कविलोग सादर स्वीकार करेंगे । देवताओं के कान में हमारी कीर्ति अतिथि की तरह सम्मानित होगी । यह उन्हीं ही सुख एवं तृप्ति करेगी जितनी चन्द्रिका । संसार में दुख तो होता है किन्तु अमृत जैसा कोई रसायन मिल जाय तो दुख नष्ट हो जाता है । आप लोगों का अतिथिरूप में मिलन एक तरह का अमृत है । इसे पाकर संसार भ्रमणमूलक नलेश सफल हो गया । यदि इस संसार में नहीं आया होता तो आप लोगों जैसे अतिथि कैसे उपलब्ध होते ॥२॥ ]

इत्यभिवाय प्रथमं प्रणयस्य, प्रगुणं गुणवान्, अनुकूलं कुलकमस्य, योग्यं भाग्योदयस्य, सदृशं देशकालस्य, समानं मानोत्सवसंतते, सरूपं रूपसंपदाम्, उचितमाचारस्यानियेतिवियेयमगर्भः कुर्वन्, दुर्वा-  
र्यैरिवारणान्वारणान्, वायुवेगतुरगान्, समुल्लसितांगुमञ्जरी-  
जाल्जनिनेन्द्र्यापद्यक्रभ्रममप्रमाणं माणिक्यम्, एकत्र ग्रथिततारा-  
प्रकटातुकारान्धारान्. उज्ज्वलभांसि वासांसि सलावप्याः पण्यनारीश्च  
स्वयमुपढोक्यांचकार ॥

इत्यभिवादेति ॥ ( अनिये ) तस्य राजोऽगर्भं सञ्चानियेयं कुर्वन्मीममूपो वार-  
णादिकमुत्तरीदृश्यांचकार । वारणा निषेधका गताश्च ॥

यह कह कर प्रेम के अनुकूल, गुणों के अनुगुण, वधवरम्परा के योग्य, भाग्योदय के उपयुक्त, देश-काल सदृश, सम्मान तथा उत्सव परम्परा के समान, रूपसम्पत्ति के समान और आचार-परम्परा के उचित गर्बरहित होकर अनिये सम्कार कर ब्रह्म्य धनुओं को निवारित कर देने वाले हाथियों, वायु के वेग को भी नीचा दिखा देनेवाले षोणों, विच्युरित हो रही किरणमञ्जरी समूह से इन्द्रधनुष की प्रान्ति उत्पन्न कर देनेवाली अनुक मणिराशि, एक जगह पितों के तारकों का वनुकरा करने वाले हार, उज्ज्वल कान्ति वाले वस्त्र और सुन्दरी वारविजातिनिगो को स्वयम् उपहार में दिवे ।

प्रथमसमागमेऽप्यप्रमेयप्रेमारम्भरमसोहासितहृदयः पुनः सोत्कर्ष-  
हृषोद्भेदगद्गदाक्षरमिदमवादीत्—

प्रथम मित्रन मे भी अनुक प्रेम-प्रकर्ष से प्रसन्न होकर अत्रिचय आनन्द भरी वाणी में बोले—

आसेतोः कपिकीर्तनाद्भ्रातृशिरसादाराश्च विन्ध्यावधे-  
रा पूर्वापसिन्धुसामविषयस्त्वनुद्रया मुद्रयताम् ।  
अद्यास्नद्गृहमागतस्य भवतो जाना विधेया वयं  
स्यान्कार क्रियतां किमन्यदपरं प्राणेषु चार्थेषु च ॥ ३ ॥

अनेउरेति ॥ कपिकीर्तनाद्भ्रातृशिरसान्दाराश्च विन्ध्यावधे-  
रा पूर्वापसिन्धुसामविषयस्त्वनुद्रया मुद्रयताम् । सेतो-  
कपिसिः कृतः ॥ ३ ॥

कपियों की कीर्ति को प्रकट करने वाले शिखरों से युक्त ( समुद्र के )  
सेतु में लेकर विन्ध्याचल के पास तक और पूर्व एवं पश्चिम के तट-प्रदेश  
तुम्हारे शासन में शासित हों । आज हमारे घर आये हुए आपके हम सभी  
बान्नाकारी बन गये । अधिक क्या कहें—मेरे प्राणों और अर्थों पर भी आप  
अपना स्वामित्व स्वीकार करें ॥ ३ ॥

[ सेनू का विशेषण कपि कीर्तनाङ्गुलिखर दिया गया है। भगवान् राम द्वारा बधवाया गया समुद्र का सेनुबन्ध कपियो ( बन्दरो ) की कीर्ति का प्रतीक है। नल और नील दो बन्दर थे। उन्हें बर मिला था कि यदि वे अपने हाथ से किसी पत्थर का धू देंगे तो वह पानी पर तैरने लगेगा। इन्हीं दो बन्दरों के हाथ से स्पृष्ट पत्थरों का सेनु बना था। अतः यह कहा जा सकता है कि सेनु कपियों की कीर्ति का प्रतीक है ॥ ३ ॥ ]

एवमुपबृंहयति प्रेम, प्रकाशयति प्रियंवदताम्, उद्योतयत्युदारताम्, दर्शयत्यादरम्, आशिर्भावयति सर्वभावम् । भीमभृशुजिनलौऽपि 'सरलस्वभाव. स्वच्छाद्रंहृदयोऽयं महानुभाव' इति चिन्तयन् "अलमलमपिलात्मसर्वस्वोपनयनेन, भवद्दर्शनमेवास्माकमिह सार्णयसुवर्णपूर्णवस्तुमतीन्द्राभादपि परमो लाभः । नहि प्रियतमदर्शनसुखाद्विचल्लामसुखमतिरिच्यते । नच भगद्विभवेऽप्यस्माकं परस्वबुद्धिर्नापि भवच्छरीरेऽप्यनात्मभाव । किञ्चान्यदेवविधिसूक्तसृतामृतगर्भगीभिरानन्दयतात्मन्मनो महानुभावेन किं कृतमभिहितं वा प्रणयोचितम्" इति ब्रुवाणस्तं वदु मानयामास ॥

इस तरह प्रेम को बढ़ाते हुए, मधुर भाषिणा को प्रकट करते हुए, उदारता प्रकाशित करते हुए, समस्त भावों को प्रकट करते हुए राजा भीम को देखकर नल भी, ये महानुभाव बड़े सरल स्वभाव तथा स्वच्छन्द एव सरल हृदय के हैं।" यह सोचता हुआ, "रहने दिया जाय, सर्वस्व समर्पण की आवश्यकता नहीं, आप के दर्शन ही समुद्र सहित सुवर्ण भरी पृथ्वी लाभ से भी अधिक लाभप्रद हैं। अतिशय प्रियव्यक्ति के दर्शन सुख की अपेक्षा वित्तलाभ अधिक सुखप्रद नहीं होता। आप की सम्पत्ति में मुझे परधन की बुद्धि नहीं है। आप के शरीर में भी मेरी अनात्मभावना नहीं है। इस तरह के सुभाषितों तथा सरस एव माधुरी भरी वाणी से हमारे वित्त को आनन्दित करते हुए आपने प्रेम के अनुकूल क्या नहीं किया और क्या नहीं कहा ?" यह कहता हुआ उन्हें बहुत सम्मानित किया।

पर्यविधे च व्यतिष्ठते वैतालिक. प्रस्तुतमपाठीत् ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक प्रासङ्गिक तथ्ययुक्त पद्य पदा—

'आपूर्वापरदक्षिणोत्तरकक्षुप्यन्तवेलाचना

दाक्षां मोलिषु मालिकाभिष नृपा कुन्ति दीर्घायुषो ।

बहस्तभ्यविलम्बित्रीतिलयोर्विस्तारिलक्ष्मीकयो

रन्योन्यस्य दिनानि यान्तु युवयो. स्नेहेन सौत्थेन च ॥४॥

आपूर्वति ॥ ब्रह्मस्मरुवो ब्रह्माण्डम् ॥ ४ ॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की समुद्र तट पर्यन्त भूमि के राने आप दोनों की जाता की माता की तरह शिरोधार्य करे । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आप लोगों की कीर्ति फैले । राजसूयमी व्यापकता प्राप्त करे । परस्पर प्रेम और ऐश्वर्य के साथ आप लोगों के दिन बनीन हों ॥ ४ ॥

पधनुपक्रमाविहृद्विद्वदालापलीलया परस्परमाश्रयाननुहिनशिला-  
शकलाकारकर्पूरपारोपरिकरिततान्मूलार्पणप्रणयेन च परितृष्टपरिजन-  
परिहासगोष्ठ्या च किमप्यभितवन्, किमपि पुरातनम्, किमप्युत्पा-  
द्यम्. किमपि यथावस्थितं जल्पाकजनजल्पितं भाषयन्तौ तस्यनुः  
न्यत्रोपसीं वेत्ताम् ॥

• पत्रमिति । आश्रयानमविधीनं यत्तुहिन हिम तस्य शिलाशकलं तदाकारस्य  
कर्पूरस्य पारी शकल तथा परिकरितम्य सम्बद्धस्य तान्मूलस्यार्पणप्रणयेन । अति-  
नयेन स्थूला स्यवीथमी । स्तूलदूर-’ इत्यादिना मिदम् ॥

इस तरह प्रसङ्गानुसार वैदुष्यपूर्ण वाग्दिनोद करते हुए एक दूसरे की न गले हुए हिमशिखा-वृक्ष सट्ट कर्पूर खड्ड मिश्रित तान्मूल समर्पण द्वारा प्रेम प्रदर्शन किये ।

सन्तुष्ट परिजनों की परिहास-गोष्ठी में कुछ नवीन, कुछ प्राचीन, कुछ कल्पित, कुछ वास्तविक, कुछ तथाकथित लोगों द्वारा कही हुई बातों की चर्चा में बहुत देर तक बैठे रहे ।

अनन्तरमनुसरति मध्यभागमन्वरस्यांशुमालिनि नलः 'स्वगृहान-  
लंकुर्वन्तु मवन्तः' इति प्रथयेण विदर्भेश्वरं विससर्ज ॥

इसके बाद जब भगवान् सूर्य आकाश के मध्य भाग की ओर जा रहे थे नल, "अग्ने आवास को श्रीमान् अलङ्कृत करे ।" इस तरह कहता हुआ बड़ी नम्रता से विदर्भपति को विदा दिया ।

गते च तस्मिन् 'अहो वातसल्यम्, अहो परमौदार्यम्, अहो लोकवृत्तकौशलम्, अहो वाग्विभववैदग्ध्यम्, अहो प्रश्नयोऽस्य विदर्भराजस्य' इति तद्गुणप्रवणाः कथाः कुर्वन्नातजनपरिजनेन सह मुहूर्तमिवासां चक्रे ॥

उनके चले जाने पर, "ओह विदर्भपति का कैसा वात्सल्य है, कैसी उदारता है, लोक-वृत्तान्त में कितनी कुशलता है, वाणी और सन्पत्ति की कितनी प्रगति है और कैसी नम्रता है ।" इस तरह अग्ने प्रामाणिक



परिजनो के साथ उन्ही की गुणसम्बन्धी परिजनो की चर्चा करता हुआ कुछ समय तक बैठा रहा ।

चिन्तितयांश्च—

‘अनुगुणघटनेन यद्यपीयं भवति हि हस्तगतैव कार्यसिद्धिः ।

भयतरलभुजंगवक्रवृत्तेस्तदपि न विश्वसिमो ययं विधातुः ॥ ५ ॥

श्रुति ॥ अनुगुणानामनुकूलाना घटनेन संयोजनेन हि स्फुटं सिद्धिर्हस्तगतैव भवति । भयेन तरलो लोलः । तरलस्य चात्र वक्रतातिशयहेतु ॥ ५ ॥

अनुकूल घटनाओ के कारण यद्यपि कार्य को सफलता हस्तगत की तरह प्रतीत हो रही है, फिर भी डरे हुए सर्प की तरह टेटे व्यवहार वाले दैव पर हमें विश्वास नहीं होता ॥ ५ ॥

तथाहि—

जङ्गाः कङ्ककलिङ्गवङ्गमगधाः रावेऽप्यमी पार्थिवा  
दिक्पालाश्च महत्पतिप्रभृतयः कन्यार्थिनः संगता ।

नो विद्या कथमेप्यतीह घटना कार्य यतस्तत्क्षणा-

घानामङ्घ्रिभिरिन्द्रजालसदृशं दैवं हि चिन्तयते ॥ ६ ॥

जङ्ग, कङ्क, कलिङ्ग, वङ्ग और मगध वे ये राजे और इन्द्र आदि दिक्पाल उस कन्या के लिये एकट्ठे हुए हैं । ऐसी स्थिति में पता नहीं यह कार्य कैसे होगा, क्योंकि दैव विभिन्न वक्रताओ से तत्काल ही इन्द्रजाल की तरह आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाता है ॥ ६ ॥

अथवा—

फा नाम तत्र चिन्ता प्रभवति पुष्टयस्य पौरुषं यत्र ।

वाङ्मनसयोरधिपये विधौ च चिन्तान्तरं किमिदं ॥ ७ ॥

फा नामेति ॥ यत्र कार्ये पुरुषस्य पौरुष्य भवति तत्र फा चिन्ता, नैवेष्ट्यर्थः । विधौ दैवं पुनर्वाङ्मनसयोरगोचरे किं चिन्तान्तरम्, तदेव प्रमाणमापद्यते । अन्तरज्ञानो विशेषार्थः । तस्यथापि चिन्ता न कार्यति भावः । वाक् च मनश्च वाङ्मनसे । ‘अचनुर-’इति सूत्रेण सिद्धम् ॥ ७ ॥

अथवा—

जहाँ पुरुष का पौरुष कार्य कर सकता है उस विषय में चिन्ता की क्या बात है और बाणी तथा मन व अविषय दैव में क्या चिन्ता करनी है ? ॥ ७ ॥

[ जहाँ तक पौरुष कार्य करता है मैं सर्वथा सफुट रहूँगा । पुरुषार्थ-सम्बन्धी सफलता की ओर तो थोड़ी भी चिन्ता नहीं करनी है । भाग्य

मन्त्र होने वाले कार्य की ओर भी विन्ना नहीं करनी है, क्योंकि उनमें पुष्पार्थ का कोई हाथ नहीं रहता । वह अकन्ना ही मित्र होता है । तात्पर्य यह कि किसी भी तरह विन्ना की वान नहीं करनी है ॥ ७ ॥ ]

एवमनेकयितरंभद्रभाजि भूमुजि, भुजयलशालिषु विसजितेषु  
नेत्रकसान्नेषु, शिरलीकृते परित् परिजने, परिह्वामपेशलालापात-  
जनगोष्ठीप्रक्रमेगातिज्ञान्ते स्नोत्समये, भूरिभय्याभरणावरणरमणीय  
रूपाः, काथिदाट्टकुतुम्फलदन्ता, काथित्कक्षामलम्बितान्मूर्त्तीपत्त्र-  
विण्डकरण्डकाः काथिरिहितपट्टाशुकपट्टलिकापाणयः, काथि-  
रक्षाग्मोररुम्बितकन्तूरिकामोदानन्दचन्दनभाञ्जि भाञ्जनानिभञ्जमाना,  
काथिद्वाननालिक्केरजम्बीरबीजपूररूपूरितपार्वापाणय काथिदमर्य-  
खण्डस्नाद्यप्रिदोपानमूल्यमाङ्गल्यमाल्याभरणानि च सकौतुकमादाय  
दमयन्त्या प्रहिताः प्रथमप्रयोधिनप्रतीहासूचिता प्रविविशुरन्सुञ्जा  
कुञ्जिका वामनिकाश्च ॥

एवमिति ॥ अवानानि सादाणि नालिक्केरजम्बीरबीजपूराणि तै पूरिता वा पात्री  
मा पाणी वासम् । वान शुक्ल फलम् । सुञ्जा अधोमुखयः पश्चाच्चभ्योग । दिव्या  
ग्नेनोर्ध्ववदना इति भाव । एतच्च कुञ्जिकादीना विशेषम् ॥

इस तरह राजा विविध तर्क-वितर्क में मग्न था । पराक्रमी सेवक सामन्त-  
रात्रे चले जा चुके थे सब ओर से परिजन लोग कम हो चुके थे । परिह्वाम  
पूर्व मधुर वाग्विनोद करने वाले वरिष्ठ जनो की गोष्ठी में कुछ समय बिना  
रहा था, अब तक पर्याप्त सुन्दर भूषण एवं वस्त्र में रमणीय कान्ति वाली,  
हाथ में ताना कनक फल ली हुई, कोई ताम्बूल-पत्र की पोटली से भरा हुआ  
डब्बा बगल में लटकायी हुई, कोई हाथ में बन्द गिल्क वस्त्र की पोटली ली  
हुई, कोई कश्मीर की कन्तूरी-मिथित पूर्ण गन्धयुक्त चन्दना से भरी हुई  
पटिमा ली हुई, कोई ताना नारियल तथा नारंगी की फाकिया से भरी हुई  
थालियों की ली हुई, कोई अनेक मधुर भोग्य पदार्थों तथा बहुमूल्य माङ्गलिक  
मालाजा और जाभूषणों को कोतुकपूर्वक ली हुई, दमयन्ती द्वारा भेजी गयी  
( टंकशा के मारे ) ऊपर की ओर मुह उठायी हुई कुबडी और नाटी इतियाँ  
सबसे पहले जाय गर प्रहरी द्वारा ( जपन जागमन की सूचना देकर ) भीतर  
की ओर ले जायी गयी ।

प्रसिद्य च मयिन्मयाः स्मररूपानिशायिनं नरपतिमवलोक्य  
'नाधु मो' स्वामिनि, साधु । म्यानेऽभिनिविष्टासि, योग्ये जाताग्रहासि,  
पात्रे जातम्पृष्टासि, लप्स्यसे जन्मफलम्, अवाप्स्यसि स्त्रीस्वभाय-

भाग्यम्, अनुभविष्यसि यौवनसुप्तानि, मानयिष्यसि संसारफलमहो-  
त्सवम् । अहो वन्दनीया सा कापि पुरुपरत्नाकरकुक्षिर्जननी, यस्यां  
सरलसंसारनरद्वारावलीमध्यमहानायकोऽयमुत्पन्नः । इत्यवधारयन्त्यो  
मनाङ्गनामितमौलिलोलितसीमन्तमुक्त्वाफला 'स्वामिघ्नयमस्मदीय-  
प्रणामः, अन्यापि कापि काचिःप्रणमनि' इत्यभिधाय स्मयमानवदनरु-  
मला. सलोलमयनिपालं प्रणेमु ॥

भीतर आकर काम सौन्दर्य को भी जीत लेने वाले राजा को आश्चर्य के साथ  
देख कर, "वाह ! स्वामिनी वाह ! उचित स्थान में प्रवृत्त हो, योग्य वस्तु  
के लिये आग्रह की हो, पात्र में दिल लगायी हो, जन्म-पत्र प्राप्त करोगी, स्त्री  
स्वभाव के सौभाग्य को प्राप्त करोगी, यौवन सुख का अनुभव प्राप्त करोगी,  
संसार के सुखमय महोत्सवों को मनाओगी, अहो, वह पुरुपरत्न की निधि-  
रूप उदरवाली, अलोकसामान्य माता वन्दनीय है जिसमें समस्त संसार  
की मानव भाजा के मध्य मणि ( सुमेरु ) सदृश महानायक जन्म लिया है ।"  
यह सोचती हुई, नन्न होने के कारण फिर के मध्य भाग में लगे हुए कम्पित  
मणियों वाली वे दूतियाँ लीलापूर्वक राजा को प्रणाम की ।

अन्योन्यकृतसंबोधनाश्च सहर्षमिदमवोचन् ॥

एक दूसरे को सम्बोधन करती हुईं बड़ी घुसी के साथ बोली—

हँदो हंसि चफोरि चन्द्रवदने चन्द्रप्रभे चन्दने  
चम्पे चङ्गि लवङ्गि गौरि कलिके ककोलिके मालति ।  
एत प्राप्नुत जन्मजीवितफलं लावण्यलक्ष्मीनिर्वा  
सौभाग्यामृतनिर्जरे नरपती निर्वान्तु नैत्राणि च ॥ ८ ॥

इहो इति ॥ हँदो इति संबोधने । एत आगरुदत ॥ ८ ॥

ओ हसी, चफोरी, चन्द्रवदना, चन्द्रप्रभा, चन्दना, चम्पा, चगी, लवङ्गी,  
गौरी, कलिका, ककोलिका, मालती, आओ, जन्म फल प्राप्त करो, सौभाग्य  
रूप अमृत के लिये देवता तथा सौन्दर्य के सागर, इस नरपति में आप लोग  
की आँसु पान्त हों ॥ ८ ॥

अपि च—

कुन्दे सुन्दरि चन्द्रि नन्दनि हले दिष्टयाद्य चर्धामहे  
देव्याः सोऽयमनङ्गसुन्दरवपु प्राणेश्वरः प्राप्तवान् ।  
तस्याः संप्रति यदृष्टे वृशतनोः श्रीडाघने शापिना  
दीर्घश्वासमद्विरग्निपर्यर्णयन्ति ते पल्लवाः ॥ ९ ॥

न्द इव ॥ चन्द्रगन्ताशहादार्पात्त्रैरादिवाहोप । वषांमह इति हर्षाति-  
नोक्ति ॥ ९ ॥

बौर—

बा कृदा मुदरी, चट्टी, नन्दनी, बाज रीभाम् स ह्मल्लो बड रही  
है कदाचि कमन्व म ना अधिक मुदर वह मह दवी क प्रगप्रिय प्राप्त हा  
य ६ दिनक न्यि इस समय दुदर शरीर वाली उस ( दादन्ती ) के अग्नि  
म ना अधिक उग लम्बे स्वसों की हवा से व पल्लव नी मन्नि हा  
गत है ॥ ९ ॥

पि च—

य भ्रुत्थेन मनोममालशदशा वेया धृतोन्मादया  
नायन्ते गृहदारिद्र्यातटतदुच्छ्रयाऽप्य रासरा ।  
प्रात शोणसरोजपत्रनयनो निशपसामग्निनी  
भ्रान्यत्रेभपत्रनिप्रिमनच सोऽय नला नेपथ ॥ १० ॥

द लम्बे । नेत्रण्यव पत्रनि पश्चि स्तया विद्यामन्व ॥ १० ॥

रौर—

विन्द मुन कर ही उमादपू कामालस नत्र वाली देवी पर की बावणी  
क उदरनों पत्रों की छाया में दिन व्यतीत कर रही है वही यह सार कमन्  
दन् सदा नत्र वाले समस्त मुदरियों क धूमत हुए नयन-विहङ्गों क विग्राम  
वृम निपधवति नत्र है ॥ १० ॥

[ मुदरियों क नत्रों का विग्राम स्पष्ट नत्र है जैसे धूमते हुए पशियों क  
विग्राम स्पष्ट पट हुआ करते हैं । महाराज नत्र समस्त रानी-नत्र विहङ्गा =  
विग्राम वृम है ॥ १० ]

पत्रमन्योन्यमभिधाय समीपमुपसृवास्ता क्षितिपतिस्त्वनुराग  
तरङ्गतरचारकण सादर दूरोरित्तपदमणा चक्षुषा सतोपपुञ्जमञ्जूषिका  
इव, आनन्दरुन्दलीरिव, अमृतपङ्कपुत्रिका इव, मधुमासपिकसितसह-  
कारमदरीरिव, दमयन्तीप्रेषिता सस्पृहमवश्रोम्यन् 'इत एव कुशलं  
तत्रमरतीनाम्, उपविशत, गृह्णीत तान्मूलम् आनेदयत मयन्स्थामिनी  
संदेशम्,' इति ससंभ्रम सभापयामास ॥

एवम् । एव परस्परमभिधाय समीपे गतास्ता प्रेमोर्मिबद्धकनीनिन्देन  
सादर दूरोत्क्षिप्तपत्रमणा चक्षुषा मसृष्टमवलोकयन् द्विनिदिशि समभ्रमन् 'इत  
एव—' इत्याद्यान्व ॥ सतोपपुञ्जमञ्जूषिका इत्यादि तासा विन्नेपगानि ॥

इस तरह एक दूसरे क साथ बातें कर समीप म आयी हुई, दमयन्ती  
द्वय प्रेदित्र उन द्वितीयों का राजा प्रेम-तरङ्ग म सैरती हुई कनीनिका वाले

तथा ऊपर उठे हुए पलको वाले, नेत्रो से सन्तोष राशि की पेदी की तरह, आनन्द के अक्षुर की तरह, अमृत से सनी हुई मिट्टी की पुतलिका की तरह, वयन्त की खिली हुई आम्र मञ्जरी की तरह उत्कण्ठापूर्वक देखता हुआ, "आइये इधर, कुशल हो आप लोगो का, बैठिये, पान लीजिये, अपनी स्वामिनी का सन्देश कहिये ।" इस तरह उत्सुकता के मारे घबड़ाया हुआ सा बातें किया ।

ताश्च "महानयं प्रसादः" इति द्रुयाणाः समुपदिश्य 'राजाविराजः, राजीवदलदीर्घाक्षी क्षेमवार्त्ता पृच्छति न नाम देवस्यापघने धर्मांगु-धर्मांमिनिर्मितः कोऽपि वेद समपद्यत, न वा समविपममार्गलङ्घन-धमेण कापि परिमाथिनी परिजनस्य ग्लानिरभूत्, यद्वनि दिनानि देवनाश्वनि विलम्बितम् । इदं च तथा प्राणेऽवरस्य प्रियं प्रामृत प्रद्वितम्, इदमुक्तम्, इदमेकान्तसंदिष्टम्, इदं प्रकाशप्रथयाप-लीलायितम्, इति राजानमञ्जसा जजत्पुः ।

एवञ्चेति ॥ ननामेति । देवस्य, अपघने शरीरे न नामोपशुपगमगर्भायां पृच्छा याम् । न वेति पचान्तरगर्भावाम् ॥

वे भी, "बड़ी कृपा है ।" यह कहती हुई बैठ कर, "महाराज, कमलदल सदृश विशाल नेत्रो वाली ( दमयन्ती ) आप का कुशल-समाचार पूछ रही हैं । क्या भगवान् सूर्य की किरण-लहरी से कोई क्लेश तो नहीं हुआ ? ऊँची नीची जमीन को छापने के परिश्रम से परिजनो को कोई अतिशय कष्ट तो नहीं हुआ ? रास्ते में आप बहुत दिन लगाये । उन्होंने आप के लिये यह प्रिय उपहार भेजा है । यह उनका गुप्त सन्देश है । यह उनकी प्रत्यक्ष, नम्रतापूर्ण आलाप लीलायें हैं ।" इस तरह राजा के साथ सरलतापूर्वक बातें कीं ।

सोऽपि स्मरव्यापारकोरकिताभिः शृङ्गाररससेकपल्लविताभिः-मुग्धस्मितांशुमञ्जरिताभिरमृतच्छटाभिरिव वाग्भिः किमपि सरलाभिः, किमपि नर्मोत्किकुटिलाभिः, किमपि कथयन् किमपि पृच्छन्, किमपि संदिशन्, अनुजल्पमनुजल्पितम्, अनुदासमनुदलितम्, अनु-सुभापितमनुसुभापितम्, अनुप्रियमनुप्रीतम्, प्रसादप्रदानोद्दीपि-तोद्दामानुरागास्त' कुर्वन्नतिचिरमिव गोष्ठीलौल्याचतस्थे ॥

श्लोकीति ॥ नल एवमेव कुर्वन् गोष्ठीविलासेनास्थात् । अल्पितमनुलक्षणीकृत्य अश्वित कुर्वन् । ता उदीपितानुरागा कुर्वन् इत्येव कुर्वन् इत्युच्यते उभयत्रापि संघटयते । 'अनुजल्पमनुजल्पितम्' इति यदा कश्चिन्पाठः, तदा अनुजल्पितमिति क्रियाविशेषणम् । अनुगतं ज्ञेयत यत्रेति । अनु जघनमियादिषु तु अनुयोगे द्वितीया ॥

वह भी कामआपार से कुडमलित, शृ गार रस के सिद्धन से पल्लवित, मनोहर मुन्कान की छटा से मञ्जरित, कसूत के छंटे सहस्र बागी से कुछ सीधे एव कुछ नम्रतापूर्ण उक्ति-वज्रता से कुछ पूजता हुआ, कुछ सन्देह देता हुआ, बात में बात मिलाता हुआ, हँसी पर हसी करता हुआ, मुभापित पर मुभापित कहता हुआ, त्रियों के अनुहृत प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ, प्रवन्नता प्रदर्शन द्वारा उन सबों की पूर्णतः अनुरक्त करता हुआ देर तक गोष्ठी में मनोविनोद करता रहा।

‘अहो तु पल्वम्य नरपतेः, अनदलोत्तं शीलम्, अनाहार्य-  
नौदार्यम्, अवञ्चनं वचनम् . अदैन्यं दानम् अस्मयं त्मितम्, अवि-  
चारगोचरं गाम्भीर्यम्, इति भावयन्त्यस्ताश्च कांचिदुचिनविनोद-  
रतिवाद्य वेलात्, अनुभूय किमपि गोष्ठीसुखम्, आर्याय च किञ्चि-  
दिव दमयन्तीविनोदभिलासव्यतिकरम् ‘आज्ञापयतु देवोऽस्मान्माननाय,  
भवद्वासांनृत्तपानार्थिनी देवी त्वरिताऽस्मत्प्रत्यावृत्तिमपेक्षमाणा  
निष्ठितिं इतरनिधायानुमता यथागतमगच्छन् ॥

“ओह इस राजा का स्वभाव अस्वीक्यता युक्त है, उदारता अद्वयिम है, दानी में वञ्चना का नितान्त अभाव है। दान में दैन्य नहीं है, मुन्कुटाहट में अहंकार नहीं है, गाम्भीर्य अत्यन्त स्पष्ट है।” इस तरह सोचती हुई वे भी उचित विनोद के साथ कुछ समय बिता कर, कुछ गोष्ठी सुख का अनुभव कर, कुछ दमयन्ती के विनास प्रसंग की चर्चा कर, “आज्ञा दें श्रीमान् जाने के लिये क्योंकि आप के धार्तानृत्त पान के लिये उत्कृष्टित देवी शीघ्र ही हम लोगों के लौटने की प्रतीक्षा कर रही हैं।” यह कह राजा की अनुमति से यथास्थान चली गयीं।

गतासु च तासु, प्रगल्भं प्रशायाम्, अचरमं वाचि, कुशलं  
कलासु, निपुणं नीतौ, सप्रतिभं सभायाम्, आश्चर्यभूतमाहूय पर्वतरु-  
नामानं वामनकमुपायनीकृत्य कर्कशकर्कशधूफलद्वयलोज्ज्वलमुक्ता-  
वर्लासुत्यन्यभूषणांशुकादिसंमानदरपरितोषितेन पुष्कराक्षपुरसं-  
किंनरमित्युनेन सह दमयन्तीं प्रति प्रेषयामास ॥

उन सबों के चले जाने पर बोधने ने प्रवीण, कलाओं में कुशल, नीति में निपुण, सभा में प्रतिभासम्पन्न, आश्चर्यजनक पर्वतरु नामक दौने की बुन्कार टोटे उपहार रूप में समर्पित कर, कर्कश वैर ( फल ) सद्गुण बड़े-बड़े चमकदार मोतियों के हार आदि मुख्य एव अन्य भूषणों तथा शिल्पक वस्त्रों को सम्मान पूर्वक देकर जाशर से उन्हें सन्तुष्ट कर पुष्कराक्षसहित किंनर-मिथुन के साथ दमयन्ती के पास भेद दिया।

स्वयं च शाहिकमुग्रमदत्पूर्यमाणशह्रस्वनविभिन्नभांकारिमध्याह्न-  
भरीरवेण निर्यद्वेलाविलासिनोचरच्चरणाभरणरणन्मणिनूपुरझंकारेण  
च निवेद्यमाने मध्याह्नसमये माध्याह्निककरणायोदतिष्ठत् ॥

स्वयं भी शलवादक के मुख की हवा से भरे हुए घस की ध्वनि के  
अतिरिक्त गम्भीर ध्वनि करने वाले नगाड़े की ध्वनि से और जाती हुई  
वाराङ्गनाओं के चरणों के बलङ्कार, नूपुरों की संवृति से मध्याह्नकाल समस्त  
कर तत्कालीन कृत्य करने के लिये उठा ।

क्रमेण च निःसृजे समस्तसेवकजने, विश्रान्ततूर्यतालगीतासु  
निर्यातनर्तकीविरहद्वेषेदादिव मूलीमृतासु, नृत्यशालासु निःशब्दतया  
सुप्तास्त्रिचार्वाधिकारककुटीरु, शून्यतया मध्याह्नतन्द्रामूर्च्छितेष्विव  
समस्तमण्डपेषु, संक्रान्तसेवाविलासिनोचरणकुङ्कुमपदपङ्क्तितया  
यिकीर्णविकसितरक्तारविन्द इव प्रकाशमाने राजभयनाङ्गणे, घनं  
ध्वनन्तीषु भोजनावसरशह्रकाहलासु, प्रधावमानेषु प्रत्यास्वादक-  
जनेषु परिमृज्यमानाम्बुतिथिसत्त्रशालासु, सञ्जीक्रियमाणेष्वग्राशन-  
श्राद्धणेषु, प्रवेक्ष्यमानासु भोग्रासयोग्यासु कपिलासु पुण्यगवीषु  
प्रक्षाल्यमानेषु घायखद्यलिस्तम्भशिखरफलकेषु, वहिर्दीयमानेषु,  
दीनानाथभिक्षुकमैक्ष्यपिण्डेषु, समुपलिप्यमानासु भोजनस्थानवेदीषु  
संचार्यमाणेषु चकोरपञ्जरेषु, निवेद्यमाननैवेद्यासु पूज्यराज्याधिदेवतासु  
वैश्वदेवाहुतिगन्धवाहिनि वहति विविधान्नपाकपरिमलमनोद्धरे  
महानसमदति, निर्वर्तितमजनादिक्रियाकलापे भजति भोजनभुवं  
भभुजि, वहिः सूपकारकलकलः समुल्लास ॥

क्रमेणेति ॥ महानस पाकरधानम् ॥

क्रम से सभी सेवक चले गये । वाद्य, ताल और गीत बन्द हो गये ।  
नर्तकियाँ चली गयीं । उनकी विरहव्यथा से मानों नृत्यशालायें मोन हो गयीं ।  
निःशब्दता के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि अर्थाधिकारियों के कुटीर सों गये  
थे । शून्यता के कारण ऐसा लगता था कि सभी भवन मध्याह्नकालीन निद्रा में  
मूर्च्छित हो रहे थे । राज-भवन के प्राङ्गण में सेवा में लगी हुई रमणियों के  
चरण कुङ्कुम के चिह्न विसरे हुए लाल कमल की तरह चमक रहे थे । भोजन  
काल के शब्द और काहल जोर से बज रहे थे । विभिन्न स्वादिष्ट सत्त्वों के  
बनाने वाले पाचक इधर उधर दौड़ रहे थे । अतिथि-भोजनालय धोये जा रहे  
थे । सबसे पहले भोजन करने वाले ग्राह्याग्न तैयार किये जा रहे थे । गोघास देने  
योग्य कपिल रंग की पवित्र गाये लायी जा रही थी । काश्चलि देने के लिये

छान्धो के ऊपर ८ फर्स धोये जा रहे थे । बाहर दीन, यथाय और भिसुका का भोजन पिण्ड दिए जा रहे थे । भोजन स्थान की बर्दियां खिंची जा रही थीं । चकारो के पिण्डों को घुमाया जा रहा था ।

राज्य की पूज्य अधिदेवताओं को नैवेद्य समर्पित किया जा रहा था । वैश्य दक्ष क ज्येष्ठी हुई आहुति के गन्ध को दोन चान्धी विधि पक्वान्ना को गन्ध म मनोहर पाषाणाय की हवा बह रही थी । स्नानादि समस्त श्रियां प्रा से निवृत्त हो कर राजा भोजन-स्थल पर आया त्यों ही पाचकवृन्द की कर्कश ध्वनि हुई ।

‘जाज्यं प्राज्यमभितकुन्दकलिकात्पक्ष्य शाल्योदेनो  
धूपामोद्मनोहरा शिखरिणी स्यादूति शान्ति च ।  
पेदाभ्याद्यकृत्यलेहान्मुलं नानात्रियं भुज्यतां  
भोयं भीममदानृपस्य सुतया संप्रेषित संनिदा ॥ ११ ॥

अन्वयेति ॥ क्षमिन्नकुन्दकलिका कल्पत उपर्मापत इति । यावत् । कल  
रदनात् ‘अथो यत्’ इति सूत्रेण यत् । इदित्तु पत्रां पत्र पन्नि ॥ ११ ॥

सैनिका । महाराज भीम की कन्या द्वारा भेज गये पदान्त घृत, अविश्वित कुन्द की कलिका सद्यः भात, धूप की गन्ध से मनोहर, ममादे मुक्त दही, स्वादिष्ट तखारियो, पीत, चबन, छाने और चाटन लामक विधि राजा का आप लोग खाये ॥ ११ ॥

अहो नु यस्यमी मन्स्यमांसंरिंहितमुदोच्यप्रतीच्यप्राच्यजना-  
प्रियस्ततो भोक्तुमेव न जानन्ति ॥

विरलं खलु दाक्षिणात्येषु मांसाशनस्य जहात् ॥

तदाकण्यंता भो नैपथा ॥

ओह, ये उत्तर, पश्चिम और पूर्व के लोग जिन्हें समु बहूत प्रिय है, मछली और मांस में रहित भोजन ही करना नहीं जानते ।

दक्षिण के लोगों में मांस खाने का व्यवहार बहुत कम है ।

निपथवानियो, सुनो—

‘जाज्यप्राज्यपयनकूररुपलैर्मन्दा विधाय श्रुधां

• चानुजानतमसृष्टो नु शनकरिभो रस पीयताम् ।

समात्स्पृहणीयतेमनरसानास्याद्य किञ्चित्तत

स्निग्धस्तज्जधिद्रोण सरस शाल्योदनी भुज्यताम् ॥१२॥

अन्वयेति ॥ ‘सर्वोदायकं चैव प्रियं च प्रियतमम् । तदेव मरिचै  
मुक्तं चतुर्भुजमुच्यते’ तेन मसृष्टं कृत्वा नन्तरानुशान्तं साहृत । सरल



सुनिष्पन्नदीर्घतण्डुलशकज । अतिक्लिन्नतादिदोषरहितश्च । दधिद्रवो वक्ष-  
गाढित दधि ॥ १२ ॥

पर्याप्त घी में बने हुए अन्न और कूर नामक चावल के भात से भूय  
घान्न कर इलायची, नागकेसर और मिर्च से मुक्त ईस का रस पीजिये ।  
विविध मसालों से स्वादिष्ट तरकारियों के रस का कुछ आस्वादन कर  
बिठने तथा गाढ़े श्रीखण्ड से भात को सरस कर खाइये" ॥ १२ ॥

राजा तु प्रतीहार 'विनिश्चीयतां किमयं बहि कलकलव्यतिरुर.'  
इत्यभिधाय तत्कान्तयोग्यपरिजनपरिवृतो भोक्तुमुपाविशत् ॥

त्वरितं च गत्वागतश्च स प्रतीहारो विशापयांघभूष ॥

'देव, दमयन्त्या प्रहिता सूपकाराः सैन्यजनम्, आनाह्वणान्त्यज-  
गोपालकम्, आकरितुरगवाहनम्, आसामन्तनियुक्तकम्' आस्याद्यै-  
स्नेस्त्रैरन्नविशेषैर्मोजयन्ति ॥

राजा तो, "प्रतीहार, देखो यह बाहर क्या कोलाहल हुआ है ?" यह  
कह कर स्वयं भोजन करने बैठ गया ।

प्रतीहार शीघ्र ही गया और लौट कर बताया ।

"राजन्, दमयन्ती द्वारा भेजे गये पाचक सैनिकों, आह्वानों, अग्र्यजों,  
गोपालकों, हाथी, घोड़े आदि वाहनों, सामन्तों तथा कर्मचारियों को उन उन  
मुन्दर भोग्य पदार्थों से तृप्त कर रहे हैं ।

लज्ज सर्वतो दृश्यन्ते पर्वता' पद्मानस्य, राशय शाल्योदनस्य,  
स्तूपा सूपस्य, निर्झरा' सर्पिष, सिन्धयो मधुन', निम्बारा' शकं-  
राया, स्रोतांसि दधिदुग्धयो, शैला शाकानाम्, निपानानि पान-  
कानाम्, कुल्या फलरसानाम्, कूटा कषायाम्ललवणतिकमधुरो-  
पदंशानाम् ॥ एवमरूपं पयमिच्छया भोजितं सेन्यम् ॥

ये पद्मान के पहाड़ चारों ओर दीख रहे हैं । ये भात की राशियाँ  
हैं । ये दाढ़ के ढेर हैं । ये घी के झरने हैं । ये मधु के सागर हैं । ये चीनी की  
राशियाँ हैं । ये दूध और दही की धाराएँ हैं । ये तरकारियों के ढेर हैं । ये  
पेय पदार्थों के स्थान हैं । ये फलों के प्रवाह हैं । ये कसैले, खट्टे, नम-  
कीन, तीने तथा मधुर अंजारों की राशियाँ हैं । बड़ी उदारता के साथ सैनिकों  
की इच्छानुसार खिला दिया गया ।

अपि च—

मुक्तान्ते घृतदिग्धहस्ततलयोरुद्वर्तनं चन्दनं  
पश्चाद्गामरघण्डपण्डुरदलैस्ताम्बूलदानकम् ।

एकैकस्य मृणालतन्तुभृदनी दत्ते ततो वात्सर्गो  
देव्या निचिद्विन्त्यमेव भवतः सैन्यातिथेर्यं वृतम् ॥ १३ ॥

मुलान्त इति । घनवा।सदेशोद्भवानि नागवल्लीदलानि नागरैर्विदग्धैश्चर्यन्ते  
खण्डयन्ते इति नागरखण्डमंशानि ॥ १६ ॥

भोजन के बाद पी से बिकने हाथों पर चन्दन का उबटन देकर नागर-  
खण्ड से बने हुए पान दिये गये । प्रत्येक को कमल-तन्तु की तरह एक डोटे  
कोमल वस्त्र दिये गये । इस तरह देवी ने सैनिकों का जद्दजुज सत्कार  
किया । ॥ १३ ॥

इयं च रसवती देवस्य तथा स्वहस्तपल्लवपरिमलनसंस्कृतैः पाक-  
विशेषैरलङ्कृत्य स्वमुद्रया मुद्रिता प्रहिता' इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

१४ वेदे ॥ स्वहस्तान्यां परिमलन यथोचितगन्धद्रव्यङ्गेण मुरमीकरणम् ॥

इसने जपने ही कर पल्लव से विभिन्न सुगन्धित पदार्थों द्वारा संस्कृत  
( सुगन्धित ) विभिन्न भोग्यों को सजाकर उसपर जपनी मुहर लगाकर यह  
रसोई बाप के जिने प्रेषित किया है ।" यह कह कर चुप हो गया ।

राजा तु मनान्नरलितशिराः सस्मितम्-अहो निरतिशयमुदार-  
गम्भीरमुचिनव्ययहारहारि ललायितं तस्या स्पृहणीयपरिमलध्यायम-  
पूर्वं इव कोऽपि पारुक्रमः ॥

राजा तो कुछ शिर हियाता हुआ मुस्कराहट के साथ "ओह, उसकी  
चेष्टाएँ अत्यधिक उदारता के कारण गम्भीर तथा उचित व्यवहार के कारण  
मनोहर हैं । हृदयहारी परिमलों से युक्त यह भोग्य सामग्री भी अपूर्व ही है ।

तथाहि—

इदमम्लमप्यनम्लास्वाद्यम्, इदमोपत्कपायमपि मधुरतां नीतम्,  
इदमेकरसमप्यनेकरसोक्तम्, इदमतिनृपृतयाऽमृतमप्यतिशेते. रसघ-  
त्यामपि रसवती विदर्भराजान्मजा' इति विभाषयंस्तान्तया प्रहितान्  
पाकविशेषानादरेणास्वादयामास ॥

इति ॥ रसवत्यामपि रसवती रमिका रागिणीति वाच्यम् । ता' अर्चयतीति च ॥

वयोकि—

यह खट्टा होता हुआ भी चखने में खट्टा नहीं लगता, यह थोड़ा कपाय  
होता हुआ भी मीठापन लिया हुआ है । यह एक रस होता हुआ भी अनेक  
रसों से पूर्ण कर दिया गया है । अत्यन्त मधुरता के कारण यह अमृत से  
भी आगे बढ़ता जा रहा है । वह विदर्भपति की कन्या रसोई में भी बहुत

प्रवीणा है ।' इस तरह विचार करता हुआ उसके द्वारा भेजे हुए विभिन्न भोग्य तत्वों को बड़े जादर में बसा ।

चिन्तितवांश्च—

पङ्कसा किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नयापि वा ।

तया तु पद्मपत्राङ्ग्या सर्वमेकरसीकृतम् ॥ १४ ॥

वदिति ॥ एकरसीकृतमुत्कृष्टास्वादीकृतम् । चमकृतत्वात् । आत्मविषये पञ्चानुरागीकृतं वा । यदनेकरसं तत्कथमेकरसीभवेदिति विरोध पुनरर्थस्तु शब्द उद्भाषयति ॥ १४ ॥

और सोचा भी—

आयुर्वेद में छ रस तथा भरत के नाट्यशास्त्र में आठ रस सुने जाते हैं किन्तु उस पद्यनेत्रा ने तो सब रसों को एक रस कर दिया है ॥ १४ ॥

तथाहि—

अप्रस्थामिष चेतसः पुर इव व्यालम्बमानां दृशो-

र्जल्पन्तीमिष रुग्धतीमिष मनाङ् भुग्धं हसन्तीमिष ।

निद्रामुद्रितलोचना अपि चयं तां विश्वरूपायितां

पद्यामो वहिरन्तरे निशि दिवा मार्गेषु गेहेषु च ॥ १५ ॥

तथाहीति ॥ धनेनागानुभवसभावनाद्वारेणैकरसत्वमेव व्यनक्ति ॥ अप्रस्थामिति ॥ विश्व रूपमास्येति विश्वरूपो हरि ॥ १५ ॥

क्योंकि—

चित्त के आगे स्थित, आँसों के सामने वर्तमान, कुछ कहती हुई, रोकती हुई, मधुरतापूर्वक शोभा हैंसती हुई, सप्तार के रूपों में व्याप्त उसे हम निद्रा के कारण आँसों के बन्द हो जाने पर भी घर में मार्ग में, दिन में, रात में, बाहर और भीतर सब जगह देखते हैं" ॥ १५ ॥

पद्ममवधारयन् अतृप्त्वा इव तथा प्रदितेषु स्वहस्तपङ्कपाकरस-  
विशेषेषु, असन्तुष्टस्तत्कथायाम्, आवम्प, चन्दनागुहपरिमलेन पाण्डु-  
रितपाणिपल्लव, लज्जकमोलकरम्रितताम्बूलमुत्सर्पिकर्पूरपरिमल-  
मादाय, विकीर्णविचित्रकुसुमप्रकरद्वारिणा यक्षकर्दमाच्छच्छटोच्छो-  
टितपर्यन्तमित्तिभागे लम्बितप्रलम्बजाम्बूनदपद्मदाम्नि धूपधूमामो  
दिनि चूर्णितकर्पूररङ्गरेखाभाजि भोजनान्तरमपरेऽपराद्धविनोद-  
मण्डपे मनाग्विध्रम्य रणरगकाकान्तहृदयो दूरदिगन्तालोकनकुन्द-  
लित सरित्तोरोत्तम्भिताभ्रंलिहसोधस्कन्धभूमिमारुह्य च तस्या-

मूर्ध्व एव ध्रियमाणमायूरातपत्रयुगलं सलीलालसपदैरितस्तनः  
 परित्रामन्, नेत्रीयसि सरित्संगनाम्भसि मध्याह्नमपिलमवगाहन-  
 सुखमनुभूय तीरमुत्तीर्णासु तिमिरशङ्कया कृतदूरचट्त्रमपैश्चक्रमा-  
 चक्रवालैराकुलमरलोन्नयमानास् पुलिनपांसुविहरणविरामे विकसित-  
 विविधवीरन्धि रोधांसि दन्तीषु दन्तिपंसिषु दत्तहाष्टिः, विरलनलिनो-  
 पत्रान्तरालमुत्तोत्थितस्य, किञ्चिदवाञ्छितचट्टलञ्चोः चरत. चट्टल  
 चञ्चरीकिणि विकचक्रमलयने राजहंसकुलफलापस्य करिजलमदन्त  
 दण्डपाण्डुविसकांडमङ्कटंकारानाकर्णयन्, अपराहमज्जनागतामि  
 कृडिनपुरपुरन्धिभिराश्चर्यरसोमिमुपितनिमेदैर्निष्कम्पनीलोत्पलपलाश  
 लीलापमाननेत्रपुटैरापीयमानमुत्तेन्दुद्युतिः, दर्शिततरङ्गभ्रमङ्कया.  
 दूरोच्छलद्रालशफरीच्छलेन विस्फारितविलोचनया, सरिन्संगमसलि-  
 लाधिदेवनयापि विलोन्नयमानरूपसंपत्तिरिव, क्षणमविरलचलञ्चञ्चरी-  
 कचक्रचुम्बितामुरुहासु क्रीडाकमलसरसीषु, क्षणमुपान्तपङ्कीभूत  
 मञ्जरितसहकारराजिषु स्मरवाजिवाद्यालीषु, क्षणमुत्पतत्पनाकापट  
 पल्लवराजितासु मीममृपालान्त.पुष्पासादपङ्क्तिषु, क्षणमवकीर्णकुसुम  
 रङ्गावलीरम्यासु नगरवीथीषु विश्रान्तविलोचनश्चिरमवतस्थे ॥

स्वमिति ॥ उत्तमिन्नस्य तत्कारोपितस्य जङ्गमस्य चित्रकूटास्यस्याध्वनिह-  
 मौषस्य स्वन्धमूमिमारण तस्यामितस्तनः पत्रिकामन्, निकटतरे नदीसमे-  
 दोदके कृनेत्रलक्ष्मीडामु, तमोन्नयना चक्रैराकुलमालोक्यमानासु, कृतधूलीरानासु,  
 तटीः पाटयन्तीषु न्यस्तारष्टिः, वने चरतो हंसवृन्दस्य विसमङ्गरवाग्म्यवन्,  
 कृण्डनस्त्रीभिर्हरयमानमुत्तेन्दुध्री, उच्छलन्दफरीच्छलविलोकिनया जलदेवनया  
 वीचपमाग रूपमग्गश्चि घगमेक सरसीषु घग चूतालीषु घग गृहालीषु चमव  
 रोधमवतपङ्क्तिषु घग पुरपद्धतिषु विश्रान्तनेत्रो नलश्चिरमस्यात् । सादरेषण नेत्र  
 पानम् । तत्र पत्रपुटैरुत्कमिति नेत्रपुटैरापीयमानेःसुक्तम् । कण्टकादिदोपरहितानु  
 तदराजिराजितासु च मूमिषु वाइवहना । तथा च—'रम्या ममतला लोष्टकील-  
 कण्टकवज्रिता । वाद्यालीमूमिरम्पणंतररात्रिविराजिता' इति । एतदेव पङ्क्ती  
 भूतेषादिभोक्तम् । हिङ्गुलहरिताटादिविचित्रवर्णकवचित्रहेतुत्वात्सुमान्यं च रङ्गा  
 वली विचित्रवर्णकुसुममक्ति ॥

इस तरह सोचता हुआ उसके द्वारा भेजे गये और उसी के द्वारा पत्रों के  
 गये भोग्य रसों में अवृत्त सा ही रह गया । उसकी चर्चों में पेट नहीं भर  
 सका । आचमन किया । चन्दन, अणुष आदि गन्ध द्रव्यों से पल्लव सहस्र  
 हाथों को स्वच्छ कर लवङ्ग और चीतञ्चीनी मिश्रित पान तथा सुगन्धित  
 कपूर का चूर्ण ग्रहण किया ।

इसके बाद अपराह्न के समय एक दूसरे विनोद-मण्डप में जिसकी भित्ति टगे हुए विविध पुष्पो से मनोहर थी, सुगन्धित पदार्थों के मिश्रण से बनी हुई धारा से धुली हुई थी, स्वर्ण-कमल की मालाये लटकी हुई थी, धूप व धूम की सुगन्धि गमक रही थी, धूर्ण किये हुए कपूर से सफेद चिह्न बने हुए थे, थोड़ा विश्राम किया।

उस समय उसका हृदय उत्कण्ठा से भर गया था। सुदूर दिशाओं की ओर देखने के लिये मन कुतूहलित हो गया था। अतः नदी तट पर बने हुए गगनचुम्बी प्रसाद पर चढ़ा। वहाँ मयूर मंज के दो छाने लगे हुए थे। नीलापूर्वक धीरे-धीरे इधर-उधर घूम रहा था। समीप में ही नदी सगम के जल में दोपहर के समय समस्त स्नान-मुखों का अनुभव कर तीर पर निकले हुए हाथियों के यूपों को देखा। उन ( काले हाथियों ) को अन्धकार समझकर दूर से ही षक्कर लगाते हुए चञ्चल व्याकुलतापूर्वक देख रहे थे। तट की भूमि में बिहार करने के बाद खिन्ने हुए विविध पौधों से युक्त तटस्वल्पी का मर्दन कर रहे थे। कहीं-कहीं पर पामे जाने वाले कमल पत्रों के एकदेश पर सोकर उठे हुए, अपने चञ्चल षोचों की थोड़ा नीचे किये हुए, षपल भ्रमरों से मण्डित कमलवन में चरते हुए राजहंसों द्वारा तोड़े जाते हुए हाथी के बच्चों के दातों की तरह शुभ्र कान्तिवाले कमल दण्डों की ध्वनिमा सुना। अपराह्न समय में स्नान के लिये आयी हुई कुण्डिनपुर की बधुएँ आश्चर्य रस की लहरियों में डूबते हुए पलकानुग, कम्पनहीन, नील कमलपत्र के विलास को प्रस्तुत करने वाले नेत्रों से उनके मुखचन्द्र की कान्ति को पी रही थी। तरङ्ग रूप भ्रूभङ्गिमा दिक्षा कर, दूर से उछलती हुई छोटी मछलियों के बहाने आँसुओं को खोलकर मानो नदी सगम की जलदेवता उनकी रूप-सम्पत्ति को देख रही थी। कुछ समय तक श्रीहा कमल बावलियों को जिनके बमलों को भनभनाने हुए भ्रमरों के ज्येष्ठ धूम रहे थे, कुछ क्षणों तक कामदेव व अश्वों के बिहार के उपयुक्त समीपवर्ती भूमि को जिसमें मञ्जरियों से पूर्ण आम के पेड़ों की श्रेणियाँ विराजित थी, कुछ काल तक खिलने हुए फूलों के कारण मनोहर, वृक्षों और लताओं के कारण रमणीय गृह वाटिकाओं के समूह को, कुछ क्षणों तक फडफडाती हुई पताकाओं व वस्त्र-वस्त्रियों से सुशोभित महाराज भीम के अन्त पुर के अट्टालिका-समूह को, कुछ क्षण तक विखरे हुए फूलों के रङ्गों से मनोहर, नगर की गलियों को देखता हुआ बहुत समय तक वहीं खड़ा रहा।

चिन्तितवांश्च—

'नांशाने न तरङ्गिणीपरिसरे नो रम्यहर्म्यं न वा  
पुष्पानुष्करगर्भगुञ्जदलिषु क्रीडातडागेष्वपि ।  
धात्यायूर्णितशीर्षपर्णतरला दृष्टिर्मदीयाधुना  
लुभ्यल्लुब्धकमोपितेव हरिणी श्रान्तापि विश्राम्यति ॥१३॥

नोपानेति ॥ विश्राम्यतीति प्रत्येकं योज्यम् ॥ १६ ॥

सोचा भी—

बाधी के चकोट म पडे हुए पत्ते की तरह मेरी दृष्टि यकने पर भी लालची  
ब्याधे से डरी हुई हरिणी की तरह न बगीचे में, न नदी तट पर, न रमणीय  
कोठे पर, न उन विनोद की बावलिषो में जहाँ के खिलने हुए कमलों के कोश में  
भ्रमर भनभना रहे हैं, विश्राम ले रही है ॥ १६ ॥

[गिरा हुआ पत्ता जैसे चक्करदार हवा म स्थिर नहीं रह पाता वैसे ही उसकी  
दृष्टि स्थिर नहीं रह पाती थी । यकी हुई हरिणी विश्राम करना चाहती है किन्तु  
जब लालची ब्याधा पीछा करता है तो विचारी कहीं विश्राम नहीं कर पाती ।  
राजा की दृष्टि के त्रिये भी कहीं विश्राम का अवसर नहीं था । उद्यान आदि  
पदार्थ मनोरम होने हैं किन्तु विरह के समय में विनोद के पदार्थ उद्दीपक बन  
जाते हैं ॥ १६ ॥ ]

अपि च—

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो  
न चापि प्रध्यंसं व्रजति विहितैः शान्तिकर्तनैः ।  
भ्रमावेशाद्भ्रमे कमपि विदधन्नङ्गमसमं  
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ॥ १७ ॥

न न-य इति ॥ भ्रम- सन्देह' । स चात्र द्रमयन्तीलोभविषयः ॥ १७ ॥

यह स्मरापस्मार ( कामरूप भिर्यो नामक रोग ) न मन्त्रों से जाने लायक  
है, न दवा का विषय है, न सैकड़ों शान्ति-वाठो से हट सकता है । चक्कर में  
डाल कर अज्ञो में असह्य पीडा भर रहा है । बाँझो में चक्कर ला देता है  
जोर मूच्छित्त कर दे रहा है ॥ १७ ॥

किंचान्यद्द्भुतम्—

पौष्पा पञ्चशरा- शरासनमपि ज्याशून्यमिश्रोर्लता  
जेतव्यं जगतां त्रयं प्रतिदिनं जेताप्यनङ्गः किल ।  
इत्याश्चर्यपरम्पराघटनया चेतश्चमत्कारयन्  
व्यापारः सुतरां विचारपदवीशन्धो विवेक्यन्धताम् ॥१८॥

पौष्पा इति ॥ अत्र प्रथमोऽपिशादः शरासनस्य उदाशून्यस्य शरापेक्षया द्वितीयश्च जेतुरनङ्गस्य ऽतिदिनजेतव्यजगाप्रयापेक्षया वैपम्यस्यञ्जक ॥ १८ ॥

और भी आश्चर्य की बात यह है कि—पूत्र के बने हुए उसके पाँच ही बाण हैं, धनुष भी प्रत्यङ्घा से दून्य है और ईश्वर से बना है, जीतना सपूर्ण संसार है, जीतने वाला अनङ्ग (अगहीन) है। इन आश्चर्यपूर्ण पदार्थों की सघटना कर चित्त को चमत्कृत करता हुआ ब्रह्मा का व्यापार अचानक विचार-मार्ग में उतर नहीं रहा है अतः उसे नमस्कार है ॥ १८ ॥

एवमनेकविधवितर्कतरलितहृदये कुण्डिनगरवीथीविश्रान्तदृशि शनैरुद्धेह्लितमहिकाक्षपल्लयस्य मृदुनरतरद्वितसरितः कमलवनपायोः समर्पितवपुषि निपथभूमुजि, भुजगनिर्मोकधवले घसानो वाससी, रणन्मणिकङ्कुणैराकूर्परं पूरितप्रकोष्ठ धीखण्डपिण्डपाण्डुरिततनुरपूर्वं इव पर्वतकः प्रतीहारसूचितः प्रविवेश ॥

एवमिति ॥ महिकाक्षो ह्यमविशेष । चिरदृष्टस्यापि पर्वतकनामनो घामनस्या-  
पूर्वावमिह पूर्वमभूयितस्य सम्प्रति पारितोषिकभूषणभूयितःवाहयितोदन्तप्रशना-  
तात्पर्याद्वा ॥

इस तरह विविध प्रकार के तर्क व वितर्क से हृदय तरंगित हो रहा था। कुण्डिनपुर की गलियों में अलौं विश्राम कर रही थी। कमलवन की हवा मल्लिकाक्ष जाति के हंसों के पल्लो को धीरे-धीरे कम्पित कर रही थी और नदी को अतिशय कोमलतापूर्वक तरंगित कर रही थी। निपथपति भी इसी में शरीर समर्पित किये हुए थे, तब तक प्रतीहार द्वारा प्रवेश की अनुमति पाकर पर्वतक राजा के पास आया। वह साँप के केशुल सदृश बल घारण किया था, बजने हुए मणि-कङ्कुण से केहूनी से लेकर कलाई तक का भाग भरा हुआ था। चन्दनपिण्ड के लेप से शरीर शुभ्र हो गया था। अतः उसकी अपूर्व शोभा बन गई थी।

प्रविश्य च प्रकटितप्रणयप्रणामः प्रभुणा सविस्मयस्मितहंकारेणा-  
भिभाषितः स्तोकाक्षमिनभ्रूसंसया विश्वापयितुमारोभे ॥

भीतर आकर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। विस्मय से मुस्कराने हुए “हूँ” ऐसी ध्वनि करते हुए महाराज द्वारा कुछ कहे जाने पर बोधा उठे हुए भीहो के सकेत से बोलना शुरू किया—

‘देव श्रूयताम् । इतो गतवानहम् । अनन्तरमतिशयितस्वर्गान्मा-  
र्गानेकविधचर्चाचारुणि चत्तराणि विलङ्घ्य, विद्वितमनः प्रसादान्

प्राप्तादानप्रदोक्तयन्, इतमनतः सस्मिनस्मरालसचलडेलाविलासिनो-  
 विकारकूणितकोणेक्षणाक्षितदृश्यः, सेवाविरामनिःसरत्सामन्तसंकुलम्,  
 अत्रिरलगलन्मधुमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरितसरससदकारवननिकुञ्जपुञ्जित-  
 पुंनकोकिलकुलकलरवरमपीयोद्यानमालावलयितम्, उपान्तकृतमणि-  
 मन्दुगानन्दिरनि रश्मिन्धपोप गोटकरुपहयहेपितराजवल्लमतुरंगम्, उज्जुङ्ग-  
 शृङ्गसंगतमङ्गलध्वजम्, अङ्गणोत्सङ्गरङ्गक्रीडाकुरङ्गविहंगम्, अमङ्गाङ्ग-  
 रक्षिणक्षितरुक्षान्तररममाणराजकुमारकम्, अनिसूक्ष्ममुक्ताफलरचित-  
 तरङ्गरम्यरङ्गरंसारराजिराजिताजिर राजभवनमविशम् ॥

देव श्रुत्वातिनि मार्गाश्रवराणि च विलङ्घ्य, प्राप्तादानपरपन्, ईदप्राजमवन-  
 नविशमिति मरुन्ध । चर्चा गन्धोदकमेचनपुत्रप्रकारादिवातावशात्प्रस्तावान्नल-  
 प्रवेशादिलक्षणा चामुग्हापि । मणिमन्दुरत्यत्र पृथीसमास ॥

“महाराज, सुनिवे—यहाँ स चलन के बाद स्वर्ग से भी अधिक मनोहर  
 मार्गों तथा वाग्बिनोदों के कारण मनोहर चौराहा को पार कर मन को प्रसन्न  
 कर देने वाले राजप्रासादों को देखा । मृन्कृपाती हुई वारागनाओं के वासना-  
 छोटक टेढ़े कटाओं से मेरा हृदय आहत हो गया । उस राजभवन में मैंने प्रवेश  
 किया, जहाँ सेवा-कार्य की समाप्ति के अवसर पर सामन्त लोग बाहर निकल  
 रहे थे । निरन्तर मधु बरसती हुई मञ्जरियों के कारण पीत रंग वाले सरस  
 धामों के कुञ्जों में बैठ कर गाती हुई कोयल की मधुर कूह के कारण मनोहर  
 दद्यानों की श्रेणिया से घिरा हुआ था । समीप में ही मणिनिर्मित वाजिशाला में  
 बंधे हुए मनोहर, लालन-पान्न की लम्कृता के कारण प्रसन्न, राजप्रिय बड़े  
 हिनहिना रहे थे । ऊँचे शिखरों पर मगलध्वज लगे हुए थे । आंगन में विनोद-  
 मृग हटल रहे थे । दूसरे कस में विहार करता हुआ राजकुमार अगस्तको  
 द्वारा सुरक्षित था । छोटे-छोटे मुक्ताफलों से बनी हुई तरणाकृतिया के  
 कारण रमणीय रंगरेखाना ( बन्धनाओं ) की पक्ति स आंगन सुगोभित हो  
 रहा था ।

अनिमननोहारिणि यत्र सुपुष्करमालानि क्रीडायापीपयांसि नाग-  
 श्रूयं च, सारधाणि लीलोद्यानसारसमिथुनानि सेवककविदृन्दं च,  
 विलम्बितानि काञ्चनकुङ्कुमदामानि गीर्णं च, अनलसङ्गानि लक्षप्रदोप-  
 धतिमुखानि प्रेक्षणं च ॥

अत्राति ॥ यत्र राजभवने । सुपद्मश्रेणीनि पवासि । यथा च सुष्ठु पुष्कर शुग्हाप्र  
 यस्य तयोक्तम् । आलानमर्गलनस्त्रमोऽस्यास्तीनि । तथा सह भारवै सारावाणि ।  
 वृन्दं च सारोत्कृष्टा वागी यस्य तथाविधम् । विनोपेग लम्बायमानीकृतानि ।



गीतं च रघाकृतविलम्बोपेतं तानोपेतं च । अनलेन ज्वालालक्षणेन यज्ञो देवाम् ।  
प्रेक्षणकं च नालसमनलसमोज्ज्वलम् । उरुधे रघाने गीयमानावान् । तथा गान  
मस्यास्तीति हनि । लक्षसक्यद्रव्यपतीना हि देशमसु यावत्तत्त दीपा ज्वाल्यन्ते  
इति श्याति ॥

उम अन्यन्त मनोहर ( राजभवन ) मे विनोदवाचलियो का जल सुन्दर  
कमलो की पक्ति से युक्त है और हाथियो का समूह सुन्दर पुंकर ( गुण्ड ) और  
आलान ( बन्धन ) से युक्त है । विनोद-वाटिका के सारसों के जोड़े सारव  
( आरव ( ध्वनि ) से युक्त ) हैं । सेवक कवियो का समूह सारवाणि ( तथ्यपूर्णा  
वात कहने वाला ) है । सुवर्ण और कुङ्कुम की मालाये विलम्बित ( विरोध टा से  
लटकाई गई ) हैं और गीत विलम्बि ( मन्थर स्वर वाला ) है तथा तानि ( तान  
से युक्त ) है । लाखो विपत्तियो का प्रकाश ज्वालामय है और नाटक ओजस्वी  
तथा गान युक्त है ।

[ यह सम्पूर्ण अनुच्छेद ग्लिष्ट है । बायीपक्ष मे—सुपुंकरमाल शब्द का  
बहुवचन सुपुंकरमालानि है । नागपुंष-पक्ष मे—सुपुंकरम् और आलानि पृषक्  
पद है । अर्थात् नागपुंष ( हाथियो का गुण्ड ) सुन्दर गुण्डवाला है और आलान  
( बन्धन ) से युक्त है । सारसमिथुन पक्ष मे—तारावाणि—सारव पद के  
प्रथमा का बहुवचन है । अर्थात् सारसो के जोड़े सारव ( कलरव ) से युक्त हैं ।  
आरव ( आवाज ) से युक्त जो होगा उसे सारव कहा जायगा । सेवक कवि  
वृन्द- पक्ष मे—सारवाणि-नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन है । अर्थात् आश्रित  
कवियो की घाणी तथ्य से भरी है । काञ्चनकुङ्कुमदामानि का विन्म्बितानि  
विरोधण है । राजभवन को सजाने के लिए मालाये बड़ी सुन्दरता से लटकायी  
हुई हैं । गीत पक्ष मे—विलम्बि और तानि अलग-अलग पद हैं । दोनों ही गीत  
पद के विरोधण हैं । नपुंसक लिंग मे प्रथमा के एकवचन हैं । अर्थात् वही गाये  
जाने वाले गीत दीर्घ आलाप के कारण मन्थर-गति सम्पन्न हैं और तान स्वर से  
सयुक्त हैं । प्रदीपो का प्रकाश अनलसग ( ज्वालापूर्ण ) है । वृत्तिमुखानि का  
अनलसगानि विरोधण है । ऐसा कहा जाता है कि लक्षवति आदमी के पर एक  
लास वृत्तिया जलायी जाती हैं । उन लग्न वृत्तियो का प्रकाश अनल को साप  
तिया हुआ है । अर्थात् अनल से सयुक्त है । प्रेषणक पक्ष मे—अनलसम् और  
गानि पृषक् पृषक् पद है । प्रेषणक ( दृश्य ) जनलस ( ओजस्वी ) है और गानि  
( गान से युक्त ) हैं । जो दृश्य दिखाये जाने है उनका वहा ओजस्वी प्रभाव  
लोगो पर पडता है । बीच-बीच मे संगीत की योजना से उसे अधिक रोचक बना  
दिया जाता है । ]

किं बहुता—

सुम्यिततेजोराशेर्लक्ष्मीजननस्य रत्ननिलयस्य ।

तस्योपरि प्लवन्ते वारैरिव वर्णकाः सर्वे ॥ १९ ॥

हे प्लव । तजे राशिर्ब्रह्मवान्त प्रभापचयश्च । लक्ष्मीर्विष्णुपत्नी शोभा च । तयानृतस्य तस्य सागर पमस्योपरि वारका न्तोता प्लवन्ते तरन्ति । अपरि विदुष्टुवाद्गन्तव्यमाया ब्रह्ममेव वर्णयन्तीनि नाव । वारो जलानि धाद्यन्ते-  
ऽभिनन्ति वारि ॥ १९ ॥

वर्णक क्या कहें—

वर्णन करने वाले लोग उनके गुणों व ऊपर ही ऊपर करते हैं ॥ १९ ॥

[ प्रथम एव द्वितीय चरण की पदावली रिप्ट है । सागरपक्ष—तजाराशि ( ब्रह्मवान्त ) म युक्त लक्ष्मीजनक ( लक्ष्मी का पिता ), रत्ननिलय ( रत्नों का भवन ) बाधि सागर, समुद्र को तजाराशि कहा गया है क्योंकि उसका नीचे एसी बात ज्ञानी रहती है जो निरन्तर जागृत धाराया से मित्रो नदियों के अपार जल को जग डालती है । राजा भी तजोराशि, लक्ष्मीजनक तथा रत्ननिलय है । अर्थात् अत्यन्त नवस्वी है । शोभा सर्वधक या राज्य की आर्थिक दृष्टि कयाने वाला है । रत्ननिलय है । अर्थात् रत्ना का खजाना है । वर्णन करने वाले लोग उनके गुणों व ऊपर ही ऊपर के अशा का वर्णन करते हैं । उसकी गहराई म पहुँचना बड़ा कठिन है । वारिवि पक्ष समुद्र अर्थ म अधिक प्रसिद्ध है किन्तु वारिवि पक्ष भी सागर अर्थ म प्रयुक्त होना है । वार् शब्द जल का वाचक है । वार् ( जल ) जिसमे रक्ता जाय उसे बाधि कहते हैं ॥ १९ ॥ ]

तत्र चलत्कञ्चुक्सिंहकुलं पातालमिवान्त-पुरमनन्तालयं प्रविश्य  
विप्रियुक्तुसुमसम्पत्संपन्नपुण्यपादपपरिकरिताङ्गवापीपरिसरचलच्च  
द्वयके चन्द्रशान्ताशालिनि, शैल्य इवानेकभूमिकाभाजि, धनंजय इव  
सुनद्रान्विते, कुरुवंशाप्यान इव चाश्चित्तत्रविधिप्रभित्तिभाजि, तुहि-  
नाचलोच्चकृटायमाने सुधाप्रपलस्फुर्ये घाम्नि श्रज्जालीप्रिलसत्सत-  
न्निमतां सतमभूमिनायाम् इतो मुषत्रानायनं निविष्टाम्, इतो गता  
न्ता, कुञ्जप्रामनकन्यरास्त्रद्वार्ताव्यनिरुपविनोदारम्भिणी सम्भाष-  
यन्तीम्, जनपरततरललोचनालोकरुनेनीलोत्पलोपहारमित्र त्वद्वि-  
ष्टिनायं दिशे दिशन्तीम्, उत्तरीयांशुकस्याच्छतया दृश्यमानमदनराज-  
दणकिणानुकारिकसूरिकापङ्कपत्रलनाङ्कितकुचकलशश्रियम्, नष्टमी-

शशाङ्कशकलार्थाशोभाभाजि ललाटपट्टे स्मरपरवशत्रिपुररूपरिप  
 'ममेयं ममेय ममेयम् इति संहर्षात्कृतं स्ववर्णानुकारिन्प्रीकारचिह्न-  
 मिव कुङ्कुममृगमदनलयजरसरचितत्रिपुण्ड्रवरेखाप्रितयमुद्वहन्तीम्,  
 आलोहितेन च त्वद्भार्तामृतपानपालप्रवालप्रणालकेनेन कर्णप्रणयिना  
 यान्दपत्लपेन विराजितवदनाम्, आसन्नमणिभित्तिदर्पणसंक्रान्त  
 प्रतिबिम्बनया त्वत्सगमवान्छावृतसतापसंविभागार्थमिव बहुन्यात्म  
 रूपाणि सृजन्तीम्, आसन्नवर्तिनीभिर्वाणादिविनोदविदुषीभि स्मान  
 वयोवेषाभि सखीभि सरम्बतीमिव सञ्जलविद्याधिदेवताभिरुपाम्य  
 मनाम् उन्मिपत्कुसुमाभरणरमणायामिध्यामरग्राहिणीमिर्चनदेवता  
 भिरिव शरीरिणीं वसन्तमासश्रियनुपसेध्यमानाम्, अनुलेपनपुष्प  
 पाणिभि प्रसाधिकाभिर्भयानांमित्रानेकनाम्नायकनारीभिराराध्यमा  
 नाम्, इतस्ततो निपतन्मण्डनमणिमयूखमञ्जरीजालच्छलेनामान्तमिव  
 कान्तिरसविसरमुत्सृजन्तीम्, अशेषाद्भावयत्रेषु प्रतिबिम्बतैरासन्न  
 विभ्रभित्तिरूपकैर्मायाविभि सुरासुरैरिव विधीयमानाश्लेषाम्, अत्र  
 स्थिते पद्मरागमणिदर्पणे वन्दर्पातुर रागिणि शशिनीव करुणयार्पित  
 वृञ्जयाम्, अशेषजगद्विजयाख्यशालामिव मन्मथस्य, सङ्केतवसति-  
 मिन समस्तसौन्दर्यगुणानाम्, अधिदेवतामिव सोभाग्यस्य, विपणि  
 मिव लावण्यस्य, शिल्पसर्वस्वपरिणामरेखामिव विधातु, अनन्त  
 संसाररोहणीकरणकन्दलीं दमयन्तीमद्राक्षम् ॥

तत्र केन ॥ कञ्चुकिनो महषलका उरगात्र । ( बहुनिलय शेषनिलय च । )  
 प्रविरय ईश्वरिण्ये घामिन गृहे, महमभूक्तिसप्तमक्षण, तत्र रिधते इतोमुग्य एव  
 दस्तादिसङ्केतकल्पिते एव, वातायने गवाये, निविष्टाभासीना, दमयन्तीमद्राक्षमिति  
 सम्बन्ध । चन्द्रशाला विरोधुष्टम् । शैलपो नट । भूमिका गृहचणा वेवधारण च ।  
 शोभनानि भद्राणि गृहावयवविशेषास्तरिवते । एषे सुभद्रार्जुनपत्नी । चाह  
 चित्रेण विचित्रा मिसीर्भजते । अग्यत्र चित्रविचित्रौ शान्तनुसुतौ । तौ च कुरुवर्या  
 ना भित्तिमूर्तौ । तरकलत्राभ्यामम्बिकागालाग्या पाण्डुघनराष्ट्रयोत्पन्नान्त् । तथा  
 एवना महसप्तैरादिव्यस्य सप्तयोऽथा यत्र तस्मिन् । अष्टमी शशाङ्कशकलेति । एण्ड  
 दाशिनो हि धिय ललाट धवति । त्रयाणां मन्वराजस्तममां पुरुषास्त्रिपुरया ।  
 यथा—'न वाघतेऽह्य त्रियण परस्परम्' इत्यत्र त्रयाणां धर्माद्वीना गण । प्रथा  
 च चण्डमिद्वृते चण्डिकाचरित—'प्रियत्रिवर्गश्रकम सवामसु' इति । कम  
 धारयस्तु सजायामेव । मणिदर्पणलक्षण शशिनि काङ्क्षयादर्पितप्रतिवृत्तिमि पर्थ ।  
 अवज्ञाता हि रामी भ्रियते । संसार रोहणीगिरि, दमयन्ती च रमनप्ररोदशलाका ॥

धूमन हुए कञ्चुकिपो से व्याप्त तथा अनन्त परा से युक्त उस भवन म  
 पाताल की तरह प्रवेश किया ।

[ पाताल लोक कञ्चुकि-संकुट ( सर्पों से संकीर्ण ) रहता है । राजभवन कञ्चुकि-संकुट ( कञ्चुकियों से संकीर्ण ) है । पाताल जननालय ( शैयनाग का भवन ) है । राजभवन जननालय ( अनेक कौठरियों से मण्डित ) है । ]

विभिन्न पुण्य-सम्पत्ति से सम्पन्न पवित्र वृत्तों से घिरी हुई वांगन की बावनी के तट पर बरुवाक घूम रहे थे । वह भवन, चन्द्रगाला ( सर्वोच्च प्रकोष्ठ ) में सुसोभित था । तट जैसे जनेक भूमिका ( विभिन्न पात्रों का वेप ) धारण करता है वैसे वह भवन भी अनेक भूमिका ( मञ्जनों, को धारण करता था । अर्जुन जैसे सुभद्रान्वित, सुभद्रा नाम की पत्नी से युक्त ) थे वैसे वह भी सुभद्रान्वित ( सुन्दर गृहभागों से युक्त ) था ।

कुहवश का जाहबान जैसे चाकचित्र + विचित्र + भित्तिभाक् ( सुन्दर चित्र और विचित्र नामक मूत्र लोको को धारण करने वाली ) है वैसे वह सुन्दर चित्रों व चारों विचित्र भित्तियों को धारण कर रहा था । हिनालय के ऊचे छिखरों की तरह उसके विभिन्न उच्चतम भाग चूने से धवन किये गये थे । उसके सातवें प्रसाद पर जिसकी ध्वजप्रेरिया सूर्प के शोशों के साथ विज्ञाप कर रही थी, छिपनी के सामने इधर ही की ओर मुँह कर बैठी हुई दमयन्ती को मैने देता ।

[ शैल्य, धनञ्जय तथा कुहवशाहयान इन तीनों उपमाओं के साथ भवन की वेदक शब्दी समानता है । कुहवश की भित्ति ( मूत्र पुरय ) चित्र और विचित्र थे । इनकी पत्नी का नाम अम्बिका और अम्बाना था । इन्हीं से पाण्डु और इन्द्राण्ड उत्पन्न हुए थे । ]

आप के कथा-प्रसङ्ग से विनोद कराती हुई यहाँ से लौटी हुई कुबड़ी और भाटी कन्याओं से बातें कर रही थी । निरन्तर अपने चंचल स्रोचनों से देखती हुई आप के द्वारा सनायित दिशा कोमानों नीचे कमजों का उपहार दे रही थी । अचरत ही अत्यन्त निर्मलता के कारण स्तन-बन्धन की शोभा स्पष्ट दिखायी पड़ रही थी । उस पर लगे हुए कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्रों तथा लताओं के चिह्न काम-दाप के आधान-चिह्न की तरह लग रहे थे । उसका ललाट कटुमी कचन्द्र-बन्धन की तरह शोभा धारण कर रहा था । उस पर कुङ्कुम, कस्तूरी तथा चन्दन के रसों से त्रिगुण्ड के चिह्न बने थे । ऐसा प्रतीत होता था कि काम्यप्र सत्व, रज और तम, इन तीनों गुणों ने "यह मेरी है, यह मेरी है" इस तरह की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपने स्वीकार-चिह्न के रूप में अपने अपने वनों को अङ्कित कर दिये थे ।

कानों पर रखे गये लाल रत्न के नवीन पल्लवों से उसका मुहमण्डल सुसोभित था । वे बालपल्लव आप के कथामृत पान के लिये मानों कानों से

स्नेह किये हुए थे। समीप की मणिमय भित्ति दृश्य दर्पण में दिखाई पड़ रहे उसके प्रतिबिम्बों में ऐसा लग रहा था कि बाप के मिलन की इच्छा की अपूर्ति से होने वाली वेदना को बांट देने के लिये कई शरीर धारण की हुई थी। समीप में रहने वाली, बीणा आदि द्वारा मनोरञ्जन कराने में निपुण, तथा तुल्य ही अवस्था तथा वेप वाली सखिया द्वारा सेवित की जा रही वह समस्त विद्याओं की अधिदेवताओं से सेवित हो रही सरस्वती की तरह प्रतीत हो रही थी। खिलते हुए फूलों के अङ्कुरों से मनोहर, खंवर धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा ऐसा लग रहा था कि शरीर धारण की हुई वसन्त काल की लक्ष्मी-भक्ति हो रही थी। हाथ में अङ्कुराग और फूलों को ली हुई शूद्रार-करने वाली स्त्रियों से ऐसा प्रतीत होता था कि वह अनेक स्वर्ग-मुन्दरियों द्वारा आराधित होती हुई पार्वती थी। आभूषणों में जड़े हुए मणिपाने छिटकते हुए किरणमञ्जरी समूह के गहने शरीर में अँटती हुई कान्ति-रस की धारा को छोड़ रही थी। समीप की भित्ति पर के बनाये गये चित्र उसके निर्मल शरीर पर प्रतिबिम्बित हो रहे थे। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव उसका आलिङ्गन कर रहे थे। पद्मरागमणि के दर्पण पर उसकी छाया दिखाई पड़ रही थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीडित चन्द्रमा के ऊपर दयावश अपनी छाया समर्पित कर दी थी। कामदेव के विश्व विजय के अस्त्रागार की तरह प्रतीत हो रही थी। भगवत सोन्दर्य-गुणों की सकेतस्थली की तरह थी। सौभाग्य की देवी की तरह, सौन्दर्य की दुकान की तरह, ब्रह्मा की सम्पूर्ण शिल्पकला की परिपक्वता के नमूने की तरह, अनन्त संसार रूप रोहण नामक पर्वत की राममयी कन्दली दमयन्ती को मँते देखा।

[ अनवरत—दमयन्ती की दृष्टि नीलकण्ठ सहस्र थी। नल जिस दिशा में बैठा था उस दिशा को भी उसे सम्मान देना था। अतः अपनी दृष्टि रूप कमलावली से उसे सम्मानित कर रही थी। उपरीबाहुक उमके बल्ल का अङ्कुर अत्यन्त सुघ्न तथा महीन था। अन इकी हुई भी स्तन-शोभा प्रगट हो जाती थी। स्तनों पर कस्तूरी के लेप से विभिन्न पत्रों तथा लताओं की रचना हुई थी। ऐसा लगता था कि काम अपने वाशों से जो प्रहार किया था उन्हीं के वे चिह्न थे।

स्मरपरवशनिपुण्यै—दमयन्ती अपने ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगायी थी। त्रिपुण्ड्र की तीनों ही रेखाएँ हीन रङ्ग की थीं। तीन वस्तुओं से बनी भी थी। एक रेखा शूद्रकर्म की थी, दूसरी कस्तूरी की और तीसरी चन्दन की। चन्दन

की रेखा शुभ्र थी जतः वह सत्त्व गुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कुङ्कुम की रेखा लाल थी जतः वह रजोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कन्नूरी की रेखा काली थी यतः तमोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कवि ने कल्पना किया है कि सत्त्व, रज और तम ये तीनों पुरुष हैं। तीनों ही बृह रहे हैं, 'यद्दृह नारी है, यद्दृह नारी है।' तीनों पत्नी रेखाएँ हीना मृग-पुरुषों की स्वोद्दिष्टि रेखाएँ हैं।

जसन्मणि—दमयन्ती निम्न भवन न रह रही थी वह मणि का बना था। उसकी भित्ति न दमयन्ती का चित्र प्रतिबिम्बित होता था। भित्ति के चारों तरफ उसके चित्र दिखाई पड़ने थे। जतः ऐसा लगता था कि नन्विभोग के दुःख को एक शरीर से वह न सह सकती थी। अतः जनेक शरीरों को धारण कर उस दुःख को बाँटना चाह रही थी। दुःख थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया जाय तो कम हो जाता है। •

जनेमाङ्गावमवेमु—भवन की भित्तियाँ पर देवों और दानवों के चित्र बने हुए थे। दमयन्ती के अत्यन्त निर्मल शरीर में वे सभी प्रतिबिम्बित होते थे। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव माया द्वारा उसका आच्छिन्न कर रहे थे।

कृतायागितच्छायाम्—मणिमय दर्पण में उसका रूप प्रतिबिम्बित था। वह दर्पण चन्द्रमासदृश था। ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीडित चन्द्रमा पर दया कर अपनी छायामात्र समर्पित की थी।

इस अनुच्छेद में कल्पना की बहुलता है। इसमें दमयन्ती के स्वरूप की अनेकानेक समीप की सामग्री-बाहुल्य का परिचय अधिक मिलता है। ]

इक्षणामृतदालाकामवल्लोम्य च तामातिहर्षविस्मयकोतुकोत्तानित-  
चक्षुश्चिन्तितवाहनम् ॥

नेत्रों के लिये अनृतशलाका सदृश उस दमयन्ती को देख कर प्रसन्नता, आश्चर्य और लज्जा से जीर्ण लडा कर मैंने सोचा—

इयं हि—

स्मरराजराजधानी मङ्गलवल्लमी विल्लामविहगानाम् ।

शृङ्गाररङ्गशाला हरति न याला मनः वस्य ॥ २० ॥

“सम्राट् कामदेव की राजधानी, विल्लाम रूप पक्षियों का मङ्गलमय स्थान और शृङ्गार की रङ्गमणि यह वाला जिसके मन का हरण नहीं करती ॥ २० ॥

[ राजधानी उन्मृष्टम स्थान में बनायी जाती है। काम तो ऐसा राज है जिसका शासन पूरे ब्रह्माण्ड में माना जाता है। ब्रह्माण्ड-शासक काम भी अपनी राजधानी दमयन्ती को ही माना है। हाव भाव आदि विलास ही पत्नी है और उन विरास विहगमो का शासस्थान दमयन्ती है। शृङ्गार की तो वह नाट्यशास्त्र है ॥ २० ॥ ]

अपि च—

दग्धो विधिर्विधत्तं न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि ।

इत्यपवादनयादिव हरिणाक्षी 'वेधस्ता विहिता ॥ २१ ॥

दग्ध इति ॥ दग्धदान्दो निन्दार्थं । दग्धो निग्धो विधि ( यत ) सर्वगुणपरिपूर्णं कमपि जनं न विधत्ते इति योऽपवाचपवाद् । तन्नयादिव 'तेनासौ सुन्दरी विहिता' तेन विधिना अपवादो द्विजनेन । असाविति सापाद्रष्टा । सुन्दरीति समप्रगुणसौन्दर्योपेता । अतस्तस्यां मृष्टायै स्वप्नुरपवादो न भवित्प्यतीति । 'हरिणाक्षी' इति पाठस्तु अस्मिन्नात्रसौन्दर्यार्थं न समप्रगुणसुन्दरतां वक्ष्यीदुपपत्त्यापरतया निर्वाहः ॥ २१ ॥

"एतन्नाम्य विधाता किसी को भी सभी गुणों से सुन्दर नहीं बनाता है" मानो इसी निन्दा के भय से उसने इस सुन्दरी का निर्माण किया ॥ २१ ॥

[ हरिणाक्षी पद यहाँ सुन्दरी इस सामान्य अर्थ का वाचक है, क्योंकि उसके विशेष अर्थ को ही लेने पर दमयन्ती के केवल नेत्रों की ही प्रशंसा संभवती, यदि तो उसे यहाँ सभी गुणों और सभी अङ्गों से सुन्दर बताने की चेष्टा कर रहा है ॥ २१ ॥ ]

किं चान्यत्—

लावण्यपुण्यपरमाणुदलं तदन्य-

दन्य. स चापि निपुण. खलु कोऽपि वेधाः ।

येनाद्भुता कृतिरियं विहिता विशिष्ट-

कार्येण कारणविशेषगुणोऽनुमेयः ॥ २२ ॥

ल व'देति ॥ येन विरूपमलावण्यदलपाटवेन वेधा दमयन्तीं सृष्टवान् । तदलपाटवमन्यम् । वेधाश्च । दलपाटव वेधाश्च अगस्मिन्निग्विलस्यगवित्यर्थः । तद्द्वयमपि विशेषपर्याह—वेनेत्यादि ॥ येन दलपाटवेन वेधया चेति ज्ञेयम् । नत्रार्थो हेतुमाह—विशिष्टेत्यादि ॥ २२ ॥

सौन्दर्य के वे परमाणुदल कुछ दूसरे ही हैं और वह निपुण ब्रह्मा भी कोई दूसरा ही है जिसके द्वारा यह विशेष कृति निर्मित हुई है, क्योंकि विशिष्ट कार्य के ही द्वारा कारण के विशेष गुणों का अनुमान किया जाता है ॥ २२ ॥

[ परमाणु पूज्य से ही सृष्टि होती है। जिन परमाणुओं से स्मार के लोग बनाये जाते हैं उनकी अनेका कुछ मित र्थ के परमाणुओं से दमयन्ती की सृष्टि हुई है। जो सामान्य ब्रह्मा लोगों की सृष्टि करते हैं उनकी अपेक्षा वह कोई दूसरे ही ब्रह्मा हैं जिन्होंने दमयन्ती की सृष्टि की है। दमयन्ती सबको अनेका विनश्यत है अतः उनके कारण भी विनश्यत होते ॥ २२ ॥ ]

एवं विचरन्त्यन्ते यापि मां पुष्कराशम्भिनमुचिन्सर्त्तनेन मनाम्-  
शक्तिरत्नपराकन्दलोकमिन्दकगोत्पलमथलोचय स्वागतप्रशान्तरम्  
‘ज्यो यद्दो कालाद्रमून्नुद्रमातमद्योदयोतिनिमिष तमन्त्राण्टपिण्डीकृं  
कुण्डितम् . अकाण्डाडमरतिरसन्नविकामोन्सद्य इयामवत्सरित्सं-  
गनोपलस्यवतविभाग . चिगात् संपन्ना सल्लगना दक्षिणा द्विगियन् .  
उचिष्ठित इव सहाद्रिः, अमृतश्रवादिन् इत्येजोचिनेऽयं जन’ इत्यभि-  
धान ‘पर्वतक, कश्चित्कुशाली परवलदलदागनलो नल’ इति स्मित-  
सुग्धनधुरया गिरा सनभापत ॥

प्रमिति ॥ ‘समराज-’ इत्यादिपद्यप्रयेणैवसूहमान पुष्कराशेन विवेदित मा ‘हे पर्वतक, कश्चित्कुशाली परमैन्वदावानलो नल’ इति वचनेन दमयन्ती मरमाभि-  
तवती। द्वावानलोपमानेवागमनोऽपि विरहमगतापहेतुत्वं नलस्य व्यनक्ति। मना-  
शक्तिनेत्याद्यवलोवनक्रियाविनीयमम् ॥

इस तरह मैं सोच ही रहा था तब तक वह भी पुष्कराश द्वारा मेरे आगमन की सूचना पाकर पयोविन शीघ्रता से अपनी अद्भुत सहाय शक्ति को शीघ्र घुमाकर मुझे देती। शक्ति को घुमाने के कारण उसके कानों में लगे हुए कर्णद्वेष हिक गये थे। स्वागत के बाद, “वाह! बहुत समय के बाद आज सुन्दर प्रभाव हो गया है। अन्धकार की राशि से घिरा हुआ कुम्भिन नगर प्रकाशित मा हो रहा है। नदी-संगम के समीप की वनस्पती अतमय में प्रदुल्लित बसन्तोन्नाथ का उत्सव मना रही है। बहुत दिनों के बाद दक्षिण दिशा शुभ लक्षणा से उन्नत हुई है। सत्य पर्वत आ सा गया है। मामी अमृत-धारा में सिक्त होने के कारण मैं पुनः उन्नीविन हो रही हूँ।” यह कह कर, “पर्वतक, सब सैन्यद्रव-  
के लिये दवानल महाराज, नल कुशालदुर्वक तो हैं न ?” इन तरह मुत्कुगती हुई अत्यन्त सुन्दर वाणी में बोली।

अहमपि प्रपन्थ यथोचितमनन्तरमनित्वरितसखीजनोपनीतमास-  
नन्ध्यान्ध देवेन प्रद्वितानि ताव्याभरयोपायनान्मुपात्तैवम् ॥

मैं भी प्रणाम करने के बाद सुखियाँ द्वारा शीघ्रता से लाये हुए उचिन आनन पर बैठ कर बाप के भेजे हुए उन भूगणोपहारों को प्रस्तुत किया।



आवरेण तथा गृहीतेषु तेषु, बहुमते मयि, प्रकान्ते त्वद्गुणग्रहण-  
गोष्ठीव्यतिकरे, नर्मसुपात्तापलीलयातिक्रामति स्तोत्रकालकलापे,  
पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

सम्मान के साथ उन्होंने उन्हें ग्रहण किया। मुझे भी सम्मानित किया।  
आप के गुण गान का प्रसङ्ग छिट गया। मधुर मुख सबाद नीच में कुछ  
समय व्यतीत हो रहा था, तब तक पुष्कराक्ष बोला—

देवि, विज्ञापयामि यद्यभयम् ॥

‘देवी यदि आप अभय दें तो सूचित करें।

एवमनुश्रुतमस्माभिः 'किल सकलनाम्निनायकपुरन्दरपुरःसराः  
मयंऽपि लोकापालास्वामिभिलषन्तोऽन्तःकरणारण्यलग्नमद्मदावानला-  
नश्रमायान्तमभ्यर्थितवन्तो यथा महानुभावा भवन्ति हि भयादृशाः  
परोपकारव्रतधर्माणः, तद्देव प्रार्थ्यसे म्यप्रयोजननिरयेक्षेणत्वय्यात्मदर्थं  
दमयन्ती चरणीया, इति ॥

हम लोगो ने यह सुना है कि समस्त स्वर्गवासियों के नेता, इन्द्र  
आदि सभी लोकपाल आप को चाह रहे हैं। अपने अन्तःकरण रूप अरण्य  
में लगे हुए काम-दावानल ( वनाग्नि ) से जलने हुए लहाराज नल जब ला रहे  
थे तो देवताओं ने निवेदन किया—‘आप ही जैसे महानुभाव परोपकारव्रत  
धारण करते हैं। अब यही निवेदन है कि आप अपने प्रयोजन की अपेक्षा न  
कर हम लोगो के ही लिये दमयन्ती को चुनें।’

तद्देवि, देवदूतकार्येणारातो निपथेश्वरः ॥ पृच्छतु वा देशी पर्वत-  
कम् ॥

देवी। अब ( आप को विदित हो कि ) महाराज निपथेश्वर ( नर )  
दूनकार्य से यहाँ आये हुए हैं। अथवा आप पर्वतक में ही पूछें।’

इति श्रुत्वा पुष्कराक्षभाषितम्, ईषद्विषादविलक्ष्मिमतम्भेरां दृशं  
मयि साचि संचारितवती ॥

पुष्कराक्ष की इस बात को सुन कर, विषाद के कारण उदास होकर  
अत्यन्त स्वल्प पुन्नी हुई आँखों को मेरी ओर घोडा पुमायी।

मयापि सद्वादिते पुष्कराक्षवचने तस्मिन्, आकस्मिककठोरकाष्ठ-  
प्रहारव्यथामिवानुभवन्ती, विन्दतु योणाकणो मामुर्धमितीव प्रति-  
पन्नमीनता, लभेतां कर्णात्पले परभागमितीव मुकुलिननयनां,

प्राप्नोतु शोभां मुक्तावली शीतिजालमिनीव मुक्तस्मिता, गच्छतु च्छायां  
कण्ठावलिमिनी चम्पकमालेयमिनीशङ्कीकृतपैश्या लभतां लीला-  
कमलमिदं सौभाग्यमिनीवोच्छ्वसितप्रदना, सा क्षणमभूत् ॥

जब मैंने भी पुष्करास की उस बात का समर्थन किया तो उसे अचानक  
बंदोर हाथ-प्रहार की तरह वेदना का अनुभव हुआ। “बीगा की ध्वनि अब  
माधुरी धारण करे”, मानो इसी सम्प ने उसने मौन धारण कर लिया।  
“बाना में लगे हुए कमल ही अधिक शोभा प्राप्त करें”, मानो इसी से अपने  
बाँव बन्द कर ली। “मुक्ता की माला वा किरण-मुञ्ज शोभा का अनुभव  
करे”, मानो इसी लिये मुक्ताएँ छोड़ दिया। “कण्ठ में शटकती हुई चम्पक की  
माला ही शोभाशील बनी रहे”, मानो इसी लिये मलिनता धारण कर लिया।  
“लीला-कमल ही सौन्दर्य प्राप्त करें”, इसी लिये मुख की वेदना-व्यग्र कर  
लिया। कुछ क्षणों तक उसकी यह स्थिति बनी रही।

[ जब दमयन्ती दोल्की थी तो बीगा की ध्वनि उसकी ध्वनि के सामने  
फीकी लगती थी। जब वह मौन धारण कर लेती तो बीगा की ही ध्वनि को  
लोग अधिक मधुर समझते। उसके नेत्रों के समस्त कमलों की शोभा अल्पन्तन्मून  
थी। जब उन्हें बन्द कर ली कमल ही शोभाशाली बने। जब वह मुस्कुराती  
थी। उसकी मुस्कुराहट की कान्ति के समस्त मणियों की कान्ति फीकी पड़  
जाती थी अतः मुस्कुराहट बन्द हो जाने पर मणि ही कान्तिशील रह गये।  
उसके मलिन हो जाने पर ही चम्पक-माला की शोभा-सम्पन्न माना जा  
सकता था। वेदना के कारण उसके मुख के विवर्ण हो जाने पर ही लीला  
कमल को सुन्दर माना जा सकता था।

नल के दोर्लभ कार्य-निमित्तक जागमन सुन कर वह अवर्णनीय व्यथा का  
अनुभव करने लगी। मुख विवर्ण हो गया। बाँवें बन्द हो गयीं। बानी बन्द  
हो गयी। शरीर हतप्रभ हो गया। ]

तत्र च न्यनिकरे—

विगलितद्विलासमपरसमाहस्मिकजातभङ्गशृङ्गारम् ।

मूकितमिव मूर्च्छितमिव मुद्रितमिव भवतमिदमासीत् ॥ २३ ॥

उसकी यह दशा देखते हुए—

विशासहीनता, रसदून्यता तथा अकस्मात् शृङ्गार-भङ्ग के कारण वह  
भवन मूक की तरह, मूर्च्छित की तरह तथा संकुचित की तरह प्रतीत हो  
रहा था ॥ २३ ॥

राजा तु ‘पर्वतक, ततस्त्वतः’ ॥

राज—पर्वतक, इसके बाद क्या हुआ ?

पर्वतकोऽपि 'देव, श्रूयताम् ॥

वर्षतक—महाराज, सुनिये—

अतः परम्—

इपन्नि चूतकुन्दकुडमलसहस्रदन्तप्रभामञ्जरी-  
शोचिष्णुस्मिनमन्थरां मयि दशं सचारयन्ती मनाक् ।  
अस्यन्ती करपट्टमभृङ्गमधरे यन्धूकबुद्धथागतं  
वारंवारमरुम्पयत्तरलितस्तोकायतंसं शिर ॥ २४ ॥

इसक बाद—

स्वल्प नि सृज कुन्द पुष्प की काञ्चिहा सदृश रातो की कान्ति-मञ्जरी से मनोहर प्रतीत होती हुई, मुस्कुराहट से गम्भीर आँसु को थोड़ा मेरी ओर फेरती हुई, करकमल के भ्रमर का जो जपाकुसुम ( बड़हूल वा पुष्प ) समझकर अधरो पर आ गया था, हटाती हुई, कर्ण-पुष्प के स्वल्प कम्पन के साथ शिर को बार-बार कम्पित की ॥ २४ ॥

[ भ्रमर का स्वाभाविक आकर्षण कमल की ओर होता है । दमयन्ती के हाथ को कमल मान कर वह उसके हाथों पर पहले आया था । बाद में जब हाथ से हटाया गया तो होठों को बड़हूल वा फूल समझ कर उस पर बैठ गया । फिर वहाँ से उसे हटाना पड़ा । अमृ क्षेपण का घनृपत्यान्त रूप अस्यन्ती है ॥ २४ ॥ ]

ततः परम् । बारितवारविलासिनीचाटुयचनरुमम् , आकम्बिक-  
विस्मयविस्मृतस्मितविलासम् , अतनुतुद्दिनाहतनवनलिनदलदीन-  
दौर्घक्षणम् , उष्णसरलश्वासारम्भविषमविषादविच्छादिताननेन्दु-  
द्युति, तस्या स्थानकमवलोक्य सखेर्द सप्तीजनेन 'देवि, भयत्रि-  
श्वसपवनपरम्परया पर्यस्त इवास्ताचलद्वस्तायलभ्यनमयमाश्रयनि  
भगवान्भानुः, इयं च सौभाग्यशालिनि नले निलोनचित्तायास्तघ  
लोकपालपार्थिवप्रार्थनाध्यतिकरमिममाकर्ण्य लज्जितेव पिहितथवणा  
दूरे भवति वासरर्थाः, इमानि निश्चलनिलोनमधुपनिपीयमानगर्म-  
मधूनि सद्बोचयन्ति लोचनानीच कमलानि, संविभागीकृतविषादा इव  
विलासवयस्याः सरसीसरोरुद्विष्यः, इमाश्च 'कथमस्मत्पतयो मनुष्य-  
वन्यकां कामयन्ते' इतीर्ष्याशोकयशादिव दिशः श्यामायन्ते, तत्प्रभ्य-  
तामयं पर्वतक.' इत्यभीधीयमाना कथंकथमपि चिन्तान्तरापतिरस्कृता-

नृनालापनीपदुत्रमय्य मुखं समुल्लसदशोऽपलवानुकारि करनल-  
नुत्तार्नाकृत्य मामविस्मरणीयसमानदानावस्ताने व्यसर्जयत् ॥

रुः परादिति ॥ तस्या स्थानकमवस्था । लज्जितेव विहितध्वजा । ध्वजं  
नवत्रं श्रोत्रं च ॥

इसके बाद बाराङ्गनाओं के चाटुकारिता-पूर्ण वचन-प्रसङ्ग से रोक्वा  
दी । अचानक आये हुए विस्मय के कारण हास्यविद्यास को भूत गयी ।  
बहुत अधिक हिमसात से मारे गये नवीन कमलदल की तरह उसकी बड़ी-  
बड़ी जंघों दैन्य प्रदर्शन करने लगीं । गरम तथा तीव्र निःश्वाशों को संचालित  
करने वाले अत्यधिक विषाद से मुख की कान्ति मयित पड़ गयी । उसकी  
इस स्थिति को देखकर बड़े खेद के साथ सखियां बोलीं—

“देवी आपके श्वास-पवन के शक्ति से तन्मग्नताते हुए भगवान् मूर्धं  
उत्पने हाथों ( किरणों ) से अत्ताचन का अवलम्बन ले रहे हैं । सीमाद-  
शात्री नल में अनुरक्त रहने पर भी तुम्हारे सम्बन्ध में लोकाओं की प्रार्थना  
का प्रसङ्ग सुनकर मानो लज्जा का अनुभव करती हुई यह दिन-लक्ष्मी कानों  
को बन्द कर दूर चली जा रही है । कमहीन, गड़े हुए तथा मधु पीते हुए  
अमरों से युक्त ये कमल मानो अपनी आँखें बन्द कर रहे हैं । हेतु की छापी ये  
कमलिनियाँ आपके विषाद में भाग ले रही हैं । ( मुकुलित होकर खेद व्यक्त  
कर रही हैं । )

“हमारे पति मनुष्य-कन्या की कामना कर रहे हैं ।” मानो इस  
ईर्ष्या और शोक से ये दिगार्यें काली पड़ती जा रही हैं । अतः इस पर्वतक  
को भेज दीजिये ।” इतना कही जाने पर किसी किसी तरह चिन्ता की  
व्यवधानता के कारण वाग्बिभोर को छोड़े हुए मुख को कुछ ऊपर उठाकर  
उल्लासपूर्वक अशोक पल्लव का अनुकरण करने वाले हाथ को उठाकर न दूतने  
योग्य प्रतिष्ठा देकर मुझे विदा की ।

विसर्जितश्च तथा तत्कालमाविर्मथद्विपाद्वशसंपन्नमौनया न पुनः  
संभाषितोऽस्मि, न वीक्षितोऽस्मि, न पृष्टम्, न संदिष्टं किमपि, केवलं  
चलन्नेत्रविभागप्रान्ननरत्सारया दृष्ट्या समवलोन्य समुत्तानित-  
करकमलसंश्रयैव कथमपि संप्रेषितः ‘कष्टम्’ इति चिन्तयन्नलसात-  
मैरसमञ्जसपानिभिः पश्चिममुखैरिव पादैरिहायातवान् ॥

तत्काल उत्पन्न विषाद के कारण मौन हो गयीं । मुझे विदा देते सनप  
न बोली न देखी, न पूछी और न कुछ सन्देश दी । केवल चञ्चल नेत्रों के एक  
भाग में तैरती हुई कनीनिका वाली दृष्टि से देखती हुई अपने करकनकों को

उठाकर सकेत से ही किसी तरह भेजी। "बड़े कष्ट की बात है।" यह सोचता हुआ थलसाये दूये तथा असमग्रजस में पड़े हुए पीड़े ही की ओर उन्मुख पैरों से यहाँ आया है।

[ यदि मैं इधर की ओर आ रहा था लेकिन वहाँ के दुःख की स्मरण कर मेरे पैर उधर की ही ओर उन्मुख थे। ]

तद्देव दमयन्ती देवदूतकार्याङ्गीकरण-यत्तिकरमिममकार्ण्यं परं  
विपादमापद्यत ॥

धीमन्, "आप देवताओं के दीर्घ कार्य को स्वीकार कर लिये हैं", इस प्रसङ्ग को सुनकर दमयन्ती बहुत दुःखी हो गयी है।

अन्यच्च । मन्ये च—

परिज्ञानच्छायाविरहितसनिद्रदुमवनं  
पनत्पङ्कोभूतध्वनितशकुनोन्नादितनमः ।  
वियोगव्याकृतादुपनदि रुदच्चक्रमिथुनं  
विपीडन्त्यां देव्यामिदमपि विपण्णं जगदमन् ॥ २५ ॥

ओर मैं समझता हूँ—

दुःख में पड़ी हुई देवी के छाया पूरा ससार ही दुःखी हो गया है। छायाहीन एव मलिन वृक्षों का वन निद्रित सा हो गया है। नीचे की ओर आते तथा चिल्लाते हुए पक्षिबन्ध पक्षियों की आवाज से आकाश गुञ्जित हो उठा है। वियोग की व्याकुलता से नदीतटपर चक्रवाकों का जोड़ रो रहा है ॥२५॥

इत्यभिधाय स्थिते पर्वतके तत्कालोचितमिममेवार्थं समर्थयन्-  
वसरपाठकः पपाठ ॥

यह कह कर पर्वतक के मौन हो जाने पर तत्कालोचित इसी अर्थ को समर्पित करता हुआ अबसरपाठक ने पढ़ा—

'कन्यामन्यानुक्तं कथममृतभुजो मानुषी वामयन्ते  
तन्वङ्गीः सस्मितास्थाः स्मरदिवशदशो नाकनारीर्त्रिहाय ।  
वक्तुं पेदादिवैतदिनपतिरधिकं प्रोडयेवाधनम्रः  
कोपेनेवाङ्गणांशुः प्रविशति वरुणस्याङ्ग्यं पश्चिमाधिम् ॥२६॥

कन्यामन्येति ॥ वक्तुं खेदात् इत्यस्योपयोगि 'वरुणस्याङ्ग्यम्' इति । वाचो  
हि ध्रोतारमपेक्षन्ते ॥ २६ ॥

"कृश शरीर तथा कामाक्ष्य नेत्रों वाली मुहुराही हुई स्वर्ग की रमणियों को छोड़कर अमृत पान करने वाले देव दूसरे में अनुरक्त मनुष्य-देहाारिणी

सन्ध्या के लिये क्यों लाजायित हैं ?" वेद के कारण मानों इस बात को कहने के लिये अधिक लज्जा के कारण मरु तथा शीघ्र के कारण लाल किरणों को धरा दिये हुए भगवान् सूर्य वरुण के घर पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर रहे हैं ॥ २६ ॥

[ देवताओं की अनुचित कामना से भगवान् सूर्य को अत्यधिक क्रोध हुआ है। क्रोध की बात किसी ने कह देने पर कुछ झुका हो जाता है। इसीलिये वरुण के घर भगवान् सूर्य जा रहे हैं। वरुण भी एक लोकपात्र हैं। उन्हें भी सम्माना है जिससे वे इस अनुचित कार्य से अपना मुक्त मोड़ लें ॥ २६ ॥ ]

राजा तु तदाकर्णयन्, अद्यनीर्य सांधशिखरतल्लाह्वीलापद्मचारेण  
संध्यावन्दनविधियिरामोपविष्टजपद्विजजनसनायसैरुते सरित्सङ्गमे  
सन्ध्यादिकमकरोत् ॥

राजा ने तो यह सुनते ही प्रासाद के ऊपरी भाग से उतर कर धीरे-धीरे पैदल ही चढ़कर सन्ध्यावन्दन करने के बाद बैठ कर जप करने हुए ब्राह्मणों से सनायित उस वायुसामयों भूमिवाले नदी-संगम पर सन्ध्याकालीन दैनिक कृत किया।

ततश्च पश्चिमायां दिशि स्फुरति सन्ध्यारागे, अधिरासवपिपा-  
सया कालवेतालमण्डलीव प्रधावमाना, त्रिभिः स्रोतोभि प्रवृत्तया  
गङ्गाया सह संहर्षादिवानेकैः स्रोतसां स्वर्क्षर्गगनतल्लमिव प्लाव-  
यन्तो कालिन्दोश्च, व्यजृम्भत तिमिरपटलपङ्क्तिः ॥

इसके बाद पश्चिम की ओर सन्ध्या की लालिमा के लिये रहते पर रत्नुरा की प्लाव से बीटती हुई काल रूप वेताल-मण्डली की तरह दौड़ती हुई, तीन धाराओं से बहने वाली गङ्गा के साथ मानों प्रतिद्वन्द्विता के रूप में एक चहल धाराओं से आकाश को निम्न करती हुई यमुना की तरह अन्धकार राशि टण्डित हुई।

[ अन्धकार राशि की दो चीजों से सन्तुष्ट किया गया है। एक है काल वेताल-मण्डली और दूसरी है यमुना। सन्ध्या के समान आकाश लाल हो गया है। अन्धकार-राशि उस लालिमा को पीती जा रही है। अब वह रुधिर की मुखा पीती हुई काल वेताल-मण्डली की तरह ला रही है। वेताल-मण्डली भी काली है और लाल रुधिर आरुव को पीती है।

यमुना की धारा नीची होती है। गङ्गा के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता की कल्पना कवि ने की है। गङ्गा यदि मर्त्यलोक, पाताल तथा आकाश

की तीन धाराओं से अपनी महिमा व्यक्त करती है तो यमुना अपनी धाराओं से सम्पूर्ण गगनमण्डल को ही निभान कर अपना प्रभाव दिखा रही है । अन्धकार-गति रूप यमुना आकाश को आच्छादित कर रही है । ]

अनन्तरं च चन्द्रमस्ता गर्भिणी पौरुन्दरी दिक्केनकीपुष्पपत्र-  
पाण्डिमानमगमत् ॥

अनन्तरमिति ॥ गर्भिणी हि केनकपत्रवरपाण्डुनी धत्ते ॥

और उसके बाद चन्द्रमा मे गर्भित इन्द्र ( पूर्व ) की दिशा केवड़े के फूल के पत्ते की तरह पीली पड़ गयी ।

[ संस्कृत साहित्य में इन्द्र को भी बहुधा जार की तरह वर्णित किया गया है । उसकी पूर्व दिशा को भी व्यभिचारिणी के रूप मे बहुधा चित्रित किया गया है । कभी वह सूर्य को देखकर रागपूर्ण हो जाती है और कभी चन्द्रमा से गर्भित होकर गर्भिणी नायिका की तरह केतकी-पत्र सदृश रंग धारण कर लेती है । यहाँ तात्पर्य यही है कि चन्द्रमा उदित हो गया है । अन्धकार कुछ मलिन हो गया है । पूर्व की ओर कुछ प्रकाश की आभा लक्षित होने लगी है । ]

उल्लास च चण्डतरमास्तान्दोलितोदयाद्रिद्रुमकुसुमकिञ्जल्क-  
रेणुराजिरिष कपिशा शशाङ्क्यतिः ॥

चण्ड वायु के झोंकें से कम्पित उदयाचल के वृक्षों के पुष्पराग के धूलि-  
समूह की तरह चन्द्रमा की कपिश रंग वाली कान्ति उल्लसित हुई ।

अथ क्रमेण पूर्वपयोधिपुलिनाद्राजहंस इव गगनमन्दाकिनीमुच्य-  
लितः केसरिकिशोर इवोदयगिरिगुहागह्वरात्तिमिरकरियूथपपृष्ठलग्नः,  
स्फुटिक्रमयः पूर्णकुम्भ इव जगद्विजयप्रस्थानस्थितस्य मङ्गलाय मकर-  
केतोः केनापि सज्जोक्तः, श्रीपण्डपिण्ड इव मण्डनाय महेन्द्रदिशा-  
हस्तदन्तेषोपलालिनः, शङ्खिकापुष्पस्तयक इव गगनधिया ध्वषणे  
संयोजितः, कुम्भ इवैकः प्राचीवनविहारिसुरफरीन्द्रस्य प्रकटता गतः,  
वासवविरामयस्तीमुल्लूय कन्द इवोद्भूतो निशाश्वरिक्रया, पाण्डु-  
पुष्पाक्षतगुञ्जापुञ्ज इव सिद्धयभूमिदपाचलचतुष्पथे विरचितः,  
गण्डशैल इव कैलासशिखरास्तुटित्थागतः, सीमन्तमौक्तिकमिव पूर्व-  
दिङ्मुपस्य, सितातपत्रमिव पूर्वाशाधिपतेः पुरन्दरस्य, क्रीडामौक्तिक-  
कन्दुक इव कालकुमारस्य क्षीरदिण्डीरपिण्डसदृशो दृष्टिपथमव-  
ततार तारापतिः ॥

अद्वैत वनगहने हि विचरतः करिणः प्रायेणैक एव ह्यम्भस्थरविभागो  
उपपद्यते । पान्दुगुञ्जा हि मङ्गलाय स्युः । उदयाचलदात्यसुधुते सोमापमनसूचना ।  
श्रोत्राय मौक्तिकवन्दुकः ॥

इसके बाद प्रथम में पूर्व समुद्र के तट से आकाश गंगा की ओर प्रस्थित  
राजहंस की तरह उदयाचल की गुफाओं से निकल कर अन्धकार रूप हापियों  
के मूय के पीछे लगे हुए सिंह के बल्ले की तरह सम्पूर्ण विश्व की विजय के  
निम्न प्रस्थित कामदेव के मङ्गल के लिये किसी के द्वारा समायें गये स्फटिक  
मणि के बने हुए पूर्णचन्द्र की तरह, इन्द्र दिशा ( पूर्व ) के द्वापा के आलिङ्गन  
से सम्मानित अश्वत्थार के लिये लिये गये चन्दन के गोले की तरह, आकाश-  
स्वामी द्वारा पहने गये शङ्खनामक पूज के गुच्छे की तरह, पूर्व दिशा  
रूप जर्म में विहार करने वाले देव राजेन्द्र ऐरावत के एक कुम्भस्थल की  
तरह भक्त, दिवावसान रूप लता की काट कर रात्रि रूप किरातिनी द्वारा  
निकाले गये कन्द की तरह, मिडि बधुओं द्वारा उदयाचल के चौराहे पर रखे  
गये पीले पुष्प, अश्वत्थ तथा गुञ्जा की राशि की तरह, कैलास की चोटी से  
हृत कर आये हुए गन्धैक की तरह, पूर्वदिशा के मुख के सीमन्त मौक्तिक  
( शिरोभूषण ) की तरह, दूध के फेन गोले की तरह चन्द्रमा दृष्टि-रूप में उतरे ।

[ यहाँ उदयकालीन चन्द्रमा के उदय से उपमान दिये गये हैं । चन्द्रमा  
बसन्ती सन्तरी के कारण राजहंस की तरह लाजा था । पूर्व दिशा में उदित  
होकर शुभ्र आकाश की ओर बढ़ रहा है अर्थात् पूर्व समुद्र से चलकर आकाश  
गंगा की ओर सम्मुख राजहंस की तरह लगता है । सिंह का बन्धा जैसे  
काले हापियों को सदेवता है वैसे नवोदित चन्द्र अन्धकार को सदेव रहा है । ]

तदनु च—

मदनमिति युधानं यौवराज्येऽभिपिञ्चन्

कृतकुमुदविकासो भासयन्दिङ्मुखानि ।

इमममृततरङ्गैः प्लावपञ्चोपलोकं

गगनमवजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्कः ॥ २७ ॥

मदनमिति ॥ यौवराज्याभिव्यक्त्यनेककार्यव्यग्रमया मन्दमन्दावगाहः ॥ २७ ॥

और इसके बाद—

मदन सुवक्त्र की सुवराज-पद पर अभिषिक्त करता हुआ, कुमुदी को  
विकसित कर दिशाओं को उद्भावित करता हुआ, सम्पूर्ण जीवलोक को  
जन्तु लहरों में नहलाता हुआ चन्द्रमा धीरे-धीरे आकाश का भवगाहन कर  
रहा था ॥ २७ ॥



तदनन्तरम् , आप्लावितमिव मुक्तमर्यादेन दुग्धवाधिना, सिक्तभू-  
भागाङ्गणमिचामन्दचन्दमाम्बुचुलटाभि, विल्लितदिग्भक्तिकमिव सान्द्र-  
सुधापङ्कपिण्डितैः, पुरितमिवोत्सर्पिकर्पूरपांसुवृष्टया, प्रविष्टमिथ स्फा-  
टिकमणिमहामन्दिरोदरदरीम् , उत्प्लवमानमिव द्रवीभूततुहिनाचल-  
मद्वाप्लवेन, भुवनमासीत् ॥

तत्पश्चात् अपनी सीमा से बाहर तक उमडने हुए दुग्ध सागर द्वारा  
हुवाये गये की तरह, पर्याप्त चन्दन मिश्रित जल के छोटे से सींचे गये  
भूभागवाले आँगन की तरह, गाढे चूने के पङ्क के लोने से लेपी गयी  
दिग्भक्तियों की तरह, सुगन्धित कर्पूर धूलि की वृष्टि में भरे गये की तरह,  
स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन के मध्यभाग की तरह, पिपले हुए  
हिमालय की विशाल बाढ़ से झुबते हुए की तरह संसार हो गया था ।

[ चन्द्रोदय होने पर पूरा संसार सफेद-सफेद दिखायी पड रहा था ।  
ऐसा प्रतीत होता था कि दुग्ध सागर अपनी सीमा से बाहर आकर समूचे  
संसार को निगमन कर रहा था । इसीलिये तो सारी चीजें सफेद दिखायी पडती  
थीं । ऐसा लगता था कि गाढे चन्दन के लोने बनाकर समस्त दिशाओं की  
भित्तियों को लीप ( लेप ) दिया गया था । साधारण चूने के पानी से उतनी  
सुभ्रता नहीं आ सकती थी । अतः चूने के पङ्कल गोले से लेप लगाने की  
बात कही गयी है । ऐसा प्रतीत होता था कि संसार कर्पूर की धूलि की वृष्टि  
से भर दिया गया था । स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन से तात्पर्य है  
आधुनिक सभागृह ( Hall ) से । केवल स्फटिक से ही बने हुए विशाल भवन  
का भीतरी भाग जैसा सुभ्र दीखता है उसी तरह संसार दीखता था । संसार  
की सुभ्रता को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि हिमालय के बर्फ के गलने  
से बाढ़ आ गयी हो । हिमालय जैसा सुभ्र दीखता है वैसा ही दृश्य पूर्ण  
संसार का हो गया था । ]

ततश्च —

कैलासायितमद्रिभिर्विष्टपिभि. श्वेनातपत्रायितं  
मृत्युङ्गेन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं चारिभि. ।  
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभि' शहायितं धीफलैः  
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जात शशाङ्कोद्ये ॥ २८ ॥

पोढी देर के बाद—

चन्द्रमा के पूर्णतः उदित हो जाने पर सभी पर्वत कैलाश गिरि की तरह  
लगने लगे । कुछ श्वेत छाते की तरह लग रहे थे । मिट्टी के पङ्क दही की तरह

लगने लगे । समुद्र का जल दूध की तरह प्रतीत होने लगा । लवार्ये मुक्ता की भाँसा की तरह दीखने लगीं । बैल के फल शङ्ख की तरह लगने लगे । राम और नगर श्वेत द्वीप सटस्य प्रतीत होने लगे ॥ २८ ॥

[ चन्द्र किरणों की अतिशय शुभ्रता से पूरा का पूरा सभार शुभ्र दीखना था ॥ २८ ॥ ]

अपिच—

सर्वेऽपि पक्षिणो हंसाः सर्वेऽप्यैरावता गजाः ।

जानाधन्द्रांशुभिः सर्वे रौप्यपुञ्जा शिलोच्चया ॥ २९ ॥

और भी विचित्र दृश्य हुए थे—

चन्द्रमा की किरणों से सभी पक्षी हंस हो गये थे । सभी हाथी ऐरावत हो गये थे । सभी चट्टानों की राखियाँ चंदी की राखि बन गयी थीं ॥ २९ ॥

अपिच—

सुधापद्मोपालिप्तेव वद्वेष स्फटिकोपलैः ।

विलीनहिमदिग्धेष मेदिनी ज्योत्स्नया कृता ॥ ३० ॥

और भी आश्चर्य यह हुआ कि—

चन्द्र रश्मियों के कारण ऐसा लगता था कि पृथ्वी चूने के पट्ट से लेप दी गयी थी, स्फटिक पत्थर में जूट दी गयी थी अथवा जमे हुए बर्फ से व्याप्त हो गई थी ॥ ३० ॥

अपिच—

सौधस्कन्धतलानि दीपपटलै रम्पेन पाण्डुध्वजा-

हंसाः पञ्चविधूननेन नृदुना निद्रान्तनादेन च ।

लक्ष्यन्ते कुमुदानि पट्पद्मैस्तैस्सर्पिगन्धेन च

क्षुन्यत्क्षीरपयोधिपूरसदृशे जाते शशाङ्कोदये ॥ ३१ ॥

[ जो पदार्थ स्वभावतः श्वेत थे उन्हें तो पहचानना कठिन हो गया । इनके रंग से तो उन्हें नहीं पहचाना जा सकता था । इनके भीतर कुछ विशेष गुण थे जिनके कारण वे किसी किसी तरह पहचाने जा सकते थे— ]

उमड़ने हुए शीतलापर की तरह चन्द्रमा के उदित हो जाने पर जट्टालिकामें दीप समूह के कारण, सकेत पताचार्ये रम्पेन के कारण, हंस पक्षों की फड़-फड़ाहट तथा निद्रा के अन्त में की गयी कोमल ध्वनि के कारण, भ्रमरो की गुनगुनाहट तथा फैलने वाली रम्पे के कारण कुमुद पहचाने जा रहे थे ॥ ३१ ॥

[ चन्द्रमा की शुभ्र किरणों में समस्त श्वेत पदार्थ विलीन हो गये थे । चूने से पुटे हुए मकानों पर यदि टिमटिमाने दीपक नहीं होते तो उन्हें समझना

कठिन था । सफेद पताकाये यदि फटफडाती नहीं तो उनका ज्ञान करना मुश्किल था । हस यदि पख नहीं फटफडाते और बोलने नहीं तो उन्हें भी समझना असम्भव था । गुन-गुनाते हुए भ्रमरो और फैलती हुई गन्ध के कारण कुमुद पहचाने जाते थे ॥ ३१ ॥ ]

तथाविधे च चन्द्रोदयप्रपञ्चे हठादुत्कण्ठयाभिभूयमानो निषध-  
नाथश्चिन्तयांचकार ॥

चन्द्रोदय द्वारा ऐसा प्रपञ्च खडा कर देने पर बलात् उत्कण्ठा से पराजित होते हुए निषध सम्राट् ने सोचा—

‘इतश्चन्द्रः सान्द्रान्किरति किरणानग्निपरुपान्  
इतोऽपि प्रोन्मीलत्कुमुदधनवायुर्विलसति ।  
इतः कादम्बानां ध्वनितमपि निद्रालसदृशा-  
मसह्य, सर्षोऽयं मनसिजमहिम्नः परिकर ॥ ३२ ॥

इधर से चन्द्रमा अपनी अग्नि सदृश तीव्र तपा धनी किरणे फेंक रहा है । इधर से खिलने हुए कुमुद वन की मन्द-मन्द हवा भी बह रही है । इधर निद्रा से अलसाई हुई आँखो वाले हसो की ध्वनि असह्य हो रही है । ये सब महाराज काम की महिमा बताने वाली सामग्रियाँ हैं ॥ ३२ ॥

अपि च—

इतो मकरकेतनः किरति दुर्निवारः शरा-  
नितोऽपि घयमाकुलाः कुलिशपाणिदत्ताक्षया ।  
तदेतदतिसङ्कटं यदिह कैश्चिदुक्तं जनै-  
रितो विषमदुस्तटी भयमितो महाव्याघ्रतः ॥ ३३ ॥

इधर से दुर्वार कामदेव बाणो को फेंक रहा है और इधर से वचपाणि इन्द्र द्वारा दी गयी आज्ञा के कारण व्याकुलता छापी हुई है । यह अत्यन्त सकट की स्थिति है । मेरी वही स्थिति है जैसी लोग कहने हैं—इधर भयङ्कर किनारा और उधर महाव्याघ्र से भय ॥ ३३ ॥

तदिदानीं किमिद्व कर्तव्यम्, कथं वा हास्येनाप्यवन्ध्यवचसाम-  
लह्वनीयः खल्वादेशो लोकपालानाम्’ इति चिन्तयन्नेकाकी पद्मधामेव  
विनिर्गत्य निजनिर्केतनात्समन्तादापतद्भिः शशाङ्ककिरणजालैः परि-  
जनैरिय परिदर्शितवर्त्मा कैश्चित्काललवैः कैलासकूटायमानाट्टालका-  
भोगभव्यं भीमभूपालमवनमवाप्य कन्यान्तःपुरं पुरंदरवरप्रदानादहृदय-  
मानरूपः प्रासादपालकैः प्रविशेश ॥

तो इस समय क्या करना चाहिये, अव्यय वाणी वाले लोकपालो की आज्ञाओ का उल्लंघन हँसी में भी नहीं करना चाहिये । यह सोचना हुआ अकेला पैदल ही अपने घर से निकल कर चारों तरफ बिखरने हुए चन्द्रमा के रश्मिपुञ्ज द्वारा नौकरो की तरह मार्ग-निर्देशन पाना हुआ घोड़े ही क्षणा में कैलास पर्वत के शिखरो की तरह ऊँचे प्रासादो के विस्तार से मनोहर राजा भीम के भवन को पाकर इन्द्र ने वर प्रदान की महिमा से प्रामाद रत्नो ( प्रहुरियो ) द्वारा न देखा जाता हुआ कन्या-निवास गृह में प्रविष्ट हुआ ।

[ परिजन जैसे स्वामी को चारों तरफ से घेरे रहन हैं, उनकी सुरक्षा का ध्यान रखने हैं और गन्तव्य मार्ग निर्देशन भी करन हैं जैसे ही चारा जोर से विकीर्ण होन वाली चन्द्र-किरणें रात में नल का मार्ग-निर्देशन सा कर रही थीं ।

प्रविश्य च दूराद्भिमुखागतेनानवरतदृष्टमानकृष्णागुरुधूपधूमवर्त्ति-  
नर्नकेन यहलयक्षकर्माम्बुसिक्तसौधस्कन्धसन्धिसंचारिणा गन्धयाहेन  
कृनाम्बुगन्धान इव, परिक्लम्य स्तोत्रकमन्तरम् 'इत इतो देवी वर्त्तते' इति  
गीतगोष्ठीस्थितसखीगीतज्ञकारेणाह्वयमान इव, यत्रास्ते दमयन्ती  
तत्सौधपृष्ठमारुढवान् ॥

प्रविश्य चेति ॥ कर्पूरकस्तूरिकाशीना चोदो यक्षकर्म ॥

जब वह वहाँ प्रविष्ट हुआ तो निरन्तर जगती हुई अगर बत्ती को नचाता हुआ पर्याप्त कस्तूरी तथा कर्पूर आदि के चूर्ण से मिश्रित जल से सींधि गये महान्धो पर भ्रमण करता हुआ, दूर से सामने की ओर आता हुआ पवन मानो उठ कर स्वागत कर रहा था । धूमता हुआ घोडा और भीतर की ओर गया तो गीत गोष्ठी में बैठी हुई सखियो की गीत ध्वनियो "इधर देवी हैं, इधर देवी हैं" मानो यह कह कर उन्हें बुला रही थीं । ( अनुमान लगाता हुआ ) उस महल पर गया जहाँ दमयन्ती रहती थी ।

आरुह्य च मनान्ध्रघडितोऽनुपलक्ष्यमाण इव, वेणुधीणाकणानुसारिणा  
कोमलकाकलीशयेण किनरीप्रमुखसखीनां गीतेन विनोद्यमानाम्,  
अलरुबल्लरीमध्यनिवेशितताराणुकारिमौक्तिकेन कञ्जलरुलङ्कितनय-  
नोत्पलपद्मपालिना मुखेन सचन्द्रगगनस्पर्धया भूतलमपि पूर्णोदिते-  
न्दुमण्डलमिवापादयन्तीम्, उच्चकुचमण्डलविलोलया सस्मरस्तपि-  
प्रहृगणपङ्क्तयेव द्वारलतया कृतकण्ठकन्दलाश्लेषाम्, ईपत्कपोल-  
पालि परानृशना चाटुकारेण वसन्तसमयप्रहितदूतेनेव कर्णलानेन  
कुसुममञ्जरीद्विनीयेन बालपल्लवेन विराजितवदनाम्, अच्छाहलै-

कस्तूरिकापङ्कपत्रभङ्गैर्भुञ्जद्वैरिव लावण्यामृतरक्षागनैरलंकृतभव्यभुज-  
शिखराम्, आसन्नभुवि विकीर्णैः पाण्डुपुष्पप्रकरैर्गगनादवतीर्य रूपा-  
लोकनकुतूहलिभिर्नक्षत्रैरिव परिष्णताम्,

अरुण चेति ॥ इंपक्वलोऽस्यास्तीति काश्ली । 'निषाद काश्लीसरो द्विशुभ्यु-  
त्सर्पणद्भवेत्' । कऽजलेन कलङ्किता कलङ्क हवाचरितवती नयनोरपलपक्ष्मपालि-  
यंत्र । कलङ्क हवाचरति स्मेत्याचरे किञ्चिन्पठे ॥ अष्टेति ॥ अमृतं हि भुजगै रचयते ।

वहाँ जाकर थोड़ी ओट में सहा हुआ जिससे कोई देख न सके । शुभ्र कान्ति से मण्डित, स्फटिक मणि से निर्मित, एक पथ्यङ्क पर सोयी हुई दमयन्ती को देना । किन्नर कुल में उत्पन्न प्रमुख सखियों की वशी तथा धीणा की ध्वनि का अनुसरण करने वाले प्रायः मधुर कालीन स्वर वाले गीतों से उसका मनोविनोद किया जा रहा था । वेश्यता के बीच रखा गया मौक्तिक तारा का अनुकरण कर रहा था । नेत्र कमल में अञ्जन लगा हुआ था । अतः अपने मुख द्वारा चन्द्र सहित आकाश की प्रतिद्वन्द्विता में भूतल को भी मानो पूर्णचन्द्र मण्डल से युक्त कर रही थी । सकाम सप्तपि ग्रहों की पङ्क्ति की तरह उच्च स्तन-मण्डल पर ( लोटती हुई ) चञ्चल हारलता उसके गले में लिपटी हुई थी । कपोल स्पल को थोड़ा छूने हुए वसन्त समय द्वारा भेजे गये चाटुकार दूत की तरह कानों में लगी हुई पुष्पमञ्जरी से नवीन पल्लव से उसका मुख सुशोभित था । कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्र-रचनाओं से अलङ्कृत उसकी सुन्दर भुजाओं के अग्रभाग ऐसे लगते थे मानो वे सौन्दर्यरूप अमृत की रक्षा करने के लिये आये हुए सर्पों से मण्डित हो । समीप की भूमि पर विखरे हुए सफेद पुष्पों के समूह में ऐसा लगता था कि सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा से आकाश में आये हुए तारों द्वारा घिरी हुई थी ।

[ आकाश चन्द्रमा से युक्त होता है । नीलिमा से व्याप्त होता है । तारे उभे हुए होते हैं । दमयन्ती के बालों के बीच में रक्ते मोती तारे सदृश लगते हैं । उसके बाल आकाश लक्ष्मी की नीलिमा को सम्पादित कर रहे हैं । मुख चन्द्र का कार्य कर रहा है । आँखों के अञ्जन चन्द्रगन कलङ्क का कार्य कर रहे हैं । अतः दमयन्ती जैसी नायिका को पाकर भूत भी आकाश की तरह सचन्द्र हो गया है ।

हारलता—मोती का हार पहने हुई थी । वह गले से लटकता हुआ स्तन मण्डल तक आया था । ऐसा प्रतीत होता था कि कामव्यथा से पीड़ित सप्तपि ग्रहों की पङ्क्ति ही उसके स्तनों पर लोटती हुई गले से लिपटी थी ।

वसन्तसमयप्रहितदूतेन—वह कानों में पुष्पमञ्जरी युक्त नवीन पल्लव पहने थी अतः ऐसा प्रतीत होता था कि वसन्त द्वारा भेजा गया चाटुकार

हूँ ही उनके कानों के पास जा कर मन्त्रगा करता था और उसके कपोलों का स्पर्श भी कर रहा था ।

परमब्रह्मजन्तैः—वस्तूरी के रूप में वह सुन्दर-सुन्दर टेढ़े-मेढ़े पत्रों की जाकृतिनी उसकी पुत्राओं पर बनी थी, अतः ऐसा प्रतीत होता था कि लीन्दर्म मृगा की रक्षा करने के लिये पत्र-रचना के रूप में सर्प ही आवे हुए थे । लीन्दर्म मृगा का पान कोई दूसरा न कर ले इसलिए सर्पों को बड़ा वैसा दिया गया था ।

नक्षत्रै—वह जहाँ बैठी थी वहाँ कुछ सत्रंघ पुत्र दिग्गरे हुए थे उनमें ऐसा प्रतीत होता था कि उससे लीन्दर्म की देवने व लिये आकाश में तारे ही उठते हुए थे । ]

ऊरुनितम्बमण्डलस्पर्शमुखलम्पटतया नीवीप्रान्नपुञ्जितनरहं  
धोरोदमिय वस्त्रां गतमच्छपाण्डु नेत्रपट्टं परिदधानाम्, अहमेव स्वया  
न्ययं वरे वरणीयः' इत्यर्थिनया पात्रलग्नेन दोषोरगेणेव रौप्यनूपुरवलयेन  
विराजितधामचरणपल्लवाम्,

निर्मल, शुभ्र तथा चमकीला ऐसी वस्त्र पहने हुई थी । ऐसा लगता था कि जड़ों और नितम्ब-मण्डल के मुखस्पर्श के लीन में नीवी के चारों तरफ बरनी तरङ्गों को समेटे हुए दुग्ध-सागर का जल ही वस्त्र रूप में परिणत हो गया था । "मैं ही स्वयंवर में तुम्हारे द्वारा चुना जाऊँ," इस तरह प्रार्थना करने हुए पैर में लगे शेष नाग की तरह झोंडी के झुर में उस का पञ्चव सज्ज बायाँ पैर लुनीभित था ।

[ एक तरह के अत्यन्त चमकीले वस्त्र को 'नेत्र' कहते हैं । दमयन्ती इसी कोटि का एक वस्त्र पहने हुई थी । चारों तरफ से चुन देकर उसने नीवी के पास उस चमकीले वस्त्र का एक गुच्छा जैसा बना लिया था । वह वस्त्र क्षीर सागर के जल की तरह था और नीवी बाग सिक्का हुआ वस्त्र पत्र की तरह था । क्षीर सागर का जल ही मानो ऊरु तथा नितम्ब मण्डल के मुग्धमय स्पर्श के निमित्त वस्त्र का रूप धारण कर आया हुआ था ।

वह अपने बायें पैर में झुर पहने हुई थी । उसके कुछ मधुर ध्वनि लभिन्वक्त होती थी । ऐसा प्रतीत होता था कि झुर के बहाने शेष नाग ही उसके पैरों में पड कर प्रार्थना कर रहे थे कि स्वयंवर में वह उन्हें ही चुने । ]

विषिथविलासवर्तिकामिरियाकारिताम्, अभृतद्रवयर्णकैरिव  
चित्रितावययाम्, धानन्दरुन्दलैरिव घट्टिनाम्, मोहनमणिशिलाया-  
मियोत्कीर्णाम्, शृङ्गारदादणीवोत्कुट्टिनाम्, वशीकरणपरमाणुभिरिव

विनिर्मिताम्, मदनमृत्पिण्डेनेव निष्पादिताम्, वज्रलेपपुत्रिकामिय  
दृशोः, आकर्षणमणिशलाकामिव हृदयस्य, जोयनौपधिमिवानुसगस्य,  
जयपताकामिव मदनस्य, वहलवन्दनाम्बुच्छटाद्रितभुवि विकीर्ण-  
सुरभिपरिमलमिलन्मधुकररवानुमेयपाण्डुरपुष्पप्रकरे मखणसितसुधा-  
यन्धिपिच्छले सौधस्फुन्धेज्योत्स्नामृतस्पर्शसुखमनुभवन्तीम्, अच्छांशु-  
स्फुटिरुमणिपर्यङ्किकाङ्गभाजं दमयन्तीमलम्बनिद्रामद्राक्षीत् ॥

विचित्रविलाससत्तिकाश्चित्रकूर्चिकास्ताभिः।।कारितामालिसिताम् । आनन्दशब्दा  
दाचारदिवन्ताश्लिषाय। सिद्धम् ॥

वह विलासमय भावो को खींचनेवाली कूचिमो से बनाये गये चित्र की तरह  
प्रनीत होती थी । अमृत रस के बिन्दुओसे मानों उसके जग बने थे । आनन्द क  
बङ्कुरो से उसकी रचना की गयी थी । मोहन-मणि की चट्टान पर खुदी हुई  
सी प्रनीत होती थी । शृङ्गार-काष्ठ पर मढी हुई सी लगती थी । वस करने  
वाले परमाणुओ से मानो निर्मित थी । काम मृत्तिका के पिण्ड से निर्मित की  
गयी सी लगती थी । आँखों के लिये वज्र की बनी पुतलिका थी । हृदय के  
लिये आकर्षण मणि से बनी हुई शलाका थी । प्रेम को अनुप्राणित करने वाली  
जोयधि थी । कामदेव की विजय-ध्वजा थी । उसके यहाँ की भूमि पर्याप्त  
चन्दन मिश्रित जल से सिकत थी । विकने एव सफेद चूने के लेप से पिच्छल  
बने हुए महल पर जहाँ बिखरे हुए सफेद फूलों का समूह पराग के  
लिये गुनगुनाते हुए भ्रमरो के ही द्वारा पहचाना जा सकता था, किरण-  
सुधा के स्पर्श सुख का अनुभव कर रही थी ।

तां चावल्लोक्य विचिन्तितवान् ॥

उमे देख कर सोचा—

‘अहो स्थानेऽभिनिवेशो लोकपालानाम् । अशेषसुखनिधानाय फौ  
त स्पृहयति ॥

उचित स्थल पर लोकपालों की प्रवृत्ति हुई है । समस्त सुखों के मूल को  
कीन नहीं चाहता ।

मन्ये च ।

विस्फारिततारेक्षणैरिमामेव पद्यत्रयमाकाशः सप्रहोऽभूत् ॥

विस्तारोति ॥ तारा नक्षत्राणि कनीनिका च । ग्रहा सूर्यादयो भूताः।।भि-  
निवेशाश्च ॥

और मादूम होता है कि—

कैलाशी गयी कनीनिका वाली आँखों से इसी को देखता हुआ यह आकाश  
सप्रह हो गया है ।

[ त्रिषे प्रह ( भूत प्रेत ) पकड़ लेते हैं उसकी मन स्थिति ठीक नहीं रहती। श्मशान्ती के मादक रूप को बाँधें खोल कर देखता हुआ आकाश सग्रह हो गया है। उसको प्रह ने पकड़ लिया है। आकाश म प्राणित्व आरोपित कर अन्तर्गत समानता के आधार पर उसके पागल्पन का आभास कराया गया है। वस्तुतः आकाश इत जर्प में सग्रह है कि वह सूर्य-चन्द्र जादि ग्रहों से युक्त है। सूर्यादि ग्रह से सहित होने के कारण सग्रह बहता है। महा का तार चन्द्र तारा और कनीनिका दोनों अर्थों का उपस्थापक है। ]

अयं च चन्द्रश्चन्दनपाण्डुभिः करैरिमाभेष् परामृशश्मदनात्तदाह-  
मर्या वणलेष्वां कल्लङ्कच्छलेन हृदयेनोद्भवति ॥

बाह ! यह चन्द्रमा भी अपनी चन्दन पट्टय सन्देह किरणों से इसी को लूटा हुआ काम की आग से जल कर घाव के चिह्न को कलङ्क के बहाने हृदय में धारण करता है।

अयमपि समीपोद्यानमाद्यतोऽस्याः समर्पितकुसुमगन्धः शनै-  
रुत्तरीयोऽशुफमाक्षिपन्मदनातुर्गस्तिर्यरूपतति ॥

अयनोति ॥ अग्नोऽग्नि स्मरानुर कुसुमगन्धं कस्तूरिकादि चार्पयन्मन्वाभा-  
कर्षणपरस्तिर्यक्यतति ॥

समीपवर्ती उपवन का यह पवन भी कुनों की गन्ध देकर धीरे से इसके अन्वचन को उठाता हुआ काम-पीडित होकर टेढ़े-टेढ़े गिर रहा है।

सर्वथा जितं मनुष्यलोकेन, यत्रैवंविधमचिन्त्यम्, अनालोचन-  
गोचरम्, अप्रतिमरूपम्, अद्भुतम्, अमूल्यमुदपद्यत स्त्रीरत्नम् ॥

सब प्रकार से विजयी है यह मनुष्य लोक अहाँ इस तरह का अचिन्त्य,  
जद्भुत, अदृष्ट, अनुपम, अद्भुत तथा अमूल्य स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ है।

आः प्रजापते, परिणतशिल्पोऽसि । संसार, सनायीऽसि । मदन,  
महोत्सववानसि । चञ्चुः, कृणार्थमसि । हृदय, पूर्णमनोरथमसि । दूरा-  
गमनश्रम, सफलोऽसि ॥

अ. प्रवेति ॥ 'संसार' इत्यादीनि श्लोकं संशोधयानि ॥

ब्रह्मन् ! तुम्हारी क्या निखरें गयी है। संसार । सनाप हो गये हो।  
काम ! महोत्सव सम्पन्न हो गये। नेत्र । सफल हो गये हो। हृदय ! तुम्हारा  
मनोरथ पूर्ण हो चुका है। दूर से आने के कारण होने वाले श्रम । तुम भी  
सफल हो गये।



सकलयुधजनमनोमधुररारुष्टिकुसुमितलतिके निजनयननिजित-  
राजीये जीव चिरम् ॥

वो समस्त युवकों के चित्त भ्रमर को खींच लेने वाली पुष्पलता ! अपने  
नयनों से कमलो को भी जीव लेने वाली ! तुम बिरबाल तक जीवो ।

तथाहि—

लक्ष्मीं विभागयोः कांचिच्चञ्चद्भ्रूमङ्गभागयो ।

वलिं यामो वयं तन्वि तराञ्जसदृशोदृशो. ॥ ३३ ॥

लक्ष्मीमिति ॥ हे तन्वि, तव नेत्रयोर्वयं वलिं याम उपहारीभवाम इति परमप्री-  
तिगमां लोकोक्ति । अङ्गानि लक्ष्मीं विभ्रति । तथा भूरेव भद्रस्तरङ्ग, स भाग  
एकदेशे वयो. । यदा तु 'चञ्चद्भ्रूमङ्गसङ्गयो इति पाठ तदा भ्रुवावेव शृङ्गा तयो-  
मङ्गो यत्र ॥ ३४ ॥

वयाकि—

कृशाङ्गी । तुम्हारे अलौकिक शोभा धारण क्रिये हुए चञ्चल एव  
वक्र भीहो वाले कमल सदृश नेत्रों पर हम अपने आपको ग्योछावर  
करते हैं ॥ ३४ ॥

अपि च—

किंनरवदनविनिर्गतपञ्चमगीतामृतं ध्रुति श्रयति ।

हरति हरिणीदृशो दृक् सालसवलिता च लुलिता च ॥३५॥

किंनरेति ॥ यत एव हरिणीदृक्, अत एव गीतानुराणउच्येण हरिणी देवाक-  
मनुसरति ॥ ३५ ॥

किन्नरों के मुख से निकले हुए पञ्चम स्वर वाले गीतामृत के कानों में  
जाने रहते पर हरिणाक्षी की आलस्य पूर्वक प्रुमायी गयी चञ्चल आँख मन  
को आकृष्ट कर ले रही है ॥ ३५ ॥

इत्यनेरुविधानि चिन्तयन्मृदुलीलापदैरागत्य गीतगोष्ठीस्थितस्य  
'कोऽयम्' इति विस्मयविस्फारितलोचनस्य संभ्रमघत. सपीनदम्बकस्य  
मध्यमविशत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ कोमल विश्वास पूर्ण गति में  
चञ्चल गीत-गोष्ठी में बैठे हुए 'मह कौन हैं' इस आश्चर्य के मारे लुभे हुए  
नेत्रों वाले, पदबाहट में पड़े हुए सखी समूह के बीच प्रवेश किया ।

प्रविष्टे च तन्मिन्, आस्मिन्कविस्मयेन विस्फारितानि, भयेन  
भ्रमितानि, कौतुकेनोत्तानितानि, व्रीडया वलितानि, मुदा मिलदराल-

पद्मपाणि, स्मराकृतेन विलुलितानि, दिदृक्षारसेनानिमिपाणि, दृष्टि-  
संघट्टनेन मुकुलितानि, विलासेन मिलितानि. चिरं चक्षुषि विश्राणाः  
किमपि चलिनासनम्, उत्कम्भितहृदयम्. अपसरद्ध्येयम्, अघ-  
गलत्स्वेदसलिलम्, उत्पुलकिताङ्गम्, अनङ्गभङ्गुरम्, अवलोकितान्यो-  
न्योन्यमुग्रमवतस्थिरे तदभिमुखा सरयः ॥

उसके प्रवेश करने पर अपत्याशित आश्चर्य से विकसित, भय से भ्रान्त,  
रक्षणा से उत्थित, लज्जा से मुकुलित, प्रमत्तता से मिलते हुए पक्षों वाली,  
बानोन्मुक्ता में चञ्चल, दर्शनोत्पुङ्गता के आवेग में निनिमेष, दृष्टि-संघर्ष से  
झेंपी हुई और विलास से मिली हुई आँखों की चिरकाल तक धारण करती हुई  
कामन्वय सखियाँ एक दूसरे का मुख देखती हुई उसके सामने स्थित थीं। आसन  
से हिल चुकी थीं। हृदय कांप गया था। धैर्य भाग गया था। पसीने का जल  
बह निकला था। अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था।

दमयन्त्यपि 'देवी, वर्धयामो वर्धयानः कोऽपि कस्याश्चिज्जीविते-  
भ्वरोऽयमन्नैवाग्नो दृश्यते' इति द्वापौत्कर्षमद्भृद्गिरां, गीतमुत्सृज्य  
ससंभ्रमोत्थितकुञ्जवामनकन्यकानां मृदुकरतलतालिकाकलितकल-  
कलेन मनाग्धिलासवलितमुखी तदभिमुखमवलोक्य शय्यातला-  
दुदचलत् ॥

“देवी, हम लोग सफल हैं, सफल हैं। किसी मुन्दरी का कोई प्राणेश्वर  
यहाँ आया हुआ दोखता है” इस प्रसन्नता की उत्कृष्टता से गद्गदवाणी बोली  
हुई, गीत छोड़ कर शीघ्रता से उठी हुई कुबड़ी तथा नाटी कन्याओं की कोमल  
एव मधुर करवत् ध्वनि से दमयन्ती भी विलास के साथ मुखमण्डल को थोड़ा  
नम्र करती हुई उन्ह सामने देखकर शय्यातल से उठ चली।

‘आ. कुतोऽस्यानेकप्राकाररक्षकपक्षिते पक्षिणामपि दुष्प्रवेशे  
विशेषतो रजन्त्यां कन्यान्तःपुरे प्रवेशः’ इत्यद्भुतरसावेशस्तिमितेन  
किञ्चित्संचारितेन चक्षुषा पुनः पुनर्गलमवलोक्य चिन्तयञ्चकार ॥

“बाह ! अनेक चहारदिवारियों तथा रजकों से रक्षित पक्षियों के लिये भी  
दुष्प्रवेश, विशेषतः कन्याओं के इस निवास गृह में रात को कैसे इतका प्रवेश  
हूँगा” इस अद्भुत रस के आवेग में स्थग्ध एवं स्वल्प संचारित आँखों से नल  
को बार-बार देखकर लोभी—

धन्या काप्युपराधिताद्रितनया यस्यास्त्वमाह्लादयन्  
मुक्ताहार इव प्रसारितभुजः कण्ठे विलोडिष्यसि ।

धानस्तात तवापि धन्यममुना सृष्टेन मन्ये श्रमं  
मातर्मैदिनि धन्यसे किमपरं धन्यास्नचार्यं पतिः” ॥ ३६ ॥

ध-वा वेति ॥ मानृशब्दं जननीपर्यायमपि स्त्रियः सपान्यादिष्वपि प्रणयसंबोधने प्रयुञ्जते इति नले भूपतावर्षधर्म्या दमयन्त्या ‘मातर्मैदिनि’ इति सम्बोधनन दुष्टम् । धन्यया सपत्नीं प्रति मानरित्यामग्रणमनुचितम् ॥ ३६ ॥

पर्वत-पुत्री पार्वती की आराधना की हुई वह युवती भाग्यशालिनी है जिसके गले में मुक्ता की माला सदृश अपनी भुजाओं को फैला कर प्रसन्न होने हुए तुम आलिङ्गन करोगे । तात ब्रह्मा, इसे बनाने के कारण आप के परिश्रम को मैं धन्य मानती हूँ । अधिक क्या कहूँ, माता पृथ्वी, तुम भी वन्दनीय हो जिसका यह पति है ॥ ३६ ॥

एवं चिन्तयन्त्येव तत्कालमाकूतकौतुकरुद्धर्षभयाद्यनेकरसपरम्प-  
रापरावर्तिनयनोत्पला लज्जावनमितमुखी विधेयविवेकवैकल्यम-  
भजत ॥

इस तरह सोचती हुई एक ही समय अभिप्राय, उत्तुङ्गता, हर्ष, भय, आदि अनेक रसों की धारा म नेत्रों को फेरती हुई लज्जा के मारे मुख नीचे की ओर कर कर्तव्य विषय के विचार में विचल हो गयी ।

नलोऽपि ‘विहगवागुरिके, भवत्स्वामिन्या. किमेवंविधः समाचारः,  
यदभ्यागतजनेन सह स्वागतालापमात्रेणापि न क्रियते व्यवहारः’ इति  
तस्याः समीपवर्तिनीं पूर्वपरिचितां किनरीमभापत ॥

नल भी, “विहङ्गवानुरिका, तुम्हारी स्वामिनी का ऐसा आचार है कि अतिविजन के साथ स्वागत-भाषण से भी व्यवहार नहीं करती” इस तरह दमयन्ती के समीप रहने वाली विहङ्गवानुरिका नामक किन्नरी से बोला ।

सापि ससंभ्रमप्रणामपूर्वमिदमवादीत्—

वह भी शीघ्र ही प्रणाम-पूर्वक बोली—

‘किञ्चित्कम्पिनपाणिकट्टणरचैः पृष्टं ननु स्वागतं  
वीडानम्रमुपान्जया चरणयोन्यंभते च नेत्रोत्पले ।  
द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि  
म्यामिन्कि न तवातिथे. समुचिर्न सत्याः नयाऽनुष्ठितम् ॥३७॥

स्वामिन्, धीरे से हिले हुए हाथ के कट्टण की ध्वनि से स्वागत प्रसन्न पृष्टों । लज्जा से मुख कमल को नम्र की हुई चरणों पर नेत्र-पुण्य रक्षों । उस हृदय में स्थान दीं जिसके द्वार पर मङ्गल-कलश के रूप में स्तन-युगल

न्यत्र है। जतः आप वैशे अतिथि के बिचे मेरी इस सनी ने क्या नहीं किया ? ॥ ३३ ॥

तद्वितः ससंभ्रमोत्थितयानया समर्पितमिदमुल्लसन्नमणिपर्यङ्किका  
पृष्ठमधिनिष्ठनु देवः ॥

अच्छा, यहाँ मे घबडाहट के साथ उठी हुई इस ने द्वारा समर्पित इस मणिमय उल्लसन्न आसन पर आप बैठें।

'त्वमपि देवि, विष्टुममणिपर्यङ्किकामिमामदूरवर्तिनीमध्यास्त्व ॥

देवी, आप भी इस सनीन स्थित विष्टुम मणि निमित पल्ल पर बैठें।

भवनु च भवनो परमुखेन ध्रुतान्योन्यस्वरूपयोर्दिदानीमान्मानु-  
नवेन नयननिर्वृति, फलन्तु मनोरथाः छल्लानाम्' इति ॥

दूरों के ही मुख से एक दूसरे के स्वरूप के सम्बन्ध में आप लोग मुने हैं। इस समय आत्मानुभव से आप दोनों की अर्धे आनन्द का अनुभव प्राप्त करें और शक्तियों का मनोरथ प्राप्त हों।

तथाभिहितौ तौ सर्वसत्त्वरसस्त्रीकरपरामृष्टयोः स्फटिकप्रवाल-  
पर्यङ्किकयोरुन्सङ्गमागं भेजतुः ॥

उसके कहने पर सभी शक्तियों द्वारा शीतल से पौढ़े गये स्फटिक एवं विष्टुम मणि निमित आसनों के बीच बैठ गये।

ततश्च तां—

हृषाद्वाश्रयिते, मगात्तपलिते, विस्कारिते विस्मया-  
त्रैलुक्कपास्त्रिमिते, स्मराद्विलुलिते, संशोचिते लज्जया ।

रूपालोकनकौतुकेन रमसादन्योन्यवचनान्भुजे

किंचित्साधि च संमुखं च नयने संचारयामासतु ॥ ३८ ॥

इसके बाद दोनों—

शीतलदेवता की देखने की चतुष्पा से शीतलापूर्वक एक दूसरे के मुख कन्ध पर आनन्दार्थ से व्याप्त, भर से चञ्चल, आश्चर्य में विकसित, काम में तरल, चतुष्पा से स्तब्ध तथा लज्जा से सङ्कुचित नेत्रों को कुछ सम्मुख और कुछ नीचे की ओर सञ्चालित किये ॥ ३८ ॥

[ देखने की चतुष्पा से सामने की ओर देखते हैं किन्तु प्रथम परिचय की स्थिति में लज्जा के कारण दृष्टि नीचे की ओर मुड़ जाती है ॥ ३८ ॥ ]

तत्र च व्यतिकरे—

श्रुत. केवलमुल्लसन्ति न पुनर्धाचां तु ये गोचरा  
येषां नो भरतादयोऽपि कथयः कर्तुं विवेकं क्षमा ।

लज्जामन्धरयो परस्परमिलदृष्टिप्रपाते तयो-

स्ते सर्वे समकालमेव हृदये केऽप्याचिरासन्स्ताः ॥ ३९ ॥

लज्जा से शिथिल उन दोनों का एक दूसरे पर दृष्टिपात होने पर वे सभी  
रस एक ही बार हृदय में उमड़ पड़े जो केवल भीतर तरङ्गित ही होने हैं  
वाणी के विषय नहीं बनने और जिन्हें भरत आदि महान् कवि भी वर्णित  
करने में असमर्थ रहने हैं ॥ ३९ ॥

अपि च । तत्र च व्यतिकरे—

कर्णान्तकृष्टवलमयीकृतचापचक्र-

श्चञ्चद्गुणस्खलनजर्जरितप्रसोष्टः ।

लक्षद्वयेऽपि युगपद्विशिखान्विमुञ्चन्

संधानसत्वरकर. श्रमधान् स्मरोऽभूत् ॥ ४० ॥

कामदेव ने कानो तक खींचने के कारण धनुष को गोल बना दिया था ।  
कड़ी प्रत्यङ्घा के सघर्षण से मणिवन्ध जोर्ण हो गया था । प्रत्यङ्घा पर  
वाणो को आरोपित करने में उसके हाथ बड़ी शीघ्रता कर रहे थे । अतः वह  
उम समय बड़ा श्रमशील हो गया था ॥ ४० ॥

अनन्तरमातसर्खावचनेन स्वयमर्घदानोद्यतां ताम् “अलंमलमु  
त्पलाश्रि, प्रयासेन । न खल्वसि पात्रं परिजातमञ्जरी जरटपवनप्रेहो  
लनायासं सहते’ इति दमयन्तीमभिधाय तस्याः स्वादुदुर्लभसूक्ति-  
सुधासेककोमलालापपण्डिताभिः सखीभिः सह परिमितपरिहासेन,  
किमपि जल्पन्, किमपि हसन्, किमपि हासयन्, मुहूर्त्तमिधा-  
सांचक्रे ॥

इसके बाद शिष्ट सखियों के कहने पर स्वयं अर्घ्य देने के लिये तत्पर उम  
( दमयन्ती ) से “कमल नेत्रे, रहने दें, प्रयास न करें, आप परिश्रम की पात्र  
नहीं हैं । परिजात की मञ्जरी आधी के झोके को नहीं सहती ।” यह कहकर  
स्वादु एव दुर्लभ सूक्ति सुधा से सित्त मधुमय वाग्बिनोद की विदुषी उन  
सखियों के साथ कुछ कहता हुआ, हँसता हुआ, हँसाता हुआ कुछ समय तक  
बैठा ।

चिन्तितवाश्च—

लीलाताण्डयितभ्रुवोः स्मरभरभ्रान्तोल्लसत्तारयो-

रन्तमांक्तिः कमालिकाधवलधयोर्मुग्धस्मितस्मेरयोः ।

किञ्चित्साचिद्वशोः कृतानिलचलतीलोत्पलस्पर्शयो-  
रल्लोलेरिव याति पद्मलद्वशाः कान्तिर्मदीयं मुखे ॥ ४१ ॥

राजेति ॥ उर्ध्वलेखाति तरङ्गे स्फुरति ॥ ४१ ॥

और सोचा भी—

पद्मज नेत्रोंवाली दमयन्ती के विशास से नावती हुई भीहो वाले, काम-भार के कारण चञ्चल उन्हासूत्रों कनीनिकाओं से अञ्जित, भीतर मोती की लानी की तरह कदक, मधुर मुस्कुराहट से विकसित, पवन-कम्पित नील-कमलों से स्वर्धा करने वाले नम्रता भरे नयनों की कान्ति मेरे मुख पर तरङ्गित हो रही है ॥ ४१ ॥

अपि च—

दरमुकुलिननेत्रप्रान्तपर्यस्तनारं  
तव तरुणि सलज्जं सस्मिन्नं सम्मरं च ।  
क्षणमभिमुखवन्त्रे विस्मयस्मेरदृष्टौ  
मयि चलति चलन्नं वीक्षितं मा निरीत्सीः ॥ ४२ ॥

दरोति ॥ तवामिमुखवन्त्रे मयि एवं गुणविशिष्ट वीक्षित वल्लभं घबड म निरीत्सीः ॥ ४२ ॥

तवणी, सानने की ओर मुझ किये हुए आश्चर्य से विकसित दृष्टि वाले, मुख पर स्वल्प संकुचित नेत्रों के एक भाग में कनीनिकाओं को फँसती हुई, लज्जायुक्त, सदान एवं मुस्कुराहट भरी आती हुई अपनी दृष्टि को मत रोको ॥ ४२ ॥

[ मैं तुम्हारे सानने स्थित हूँ । तुम्हारा सौन्दर्य देख कर आश्चर्य के मारे मेरी आँखें विकसित हो उठी हैं । प्रथम परिचय की स्थिति में मेरे सम्मुख यद्यपि तुम साफ तपा स्वष्ट नहीं देख पाती हो फिर भी जिन किसी तरह तुम्हारी जो दृष्टि मेरी ओर आ रही है उसे रोको नहीं ॥ ४२ ॥ ]

दिवाण्यदपरनिदमादास्महे—

लायण्यानृतदीर्घिका कुलगृहं सौभाग्यसौन्दर्ययो-  
स्वैल्लोक्याकररत्नकन्दलिरियं जीव्यात्सहस्रं समः ।  
लोकालोकनकौतुकाय यहुना शिल्पश्रमेणादरा-  
न्मन्त्रे यां विधिना विधाय विहितं सृष्टेर्ष्वज्जरोपगम् ॥ ४३ ॥

लायणेति ॥ आलोकनाय कौतुकमालोकनकौतुम् । लोकनालोकनकौतुकम् । तेन परयतु लोको, द्रष्टव्यदर्शनान् दृष्टिस्तमान्नोत्तिथ्यर्थः ॥ ४३ ॥

अधिक क्या, मेरी यही शुभ कामना है कि—यह सौन्दर्य-मुषा की बावली, सोभाग्य और सुन्दरता का कुलभवन तथा त्रैलोक्य समुद्र की रत्नलता सहस्रो वर्ष की आयु प्राप्त करे। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने लोगों के दृष्टि-कीर्तुहल के लिये कलारमक श्रम से आदरपूर्वक इसे बना कर अपने रचना-कीशल का ध्वजारोपण किया है ॥ ४३ ॥

[ विजयी जिस सीमा तक पहुँचता है वहाँ अपनी ध्वजा आरोपित कर देता है। लोगों की आँखों को तृप्त करने वाली दमयन्ती का निर्माण कर ब्रह्मा ने अपनी कला या शिल्प-कीशल का सर्वोत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत कर ध्वजारोपण किया है अर्थात् उसने यह सिद्ध किया है कि उसके भीतर दमयन्ती जैसी अलोक सामाग्य-सुन्दरी के निर्माण की क्षमता है ॥ ४३ ॥ ]

अहो आश्चर्यम्—

रङ्गत्यङ्गे कुरङ्गाक्ष्याश्चक्षुर्मं यत्र यत्र तु ।

दृश्यते तत्र तत्रैव बलाद्वाणकरः स्मरः ॥ ४४ ॥

रङ्गेति ॥ तु पुनरर्थे । किं पुन यत्र यत्राङ्गे चक्षुरङ्गति तस्य साधिष्ठानत्वात् । स्मरणायवाचा प्राप्पते ॥ ४४ ॥

ओह ! आश्चर्य है—

इस हरिणाक्षी की आँखें मेरे अङ्गों पर जहाँ-जहाँ जाती है वहाँ-वहाँ बलात्कार कामदेव हाथों में बाण लिये हुए दिखाई पड़ता है ॥ ४४ ॥

तत्कथमियमन्यार्थे प्रार्थ्यते तद्दृष्टतामयं परप्रेष्यभावः ॥

तत्कथमिति ॥ अन्येषामिन्द्रादीनामर्थेऽन्यार्थे ॥

तो क्यों इसे दूसरों के लिये मारूँ ? दूर जाय दूसरों का शीत्य-कार्य ।

यतः । तिरयति स्वातन्त्र्यसुखम्, अभिमुखयति पारवश्यफलेशम्, आमन्त्रयति तिरस्कारम्, आद्रयति दैन्यम्, आह्वयति लघिमानम्, आवाहयति द्वास्यवादम्, समानयत्यौचित्यभङ्गम्, अङ्गीकारयति कार्पण्यम्, अपहस्तयति वस्तुभायम्, पुरुषस्य ॥

यत्र इति ॥ आङ्पूर्वस्य बहतेः करोत्यर्थेऽवाहावाहयति कारयतीत्यर्थः ॥

यह मनुष्य के स्वातन्त्र्य-सुख को शोषण कर देता है। परतन्त्रतामूलक दुःख को सामने ला देता है। तिरस्कार को आमन्त्रण देता है। दीनता को आदर देता है। लघुता को बुलाता है। उपहास कराता है। औचित्यभङ्ग को सम्मानित कराता है। कायरता को अङ्गीकार कराता है और वास्तविक भाव को छुड़ा देता है।

तथाहि—

सोच्छ्रासं मरणं निरग्निदहनं निःशृङ्खलं बन्धनं  
निःशृङ्खलं मलिनं विनैव नरकं सैषा महापातना ।  
सेवासंजनितं जनस्य सुधियो धिक्पातवश्यं यतः  
पञ्चानां सविशेषमेतदपरं पण्डं महापातकम् ॥ ४५ ॥

अतः—

बुद्धिमान् आदमी की सेवामूक परतन्त्रता को धिक्कार है, क्योंकि यह  
श्वास रहने ही मरण है, अग्नि के बिना ही जन्म है, बिना वेडियों का  
बन्धन है, बिना कीचड़ का मल है, बिना नरक की महापातना है, पांच  
महापातकों के अनिरिक्त यह एक विशेष तरह का छठा महापातक है ॥ ४५ ॥

[ पराधीनता और मृत्यु में यही अन्तर है कि मृत्यु हो जाने पर श्वास  
नहीं चलती और पराधीनता में श्वास चलती है। जन्म आग से होती है  
किन्तु पराधीनता की स्थिति में बिना आग के ही जन्म होने लगती है।  
शृङ्खलाओं से बन्धन लगाये जाने हैं किन्तु पराधीनता में बिना शृङ्खला  
लगाये ही बन्धन लग रहा है। कीचड़ से मलिनता उत्पन्न होती है किन्तु  
यह बिना कीचड़ के ही मलिनता उत्पन्न कर देता है।

अत्युत्कृष्ट पाप के कारण आदमी नरक की महत्तर पातनायें सहता है।  
परतन्त्रता भी एक उसी तरह की पातना है जैसी नरको में सहती जाती है।  
बह्यहत्या, मदिरापान, चोरी, गुह्यपत्नीगमन तथा इन कार्यों के करने वाले  
लोगों के साथ सम्पर्क, ये महापातक कहलाते हैं। इन कार्यों को करने वाले  
लोगों की महापातनायें सहनी पड़ती है। मूत्र ( नल ) की महापातना सहनी  
पड़ रही है और मैं इन प्रसिद्ध महापातकों में से कोई एक भी नहीं किया  
हूँ। इस से यह ज्ञात होता है कि परतन्त्रता भी एक महापातक ही है जिसके  
कारण मैं इतना कष्ट ले रहा हूँ ॥ ४५ ॥ ]

किं चान्यत्—

प्रस्तुतस्य विरोधेन प्राभ्यः सर्वोऽप्युपक्रमः ।

वीणायां धाद्यमानायां वेदोद्धारो न रोचते ॥ ४६ ॥

प्रस्तुतेने ॥ तमयानुरागौधिन्यादुर्मायस्य प्रस्तुतत्वम् ॥ ४६ ॥

दूसरी बात यह है कि—

प्रसङ्गप्राप्त वस्तु से प्रतिशूल होने के कारण ये सब परत अनुचित हैं,  
क्योंकि वीणा के बजने रहने पर वेदध्वनि अच्छी नहीं लगती ॥ ४६ ॥



[ लोकपालो की आज्ञा के अनुसार दीत्यकार्य करना एक पुण्यात्मक कार्य है । यह उतना ही पवित्र है जितना वेदोदगार विन्नु दमयन्ती के मधुमय अनुराग के समक्ष दीत्यकार्य अच्छा नहीं लगता । वीणा की मधुर ध्वनि के सामने पवित्र होता हुआ भी वेदोदगार अच्छा नहीं लगता ॥ ४६ ॥ ]-

तस्किमिदानीमिदमुच्यते । लोलाक्षि, लोकपालाम्ब्यामम्मन्मुखेन धृष्वन्ति इति प्रस्तुतानुरागभङ्ग, तदादेशोऽपह्नयते स्वामिन्यन्यथा कथ्यते श्रेयःस्खलनम्, यथावृत्तमेवारयायते स्वार्थहानि, तद्वरमस्तु स्वार्थविघातो न तु विश्वस्तदेयतावञ्चनापातकम्' इति चिन्तयन्नशेषमपि तस्यै पुनरादेशं सप्रसङ्गमावचक्षे ॥

अच्छा तो, इस समय क्या यह कहें, यदि कहता हूँ कि 'हे खलनयने, लोकपाल हमारे माध्यम से तुम्हें चुनते हैं ॥' तो इससे प्रेम में अन्तर पड़ेगा । यदि उनकी आज्ञा को छिपाता हूँ या इन्द्र आदि के सम्बन्ध में कुछ दूसरे दग से कहता हूँ तो कल्याण-मार्ग से गिरना होगा । जो स्थिति है यदि वैसा ही कहता हूँ तो स्वार्थ की हानि होगी । ऐसी स्थिति में स्वार्थ का विनाश ही अच्छा है, विश्वास किये हुए देवों को बञ्चित कर पाप लेना अच्छा नहीं ।" यह सोचता हुआ इन्द्र की अशेष आज्ञा को सप्रसङ्ग सुना दिया ।

सापि स्तोत्रस्मितस्निग्धनम्रमुखी 'हं द्वे प्रियंवदिके, प्रियास्मज्जी-वितयाम्बया तातेन च मध्यान्ने समाह्वय किमुक्तासि किं शिभिताऽसि । न नाम चालेयम्, अविनीतेयम्, आग्रहग्रहप्रस्तेयम्, इति केनापि कर्णेजपेन तातस्य हृदयाद् दूरीकृताहम् । वन्द्याः खलु गुरवो देवाश्च विभेमि तेभ्योऽहम्' इति प्रियंवदिकाऽप्यया सत्या सार्वमन्यालापम-करोत् ॥

सापीति ॥ स्तोत्रेयादिना भविनेऽपि लोकपालाम्ब्यामम्ब्या, नलं प्रायनुरागाग्रह चान्यालापम्याजेन दमयन्ती प्रतिपादितवती । न नामेति वितर्कं । 'किं दूरीकृताहम्' इति वितर्कं ।

कुछ मुस्कुराहट, स्नेह एवं नम्रतापूर्ण मुख वाली वह ( दमयन्ती ) भी, "अजी प्रियम्बदिका, मेरे प्रिय एवं प्राणस्वरूप माता तथा पिता जी ने दोषहर को बुलाकर तुम से क्या कहा है ? क्या सिखाया है ? "यह लडकी नहीं है, उर्ण्ड है, आग्रह के कारण हठी है ।" यह कह कर किसी निन्दक द्वारा पिता जी के हृदय में क्या दूर की गयी है ? गुरुजन तथा देव वन्दनीय हैं । मैं उनसे डरती हूँ ।" इस तरह प्रियम्बदिका नामक सखी के साथ दूसरी बातें करने लगी ।

[सम्भव है, देवों ने वैभव तथा महिमा पर आहट होकर पुष्पन (नाटा पिता) पही अनुमति दें कि वह देवों में से ही किसी को पति चुने। इस विरुद्ध अनुमति की सम्भावना से गुरुओं से डरती है। देव लोग तो उसके अनुराग के बीच कटक ही बन रहे हैं। अतः उन लोगों में डरना तो स्वाभाविक ही है।]

नलोऽपि 'नदिराक्षि, मद्रयति मदिरा, तरलयति तारुण्यम्, अन्धयति धनम्, उत्पथयति मन्मथः, विरूपयति रूपाभिमानः, सर्वयति गर्वं'। सर्वजनप्रसिद्धमेतत् । किंतु त्वमिदमसत्यतामानसो । व्यभिचरन्तु तथाङ्गे सर्वमेतत् । नहि शशिति बलिः, अमृतं च विशा-  
ट्कुरः नमयति । नदिमं देवादेशं माधजासी । सर्वाया प्रमदन्ति प्राणि-  
नानमी लोकरपाला । तत्रापि विशेषतः सकलत्रिदशाधिपतिरमोप-  
सुरकिरीटमणिमयूखमालार्चिनचरणारविन्दपुण्ड्रो देवः । तद् वृष्णु  
कमप्यमीपाममृतभृजां मध्ये । मानस्य स्वर्गसुखानि । अभूमिरसि  
मर्त्यलोकमनोकसुखानाम्' इति पुनस्तामभ्यधात् ॥

नल भी, "माइकनमने, मदिरा उन्धन कर देती है। यौवन बचल बना देता है। धन जग्गा बना देता है। काम पयत्रुट कर देता है। सीन्दर्य का अभिमान मर्यादा बदल देता है। अहंकार उद्दण्ड बना देता है। यह बात सब लोगों में प्रसिद्ध है, किन्तु आप इसे सत्य न होने दें। आपके बड़ो न यह सब व्यभिचरित हो जाय। चन्द्रमा में आग नहीं होती। अमृत में विष के बड्डुर की सम्भावना नहीं ली जाती। अतः आप देवों की आज्ञा की अवहेलना नहीं करें। ये लोकरपाल सब तरह से प्राणियों के प्रभु बने रहते हैं। उनमें भी विशेषतः समस्त देवताओं के स्वामी महाराज इन्द्र जिनका चरणकमल सभी देवताओं की मुकुटमणि की किरामाता से पूजित होता है। अतः इन अमृतभोजी देवताओं में से किसी को चुनिने। स्वर्ग-सुख न छोड़ने। मृत्युनेत्र के सीमित सुखों की आप पान नहीं है।" इस तरह पुनः उनसे कहा।

एवंविधे च व्यतिकरे दमयन्त्या पुनरुक्तमिमं उत्पमरण्यकरिण्ये-  
वादिन्दुदमङ्कुशमसद्विमानया मनाक्तरलिते शिरसि, स्तोत्रोक्तने  
मनसि, मुक्ते नि सहनिश्वासमदति, परवर्तिते चक्षुषि, विवर्णतामा-  
नीते बदनारविन्दे, प्रस्तावपण्डिता प्रियंवदिका प्राह ॥

ऐसे प्रसङ्ग में पुनः कही हुई इस बात को अत्यन्त क्रोध देने वाले बड्डूय को न सहती हुई जानकी हथिनी की तरह दमपत्नी धिर की कुछ कम्बित

की, मन को म्लान की, असहनीयता व्यक्त करनेवाले नि स्वासो को छोड़ने लगी, बाँहो को तरेरने लगी, मुँहकमल पर मलिनता छा' गयी, तब विचारनिपुण प्रियम्बदिका बोली—

‘देव, श्रुतं श्रोतव्यम्, अवधारितो देवादेशः। किं तु न स्वतन्त्रेयम्, ईश्वरेच्छया प्रवृत्तिनिवृत्तयो यत प्राणिनाम्, अनालोचनगोचरश्चाय-  
मनुरागोऽङ्गनाजनस्य ॥

“महाराज, सुन लिया जो सुनना था। देवों का आदेश समझ लिया, किन्तु यह स्वतन्त्र नहीं है। प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति ईश्वर की इच्छा से होती है। रमणी जनों का अनुराग विचारपूर्वक नहीं चलता।

तथाहि—

तीव्रतपनतापप्रियाम्भोजिनी न सहते स्तोकमप्यमृतमुचो रुच-  
श्चन्द्रस्य, परिम्लायति मालतीमालिका सलिलसेकेन ॥

वयोकि—

सूर्य के तीव्र ताप से स्नेह रखने वाली कमलिनी अमृतवर्षी चन्द्रमा की कान्तियों को थोड़ा भी नहीं सहती और मालती की माला जल का सिञ्चन प्राप्त कर म्लान हो जाती है।

प्रसिद्धं चैतत्—

भवति हृदयद्वारी कापि कस्यापि कश्चिन्न  
श्च सल्लु गुणविशेषः प्रेमबन्धप्रयोगे ।

— किसल्लयति वनान्ते कोकिलःलापरम्ये

विकसति न यसन्ते मालती कोऽथ हेतुः ॥ ४७ ॥

यह प्रसिद्ध भी है—

अनुराग विषयक व्यवहार में कोई गुणविशेष कारण नहीं होता। कहीं भी कोई किसी के चित्त का हरण करने वाला बन जाता है। कोकिल ध्वनि से रमणीय वसन्त काल में सम्पूर्ण वन जब नवीन पत्र धारण करता है तब मालती नहीं विकसित होती। इसमें क्या कारण है ? ॥ ४७ ॥

[ यद्यपि वसन्त षष्ठी मनोहर होता है फिर भी वह मालती को नहीं अच्छा लगता है। लोकपाल बहुत वैभवशाली है फिर भी मेरी सखी को वे अच्छे नहीं लगते ॥ ४७ ॥ ]

एकमनैकविधोपाद्याननिपुणया तत्कालोचितम्, अनुच्चस्मित-  
सुधास्निग्धम्, अविरुद्धम्, परिमितपरिहाससुन्दरम्, अनुवृंहिता-

नुरागम्, उचितचाटुघटुलम्, अशाठथम्, अरुडोरम्, अनुज्झित-  
प्रियम्, प्रियंवदिकया सहाल्पाल्पं जल्पन् 'अयुक्तमिह कम्यान्तःपुरे  
चिरं स्यातुम्' इति चिन्तयन्नापृच्छथ दमयन्ती नलः पर्यङ्किकापृष्ठादु-  
दतिष्ठत् ॥

इस तरह अनेक रंग के दृष्टान्तपूर्ण प्रवचन में निपुण प्रियम्बदिका के  
साथ समयोजित, हास्य-मुधा से स्निग्ध, संगत, परिमित परिहास से मनोहर,  
बटे हुए अनुराग के अनुकूल, उचित चाटुकारिता से सुन्दर, घठता से शून्य,  
कठोरता से विहीन, प्रिमता से अहीन, थोड़ी बातें करता हुआ, "कम्यान्ती के  
निवासगृह में चिरकाल तक ठहरना बन्धा नहीं है।" यह घोचता हुआ  
दमयन्ती का सादर कुशल प्रश्न पूछ करं नल आसन से उठ खड़ा हुआ ।

प्रथमोत्थितया च तथा लज्जावनप्रवदनार्पवन्द्या सह सखी-  
कदम्बकेन द्विश्राणि पदान्यनुगम्यमानो विद्वसन् 'अलमलमायासेन,  
स्थीयतां सुखम्' इत्यभिधाय स्वगृहानयासीत् ।

पहले उठी हुई, लज्जा के कारण नन्न मुसवाली उस ( दमयन्ती ) तथा  
सखीमण्डल के साथ दो-तीन कदम चल कर हँसता हुआ, "रहने दीजिये,  
अब बट्ट न करें, ठहरें यहीं सुखपूर्वक।" यह कह कर अपने आवास की  
दोर बना थाया ।

गत्या च शिरीषकुसुमदाममृदुनि शय्यातले निवण्णश्चिन्तया-  
ञ्चकार ।

जाकर शिरीषगुण की माला सहस्र कोमल शय्या पर बैठकर चिन्ता-  
युक्त स्थिति में सोचने लगा—

हर्षाद्गुरपुलकं विकसितं रमसादुत्थानितं कौतुका-  
च्छृङ्गादादलसं, मयात्तरलदृढङ् नम्रं च लज्जामरात् ।  
तस्यास्तन्नवसंगमे मृगदशो दृश्येत मूयोऽपि किं  
किञ्चित्काञ्चनगौरगण्डगलितस्वेदाम्बुरभ्यं मुखम् ॥ ४८ ॥

मृगाक्षी का उस नवीन मिलन के अवसर पर प्रसन्नता से रोमाञ्चित,  
शीत्रता से विकसित, कौतुक से उत्पित, शृङ्गार-भाव से सालस, भय से  
चञ्चल नेत्रों वाला, लज्जा के भार में नम्र, सुवर्ण सहस्र गोरे कपोल से निकले  
हुए स्वेद-किन्दुओं के कारण रमणीय मुख क्या फिर दिखाई पड़ेगा ? ॥ ४८ ॥

अपि च—

अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी  
रजनिरियं च न याति नैति निद्रा ।

प्रहरति मदनोऽपि दुःखितानां

यत् बहुशोऽभिमुषीभवन्त्यपायाः ॥ ४९ ॥

वह मृगाशी जाँवो से दूर नहीं होती है, नोद भी नहीं आ रही है और यह रात भी नहीं बीत रही है। यह कामदेव भी प्रहार करने लगा है। सेद की बात है कि दुखियों के विनाश की बहुत सी सामग्रियाँ सामने आती जा रही हैं ॥ ४९ ॥

इति विविचचित्तर्भावशेषविध्वस्तनिद्राः

सजलजडिम मौलत्पद्म चक्षुर्दधान् ।

हरचरणसरोजद्वन्द्वमाधाय चित्ते

नृपतिरपि विदग्धः स त्रियामामनैषीत् ॥ ५० ॥

इति धीत्रिविक्रमभट्टविरचितार्या दमयन्तीकथायां हरचरण-  
सरोजाङ्गायां सप्तम उच्छ्वासः ॥ ७ ॥

इति विपमपद्मकाशमेत दमयन्त्यारतनुते स्म चण्डपालः ।

शिष्टमति लतिकाविकासचैत्र चतुरमतिरफुटभित्तिघातचित्रम् ॥

धीमाग्वाटकुलाब्जवृद्धिशाश्वच्छ्रीमान् यशोराज इत्यार्यो

यस्य पिता प्रबन्धसुखि श्रीचण्डसिंहोऽग्रज ।

धीसाररवतसिद्धये गुरुरपि श्रीलूण्णिगः शुद्धधी

मोऽकार्षद्दमयन्नुदारविवृतिं श्रीचण्डपालः कृती ॥

इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविरचने सप्तम उच्छ्वास समाप्तः ॥-

इस तरह विभिन्न वित्तकों के आवेश में निद्रा भग हो गयी। जाँवें जड़ जैसी होकर आँसू से भर गयीं। पलक बन्द हो गये।—ऐसी स्थिति में भगवान् राहुकर के चरणकमल युगल में चित्त लगाकर उस सहृदय सम्राट् ने रात व्यतीत की ॥ ५० ॥

सप्तम उच्छ्वास समाप्त

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।

## श्लोकानुक्रमणिका

श्लो	श्लो	श्लो	श्लो
४ मूढानि	३७	५ अवतरति घृताची	५१
५ असमसिद्धाः	७	५ अविरतमिदमम्भ	६१
१ अहनात्तवृत्तिहा	३१	४ सगृष्टिनष्टपूलीक	१३
२ अण्डिनप्रभावोऽथ	३	५ असमहरित्तर	९
१ आघान परिश्वदम्	१५	१ अस्ति स्वर्गसम	५४
७ अग्रस्थामिव चयम	६	१ अस्तु स्वस्ति समस्त	५५
७ अन्ना वृद्धलिङ्ग	४६	४ अहीना मालिका	२९
१ अष्टाद्वै शुक्रविद्य	५३	१ आकर्ष्य स्मरयौवराज्य	४०
१ अचनि अनित	३५	१ आकार स मनोहर	५८
६ अचनि रचनि	५	७ आय प्रायमभिन्न	११
४ अतिललिततर	३	७ आयप्रायपराल	१७
३ अत्रातरे तरणि	९	६ आनन्ददायिनस्ते	४२
१ अत्रिज्ञातस्य या	५१	५ आनन्दिसुन्दर	१२
१ अथ कथमपि नाथ	८	७ आ पूवापर	४
३ अथ नरपतिदत्त	२१	३ आबन् परिषय	३२
३ अथ विमलकुवूळ	१२	७ आ ब्रह्मावधि	२
३ अथ मे सुवहो	१	६ आरुह्यैता शिखरि	६७
७ अथाश्नवल्मनति	५	६ आवासा कुमुमा	६१
७ अनुगुणधनेन	२८	५ आविर्भूतविषा	१६
५ अनुभवतु चिराय	२०	५ आसीपिण्डित	३१
२ अनकथा य किल	३९	७ आसेतो कपिकी	३
७ अत कवच	४२	४ आस्यश्री मनिभे	१४
७ अपमरति न चक्षुषा	७४	५ आहृतोदीच्यभूषेन	२४
६ अपमृताम्बुतरङ्गि-	५६	५ आहादयन्ति मृद्वो	६८
५ अपहस्तिता नराया	६	२ आहादयन्ति सौर्याम्भ	७४
१ अप्रगवना पद्म्यामे	२७	७ इतश्चन्द्र सान्द्रा	३२
३ अपि रेणुहृत्क्रीड	५३	२ इति जनितमुदिन्दो	३९
१ अच्यव्रीमुमग	७	६ इति विविधमुदञ्च	९७
५ अमिलपति नाल	२५	७ इति विविधचितर्का	५०
३ अमदानन्दनिष्यद्	४६	७ इतो मकरजनन	३३
६ अय प्रथमो राग	८०	१ इथ काप्यन्या	१५
६ अयि भवत कृतार्था	३९	४ इद गोदावर्	२५
६ अरुणमणिकिरण	१२	४ इद मदाकिया	४२

उ.	मूलानि	सो.	उ	मूलानि	श्लो.
३	इह राजपमिय	१३	५	कर्णमूलविषये	६२
१	इन्दो. सौन्दर्य-	५७	७	कर्णान्तकृष्टवलयी-	४०
५	इष्ट्वा कृत्युग-	५४	१	कर्णान्तविभ्रमभ्रान्त-	१३
२	इह कवलितकन्दं	११	५	कर्पूराम्बुनिपेक.	२१
५	इह चरति चकोर	७३	७	का नाम तत्र चिन्ता	७
२	इह पुनरतिशं	१२	६	कालमिव कलाबहुलं	३७
६	इह भवतु निवासः	७३	१	काम्यरपास्रफलरथेव	१७
७	ईपत्रि मृतकुन्द-	२४	२	किं कर्पूरकणा	३८
४	उचितमुचित-	२२	१	किं कवेस्तेन कापेन	५
६	उच्चै. कुम्भ कपिश-	६०	७	किंचिरकम्पितपाणि	३७
७	उच्चै. शाखाप्रसंलम्भा	४६	४	किं तेन जातु जातेन	१९
६	उज्ज्वलसुवर्णपदक	४१	७	किं नरवदनघनि.	३५
५	उद्धीय वाञ्छित	४	१	किं लक्ष्मी' स्वयमायता-	५६
६	उत्कम्पाद् गलित्वा-	६९	१	किं स्यादक्षनपर्वतः	४४
१	उत्फुल्लगच्छै-	२३	४	किमपि परिजनेन	३२
६	उदयगिरिगतायां	१	१	किमथः पारवेषु	४२
१	उदात्तनायकोपेता	२५	५	किमु कुवलयनेत्राः	५०
५	उन्मादिनी मद्-	१०	७	कुन्दे सुन्दरि	९
५	उन्मादि यौवन-	६५	५	कुररभरसहं	४०
३	उपकतु मिथं वक्तुं	१४	५	कुरते मालकव-	६
५	उपनदि पुलिने	६९	६	कृत्राशौन्वं चटुल-	२५
६	उपनयति करे	५९	५	कृतश्रीडा. कौटै-	४८
६	उपरम रमणीया-	५४	३	कृत्वातिप्यक्रिया	१०
४	उपरि परिमलान्धै	२३	५	केनापि न्यवहारेण	२३
२	एकान्ते सेवते योगं	१८	७	कैलासायितमद्रिभि.	२८
५	एतस्याः करिडुम्भ-	५९	४	कोष्ठां किं नु निपिच्यते	९
६	एतस्या सलिलाव	१६	५	कश्चिच्चटुल-	४४
४	एता प्राप्य शरोपकार-	२१	५	कश्चिप्रवरगौरिका	४३
४	एता' सान्द्रदुमत्तल-	४	५	कश्चिदपि कार्यारम्भे	५५
६	एतारता' परिपक्व	७१	२	कुम्भरशीरसमुद्-	३४
२	एता मे हृदय जीव	२१	६	गीतेप्रामा किल द्वित्रा	५२
५	एता सा विन्ध्यमध्य-	३५	२	गौरवं गौरवंशस्य	१०
४	कंदपैरथ जगज्जैत्र	६	५	प्रीवालम्बित-	५८
५	क. करोति गुणवा-	१४	६	शक्रधर विपमाद्य	३२
६	कदाकिल भविष्य,	२१	१	शार्वा सदा सदादार	३३
७	कन्यामन्यानुरक्तां	२६	५	चिरविरचितचाटु-	७२

श्लो.	मूलानि	श्लो.	उ.	मूलानि	श्लो.
१	वननीनि मुदित-	३०	६	खत्तो भयेन	१३
२	वनपति जलबुद्धि	९	६	खद्देशागनमास्तेन	२३
१	जपति गिरिसुतायाः	१	६	खद्देशागतवापसाप	२२
६	जपति जगदे-इषु	३१	७	दग्धो विधिर्विघत्ते	२१
१	जपति मधुसहायः	२	३	वृषार्वमर्दुणीयाय	९
६	जयाप्यखिललोक-	८	७	दरमुकुलितनेत्र-	४२
६	जयाप्यमरसारधि-	९	४	दिशः प्रसेदुः	२८
६	जयाप्यमलकौस्तुभ-	५	५	दिशि दिशि किमि-	३३
६	जयाप्यमलभावना-	११	५	दिष्टया दिवौकसां	५३
६	जयाप्यमोजिनीस्रण्ड-	५	३	दूनाभोगमरेण	३४
६	जयाप्यमोजिनीवन्धु-	३	२	देवो दक्षिणदिङ्मुत्तस्य	२९
६	जयाप्यसमसाहस	१०	१	देशः पुण्यतमोद्देश	२८
६	जयाप्यसुरसुन्दरी-	७	२	देशानां दक्षिणो देश-	२८
६	जयाप्युदधिनिर्गत-	४	२	देशो भवेत्कस्य न	२७
६	जयाप्युदरनि-सर-	६	२	घन्या शरदि सेवन्ते	१
१	जाताकरिमकविस्मयैः	४८	७	घन्या काप्युपराधिना-	३६
५	जात्रिषं न तत्र	५७	१	घन्यास्ते दिवसाः	३४
१	जानन्ति हि गुणा-	१८	५	घीरं रज्जन्त-	२९
३	तत्तस्या कवनी-	३१	१	घृतकदम्ब-	४३
४	तत्तातस्य कृताहरस्य	३१	६	घृतरजनि-	५६
४	तथा भव यथा सात	१७	१	नक्षत्रम् उग्र-	३७
४	तद्देशपुण्यानां	२६	७	न गम्पो मन्त्राणां	१७
४	तद्द्वार्तामृतपानार्धि-	२	३	न तत्कार्यं न तच्छाटयं	२८
५	नया दत्त मया नीता	१३	५	नद्यास्तीरे विदर्भाया	२७
६	तव शुभग रश्मदशया	४०	२	नमिता फलभारेण	२
६	तव सुहृदुपमुक्त-	१२	६	नलोऽपि मां	१९
१	तस्मिन्निमतमुखे	५९	१	नास्ति सा नगरी यत्र	२६
१	तस्य विषयस्य मध्ये	२९	५	निम्नप्रियमुखान्नास्या	६०
२	तस्या कान्तिनिरद्ध-	३०	२	निष्यमुद्रहते	३३
२	ता एव निर्वृतिस्थान-	२६	६	निपतति किल	२०
५	तात तावन्ममा	३	१	निर्मासं मुखम-	४७
६	शास्तास्तं ध्रुपदामामु-	२०	४	निर्माय स्वयमेव	७
३	दुम्य नमो नमन्नोक	१	१	निश्चित समुद्रः	१०
१	तेषां वंते विशद-	१९	१	नीरं नीरजनिमुक्तं	४२
१	तैस्तैरामगुणै-	२०	२	नीरजनपदे	२९
१	त्रिदिवपुरसमृद्धि-	३१	६	नृप चलसि	६८



उ.	श्लोक.	उ	श्लो
७ नोद्याने न तरङ्गिणी	१६	१ भिन्दन्कन्द	४५
१ नो नैत्राङ्गलिना	६२	७ भुक्तान्ते घृन-	१३
२ पटलमलिकुलाना-	४	५ भूपाळामन्त्रणे	२२
५ पद्मान्यातपवारणानि	७२	१ भूमयो यदिरन्त-	३१
७ परिम्लानच्छाया	२५	३ भोगान्नो याद्गवीची-	२२
३ परिहरति घयो	२९	५ भ्रमकर	६३
१ पर्णं कर्णपुटायितै-	४१	२ भ्रम्यद्विरेफाणि	५
६ पर्वतभेदि पवित्रं	२९	६ भ्राम्यदभृद्मरा-	६२
५ पश्यैताः करिकुम्भ	३८	५ भ्रज्जत्कुम्भर	३६
२ पाण्डुपङ्कजसलीन-	१४	४ भण्डलीकृतकोटण्ड-	३
६ पीनोन्नमदन	६४	७ भदनमतिपुवानं	२७
१ पुनरपि तदभिज्ञा	६४	५ मध्ये त्रिवर्ती	६७
५ पूर्वापरपयोराशि-	२०	५ मन्द मन्दरमन्दिरेषु	३२
५ पूर्वाह विहितोदया	७४	५ मन्दायते दिनमिद्	६४
७ पीष्पा पञ्चशरा	१८	६ महावराहाङ्गविनि-	३५
३ प्रभासयोगिविद्ययात-	२४	५ माघदन्तिकपोल	२४
१ प्रमथाः काम्तिहारिण्यो	४	५ माघन्मासलतुङ्ग-	२५
६ प्रसरति रणरणकरस-	४३	६ माघयं मूर्धनि	७०
५ प्रसृतकमलगन्ध	८	१ मित्र च मन्त्री च	२८
७ प्रस्तुतस्य विरोधेन	४६	२ मुक्तादाममनोरथेन	३०
४ प्राघः सैव भये-	१	६ मुक्तासै श्रुपमाण	२७
२ प्रावृषं शरद	३	३ मुग्धस्निग्ध-	६
६ प्रियविरहविषा-	४५	२ मुग्धा दुग्धधिया	३६
५ प्रेममपञ्च	११	३ मुञ्जन्थाः शिशुना	३०
५ चक्रकृतनिनद	४१	५ मुहुर्धिवसता	४२
२ चाणकरवीरदमनक-	१७	६ मृगेषु मैत्री	१८
५ चालोन्मील	३९	६ मृदुकपरिरम्भा-	५८
४ विमति यो ह्यर्जुन-	१८	७ य ध्रुवैव मनोभवा-	१०
२ विघ्नते हरिणी	३२	६ यत्र न फलिता-	६३
१ व्रह्मण्योऽपि	४९	३ यथा छिन्न तथा	१५
१ भद्ररलेपफघावन्ध	२२	५ यथेयमाकृति-	२६
६ मज्जन घटसमूहा	७५	३ यथावद्याटशं	१७
५ भवति यदि सद्य	१	६ यथेतस्याः सृष्टपि	१७
७ भवति हृद्यहारी	४७	४ या ऋन्दम्य जगद्	३७
१ भवति फावगुने	२७	६ यारपरताघटमन्ध-	२
६ भानोः सुता	१५	१ ये कुन्दयतय-	३५

उ	मूलानि	श्लो	उ	मूलानि	श्लो
५	रक्षेणाफ विनि	७६	५	वाचीना निचया	४९
७	रक्षयज्ञे कुरङ्गवना	४५	६	र्व रपुरुष तदन-	६३
५	रक्षनिमवनिनाथ	७७	६	वेदविद्योपमा दवी	५३
४	रम रमयने	१४	६	वेचा वेदप्रचारिलष्टे	१४
२	राजते रापतेनाप	८	१	व्याम इमानृता	१२
२	रावन्नात्र वपत्रच	२६	६	वनगुण परिपादया	७५
२	रुपमपन्नमत्राम्य	२२	१	वाधद्राग द्विनीधन	१४
१	रहण सुकरताना	८	५	विधिलिनमकला	१५
७	लधर्मा विद्यायो	३४	६	शुभ्याग्नी धनचार्यज्ञया	५१
६	लक्ष्यार्थचन्द्र इग	३८	२	शुद्धररममृद्धार	२५
३	ललापदृविन्दन	११	२	उच्येतच्च दनचरु	३५
७	लावण्यपुण्यपरमपु	१२	५	रस्यातच्चन्द्रमणि	१७
३	लावण्यानिर्दध	३३	७	षडमा किल वैद्येयु	१८
७	लावण्यामुन	४३	१	सगता मुरमर्थेन	२४
५	लास्य पानुङ्गानन	२०	६	सर्गिनका स्वरीत्सुवया	५०
५	लिसेवामृत्पट्टन	१९	४	सम्रह नाकुटीनस्य	२७
४	लीलया नन्दलीकृत	३०	५	समारामभुनिर्घा	२
७	लीलापद्विनभ्रुग	४१	६	स पृथ निपदेशा	२६
३	वररजन करकात	१९	६	सकलविपददृष्टा	४४
२	वामरकरकरवक	१६	६	सकाञ्चयश्चन्द्रनात्र	७९
६	वर्धन नोद्धमजगता	४८	१	सदाहमाकुल	३६
१	वर्णावकविन्द	५२	१	सदूप गपि निदपा	११
२	वहति नवाविकामौ	१३	२	सरलमिय गुणदध	१५
१	वच काग्निमग्नि	१५	५	सरमिन्नमकरन्दा	७०
५	वयुस्कन्धनमपट्टन	७५	३	सर्गाध्यायपरिचयस्य	२६
३	वामरधमिहावर्ण	४	७	सर्वेय पदिगे हमा	२९
५	विकलयनि कला	६६	४	सवृद्धवाला काले	११
७	विगलिनश्रियाम	२३	४	साराशेद्यतवमस्य	१०
६	विचित्रा पत्रार्थी	७४	१	सा रव मन्मथमवरी	६०
६	विपिन देश मरम	३४	६	सानूना सानूना	६५
२	विमो विमृत्तमनद	२	६	सपदनककलपता	५९
३	वियनि विगद्	१८	६	साठानकमनालान-	५७
५	विरचितपरिदेश	५९	३	सा मर्म स्थितपठा	२३
३	विवेक सह सपदा	१६	६	मित्यन्ता राजनागा	७८
५	विभ्रागमनि न	५	३	सिन्दूरपृथया	७
५	विरलेपाकुटचक्र	७५	६	सुगमसावस्तु	३३

उ. मूलानि	श्लो.	उ. मूलानि	श्लो.
७ सुधापट्टोपलितेव	३०	१ स्त्रीमाणिक्यमहाकरः	६१
६ सुरसदननिवासं	७७	६ रिघरवा स्वदागमन	१८
७ सुस्थिततेजोराशे-	१९	७ स्मरराजराजधानी-	२०
६ सैवा चलच्चन्द्रकि-	२६	६ स्मर विहरणवेदी	७६
७ सोऽप्यास मरणं	४५	६ स्व सौन्दर्यविदग्धि	७२
२ सोऽय प्रीत्याचलो	७	७ हंसो हसि चक्रोरि	८
४ सोऽयं धरतेन पान्थेन	८	३ हरचरणसरोजा-	३५
४ सोऽणीषमूर्धा	१५	२ हरिति हरिणयूथ	६
१ सोऽह हंसायितु	२१	७ हर्षादुरपुलक	४८
७ सौधस्कन्धतलानि	३१	७ हर्षाद्वापचिते	३८
५ स्कन्धशाखान्तराले	४६	१ हृद्योद्याममह	६३
		५ हृद्योद्यानसर-	१८